श्रीमज्जिनसेनाचार्यप्रणीत

हरिवंशपुराण

[हिन्दी रूपान्तर]

●

सम्पादक-अनुवादक
डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
पी-एच.डी.
प्राचार्य, गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर

●

परिकल्पना (हिन्दी प्रकाशन)
पवन कुमार जैन

जैन साहित्य सदन
[प्राचीन श्री अग्रवाल दि. जैन पंचायत के अंतर्गत]
श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर जी,
चाँदनी चौक, दिल्ली - ११० ००६.
दूरभाष : ३२८०६४२

वीर नि० संवत् २५२१
अनंत चतुर्दशी १९९४

प्रथम संस्करण
मूल्य : १५० रूपये

मुद्रकः अंकित प्रिंटिंग प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-११००३२, फोनः २२८४६९४

प्रस्तावना

[१] सम्पादन-परिचय

हरिवंश पुराणका सम्पादन निम्नलिखित ६ प्रतियोंके आधारपर हुआ है—

'क' प्रति—यह प्रति पं. परमानन्दजी शास्त्रीके सौजन्यसे श्री दि. जैन सरस्वतीभण्डार धर्मपुरा, देहलीसे प्राप्त हुई थी। इसकी पत्रसंख्या २८२ है, प्रति पत्रपर १३-१४ पंक्तियाँ और प्रति पंक्तिमें ४२ से ४५ तक अक्षर हैं। प्रति प्राचीन है, जर्जर होनेसे कितने ही पत्र अलग कर नये पत्र लिखाये गये हैं। अन्तिम पत्र भी जर्जर होनेसे बदला गया है इसलिए लिपि संवत्का पता नहीं चल सका। स्याही लाल-काली है, अक्षर सुवाच्य हैं, जहाँ-तहाँ टिप्पणी भी दी गयी हैं। प्रायः पाठ शुद्ध हैं। पत्रोंकी साइज ११ × ५ इंच है। इसका सांकेतिक नाम 'क' है।

'ख' प्रति—यह प्रति भी पं. परमानन्दजी शास्त्रीके सौजन्यसे पंचायती मन्दिर देहलीसे प्राप्त हुई है। संवत् १८७१ में लिखी गयी है। दशा अच्छी है; परन्तु कागज जर्जर होने लगा है। लाल-काली स्याही हैं, पत्रसंख्या ३३० है। प्रतिपत्रमें १२–१३ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्तिमें ३५–३८ अक्षर हैं। पत्रोंकी साइज १२½ × ६ इंच है। इसका सांकेतिक नाम 'ख' है।

'ग' प्रति—यह प्रति श्री पं. चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ और डॉ. कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल जयपुरके सौजन्यसे प्राप्त हुई है। इसमें १२ × ५ साइजके ३१३ पत्र हैं। प्रतिपत्रमे १२ पंक्तियाँ हैं और प्रतिपंक्तिमें ४५–५० तक अक्षर हैं। प्राचीन है, परन्तु बीच-बीचमें कई जगह जीर्ण-शीर्ण हो जानेसे नये पत्र लिखाकर शामिल कराये गये हैं। कहीं-कहीं टिप्पण भी दिये गये हैं, पाठ शुद्ध है, दशा अच्छी है। लेख संवत् १८३० है। इसका सांकेतिक नाम 'ग' है।

'घ' प्रति—यह प्रति भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट पूनासे उपलब्ध हुई थी। इसमें १२ × ५ इंचके ३७६ पत्र, प्रतिपत्रमें १२ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्तिमें ३६–४० अक्षर हैं। काली-लाल स्याही से लिखी गयी है,. सुवाच्य लिपि है और दशा अच्छी है। लेखनकाल अज्ञात है फिर भी कागजकी दशा से अधिक प्राचीन मालूम होती है। इसका सांकेतिक नाम 'घ' है।

'ङ' प्रति—यह प्रति पं. चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ और डॉ. कस्तूरचन्द्रजी कासलीवालके सौजन्यसे जयपुरसे प्राप्त हुई थी। इसमें ११ × ५ इंचकी साइजके ४२० पत्र हैं। प्रतिपत्रमें ११–१२ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्तिमें ४०–४२ अक्षर हैं। अक्षर सुवाच्य हैं, कागज पतला है, लेखनकाल १६४० विक्रम संवत् है। दशा अच्छी है, स्याहीके दोषसे कुछ पत्र परस्पर चिपक गये हैं। बीच-बीचमें कुछ टिप्पणी भी हैं, पाठ शुद्ध है। अन्तमें लेख है—

'संवत् १६४० वर्षे चैत्रे मासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां तिथौ बुधवासरे रोहिणी नामक नक्षत्रे श्री मूलसंघे'। इसका सांकेतिक नाम 'ङ' है।

'म' प्रति—यह प्रति माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे पं. दरबारीलालजी न्यायतीर्थ (साम्प्रतिक नाम—सत्यभक्त) के द्वारा सम्पादित होकर दो भागोंमें मूलमात्र प्रकाशित हुई है। जहाँ कहीं खटकने लायक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। इसका सांकेतिक नाम 'म' है।

उक्त छह मूल प्रतियोंके पाठसे भी जहाँ-कहीं शुद्ध पाठका निर्णय नहीं हो सका वहाँ श्री ऐलक

पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बई तथा प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर मैसूरकी प्रतिसे भी पाठ मिलाकर शुद्ध पाठ स्थापित किये गये हैं। इस कार्यमें हमें श्री पं. कुन्दनलालजी शास्त्री तथा पं. के. श्री भुजबली शास्त्री मूडबिद्रीसे पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ है।

[२] हरिवंशपुराण

अभी तक मेरी दृष्टिमें तीन हरिवंशपुराण आये हैं। जिनमें दो संस्कृतमें हैं और एक अपभ्रंश भाषाका है। अपभ्रंश हरिवंशके रचयिता महाकवि रइधू हैं। इसकी प्रति मैंने कुरवाई (सागर) के जैन मन्दिरमें देखी थी। संस्कृतके दो हरिवंशोंमें एक हरिवंश ब्रह्मचारी जिनदासका बनाया हुआ है। इसकी प्रति भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीटचूट पूनामें विद्यमान है। रचना सरल और संक्षिप्त है। जिनसेनके हरिवंशमें जो यत्र-तत्र प्रसंगोपात्त अन्य वर्णन आये हैं उन्हें छोड़कर मात्र कथाभाग इसमें संगृहीत किया गया है। दूसरा हरिवंश आचार्य जिनसेनका है जिसका संस्करण पाठकोंके हाथमें है।

आचार्य जिनसेनका हरिवंश पुराण दिगम्बर-सम्प्रदायके कथासाहित्यमें अपना प्रमुख स्थान रखता है। यह विषय विवेचनाकी अपेक्षा तो प्रमुख स्थान रखता ही है, प्राचीनताकी अपेक्षा भी संस्कृत कथाग्रन्थोंमें तीसरा ग्रन्थ ठहरता है। पहला रविषेणाचार्यका पद्मपुराण, दूसरा जटासिंहनन्दीका वरांगचरित और तीसरा यह जिनसेनका हरिवंश है। यद्यपि जिनसेनने अपने हरिवंशमें महासेनकी सुलोचनाकथा तथा कुछ अन्यान्य ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है; परन्तु अभी तक अनुपलब्ध होनेके कारण उनके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता। हरिवंशके कर्ता जिनसेनने अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें पार्श्वाभ्युदयके कर्ता जिनसेन स्वामीका स्मरण किया है इसलिए इनका महापुराण हरिवंशसे पूर्ववर्ती होना चाहिए....यह मान्यता उचित नहीं प्रतीत होती, क्योंकि जिस तरह जिनसेनने अपने हरिवंशपुराणमें जिनसेन (प्रथम) का स्मरण करते हुए उनके पार्श्वाभ्युदयका उल्लेख किया है उस तरह महापुराणका उल्लेख नहीं किया, इससे विदित होता है कि हरिवंशकी रचनाके पूर्व तक जिनसेन (प्रथम) के महापुराणकी रचना नहीं हुई थी। महापुराण, जिनसेन स्वामीके जीवनकी अन्तिम रचना है इसीलिए तो वह उनके द्वारा पूर्ण नहीं हो सकी, उनके शिष्य गुणभद्राचार्यके द्वारा पूर्ण किया गया है। हरिवंश और महापुराण दोनोंको देखनेके बाद ऐसा लगता है कि महापुराणकारने हरिवंशको देखनेके बाद उसकी रचना की है। हरिवंशपुराणमें तीन लोकोंका, संगीतका तथा व्रतविधान आदिका जो बीच-बीचमें विस्तृत वर्णन किया गया है उससे कथाके सौन्दर्यकी हानि हुई है। इसलिए महापुराणमें उन सबके अधिक विस्तारको छोड़कर प्रसंगोपात्त संक्षिप्त ही वर्णन किया गया है। काव्योचित भाषा तथा अलंकारकी विच्छित्ति भी हरिवंशपुराणकी अपेक्षा महापुराणमें अत्यन्त परिष्कृत है।

[३] हरिवंशपुराणका आधार

जिस प्रकार जिनसेनके महापुराणका आधार कवि परमेष्ठीका 'वागर्थसंग्रह' पुराण है उसी प्रकार हरिवंशका आधार भी कुछ न कुछ अवश्य रहा होगा। हरिवंशके कर्ता जिनसेनने प्रकृत ग्रन्थके अन्तिम सर्गमें भगवान् महावीरसे लेकर ६८३ वर्ष तककी और उसके बाद अपने समय तककी जो विस्तृत—अविच्छिन्न आचार्य-परम्परा दी है उससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इनके गुरु कीर्तिषेण थे और सम्भवतया हरिवंशकी कथावस्तु उन्हें उनसे प्राप्त हुई होगी!

कुवलयमालाके कर्ता उद्योतन सूरिने (वि. सं. ८३५) अपनी कुवलयमालामें जिस तरह रविषेणके पद्मचरित और जटासिंह नन्दीके वरांगचरितकी स्तुति की है उसी तरह हरिवंशकी भी की है[1]। उन्होंने लिखा है कि मैं हजारों बुधजनोंके प्रिय, हरिवंशोत्पत्तिकारक, प्रथम वन्दनीय और विमलपद हरिवंशकी वन्दना

---

१. बुहजण सहस्स दइयं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं।
वंदामि वंदियं पि हु हरिवंसं चेव विमलपयं ॥३८॥

करता हूँ। यहाँ श्लेषसे विमलपदके (विमलसूरिके चरण और विमल हैं पद जिसके ऐसा हरिवंश) दो अर्थ घटित होते हैं। विमलसूरिका यह 'हरिवंश' अभी तक अप्राप्य है, इसके मिलनेपर हरिवंशके मूलाधारका निर्णय सहज हो सकता है। वर्णन शैलीको देखते हुए इन्होंने रविषेणके पद्मचरितको अच्छी तरह देखा है यह स्पष्ट है। पद्यमय ग्रन्थोंमें गद्यका उपयोग अन्यत्र देखनेमें नहीं आता परन्तु जिस प्रकार रविषेणने पद्मचरित-में वृत्तानुगन्धी गद्यका प्रयोग किया है उसी प्रकार जिनसेनने भी हरिवंशके ४९वें सर्गमें नेमि जिनेन्द्रका स्तवन करते हुए वृत्तानुगन्धी गद्यका प्रयोग किया है। हरिवंशका लोकविभाग एवं शलाकापुरुषोंका वर्णन 'त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति' से मेल खाता है[1]। द्वादशांगका वर्णन राजवार्तिकके अनुरूप है, संगीतका वर्णन भरतमुनिके नाट्य-शास्त्रसे अनुप्राणित है और तत्वोंका निरूपण तत्त्वार्थसूत्र तथा सर्वार्थसिद्धिके अनुकूल है। इससे जान पड़ता है कि आचार्य जिनसेनने उन सब ग्रन्थोंका अच्छी तरह आलोडन किया है। तत्तत्प्रकरणोंमें दिये गये तुलनात्मक टिप्पणोंसे उक्त बातका निर्णय सुगम है। हाँ, व्रतविधान, समवसरण तथा जिनेन्द्र विहारका वर्णन किससे अनुप्राणित है ? यह निर्णय मैं नहीं कर सका।

[४] हरिवंशपुराणके रचयिता आचार्य जिनसेन

हरिवंश पुराणके रचयिता आचार्य जिनसेन पुन्नाट संघके थे। ये महापुराणादिके कर्ता जिनसेनसे भिन्न हैं। इनके गुरुका नाम कीर्तिषेण और दादागुरुका नाम जिनसेन था। महापुराणादिके कर्ता जिनसेनके गुरु वीरसेन और दादागुरु आर्यनन्दी थे। पुन्नाट कर्नाटकका प्राचीन नाम है इसलिए इस देशके मुनिसंघका नाम पुन्नाट संघ था। जिनसेनका जन्मस्थान, माता-पिता तथा प्रारम्भिक जीवनका कुछ भी उल्लेख उपलब्ध नहीं है। गृहविरत पुरुषके लिए इन सबके उल्लेखकी आवश्यकता भी नहीं है।

आचार्य जिनसेन बहुश्रुत विद्वान् थे—यह हरिवंशपुराणके स्वाध्यायसे स्पष्ट हो जाता है। हरिवंश-पुराण पुराण तो है ही साथ ही इसमें जैन वाङ्मयके विविध विषयोंका अच्छा निरूपण किया गया है इसलिए यह जैन-साहित्यका अनुपम ग्रन्थ है।

[५] ग्रन्थकर्ताकी गुरु-परम्परा

हरिवंशपुराणके छयासठवें सर्गमें भगवान् महावीरसे लेकर लोहाचार्य तककी वही आचार्य-परम्परा दी है जो कि श्रुतावतार आदि अन्य ग्रन्थोंमें मिलती है। परन्तु उसके बाद अर्थात् वीर निर्वाणसे ६८३ वर्षके अनन्तर जिनसेनने अपने गुरु कीर्तिषेण तककी जो अविच्छिन्न परम्परा दी है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इस दृष्टिसे इस ग्रन्थका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। वह परम्परा इस प्रकार है—विनयधर, श्रुतिगुप्त, ऋषिगुप्त, शिवगुप्त, मन्दरार्य, मित्रवीर्य, बलदेव, बलमित्र, सिंहबल, वीरवित्, पद्मसेन, व्याघ्रहस्ति, नागहस्ति, जितदण्ड, नन्दिषेण, दीपसेन, धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, नन्दिषेण, ईश्वरसेन, नन्दिषेण, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शान्तिषेण, जयसेन, अमितसेन, कीर्तिषेण और जिनसेन (हरिवंशके कर्ता)।[2]

इनमें अमितसेनको पुन्नाटगणका अग्रणी तथा शतवर्षजीवी बतलाया है। वीरनिर्वाणसे लोहाचार्य तक ६८३ वर्षमें २८ आचार्य बतलाये हैं। लोहाचार्यका अस्तित्व वि. सं. २१३ तक अभिमत है और वि. सं. ८४० तक जिनसेनका अस्तित्व सिद्ध है। इस तरह इस ६२७ वर्षके अन्तरालमें ३१ आचार्योंका होना सुसंगत है।

---

१. ब्र. जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुरसे प्रकाशित त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिके द्वितीय भागकी प्रस्तावनामें उसके सम्पादक डॉ. हीरालालजी और डॉ. ए. एन. उपाध्येने त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिको अन्य ग्रन्थोंके साथ तुलना करते हुए हरिवंशके साथ भी उसकी तुलना की है और दोनोंके वर्णनमें कहाँ साम्य और कहाँ वैषम्य है। इसकी अच्छी चर्चा की है। विस्तार भयसे हम यहाँ उस चर्चाको न लेकर पाठकोंका ध्यान उस ओर अवश्य आकृष्ट करते हैं।

२. हरिवंशपुराण, सर्ग ६६, श्लो. २२–३३।

[६] हरिवंशका रचना-स्थान

हरिवंशपुराणकी रचनाका प्रारम्भ वर्द्धमानपुरमें हुआ और समाप्ति दोस्तटिकाके शान्तिनाथ जिनालयमें हुई। यह वर्द्धमानपुर सौराष्ट्रका प्रसिद्ध शहर 'वढवाण' जान पड़ता है क्योंकि हरिवंशपुराणमें उस समयकी जो भौगोलिक स्थिति बतलायी है उसपर विचार करनेसे उक्त कल्पनाको बल प्राप्त होता है।

हरिवंशपुराणके ६६वें सर्गके ५२ और ५३वें श्लोकमें कहा है[1] कि शकसंवत् ७०५ में जब कि उत्तर दिशाकी इन्द्रायुध, दक्षिण दिशाकी कृष्णका पुत्र श्रीवल्लभ, पूर्वकी अवन्तिराज वत्सराज और पश्चिमकी—सौरोंके अधिमण्डल सौराष्ट्रकी वीर जयवराह रक्षा करता था तब अनेक कल्याणोंसे अथवा सुवर्णसे बढ़नेवाली विपुल लक्ष्मीसे सम्पन्न वर्धमानपुरके पार्श्वजिनालयमें जो कि नन्नराज वसतिके नामसे प्रसिद्ध था यह ग्रन्थ पहले प्रारम्भ किया गया और पीछे चलकर दोस्तटिकाकी प्रजाके द्वारा उत्पादित प्रकृष्ट पूजासे युक्त वहाँके शान्ति जिनेन्द्रके शान्तिपूर्ण गृहमें रचा गया।

वढवाणसे गिरिनगरको जाते हुए मार्गमें 'दोत्तडि' नामक स्थान है वही 'दोस्तटिका' है। प्राचीन गुर्जर-काव्य संग्रह (गायकवाड सीरिज) में अमुलुकृत चर्चरिका प्रकाशित हुई है उसमें एक यात्रीकी गिरिनार-यात्राका वर्णन है। वह यात्री सर्वप्रथम वढवाण पहुँचता है, फिर क्रमसे रंनदुलई, सहजिगपुर, गंगिलपुर और लखमीघरको पहुँचता है। फिर विषम दोत्तडि पहुँचकर बहुत-सी नदियों और पहाड़ोंको पार करता हुआ करिवंदियाल पहुँचता है। करिवंदियाल और अनन्तपुरमें डेरा डालता हुआ भालणमें विश्राम करता है। वहाँसे उसे ऊँचा गिरिनार पर्वत दिखने लगता है। यह विषम दोत्तडि ही दोस्तटिका है।

वर्धमानपुर (बढ़वाण) को जिस प्रकार जिनसेनाचार्यने अनेक कल्याणोंके कारण विपुलश्रीसे सम्पन्न लिखा है उसी प्रकार हरिषेणकथाकोशके कर्ता हरिषेणने भी उसे 'कार्त्तस्वरापूर्णजनाधिवास' लिखा है। कार्त्तस्वर और कल्याण दोनों ही स्वर्णके वाचक है इससे सिद्ध होता है कि वह नगर अत्यधिक समृद्ध था और उसकी समृद्धि जिनसेनसे लेकर हरिषेण तक १४८ वर्षके लम्बे अन्तरालमें भी अक्षुण्ण बनी रही। हरिषेणने अपने कथाकोशकी रचना भी इसी वर्द्धमानपुर (वढ़वाण) में शक संवत् ८५३ (वि. सं. ९८९) में पूर्ण की थी।

यद्यपि जिनसेन पुन्नाट संघके थे और पुन्नाट नाम कर्नाटकका है तथापि विहारप्रिय होनेसे उनका सौराष्ट्रकी ओर आगमन युक्ति-सिद्ध है। सिद्धक्षेत्र गिरिनार पर्वतकी वन्दनाके अभिप्रायसे पुन्नाट संघके मुनियोंने इस ओर विहार किया हो, यह आश्चर्यकी बात नहीं। जिनसेनने अपनी गुरुपरम्परामें अमितसेनको पुन्नाट गणके अग्रणी और शतवर्षजीवी लिखा है। इससे जान पड़ता है कि यह संघ अमितसेनके नेतृत्वमें ही पुन्नाट—कर्नाटक देशको छोड़कर उत्तर भारतकी ओर आया होगा और पुण्यभूमि श्री गिरिनार क्षेत्रकी वन्दनाके निमित्त सौराष्ट्र (काठियावाड़) में गया होगा।

वर्द्धमानपुरकी चारों दिशाओंमें जिन राजाओंका वर्णन जिनसेनने किया है, उनपर भी विचार कर लेना आवश्यक है—

१. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादिराजे परां
सौर्याणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥५२॥
कल्याणैः परिवर्धमान-विपुल-श्रीवर्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालय-नन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा।
पश्चाद्दोस्तटिका प्रजा प्रजनितप्राज्यार्चना वर्जने
शान्तेः शान्तगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयम् ॥५३॥

प्रस्तावना

१. इन्द्रायुध

स्व. ओझाजीने लिखा है कि इन्द्रायुध और चक्रायुध किस वंशके थे, यह ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु सम्भव है कि वे राठोड़ हों। स्व. चिन्तामणि विनायक वैद्यके अनुसार इन्द्रायुध भण्डि कुलका था और उक्त वंशको वर्मवंश भी कहते थे।[1] इसके पुत्र चक्रायुधको परास्त कर प्रतिहारवंशी राजा वत्सराजके पुत्र नागभट द्वितीयने जिसका कि राज्यकाल विन्सेट स्मिथके अनुसार वि. सं. ८५७—८८२ है[2]। कन्नौजका साम्राज्य उससे छीना था। बढवाणके उत्तरमें मारवाड़का प्रदेश पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कन्नौजसे लेकर मारवाड़ तक इन्द्रायुधका राज्य फैला हुआ था।

२. श्रीवल्लभ

यह दक्षिणके राष्ट्रकूट वंशके राजा कृष्ण (प्रथम) का पुत्र था। इसका प्रसिद्ध नाम गोविन्द (द्वितीय) था। कावीमें मिले हुए[3] ताम्रपटमें इसे गोविन्द न लिखकर वल्लभ ही लिखा है, अतएव इस विषयमें सन्देह नहीं रहा कि यह गोविन्द (द्वितीय) ही था और वर्धमानपुरकी दक्षिण दिशामें उसीका राज्य था। कावी भी बढ़वाणके प्रायः दक्षिणमें है। श. सं. ६९२ (वि. सं. ८२७) का उसका एक ताम्रपत्र[4] भी मिला है।

३ अवन्तिभूभृत् वत्सराज

यह प्रतिहार वंशका राजा था और उस नागावलोक या नागभट (द्वितीय) का पिता था जिसने चक्रायुधको परास्त किया था। वत्सराजने गौड़ और बंगालके राजाओंको जीता था और उनसे दो श्वेत छत्र छीन लिये थे। आगे इन्हीं छत्रोंको राष्ट्रकूट गोविन्द (द्वितीय) या श्रीवल्लभके छोटे भाई ध्रुवराज ने चढ़ाई करके उससे छीन लिया था और उसे मारवाड़की अगम्य रेतीली भूमिकी ओर भागनेको विवश किया था।

ओझाजी ने लिखा है कि उक्त वत्सराजने मालवाके राजापर चढ़ाई की और मालवराजको बचानेके लिए ध्रुवराज उसपर चढ़ दौड़ा। ७०५ में तो मालवा वत्सराजके ही अधिकारमें था क्योंकि ध्रुवराजका राज्यारोहणकाल श. सं. ७०७ के लगभग अनुमान किया गया है। उसके पहले ७०५ में तो गोविन्द (द्वितीय) (श्रीवल्लभ) ही राजा था और इसलिए उसके बाद ही ध्रुवराजकी उक्त चढ़ाई हुई होगी।

उद्योतन सूरिने अपनी कुवलयमाला जावालिपुर या जालोर (मारवाड़) में तब समाप्त की थी जब श. सं. ७०० के समाप्त होनेमें एक दिन बाकी था। उस समय वहाँ वत्सराजका राज्य था अर्थात् हरिवंशकी रचनाके समय (श. सं. ७०५ में) तो (उत्तर दिशाका) मारवाड़ इन्द्रायुधके अधीन था और (पूर्वका) मालवा वत्सराजके अधिकारमें था। परन्तु इसके ५ वर्ष पहले (श. सं. ७००) में वत्सराज मारवाड़का अधिकारी था। इससे अनुमान होता है कि उसने मारवाड़से ही आकर मालवापर अधिकार किया होगा और उसके बाद ध्रुवराजकी चढ़ाई होनेपर वह फिर मारवाड़की ओर भाग गया होगा। श. सं. ७०५ में वह अवन्ति या मालवाका शासक होगा। अवन्ति बढ़वाणकी पूर्व दिशामें है ही। परन्तु यह पता नहीं लगता कि उस समय अवन्तिका राजा कौन था, जिसकी सहायताके लिए राष्ट्रकूट ध्रुवराज दौड़ा था। ध्रुवराज (श. सं. ७०७) के लगभग गद्दीपर आरूढ हुआ था। इन सब बातोंसे हरिवंशकी रचनाके समय उत्तरमें इन्द्रायुध, दक्षिणमें श्रीवल्लभ और पूर्वमें वत्सराजका राज्य होना ठीक मालूम होता है।

१. देखो, सी. वी. वैद्यका 'हिन्दू भारतका उत्कर्ष' : पृ. १७५।
२. म. म. ओझाजीके अनुसार नागभटका समय वि.सं. ८७२–८९० तक है
३. इण्डियन ऐण्टिक्वेरी : जिल्द ५, पृ. १४६।
४. एपिग्राफिआ इण्डिका : जिल्द ६, प, २७६।

४. वीर जयवराह

यह पश्चिममें सौरोंके अधिमण्डलका राजा था। सौरोंके अधिमण्डलका अर्थ हम सौराष्ट्र ही समझते हैं जो काठियावाड़के दक्षिणमें है। सौर लोगोंका राष्ट्र सौर-राष्ट्र या सौराष्ट्रसे बढ़वाण और उसके पश्चिमकी ओरका प्रदेश ही ग्रन्थकर्ताको अभीष्ट है।

यह राजा किस वंशका था इसका ठीक पता नहीं चलता। हमारा अनुमान है कि यह चालुक्य वंशका कोई राजा होगा और उसके नामके साथ 'वरआह' का प्रयोग उस तरह होता होगा जिस तरह कि कीर्तिवर्मा (द्वितीय) के साथ महावराहका। राष्ट्रकूटोंसे पहले चौलुक्य सार्वभौम—राजा थे और काठियावाड़पर भी उनका अधिकार था। उनसे यह सार्वभौमपना श. सं. ६७५ के लगभग राष्ट्रकूटोंने ही छीना था, इसलिए बहुत सम्भव है कि हरिवंशकी रचनाके समय सौराष्ट्रपर चौलुक्य वंशकी हो किसी शाखाका अधिकार हो और उसीको जयवराह लिखा हो। सम्भवतः पूरा नाम जयसिंह हो और वराह विशेषण।

प्रतिहार राजा महीपालके समयका एक दानपत्र हड्डाला गाँव (काठियावाड़) से श. सं. ८३६ का मिला है। उससे मालूम होता है कि उस समय बढ़वाणमें धरणीवराहका अधिकार था, जो चावड़ा वंशका था और प्रतिहारोंका करद राजा था। इससे एक संभावना यह भी है कि उक्त धरणीवराहका ही कोई ४–६ पीढ़ी पहलेका पूर्वज उक्त जयवराह रहा हो।

[७] हरिवंशका रचनाकाल

जिनसेनाचार्यने अन्तिम सर्गके ५२वें श्लोकमें हरिवंशका रचनाकाल शक संवत् ७०५ लिखा है जो वि. सं. ८४० होता है। जिनसेनने अपने ग्रन्थकी रचनाका समय मात्र शक संवत्में लिखा है जब कि हरिषेणने कथाकोशका रचनाकाल लिखते समय शक संवत्के साथ वि. सं. का भी उल्लेख किया है।[1] उत्तरभारत, गुजरात और मालवा आदिमें वि. सं. का और दक्षिणमें शक संवत्का चलन रहा है। जिनसेन-को दक्षिणसे आये हुए एक-दो पीढ़ियाँ ही बीती थीं इसलिए उन्होंने अपने ग्रन्थमें शक संवत्का ही उल्लेख किया है, परन्तु हरिषेणको काठियावाड़में कई पीढ़ियाँ बीत गयी थीं इसलिए उन्होंने वहाँकी पद्धतिके अनुसार साथमें वि. सं. का देना भी उचित समझा।

[८] जिनसेनके पूर्ववर्ती विद्वान्

कृतज्ञताके नाते जिनसेनने अपनेसे पूर्ववर्ती समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दी, वज्रसूरि, महासेन, रविषेण, जटासिंहनन्दी, शान्त (शान्तिषेण) विशेषवादी, कुमारसेन गुरु, वीरसेनगुरु, जिनसेन स्वामी और वर्द्धमान पुराणके कर्ताका नामस्मरण करते हुए उनकी प्रशंसा की है। अतः इनके सम्बन्धमें संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

समन्तभद्र

समन्तभद्र क्षत्रिय राजपुत्र थे। इनका जन्मनाम शान्तिवर्मा था किन्तु बादमें आप 'समन्तभद्र' इस श्रुतिमधुर नामसे लोकमें प्रसिद्ध हुए। इनके गुरुका नाम क्या था और इनकी क्या गुरुपरम्परा थी यह ज्ञात नहीं हो सका। वादी, वाग्मी और कवि होनेके साथ-साथ स्तुतिकार होनेका श्रेय आपको ही प्राप्त है। आप दर्शनशास्त्रके तलद्रष्टा और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे। एक परिचय पद्यमें तो आपको दैवज्ञ, वैद्य, मान्त्रिक और तान्त्रिक होनेके साथ आज्ञासिद्ध सिद्धसारस्वत भी बतलाया है। आपकी सिंहगर्जनासे सभी वादिजन काँपते थे। आपने अनेक देशोंमें विहार किया और वादियोंको पराजित कर उन्हें सन्मार्गका प्रदर्शन किया। आपकी उपलब्ध कृतियाँ बड़ी ही महत्त्वपूर्ण, संक्षिप्त, गूढ़ तथा गम्भीर अर्थकी उद्भाविका हैं। उनके नाम इस प्रकार

---

१. हरिवंशपुराण. सर्ग १, श्लोक २९–४१।

हैं—१ बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, २ युक्त्यनुशासन, ३ आप्तमीमांसा, ४ रत्नकरण्ड श्रावकाचार और ५ स्तुतिविद्या। हरिवंशपुराणकार जिनसेनने इनके जीवसिद्धि और युक्त्यनुशासन इन दो ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। इनका समय विक्रमकी २–३ शताब्दी माना जाता है।

सिद्धसेन

इस नामके अनेक विद्वान् हो गये हैं पर यह सिद्धसेन वही ज्ञात होते हैं जो सन्मतिप्रकरण नामक प्राकृत ग्रन्थके कर्ता हैं। ये न्यायशास्त्रके विशिष्ट विद्वान् थे। इनका समय विक्रमकी ६-७वीं शताब्दी होना चाहिए। कतिपय प्राचीन द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता भी दिगम्बर सिद्धसेन हुए हैं। ये सिद्धसेन, न्यायावतारके कर्ता श्वेताम्बरीय विद्वान् सिद्धसेन दिवाकरसे भिन्न हैं।[1]

देवनन्दी

यह पूज्यपादका दूसरा नाम है। श्रवणबेलगोलाके शिलालेख नं. ४० (६४) के उल्लेखानुसार इनके देवनन्दी, जिनेन्द्रबुद्धि और पूज्यपाद ये तीन नाम प्रसिद्ध हैं। यह आचार्य अपने समयके बहुश्रुत विद्वान् थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। दर्शनसारके इस उल्लेखसे वि. सं. ५२६ में दक्षिण मथुरा या मदुरामें पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दीने द्राविड संघकी स्थापना की थी, आप ५२६ वि. सं. से पूर्ववर्ती विद्वान् सिद्ध होते हैं। आचार्य जिनसेनने इनका स्मरण वैयाकरणके रूपमें किया है। अबतक आपके जैनेन्द्र व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश तथा दशभक्ति ये पाँच ग्रन्थ उपलब्ध हो सके हैं।

वज्रसूरि

ये देवनन्दी या पूज्यपादके शिष्य द्राविड़संघके स्थापक वज्रनन्दि जान पड़ते हैं। जिनसेनने इनके विचारोंको प्रवक्ताओं या गणधर देवोंके समान प्रमाणभूत बतलाया है और उनके किसी ऐसे ग्रन्थकी ओर संकेत किया गया है जिसमें बन्ध और मोक्ष तथा उनके हेतुओंका विवेचन किया गया है। दर्शनसारके उल्लेखानुसार आप छठी शतीके प्रारम्भके विद्वान् ठहरते हैं।

महासेन

इन्हें जिनसेनने सुलोचना कथाका कर्ता कहा है। इनका विशिष्ट परिचय अज्ञात है।

रविषेण

आप पद्मपुराणके कर्ता रविषेण हैं। पद्मपुराणकी श्रुतिसुखद और हृदयहारी रचना कर आपने राम-कथाको अपने ढंगसे विद्वत्-समाजके समक्ष उपस्थित किया है। आप विक्रमकी आठवीं शतीके मध्यवर्ती विद्वान् थे। आपने पद्मपुराणकी रचना वि. सं. ७३३ में पूर्ण की है।

जटासिंहनन्दि

जिनसेनने इनका नामोल्लेख न कर इनके वराङ्गचरितका उल्लेख किया है। यह बड़े भारी तपस्वी थे। इनका समाधिमरण 'कोप्पण' में हुआ था। कोप्पणके समीपकी 'पल्लवकी गुण्डु' नामकी पहाड़ीपर इनके चरण-चिह्न भी अंकित हैं और उनके नीचे दो लाइनका पुरानी कनड़ीका एक लेख भी उत्कीर्ण है जिसे 'चापय्य' नामके व्यक्तिने तैयार कराया था। इनकी एकमात्र कृति 'वराङ्गचरित' डॉ. ए. एन. उपाध्ये-द्वारा सम्पादित होकर माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे प्रकाशित हो चुकी है। राजा वरांग बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथके समयमें हुआ है। उपाध्येजीने जटासिंहनन्दिका समय ७वीं शती निश्चित किया है।

---

१. देखो, अनेकान्त : वर्ष ९, किरण ११–१२ में प्रकाशित, पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार का 'सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन' शीर्षक लेख।

हरिवंशपुराण

शान्त

इनका पूरा नाम शान्तिषेण जान पड़ता है। इनकी उत्प्रेक्षा अलंकारसे युक्त वक्रोक्तियोंकी प्रशंसा गयी है। इनका कोई काव्य ग्रन्थ होगा। जिनसेनने, अपनी गुरु-परम्पराका वर्णन करते हुए जयसेनके एक शान्तिषेण आचार्यका नामोल्लेख किया है बहुत कुछ सम्भव है कि यह शान्त वही शान्तिषेण हों।

विशेषवादि

जिनसेनने इनके किसी ऐसे ग्रन्थकी ओर संकेत किया है जो गद्य-पद्यमय है और जिनकी उक्ति बहुत विशेषता है। वादिराजने अपने पार्श्वनाथचरितमें भी इनका स्मरण किया है।

कुमारसेन गुरु

चन्द्रोदय ग्रन्थके रचयिता प्रभाचन्द्रके आप गुरु थे। आपका निर्मल सुयश समुद्रान्त विचरण क था। इनका समय निश्चित नहीं है। चामुण्डराय पुराणके पद्य नं. १५ में भी इनका स्मरण किया गया डॉ. उपाध्येने इनका परिचय देते हुए जैन संदेशके शोधांक १२ में लिखा है कि ये मूलगुण्ड नामक स्थान आत्म-त्यागको स्वीकार करके कोप्पणाद्रिपर ध्यानस्थ हो गये तथा समाधिपूर्वक मरण किया।

वीरसेन गुरु

ये उस मूलसंघ पंचस्तूपान्वयके आचार्य थे जो सेनसंघके नामसे लोकमें विश्रुत हुआ है। ये आप चन्द्रसेनके प्रशिष्य और आर्यनन्दीके शिष्य तथा महापुराण आदिके कर्ता जिनसेनके गुरु थे। आप षट्खण गमपर बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण धवला टीका तथा कषाय प्राभृतपर बीस हजार श्लोक प्रमाण जयधव टीका लिखकर दिवंगत हुए थे। जिनसेनने उन्हें कवियोंका चक्रवर्ती तथा अपने-आपके द्वारा परलोव विजेता कहा है। आपका समय विक्रमकी ९वीं शतीका पूर्वार्ध है।

जिनसेन स्वामी

आप वीरसेन गुरुके शिष्य थे। हरिवंशपुराणके कर्ता जिनसेनने आपके पार्श्वाभ्युदय ग्रन्थकी ही च की है। जब कि आप महापुराण तथा कषायप्राभृतकी अवशिष्ट चालीस हजार श्लोक प्रमाण टीकाके भी क हैं। इससे जान पड़ता है कि हरिवंशपुराणके समय उन्होंने पार्श्वाभ्युदयकी ही रचना की होगी। ज धवला और महापुराणकी रचना पीछे की होगी। और महापुराणकी रचना तो उनकी अन्तिम कृति ब जा सकती है जिसे वे पूरा नहीं कर सके। उनके सुयोग्य शिष्य गुणभद्रने उसे पूरा किया। आपका स ९वीं शती है।

वर्धमानपुराणके कर्ता

जिनसेनने वर्द्धमानपुराणका उल्लेख किया है परन्तु इसके कर्ताका नाम नहीं लिखा है। जान पड़ है कि उनके समयका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ होगा।

[९] हरिवंशपुराणकी कथावस्तु

हरिवंशपुराणमें जिनसेनाचार्य प्रधानतया बाईसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ भगवान्का चरित्र लिख चाहते थे परन्तु प्रसंगोपात्त अन्य कथानक भी इसमें लिखे गये हैं। यह बात हरिवंशके प्रत्येक सर्गके : पुष्पिका वाक्यसे सिद्ध होती है जिसमें उन्होंने 'इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे' इसका उल्लेख किया है। भगव नेमिनाथका जीवन आदर्श त्यागका जीवन है। वे हरिवंश-गगनके प्रकाशमान सूर्य थे। भगवान् नेमिनाथ साथ नारायण और बलभद्र पदके धारक श्रीकृष्ण तथा रामके भी कौतुकावह चरित्र इसमें लिखे गये हैं पाण्डवों तथा कौरवोंका लोकप्रिय चरित्र इसमें बड़ी सुन्दरताके साथ अंकित किया है। श्रीकृष्णके प्रद्युम्नका चरित भी इसमें अपना पृथक् स्थान रखता है।

[१०] हरिवंशपुराणकी साहित्यिक सुषमा

हरिवंशपुराण न केवल कथा ग्रन्थ है किन्तु महाकाव्यके गुणोंसे युक्त उच्च कोटिका महाकाव्य भी है। इसके सैंतीसवें सर्गसे नेमिनाथ भगवान्का चरित्र प्रारम्भ होता है वहींसे साहित्यिक सुषमा इसकी बढ़ती जाती है। इसका पचपनवाँ सर्ग यमकादि अलंकारोंसे अलंकृत है। अनेक सर्ग सुन्दर-सुन्दर छन्दोंसे विभूषित हैं। ऋतुवर्णन, चन्द्रोदयवर्णन आदि भी अपने ढंगके निराले हैं। नेमिनाथ भगवान्के वैराग्य तथा बलदेवके विलाप आदिके वर्णन करनेके लिए जिनसेनने जो छन्द चुने हैं वे रस परिपाकके अत्यन्त अनुरूप हैं। श्रीकृष्ण-की मृत्युके बाद बलदेवका करुण विलाप और स्नेहका चित्रण, लक्ष्मणकी मृत्युके बाद रविषेणके द्वारा पद्म-पुराणमें वर्णित राम-विलापके अनुरूप है। वह इतना करुण चित्रण हुआ है कि पाठक अश्रुधाराको नहीं रोक सकता। नेमिनाथके वैराग्य वर्णनको पढ़कर प्रत्येक मनुष्यका हृदय संसारकी माया-ममतासे विमुख हो जाता है। राजीमतीके परित्यागपर पाठकके नेत्रोंसे सहानुभूतिकी अश्रुधारा जहाँ प्रवाहित होती है वहाँ उनके आदर्श सतीत्वपर जन-जनके मानसमें उनके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न होती है।

मृत्युके समय कृष्णके मुखसे जो अन्तिम उद्गार प्रकट हुए हैं उनसे उनकी महिमा बहुत ही ऊँची उठ जाती है। तीर्थंकर प्रकृतिका जिसे बन्ध हुआ है उसके परिणामोंमें जो ममता होनी चाहिए वह अन्त तक स्थित रही है। यहाँ हम कुछ अवतरण देकर ग्रन्थकी सुषमाको प्रकट करना चाहते थे परन्तु लेखका कलेवर बढ़ जानेके भयसे वैसा नहीं कर रहा हूँ। मेरा अनुरोध है कि पाठक ग्रन्थका स्वाध्याय कर रसानुभूति करें।

[११] हरिवंशपुराण और लोकवर्णन

हरिवंशपुराणका लोकवर्णन प्रसिद्ध है जो त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिसे अनुप्राणित है। किसी पुराणमें इतने विस्तारके साथ इस विषयकी चर्चा आना खास बात है। पुराण आदि कथाग्रन्थोंमें लोक आदिका वर्णन संक्षेप रूपमें ही किया जाता है परन्तु इसका वर्णन अत्यन्त विस्तार और विशदताको लिये हुए है। कितने ही स्थलोंपर करणसूत्रोंका भी अच्छा उल्लेख किया गया है। यदि लोक-विभागके प्रकरणका हिन्दी अनुवादके साथ अलगसे प्रकाशित कर दिया जाये तो अल्पमूल्यमें पाठक इससे अवगत हो सकते हैं।

[१२] हरिवंशपुराण और धर्मशास्त्र

भगवान् नेमिनाथकी दिव्यध्वनिके प्रकरणको लेकर ग्रन्थकर्ताने बड़े विस्तारके साथ तत्त्वोंका निरूपण किया है। इस निरूपणका आधार उमास्वामी महाराजका तत्त्वार्थसूत्र और पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धि टीका है। वर्णनको देखकर ऐसा लगने लगता है कि मानो तत्त्वार्थसूत्र और सर्वार्थसिद्धि ही श्लोकरूपमें परिवर्तित हो सामने आये हैं। कथाके साथ-साथ बीच-बीचमें तत्त्वोंका निरूपण पढ़कर पाठकका मन प्रफुल्लित बना रहता है।

[१३] एक विचारणीय विषय

दिगम्बर परम्परामें नारदको नरकगामी माना गया है परन्तु हरिवंशपुराणके कर्ताने उसे चरमशरीरी बताया है—

> प्रस्तावेऽत्र गणिज्येष्ठं श्रेणिकोऽपृच्छदित्यसौ।
> क एष नारदो नाथ कुतो वास्य समुद्भवः ॥१२॥ सर्ग ४२
> गण्युवाच वचो गण्यः शृणु श्रेणिक भण्यते।
> उत्पत्तिरन्त्यदेहस्य नारदस्य स्थितिस्तथा ॥१३॥ सर्ग ४२
> अन्त्यदेहः प्रकृत्यैव निःकषायोऽप्यसौ क्षितौ।
> रणप्रेक्षाप्रियः प्रायो जातो जल्पाकभास्करः ॥२२॥ सर्ग ४२

हरिवंशपुराण

नारदोऽपि नरश्रेष्ठः प्रव्रज्य तपसो बलात् ।
कृत्या भवक्षयं मोक्षमक्षयं समुपेयिवान् ॥२४॥ ६५ सर्ग

उक्त श्लोकोंमें १३ और १२वें श्लोकमें नारदको अन्त्यदेह लिखा है जिसपर कितनी ही प्रतियोंमें 'चरमशरीरस्य' यह टिप्पण भी दिया हुआ है और ६५वें श्लोकमें तो स्पष्ट ही अक्षय मोक्षको प्राप्त करनेकी बात लिखी है।

यह नारदकी मुक्तिका प्रकरण विचारणीय है। इसी प्रकार ६५वें सर्गके अन्तमें कथा है कि बलदेव जब ब्रह्मलोकमें देव हो चुके तब वे अवधिज्ञानसे कृष्णके जीवका पता जानकर उसे सम्बोधनके लिए बालुका-प्रभापृथिवीमें गये। बलदेवका जीव देव, कृष्णको अपना परिचय देनेके बाद उसे वहाँसे अपने साथ ले जानेका प्रयत्न करता है परन्तु वह सब विफल होता है। अन्तमें कृष्णका जीव बलदेवसे कहता है कि, 'भाई जाओ अपने स्वर्गका फल भोगो, आयुका अन्त होनेपर मैं भी मनुष्यपर्यायको प्राप्त होऊँगा। वह मनुष्यपर्याय जो कि मोक्षका कारण होगी। उस समय हम दोनों तप कर जिनशासनकी सेवासे कर्मक्षयके द्वारा मोक्ष प्राप्त करेंगे। परन्तु तुम इतना करना कि भारतवर्षमें हम दोनों पुत्र आदिसे संयुक्त तथा महाविभवसे सहित दिखाये जावें। लोग हमें देखकर आश्चर्यसे चकित हो जावें। तथा घर-घरमें शंख, चक्र और गदा हाथमें लिये हुए मेरी प्रतिमा बनायी जाये और मेरी कीर्तिकी वृद्धिके लिए हमारे मन्दिरोंसे भरतक्षेत्रको व्याप्त किया जाये।' बलदेवके जीवने कृष्णके वचन स्वीकार कर उससे कहा कि सम्यग्दर्शनमें श्रद्धा रखो। तथा भरतक्षेत्रमें आकर कृष्णके कहे अनुसार विक्रियासे उनका प्रभाव दिखाया और तदनुसार उनकी प्रतिमा और मन्दिर बनवाकर भरतक्षेत्रको व्याप्त किया।

इस प्रकरणमें विचारणीय बात यही है कि जिसे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध है वह सम्यग्दृष्टि तो रहेगा ही। यह ठीक है कि बालुकाप्रभामें उत्पन्न होते समय उनका सम्यक्त्व छूट गया होगा परन्तु अपर्याप्तक अवस्थाके बाद फिरसे उन्हें सम्यग्दर्शन हो गया होगा यह निश्चित है। सम्यग्दृष्टि जीवने लोकमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए मिथ्यामूर्तिके निर्माणकी प्रेरणा दी और सम्यग्दृष्टि बलरामके जीव देवने वैसा किया भी। इस प्रकरणकी संगति कुछ समझमें नहीं आती।

सम्पादन और आभार-प्रदर्शन

इस ग्रन्थके सम्पादनमें श्रम बहुत करना पड़ा। जिन स्थलोंका आधार मिल गया उनके सम्पादनमें तो सुविधा रही परन्तु जिनका कुछ आधार नहीं मिला उनके सम्पादनमें बहुत खोज-बीन करनी पड़ी। महा-पुराणके सम्पादनके लिए कुछ ताड़पत्रीय प्रतियाँ मिल गयी थीं जिनसे सही पाठ आँकनेमें बहुत सहायता मिली थी; परन्तु हरिवंशपुराणकी ताड़पत्रीय प्रतियाँ नहीं मिल सकीं। उत्तर भारतके भाण्डारोंमें पायी जानेवाली कागजकी ही प्रतियाँ उपलब्ध हुई। हमें यह लिखते हुए संकोच नहीं होता कि उत्तर भारतमें जो कागजपर प्रतियाँ लिखी गयी हैं वे यदा-कदा च ऐसे पेशेवर लेखकोंकी कलमसे भी लिखी गयी हैं जो संस्कृत भाषासे प्रायः अनभिज्ञ रहे हैं। ऐसे लेखकोंकी कृपासे प्रतियाँ प्रायः अशुद्ध हो गयी हैं अतः शुद्ध पाठकी कल्पना करने-में बहुत चिन्तन करना पड़ता है। ऐसे कई स्थल इस ग्रन्थमें निकले जिनके विषयमें मुझे दूसरी प्रतियोंके पाठ मिलाने पड़े और 'पद्मयान क्या है' इस विषयका एक लेख ही जैन सन्देशमें लिखना पड़ा। पं. के भुज-बली शास्त्रीने मैसूरकी प्रतियोंसे पाठ मिलाने और पं. कुन्दनलालजीने बम्बईकी प्रतियोंसे पाठ मिलानेमें मुझे पर्याप्त सहयोग दिया। पं. रतनलालजी कटारया केकड़ी भी सुयोग्य विद्वान् हैं, आपने हमारा 'पद्मयान' वाला लेख पढ़कर सुझाया कि सिन्धुरारोढुंके स्थानपर शम्भुरारोढुं पाठ होना चाहिए। सम्पादनके लिए उप-लब्ध प्रतियोंमें-से सभीमें 'सिन्धुरारोढुं' पाठ था पर खोज करनेपर मैसूरकी प्रतियोंमें शम्भुरारोढुं पाठ मिल गया और उससे अर्थकी संगति बैठ गयी। और भी एक-दो स्थल ऐसे हैं जिनमें आपने अच्छा विचार व्यक्त

किया है। नारदमुक्ति तथा सम्यग्दृष्टि कृष्णके द्वारा मिथ्यामार्ग चलानेकी बातपर भी आपने मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। इस तरह इन विद्वानोंका मैं आभार मानता हूँ। पं. दरबारीलालजी सत्यभक्त-द्वारा सम्पादित और माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे प्रकाशित मूल हरिवंशपुराण तथा पं. दौलतरामजी और पं. गजाधरलालजी कृत हिन्दी टीकाएँ भी हमारे कार्यमें पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई हैं इसलिए इनके प्रति मैं समादर प्रकट करता हूँ। प्रस्तावना लेखमें श्रीमान् स्वर्गीय नाथूरामजी प्रेमीके 'जैन-साहित्यका इतिहास' से यथेच्छ सहायता ली गयी है अतः उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करता हूँ। महापुराणकी प्रस्तावना प्रेमीजीने रुग्ण रहते हुए भी स्वयं देखी थी। पद्मपुराणकी प्रस्तावनामें काफी विचार पत्रों द्वारा दिये थे पर हरिवंशपुराण की प्रस्तावनाके समय हमें उनका प्रत्यक्ष सहयोग न मिलकर मात्र उनके लेखका परोक्ष सहयोग मिल रहा है इसका हृदयमें दुःख है। किसी भी व्यक्तिको परखने और उसे ऊँचा उठानेकी उनकी उदात्त भावना सम्पर्क-में आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थी। हरिवंशके इस संस्करणको पद्यानुक्रमणिका, शब्दकोष तथा सूक्तिरत्नाकर आदि स्तम्भोंसे अत्यन्त उपयोगी बनानेका प्रयत्न किया गया है। तत्तत्प्रकरणों-में तुलनात्मक टिप्पणोंसे भी इसे उपयोगी बनाया गया है। इस कार्यके लिए श्री डॉ. हीरालालजी, डॉ. ए. एन. उपाध्ये तथा बाबू लक्ष्मीचन्द्रजीने सुझाव और सत्प्रेरणा दी है जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। इतना सुन्दर और सुव्यवस्थित प्रकाशन करनेके लिए भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापक साहू शान्तिप्रसादजी तथा उसकी अध्यक्षा रमारानीजी धन्यवादके पात्र हैं। महापुराण, पद्मपुराण और हरिवंशपुराणको सुसम्पादित करनेकी मेरी चिर-साधना साहूजीकी उदारतासे ही पूर्ण हो सकी है। इसलिए उनके प्रति अपनी श्रद्धा किन शब्दोंमें प्रकट करूँ?

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि आजका वातावरण आर्हत दर्शनके प्रचारके लिए अत्यन्त उपयुक्त है। शंकराचार्यके समयसे लेकर अभी पिछले पचीस-पचास वर्ष पूर्व तकका समय इतना संघर्षपूर्ण समय था कि लोग एक-दूसरेके दर्शन या धर्मकी बातको सुनना ही पाप समझते थे पर सौभाग्यसे अब वह संघर्षमय वातावरण समाप्तप्राय है और धीरे-धीरे बिलकुल ही समाप्त होनेके सम्मुख है। आजका मानव एक-दूसरे दर्शन या धर्मकी बातको सुनने और समझनेके लिए तैयार है। आज आर्हत दर्शनके हीरे-जवाहरात कुन्दकुन्द और समन्तभद्रके अनूठे-अनूठे ग्रन्थ विश्वके सामने रखे जावें तो विश्वके प्रत्येक मानवका अन्त-रात्मा उनके अलौकिक प्रकाशसे जगमगा उठे। आवश्यकता है कि कुन्दकुन्द स्वामीकी अध्यात्मधारा विश्वके रंगमंचपर प्रवाहित की जाये जिससे आजका संताप—सन्त्रस्त मानव उसमें अवगाहन कर सच्ची शान्तिका अनुभव कर सके। आजकी सरकार जिन पंचशीलोंकी स्थापना कर विश्वमें शान्ति स्थापित करना चाहती है, उन पंचशीलोंके सिद्धान्त तथा समाजवाद और निरतिवादके सिद्धान्त आर्हत दर्शनोंमें उनके पुराण, काव्य और कथा-ग्रन्थोंमें कूट-कूट कर भरे हुए हैं। यदि आर्हत दर्शनका अनुयायी समाज अपने दर्शनके प्रकाशनार्थ पंचवर्षीय योजना बना ले और पूरी शक्तिके साथ जुट पड़े तो उसके इतिहासमें एक गणनीय कार्य हो जावेगा। जैनमन्दिरोंके अन्दर लाखों-करोड़ोंकी सम्पत्ति अनावश्यक पड़ी हुई है। यदि जिनेन्द्र देवकी वाणीके प्रचारमें उसीका उपयोग कर लिया जाये तो यह महान् पुण्यका कार्य होगा। मन्दिरोंमें चाँदी-सोनेके बर्तनोंके संग्रह तथा संगमर्मर आदि लगवानेकी अपेक्षा जिनवाणीके प्रचारमें जो द्रव्य खर्च होता है वह लाखगुना अच्छा है—अर्हत धर्मकी सच्ची प्रभावना करनेवाला है।

अन्तमें ग्रन्थकी अगाधता और अपनी अल्पज्ञता तथा व्यस्तताके कारण हुई त्रुटियोंके लिए क्षमा-याचना करता हुआ प्रस्तावना लेख समाप्त करता हूँ।

विनम्र

पन्नालाल जैन

श्रीमज्जिनसेनाचार्यविरचितं

हरिवंशपुराणम्

सर्ग- १

यदु कुल जलधि सुचन्द्र सम, वृष रथचक्र सुनेमि
भव्य कमल दिनकर जयो, जयो जिनेन्द्र सुनेमि ।।१।।
देव शास्त्र गुरुको प्रणमि, बार बार शिर नाय।
श्री हरिवंश पुराणको, भाषा लिखूँ बनाय ।।२।।

जो वादी-प्रतिवादियोंके द्वारा निर्णीत होनेके कारण सिद्ध है, उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य लक्षणसे युक्त जीवादि द्रव्योंको सिद्ध करनेवाला है, और द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अनादि तथा पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा सादि है ऐसा जिन-शासन सदा मंगलरूप है ।।१।। जिनका शुद्ध ज्ञान रूपी प्रकाश सर्वत्र फैल रहा है, जो लोक और अलोकको प्रकाशित करनेके लिए अद्वितीय सूर्य हैं, तथा जो अनन्तचतुष्टय रूपी लक्ष्मीसे सदा वृद्धिगत हैं ऐसे श्री वर्धमान जिनेन्द्रको नमस्कार हो ।।२।। जो सर्वज्ञ हैं, युगके प्रारम्भकी सब व्यवस्थाओंके करनेवाले हैं, तथा जिन्होंने सर्वप्रथम धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति चलायी है उन स्वयंबुद्ध भगवान् वृषभदेवको नमस्कार हो ।।३।। जिन्होंने अपने ही समान आचरण करनेवाला द्वितीय तीर्थ प्रकट किया था तथा जिन्होंने अन्तरंग बहिरंग शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली थी ऐसे उन अजितनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार हो ।।४।। जिन शंभव नाथके भक्त भव्यजन संसार अथवा मोक्ष—दोनों ही स्थानोंमें सुखको प्राप्त हुए थे उन तृतीय शंभवनाथ तीर्थंकरके लिए नमस्कार हो ।।५।। लोगोंको आनन्दित करनेवाले जिन अभिनन्दन नाथने सार्थक नामको धारण करनेवाले चतुर्थ तीर्थकी प्रवृत्ति की थी उन श्री अभिनन्दन जिनेन्द्रके लिए मन-वचन-कायसे नमस्कार हो ।।६।। जिन्होंने विस्तृत अर्थसे सहित पंचम तीर्थकी प्रवृत्ति की थी तथा जो सदा सुमति-सद्बुद्धिके धारक थे उन पंचम सुमतिनाथ तीर्थंकरके लिए नमस्कार हो ।।७।। कमलोंकी प्रभाको जीतनेवाली जिनकी प्रभाने दिशाओंको देदीप्यमान किया था उन छठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रके लिए नमस्कार हो ।।८।। जिन्होंने आत्महितसे सम्पन्न होकर परहितके लिए सप्तम तीर्थकी उत्पत्ति की थी तथा जो स्वयं कृतकृत्य थे उन सुपार्श्वनाथ भगवान्‌के लिए नमस्कार हो ।।९।। जो इन्द्रोंके द्वारा सेवित अष्टम तीर्थके प्रवर्तक एवं रक्षक थे तथा जो चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्तिके धारक थे उन चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रके लिए नमस्कार हो ।।१०।। जिन्होंने अपने शरीर तथा दांतोंकी कान्तिसे कुन्दपुष्पकी कान्तिको परास्त कर दिया था और जो नौवें तीर्थके प्रवर्त्तक थे उन पुष्पदन्त भगवान्‌के लिए नमस्कार हो ।।११।। जो प्राणियोंके सन्तापको दूर करनेवाले उज्ज्वल एवं शीतल

दशवें तीर्थंके कर्ता थे उन कुमार्गके नाशक श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रके लिए नमस्कार हो ॥१२॥ जिन्होंने श्री शीतलनाथ भगवान्‌के मोक्ष जानेके बाद व्युच्छित्तिको प्राप्त तीर्थंको प्रकट कर भव्य-जीवोंका संसार नष्ट किया था तथा जो ग्यारहवें जिनेन्द्र थे उन श्री श्रेयांसनाथ भगवान्‌के लिए नमस्कार हो ॥१३॥ जिन्होंने कुतीर्थरूपी अन्धकारको नष्ट कर बारहवाँ उज्ज्वल तीर्थ प्रकट किया था तथा जो सबके स्वामी थे ऐसे उन वासुपूज्य भगवान् रूपी सूर्यको नमस्कार हो ॥१४॥ जिन्होंने कुमार्ग रूपी मलसे मलिन संसारको तेरहवें तीर्थंके द्वारा निर्मल किया था उन विमलनाथ भगवान्‌को नमस्कार हो ॥१५॥ जो चौदहवें तीर्थंके कर्ता थे तथा जिन्होंने अनन्त अर्थात् संसारको जीत लिया था और जो मिथ्या धर्म रूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यके समान थे उन अनन्तनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार हो ॥१६॥ जो अधर्मके मार्गसे पाताल-नरकमें पड़नेवाले प्राणियोंका उद्धार करनेमें समर्थ पन्द्रहवें तीर्थंके कर्ता थे उन श्री धर्मनाथ मुनीन्द्रके लिए नमस्कार हो ॥१७॥ जो सोलहवें तीर्थंके कर्ता थे, जिन्होंने अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि नाना ईतियोंको शान्त किया था, जो चक्ररत्नके स्वामी थे, और स्वयं अत्यन्त शान्त थे उन शान्तिनाथ जिनेन्द्रके लिए नमस्कार हो ॥१८॥ जिन्होंने सत्रहवाँ तीर्थ प्रवृत्त किया था, जो विशाल कीर्तिके धारक थे, तथा जो जिनेन्द्र होनेके पूर्व चक्ररत्नको प्रवृत्त करनेवाले—चक्रवर्ती थे उन श्री कुन्थु जिनेन्द्रको नमस्कार हो ॥१९॥ जो अठारहवें तीर्थंकर थे, प्राणियोंका कल्याण करनेवाले थे, और जिन्होंने पापरूपी शत्रुको नष्ट कर दिया था उन चक्ररत्नके धारक भी अरनाथ जिनेन्द्रके लिए नमस्कार हो ॥२०॥ जिन्होंने उन्नीसवें तीर्थंके द्वारा अपनी स्थायी कीर्ति स्थापित की थी, तथा जो मोहरूपी महामल्लको नष्ट करनेके लिए अद्वितीय मल्ल थे ऐसे मल्लिनाथ भगवान्‌के लिए नमस्कार हो ॥२१॥ जिन्होंने अपना बीसवाँ तीर्थं प्रवृत्त कर लोगोंको संसारसे पार किया था उन श्री मुनिसुव्रत भगवान्‌के लिए निरन्तर नमस्कार हो ॥२२॥ जो मुनियोंमें मुख्य थे, जिन्होंने अन्तरंग-बहिरंग शत्रुओंको नम्रीभूत कर दिया था, और जिन्होंने इक्कीसवाँ तीर्थ प्रकट किया था उन नमिनाथ भगवान्‌के लिए नमस्कार हो ॥२३॥ जो सूर्यके समान देदीप्यमान थे, हरिवंशरूपी पर्वतके उत्तम शिखामणि थे, और बाईसवें तीर्थरूपी उत्तम चक्रके नेमि (अयोधारा) स्वरूप थे उन अरिष्टनेमि तीर्थंकरके लिए नमस्कार हो ॥२४॥ जो तेईसवें तीर्थके धर्ता थे तथा जिनके ऊपर पर्वत उठाकर उपद्रव करनेवाला असुर धरणेन्द्रके द्वारा नष्ट किया गया था वे पार्श्वनाथ भगवान् जयवन्त हों ॥२५॥ इस प्रकार इस अवसर्पिणीके तृतीय और चतुर्थ कालमें धर्मतीर्थंकी प्रवृत्ति करनेवाले जो जिनेन्द्र हुए हैं वे सब हम लोगोंकी सिद्धिके लिए हों ॥२६॥ जो भूतकालकी अपेक्षा अनन्त हैं, वर्तमानकी अपेक्षा संख्यात हैं, और भविष्यत्‌की अपेक्षा अनन्तानन्त हैं वे अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—समस्त पंच परमेष्ठी सब जगह तथा सब कालमें मंगलस्वरूप हों ॥२७-२८॥

जो जीवसिद्धि नामक ग्रन्थ (पक्षमें जीवोंकी मुक्ति) के रचयिता हैं तथा जिन्होंने युक्त्यनुशासन नामक ग्रन्थ (पक्षमें हेतुवादके उपदेश) की रचना की है ऐसे श्री समन्तभद्रस्वामीके वचन इस संसारमें भगवान् महावीरके वचनोंके समान विस्तारको प्राप्त हैं ॥२९॥ जिनका ज्ञान संसारमें सर्वत्र प्रसिद्ध है ऐसे श्री सिद्धसेनकी निर्मल सूक्तियाँ श्री ऋषभ जिनेन्द्रकी सूक्तियोंके समान सत्पुरुषोंकी बुद्धिको सदा विकसित करती हैं ॥३०॥ जो इन्द्र, चन्द्र, अर्क और जैनेन्द्र व्याकरणोंका अवलोकन करनेवाली है ऐसी देववन्द्य देवनन्दी आचार्यकी वाणी क्यों नहीं वन्दनीय है ? ॥३१॥ जो हेतु सहित बन्ध और मोक्षका विचार करनेवाली हैं ऐसी श्री वज्रसूरिकी उक्तियाँ धर्मशास्त्रोंका व्याख्यान करनेवाले गणधरोंकी उक्तियोंके समान प्रमाणरूप हैं ॥३२॥ जो मधुर है—माधुर्य गुणसे सहित है (पक्षमें अनुपम रूपसे युक्त है) और शीलालंकारधारिणी है—शीलरूपी अलंकारका

वर्णन करनेवाली है (पक्षमें शीलरूपी अलंकारको धारण करनेवाली है) इस प्रकार सुलोचना—सुन्दर नेत्रोंवाली वनिताके समान, महासेन कविकी सुलोचना नामक कथाका किसने वर्णन नहीं किया है ? अर्थात् सभीने वर्णन किया है ॥३३॥ श्री रविषेणाचार्यकी काव्यमयी मूर्ति सूर्यकी मूर्तिके समान लोकमें अत्यन्त प्रिय है क्योंकि जिम प्रकार सूर्यकी मूर्ति कृतपद्मोदयोद्योता है अर्थात् कमलों-के विकास और उद्योत—प्रकाशको करनेवाली है उसी प्रकार रविषेणाचार्यकी काव्यमयी मूर्ति भी कृतपद्मोदयोद्योता अर्थात् श्री रामके अभ्युदयका प्रकाश करनेवाली है—पद्मपुराणकी रचनाके द्वारा श्री रामके अभ्युदयको निरूपित करनेवाली है और सूर्यकी मूर्ति जिस प्रकार प्रतिदिन परिवर्तित होती रहती है उसी प्रकार रविषेणाचार्यकी काव्यमयी मूर्ति भी प्रतिदिन परिवर्तित—अभ्यस्त होती रहती है ॥३४॥ जिस प्रकार उत्तम स्त्री अपने हस्त-मुख-पाद आदि अंगोंके द्वारा अपने आपके विषयमें मनुष्योंका गाढ़ अनुराग उत्पन्न करती रहती है उसी प्रकार★ श्री वरांग चरितकी अर्थपूर्ण वाणी भी अपने समस्त छन्द-अलंकार रीति आदि अंगोंसे अपने आपके विषयमें किस मनुष्यके गाढ़ अनुरागको उत्पन्न नहीं करती ? ॥३५॥ श्री शान्त (शान्तिषेण) कविकी वक्रोक्ति रूप रचना, रमणीय उत्प्रेक्षाओंके बलसे, मनोहर अर्थके प्रकट होने पर किसके मनको अनुरक्त नहीं करती है ? ॥३६॥ जो गद्य-पद्य सम्बन्धी समस्त विशिष्ट उक्तियोंके विषयमें विशेष अर्थात् तिलकरूप हैं तथा जो विशेषत्रय (ग्रन्थविशेष) का निरूपण करनेवाले हैं ऐसे विशेषवादी कविका विशेषवादीपना सर्वत्र प्रसिद्ध है ॥३७॥ श्री कुमारसेन गुरुका वह यश इस संसारमें समुद्र पर्यन्त सर्वत्र विचरण करता है जो प्रभाचन्द्र नामक शिष्यके उदयसे उज्ज्वल है तथा जो अविजित रूप है—किसीके द्वारा जीता नहीं जा सकता है ॥३८॥ जिन्होंने स्वपक्ष और परपक्षके लोगोंको जीत लिया है तथा जो कवियोंके चक्रवर्ती हैं ऐसे श्री वीरसेन स्वामीकी निर्मल कीर्ति प्रकाशमान हो रही है ॥३९॥ अपरिमित ऐश्वर्यको धारण करनेवाले श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रकी जो गुणस्तुति है वही जिनसेन स्वामीकी कीर्तिको विस्तृत कर रही है ।

भावार्थ—श्री जिनसेन स्वामीने जो पार्श्वाभ्युदय काव्यकी रचना की है वही उनकी कीर्तिको विस्तृत कर रही है ॥४०॥ ★ वर्धमान पुराणरूपी उगते हुए सूर्यकी सूक्तिरूपी किरणें† विद्वज्जनोंके अन्तःकरणरूपी पर्वतोंकी मध्यवर्तिनी स्फटिककी दीवालोंपर देदीप्यमान हैं ॥४१॥ जिस प्रकार स्त्रियोंके मुखोंके द्वारा अपने कानोंमें धारण की हुई आमकी मंजरी निर्गुणा—डोरा-रहित होनेपर भी गुण सौन्दर्य विशेषको धारण करती है उसी प्रकार सत् पुरुषोंके द्वारा श्रवण की हुई निर्गुणा—गुण-रहित रचना भी गुणोंको धारण करती है । भावार्थ—यदि निर्गुण रचनाको भी सत् पुरुष श्रवण करते हैं तो वह गुण सहितके समान जान पड़ती है ॥४२॥

साधु पुरुष याचनाके बिना ही काव्यके दोषोंको दूर कर देता है सो ठीक ही है क्योंकि अग्नि स्वर्णकी कालिमाको दूर हटा ही देती है ॥४३॥ जिस प्रकार समुद्रकी लहरें भीतर पड़े हुए मैलको शीघ्र ही बाहर निकालकर फेंक देती हैं उसी प्रकार सत्पुरुषोंकी सभाएँ किसी कारण काव्यके भीतर आये हुए दोषको शीघ्र ही निकालकर दूर कर देती हैं ॥४४॥ जिस प्रकार समुद्रकी निर्मल सीपोंके द्वारा ग्रहण किया हुआ जल मोतीरूप हो जाता है उसी प्रकार दोषरहित सत्पुरुषों-की सभाओंके द्वारा ग्रहण की हुई जड़ रचना भी उत्तम रचनाके समान देदीप्यमान होने लगती है ॥४५॥ दुर्वचनरूपी विषसे दूषित जिनके मुखोंके भीतर जिह्वाएँ लपलपा रही हैं ऐसे दुर्जनरूपी साँपोंको सज्जनरूपी विषवैद्य अपनी शक्तिसे शीघ्र ही वश कर लेते हैं ॥४६॥ जिस प्रकार मधुर गर्जना करनेवाले मेघ, अत्यधिक धूलिसे युक्त, रूक्ष और तीव्र दाह उत्पन्न करनेवाले ग्रीष्मकालको समय आनेपर शान्त कर देते हैं उसी प्रकार मधुर भाषण करनेवाले सत्पुरुष, अत्यधिक अपराध

करनेवाले, कठोर प्रकृति एवं सन्ताप उत्पन्न करनेवाले दुष्ट पुरुषको समय आनेपर शान्त कर लेते हैं ॥४७॥ जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें, अच्छे और बुरे पदार्थोंको एकाकार करनेमें प्रवृत्त अन्धकारकी राशिको दूर कर देती हैं उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य, सज्जन और दुर्जनके साथ समान प्रवृत्ति करनेमें तत्पर मूर्ख मनुष्यको दूर कर देती हैं ॥४८॥ इस प्रकार साधुओंकी सहायता पाकर मैं रोग और अभिमानसे रहित अपने इस काव्यरूपी शरीरको संसारमें स्थायी करता हूँ ॥४९॥ अब मैं उस हरिवंश पुराणको कहता हूँ जो बद्धमूल है—प्रारम्भिक इतिहाससे सहित (पक्षमें जड़से युक्त है), पृथिवीमें अत्यन्त प्रसिद्ध है, अनेक शाखाओं—कथाओं-उपकथाओंसे विभूषित है, विशाल पुण्यरूपी फलसे युक्त है, पवित्र है, कल्पवृक्षके समान है, उत्कृष्ट है, श्री नेमिनाथ भगवान्‌के चरित्रसे उज्ज्वल है, और मनको हरण करनेवाला है ॥५०–५१॥ जिस प्रकार सूर्यके द्वारा प्रकाशित पदार्थको, अत्यन्त तुच्छ तेजके धारक मणि, दीपक, जुगनू तथा बिजली आदि भी यथायोग्य—अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार बड़े-बड़े विद्वान् महात्माओंके द्वारा प्रकाशित इस पुराणके प्रकाशित करनेमें मेरे जैसा अल्प शक्तिका धारक पुरुष भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रवृत्त हो रहा है ॥५२–५३॥ जिस प्रकार सूर्यका आलोक पाकर मनुष्यका नेत्र दूरवर्ती पदार्थको भी देख लेता है उसी प्रकार पूर्वाचार्यरूपी सूर्यका आलोक पाकर मेरा सुकुमार मन अत्यन्त दूरवर्ती—कालान्तरित पदार्थको भी देखनेमें समर्थ है ॥५४॥ जिसके प्रतिपादनीय पदार्थ–क्षेत्र, द्रव्य, काल, भव और भावके भेदसे पाँच भेदोंमें विभक्त हैं तथा प्रामाणिक पुरुषों—आप्तजनोंने जिसका निरूपण किया है ऐसा आगम नामका प्रमाण, प्रसिद्ध प्रमाण है ॥५५॥ इस तन्त्रके मूलकर्ता स्वयं श्री वर्धमान तीर्थंकर हैं, उनके बाद उत्तर तन्त्रके कर्ता श्री गौतम गणधर हैं, और उनके अनन्तर उत्तरोत्तर तन्त्रके कर्ता क्रमसे अनेक आचार्य हुए हैं सो वे सभी सर्वज्ञके कथनका अनुवाद करनेवाले होनेसे हमारे लिए प्रमाणभूत हैं ॥५६–५७॥ इस पंचमकालमें तीन केवली, पांच चौदह पूर्वके ज्ञाता, पाँच ग्यारह अंगोंके धारक, ग्यारह दशपूर्वके जानकार और चार आचारांगके ज्ञाता इस तरह पाँच प्रकारके मुनि हुए हैं ॥५८–५९॥

श्री वर्धमान जिनेन्द्रके मुखसे श्री इन्द्रभूति (गौतम) गणधरने श्रुतको धारण किया उनसे सुधर्माचार्यने और उनसे जम्बू नामक अन्तिम केवलीने ॥६०॥ उनके बाद क्रमसे १ विष्णु, २ नन्दिमित्र, ३ अपराजित, ४ गोवर्धन, और ५ भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए ॥६१॥ इनके बाद ग्यारह अंग और दशपूर्वके जाननेवाले निम्नलिखित ग्यारह मुनि हुए—१ विशाख, २ प्रोष्ठिल, ३ क्षत्रिय, ४ जय, ५ नाग, ६ सिद्धार्थ, ७ धृतिषेण, ८ विजय, ९ बुद्धिल, १० गंगदेव, और ११ धर्मसेन ॥६२-६३॥ इनके अनन्तर १ नक्षत्र, २ यशःपाल, ३ पाण्डु, ४ ध्रुवसेन और ५ कंसाचार्य ये पाँच मुनि ग्यारह अंगके ज्ञाता हुए ॥६४॥ तदनन्तर १ सुभद्र, २ यशोभद्र, ३ यशोबाहु और लोहार्य ये चार मुनि आचारांगके धारक हुए ॥६५॥ इस प्रकार इन तथा अन्य आचार्योंसे जो आगमका एकदेश विस्तारको प्राप्त हुआ था उसीका यह एकदेश यहाँ कहा जाता है ॥६६॥ यह ग्रन्थ अर्थकी अपेक्षा पूर्व ही है अर्थात् इस ग्रन्थमें जो वर्णन किया गया है वह पूर्वाचार्योंसे प्रसिद्ध ही है परन्तु शास्त्रके विस्तारसे डरनेवाले लोगोंके लिए इसमें संक्षेपसे सारभूत पदार्थोंका संग्रह किया गया है इसलिए इस रचनाकी अपेक्षा यह अपूर्व अर्थात् नवीन है ॥६७॥ जो भव्यजीव मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक सदा इसका अभ्यास करते हुए कथन अथवा श्रवण करेंगे उनके लिए यह पुराण कल्याण करनेवाला होगा ॥६८॥ बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे तप दो प्रकारका कहा गया है सो उन दोनों प्रकारके तपोंमें अज्ञानका विरोधी होनेसे स्वाध्याय परम तप कहा गया है ॥६९॥ यतश्च इस पुराणका अर्थ उत्तम पुरुषार्थोंका करनेवाला है इसलिए देश-कालके ज्ञाता मनुष्योंके लिए मात्सर्यभाव छोड़कर इसका कथन तथा श्रवण करना चाहिए ॥७०॥

इस पुराणमें सर्वप्रथम लोकके आकारका वर्णन, फिर राजवंशोंकी उत्पत्ति, तदनन्तर हरिवंशका अवतार, फिर वसुदेवकी चेष्टाओंका कथन, तदनन्तर नेमिनाथका चरित, द्वारिकाका निर्माण, युद्धका वर्णन और निर्वाण—ये आठ शुभ अधिकार कहे गये हैं ॥७१-७२॥ ये सभी अधिकार संग्रहकी भावनासे संगृहीत अपने अवान्तर अधिकारोंसे अलंकृत हैं तथा पूर्वाचार्यों द्वारा निर्मित शास्त्रोंका अनुसरण करनेवाले मुनियोंके द्वारा गुम्फित हैं ॥७३॥ वस्तुका निरूपण करनेके लिए दो प्रकारकी देशना पायी जाती है एक विभाग रूपसे और दूसरी विस्तार रूप से। इनमें-से यहाँ विभागरूपीय देशनाका निरूपण किया जाता है ॥७४॥ प्रथम ही इस ग्रन्थमें श्री वर्धमान जिनेन्द्रकी धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिका वर्णन है फिर गणधरोंकी संख्या और भगवान्‌के राजगृहमें आगमनका निरूपण है ॥७५॥ तदनन्तर श्रेणिक राजाका गौतम स्वामीसे प्रश्न करना, तदनन्तर क्षेत्र, कालका निरूपण, फिर कुलकरोंकी उत्पत्ति और भगवान् ऋषभदेवकी उत्पत्तिका वर्णन है ॥७६॥ तत्पश्चात् क्षत्रिय आदि वर्णोंका निरूपण, हरिवंशकी उत्पत्तिका कथन और उसी हरिवंशमें भगवान् मुनिसुव्रतके जन्म लेनेका निरूपण है ॥७७॥ तदनन्तर दक्ष प्रजापतिका उल्लेख, वसुका वृत्तान्त, अन्धकवृष्णिके दशकुमारोंका जन्म, सुप्रतिष्ठ मुनिके केवलज्ञानकी उत्पत्ति, राजा अन्धकवृष्णिकी दीक्षा, समुद्रविजयका राज्य, वसुदेवका सौभाग्य, उपायपूर्वक वसुदेवका बाहर निकलना, वहाँ उन्हें सोमा और विजयसेना कन्याओंका लाभ होना, जंगली हाथीका वश करना, श्यामाके साथ वसुदेवका संगम, अंगारक विद्याधरके द्वारा वसुदेवका हरण, चम्पा नगरीमें वसुदेवका छोड़ना, वहाँ गन्धर्वसेनाका लाभ, विष्णुकुमार मुनिका चरित, सेठ चारुदत्तका चरित, उसीको मुनिका दर्शन होना, तथा वसुदेवको सुन्दरी नीलयशा और सोमश्रीका लाभ होनेका वर्णन है ॥७८–८२॥ तदनन्तर वेदोंकी उत्पत्ति, राजा सौदासकी कथा, वसुदेवको कपिला कन्या और पद्मावतीका लाभ, चारुहासिनी और रत्नवतीकी प्राप्ति, सोमदत्तकी पुत्रीका लाभ, वेगवती-का समागम, मदनवेगाका लाभ, बालचन्द्राका अवलोकन, प्रियंसुन्दरीका लाभ, बन्धुमतीका समागम, प्रभावतीकी प्राप्ति, रोहिणीका स्वयंवर, संग्राममें वसुदेवकी जीत और उनका भाइयोंके साथ समागम होनेका कथन है ॥८३–८६॥ तत्पश्चात् बलदेवकी उत्पत्ति, कंसका व्याख्यान, जरासन्धके कहनेसे राजा सिंहरथका बाँधना, कंसको जीवद्यशाकी प्राप्ति होना, पिता उग्रसेनको बन्धनमें डालना, देवकीके साथ वसुदेवका समागम होना, 'देवकीके पुत्रके हाथसे मेरा मरण है' ऐसा श्री सत्यवादी अतिमुक्तक मुनिका आदेश सुन कंसका व्याकुल होना, 'देवकीका प्रसव हमारे घर ही हो' इस प्रकार कंसकी वसुदेवसे प्रार्थना करना, वसुदेवका अतिमुक्तक मुनिसे प्रश्न, देवकीके आठ पुत्रोंके भवान्तर पूछना और भगवान् नेमिनाथके पापापहारी चरितका निरूपण है ॥८७–९०॥ तदनन्तर श्रीकृष्णकी उत्पत्ति, गोकुलमें उनकी बालचेष्टाएँ, बलदेवके उपदेशसे समस्त शास्त्रोंका ग्रहण, धनुष रत्नका चढ़ाना, यमुना में नागको नाथना, घोड़ा, हाथी, चाणूरमल्ल और कंसका वध, उग्रसेनका राज्य, सत्यभामाका पाणिग्रहण, सर्वकुटुम्बियों सहित श्रीकृष्णका परम प्रीतिका अनुभव करना, कंसकी स्त्री जीवद्यशाका विलाप, जरासन्धका क्रोध, रणमें भेजे हुए कालयवनका पराजय, श्रीकृष्णके द्वारा युद्धमें अपराजितका मारा जाना, यादवों-का परम हर्ष और निर्भयताके साथ रहना, पुत्रोत्पत्तिके निमित्त शिवादेवीके सोलह स्वप्न देखना, पतिके द्वारा स्वप्नोंका फल कहा जाना, नेमिनाथ भगवान्‌का जन्म, सुमेरु पर्वतपर उनका जन्मा-भिषेक होना, भगवान् की बालक्रीड़ा और महान् अभ्युदयका विस्तार, जरासन्धका पीछा करना, यादवोंका सागरका आश्रय करना, देवीके द्वारा की हुई मायासे जरासन्धका लौटना, तीन दिनके उपवासका नियम लेकर कृष्णका डाभकी शय्यापर आरूढ़ होना, इन्द्रकी आज्ञासे गौतम नामक देवके द्वारा समुद्रका संकोच करना और कुबेरके द्वारा वहाँ क्षण-भरमें द्वारावती (द्वारिका) नगरी-

की रचना होना इन सबका वर्णन है ॥९१–९९॥ तदनन्तर रुक्मिणीका हरा जाना, देदीप्यमान भानुकुमार और प्रद्युम्नकुमारका जन्म होना, रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नका पूर्वभवके वैरी धूमकेतु असुरके द्वारा हरण होना, विजयार्धमें प्रद्युम्नकी स्थिति, नारदके द्वारा प्रद्युम्नके माता-पिताको इष्ट समाचारकी सूचना देना, प्रद्युम्नको सोलह लाभों तथा प्रज्ञप्ति विद्याकी प्राप्ति होना, राजा कालसंवरके साथ प्रद्युम्नका युद्ध, माता-पिताका मिलाप, शम्बकुमारकी उत्पत्ति, प्रद्युम्नकी बालक्रीड़ा, वसुदेवका प्रद्युम्नसे प्रश्न, प्रद्युम्न द्वारा अपने भ्रमणका वृत्तान्त, सकल यादव कुमारोंका कीर्तन, समाचार पाकर प्रतिशत्रु जरासन्धका कृष्णके प्रति दूत भेजना, यादवोंकी सभामें क्षोभ उत्पन्न होना, दोनों सेनाओंका पास-पास आना, विजयार्ध पर्वतके विद्याधरोंमें क्षोभ उत्पन्न होना, श्री वसुदेवका पराक्रम, अक्षौहिणी दलका प्रमाण, रथी, अतिरथ, समरथ और अर्धरथ राजाओंका निरूपण, जरासन्धके चक्रव्यूहको नष्ट करनेके लिए श्रीकृष्णकी सेनामें गरुड़व्यूह-की रचना होना, बलदेवको सिंहवाहिनी और कृष्णको गरुड़वाहिनी विद्याकी प्राप्ति होना, नेमिके सारथिके रूपमें उनके मामाके पुत्रका आगमन, नेमि, अनावृष्णि तथा अर्जुनके द्वारा चक्रव्यूहका भेदा जाना, पाण्डवोंका कौरवोंके साथ युद्ध, दोनों सेनाओंके अधिपति कृष्ण तथा जरासन्धके महायुद्धका वर्णन है ॥१००–१०८॥

तदनन्तर श्रीकृष्णके चक्ररत्नकी उत्पत्ति होना, जरासन्धका मारा जाना, विद्याधरियोंके द्वारा वसुदेवके लिए श्रीकृष्णकी विजयका समाचार सुनाना, कृष्णका कोटिशिलाका उठाना, वसुदेवका आगमन, श्रीकृष्णका दिग्विजय, दिव्यरत्नोंकी उत्पत्ति, दोनों भाइयोंका राज्याभिषेक, द्रौपदीका हरण, श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवोंके साथ जाकर धातकीखण्डसे द्रौपदीका पुनः वापस लाना, श्रीकृष्णको नेमिनाथकी सामर्थ्यका ज्ञान होना, नेमिनाथकी जलक्रीड़ा, पांचजन्य शंखका बजाना, नेमिनाथके विवाहका आरम्भ, पशुओंका छुड़ाना, दीक्षा लेना, केवलज्ञान उत्पन्न होना, ज्ञानकल्याणकके लिए देवोंका आगमन, समवसरणका निर्माण, राजीमतीका तप धारण करना, सागार और अनगारके भेदसे दो प्रकारके धर्मका उपदेश देना, धर्म-तीर्थोंमें विहार, श्रीकृष्णके छह भाइयोंका संयम धारण करना, नेमिनाथका गिरिनार पर्वतपर आरूढ़ होना, देवकीके प्रश्नका उत्तर देना, रुक्मिणी तथा सत्यभामा आदि आठ महादेवियोंके भवान्तरोंका निरूपण, गजकुमारका जन्म, उनकी दीक्षा और वसुदेवसे भिन्न नौ भाइयोंका संसारसे उद्विग्न हो तपश्चरण करनेका निरूपण है ॥१०९–११६॥

तदनन्तर भगवान् नेमिनाथके द्वारा त्रेसठ शलाकापुरुषोंकी उत्पत्तिका वर्णन, तीर्थंकरोंके अन्तरका विस्तार, बलदेवका प्रश्न, प्रद्युम्नकी दीक्षा, रुक्मिणी आदि कृष्णकी स्त्रियों और पुत्रियोंका संयम ग्रहण करना, द्वीपायन मुनिके क्रोधसे द्वारिका पुरीका विनाश, जिनके भाई, पुत्र तथा स्त्रियाँ जल गयी थीं ऐसे बलराम और कृष्णका द्वारिकासे निकलना, असह्य शोक, कौशाम्बीके वनमें दोनों भाइयोंका जाना, बलभद्रकी रक्षासे रहित श्रीकृष्णका भाग्यवश जरत्कुमारके द्वारा छोड़े हुए वाणसे प्रमादपूर्वक मारा जाना, तदनन्तर मारनेवाले जरत्कुमारका शोक करना, बलरामका दुस्तर शोक, सिद्धार्थ देवके द्वारा प्रतिबोधित होनेपर बलदेवका विरक्त हो दीक्षा धारण करना, ब्रह्मलोकमें जन्म होना, पाण्डवोंका तपके लिए वनको जाना, गिरिनार पर्वतपर नेमिनाथका निर्वाण होना, महान् आत्माके धारक पांच पाण्डवोंका उपसर्ग जीतना, जरत्कुमारकी दीक्षा, उसकी विस्तृत सन्तान, हरिवंशके दीपक राजा जितशत्रुको केवलज्ञान, विशाल लक्ष्मीके धारक राजा श्रेणिकका अन्तमें नगरप्रवेश, श्री वर्धमान जिनेन्द्र और उनके गण-धरोंका निर्वाण और देवोंके द्वारा किया हुआ दीपमालिका महोत्सवका वर्णन है। श्री जिनसेन

स्वामी कहते हैं कि इस पुराणमें इन सबका मैं वर्णन करूंगा ॥११७–१२५॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार हरिवंशपुराणका यह संग्रह सहित अवान्तर विभाग दिखा दिया। अब इसके आगे भव्य सभासद् आत्म-सिद्धिके लिए इसके विस्तारका वर्णन श्रवण करें ॥१२६॥ हे विद्वज्जनो! जब एक ही महापुरुषका चरित पापका नाश करनेवाला है तब समस्त तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों और बलभद्रोंके चरितका निरूपण करनेवाले इस ग्रन्थकी महिमाका क्या कहना है? सो ठीक ही है क्योंकि जब एक ही महामेघका जल अत्यधिक सन्तापको नष्ट करनेवाला है तब लोकमें सर्वत्र व्याप्त मेघ समूहसे पड़नेवाली हजारों जलधाराओंकी महिमाका क्या कहना है? ॥१२७॥ विवेकीजन, लौकिक पुराणरूपी टेढ़े-मेढ़े कुपथके भ्रमणको छोड़, सीधे तथा हित प्राप्त करनेवाले इस पुराणरूपी मार्गको ग्रहण करें। मोहसे भरे हुए दिङ्मूढ मनुष्यको छोड़ अत्यन्त शुद्ध दृष्टिको धारण करनेवाला ऐसा कौन मनुष्य है जो जिनेन्द्रदेवरूपी सूर्यके द्वारा लम्बे-चौड़े मार्गके प्रकाशित होनेपर भी भृगुपात करेगा—किसी पहाड़की चट्टानसे नीचे गिरेगा? अर्थात् कोई नहीं ॥१२८॥

इस प्रकार जिसमें भगवान् अरिष्टनेमिके पुराणका संग्रह किया गया है ऐसे श्री जिनसेनाचार्य विरचित हरिवंशपुराणमें 'संग्रह विभाग वर्णन' नामका प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥१॥

सर्ग- २

अथानन्तर इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें लक्ष्मीसे स्वर्गखण्डकी तुलना करनेवाला, विदेह इस नामसे प्रसिद्ध एक बड़ा विस्तृत देश है ॥१॥ यह देश प्रतिवर्ष उत्पन्न होनेवाले धान्य तथा गोधनसे संचित है, सब प्रकारके उपसर्गोंसे रहित है, प्रजाकी सुखपूर्ण स्थितिसे सुन्दर है और खेट, खर्वट, मटम्ब, पुटभेदन, द्रोणामुख, सुवर्ण, चांदी आदिकी खानों, खेत, ग्राम और घोषोंसे विभूषित है। भावार्थ—जो नगर नदी और पर्वतसे घिरा हो उसे बुद्धिमान् पुरुष खेट कहते हैं, जो केवल पर्वतसे घिरा हो उसे खर्वट कहते हैं। जो पांच सौ गांवोंसे घिरा हो उसे पण्डितजन मटम्ब मानते हैं। जो समुद्रके किनारे हो तथा जहांपर लोग नावोंसे उतरते हैं उसे पतन या पुटभेदन कहते हैं। जो किसी नदीके किनारे बसा हो उसे द्रोणामुख कहते हैं। जहां सोना-चांदी आदि निकलता है उसे खान कहते हैं। अन्न उत्पन्न होनेकी भूमिको क्षेत्र या खेत कहते हैं। जिनमें बाड़से घिरे हुए घर हों, जिनमें अधिकतर शूद्र और किसान लोग रहते हैं तथा जो बाग-बगीचा और मकानोंसे सहित हों उन्हें ग्राम कहते हैं, और जहां अहीर लोग रहते हैं उन्हें घोष कहते हैं। वह विदेह देश इन सबसे विभूषित था ॥२–३॥ उस देशका क्या वर्णन किया जाये जहांके सुखदायी क्षेत्रमें क्षत्रियोंके नायक स्वयं इक्ष्वाकुवंशी राजा स्वर्गसे च्युत हो उत्पन्न होते हैं ॥४॥ उस विदेह देशमें कुण्डपुर नामका एक ऐसा सुन्दर नगर है जो इन्द्रके नेत्रोंकी पंक्तिरूपी कमलिनियोंके समूहसे सुशोभित है तथा सुखरूपी जलका मानो कुण्ड ही है ॥५॥ जहां शंखके समान सफेद एवं शरद् ऋतुके मेघके समान उन्नत महलोंके समूहसे सफेद हुआ आकाश अत्यन्त सुशोभित होता है ॥६॥ जिसके महलोंके अग्र भागमें लगी हुई चन्द्रकान्तमणिकी शिलाएँ रात्रिके समय चन्द्रमारूपी पतिके कर अर्थात् किरण (पक्षमें हाथके) स्पर्शसे स्वेदयुक्त स्त्रियोंके समान द्रवीभूत हो जाती हैं ॥७॥ जहांके मकानोंपर लगे हुए सूर्यकान्तमणिके अग्रभागकी कोटियां, सूर्यरूपी पतिके कर अर्थात् किरण (पक्षमें हाथ) के स्पर्शसे विरक्त स्त्रियोंके समान देदीप्यमान हो उठती हैं ॥८॥ जहांके महलोंके शिखरपर लगे हुए पद्मराग मणियोंकी पंक्ति, सूर्यकी किरणोंके संसर्गसे स्त्रीके समान अत्यन्त अनुरक्त हो जाती है ॥९॥ उस नगरमें कहीं मोतियोंकी मालाएँ लटक रही हैं, कहीं मरकत मणियोंका प्रकाश फैल रहा है, कहीं हीराकी प्रभा फैल रही है और कहीं वैडूर्यमणियोंकी नीली-नीली आभा छिटक रही है। उन सबसे वह एक होनेपर भी सदा सब रत्नोंकी खानकी शोभा धारण करता

है ॥१०॥ कोटरूपी पर्वत, बड़े-बड़े धूलि कुट्टिम, और परिवारसे घिरे हुए उस नगरके ऊपर यदि कोई जा सकता था तो मित्र अर्थात् सूर्यका मण्डल ही जा सकता है, अमित्र अर्थात् शत्रुओंका मण्डल नहीं जा सकता था ॥११॥ इस नगरके गुणोंका वर्णन तो इतनेसे ही पर्याप्त हो जाता है कि वह नगर स्वर्गसे अवतार लेते समय भगवान् महावीरका आधार हुआ—भगवान् महावीर वहाँ स्वर्गसे आकर अवतीर्ण हुए ॥१२॥

राजा सर्वार्थ और रानी श्रीमतीसे उत्पन्न, समस्त पदार्थोंको देखनेवाले, सूर्यके समान देदीप्यमान और समस्त अर्थ-पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाले सिद्धार्थ वहाँके राजा थे ॥१३॥ जिन सिद्धार्थके रक्षा करनेपर पृथिवी इसी एक दोषसे युक्त थी कि वहांकी प्रजाने धर्मकी इच्छुक होनेपर भी परलोकका भय छोड़ दिया था। भावार्थ—जो प्रजा धर्मकी इच्छुक होती है उसे स्वर्ग, नरक आदि परलोकका भय अवश्य रहता है परन्तु वहाँकी प्रजा परलोकका भय छोड़ चुकी थी यह विरोध है परन्तु परलोकका अर्थ शत्रु लोगोंसे विरोध दूर हो जाता है अर्थात् वहांकी प्रजा धर्मकी इच्छुक थी और शत्रुओंके भयसे रहित थी ॥१४॥ जो राजा सिद्धार्थ, साक्षात् भगवान् वर्धमान स्वामीके पितृपदको प्राप्त हुए उनके उत्कृष्ट गुणोंका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है ? ॥१५॥

जो उच्च कुलरूपी पर्वतसे उत्पन्न स्वाभाविक स्नेहकी मानो नदी थी ऐसी रानी प्रियकारिणी लक्ष्मीके समुद्रस्वरूप राजा सिद्धार्थकी प्रिय पत्नी थी ॥१६॥ जिन सात पुत्रियोंने राजा चेटकके चित्तको अत्यधिक स्नेहसे व्याप्त कर रखा था उन पुत्रियोंमें प्रियकारिणी सबसे बड़ी पुत्री थी ॥१७॥ जो अपने पुण्यसे भगवान् महावीरको जन्म देनेके लिए प्रवृत्त हुई उस त्रिशला (प्रियकारिणी) के गुण वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१८॥

अथानन्तर जब सब ओरसे समस्त देवोंकी पंक्तियां नमस्कार कर रही थीं, प्रभावके कारण जब आकाशसे रत्नोंकी वर्षा हो रही थी और भगवान् महावीर जब अपने तीर्थसे प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिए अच्युत स्वर्गके उच्चतम पुष्पोत्तर विमानसे पृथिवीपर अवतीर्ण होनेके लिए उद्यत हुए रानी प्रियकारिणीने उत्तमोत्तम सोलह स्वप्न देखकर गर्भमें गर्भकल्याणकके स्वामी श्री महावीर भगवान्‌को धारण किया ॥१९-२१॥ जब भगवान् गर्भमें आये तब दुःषम-सुषम नामक चतुर्थ कालके पचहत्तर वर्ष साढ़े आठ माह बाकी थे ॥२२॥ आषाढ़ शुक्ला षष्ठीके दिन जब भगवान् महावीर जिनेन्द्रका गर्भावतरण हुआ तब चन्द्रमा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रपर स्थित था ॥२३॥ जिस प्रकार मेघमालाके भीतर छिपा हुआ सूर्य वर्षाऋतुको सुशोभित करता है उसी प्रकार दिक्कुमारियों-के द्वारा कृतशोभ, देदीप्यमान शरीरकी धारक एवं स्थूल स्तनोंको धारण करनेवाली माता प्रियकारिणीको वह प्रच्छन्नगर्भ सुशोभित करता था ॥२४॥

तदनन्तर नौ माह आठ दिनके व्यतीत होनेपर जब चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रपर आया तब भगवान्‌का जन्म हुआ ॥२५॥ तत्पश्चात् अन्तिम जिनेन्द्रके माहात्म्यसे जिनके सिंहासन तथा मुकुट हिल उठे थे एवं अवधिज्ञानसे जिन्होंने उनके जन्मका वृत्तान्त जान लिया था ऐसे इन्द्रोंने उन्हें नमस्कार किया ॥२६॥ भवनवासियोंके यहाँ शंख, व्यन्तरोंके यहाँ भेरी, ज्योतिषियोंके यहाँ सिंह और कल्पवासियोंके यहां घण्टाका शब्द सुनकर जो शीघ्र ही क्षुभित समुद्रके समान शब्द करने लगे थे, जो सात प्रकारकी सेनाओंके महाभेदोंसे सहित थे, स्त्रियों सहित थे तथा जिन्होंने नाना प्रकारके आभूषण धारण कर रखे थे ऐसे चारों निकायके देव कुण्डपुर नगरमें आ पहुँचे ॥२७-२८॥ इन्द्र जिनके आगे-आगे चल रहा था ऐसे देवोंने नगरकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखको धारण करनेवाले जिनेन्द्र देव तथा उनके माता-पिताको नमस्कार

किया ॥२९॥ विनयावनत इन्द्राणीने देवकृत मायासे सोयी हुई माताके समीप विक्रियासे एक दूसरा बालक रख, जिनेन्द्रदेवको उठा इन्द्रके लिए सौंप दिया ॥३०॥ इन्द्रने उन्हें दोनों हाथोंसे ले चिर काल तक उनकी पूजा की ओर विक्रिया निर्मित हजार नेत्ररूपी कमलवनमें उन्हें अर्चित किया ॥३१॥

तदनन्तर इन्द्रने भगवान्‌को उस अत्यन्त ऊँचे ऐरावत हाथीपर विराजमान किया जिसका कि शरीर चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था, जो सुमेरुके शिखरोंके समूहके समान जान पड़ता था और जो नीचेकी ओर मदके निर्झर छोड़ रहा था ॥३२॥ जिसके गण्डस्थलोंपर मदकी सुगन्धिके कारण भ्रमरोंके समूह मँडरा रहे थे और उनसे जो सुमेरुके उस शिखर-समूहके समान जान पड़ता था जो कि ऊपरी भागपर स्थित तमाल वनसे मण्डित था ॥३३॥ जिसके कानोंके समीप लाल-लाल चमरोंके समूह लटक रहे थे और उनसे जो सुमेरुके उस शिखर-समूहके समान जान पड़ता था जिसके कि ऊपरी भागपर लाल-लाल अशोकोंका महावन फूल रहा था ॥३४॥ जिसका शरीर सुर्वणकी सुन्दर सांकलसे वेष्टित था और उससे जो सुमेरुके उस शिखर-समूहके समान जान पड़ता था जिसके कि समीप स्वर्णकी मेखला देदीप्यमान हो रही थी ॥३५॥ जो अनेक दाँतोंपर होनेवाले नृत्य और संगीतसे परिपुष्ट था और उससे जो उस सुमेरुके समान जान पड़ता था जिसकी कि अत्यन्त ऊँचे शिखरोंके अग्र भागपर देवांगनाएँ नृत्य-गायन कर रही थीं ॥३६॥ जिसने अपनी गोल लम्बी तथा चारों ओर घूमनेवाली सूँड़ोंसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त कर रखा था और उनसे जो उस सुमेरुके समान जान पड़ता था जिसके कि समीप अत्यन्त लम्बे-मोटे और फणाओंसे युक्त सांप घूम रहे थे ॥३७॥ जिसके ऊपर ऐशानेन्द्रने बड़ा भारी सफेद छत्र धारण कर रखा था और उससे जो उस सुमेरुके समान जान पड़ता था जिसके कि ऊपर समीप ही पूर्ण चन्द्रमाका मण्डल विद्यमान था ॥३८॥ और जो चमरेन्द्रकी भुजाओंके द्वारा ढोरे हुए चंचल चमरों से सुन्दर था तथा उनसे उस सुमेरुके समूह-के समान जान पड़ता था जो कि चमरी मृगोंके द्वारा उत्क्षिप्त पूँछोंसे सुशोभित था ॥३९॥ इस प्रकार वह इन्द्र आभरणस्वरूप श्री जिनेन्द्र देवको उस ऐरावत हाथीपर विराजमान कर देवोंके साथ सुमेरु पर्वतपर गया ॥४०॥

वहाँ जाकर इन्द्रने सुमेरु पर्वतके अत्यन्त रमणीय पाण्डुकवनमें पाण्डुक नामकी प्रसिद्ध शिलापर जो सिंहासन था उसपर श्री जिन बालकको विराजमान किया, स्वर्णमय कुम्भोंमें भरकर देवों द्वारा लाये हुए क्षीरसागरके जलसे देवोंके साथ उनका अभिषेक किया, वस्त्र, अलंकार तथा माला आदिसे उन्हें अलंकृत कर उनकी स्तुति की, तदनन्तर वापस लाकर माताकी गोदमें विराजमान किया, अन्य यथोचित कार्य किये और उनके माता-पिता राजा सिद्धार्थ तथा रानी प्रियकारिणी को समान आनन्द देनेवाले उन जिन बालककी वर्धमान इस नामसे स्तुति की तदनन्तर वह देवोंके साथ यथास्थान चला गया ॥४१-४४॥ भगवान्‌के जन्मसे पन्द्रह मास पूर्व प्रतिदिन जो रत्नोंकी धाराएँ बरसी थीं उनसे समस्त याचक सन्तुष्ट हो गये थे ॥४५॥ देवोंके द्वारा सेवनीय वर्धमान भगवान् जिस-जिस प्रकार वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे उसी-उसी प्रकार पिता, बन्धुजन तथा तीन लोकके जीवोंका अनुराग वृद्धिको प्राप्त हो रहा था—बढ़ता जाता था ॥४६॥

अथानन्तर सुर, असुर और राजाओंके मुकुटोंकी मालाओंसे जिनके चरण पूजित थे तथा जो देवोपनीत नाना प्रकारके भोगोंसे युक्त थे ऐसे भगवान् महावीर तीस वर्षके हो गये ॥४७॥ फिर भी जिस प्रकार सिंहके कुटिल नखोंके छिद्रोंमें मोती चिर काल तक नहीं ठहर पाते हैं

उसी प्रकार उनका निर्मल चरित्रको धारण करनेवाला चित्त भोगोंमें चिरकार तक नहीं ठहर सका ॥४८॥ किसी समय शान्त चित्तके धारक उन स्वयम्बुद्ध भगवान्को सारस्वत-आदित्य आदि प्रमुख लौकान्तिक देवोंने आकर तथा नमस्कार कर प्रतिबुद्ध किया ॥४९॥ प्रतिबुद्ध—विरक्त होते ही सौधर्मेन्द्र आदि देवोंने आकर ,उनका अभिषेक और पूजन किया। तदनन्तर देवोंके द्वारा उठायी जानेवाली दिव्य पालकीपर सवार होकर वे जबकि चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रपर हो विद्यमान था तब मगसिर वदी दशमीके दिन वनको चले गये ॥५०–५१॥ वहाँ जाकर उन्होंने शरीरसे समस्त वस्त्रमाला तथा आभूषण उतारकर अलग कर दिये और पंच-मुष्टियोंसे केश उखाड़कर वे मुनि हो गये ॥५२॥ भ्रमरोंके समूहके समान काले-काले भगवान्के घुंघराले बालोंके समूहको इन्द्रने उठाकर क्षीरसागरमें क्षेप दिया ॥५३॥ उस समय इन्द्रके द्वारा क्षेपे हुए जिनेन्द्र भगवान्के बालोंके समूहसे रँगा हुआ क्षीरसागर ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्रनील मणियोंके समूहसे ही रँग गया हो ॥५४॥ जिनेन्द्र भगवान्की दीक्षा-कल्याणक देख सन्तोषको प्राप्त हुए समस्त मनुष्य और देव तृतीय कल्याणकको पूजा कर यथा-स्थान चले गये ॥५५॥

तदनन्तर मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञानरूपी महानेत्रों को धारण करने-वाले भगवान्ने बारह वर्ष तक अनशन आदिक बारह प्रकारका तप किया ॥५६॥ तत्पश्चात् गुण समूहरूपी परिग्रहको धारण करनेवाले श्री वर्धमान स्वामी विहार करते हुए ऋजुकूला नदीके तटपर स्थित जृम्भिक गांवके समीप पहुँचे ॥५७॥ वहाँ वैशाख सुदी दशमीके दिन दो दिनके उपवासका नियम कर वे साल वृक्षके समीप स्थित शिलातलपर आतापन योगमें आरूढ़ हुए ॥५८॥ उसी समय जबकि चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें स्थित था तब शुक्लध्यानको धारण करनेवाले वर्धमान जिनेन्द्र घातिया कर्मोंके समूहको नष्ट कर केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥५९॥ केवल-ज्ञानके प्रभावसे सहसा जिनके आसन डोल उठे थे ऐसे समस्त सुर और असुरोंने आकर उनके केवलज्ञानकी महिमा की—ज्ञानकल्याणकका उत्सव किया ॥६०॥ तदनन्तर छयासठ दिन तक मौनसे बिहार करते हुए श्री वर्धमान जिनेन्द्र जगत्प्रसिद्ध राजगृह नगर आये ॥६१॥ वहाँ जिस प्रकार सूर्य उदयाचलपर आरूढ़ होता है उसी प्रकार वे लोगोंको प्रतिबुद्ध करनेके लिए विपुल लक्ष्मीके धारक विपुलाचलपर आरूढ़ हुए ॥६२॥ तदनन्तर जिनेन्द्र भगवान्के आगमनका वृत्तान्त जान चारों ओरसे आनेवाले सुर और असुरोंसे जगत् इस प्रकार भर गया जिस प्रकार कि मानो जिनेन्द्रदेवके गुणोंसे ही भर गया हो ॥६३॥ उस समय सौधर्म आदि देवोंसे घिरा हुआ वह विपुलाचल ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि पहले श्री ऋषभ जिनेन्द्रसे अधिष्ठित कैलास पर्वत सुशोभित होता था ॥६४॥

अथानन्तर देवोंने रत्नमयी ऐसे तीन कोट बनाये जिनकी चारों दिशाओंमें एक-एक प्रमुख द्वार होनेसे बारह गोपुर थे ॥६५॥ एक योजन विस्तारवाला समवसरण बनाया जिसमें आकाश-स्फटिकको दीवालोंवाले बारह विभाग सुशोभित थे ॥६६॥ आठ प्रातिहार्यों और चौंतीस अतिशयों-से सहित भगवान् उस समवसरणमें विराजमान हुए। वहाँ देवोंसे घिरे श्री वर्धमान ग्रहोंसे घिरे चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥६७॥ इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति तथा कौण्डिन्य आदि पण्डित इन्द्रकी प्रेरणासे श्री अरहन्तदेवके समवसरणमें आये ॥६८॥ वे सभी पण्डित अपने पाँच-पाँच सौ शिष्योंसे सहित थे तथा सभीने वस्त्रादिका सम्बन्ध त्यागकर संयम धारण कर लिया ॥६९॥ उसी समय राजा चेटककी पुत्री चन्दना कुमारी, एक स्वच्छ वस्त्र धारण कर आर्यिकाओंमें प्रमुख हो गयी ॥७०॥ राजा श्रेणिक भी अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ समवसरणमें पहुँचा और वहाँ सिंहासनपर

विराजमान श्रीवर्धमान जिनेन्द्रको उसने नमस्कार किया ॥७१॥ जिनेन्द्र भगवान्‌की वह समवसरण भूमि, यथायोग्य स्थानोंपर रखे हुए छत्र, चामर, भृंगार, कलश, ध्वजा, दर्पण, पंखा और ठौना इन आठ प्रसिद्ध मंगल द्रव्योंसे, माला, चक्र, दुकूल, कमल, हाथी, सिंह, वृषभ और गरुड़के चिह्नोंसे युक्त आठ प्रकारकी महाध्वजाओंसे, मानस्तम्भों-स्तूपोंसे, चार महावनोंसे, वापिकाओंमें प्रफुल्लित कमल-समूहोंसे, लताओंके वनोंमें बने हुए लतागृहों—निकुंजोंसे तथा देवोंके द्वारा निर्मित अन्य सभी प्रकारके उन-उन प्रसिद्ध अतिशयोंसे सुशोभित हो रही थी ॥७२–७५॥

अथानन्तर जिस प्रकार चन्द्रमाके समीप गुरु अर्थात् बृहस्पतिसे अधिष्ठित शुक्रादि ग्रह सुशोभित होते हैं उसी प्रकार श्रीवर्धमान जिनेन्द्रके समीप प्रथम कोणमें गुरु अर्थात् अपने-अपने दीक्षागुरुओंसे अधिष्ठित, निर्दोष दिगम्बर मुद्राको धारण करनेवाले अनेक मुनि सुशोभित हो रहे थे ॥७६॥ तदनन्तर द्वितीय कोठामें कल्पलताओंके समान भुजाओंको धारण करनेवाली कल्पवासिनी देवियां स्थित थीं और वे जिनेन्द्रके समीप इस प्रकार सुशोभित हो रही थीं जिस प्रकार कि सुमेरुके समीप भोगभूमियां सुशोभित होती हैं ॥७७॥ तदनन्तर तृतीय कोठामें नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत स्त्रियोंके साथ आर्यिकाओंकी पंक्ति इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि चमकती हुई बिजलियोंसे आलिंगित शरदृऋतुकी मेघपंक्ति सुशोभित होती है ॥७८॥ इनके बाद चतुर्थ कोठामें उज्ज्वल शरीरकी धारक ज्योतिष्क देवोंकी स्त्रियाँ सुशोभित हो रही थीं। वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो समवसरणरूपी सागरमें प्रतिबिम्बित तारा ही हों ॥७९॥ उनके बाद पंचम कोठामें हस्तरूपी कुण्डलोंको धारण करनेवाली व्यन्तर देवोंकी स्त्रियां साक्षात् वनकी लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थीं ॥८०॥ तत्पश्चात् षष्ठ कोठामें नागलोकसे आयी हुई नागवेलके समान उज्ज्वल फणाओंको धारण करनेवाली नागकुमार आदि भवनवासी देवोंकी देवियाँ सुशोभित हो रही थीं ॥८१॥ तदनन्तर सप्तम कोठामें पाताललोकमें रहनेवाले एवं उज्ज्वल वेषके धारक अग्निकुमार आदि दस प्रकारके भवनवासी देव सुशोभित हो रहे थे ॥८२॥ तत्पश्चात् अष्टम कोठामें किन्नर, गन्धर्व, यक्ष तथा किम्पुरुष आदि आठ प्रकारके व्यन्तर देव सुशोभित हो रहे थे ॥८३॥ उसके बाद नवम कोठामें प्रकीर्णक, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह ये पाँच प्रकारके विशाल शरीरके धारक ज्योतिषी देव सुशोभित हो रहे थे ॥८४॥ तदनन्तर दशम कोठामें मुकुट, कुण्डल, केयूर, हार और कटिसूत्रको धारण करनेवाले कल्पवृक्षके समान कल्पवासी देव सुशोभित हो रहे थे। तत्पश्चात् एकादश कोठामें पुत्र, स्त्री आदिसे सहित अनेक विद्याधरोंसे युक्त नाना प्रकारकी भाषा, वेष और कान्तिको धारण करनेवाले मनुष्य बैठे थे ॥८५–८६॥ और उनके बाद द्वादश कोठामें जिनेन्द्र भगवान्‌के प्रभावसे जिन्हें विश्वास उत्पन्न हुआ था तथा जो अत्यन्त शान्तचित्तके धारक थे ऐसे सर्प, नेवला, गजेन्द्र, सिंह, घोड़ा और भैंस आदि नाना प्रकारके तिर्यंच बैठे थे ॥८७॥ इस प्रकार जब बारह कोठोंमें बारह गण, जिनेन्द्र भगवान्‌के चारों ओर प्रदक्षिणा रूपसे परिक्रमा, स्तुति और नमस्कार कर विद्यमान थे तब समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखनेवाले एवं राग, द्वेष और मोह इन तीनों दोषोंका क्षय करनेवाले पापनाशक श्रीजिनेन्द्र देवसे गौतम गणधरने तीर्थकी प्रवृत्ति करनेके लिए पूछा—प्रश्न किया ॥८८–८९॥

तदनन्तर श्रीवर्धमान प्रभुने श्रावण मासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके प्रातःकालके समय अभिजित् नक्षत्रमें समस्त संशयोंको छेदनेवाले, दुन्दुभिके शब्दके समान गम्भीर तथा एक योजन तक फैलनेवाली दिव्यध्वनिके द्वारा शासनकी परम्परा चलानेके लिए उपदेश दिया ॥९०–९१॥ प्रथम ही भगवान् महावीरने आचारांगका उपदेश दिया फिर सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, ज्ञातृधर्मकथांग, श्रावकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिक दशांग, प्रश्न-

व्याकरणांग और पवित्र अर्थसे युक्त विपाकसूत्रांग इन ग्यारह अंगोंका उपदेश दिया ॥९२-९४॥ इसके बाद जिसमें तीन सौ त्रेसठ ऋषियोंका कथन है तथा जिसके पांच भेद हैं ऐसे बारहवें दृष्टिवाद अंगका सर्वदर्शी भगवान्ने निरूपण किया ॥९५॥ जगत्के स्वामी तथा ज्ञानियोंमें अग्रसर श्रीवर्धमान जिनेन्द्रने प्रथम ही परिकर्म, सूत्रगत, प्रथमानुयोग और पूर्वगत भेदोंका वर्णन किया—फिर पूर्वगत भेदके उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद पूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानपूर्व, विद्यानुवादपूर्व, कल्याणपूर्व, प्राणावायपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिन्दुसारपूर्व इन चौदह पूर्वोंका तथा वस्तुओंसे सहित चूलिकाओंका वर्णन किया ॥९६-१००॥ इस प्रकार श्रीजिनेन्द्रदेवने अंगप्रविष्ट तत्त्वका वर्णन कर अंगबाह्यके चौदह भेदोंका वास्तविक वर्णन किया। प्रथम ही उन्होंने सार्थक नामको धारण करनेवाले सामयिक प्रकीर्णकका वर्णन किया तदनन्तर चतुर्विंशति स्तवन, पवित्र वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक तथा जिसमें प्रायः प्रायश्चित्तका वर्णन है ऐसी निषद्यका इन चौदह प्रकीर्णकोंका वर्णन हित करनेमें उद्यत तथा जगत् त्रयके गुरु श्रीवर्धमान जिनेन्द्रने किया ॥१०१-१०५॥ इसके बाद भगवान्ने मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल इन पांच ज्ञानोंका स्वरूप, विषय, फल तथा संख्या बतलायी और साथ ही यह भी बतलाया कि उक्त पांच ज्ञानोंमें प्रारम्भके दो ज्ञान परोक्ष और अन्य तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं ॥१०६॥ तदनन्तर चौदह मार्गणा स्थान, चौदह गुणस्थान और चौदह जीवसमासके द्वारा जीव द्रव्यका उपदेश दिया ॥१०७॥ तत्पश्चात् सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प-बहुत्व इन आठ अनुयोग द्वारोंसे तथा नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपोंसे द्रव्यका निरूपण किया। उन्होंने यह भी बताया कि पुद्गल आदिक द्रव्य अपने-अपने लक्षणोंसे भिन्न-भिन्न हैं और सामान्य रूपसे सभी उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य रूप त्रिलक्षणसे युक्त हैं ॥१०८॥ शुभ-अशुभके भेदसे कर्मबन्धके दो भेद बतलाये, उनके पृथक्-पृथक् कारण समझाये, शुभबन्ध सुख देनेवाला है और अशुभबन्ध दुःख देनेवाला है यह बताया। मोक्षका स्वरूप, मोक्षका कारण और अनन्त ज्ञान आदि आठ गुणोंका प्रकट हो जाना मोक्षका फल है यह सब समझाया ॥१०९॥ जो अनन्त अलोकाकाशके मध्यमें स्थित है तथा जहां बन्ध और मोक्षका फल भोगा जाता है उसे लोक कहते हैं। इस लोकके ऊर्ध्व-मध्य और पातालके भेदसे तीन भेद हैं। लोकके बाहरका जो आकाश है उसे अलोक कहते हैं ॥११०॥ अथानन्तर सप्तऋद्धियोंसे सम्पन्न गौतम गणधरने जिनभाषित पदार्थका श्रवण कर उपांगसहित द्वादशांगरूप श्रुतस्कन्धकी रचना की ॥१११॥ उस समय समवसरणमें जो तीनों लोकोंके जीव बैठे हुए थे वे जिनेन्द्ररूपी सूर्यके वचनरूपी किरणोंका स्पर्श पाकर सोयेसे उठे हुएके समान सुशोभित होने लगे और उनकी मोहरूपी महानिद्रा दूर भाग गयी ॥११२॥ ओठोंके बिना हिलाये ही निकली हुई भगवान्की वाणीने तिर्यंच, मनुष्य तथा देवोंका दृष्टिमोह नष्ट कर दिया था ॥११३॥ तदनन्तर जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कथित तत्त्वार्थ और मार्गका श्रद्धान करना ही जिसका लक्ष है, जो शंका, कांक्षा, निदान आदि दोषोंके अभावसे उज्ज्वल है तथा सम्यग्ज्ञानरूपी अलंकारका स्वामी है ऐसे सम्यग्दर्शनरूपी समीचीन रत्न को समस्त प्राणियोंने अपने कानों तथा हृदय में धारण किया ॥११४-११५॥ काय, इन्द्रियां, गुणस्थान, जीवस्थान, कुल और आयुके भेद तथा योनियोंके नाना विकल्पोंका आगमरूपी चक्षुके द्वारा अच्छी तरह अवलोकन कर बैठने-उठने आदि क्रियाओंमें छह कायके जीवोंके वध-बन्धनादिकका त्याग करना प्रथम अहिंसा

महाव्रत कहलाता है ॥११६–११७॥ राग, द्वेष अथवा मोहके कारण दूसरोंके सन्ताप उत्पन्न करनेवाले जो वचन हैं उनसे निवृत्त होना सो द्वितीय सत्य महाव्रत है ॥११८॥ बिना दिया हुआ परद्रव्य चाहे थोड़ा हो चाहे बहुत उसके ग्रहणका त्याग करना सो तृतीय अचौर्य महाव्रत है ॥११९॥ कृत, कारित और अनुमोदनासे स्त्री-पुरुषका त्याग करना सो चतुर्थ ब्रह्मचर्याणुव्रत कहा गया है ॥१२०॥ परिग्रह के दोषोंसे सहित समस्त बाह्याभ्यन्तरवर्ती परिग्रहोंसे विरक्त होना सो पंचम अपरिग्रह महाव्रत है ॥१२१॥ नेत्रगोचर जीवोंके समूहको बचाकर गमन करनेवाले मुनिके प्रथम ईर्यासमिति होती है। यह ईर्यासमिति व्रतोंमें शुद्धता उत्पन्न करनेवाली मानी गयी है ॥१२२॥ सदा कर्कश और कठोर वचन छोड़कर यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले यतिका धर्मकार्योंमें बोलना भाषा समिति कहलाती है ॥१२३॥ शरीरकी स्थिरताके लिए पिण्डशुद्धिपूर्वक मुनिका जो आहार ग्रहण करना है वह एषणा समिति कहलाती है ॥१२४॥ देखकर योग्य वस्तुका रखना और उठाना सो आदाननिक्षेपण समिति है ॥१२५॥ प्रासुक भूमिपर शरीरके भीतरका मल छोड़ना सो प्रतिष्ठापन समिति है ॥१२६॥ इस प्रकार इन पांच समितियोंका तथा मनोयोग, वचनयोग और काययोगकी शुद्ध प्रवृत्तिरूप तीन गुप्तियोंका पालन करना चाहिए ॥१२७॥ मन और इन्द्रियोंका वश करना, समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यक क्रियाओंका पालन करना, केश लोंच करना, स्नान नहीं करना, एक बार भोजन करना, खड़े-खड़े भोजन करना, वस्त्र धारण नहीं करना, पृथ्वीपर शयन करना, दन्तमल दूर करनेका त्याग करना, बारह प्रकारका तप, बारह प्रकारका संयम, चारित्र, परीषह विजय, बारह अनुप्रेक्षाएं, उत्तम क्षमादि दस धर्म, ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय और तप विनयकी सेवा, इस प्रकार सुर, असुर और मनुष्योंके सम्मुख श्री जिनेन्द्र भगवान्ने कर्मक्षयके कारणभूत जिस मुनिधर्मका वर्णन किया था उसे उन सेकड़ों मनुष्योंने स्वीकृत किया था जो संसारसे भयभीत थे, शुद्ध जातिरूप और कुलको धारण करनेवाले थे तथा सब प्रकारके परिग्रहसे रहित थे ॥१२८–१३२॥ सम्यग्दर्शनसे शुद्ध तथा एक पवित्र वस्त्रको धारण करनेवाली हजारों शुद्ध स्त्रियोंने आर्यिकाके व्रत धारण किये ॥१३३॥ कितने ही स्त्री-पुरुषोंने पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये श्रावकके बारह व्रत धारण किये ॥१३४॥ तिर्यंचोंने भी यथाशक्ति नियम धारण किये और देव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा जिन पूजामें लीन हुए ॥१३५॥ राजा श्रेणिकने पहले बहुत आरम्भ और परिग्रहके कारण तमस्तमः नामक सातवें नरकको जो उत्कृष्ट स्थिति बांध रखी थी उसे क्षायिक सम्यग्दर्शनके प्रभावसे प्रथम पृथ्वी सम्बन्धी चौरासी हजार वर्षकी मध्यम स्थितिरूप कर दिया ॥१३६–१३७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि कहां तो तैंतीस सागर और कहां यह जघन्य स्थिति ? अहो, क्षायिक सम्यग्दर्शनका यह अद्‍भुत लोकोत्तर माहात्म्य है ॥१३८॥ राजा श्रेणिकके अक्रूर, वारिषेण और अभयकुमार आदि पुत्रोंने, इनकी माताओंने तथा अन्तःपुरकी अन्य अनेक स्त्रियोंने सम्यग्दर्शन, शील, दान, प्रोषध और पूजनका नियम लेकर त्रिजगद्‍गुरु श्री वर्धमान जिनेन्द्रको नमस्कार किया॥१३९–१४०॥

तदनन्तर इन्द्र, स्तुतिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर अपने परिवारके साथ यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१४१॥ भावों की उत्तम श्रेणीपर आरूढ़ हुआ राजा श्रेणिक भी श्री वर्धमान जिनेन्द्रकी स्तुति कर तथा नमस्कार कर सन्तुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१४२॥ जिस प्रकार समुद्रकी बेला क्षोभको प्राप्त हुए नदीके पूरोंसे सुशोभित हो जाती है उसी प्रकार उस समय वह सभा भीतर प्रवेश करते तथा बाहर निकलते हुए जन-समूहोंसे क्षुभित हो रही थी ॥१४३॥ अर्हन्त भगवान्का वह सभामण्डल मनुष्योंसे सदा व्याप्त ही दिखाई देता था सो ठीक

ही है क्योंकि सूर्यमण्डल अपनी विस्तृत किरणोंसे कब रहित होता है? अर्थात् कभी नहीं ॥१४४॥ वहाँ धर्मचक्र और भामण्डलकी कान्तिके कारण सूर्यबिम्बके उदय-अस्तका पता नहीं चलता था ॥१४५॥ वहाँ विपुलाचलपर धर्मोपदेश करनेवाले श्री तीर्थंकर भगवान्‌की राजा श्रेणिक प्रतिदिन सेवा करता था अर्थात् वह प्रतिदिन आकर उनका धर्मोपदेश श्रवण करता था सो ठीक ही है क्योंकि त्रिवर्गके सेवनसे किसीको तृप्ति नहीं होती ॥१४६॥ वह राजा श्रेणिक, गौतम गणधरको पाकर उनके उपदेशसे सब अनुयोगोंमें प्रवीण हो गया ॥१४७॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने जिनमें निरन्तर महिमा और उत्सव होते रहते थे ऐसे ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिरोंसे उस राजगृह नगरको भीतर और बाहर व्याप्त कर दिया ॥१४८॥ राजाके भक्त सामन्त, महामन्त्री, पुरोहित तथा प्रजाके अन्य लोगोंने समस्त मगध देशको जिनमन्दिरोंसे युक्त कर दिया ॥१४९॥ वहाँ नगर, ग्राम, घोष, पर्वतोंके अग्रभाग, नदियोंके तट और वनोंके अन्त प्रदेशोंमें—सर्वत्र जिन मन्दिर ही जिनमन्दिर दिखाई देते थे ॥१५०॥ इस प्रकार जो महान् अभ्युदयमें स्थित थे, मोहरूपी अन्धकारकी उन्नतिको नष्ट कर रहे थे, मिथ्याज्ञानरूपी हिमका अन्त करनेवाले थे तथा ज्ञानरूपी प्रभामण्डलसे सहित थे ऐसे श्री वर्धमान जिनेन्द्ररूपी सूर्यने पूर्व देशकी प्रजाके साथ-साथ मगध देशकी प्रजाको प्रबुद्ध कर मध्याह्नकी शोभा धारण करनेवाले विशाल मध्य देशकी ओर उसी पूर्वोक्त विभूतिके साथ गमन किया ॥१५१॥

इस प्रकार जिसमें भगवान् अरिष्टनेमिके पुराणका संग्रह किया गया है ऐसे श्रीजिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें 'धर्मतीर्थ प्रवर्तन' नामका दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥२॥

□

अथानन्तर श्री वर्धमान जिनेन्द्रके द्वारा मध्यदेशके धर्म तीर्थकी प्रवृत्ति होनेपर समस्त देशोंमें तीर्थ विषयक मोह दूर हो गया अर्थात् धर्मके विषयमें लोगोंका जो अज्ञान था वह दूर हो गया ॥१॥ जिस प्रकार संसारमें अगस्त्य नक्षत्रका उदय होनेपर मलिन तालाब स्वच्छताको प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार जिनेन्द्रदेवका उदय होनेपर लोगोंके कलुषित हृदय स्वच्छताको प्राप्त हो गये ॥२॥ जिस प्रकार पहले भव्यवत्सल भगवान् ऋषभदेवने अनेक देशोंमें विहार कर उन्हें धर्मसे युक्त किया था उसी प्रकार भगवान् महावीरने भी वैभवके साथ विहार कर मध्यके काशी, कौशल, कौशल्य, कुसन्ध्य, अस्वष्ट, साल्व, त्रिगर्त, पंचाल, भद्रकार, पटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन और वृकार्थक, समुद्रतटके कलिंग, कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कम्बोज, बाह्लीक, यवन, सिन्धु, गान्धार, सौवीर, सूर, भीरु, दरोरुक, वाडवान, भरद्वाज और क्वाथतोष, तथा उत्तर दिशाके तार्ण, कार्ण और प्रच्छाल आदि देशोंको धर्मसे युक्त किया था ॥३–७॥ केवल ज्ञानरूपी प्रभाको फैलानेवाले श्री जिनेन्द्ररूपी सूर्यके प्रकाशमान होनेपर नाना मिथ्याधर्मरूपी जुगुनुओंके ठाट-बाट कहाँ विलीन हो गये थे यह नहीं जान पड़ता था ॥८॥ उस समय जिन लोगोंने श्री वर्धमान जिनेन्द्रके शरीरका साक्षात् दर्शन किया था, उनकी दिव्यध्वनिका साक्षात् श्रवण किया था तथा उनके वैभवका साक्षात् अवलोकन किया था तथा उनकी अन्य पुरुषोंके वचनोंमें आसक्ति नहीं रह गयी थी ॥९॥ निरन्तर मलमूत्रसे रहित शरीर, स्वेदका अभाव, गो दुग्धके समान सफेद रुधिर, वज्रवृषभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान, अत्यन्त सुन्दर रूप, अतिशय सुगन्धता, एक हजार आठ लक्षण युक्त शरीर, अनन्त बल और हितमित प्रिय वचन इन पवित्र दस अतिशयोंसे तो वे जन्मसे ही सुशोभित थे,परन्तु केवलज्ञान होनेपर निमेष उन्मेषसे रहित अत्यन्त शान्त विशाल लोचन, अत्यन्त व्यवस्थित अर्थात् वृद्धिसे रहित कान्तिपूर्ण नख और केशोंसे शोभित होना, कवलाहारका अभाव, वृद्धावस्थाका न होना, शरीरकी छाया नहीं पड़ना, परम कान्तियुक्त मुखका एक होनेपर भी चारों ओर दिखाई देना, दो सौ योजन तककी पृथ्वीमें सुभिक्ष होना, उपसर्गका अभाव, प्राणिपीड़ा अर्थात् अदयाका अभाव, आकाशगमन और सब विद्याओंका स्वामित्वपना, कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए केवलज्ञानके इन दस अतिशयोंसे और भी अधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे। उस समय देखा अथवा सुना गया जिनेन्द्र भगवान्का शरीर जगत्के जीवोंको सुख उत्पन्न कर रहा था ॥१०–१५॥ सर्वभाषारूप परिणमन करनेवाली अमृतकी धाराके समान भगवान्की अर्द्ध-मागधी भाषाका कर्णपुटोंसे पान करते हुए तीन लोकके जीव सन्तुष्ट हो गये ॥१६॥ जो परस्पर-की गन्ध सहन करनेमें भी असमर्थ थे ऐसे शत्रुरूप प्राणियोंमें पृथ्वीतलपर सर्वत्र गहरी मित्रता हो गयी ॥१७॥ जिनमें समस्त वृक्ष निरन्तर फल और फूलोंसे नम्रीभूत हो रहे थे ऐसी छहों ऋतुएं 'मैं पहले पहुँचूं, मैं पहले पहुँचूं' इस भावनासे ही मानो एक साथ आकर उनकी सेवा कर रही थीं ॥१८॥ सर्वरत्नमयी तथा निर्मल दर्पणतलके समान उज्ज्वल पृथ्वीरूपी स्त्री ऐसी

सुशोभित हो रही थी मानो जिनेन्द्र भगवान्‌के लिए अपने अन्तःकरणकी विशुद्धता ही दिखला रही हो ।।१९।। शरीरमें सुखकर स्पर्श उत्पन्न करनेवाली विहारके अनुकूल— मन्द सुगन्धित वायु बह रही थी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान्‌की सेवा ही कर रही हो ।।२०।। उस समय परोपकारके लिए उत्कृष्ट बन्धुस्वरूप श्री जिनेन्द्र भगवान्‌के विहार करनेपर जगत्‌के समस्त जीवोंको परम आनन्द हो रहा था ।।२१।। वायुकुमारके देव, एक योजनके भीतरकी पृथिवीको कण्टक, पाषाण तथा कीड़े-मकोड़े आदिसे रहित कर रहे थे ।।२२।। उनके बाद ही जोरकी गर्जना करनेवाले स्तनितकुमार नामक देव मेघका रूप धारण कर शुभ सुगन्धित जलकी वर्षा कर रहे थे ।।२३।। भगवान् पृथिवीके समान आकाशमार्गसे चल रहे थे तथा उनके चरण-कमल पद-पदपर खिले हुए सात-सात कमलोंसे पूजित हो रहे थे। **भावार्थ**—विहार करते समय भगवान्‌के चरण-कमलोंके आगे-और पीछे सात-सात तथा चरणोंके नीचे एक इस प्रकार पन्द्रह कमलोंकी पन्द्रह श्रेणियाँ रची जाती थीं उनमें सब मिलाकर दो सौ पचीस कमल रहते थे ।।२४।। फलोंसे सुशोभित शालि आदि धान्योंके समूहसे पृथिवी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जिनेन्द्र-दर्शनसे उत्पन्न हुए हर्षसे उसके रोमांच ही निकल आये हों ।।२५।। मेघोंके आवरणसे रहित आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वह जिनेन्द्रदेवके केवलज्ञानकी निर्मलताका ही अनुकरण कर रहा हो ।।२६।। जिस प्रकार रजोधर्मसे रहित होनेके कारण निर्मलता—शुद्धताको धारण करनेवाली स्त्रियाँ रात-दिन अपने पतिकी उपासना करती हैं उसी प्रकार रज अर्थात् धूलिसे रहित होनेके कारण उज्ज्वलताको धारण करनेवाली दिशाएँ भगवान्‌की उपासना कर रही थीं ।।२७।। इन्द्रकी आज्ञासे देव लोग, सब ओर जिनेन्द्रदेवके धर्मदानकी घोषणा करते हुए अन्य लोगोंको बुला रहे थे ।।२८।। विहार करते हों चाहे खड़े हों प्रत्येक दशामें श्रीजिनेन्द्रके आगे, सूर्यके समान कान्तिवाला तथा अपनी दीप्तिसे हजार आरेवाले चक्रवर्तीके चक्ररत्नकी हँसी उड़ाता हुआ धर्मचक्र शोभायमान रहता था ।।२९।। इस प्रकार देवकृत चौदह अतिशयों और ध्वजाओं सहित अष्ट मंगल द्रव्योंसे युक्त श्रीमहावीर जिनेन्द्र पृथिवीपर विहार करते थे ।।३०।।

अष्ट प्रातिहार्योंमें प्रथम प्रातिहार्य अशोकवृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अशोकवृक्षकी शोभाके बहाने समस्त संसार अथवा आकाश ही भगवान्‌को नमस्कार कर रहा हो इससे अधिक और महत्त्व क्या हो सकता है ? ।।३१।। नम्रीभूत शिरको धारण करनेवाले देव लोग अपने हाथोंसे जो पुष्प-वृष्टियाँ छोड़ रहे थे उनसे समस्त दिशाओंकी भूमियाँ सुशोभित हो रही थीं ।।३२।। चारों दिशाओंमें देवों द्वारा चौंसठ चमरोंसे वीजित भगवान् उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि पड़ती हुई गंगाकी तरंगोंसे हिमगिरि सुशोभित होता है ।।३३।। जिसने रात-दिनका अन्तर दूर कर दिया था ऐसा भगवान्‌का भामण्डल, अपने तेजसे सूर्य मण्डलको अभिभूत कर—दबाकर सुशोभित हो रहा था ।।३४।। देवोंके मार्ग अर्थात् आकाशमें दुन्दुभियोंका शब्द इस गम्भीरतासे फैल रहा था मानो वह संसारमें इस बातकी घोषणा ही कर रहा था कि श्रीजिनेन्द्रदेव कर्मरूपी शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर चुके हैं ।।३५।। जिसमें एक छत्र लगाया जाता है ऐसे पृथिवीके ऐश्वर्यको त्याग करनेवाले भगवान्‌के छत्रत्रयसे युक्त तीन लोकका ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ऐसा जान पड़ता था ।।३६।। यतश्च भगवान्‌ने राजाओंके समूहसे घिरा हुआ सिंहासन छोड़ दिया था इसलिए उन्हें इन्द्रोंसे घिरा हुआ दूसरा सिंहासन प्राप्त हुआ था ।।३७।। जो धर्मका उपदेश देनेके लिए एक योजन तक फैल रही थी तथा जो चित्त और कानोंके लिए रसायनके समान थी ऐसी भगवान्‌की दिव्यध्वनि तीनों जगत्‌को पवित्र कर रही थी ।।३८।। इस प्रकार प्रातिहार्य आदि विभवके साथ अनेक देशोंमें विहार कर देवोंके द्वारा पूजित होते हुए भगवान्

महावीर फिरसे मगध देशमें आये ॥३९॥ वे भगवान् सप्त ऋद्धिरूपी सम्पदाको प्राप्त करनेवाले एवं समस्त श्रुतके पारगामी इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधरोंसे सहित थे ॥४०॥ उन ग्यारह गणधरोंमें प्रथम गणधर इन्द्रभूति थे, द्वितीय अग्निभूति, तृतीय वायुभूति, चतुर्थ शुचिदत्त, पंचम सुधर्म, षष्ठ माण्डव्य, सप्तम मौर्यपुत्र, अष्टम अकम्पन, नवम अचल, दशम मेदार्य और अन्तिम प्रभास थे। ये सभी गणधर, तप्त दीप्त आदि तप, ऋद्धिके धारक तथा चार प्रकारकी बुद्धि ऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, अक्षीणऋद्धि, औषधिऋद्धि, रसऋद्धि और बलऋद्धिसे सम्पन्न थे ॥४१–४४॥ इनमें-से प्रारम्भके पाँच गणधरोंकी गण—शिष्य संख्या, प्रत्येककी दो हजार एक सौ तीस, उसके आगे छठे और सातवें गणधरकी गण संख्या प्रत्येककी चार सौ पचीस, तदनन्तर शेष चार गणधरोंकी गण संख्या प्रत्येककी छह सौ पचीस। इस प्रकार ग्यारह गणधरोंकी शिष्य संख्या चौदह हजार थी ॥४५–४६॥ इन चौदह हजार शिष्योंमें तीन सौ पूर्वके धारी, नौ सौ विक्रिया-ऋद्धिके धारक, तेरह सौ अवधिज्ञानी, सात सौ केवलज्ञानी, पांच सौ विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानके धारक, चार सौ परवादियोंको जीतनेवाले वादी और नौ हजार नौ सौ शिक्षक थे। इस प्रकार श्रीजिनेन्द्र देवका, ग्यारह गणधरोंसे सहित चौदह हजार मुनियोंका संघ, नदियोंके प्रवाहसे सहित समुद्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥४७–५०॥ इस तरह जगत्को विस्मयमें डालनेवाली आर्हन्त्य लक्ष्मीसे सहित श्रीवर्धमान जिनेन्द्र उस राजगृह नगरमें आये जो लक्ष्मीका मानो घर था और जिसमें अनेक उत्तमोत्तम घर सुशोभित हो रहे थे ॥५१॥ राजगृह नगरमें पाँच शैल हैं इसलिए उसका दूसरा नाम पंचशैलपुर भी है। यह श्री मुनिसुव्रत भगवान्के जन्मसे पवित्र है, शत्रु-सेनाओंके लिए दुर्गम है एवं पांच पर्वतोंसे सुशोभित है ॥५२॥ पांचों पर्वतोंमें प्रथम पर्वतका नाम ऋषिगिरि है, यह चौकोर, झरते हुए निर्झरनोंसे सुशोभित है तथा ऐरावत हाथीके समान पूर्व दिशाको अत्यन्त सुशोभित कर रहा है ॥५३॥ वैभार नामका दूसरा पर्वत दक्षिण दिशामें है तथा त्रिकोण आकृतिका धारक है। तीसरा पर्वत विपुलाचल है यह दक्षिण और पश्चिम दिशाके मध्यमें स्थित है और वैभारगिरिके समान त्रिकोण आकृतिवाला है ॥५४॥ चौथा पर्वत वलाहक है वह डोरीसहित धनुषके आकार है तथा तीन दिशाओंको व्याप्त कर स्थित है और पांचवां पर्वत पाण्डुक है यह गोल है तथा पूर्व और उत्तर दिशाके अन्तरालमें सुशोभित है ॥५५॥ ये सभी पर्वत, फल और फूलोंके भारसे नम्रीभूत लताओंसे सुशोभित हैं और पड़ते हुए निर्झरोंके समूहसे मनोहर हैं ॥५६॥ केवल वासुपूज्य जिनेन्द्रको छोड़कर अन्य समस्त तीर्थंकरोंके समवसरणोंसे इन पाँचों पर्वतोंके बड़े-बड़े वन-प्रदेश पवित्र हुए हैं ॥५७॥ वे वन-प्रदेश तीर्थयात्राके लिए आये हुए अनेक भव्यजीवोंके समूहसे सेवित तथा नाना प्रकारके अतिशयोंसे सम्बद्ध सिद्धक्षेत्रोंसे पवित्र हैं ॥५८॥

अथानन्तर जहां इन्द्रने पहलेसे ही समवसरणकी सम्पूर्ण रचना कर रखी थी ऐसे विपुलाचल पर्वतपर विशाल ऐश्वर्यके धारक श्रीवर्धमान जिनेन्द्र जाकर विराजमान हुए ॥५९॥ उस समय सौधर्म आदि देव और श्रेणिक आदि मनुष्योंके सब ओर स्थित होनेपर देव और मनुष्योंसे व्याप्त हुआ वह पर्वत अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥६०॥ ऋद्धियोंको धारण करनेवाले ऋषि श्रीजिनेन्द्र भगवान्के समीप सबसे पहले बैठे। उनके बाद कषायोंका अन्त करनेवाले यति, अतीन्द्रिय पदार्थोंका अवलोकन करनेवाले—प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनि और संख्यात अनगार बैठे, इस तरह ग्यारह गणधरोंके सहित चौदह हजार मुनि, पैंतीस हजार आर्यिकाएँ, एक लाख श्रावक, तीस लाख श्राविकाएँ, चारों प्रकारके देव और देवियां तथा तिर्यंच ये सब यथास्थान बैठे। इन सब बारह सभाओंसे वेष्टित भगवान् अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥६१–६४॥

तदनन्तर जब धर्मश्रवण करनेकी इच्छासे तीनों लोकोंके जीव यथास्थान स्थित हो गये

तब गणधरके प्रश्नपूर्वक श्रीतीर्थंकर भगवान्ने धर्मका उपदेश आरम्भ किया ॥६५॥ उन्होंने कहा कि सामान्य रूपसे सिद्ध और संसारीके भेदसे जीवके दो भेद हैं तथा दोनों ही भेद उपयोगरूप लक्षणसे युक्त हैं और विशेषकी अपेक्षा दोनों ही अनन्तानन्त भेदोंको धारण करनेवाले हैं ॥६६॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी उपायके द्वारा जिन्होंने प्राप्त करने योग्य मुक्तिको प्राप्त कर लिया है तथा जो स्वरूपको प्राप्त कर सिद्धिक्षेत्र-लोकके अग्रभागपर तनुवात-वलयमें स्थित हो गये हैं वे सिद्ध कहलाते हैं ॥६७॥ ये पांच प्रकारका ज्ञानावरण, नौ प्रकारका दर्शनावरण, साता-असाताके भेदसे दो प्रकारका वेदनीय, अट्ठाईस प्रकारका मोहनीय, चार आयु, बयालीस प्रकारका नाम, दो प्रकारका गोत्र और पांच प्रकारका अन्तराय कर्म नष्ट कर अनन्त पूर्वसिद्धोंमें समाविष्ट हो तीन लोकके अग्रभागपर विराजमान रहते हैं ॥६८–७१॥ सम्यक्त्व, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अत्यन्त सूक्ष्मत्व, स्वाभाविक अवगाहनत्व, अव्याबाध अनन्तसुख और अगुरुलघु इन आठ प्रसिद्ध गुणोंसे सहित हैं, असंख्यात प्रदेशी हैं, पुद्‌गल सम्बन्धी वर्णादि बीस गुणोंके नष्ट होनेसे अमूर्तिक हैं, अन्तिम शरीरसे किंचित् न्यून आकारके धारक हैं, मोमके सांचेके भीतर स्थित आकाशके समान हैं, जन्म-जरा-मरण, अनिष्ट, संयोग, इष्ट वियोग तथा क्षुधा, तृष्णा, बीमारी आदिसे उत्पन्न समस्त दुःखोंसे रहित हैं तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावके भेदसे पांच प्रकारके परिवर्तनोंसे रहित होनेके कारण सुख स्वरूप हैं ॥७२–७७॥ असिद्ध अर्थात् संसारी जीव असंयत, संयतासंयत और संयतके भेदसे तीन प्रकारके माने गये हैं। इनमें-से असंयत अवस्था तो प्रारम्भके चार गुणस्थानोंमें है, संयतासंयत अवस्था पंचम गुणस्थानमें है और संयत अवस्था छठे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तक नौ गुणस्थानोंमें है ॥७८॥ पारिणामिक भावोंमें स्थित रहनेवाला जीव मोहनीय कर्मके उदय, क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशमके निमित्तसे गुणस्थानोंमें प्रवृत्त होता है ॥७९॥ गुणस्थान चौदह हैं, उनमें-से प्रथम गुणस्थान मिथ्यादृष्टि है जो कि सार्थक नामको धारण करनेवाला है, दूसरा सासादन, तीसरा मिश्र, चौथा असंयत सम्यग्दृष्टि, पांचवां संयतासंयत, छठा प्रमत्त संयत, सातवां अप्रमत्त संयत, आठवां अपूर्वकरण, नौवां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय, ग्यारहवां उपशान्त कषाय, बारहवाँ क्षीणमोह, तेरहवां सयोगकेवली और चौदहवां अयोगकेवली है। इनमें-से उपशान्त कषायके पूर्ववर्ती अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती उपशमक और क्षपक दोनों प्रकारके होते हैं ॥८०–८३॥ छठेसे लेकर चौदहवें तक नौ गुणस्थानोंमें रहनेवाले मनुष्योंमें बाह्यरूपकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है। सब निर्ग्रन्थमुद्राके धारक हैं परन्तु आत्माकी विशुद्धताकी अपेक्षासे उनमें भेद है। जैसे-जैसे ऊपर बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे ही उनमें विशुद्धता बढ़ती जाती है ॥८४॥ प्रथमसे लेकर संयतासंयत नामक पांचवें गुणस्थान तक जिस प्रकार रूप—बाह्यवेषकी अपेक्षा भेद है उसी प्रकार आत्म-विशुद्धिकी अपेक्षा भी भेद है ॥८५॥ इन गुणस्थानोंमें-से सबसे अधिक सुख तो क्षायिक लब्धियोंको प्राप्त करनेवाले सयोगकेवली और अयोग केवलीके होता है। इनका सुख अन्त रहित होता है तथा इन्द्रिय सम्बन्धी विषयोंसे उत्पन्न नहीं होता ॥८६॥ उनके बाद उपशमक अथवा क्षपक दोनों प्रकारके अपूर्वकरणादि जीवोंके, कषायोंके उपशमक अथवा क्षयसे उत्पन्न होनेवाला परम सुख होता है ॥८७॥ तदनन्तर उनसे कम एक निद्रा, पांच इन्द्रियां, चार कषाय, चार विकथा और एक स्नेह इन पन्द्रह प्रमादोंसे रहित अप्रमत्त संयत जीवोंके प्रशम रसरूप सुख होता है ॥८८॥ उनके बाद हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापोंसे विरक्त प्रमत्त संयत जीवोंके शान्तिरूप सुख होता है ॥८९॥ तदनन्तर हिंसा आदि पांच पापोंसे यथाशक्ति एकदेश निवृत्त होनेवाले संयतासंयत जीवोंके महातृष्णापर विजय प्राप्त होनेके कारण सुख होता है ॥९०॥ उनके

बाद अविरत सम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि हिंसादि पापोंसे एकदेश भी विरत नहीं हैं तथापि तत्त्वश्रद्धानसे उत्पन्न सुखका उपभोग करते ही हैं ॥९१॥ उनके पश्चात् परस्पर विरुद्ध सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप परिणामोंको धारण करनेवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्तःकरण सुख और दुःख दोनोंसे मिश्रित रहते हैं ॥९२॥ सम्यग्दर्शनको उगलनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर्भाव उस प्रकारका होता है जिस प्रकारका दूध और घीसे मिश्रित शक्कर खाकर उसकी डकार लेनेवालोंका होता है। भावार्थ—सम्यक्त्वके छूट जानेसे सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंको सुख तो नहीं होता किन्तु सुखका कुछ आभास होता है जिस प्रकार कि दूध, घी, शक्कर आदि खानेवालोंको पीछेसे उसकी डकार द्वारा मधुर रसका आभास मिलता है। उसी प्रकार इनके सुखका आभास जानना चाहिए ॥९३॥ तदनन्तर जो स्वप्नके राज्यके समान बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाले सप्तप्रकृतिक मोहसे अत्यन्त मूढ़ हो रहा है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवको सुख कहाँ प्राप्त हो सकता है ॥९४॥

विशेषार्थ—मोह और योगके निमित्तसे आत्माके परिणामोंमें जो तारतम्य होता है उसे **गुणस्थान** कहते हैं। गुणस्थानके निम्न प्रकार १४ भेद हैं—१ मिथ्यादृष्टि, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ असंयत सम्यग्दृष्टि, ५ संयतासंयत, ६ प्रमत्तसंयत, ७ अप्रमत्त संयत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्म साम्पराय, ११ उपशान्त मोह, १२ क्षीण मोह, १३ संयोगकेवली और १४ अयोगकेवली। इनमें-से प्रारम्भके १२ गुणस्थान मोहके निमित्तसे होते हैं और अन्तके २ गुणस्थान योगके निमित्तसे। मोह कर्मकी १ उदय, २ उपशम, ३ क्षय और ४ क्षयोपशम ऐसी चार अवस्थाएँ संक्षेपमें होती हैं। इन्हींके निमित्तसे जीवके परिणामोंमें तारतम्य उत्पन्न होता है। **उदय**—आबाधा पूर्ण होनेपर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार कर्मोंके निषेकोंका अपना फल देने लगना उदय कहलाता है। **उपशम**—अन्तर्मुहूर्तके लिए कर्म निषेकोंके फल देनेकी शक्तिका अन्तर्हित हो जाना उपशम कहलाता है। जिस प्रकार निर्मली या फिटकिरीके सम्बन्धसे पानीकी कीचड़ नीचे बैठ जाती है और पानी स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्यक्षेत्रादिका अनुकूल निमित्त मिलनेपर कर्मके फल देनेकी शक्ति अन्तर्हित हो जाती है। **क्षय**—कर्म प्रकृतियोंका समूल नष्ट हो जाना क्षय है, जिस प्रकार मलिन पानीमें-से कीचड़के परमाणु बिलकुल दूर हो जानेपर उसमें स्थायी स्वच्छता आ जाती है उसी प्रकार कर्म परमाणुओंके बिलकुल निकल जानेपर आत्मामें स्थायी स्वच्छता उद्भूत हो जाती है। **क्षयोपशम**—वर्तमान कालमें उदय आनेवाले सर्वघाती स्पर्द्धकोंको उदयाभावी क्षय और उन्हींके आगामी कालमें उदय आनेवाले निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम तथा देशघाती प्रकृतिका उदय रहना इसे क्षयोपशम कहते हैं। कर्म प्रकृतियोंकी उदयादि अवस्थाओंमें आत्माके जो भाव होते हैं उन्हें क्रमशः औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। जिसमें कर्मोंकी उक्त अवस्थाएँ कारण नहीं होतीं उन्हें पारिणामिक भाव कहते हैं। अब गुणस्थानोंके संक्षिप्त स्वरूपका निदर्शन किया जाता है—

१. **मिथ्यादृष्टि**—मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियोंके उदयसे जिसकी आत्मामें अतत्त्वश्रद्धान उत्पन्न रहता है उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इस जीवको न स्व-परका भेद ज्ञान होता है, न जिनप्रणीत तत्त्वका श्रद्धान होता है और न आप्त आगम तथा निर्ग्रन्थ गुरुपर विश्वास ही होता है।

२. **सासादन सम्यग्दृष्टि**—सम्यग्दर्शनके कालमें एक समयसे लेकर छह आवली तकका काल बाकी रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभमें-से किसी एकका उदय आ जानेके कारण जो चतुर्थ गुणस्थानसे नीचे आ पड़ता है परन्तु अभी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नहीं आ पाया है उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं। इसका सम्यग्दर्शन अनन्तानुबन्धीका उदय आ जानेके

कारण आसादन अर्थात् विराधनासे सहित हो जाता है।

३. मिश्र—सम्यग्दर्शनके कालमें यदि मिश्र अर्थात् सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय आ जाता है तो यह चतुर्थ गुणस्थानसे गिरकर तीसरे मिश्र गुणस्थानमें आ सकता है। जिस प्रकार मिले हुए दही और गुड़का स्वाद मिश्रित होता है उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती जीवका परिणाम भी सम्यक्त्व और मिथ्यात्वसे मिश्रित रहता है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव चतुर्थ गुणस्थानसे गिरकर ही तृतीय गुणस्थानमें आता है परन्तु सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम गुणस्थानसे भी तृतीय गुणस्थानमें पहुँच जाता है।

४. असंयत सम्यग्दृष्टि—अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन पांच प्रकृतियोंके और सादि मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति और अनन्तानुबन्धो चतुष्क इन सात अथवा पांच प्रकृतियोंके उपशमादि होनेपर जिसकी आत्मामें तत्त्व श्रद्धान तो प्रकट हुआ है परन्तु अप्रत्याख्यानावरणादि कषायोंका उदय रहनेमें संयम भाव जागृत नहीं हुआ है उसे असंयत सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

५. संयतासंयत—अप्रत्याख्यानावरण कषायका क्षयोपशम होनेपर जिसके एकदेश चरित्र प्रकट हो जाता है उसे संयतासंयत कहते हैं। यह त्रस हिंसासे विरत हो जाता है इसलिए संयत कहलाता है और स्थावर हिंसासे विरत नहीं होता इसलिए असंयत कहलाता है। इसके अप्रत्याख्यानावरण कषायके क्षयोपशम और प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयमें तारतम्य होनेसे दार्शनिक आदि ग्यारह अवान्तर भेद हैं।

६. प्रमत्तसंयत—प्रत्याख्यानावरण कषायका क्षयोपशम और संज्वलनका तीव्र उदय रहनेपर जिसकी आत्मामें प्रमाद सहित संयम प्रकट होता है उसे प्रमत्तसंयत कहते हैं। इस गुणस्थानका धारक नग्न मुद्रामें रहता है। यद्यपि यह हिंसादि पापोंका सर्वदेश त्याग कर चुकता है तथापि संज्वलन चतुष्कका तीव्र उदय साथमें रहनेसे इसके चार विकथा, चार कषाय, पाँच इन्द्रिय, निद्रा तथा स्नेह इन पन्द्रह प्रमादोंसे इसका आचरण चित्रल—दूषित बना रहता है।

७. अप्रमत्तसंयत—संज्वलनके तीव्र उदयकी अवस्था निकल जानेके कारण जिसकी आत्मासे ऊपर कहा हुआ पन्द्रह प्रकारका प्रमाद नष्ट हो जाता है उसे अप्रमत्तसंयत कहते हैं। इसके स्वस्थान और सातिशयकी अपेक्षा दो भेद हैं जो छठे और सातवें गुणस्थानमें ही झूलता रहता है वह स्वस्थान कहलाता है और जो उपरितन गुणस्थानमें चढ़नेके लिए अधःकरणरूप परिणाम कर रहा है वह सातिशय अप्रमत्तसंयत कहलाता है। जिसमें समसमय अथवा भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश तथा विसदृश दोनों प्रकारके होते हैं उसे अधःकरण कहते हैं।

८. अपूर्वकरण—जहां प्रत्येक समयमें अपूर्व-अपूर्व—नवीन-नवीन ही परिणाम होते हैं उसे अपूर्वकरण कहते हैं। इसमें सम समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश तथा विसदृश दोनों प्रकारके होते हैं परन्तु भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृश ही होते हैं।

९. अनिवृत्तिकरण—जहां सम समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश ही और भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृश ही होते हैं उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। ये अपूर्व करणादि परिणाम उत्तरोत्तर विशुद्धताको लिये हुए होते हैं तथा संज्वलन चतुष्कके उदयकी मन्दतामें क्रमसे प्रकट होते हैं।

१०. **सूक्ष्म साम्पराय**—जहां केवल संज्वलन लोभका सूक्ष्म उदय रह जाता है उसे सूक्ष्म साम्पराय कहते हैं। अष्टम गुणस्थानसे उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी ये दो श्रेणियां प्रकट होती हैं। जो चारित्र मोहका उपशम करनेके लिए प्रयत्नशील हैं वे उपशम श्रेणीमें आरूढ़ होते हैं और जो चारित्र मोहका क्षय करनेके लिए प्रयत्नशील हैं वे क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ होते हैं। परिणामोंकी स्थितिके अनुसार उपशम या क्षपक श्रेणीमें यह जीव स्वयं आरूढ़ हो जाता है, बुद्धिपूर्वक आरूढ़ नहीं होता। क्षपक श्रेणीपर क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही आरूढ़ हो सकता है पर उपशम श्रेणीपर औपशमिक और क्षायिक दोनों सम्यग्दृष्टि आरूढ़ हो सकते हैं। यहां विशेषता इतनी है कि जो औपशमिक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणीपर आरूढ़ होगा वह श्रेणीपर आरूढ़ होनेके पूर्व अनन्तानुबन्धी-की विसंयोजना कर उसे सत्तासे दूर कर द्वितीयोपशमिक सम्यग्दृष्टि हो जायेगा। जो उपशम श्रेणी-पर आरूढ़ होता है वह सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानके अन्त तक चारित्र मोहका उपशम कर चुकता है और क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ होता है वह चारित्र मोहका क्षय कर चुकता है।

११. **उपशान्तमोह**—उपशम श्रेणीवाला जीव दसवें गुणस्थानमें चारित्र मोहका पूर्ण उपशम कर ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानमें आता है। इसका मोह पूर्ण रूपमें शान्त हो चुकता है और शरद् ऋतुके सरोवरके समान इसकी सुन्दरता होती है। अन्तर्मुहूर्त तक इस गुणस्थानमें ठहरनेके बाद यह जीव नियमसे नीचे गिर जाता है।

१२. **क्षीणमोह**—क्षपक श्रेणीवाला जीव दसवें गुणस्थानमें चारित्रमोहका पूर्ण क्षय कर बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानमें आता है यहां इसका मोह बिलकुल ही क्षीण हो चुकता है और स्फटिकके भाजनमें रखे हुए स्वच्छ जलके समान इसकी स्वच्छता होती है।

१३. **सयोगकेवली**—बारहवें गुणस्थानके अन्तमें शुक्लध्यानके द्वितीय पादके प्रभावसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका युगपत् क्षय कर जीव तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है। यहां इसे केवलज्ञान प्रकट हो जाता है इसलिए केवली कहलाता है और योगोंकी प्रवृत्ति जारी रहनेसे सयोग कहा जाता है। दोनों विशेषताओंको लेकर इसका सयोगकेवली नाम प्रचलित है।

१४. **अयोगकेवली**—जिनकी योगोंकी प्रवृत्ति दूर हो जाती है उन्हें अयोगकेवली कहते हैं। यह जीव इस गुणस्थानमें 'अ इ उ ऋ लृ' इन पांच लघु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है उतने ही काल तक ठहरता है। अनन्तर शुक्लध्यानके चतुर्थ पादके प्रभावसे सत्तामें स्थित पचासी प्रकृतियोंका क्षय कर एक समयमें सिद्ध क्षेत्रमें पहुँच जाता है।

आचार्य जिनसेनने उक्त चौदह गुणस्थानोंमें सुखके तारतम्यका भी विचार किया है। सुख आत्माका गुण है और वह उसमें सदा विद्यमान रहता है परन्तु मोहके उदयसे उसका विभाव परिणमन होता रहता है अतः ज्यों-ज्यों मोहका सम्पर्क आत्मासे दूर होता जाता है त्यों-त्यों सुख गुण अपने स्वभावरूप परिणमन करने लगता है। मिथ्यादृष्टि जीवके मोहका पूर्ण उदय है इसलिए उसके सुखका बिलकुल अभाव बतलाया है। मिथ्यादृष्टि जीवके जो विषय सम्बन्धी सुख देखा जाता है वह सुखका स्वाभाविक रूप न होकर वैभाविक रूप ही है। बारहवें गुणस्थानमें मोहका सम्पर्क बिलकुल छूट जाता है इसलिए वहां सुख स्वभावरूपमें प्रकट हो जाता है परन्तु वहां उस सुखको वेदन करनेके लिए अनन्त ज्ञानका अभाव रहता है इसलिए उसे अनन्त सुख नहीं कहते। केवलज्ञान होनेपर वही सुख अनन्त सुख कहलाने लगता है।

१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तरायके भेदसे कर्म आठ प्रकारके हैं। इनमें-से ज्ञानावरण कर्मपटके समान सम्यग्ज्ञानको ढकनेवाला है। दर्शनावरण कर्म द्वारपालके समान श्रेष्ठ दर्शनका रोकनेवाला है। वेदनीय कर्म

मधुसे लिप्त तलवारकी तीक्ष्ण धाराके समान माधुर्यको धारण करनेवाला है। मोहकर्म मदिराके समान बुद्धिमें विभ्रम उत्पन्न करनेवाला है। आयुकर्म सुदृढ़ बेड़ीके समान किसी निश्चित गतिमें रोकनेवाला है। नामकर्म चित्रकारके समान विचित्र आकारोंकी सृष्टि करनेवाला है। गोत्रकर्म कुम्हारके समान उच्च-नीचका व्यवहार करनेवाला है और अन्तरायकर्म भाण्डारीके समान प्राप्त होने योग्य पदार्थोंमें विघ्न करनेवाला है। इस प्रकार फल देनेवाले आठ प्रकारके कर्मोंसे ये प्राणी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें निरन्तर बद्ध होते रहते हैं ॥९५-९९॥ दूसरे गुणस्थानसे लेकर अन्तिम गुणस्थान तकके तेरह गुणस्थानोंमें नियमसे जीवोंके भव्यपना ही रहता है और प्रथम गुणस्थानमें भव्यपना तथा अभव्यपना दोनों ही सम्भव हैं ॥१००॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी प्राप्तिपूर्वक जो जीव मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ हैं वे भव्य कहलाते हैं और जो इनसे विपरीत हैं वे अभव्य कहे जाते हैं ॥१०१॥ जो विशुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र-रूपी लक्षणसे युक्त हैं वे आसन्नभव्य हैं और उनकी आसन्नभव्यता आधुनिक पुरुषोंके द्वारा भी जानी जा सकती है। परन्तु दूर भव्यता और अभव्यता सदा आप्त भगवान्‌के वचनोंसे ही जानी जा सकती है क्योंकि वह साधारण प्राणियोंके हेतुका विषय नहीं है अर्थात् साधारण व्यक्ति उसे हेतु द्वारा जान नहीं सकते ॥१०२-१०३॥ यह भव्यत्व और अभव्यत्व भाव जीवका स्वाभाविक—पारिणामिक भाव है तथा एक बरतनमें भरकर सीजनेके लिए अग्निपर रखे हुए सीजनेवाले और न सीजनेवाले उड़दके समान हैं। **भावार्थ**—भव्यजीव निमित्त मिलनेपर सिद्ध पर्यायको प्राप्त हो जाते हैं और अभव्य जीव बाह्य निमित्त मिलनेपर भी निजकी योग्यता न होनेसे सिद्ध पर्याय नहीं प्राप्त कर पाते ॥१०४॥ भव्य जीवोंका संसार-सागर अनादि और सान्त है तथा सामान्य भव्यजीवोंकी अपेक्षा अनादि अनन्त है ॥१०५॥ अभव्यजीव राशिका संसारसागर व्यक्ति तथा समूह दोनोंकी अपेक्षा अनादि अनन्त है ॥१०६॥

संसारमें जीवोंकी दो राशियां हैं—एक भव्य और दूसरी अभव्य। ये दोनों ही प्रकारकी राशियां अनन्त हैं, मिथ्यात्व कर्मके उदयसे दुःख भोगती रहती हैं और कालद्रव्यके समान अक्षय—अविनाशी हैं अर्थात् जिस प्रकार कालद्रव्यका कभी अन्त नहीं होता उसी प्रकार उन दोनों राशियोंका भी कभी अन्त नहीं होता ॥१०७॥ ये जीव द्रव्यकी अपेक्षा नित्य हैं पर्यायकी अपेक्षा अनित्य हैं, तथा एक साथ दोनोंकी अपेक्षा उभयात्मक—नित्यानित्यात्मक हैं, मिथ्यात्व, अविरति, योग और कषायके द्वारा कलुषित हो रहे हैं तथा जिसका छूटना कठिन है ऐसे पापकर्मका निरन्तर बन्ध करते हुए दुःखी हो चारों गतियोंमें घूमते रहते हैं ॥१०८-१०९॥

जिनकी आत्मा निरन्तर रौद्रध्यानसे मलिन है, जो बहुत आरम्भ और परिग्रहसे सहित हैं, मिथ्यादर्शन तथा ज्ञानमद, पूजामद आदि आठ मदोंसे क्लेश उठाते हैं, जिनकी दृष्टि अत्यन्त अनिष्टरूप है, जो आत्मप्रशंसामें तत्पर हैं, निन्दनीय हैं, दूसरेकी निन्दासे आनन्द मानते हैं, दूसरेका धन हरण करनेके लोभी हैं, जिन्हें भोगोंकी तृष्णा अत्यधिक है, जो मधु, मांस और मदिरा-का आहार करते हैं ऐसे कर्मभूमिके मनुष्य और व्याघ्र, सिंह आदि तिर्यंच नरकायुका बन्ध करते हैं ॥११०-११२॥ एवं जहाँ अत्यन्त शीत और उष्णतासे शरीर जल रहे हैं ऐसे नरककुण्डोंमें अत्यन्त क्रोधी नारकी उत्पन्न होते हैं। वहाँ इन नारकियोंके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥११३॥ वहाँ न वह द्रव्य है, न क्षेत्र है और न वह कालकी कला भी है जहाँ नारकी जीवोंके दुःखका स्वाभाविक विश्राम हो सके ॥११४॥ उन नारकियोंके यदि एक साधारण लाभ है, तो यही कि उनका अकालमें मरण नहीं होता। संसारके समस्त प्राणियोंको चिरकाल तक जीवित रहना प्रिय है सो यह चिरजीवन नारकियोंको सुलभ है ॥११५॥ रत्नप्रभाको आदि लेकर महातमःप्रभा पर्यन्त—सातों

पृथिवियोंमें नारकियोंकी आयुका प्रमाण क्रमसे एकसागर, तीनसागर, सातसागर, दशसागर, सत्रहसागर, बाईससागर और तैंतीससागर जानना चाहिए। यह इनकी उत्कृष्ट स्थिति है ।।११६-११७।। पूर्व-पूर्व नरकोंकी जो उत्कृष्ट स्थिति है वही एक समय अधिक होनेपर आगामी नरकोंकी जघन्य स्थिति कहलाती है। प्रथम नरकको जघन्य स्थिति दश हजार वर्षको है ।।११८।।

जो क्रोध, मान, महामाया और लोभके कारण चिन्तातुर है तथा आर्तध्यानरूपी बड़ी भारी भँवरके कारण जिनका मन निरन्तर घूमता रहता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि तिर्यंच, मनुष्य, देव और नारकी त्रसस्थावर जीवोंसे भरी हुई तिर्यंचगतिको प्राप्त होते हैं ।।११९-१२०।। तिर्यंचगतिमें जन्म लेनेवाले प्राणो पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकायमें बार-बार जन्म लेनेका दुःख भोगते रहते हैं ।।१२१।। कितने ही कृमि आदि दो इन्द्रियोंमें, यूक आदि तीन इन्द्रियोंमें, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रियोंमें और पक्षी, मत्स्य, मृग आदि पंचेन्द्रियोंमें चिरकाल तक दुःख भोगते हैं ।।१२२-१२३।। कर्मभूमिज तिर्यंचोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट एक करोड़ वर्ष पूर्वकी है तथा भोगभूमिज तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य एक पल्य प्रमाण है ।।१२४।।

जो मनुष्य स्वभावसे ही सरल हैं, स्वभावसे ही कोमल हैं, स्वभावसे ही भद्र हैं, स्वभावसे ही पाप-भीरु हैं और स्वभावसे ही मधु-मांसादि सावद्य आहारके त्यागी हैं वे उत्तम मनुष्यपर्याय प्राप्त करते हैं तथा जो खोटे कर्म करते हैं वे खोटी मनुष्यपर्याय प्राप्त करते हैं ।।१२५-१२६।। पाप कर्मोंकी निर्जरा होनेसे कितने ही तिर्यंच तथा नारकी और शुभ कर्म करनेवाले देव भी उत्तम पर्याय प्राप्त करते हैं ।।१२७।। आर्य तथा म्लेच्छ कुलसे भरा हुंआ मनुष्य जीवन प्राप्त होनेपर भी इच्छित वस्तुकी प्राप्ति नहीं होनेसे तथा प्रियजनोंके साथ वियोग होनेके कारण जीवोंको दुःख ही प्राप्त होता रहता है ।।१२८।। कितने ही मनुष्योंको यद्यपि इच्छित पदार्थ प्राप्त होते रहते हैं और प्रियजनोंके साथ उनका समागम भी होता रहता है तथापि विषयरूपी इंधनके द्वारा उनकी इच्छारूपी अग्नि निरन्तर प्रज्वलित होती रहती है। इसलिए उन्हें सुख प्राप्त नहीं होता ।।१२९।। जो मनुष्य भव, सम्यग्दर्शनादिको धारण करनेवाले किन्हीं निकट भव्य जीवोंको मोक्षका कारण होता है वही मनुष्य भव, मोहपूर्ण चित्तको धारण करनेवाले दूरानुदूर भव्य जीवोंको दीर्घ संसारका कारण है ।।१३०-१३१।। समस्त कर्मभूमियों और भोगभूमियोंमें मनुष्योंकी उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति तिर्यंचोंके समान जानना चाहिए ।।१३२।।

जो केवल जल, वायु अथवा वृक्षोंके मूल, पत्र तथा फलोंका भक्षण करते हैं, जिनकी बुद्धि अत्यन्त शान्त है, जिन्होंने कषाय तथा इन्द्रियोंके निग्रहका अभ्यास कर लिया है, जो बालतप करते हैं तथा जो कायक्लेश करनेमें तत्पर रहते हैं, ऐसे तापसी और अकामनिर्जरासे युक्त बन्धनबद्ध तिर्यंच, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा अल्प ऋद्धिके धारक कल्पवासी देव होते हैं। ये सब मिथ्यादर्शनसे मलिन होते हैं ।।१३३–१३५।। इनमें जो कन्दर्प नामके देव हैं वे निरन्तर कामसे आकुलित रहते हैं, आभियोग्य जातिके देव सभामें बैठनेके अयोग्य होते हैं और किल्विषक देव सदा संक्लेशका अनुभव करते रहते हैं ।।१३६।। ये बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंके धारक देवोंके महाभ्युदयसे युक्त ऐश्वर्यको देखकर तथा देव होनेपर भी अपनी दुर्गतिका विचार कर दुःखसे पीड़ित होते हुए मानसिक दुःख उठाते रहते हैं ।।१३७।। सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति दुर्लभ होनेसे भव्य जीव भी अभव्यकी तरह संसारके दुःखरूपी महासागरमें गोता लगाते रहते हैं ।।१३८।। भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक सागर है, व्यन्तर देवोंकी एक पल्य प्रमाण है और जघन्य स्थिति दस हज़ार वर्षकी है ।।१३९।। ज्योतिषी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ

अधिक एकपल्य है, जघन्य स्थिति पल्यके आठवे भाग प्रमाण है और स्वर्गवासी देवोंको उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर तथा जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है ॥१४०॥

जब कोई भव्य जीव, क्षयोपशम, विशुद्धि, प्रायोग्य, देशना तथा अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारकी करण लब्धि इन पंच लब्धियोंको प्राप्त करता है तब वह आत्म-विशुद्धिके अनुसार दर्शन-मोहनीय कर्मका उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय कर सर्वप्रथम औपशमिक, फिर क्षायोपशमिक और तदनन्तर क्रमसे क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न कर उसका अनुभव करता है ॥१४१–१४४॥ सम्यक्त्व प्राप्त करनेके बाद कितने ही भव्य जीव चारित्र मोहके क्षयो-पशमसे चारित्र प्राप्त कर कर्मोंका क्षय करते हैं तदनन्तर निर्वाणको प्राप्त कर अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त वीर्यसे युक्त होते हुए मोक्षमें निवास करते हैं ॥१४५–१४६॥ जो भव्य जीव चारित्रमोहकी अत्यन्त प्रबलतासे चारित्र नहीं धारण कर पाते हैं वे निश्चल सम्यक्त्वके प्रभावसे ही देवायुका बन्ध कर लेते हैं ॥१४७॥ इसी प्रकार जो मनुष्य संयतासंयत अर्थात् देशचारित्रके धारक हैं वे सौधर्मसे लेकर अच्युत स्वर्ग तकके कल्पोंमें बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंके धारक देव होते हैं ॥१४८॥

जो मनुष्य सराग संयमसे श्रेष्ठ तथा निर्दोष संयमके धारक हैं, उनमें-से कितने ही कल्पवासी देव होते हैं और कितने ही कल्पातीत देव ॥१४९॥ नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानोंमें रहनेवाले देव कल्पातीत कहलाते हैं ॥१५०॥ कल्पवासी देव इन्द्रादिकके भेदसे अनेक प्रकारके हैं और कल्पातीत देव केवल अहमिन्द्र कहलाते हैं—उनमें भेद नहीं होता। इन सभीने सन्मार्गमें चलकर जो उत्तम तप किया था वे देवगतिमें उसके फलस्वरूप सुखका उपभोग करते हैं॥१५१॥ सौधर्म-ऐशान स्वर्गमें देवोंकी आयु कुछ* अधिक दो सागर, सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गमें कुछ अधिक सात सागर, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें कुछ अधिक दश सागर, लान्तव-

१. दशसागरप्रमितायुष्काः। * कुछ अधिक आयु घातायुष्क जीवोंकी अपेक्षा है। इसका सम्बन्ध बारहवें स्वर्ग तक ही रहता है, क्योंकि घातायुष्क जीवोंकी उत्पत्ति यहीं तक होती है। जो उपरितन स्वर्गोंकी आयु बांधकर पीछे संक्लेशरूप परिणाम हो जानेके कारण नीचेके स्वर्गोंमें उत्पन्न होते हैं वे घातायुष्क कहलाते हैं। इनकी आयु निश्चित आयुसे आधा सागर अधिक होती है।

कापिष्ट स्वर्गमें कुछ अधिक चौदह सागर, शुक्र-महाशुक्र स्वर्गमें कुछ अधिक सोलह सागर, शतार-सहस्रारमें कुछ अधिक अठारह सागर, आनत-प्राणत स्वर्गमें बीस सागर और आरण-अच्युत स्वर्गमें बाईस सागर प्रमाण आयु है ॥१५२–१५५॥ नव ग्रैवेयकोंमें एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है अर्थात् प्रथम ग्रैवेयकमें बाईस सागरकी आयु है और आगेके ग्रैवेयकोंमें एक-एक सागरकी बढ़ती हुई नौवें ग्रैवेयकमें इकतीस सागरकी हो जाती है। पूर्व-पूर्व स्वर्गोंकी जो उत्कृष्ट स्थिति है वही एक समय अधिक होनेपर आगे-आगेके स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति होती है ॥१५६॥ नव अनुदिशोंमें बत्तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है और एक समय अधिक इकतीस सागर जघन्य स्थिति है ॥१५७॥ पंच अनुत्तर विमानोंमें तैंतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है और सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर बाकी चार अनुत्तरोंमें जघन्य स्थिति एक समय अधिक बत्तीस सागर प्रमाण है। सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य स्थिति नहीं होती, वहां सब एक ही समान स्थितिके धारक होते हैं ॥१५८॥ सौधर्म स्वर्गमें देवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पांच पल्य प्रमाण है। उसके आगे सहस्रार स्वर्ग तक प्रत्येक स्वर्गमें दो-दो सागर अधिक है। उसके आगे सात-सात सागर अधिक है। इस तरह सोलहवें स्वर्गमें पचपन पल्यकी आयु है। उसके आगे स्त्रियोंका सद्भाव नहीं है ॥१५९–१६०॥ कर्मोंकी सामर्थ्यसे समस्त

कल्पवासिनी देवियोंका उत्पाद सदा पहले और दूसरे स्वर्गमें ही होता है ॥१६१॥ मोहका तीव्र उदय होनेसे ज्योतिषी, भवनवासी, व्यन्तर और सौधर्म तथा ऐशान स्वर्गके निवासी देव कामसे मैथुन करते हैं ॥१६२॥ मोहका मध्यम उदय होनेसे सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके देव स्पर्श मात्रसे प्रवीचार करते हैं अर्थात् वहाँके देव-देवियोंकी कामबाधा परस्परके स्पर्श मात्रसे शान्त हो जाती है ॥१६३॥ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ट स्वर्गके देव, रूप मात्रसे प्रवीचार करते हैं अर्थात् वहाँके देव-देवियोंका रूप देखने मात्रसे सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥१६४॥ शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्गके देव शब्दसे प्रवीचार करते हैं। अर्थात् वहाँके देव-देवियोंके शब्द सुनने मात्रसे सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥१६५॥ मोहका उदय अत्यन्त मन्द होनेसे आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्गके देव मनसे प्रवीचार करते हैं। अर्थात् वहाँके देव मनमें देवियोंका ध्यान आने मात्रसे सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥१६६॥ उसके आगे सर्वार्थसिद्धि तकके देव मोहका उदय अव्यक्त होनेसे प्रवीचार रहित हैं अर्थात् उन्हें कामकी बाधा उत्पन्न हो नहीं होती। वहाँके अहमिन्द्र शान्ति प्रधान सुखसे युक्त होते हैं ॥१६७॥ सौधर्म स्वर्गसे लेकर ऊपर-ऊपरके देव, पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा स्थिति, द्युति, प्रभाव, सुख, लेश्याओंकी विशुद्धता, इन्द्रिय तथा अवधिज्ञानके विषयकी अपेक्षा अधिक-अधिक हैं तथा गति, शरीरकी ऊंचाई, अभिमान और परिग्रहकी अपेक्षा हीन-हीन हैं ॥१६८-१६९॥ मुक्तिके कारणभूत महा अमूल्य रत्नत्रयके प्रभावसे जिसकी सिद्धि अयत्न साध्य होती है तथा जहां इच्छा करते ही समस्त पदार्थोंकी सिद्धि हो जाती है ऐसे देवों सम्बन्धी सुख भोगकर वे देव स्वर्गसे च्युत हो विदेह, भरत और ऐरावत इन कर्मभूमियोंमें उत्तम पुरुष अथवा नारायण उत्पन्न होते हैं ॥१७०-१७१॥ कितने ही देव, नौ निधियों और चौदह रत्नोंसे सहित छह खण्डोंके प्रभु होते हैं अर्थात् चक्रवर्ती होते हैं। इनकी अन्तिम क्रियाएँ मोक्षसुख प्राप्त करनेमें समर्थ होती हैं ॥१७२॥ कितने ही दो-तीन भव धारण कर मोक्ष चले जाते हैं, कोई बलभद्र होते हैं, और वे स्वर्ग अथवा मोक्ष जाते हैं तथा पूर्व भवमें निदान बांधनेवाले कितने ही लोग नारायण एवं प्रतिनारायण होते हैं ॥१७३॥ जिन्होंने पूर्व भवमें शुभ सोलह कारण भावनाओंका अभ्यास किया है ऐसे कितने ही लोग कीर्तिके धारक तीर्थंकर होते हैं और वे तीनों जगत्का प्रभुत्व प्राप्त करते हैं ॥१७४॥ सम्यग्दर्शन ही जिसकी स्थिर जड़ है, जो ज्ञानरूप पिण्डपर टिका हुआ है, चारित्ररूपी स्कन्धको धारण करनेवाला है, नयरूपी शाखाओं और उपशाखाओंसे सहित है तथा मनुष्य और देवोंकी लक्ष्मीरूप जिसमें फूल लग रहे हैं ऐसे जिनशासनरूपी वृक्षको जो सेवा करते हैं वे उसके अग्रभाग-पर स्थित निर्वाणरूपी महाफलको प्राप्त होते हैं ॥१७५-१७६॥ निर्वाणरूपी फलमें उत्पन्न होनेवाले परमानन्दस्वरूप श्रेष्ठ सुखरूपी रसको प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी निर्वाणको प्राप्त हो सिद्धालयमें सदा विद्यमान रहते हैं ॥१७७॥ इस प्रकारका धर्मोपदेश सुनकर वह लोकत्रयरूपी कमलिनी, मोक्षमार्ग-रूपी सूर्यके संसर्गसे प्रमुदित हो सुशोभित हो उठो ॥१७८॥ जो पहलेसे ही प्रशस्त अनुरागसे सहित थे ऐसे तीनों लोकोंके जीव धर्म श्रवण कर अग्निसे शुद्ध हुए निर्मल जातिके रत्नसमूहकी शोभा धारण कर रहे थे ॥१७९॥ जिस प्रकार मेघमाला अवशिष्ट धूलिके समूहको शान्त कर देती है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान्की सद्धर्मदेशना जगत्त्रयके जीवोंकी समस्त भ्रान्तिको शान्त कर देती है ॥१८०॥ अथानन्तर जिनेन्द्र भगवान्की दिव्यध्वनिके बाद देवोंने उसका अनुसन्धान किया। तथा कुछ देव, दुन्दुभिके समान शब्द करते, पुष्पवृष्टि एवं रत्नवृष्टि करते हुए वनके एक देशमें स्थित एक महामुनिकी स्तुति करने लगे ॥१८१-१८२॥ इन्द्रोंके द्वारा पूजित उन श्रेष्ठ मुनिका नाम सुनकर अत्यधिक आश्चर्यसे युक्त राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीको नमस्कार कर पूछा ॥१८३॥ कि हे भगवन्! हे पूज्य! कृपा कर कहिए कि देव लोग जिनकी पूजा कर रहे हैं ऐसे ये मुनि किस

नामके धारक हैं ? इनका क्या वंश है ? और आज किस अतिशयको प्राप्त हुए हैं ? ॥१८४॥ तदनन्तर जिनका अहंकार नष्ट हो गया था और जिन्होंने आगम तथा अनुमानके द्वारा जानने योग्य पदार्थोंको जान लिया था ऐसे श्रुतकेवली श्रीगौतम स्वामी, आश्चर्यसे भरे हुए राजा श्रेणिकसे कहने लगे कि ॥१८५॥ हे महाराज श्रेणिक ! मैं सद्बुद्धिके धारक इन श्रीमान् मुनिराजका नाम, वंश और माहात्म्य सब तुम्हारे लिए कहता हूँ सो श्रवण कर ॥१८६॥ हे पृथिवीपते ! इस पृथिवीपर जो जितशत्रु नामका प्रसिद्ध राजा था वह आपके कर्णगोचर हुआ होगा ॥१८७॥ जो हरिवंशरूपी आकाशका सूर्य था, जिसने अन्य राजाओंकी स्थितिको अभिभूत कर दिया था, जिसने राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर जिनेन्द्रदेवके समीप प्रव्रज्या—दीक्षा धारण की थी तथा जिसने अन्य लोगोंके लिए कठिन बाह्य और आभ्यन्तर तप किया था आज वही राजा जितशत्रु घातिया कर्मोंको नष्ट कर आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त हुआ है ॥१८८–१८९॥ इसीलिए जिनमार्गकी प्रभावना करनेवाले समस्त देवोंने मिलकर रत्नत्रयकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक इन मुनिराजकी पूजा की है ॥१९०॥

तदनन्तर जिसे कुतूहल उत्पन्न हो रहा था ऐसे श्रेणिक राजाने भक्तिपूर्वक पुनः प्रणाम कर गणधरसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह हरिवंश कौन है ? कब और कहाँ उत्पन्न हुआ है ? तथा इसका मूल कारण कौन पुरुष है ? ॥१९१–१९२॥ प्रजाको रक्षा करनेमें समर्थ तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे सहित ऐसे हरिवंशमें कितने राजा हो चुके हैं ? ॥१९३॥ यह कह राजा श्रेणिकने पुनः कहा कि मैं इस भरत क्षेत्रमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलभद्रों, नारायणों और प्रतिनारायणोंका समस्त चरित, वंशोंकी उत्पत्ति और लोकालोकका विभाग सुनना चाहता हूँ सो आप कहनेके योग्य हैं ॥१९४–१९५॥

यह सुन, गौतम स्वामीने कहा कि हे राजन् ! तूने ठीक प्रश्न किया है तू सब ठीक-ठीक श्रवण कर। मैं यथायोग्य कहता हूँ ॥१९६॥ हे श्रीमन् ! हे श्रेणिक ! मैं सर्वप्रथम सुख-दुःख भोगनेके स्थानभूत तीन लोकका स्थिर आकार कहता हूँ। फिर विविध वंशोंके अवतारकी बात करूँगा। तदनन्तर मनोहर अर्थसे युक्त हरिवंशकी उत्पत्ति कहूँगा और तत्पश्चात् श्रवण करनेके इच्छुक तेरे लिए हरिवंशमें उत्पन्न हुए राजाओंका कीर्तन करूँगा ॥१९७॥ भव्य जीव, श्रीआप्त भगवान्‌के उपदेशसे देश-काल और स्वभावसे दूरवर्ती पदार्थोंका भी विधिवत् यथार्थ निश्चय कर लेते हैं। यथार्थमें सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका मोह, इस संसारमें पदार्थोंका ठीक-ठीक स्वरूप देखनेमें तभी तक अपना प्रभाव रख पाता है जबतक कि ज्ञानरूपी देदीप्यमान किरणोंसे युक्त श्रीजिनेन्द्र देवरूपी सूर्यका उदय नहीं होता ॥१९८॥

इस प्रकार जिसमें अरिष्टनेमिके पुराणका संग्रह किया गया है ऐसे श्रीजिनसेनाचार्य प्रणीत हरिवंश पुराणमें श्रेणिकप्रश्न वर्णन नामका तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ॥३॥

□

अथानन्तर सब ओरसे जिसका अनन्त विस्तार है, जिसके अपने प्रदेश भी अनन्त हैं तथा जो अन्य द्रव्योंसे रहित है वह अलोकाकाश कहलाता है ।।१।। यतश्च उसमें जीवाजीवात्मक अन्य पदार्थ नहीं दिखाई देते हैं इसलिए वह अलोकाकाश इस नामसे प्रसिद्ध है ।।२।। गति और स्थितिमें निमित्तभूत धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायका अभाव होनेसे अलोकाकाशमें जीव और पुद्‌गलकी न गति ही है और न स्थिति ही है ।।३।। उस अलोकाकाशके मध्यमें असंख्यातप्रदेशी तथा लोकाकाशसे मिश्रित अनादि लोक स्थित है ।।४।। काल द्रव्य तथा अपने अवान्तर विस्तारसे सहित अन्य समस्त पंचास्तिकाय यतश्च इसमें दिखाई देते हैं इसलिए यह लोक कहलाता है ।।५।। यह लोक नीचे, ऊपर और मध्यमें वेत्रासन, मृदंग और बहुत बड़ी झालरके समान है अर्थात् अधोलोक वेत्रासन—मूँठाके समान है, ऊर्ध्वलोक मृदंगके तुल्य है और मध्यलोक जिसे तिर्यक् लोक भी कहते हैं झालरके समान है ।।६।। नीचे आधा मृदंग रखकर उसपर यदि पूरा मृदंग रखा जाये तो जैसा आकार होता है वैसा ही लोकका आकार है किन्तु विशेषता यह है कि यह लोक चतुरस्र अर्थात् चौकोर है ।।७।। अथवा कमरपर हाथ रख तथा पैर फैलाकर अचल-स्थिर खड़े हुए मनुष्यका जो आकार है उसी आकारको यह लोक धारण करता है ।।८।। अपने विस्तारकी अपेक्षा अधोलोक नीचे सात रज्जु प्रमाण है, फिर क्रम-क्रमसे प्रदेशोंमें हानि होते-होते मध्यम लोकके यहाँ एक रज्जु विस्तृत रह जाता है ।।९।। इसके ऊपर प्रदेशवृद्धि होते-होते ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गके समीप पाँच रज्जु प्रमाण है। तदनन्तर उसके आगे प्रदेशहानि होते-होते लोकके अन्तमें एक रज्जु प्रमाण विस्तृत रह जाता है ।।१०।। तीनों लोकोंकी लम्बाई चौदह रज्जु प्रमाण है। सात रज्जु सुमेरु पर्वतके नीचे और सात रज्जु उसके ऊपर है ।।११।। चित्रा पृथिवीके अधोभागसे लेकर द्वितीय पृथिवीके अन्त तक एक रज्जु समाप्त होती है, इसके आगे तृतीय पृथिवीके अन्त तक द्वितीय रज्जु, चतुर्थ पृथिवीके अन्त तक तृतीय रज्जु, पंचम पृथिवीके अन्त तक चतुर्थ रज्जु, षष्ठ पृथिवीके अन्त तक पंचम रज्जु, सप्तम पृथिवीके अन्त तक षष्ठ रज्जु और लोकके अन्त तक सप्तम रज्जु समाप्त होती है अर्थात् चित्रा पृथिवीके नीचे छह रज्जुकी लम्बाई तक सात पृथिवियाँ और उसके नीचे एक रज्जुके विस्तारमें निगोद तथा वातवलय हैं ।।१२-१३।। यह तो चित्रा पृथिवीके नीचेका विस्तार बतलाया अब इसके ऊपर ऐशान स्वर्ग तक डेढ़ रज्जु, उसके आगे माहेन्द्र स्वर्गके अन्त तक फिर डेढ़ रज्जु, फिर कापिष्ट स्वर्ग तक एक रज्जु, तदनन्तर सहस्रार स्वर्ग तक एक रज्जु, उसके आगे आरण अच्युत स्वर्ग तक एक रज्जु और उसके ऊपर ऊर्ध्व लोकके अन्त तक एक रज्जु इस प्रकार कुल सप्त रज्जु समाप्त होती हैं ।।१४-१६।।

चित्रा पृथिवीके नीचे प्रथम रज्जुके अन्तमें जहाँ दूसरी पृथिवी समाप्त होती है वहाँ लोकके जाननेवाले आचार्योंने अधोलोकका विस्तार एक रज्जु तथा द्वितीय रज्जुके सात भागोंमें-से छह भाग प्रमाण बतलाया है ।।१७।। द्वितीय रज्जुके अन्तमें जहाँ तीसरी पृथिवी समाप्त होती है वहाँ

अधोलोकका विस्तार दो रज्जु पूर्ण और एक रज्जुके सात भागोंमें-से पाँच भाग प्रमाण बताया है। तृतीय रज्जुके अन्तमें जहां चौथी पृथिवी समाप्त होती है वहाँ अधोलोकका विस्तार तीन रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से चार भाग प्रमाण बतलाया है ॥१८॥ चतुर्थ रज्जुके अन्तमें जहां पांचवीं पृथिवो समाप्त होती है वहां अधोलोकका विस्तार चार रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से तीन भाग प्रमाण कहा गया है, पंचम रज्जुके अन्तमें जहां छठो पृथिवी समाप्त होती है वहां अधोलोकका विस्तार पांच रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से दो भाग प्रमाण बतलाया है, षष्ठ रज्जुके अन्तमें जहाँ सातवीं पृथिवी समाप्त होती है वहां अधोलोकका विस्तार छह रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से एक भाग प्रमाण है तथा सप्तम रज्जुके अन्तमें जहाँ लोक समाप्त होता है वहां अधोलोकका विस्तार सात रज्जु प्रमाण कहा गया है ॥१९-२०॥

चित्रा पृथिवीके ऊपर डेढ़ रज्जुकी ऊंचाईपर जहां दूसरा ऐशान स्वर्ग समाप्त होता है वहां लोकका विस्तार दो रज्जु पूर्ण और एक रज्जुके सात भागोंमें-से पाँच भाग प्रमाण कहा गया है ॥२१॥ उसके ऊपर डेढ़ रज्जु और चलकर जहां माहेन्द्र स्वर्ग समाप्त होता है वहां लोकका विस्तार चार रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से तीन भाग प्रमाण बताया गया है ॥२२॥ उसके आगे आधी रज्जु और चलकर जहां ब्रह्मोत्तर स्वर्ग समाप्त होता है वहाँ लोकका विस्तार पांच रज्जु प्रमाण कहा गया है ॥२३॥ उसके ऊपर आधी रज्जु और चलकर जहाँ कापिष्ट स्वर्ग समाप्त होता है वहां लोकका विस्तार चार रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से तीन भाग प्रमाण बतलाया गया है ॥२४॥ उसके आगे आधी रज्जु और चलकर जहां महाशुक्र स्वर्ग समाप्त होता है वहां लोकका विस्तार तीन रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से छह भाग प्रमाण कहा गया है ॥२५॥ इसके ऊपर आधी रज्जु और चलकर जहां सहस्रार स्वर्गका अन्त आता है वहां लोकका विस्तार तीन रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से दो भाग प्रमाण बतलाया गया है ॥२६॥ इसके आगे आधी रज्जु और चलकर जहां प्राणत स्वर्गका अन्त आता है वहां लोकका विस्तार दो रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमेंसे पांच भाग प्रमाण कहा गया है ॥२७॥ इसके ऊपर आधी रज्जु और चलकर जहां अच्युत स्वर्ग समाप्त होता है वहां लोकका विस्तार दो रज्जु और एक रज्जुके सात भागोंमें-से एक भाग प्रमाण बतलाया है और इसके आगे सातवीं रज्जुके अन्तमें जहां लोककी सीमा समाप्त होती है वहां लोकका विस्तार एक रज्जु प्रमाण कहा गया है ॥२८॥ तीनों लोकोंमें अधोलोक तो पुरुष की जंघा तथा नितम्बके समान है, तिर्यग्लोक कमरके सदृश है, माहेन्द्र स्वर्गका अन्त मध्य अर्थात् नाभिके समान है, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग छातीके समान है, तेरहवां, चौदहवां स्वर्ग भुजाके समान है, आरण-अच्युत स्वर्ग स्कन्धके समान है, नव ग्रैवेयक ग्रीवाके समान है, अनुदिश उन्नत डांढ़ीके समान है, पंचानुत्तर विमान मुखके समान है, सिद्ध क्षेत्र ललाटके समान है और जहां सिद्ध जीवोंका निवास है ऐसा आकाश प्रदेश मस्तकके समान है ॥२९-३१॥ जिसके मध्यमें जीवादि समस्त पदार्थ स्थित है ऐसा यह लोकरूपी पुरुष अपौरुषेय ही है—अकृत्रिम ही है ॥३२॥ घनोदधि, घनवात और तनुवात ये तीनों वातवलय इस लोकको सब ओरसे घेरकर स्थित हैं ॥३३॥ आदिका घनोदधि वातवलय गोमूत्रके वर्णके समान है, बीचका घनवातवलय मूँगके समान वर्णवाला है और अन्तका तनुवातवलय परस्पर मिले हुए अनेक वर्णोंवाला है ॥३४॥ ये वातवलय दण्डके आकार लम्बे हैं, घनीभूत हैं, ऊपर-नीचे तथा चारों ओर स्थित हैं, चंचलाकृति हैं तथा लोकके अन्त तक वेष्टित हैं ॥३५॥ अधोलोकके नीचे तीनों वलयोंमें-से प्रत्येकका विस्तार बीस-बीस हजार योजन है और लोकके ऊपर तीनों वातवलय कुछ कम एक योजन विस्तारवाले हैं ॥३६॥ अधोलोकके नीचे तीनों

वातवलय दण्डाकार हैं और ऊपर चलकर जब ये दण्डाकार का परित्याग करते हैं अर्थात् लोकके आजू-बाजूमें खड़े होते हैं तब क्रमशः सात, पाँच और चार योजन विस्तारवाले रह जाते हैं ।।३७।। तदनन्तर प्रदेशोंमें हानि होते-होते मध्यम लोकके यहाँ इनका विस्तार क्रमसे पाँच, चार और तीन योजन रह जाता है ।।३८।। तदनन्तर प्रदेशोंमें वृद्धि होनेसे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर नामक पाँचवें स्वर्गके अन्तमें क्रमशः सात, पाँच और चार योजन विस्तृत हो जाते हैं ।।३९।। पुनः प्रदेशोंमें हानि होनेसे मोक्ष स्थानके समीप क्रमसे पाँच, चार और तीन योजन विस्तृत रह जाते हैं ।।४०।। तदनन्तर लोकके ऊपर पहुँचकर घनोदधि वातवलय आधा योजन अर्थात् दो कोस, घनवात वलय उससे आधा अर्थात् एक कोस और तनुवातवलय उससे कुछ कम अर्थात् पन्द्रहसे पचहत्तर धनुष प्रमाण विस्तृत है ।।४१।। तीनों वातवलयोंसे घिरा हुआ यह लोक ऐसा जान पड़ता है मानो महालोक जीतनेकी इच्छासे कवचोंसे ही आवेष्टित हुआ हो ।।४२।।

इस लोकमें पहली रत्नप्रभा, दूसरी शर्कराप्रभा, तीसरी बालुकाप्रभा, चौथी पंकप्रभा, पाँचवीं धूमप्रभा, छठवीं तमःप्रभा और सातवीं महातमःप्रभा ये सात भूमियाँ हैं। ये सातों भूमियाँ तीनों वातवलयोंपर अधिष्ठित तथा क्रमसे नीचे-नीचे स्थित हैं। अन्तमें चलकर ये सभी अधोलोकके नीचे स्थित घनोदधिवातवलय पर अधिष्ठित हैं ।।४३-४५।। इन पृथिवियोंके रूढ़ि नाम क्रमसे घर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी भी हैं ।।४६।। पहली रत्नप्रभा पृथिवी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है तथा खर भाग, पंक भाग और अब्बहुल भाग इन तीन भागोंमें विभक्त है ।।४७।। पहला खर भाग सोलह हजार योजन मोटा है, दूसरा पंक भाग चौरासी हजार योजन मोटा है और तीसरा अब्बहुल भाग अस्सी हजार योजन मोटा है ।।४८-४९।। पंक भागको राक्षसों तथा असुरकुमारोंके रत्नमयी देदीप्यमान भवन यथा क्रमसे सुशोभित कर रहे हैं ।।५०।। तथा खर भागको नौ भवनवासियोंके महाकान्तिसे युक्त, स्वयं जगमगाते हुए नाना प्रकार-के भवन अलंकृत कर रहे हैं ।।५१।। खर भागके १ चित्रा, २ वज्रा, ३ वैडूर्य, ४ लोहितांक, ५ मसारगल्व, ६ गोमेद, ७ प्रवाल, ८ ज्योति, ९ रस, १० अंजन, ११ अंजनमूल, १२ अंग, १३ स्फटिक, १४ चन्द्राभ, १५ वर्चस्क और १६ बहुशिलामय ये सोलह पटल हैं ।।५२-५४।। इनमेंसे प्रत्येक पटलको मोटाई एक-एक हजार योजन है तथा देदीप्यमान खर भाग इन सोलह पटल स्वरूप ही है ।।५५।। पंक भागसे शेष छह भूमियोंका अपना-अपना अन्तर अपनी-अपनी मोटाईसे कम एक-एक रज्जु प्रमाण है ।।५६।। समस्त तत्त्वोंको प्रत्यक्ष देखनेवाले श्री जिनेन्द्र देवने द्वितीयादि पृथिवियोंकी मोटाई क्रमसे बत्तीस हजार, अट्ठाईस हजार, चौबीस हजार, बीस हजार, सोलह हजार और आठ हजार योजन बतलायी है ।।५७-५८।।

प्रथम पृथिवीमें असुरकुमार आदि दसभवनवासी देवोंके भवनोंकी संख्या निम्न प्रकार जानना चाहिए—असुरकुमारोंके चौंसठ लाख, नागकुमारोंके चौरासी लाख, गरुड़कुमारोंके बहत्तर लाख, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, मेघकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और विद्युत्कुमार इन छह कुमारोंके छिहत्तर लाख तथा वायुकुमारोंके छियानबे लाख भवन हैं। ये सब भवन श्रेणि रूपसे स्थित हैं तथा प्रत्येकमें एक-एक चैत्यालय हैं ।।५९-६१।। पृथिवीके नीचे भूतोंके चौदह हजार और राक्षसोंके सोलह हजार भवन यथाक्रमसे स्थित हैं ।।६२।। जहाँ मणिरूपी सूर्यंकी निरन्तर आभा फैली रहती है ऐसे पाताल लोकमें असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार ये दस प्रकारके भवनवासी देव यथायोग्य अपने-अपने भवनोंमें निवास करते हैं ।।६३-६५।। उनमें असुरकुमारोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक सागर, नागकुमारोंकी तीन पल्य, सुपर्णकुमारोंकी अढ़ाई पल्य, द्वीपकुमारोंकी दो पल्य और

शेष छह कुमारोंकी डेढ़ पल्य प्रमाण है ॥६६-६७॥ असुरकुमारोंकी ऊँचाई पच्चीस धनुष, शेष नौ प्रकारके भवनवासियों तथा व्यन्तरोंकी दस धनुष और ज्योतिषी देवोंकी सात धनुष है ॥६८॥ सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंकी ऊँचाई सात हाथ है। उसके आगे एक तथा आधा हाथ कम होते-होते सर्वार्थसिद्धिमें एक हाथकी ऊँचाई रह जाती है। भावार्थ—पहले दूसरे स्वर्गमें सात हाथ, तीसरे चौथे स्वर्गमें छह हाथ, पांचवें, छठवें, सातवें, आठवें स्वर्गमें पाँच हाथ, नौवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें स्वर्गमें चार हाथ, तेरहवें, चौदहवेंमें साढ़े तीन हाथ, पन्द्रहवें-सोलहवें स्वर्गमें तीन हाथ, अधोग्रैवेयकोंमें अढ़ाई हाथ, मध्यम ग्रैवेयकोंमें दो हाथ, उपरि ग्रैवेयकोंमें तथा अनुदिश विमानोंमें डेढ़ हाथ और अनुत्तर विमानोंमें एक हाथ ऊँचाई है ॥६९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इसके आगे संक्षेपसे रत्नप्रभा आदि सातों भूमियोंके विलोंका यथाक्रमसे वर्णन करता हूँ सो सुन ॥७०॥

घर्मा नामक पहली पृथिवीके अब्बहुल भागमें ऊपर-नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर नारकियोंके विल हैं। यही क्रम शेष पृथिवियोंमें भी समझना चाहिए, किन्तु सातवीं पृथिवीमें पैंतीस कोशके विस्तारवाले मध्य देशमें विल हैं ॥७१-७२॥ पहली पृथिवीमें तीस लाख, दूसरीमें पच्चीस लाख, तीसरीमें पन्द्रह लाख, चौथीमें दस लाख, पांचवींमें तीन लाख, छठवींमें पांच कम एक लाख, सातवींमें पांच और सातोंमें सब मिलाकर चौरासी लाख विल हैं ॥७३-७४॥ उन पृथिवियोंमें क्रमसे तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पांच, तीन और एक प्रस्तार अर्थात् पटल हैं ॥७५॥ घर्मा पृथिवीके तेरह प्रस्तारोंमें क्रमसे निम्नलिखित तेरह इन्द्रक विल हैं—१ सीमन्तक, २ नारक, ३ रौरुक, ४ भ्रान्त, ५ उद्भ्रान्त, ६ संभ्रान्त, ७ असम्भ्रान्त, ८ विभ्रान्त, ९ त्रस्त, १० त्रसित, ११ वक्रान्त, १२ अवक्रान्त और १३ विक्रान्त ॥७६-७७॥ श्री जिनेन्द्र देवने वंशा नामक दूसरी पृथिवीके ग्यारह प्रस्तारोंमें निम्नांकित ग्यारह इन्द्रक विल बतलाये हैं—१ स्तरक, २ स्तनक, ३ मनक, ४ वनक, ५ घाट, ६ संघाट, ७ जिह्वा, ८ जिह्विक, ९ लोल, १० लोलुप और ११ स्तनलोलुप ॥७८-७९॥ तीसरी मेघा पृथिवीके नौ प्रस्तारोंमें निम्न प्रकार नौ इन्द्रक विल बतलाये हैं—१ तप्त, २ तपित, ३ तपन, ४ तापन, ५ निदाघ, ६ प्रज्वलित, ७ उज्ज्वलित, ८ संज्वलित और ९ संप्रज्वलित ॥८०-८१॥ चौथी पृथिवीके सात प्रस्तारोंमें क्रमसे निम्नलिखित सात इन्द्रक विल हैं—१ आर, २ तार, ३ मार, ४ वर्चस्क, ५ तमक, ६ खड और ७ खडखड ॥८२॥ पांचवीं पृथिवीके पाँच प्रस्तारोंमें निम्नलिखित पाँच इन्द्रक विल हैं—१ तम, २ भ्रम, ३ झष, ४ अन्त और ५ तामिस्र। ये इन्द्रक विल नगरोंके आकार हैं ॥८३॥ छठवीं पृथिवीमें १ हिम, २ वर्दल और ३ लल्लक ये तीन इन्द्रक विल हैं ॥८४॥ सातों पृथिवियोंके सब इन्द्रक मिलकर उनचास हैं। ऊपरसे नीचेकी ओर प्रत्येक पृथिवीमें दो-दो कम होते जाते हैं और नीचेसे ऊपरकी ओर प्रत्येक पृथिवी में दो-दो अधिक होते जाते हैं ॥८५॥ प्रथम पृथिवीके प्रथम प्रस्तार सम्बन्धी सीमन्तक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें प्रत्येकमें उनचास-उनचास श्रेणिबद्ध विल हैं और ये परस्पर बहुत भारी अन्तरको लिये हुए हैं ॥८६॥ इसी सीमन्तक विलकी चार विदिशाओंमें प्रत्येकमें अड़तालीस-अड़तालीस श्रेणिबद्ध विल हैं। इन श्रेणियों तथा श्रेणिबद्ध विलोंके सिवाय बहुतसे प्रकीर्णक विल भी हैं ॥८७॥ इन सीमन्तक आदि नरकोंमें नीचे-नीचे क्रम-क्रमसे एक-एक विल कम होता जाता है। इस प्रकार सातवीं पृथिवीके अप्रतिष्ठान नामक इन्द्रककी चार दिशाओंमें एक-एकके क्रमसे केवल चार विल हैं। वहाँ न श्रेणी है और न प्रकीर्णक विल ही हैं ॥८८॥ इस प्रकार प्रथम पृथिवीके प्रथम सीमन्तक इन्द्रककी चार दिशाओंमें एक सौ छियानबे, चार विदिशाओंमें एक सौ बानबे और सब मिलाकर तीन सौ अठासी श्रेणीबद्ध विल हैं ॥८९॥ दूसरे प्रस्तारके नारक इन्द्रककी चार दिशाओंमें एक सौ बानबे,

चार विदिशाओंमें एक सौ अठासी और सब मिलाकर तीन सौ अस्सी श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९०॥ तीसरे प्रस्तारके रौरुक इन्द्रकको चार दिशाओंमें एक सौ अठासी, चार विदिशाओंमें एक सौ चौरासी और सब मिलाकर तीन सौ बहत्तर श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९१॥ चौथे प्रस्तारके भ्रान्त नामक इन्द्रकको चार दिशाओंमें एक सौ चौरासी, विदिशाओंमें एक सौ अस्सी और सब मिलाकर तीन सौ चौंसठ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९२॥ पाँचवें प्रस्तारके उद्भ्रान्त नामक इन्द्रक विलकी दिशाओंमें एक सौ अस्सी, विदिशाओंमें एक सौ छिहत्तर और सब मिलाकर तीन सौ छप्पन श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९३॥ छठवें प्रस्तारके सम्भ्रान्त नामक इन्द्रक विलकी चार दिशाओंमें एक सौ छिहत्तर, विदिशाओंमें एक सौ बहत्तर और सब मिलाकर तीन सौ अड़तालीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९४॥ सातवें प्रस्तारके असम्भ्रान्त नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ बहत्तर, विदिशाओंमें एक सौ अड़सठ और सब मिलाकर तीन सौ चालीस श्रेणीबद्ध विल हैं ॥९५॥ आठवें प्रस्तारके विभ्रान्त नामक इन्द्रक विलकी चार दिशाओंमें एक सौ अड़सठ, विदिशाओंमें एकसौ चौसठ और सब मिलाकर तीन सौ बत्तीस श्रेणीबद्ध बिल हैं ॥९६॥ नौवें प्रस्तारके त्रस्त नामक इन्द्रक विलकी चार दिशाओंमें एक सौ चौसठ, विदिशाओंमें एक सौ साठ और सब मिलाकर तीन सौ चौबीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९७॥ दसवें प्रस्तारके त्रसित नामक इन्द्रक विलकी चार दिशाओंमें एक सौ साठ, विदिशाओंमें एक सौ छप्पन और सब मिलाकर तीन सौ सोलह श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९८॥ ग्यारहवें प्रस्तारके वक्रान्त नामक इन्द्रक विलकी चार दिशाओंमें एक सौ छप्पन, विदिशाओंमें एक सौ बावन और सब मिलाकर तीन सौ आठ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥९९॥ बारहवें प्रस्तारके अवक्रान्त नामक इन्द्रक विलकी चार दिशाओंमें एक सौ बावन, विदिशाओंमें एक सौ अड़तालीस और सब मिलाकर तीन सौ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१००॥ और तेरहवें प्रस्तारके विक्रान्त नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ अड़तालीस, विदिशाओं-में एक सौ चौवालीस और दोनोंके सब मिलाकर दो सौ बानवे श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१०१-१०२॥ इस प्रकार तेरहों प्रस्तारोंके समस्त श्रेणिबद्ध विल चार हजार चार सौ बीस, इन्द्रक विल तेरह और श्रेणिबद्ध तथा इन्द्रक दोनों मिलाकर चार हजार चार सौ तेंतीस विल हैं। इनके सिवाय उनतीस लाख पंचानबे हजार पांच सौ सड़सठ प्रकीर्णक विल हैं। इस प्रकार सब मिलाकर प्रथम पृथिवीमें तीस लाख विल हैं ॥१०३-१०४॥ द्वितीय पृथिवीके प्रथम प्रस्तारके स्तरक नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ चौवालीस, विदिशाओंमें एक सौ चालीस और सब मिलाकर दो सौ चौरासी श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१०५॥ द्वितीय प्रस्तारके स्तनक नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ चालीस, विदिशाओंमें एक सौ छत्तीस और सब मिलाकर दो सौ छिहत्तर श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१०६॥ तृतीय प्रस्तारके मनक नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ छत्तीस, विदिशाओंमें एक सौ बत्तीस और सब मिलाकर दो सौ अड़सठ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१०७॥ चतुर्थ प्रस्तारके वनक नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ बत्तीस, विदिशाओंमें एक सौ अट्ठाईस और सब मिलाकर दो सौ साठ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१०८॥ पंचम प्रस्तारके घाट नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ अट्ठाईस, विदिशाओंमें एक सौ चौबीस और सब मिलाकर दो सौ बावन विल श्रेणिबद्ध हैं ॥१०९॥ षष्ठ प्रस्तारके संघाट नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें एक सौ चौबीस, विदिशाओंमें एक सौ बीस और सब मिलाकर दो सौ चौवालीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥११०॥ सप्तम प्रस्तारके जिह्व नामक इन्द्रकको चारों दिशाओंमें एक सौ बीस, विदिशाओंमें एक सौ सोलह और सब मिलाकर दो सौ छत्तीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१११॥ अष्टम प्रस्तारके जिह्वक नामक इन्द्रकको चारों दिशाओंमें एक सौ सोलह, विदिशाओंमें एक सौ बारह और सब मिलाकर दो सौ अट्ठाईस

श्रेणिबद्ध विल हैं ॥११२॥ नवम प्रस्तारके लोल नामक इन्द्रकको चारों दिशाओंमें एक सौ बारह, विदिशाओंमें एक सौ आठ और सब मिलाकर दो सौ बीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥११३॥ दशम प्रस्तारके लोलुप नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें एक सौ आठ, विदिशाओंमें एक सौ चार और सब मिलाकर दो सौ बारह श्रेणिबद्ध विल हैं ॥११४॥ और एकादश प्रस्तारके स्तन-लोलुप नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें एक सौ चार, विदिशाओंमें सौ और सब मिलाकर दो सौ चार श्रेणिबद्ध विल हैं ॥११५॥ इस प्रकार इन ग्यारह प्रस्तारोंके श्रेणिबद्ध विल दो हजार छह सौ चौरासी और इन्द्रक विल ग्यारह हैं तथा दोनों मिलाकर दो हजार छह सौ पंचानवे हैं ॥११६॥ तथा प्रकीर्णक विल चौबीस लाख सत्तानवे हजार तीन सौ पाँच है। इस तरह सब मिलकर पचीस लाख विल हैं ॥११७॥

तीसरी पृथिवीके पहले प्रस्तार सम्बन्धी तप्त नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें सौ, विदिशाओंमें छियानबे और सब मिलाकर एक सौ छियानबे श्रेणिबद्ध विल हैं ॥११८॥ दूसरे प्रस्तारके तपित नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें छियानबे, विदिशाओंमें बानबे और दोनोंके मिलाकर एक सौ अट्ठासी श्रेणिबद्ध विल हैं ॥११९॥ तीसरे प्रस्तारके तपन नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें बानबे, विदिशाओंमें अट्ठासी और दोनोंके मिलाकर एक सौ अस्सी श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१२०॥ चौथे प्रस्तारके तापन नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें अट्ठासी, विदिशाओंमें चौरासी और दोनोंके मिलाकर एक सौ बहत्तर श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१२१॥ पाँचवें प्रस्तारके निदाघ नामक इन्द्रक विलकी चारों दिशाओंमें चौरासी, विदिशाओंमें अस्सी और दोनोंके मिलाकर एक सौ चौंसठ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१२२॥ छठे प्रस्तारके प्रज्वलित नामक इन्द्रकको चारों दिशाओंमें अस्सी, विदिशाओंमें छिहत्तर और दोनोंके मिलाकर एक सौ छप्पन श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१२३॥ सातवें प्रस्तारके उज्ज्वलित नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें छिहत्तर, विदिशाओंमें बहत्तर और दोनोंके मिलाकर एक सौ अड़तालीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१२४॥ आठवें संज्वलित नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें बहत्तर, विदिशाओंमें अड़सठ और दोनोंको मिलाकर एक सौ चालीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१२५॥ और नौवें प्रस्तारके संप्रज्वलित नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमे अड़सठ, विदिशाओंमें चौंसठ और दोनोंके सब मिलाकर एक सौ बत्तीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१२६॥ इस प्रकार नौ प्रस्तारोंके समस्त श्रेणिबद्ध विल एक हजार चार सौ छिहत्तर हैं। इनमें नौ इन्द्रक विलोंकी संख्या मिलानेपर एक हजार चार सौ पचासी विल होते हैं ॥१२७॥ तीसरी पृथिवीमें चौदह लाख, अंठानबे हजार पाँच सौ पन्द्रह प्रकीर्णक हैं और सब मिलाकर पन्द्रह लाख विल हैं ॥१२८॥

चौथी पृथिवीके पहले प्रस्तार सम्बन्धी आर नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें चौंसठ, विदिशाओंमें साठ और दोनोंके मिलाकर एक सौ चौबीस श्रेढिबद्ध विल हैं ॥१२९॥ दूसरे प्रस्तारके तार नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें साठ, विदिशाओंमें छप्पन और दोनोंके मिलाकर एक सौ सोलह श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१३०॥ तीसरे प्रस्तारके मार नामक इन्द्रककी चारों महा-दिशाओंमें छप्पन, विदिशाओंमें बावन और दोनोंके मिलाकर एक सौ आठ श्रेणिबद्ध विमान हैं ॥१३१॥ चौथे प्रस्तारके वर्चस्क नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें बावन, विदिशाओंमें अड़तालीस और दोनोंके मिलाकर एक सौ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१३२॥ पाँचवें प्रस्तारके तमक नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें अड़तालीस, विदिशाओंमें चवालीस और दोनोंके मिलाकर बानबे श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१३३॥ छठवें प्रस्तारके खड नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें चवालीस, विदिशाओंमें चालीस और दोनोंके मिलाकर चौरासी श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१३४॥ और सातवें

प्रस्तारके खड-खड नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें चालीस, विदिशाओंमें छत्तीस और दोनोंके मिलाकर छिहत्तर श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१३५॥ इस प्रकार चौथी भूमिमें सात इन्द्रक विलोंकी संख्या मिलाकर सब इन्द्रक और श्रेणिबद्ध विलोंकी संख्या सात सौ सात है ॥१३६॥ इनके सिवाय नौ लाख निन्यानबे हजार दो सौ तिरानबे प्रकोर्णक विल हैं तथा सब मिलाकर दश लाख विल हैं ॥१३७॥

पाँचवीं पृथिवी सम्बन्धी प्रथम प्रस्तारके तम नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें छत्तीस, विदिशाओंमें बत्तीस और दोनोंके मिलाकर अड़सठ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१३८॥ दूसरे प्रस्तारमें भ्रम नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें बत्तीस, विदिशाओंमें अट्ठाईस और दोनोंके मिलाकर साठ श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१३९॥ तीसरे प्रस्तारके ऋषभ नामक इन्द्रकी चारों महादिशाओंमें अट्ठाईस, विदिशाओंमें चौबीस और दोनोंमें मिलाकर बावन श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१४०॥ चौथे प्रस्तारके अन्ध्र नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें चौबीस, विदिशाओंमें बीस और दोनोंके मिलाकर चवालीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१४१॥ और पाँचवें प्रस्तारके तमिस्र नामक इन्द्रककी चारों दिशाओंमें बीस, विदिशाओंमें सोलह और दोनोंके मिलाकर छत्तीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१४२॥ इस प्रकार पांचवीं पृथिवीमें पांच इन्द्रक विल मिलाकर समस्त इन्द्रक और श्रेणिबद्ध विलोंकी संख्या दो सौ पैंसठ है। तथा दो लाख निन्यानबे हजार सात सौ पैंतीस प्रकोर्णक विल हैं और सब मिलकर तीन लाख विल हैं ॥१४३–१४४॥ छठवीं पृथिवी सम्बन्धी प्रथम प्रस्तारके हिम नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें सोलह, विदिशाओंमें बारह और दोनोंके मिलाकर अट्ठाईस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१४५॥ दूसरे प्रस्तारके वर्दल नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें बारह, विदिशाओंमें आठ और दोनोंके मिलाकर बीस श्रेणिबद्ध विल हैं ॥१४६॥ और तीसरे प्रस्तारके लल्लक नामक इन्द्रककी चारों महादिशाओंमें आठ, विदिशाओंमें चार और दोनोंके मिलाकर बारह श्रेणिबद्ध विल हैं॥१४७॥ इस प्रकार छठवीं पृथिवीके तीन प्रस्तारोंमें तीन इन्द्रकोंकी संख्या मिलाकर त्रेसठ इन्द्रक और श्रेणिबद्ध विल हैं तथा निन्यानबे हजार नौ सौ बत्तीस प्रकीर्णक विल हैं और सब मिलकर पांच कम एक लाख विल हैं। ये सभी विल प्राणियोंके लिए दुःखसे सहन करनेके योग्य हैं ॥१४८–१४९॥

सातवीं पृथिवीमें एक ही प्रस्तार है और उसके बीचमें अप्रतिष्ठान नामक इन्द्रक है उसकी चारों दिशाओंमें चार श्रेणिबद्ध विल हैं। इसकी विदिशाओंमें विल नहीं हैं तथा प्रकीर्णक विल भी इस पृथिवीमें नहीं हैं। एक इन्द्रक और चार श्रेणिबद्ध दोनों मिलकर पांच विल हैं ॥१५०॥

प्रथम पृथिवीके प्रथम प्रस्तारमें जो सीमन्तक नामका इन्द्रक विल है उसकी पूर्व दिशामें कांक्ष, पश्चिम दिशामें महाकांक्ष, दक्षिण दिशामें पिपास और उत्तर दिशामें अतिपिपास नामके चार प्रसिद्ध महानरक हैं। ये महानरक इन्द्रक विलके निकटमें स्थित हैं तथा दुर्वर्ण नारकियोंसे व्याप्त हैं ॥१५१–१५२॥ दूसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारमें जो तरक नामका इन्द्रक विल है उसकी पूर्व दिशामें अनिच्छ, पश्चिम दिशामें महानिच्छ, दक्षिण दिशामें विन्ध्य और उत्तर दिशामें महाविन्ध्य नामके प्रसिद्ध महानरक स्थित हैं ॥१५३॥ तीसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारमें जो तप्त नामका इन्द्रक विल है उसकी पूर्व दिशामें दुःख, पश्चिम दिशामें महादुःख, दक्षिण दिशामें वेदना और पश्चिम दिशामें महावेदना नामके चार प्रसिद्ध महानरक हैं ॥१५४॥ चौथी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारमें जो आर नामका इन्द्रक विल है, उसकी पूर्व दिशामें निःसृष्ट, पश्चिम दिशामें अतिनिःसृष्ट, दक्षिण दिशामें निरोध और उत्तर दिशामें महानिरोध नामके चार प्रसिद्ध महानरक हैं ॥१५५॥ पाँचवीं पृथिवीके प्रथम प्रस्तारमें जो तम नामका इन्द्रक है उसकी पूर्व दिशामें निरुद्ध, पश्चिम दिशामें अतिनिरुद्ध, दक्षिणमें विमर्दन और उत्तरमें महाविमर्दन

नामके चार प्रसिद्ध महानरक स्थित हैं ॥१५६॥ छठवीं पृथिवीके प्रथम प्रस्तारमें जो हिम नामका इन्द्रक विल है उसकी पूर्व दिशामें नील, पश्चिम दिशामें महानील, दक्षिणमें पंक और उत्तरमें महापंक नामके चार प्रसिद्ध महानरक स्थित हैं ॥१५७॥ और सातवीं पृथिवीमें जो अप्रतिष्ठान नामका इन्द्रक है उसकी पूर्व दिशामें काल, पश्चिम दिशामें महाकाल, दक्षिण दिशामें रौरव और उत्तर दिशामें महारौरव नामके चार प्रसिद्ध महानरक हैं ॥१५८॥ इस प्रकार सातों पृथिवियोंमें तेरासी लाख, नब्बे हजार, तीन सौ सैंतालिस प्रकीर्णक, नौ हजार छह सौ श्रेणिबद्ध, उनंचास इन्द्रक और सब मिलाकर चौरासी लाख विल हैं ॥१५९-१६०॥

प्रथम पृथिवीके तीस लाख विलोंमें छह लाख विल संख्यात योजन विस्तार वाले हैं और चौबीस लाख विल असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१६१॥ उसके नीचे दूसरी पृथिवीमें पांच लाख संख्यात योजन विस्तारवाले और बीस लाख असंख्यात योजन विस्तारवाले विल हैं ॥१६२॥ तीसरी पृथिवीमें तीन लाख संख्यात योजन विस्तारवाले और बारह लाख असंख्यात योजन विस्तारवाले विल हैं ॥१६३॥ चौथी पृथिवीमें दो लाख विल संख्यात योजन विस्तारवाले हैं और आठ लाख असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१६४॥ पांचवीं पृथ्वीमें साठ हजार विल संख्यात योजन विस्तार-वाले हैं और दो लाख चालीस हजार विल असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१६५॥ छठवीं पृथिवीमें उन्नीस हजार नौ सौ निन्यानबे विल संख्यातयोजन विस्तारवाले हैं और उन्यासी हजार नौ सौ छियानबे विल असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१६६-१६७॥ सातवीं पृथिवीमें एक अर्थात् बीचका इन्द्रक विल संख्यात योजन विस्तारवाला है और चारों दिशाओंके चार विल असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१६८॥ सातों पृथिवियोंमें जो इन्द्रक विल हैं वे सब संख्यात योजन विस्तारवाले हैं, तथा श्रेणिबद्ध विल असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं और प्रकीर्णक विलोंमें कितने ही संख्यात योजन विस्तारवाले तथा कितने ही असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं इस तरह उभय विस्तारवाले हैं ॥१६९-१७०॥

अब सातों पृथिवियोंके उनंचास इन्द्रक विलोंका विस्तार कहते हैं—उनमेंसे प्रथम पृथिवीके सीमन्तक इन्द्रकका विस्तार पैंतालीस लाख योजन है ॥१७१॥ दूसरे नारक इन्द्रकका विस्तार चवालीस लाख आठ हजार तीन सौ तैंतीस योजन तथा एक योजनके तीन भागोंमें-से एक भाग प्रमाण है ॥१७२॥ तीसरे रौरव इन्द्रकका विस्तार तैंतालीस लाख सोलह हजार छह सौ सड़सठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥१७३॥ चौथे भ्रान्त नामक इन्द्रकका विस्तार सब ओरसे बयालीस लाख पच्चीस हजार योजन है ॥१७४॥ पाँचवें उद्भ्रान्त नामक इन्द्रकका विस्तार इकतालीस लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें-से एक भाग प्रमाण है ॥१७५॥ छठवें सम्भ्रान्त नामक इन्द्रकका विस्तार चालीस लाख इकतालीस हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥१७६॥ सातवें असम्भ्रान्त इन्द्रकका विस्तार सब ओरसे उनतालीस लाख पचास हजार योजन है ॥१७७॥ आठवें विभ्रान्त नामक इन्द्रकका विस्तार अड़तीस लाख अठावन हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें-से एक भाग प्रमाण है ॥१७८॥ नौवें त्रस्त नामक इन्द्रकका विस्तार सैंतीस लाख छियासठ हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥१७९॥ दशवें त्रसित नामक इन्द्रकका विस्तार छत्तीस लाख पचहत्तर हजार योजन है ॥१८०॥ ग्यारहवें वक्रान्त नामक इन्द्रकका विस्तार पैंतीस लाख तेरासी हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें-से एक भाग प्रमाण है ॥१८१॥ बारहवें अवक्रान्त नामक इन्द्रकका विस्तार सब ओरसे चौंतीस लाख एकानबे हजार छह सौ छयासठ

योजन और एक योजनके तीन भागोंमें-से दो भाग प्रमाण है ॥१८२॥ और तेरहवें विक्रान्त नामक इन्द्रकका विस्तार चौंतीस लाख योजन है ॥१८३॥

द्वितीय पृथिवीके पहले स्तरक नामक इन्द्रकका विस्तार तैंतीस लाख आठ हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें-से एक भाग प्रमाण है ॥१८४॥ दूसरे स्तनक नामक इन्द्रकका विस्तार बत्तीस लाख सोलह हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग है ॥१८५॥ तीसरे मनक इन्द्रकका विस्तार इकतीस लाख पच्चीस हजार योजन है ॥१८६॥ चौथे वनक इन्द्रकका विस्तार तीस लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥१८७॥ पाँचवें घाट नामक इन्द्रकका विस्तार उनतीस लाख इकतालीस हजार छः सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥१८८॥ छठवें संघाट नामक इन्द्रकका विस्तार अट्ठाईस लाख पचास हजार योजन है ॥१८९॥ सातवें जिह्व नामक इन्द्रकका विस्तार सत्ताईस लाख अंठावन हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥१९०॥ आठवें जिह्विक इन्द्रकका विस्तार छब्बीस लाख छियासठ हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥१९१॥ नौवें लोल इन्द्रकका विस्तार पच्चीस लाख पचहत्तर हजार योजन है ॥१९२॥ दसवें लोलुप नामक इन्द्रकका विस्तार चौबीस लाख तेरासी हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥१९३॥ और ग्यारहवें स्तनलोलुप इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख एक्रानबे हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥१९४॥

तीसरी पृथिवीके पहले तप्त नामक इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख योजन है। दूसरे तपित इन्द्रकका विस्तार बाईस लाख आठ हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥१९५॥ तीसरे तपन इन्द्रकका विस्तार एक्कीस लाख सोलह हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥१९६॥ चौथे तापन नामक इन्द्रकका विस्तार मुनियोंने सब ओर बीस लाख पच्चीस हजार योजन कहा है ॥१९७॥ पाँचवें निदाघ नामक इन्द्रकका विस्तार उन्नीस लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥१९८॥ छठवें प्रज्वलित इन्द्रकका विस्तार अठारह लाख इकतालीस हजार छह सौ छियासठ योजन है ॥१९९॥ सातवें उज्ज्वलित इन्द्रकका विस्तार तत्त्वदर्शी आचार्योंने सत्रह लाख चालीस हजार योजन बतलाया है ॥२००॥ आठवें संज्वलित इन्द्रकका विस्तार सोलह लाख अंठावन हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥२०१॥ और नौवें संप्रज्वलित इन्द्रकका विस्तार पन्द्रह लाख छियासठ हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥२०२॥

चौथी पृथिवीके आर नामक पहले इन्द्रकका विस्तार सब ओर चौदह लाख पचहत्तर हजार योजन कहा है ॥२०३॥ दूसरे तार इन्द्रकका विस्तार तेरह लाख तेरासी हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥२०४॥ तीसरे मार नामक इन्द्रकका विस्तार बारह लाख एकानबे हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥२०५॥ चौथे वर्चस्क इन्द्रकका विस्तार बारह लाख योजन है। पांचवें तनक इन्द्रकका विस्तार ग्यारह लाख आठ हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥२०६॥ छठवें खड इन्द्रकका विस्तार दश लाख सोलह हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग है ॥२०७॥ और सातवें खडखड नामक

इन्द्रकका विस्तार जानकार आचार्योंने नौ लाख पच्चीस हजार योजन कहा है ॥२०८॥

पांचवीं पृथिवीके पहले तम नामक इन्द्रकका विस्तार आठ लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥२०९॥ दूसरे भ्रम इन्द्रकका विस्तार सात लाख इकतालीस हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग है ॥२१०॥ तीसरे झष इन्द्रकका विस्तार छह लाख पचास हजार योजन कहा गया है ॥२११॥ चौथे अन्ध्र नामक इन्द्रकका विस्तार पांच लाख अंठावन हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण वर्णित है ॥२१२॥ और पांचवें तमिस्र नामक इन्द्रकका विस्तार चार लाख छियासठ हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोमें दो भाग प्रमाण है ॥२१३॥

छठवीं पृथिवीके पहले हिम नामक इन्द्रकका विस्तार निर्मल केवलज्ञानके धारी अरहन्त भगवान्ने तीन लाख पचहत्तर हजार योजन बतलाया है ॥२१४॥ दूसरे वर्दल इन्द्रकका विस्तार दो लाख तेरासी हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥२१५॥ और तीसरे लल्लक इन्द्रकका विस्तार एक लाख एकानबे हजार छह सौ छियासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥२१६॥

सातवीं पृथिवीमें केवल अप्रतिष्ठान नामका एक ही इन्द्रक है तथा वस्तुके विस्तारको जाननेवाले सर्वज्ञ देवने उसका विस्तार एक लाख योजन बतलाया है ॥२१७॥

घर्मा नामक पहली पृथिवीके इन्द्रक बिलोंकी मुटाई एक कोश, श्रेणिबद्ध बिलोंकी एक कोश तथा एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग और प्रकीर्णक बिलोंकी दो कोश तथा एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥२१८॥ दूसरी वंशा पृथिवीके इन्द्रक बिलोंकी मुटाई डेढ़ कोश, श्रेणिबद्धोंकी दो कोश और प्रकीर्णकोंकी साढ़े तीन कोश है ॥२१९॥ तीसरी मेघा पृथिवीके इन्द्रकोंकी मुटाई दो कोश, श्रेणिबद्धोंकी दो कोश और एक कोशके तीन भागोंमें दो भाग, तथा प्रकीर्णकोंकी चार कोश और एक कोशके तीन भागोंमें दो भाग है ॥२२०॥ चौथी अंजना पृथिवीके इन्द्रकोंकी मुटाई अढ़ाई कोश, श्रेणिबद्धोंकी तीन कोश और एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग तथा प्रकीर्णकोंकी पांच कोश और एक कोशके छह भागोंमें पांच भाग है ॥२२१॥ पांचवीं अरिष्टा पृथिवीके इन्द्रकोंकी मुटाई तीन कोश, श्रेणिबद्धोंकी चार और प्रकीर्णकोंकी सात कोश है ॥२२२॥ छठी मघवी पृथिवीके इन्द्रकोंकी मुटाई साढ़े तीन कोश, श्रेणिबद्धोंकी चार कोश और एक कोशके तीन भागोंमें दो भाग तथा प्रकीर्णकोंकी आठ कोश और एक कोशके आठ भागोंमें छह भाग प्रमाण है ॥२२३॥ एवं माघवी नामक सातवीं पृथिवीके अप्रतिष्ठान इन्द्रककी मुटाई चार कोश, श्रेणिबद्धोंकी पांच कोश और एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग है। सातवीं पृथिवीमें प्रकीर्णक बिल नहीं है॥२२४॥ अब बिलोंका परस्पर अन्तर कहते हैं—प्रथम पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका अन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंको चौंसठ सौ निन्यानबे योजन (छह हजार चार सौ निन्यानबे योजन) दो कोश और एक कोशके बारह भागोंमें-से ग्यारह भाग जानना चाहिए ॥२२५-२२६॥ श्रेणिबद्ध बिलोंका चौंसठ सौ निन्यानबे योजन दो कोश और एक कोशके नौ भागोंमें पांच भाग है ॥२२७॥ तथा प्रकीर्णक बिलोंका अन्तर चौंसठ सौ निन्यानबे योजन दो कोश और एक कोशके छत्तीस भागोंमें सत्रह भाग प्रमाण है ॥२२८॥ द्वितीय पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका अन्तर बहुश्रुत विद्वानोंने दो हजार नौ सौ निन्यानबे योजन और चार हजार सात सौ धनुष कहा है ॥२२९-२३०॥ श्रेणिबद्ध बिलोंका अन्तर दो हजार नौ सौ निन्यानबे योजन और तीन हजार छह सौ धनुष है ॥२३१॥ एवं प्रकीर्णक बिलोंका भी पारस्परिक अन्तर उतना ही अर्थात् दो हजार नौ सौ निन्यानबे योजन और तीन सौ धनुष

है ॥२३२॥ तीसरी पृथिवीमें इन्द्रक विलोंका विस्तार बत्तीस सौ योजन और पैंतीस सौ धनुष प्रमाण है ॥२३३॥ श्रेणीगत विलोंका अन्तर विद्वानोंने बत्तोस सौ योजन और दो हजार धनुष बतलाया है ॥२३४॥ तथा प्रकोर्णकोंका अन्तर बत्तोस सौ अड़तालीस योजन और पचपन सौ धनुष कहा है ॥२३५॥ चोथो पृथिवीमें इन्द्रकविलोंका विस्तार छत्तीस सौ पैंसठ योजन और पचहत्तर सौ धनुष प्रमाण है ॥२३६॥ श्रेणिबद्ध विलोंका अन्तर छत्तोस सौ पैंसठ योजन, पचहत्तर सौ धनुष और एक धनुषके नौ भागोंमें-से पांच भाग प्रमाण है ॥२३७॥ तथा प्रकोर्णक विलोंका विस्तार छत्तीस सौ चौंसठ योजन, सतहत्तर सौ बाईस धनुष और एक धनुषके नौ भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥२३८-२३९॥ पांचवीं पृथिवीके इन्द्रक विलोंका अन्तर भेद तथा अन्तरोंका विस्तार जाननेवाले आचार्योंने चार हजार चार सौ निन्यानबे योजन और पाँच सौ धनुष बतलाया है ॥२४०-२४१॥ श्रेणिबद्ध विलोंका अन्तर चार हजार चार सौ अंठानबे योजन और छह हजार धनुष है ॥२४२॥ तथा प्रकीर्णक विलोंका अन्तर चार हजार चार सौ सन्तानबे योजन और छह हजार पांच सौ धनुष है ॥२४३॥ छठी पृथिवीके इन्द्रक विलोंका अन्तर छह हजार नौ सौ अंठानबे योजन और पचपन सौ धनुष प्रमाण है ॥२४४॥ श्रेणिबद्ध बिलोंका अन्तर छह हजार नौ सौ अंठानबे योजन और दो हजार धनुष है ॥२४५॥ तथा प्रकीर्णक विलोंका अन्तर छह हजार नौ सौ छियानबे योजन और सात हजार पांच सौ धनुष है ॥२४६॥ सातवीं पृथिवीमें इन्द्रक विलका अन्तर ऊपर-नीचे तीन हजार नौ सौ निन्यानबे योजन और एक गव्यूति अर्थात् दो कोश प्रमाण है ॥२४७॥ तथा इसी सातवीं पृथिवीमें श्रेणिबद्ध विलोंका अन्तर तीन हजार नौ सौ निन्यानबे योजन और एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ऐसा निश्चय है ॥२४८॥

अब सातों पृथिवियोंमें जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुका वर्णन करते हैं—पहली पृथिवीके प्रथम सीमन्तक नामक प्रस्तारमें नारकियोंकी जघन्य स्थिति दश हजार वर्षकी और उत्कृष्ट नब्बे हजार वर्षकी कही गयी है ॥२४९॥ दूसरे नारक नामक इन्द्रकमें कुछ अधिक नब्बे हजार वर्षकी जघन्य स्थिति और नब्बे लाख वर्षकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥२५०॥ रौरव नामक तीसरे प्रस्तारमें एक समय अधिक नब्बे लाखकी जघन्य स्थिति और असंख्यात करोड़ वर्षकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥२५१॥ भ्रान्त नामक चौथे प्रस्तारमें एक समय अधिक असंख्यात करोड़ वर्षकी जघन्य स्थिति और सागरके दसवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२५२॥ उद्भ्रान्त नामक पांचवें प्रस्तारमें एक समय अधिक सागरका दसवाँ भाग जघन्य स्थिति है और एक सागरके दश भागोंमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति तत्त्वज्ञ पुरुषोंने मानी है ॥२५३॥ सम्भ्रान्त नामक छठे प्रस्तारमें एक सागरके दश भागोंमें दो भाग तथा एक समय जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति सागरके दश भागोंमें तीन भाग प्रमाण है। असम्भ्रान्त नामक सातवें प्रस्तारमें जघन्य स्थिति सागरके दश भागोंमें समयाधिक तीन भाग है और उत्कृष्ट स्थिति सागरके दश भागोंमें चार भाग प्रमाण है ॥२५४॥ विभ्रान्त नामक आठवें प्रस्तारमें जघन्य स्थिति एक समय अधिक सागरके दश भागोंमें चार भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट स्थिति सागरके दश भागोंमें पांच भाग प्रमाण है। त्रस्त नामक नौवें प्रस्तारमें एक समय अधिक सागरके दश भागोंमें पांच भाग प्रमाण जघन्य स्थिति है और सागरके दश भागोंमें छह भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२५५॥ त्रसित नामक दसवें प्रस्तारमें जघन्य स्थिति एक समय अधिक सागरके दश भागोंमें छह भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट स्थिति सागरके दश भागोंमें सात भाग प्रमाण है। वक्रान्त नामक ग्यारहवें प्रस्तारमें जघन्य स्थिति एक समय अधिक सागरके दश भागोंमें सात भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट स्थिति सागरके दश भागोंमें आठ भाग प्रमाण है ॥२५६॥ अवक्रान्त नामक बारहवें प्रस्तारमें एक

समय अधिक सागरके दश भागोंमें आठ भाग प्रमाण जघन्य स्थिति है और एक सागरके दश भागोंमें नौ भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति विद्वानोंने कही है। विक्रान्त नामक तेरहवें प्रस्तारमें जघन्य स्थिति एक सागरके दश भागोंमें समयाधिक नौ भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट स्थिति सागरके दश भागोंमें दशों भाग अर्थात् एक सागर प्रमाण है। इस प्रकार घर्मा नामक पहली पृथिवीके तेरह प्रस्तारोंमें जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थितिका कथन किया। अब दूसरी पृथिवीके ग्यारह प्रस्तारोंमें स्थितिका वर्णन करते हैं ॥२५७-२५८॥

दूसरी पृथिवीके स्तरक नामक प्रथम प्रस्तारमें नारकियोंकी जघन्य आयु एक समय अधिक एक सागर और उत्कृष्ट स्थिति एक सागर तथा एक सागरके ग्यारह अंशोंमें दो अंश प्रमाण है ॥२५९॥ स्तनक नामक दूसरे प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति है तथा एक सागर पूर्ण और एक सागरके ग्यारह भागोंमें चार भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२६०॥ मनक नामक तीसरे प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति है और एक सागर पूर्ण तथा एक सागरके ग्यारह भागोंमें छह भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥ २६१ ॥ वनक नामक चौथे प्रस्तारमें विद्वानोंने यही जघन्य स्थिति तथा एक सागर पूर्ण और एक सागरके ग्यारह भागोंमें आठ भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही है ॥२६२॥ विघाट नामक पांचवें प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति तथा एक सागर पूर्ण और एक सागरके ग्यारह भागोंमें दश भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति विज्ञ पुरुषोंने प्रकट की है—बतलायी है ॥२६३॥ संघाट नामक छठे इन्द्रक अथवा प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति है और दो सागर पूर्ण तथा एक सागरके ग्यारह भागोंमें एक भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२६४॥ जिह्व नामक सातवें प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति है और दो सागर पूर्ण तथा एक सागरके ग्यारह भागोंमें तीन भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२६५॥ जिह्विक नामक आठवें प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति है और दो सागर पूर्ण तथा एक सागरके ग्यारह भागोंमें पाँच भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२६६॥ लोल नामक नौवें प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति तथा दो सागर पूर्ण और एक सागरके ग्यारह भागोंमें सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति जानना चाहिए ॥२६७॥ लोलुप नामक दसवें प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति और दो सागर पूर्ण तथा एक सागरके ग्यारह भागोंमें नौ भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२६८॥ एवं स्तनलोलुप नामक ग्यारहवें प्रस्तारमें यही जघन्य स्थिति और तीन सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है। इस तरह वंशा नामक दूसरी पृथिवीमें सामान्य रूपसे तीन सागर प्रमाण स्थिति प्रसिद्ध है ॥२६९॥

तीसरी पृथिवीके तप्त नामक प्रथम इन्द्रकमें तीन सागर जघन्य और तीन सागर पूर्ण तथा एक सागरके नौ भागोंमें चार भाग प्रमाण जघन्य स्थिति है ॥२७०॥ तपित नामक दूसरे इन्द्रकमें यही जघन्य तथा तीन सागर पूर्ण और एक सागरके नौ भागोंमें आठ भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति वर्णन करने योग्य है ॥२७१॥ तपन नामक तीसरे इन्द्रकमें यही जघन्य और चार सागर पूर्ण तथा एक सागरके नौ भागोंमें तीन भाग पूर्ण उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है ॥२७२॥ तापन नामक चौथे इन्द्रकमें यही जघन्य स्थिति और चार सागर पूर्ण तथा एक सागरके नौ भागोंमें सात भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी गयी है ॥२७३॥ निदाघ नामक पांचवें इन्द्रकमें यही जघन्य और पांच सागर पूर्ण तथा एक सागरके नौ भागोंमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति वर्णन की गयी है ॥२७४॥ प्रज्वलित नामक छठे इन्द्रकमें यही जघन्य स्थिति तथा पाँच सागर पूर्ण और एक सागरके नौ भागोंमें छह भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२७५॥ प्रज्वलित इन्द्रककी जो उत्कृष्ट स्थिति है वही उज्ज्वलित नामक सातवें इन्द्रककी जघन्य स्थिति है तथा छह सागर पूर्ण और एक सागरके नौ भागोंमें एक भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२७६॥ उज्ज्वलित इन्द्रकमें

जो उत्कृष्ट स्थिति है वही संज्वलित नामक आठवें इन्द्रककी जघन्य स्थिति है तथा छह सागर पूर्ण और एक सागरके नौ भागोंमें पांच भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥२७७॥ संप्रज्वलित नामक नौवें इन्द्रकमें यही जघन्य स्थिति और सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है। इस तरह तीसरे नरकमें सामान्य रूपसे सात सागरको स्थिति प्रसिद्ध है ॥२७८॥

ऊपर संप्रज्वलित नामक इन्द्रकमें जो सात सागरकी उत्कृष्ट स्थिति बतलायी है वह चौथी पृथिवीके आर नामक प्रथम इन्द्रकमें जघन्य स्थिति कही गयी है तथा सात सागर पूर्ण और एक सागरके सात भागोंमें-से तीन भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी गयी है ॥२७९॥ और इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है वही तार नामक दूसरे इन्द्रकमें जघन्य स्थिति बतलायी गयी है, तथा सात सागर पूर्ण और एक सागरके सात भागोंमें-से छह भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है ॥२८०॥ तार इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है वही मार नामक तीसरे इन्द्रकमें जघन्य स्थिति बतलायी गयी है और आठ सागर पूर्ण तथा एक सागरके सात भागोंमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है ॥२८१॥ मार इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है वही वर्चस्क नामक चौथे इन्द्रकमें जघन्य स्थिति बतलायी गयी है और आठ सागर पूर्ण तथा एक सागरके सात भागोंमें पांच भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है ॥२८२॥ वर्चस्क इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है वही तमक नामक पांचवें इन्द्रकमें जघन्य स्थिति बतलायी गयी है और नौ सागर पूर्ण तथा एक सागरके सात भागोंमें एक सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है ॥२८३॥ तमक इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है वही षड नामक छठे इन्द्रकमें जघन्य स्थिति बतलायी गयी है और नौ सागर पूर्ण तथा एक सागरके सात भागोंमें चार भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति प्रदर्शित की गयी है ॥२८४॥ षड इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है वही षडषड नामक सातवें इन्द्रकमें जघन्य स्थिति बतलायी गयी है और दश सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है। इस प्रकार चौथी पृथिवीमें सामान्य रूपसे दश सागर स्थिति प्रसिद्ध है ॥२८५॥ ऊपर जो स्थिति कही गयी है वही पांचवीं पृथिवीके तम नामक प्रथम इन्द्रकमें जघन्य स्थिति बतलायी गयी है। और ग्यारह सागर पूर्ण एक सागरके पांच भागोंमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कही गयी है ॥२८६॥ भ्रम नामक दूसरे इन्द्रकमें यही जघन्य स्थिति कही गयी है और बारह सागर पूर्ण तथा एक सागरके पाँच भागोंमें चार भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी गयी है ॥२८७॥

झष नामक तीसरे इन्द्रकमें यही जघन्य स्थिति कही गयी है और चौदह सागर पूर्ण तथा एक सागरके पांच भागोंमें एक भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी गयी है ॥२८८॥ अन्ध्र नामक चौथे इन्द्रकमें सत्यवादी जिनेन्द्र भगवान्ने यही जघन्य स्थिति कही है और पन्द्रह सागर पूर्ण तथा एक सागरके पाँच भागोंमें तीन भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी है ॥२८९॥ तमिस्र नामक पाँचवें इन्द्रकमें यही जघन्य स्थिति मानी जाती है और सत्रह सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी जाती है। इस प्रकार पाँचवीं पृथिवीमें सामान्य रूपसे सत्रह सागरकी आयु प्रसिद्ध है ॥२९०॥

छठी पृथिवीके हिम नामक प्रथम इन्द्रकमें सत्रह सागर प्रमाण जघन्य स्थिति कही गयी है और अठारह सागर पूर्ण तथा एक सागरके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी गयी है ॥२९१॥ वर्दल नामक दूसरे इन्द्रक विलमें यही जघन्य स्थिति कही गयी है और बीस सागर पूर्ण तथा तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी गयी है ॥२९२॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ गणधरादि देवोंने लल्लक नामक तीसरे इन्द्रकमें यही जघन्य स्थिति कही है तथा बाईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बतलायी है। इस प्रकार छठी पृथिवीमें सामान्य रूपसे बाईस सागर

प्रमाण आयु कही गयी है ॥२९३॥

सातवीं पृथिवीमें केवल एक अप्रतिष्ठान नामका इन्द्रक है सो उसमें यही जघन्य स्थिति बतलायी गयी है और जो उत्कृष्ट स्थिति है वह तैंतीस सागर प्रमाण है। इस प्रकार सातवीं पृथिवीमें सामान्य रूपसे तैंतीस सागर प्रमाण आयु प्रसिद्ध है ॥२९४॥ अब नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका वर्णन किया जाता है—

पहली पृथिवीके सीमन्तक नामक प्रथम प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई तीन हाथ है। तरक नामक दूसरे प्रस्तारमें एक धनुष एक हाथ तथा साढ़े आठ अंगुल है ॥२९५॥ रोरुक नामक तीसरे प्रस्तारमें एक धनुष तीन हाथ तथा सत्रह अंगुल है ॥२९६॥ भ्रान्त नामक चौथे प्रस्तारमें दो धनुष दो हाथ और डेढ़ अंगुल है। उद्भ्रान्त नामक पांचवें प्रस्तारमें तीन धनुष और दश अंगुल है ॥२९७॥ संभ्रान्त नामक छठवें प्रस्तारमें तीन धनुष दो हाथ और साढ़े अठारह अंगुल है ॥२९८॥ असंभ्रान्त नामक सातवें प्रस्तारमें विशद ज्ञानके धारी आचार्योंने नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई चार धनुष, एक हाथ और तीन अंगुल बतलायी है ॥२९९॥ भ्रान्ति रहित आचार्योंने विभ्रान्त नामक आठवें प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध चार धनुष तीन हाथ और साढ़े ग्यारह अंगुल प्रमाण कहा है ॥३००॥ त्रस्त नामक नौवें प्रस्तारमें पांच धनुष एक हाथ और बीस अंगुल ऊँचाई कही गयी है ॥३०१॥ जहाँ प्राणी भयभीत हो रहे हैं ऐसे त्रसित नामक दसवें प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई चतुर आचार्योंने छह धनुष और साढ़े चार अंगुल प्रमाण बतलायी है ॥३०२॥ वक्रान्त नामक ग्यारहवें प्रस्तारमें श्रेष्ठ वक्ताओंने नारकियोंका शरीर छः धनुष दो हाथ और तेरह अंगुल प्रमाण कहा है ॥३०३॥ अवक्रान्त नामक बारहवें प्रस्तारमें विद्वान् आचार्योंने नारकियोंकी ऊँचाई सात धनुष और साढ़े इक्कीस अंगुल कही है ॥३०४॥ और विक्रान्त नामक तेरहवें प्रस्तारमें सात धनुष तीन हाथ तथा छः अंगुल प्रमाण ऊँचाई है। इस प्रकार बुद्धिमान् आचार्योंने प्रथम पृथिवीमें ऊँचाईका वर्णन किया है ॥३०५॥

दूसरी पृथिवीके स्तरक नामक पहले प्रस्तारमें नारकियोंकी ऊँचाई आठ धनुष, दो हाथ, दो अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें दो भाग प्रमाण मानी जाती है ॥३०६॥ स्तनक नामक दूसरे प्रस्तारमें नारकियोंका उत्सेध नौ धनुष बाईस अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें चार भाग प्रमाण कहा गया है ॥३०७॥ मनक नामक तीसरे प्रस्तारमें नौ धनुष तीन हाथ अठारह अंगुल तथा एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें छह भाग प्रमाण ऊँचाई बतलायी है ॥३०८॥ वनक नामक चौथे प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई दश धनुष दो हाथ चौदह अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें आठ भाग मानी जाती है ॥३०९॥ घाट नामक पांचवें प्रस्तारमें ग्यारह धनुष, एक हाथ, दश अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें दश भाग शरीरकी ऊँचाई कही गयी है ॥३१०॥ संघाट नामक छठवें प्रस्तारमें नारकियोंकी ऊँचाई बारह धनुष सात अंगुल और एक अंगलके ग्यारह भागोंमें एक भाग प्रमाण कही गयी है ॥३११॥

जिह्वा नामक सातवें प्रस्तारमें बारह धनुष, तीन हाथ, तीन अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें तीन भाग प्रमाण ऊँचाई है ॥३१२॥ जिह्वक नामक आठवें प्रस्तारमें तेरह धनुष, एक हाथ, तेईस अंगुल और एक अंगुलके पाँच भागोंमें एक भाग प्रमाण ऊँचाई इष्ट है ॥३१३॥ लोल नामक नौवें प्रस्तारमें चौदह धनुष, उन्नीस अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें सात भाग प्रमाण ऊँचाई है ॥३१४॥ लोलुप नामक दसवें प्रस्तारमें चौदह धनुष तीन हाथ पन्द्रह अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें नौ भाग प्रमाण ऊँचाई है ॥३१५॥ और स्तनलोलुप नामक ग्यारहवें प्रस्तारमें पन्द्रह धनुष, दो हाथ और बारह अंगुल ऊँचाई इष्ट है। इस प्रकार दूसरी पृथिवीमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका वर्णन किया ॥३१६॥

तीसरी पृथिवीके तप्त नामक प्रथम प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सत्रह धनुष, एक हाथ, दश अंगु‾ और एक अंगुलके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण कही गयी है ॥३१७॥ स्पष्ट ज्ञान रूपी इष्ट दृष्टिको धारण करनेवाले तपित नामक दूसरे प्रस्तारमें नारकियोंकी ऊँचाई उन्नीस धनुष नौ अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण बतलायी है ॥३१८॥ शिष्टजनोंने तपन नामक तीसरे प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध बीस धनुष तीन हाथ और आठ अंगुल प्रमाण बतलाया है ॥३१९॥ तापन नामक चौथे प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई बाईस धनुष दो हाथ छः अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण कही गयी है ॥ २०॥ निदाघ नामक पांचवें प्रस्तारमें चौबीस धनुष, एक हाथ, पांच अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण ऊँचाई विद्वानोंने बतलायी है ॥३२१॥ जिनकी आत्मा ज्ञानके द्वारा देदीप्यमान है ऐसे आचार्योंने प्रोज्ज्वलित नामक छठवें प्रस्तारमें नारकियोंकी ऊँचाई छब्बीस धनुष और चार अंगुल प्रमाण बतलायी है ॥३२२॥ आगमज्ञानसे सुशोभित विद्वज्जनोंने उज्ज्वलित नामक सातवें प्रस्तारमें नारकियोंका शरीर सत्ताईस धनुष, तीन हाथ, दो अंगुल और एक अंगुल के तीन भागोंमें दो भाग प्रमाण ऊँचा कहा है ॥३२३॥ विद्वानोंको संज्वलित नामक आठवें प्रस्तारमें नारकियोंकी ऊँचाई उन्तीस धनुष, दो हाथ एक अंगुलके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण जानना चाहिए ॥३२४॥ और संप्रज्वलित नामक नौवें प्रस्तारमें ऊँचाईका प्रमाण एकतीस धनुष तथा एक हाथ प्रमाण कहा जाता है। इस प्रकार तीसरी पृथिवीमें नारकियोंकी ऊँचाईका वर्णन किया ॥३२५॥

चौथी पृथिवीके आर नामक प्रथम प्रस्तारमें पैंतीस धनुष, दो हाथ, बीस अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें चार भाग प्रमाण ऊँचाई कही गयी है ॥३२६॥ तार नामक दूसरे प्रस्तारमें चालीस धनुष, सत्रह अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें एक भाग प्रमाण नारकियोंकी ऊँचाई है ॥३२७॥ मार नामक तीसरे प्रस्तारमें चवालीस धनुष, दो हाथ, तेरह अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें पाँच भाग प्रमाण ऊँचाई मानी गयी है ॥३२८॥ वर्चस्क नामक चौथे प्रस्तारमें विद्वानों-ने शरीरकी ऊँचाई उनचास धनुष, दश अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें दो भाग प्रमाण बतलायी है ॥३२९॥ तमक नामक पाँचवें प्रस्तारमें त्रेपन धनुष, दो हाथ, छः अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें छः भाग प्रमाण ऊँचाई कही गयी है ॥३३०॥ षड नामक छठवें प्रस्तारमें अठावन धनुष, तीन अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें तीन प्रमाण ऊँचाई प्रकट की गयी है ॥३३१॥ और षडषड नामक सातवें प्रस्तारमें बासठ धनुष, दो हाथ ऊँचाई प्रसिद्ध है। इस प्रकार चौथी पृथिवीमें विद्यमान नारकियोंकी ऊँचाईका वर्णन किया है ॥३३२॥

पाँचवीं पृथिवीके तम नामक प्रथम प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई पचहत्तर धनुष बतलायी है। भ्रम नामक दूसरे प्रस्तारमें सत्तासी धनुष और दो हाथ है ॥३३३॥ झष नामक तीसरे प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सौ धनुष कही गयी है। अन्ध नामक चौथे प्रस्तारमें एक सौ बारह धनुष तथा दो हाथ है ॥३३४॥ और तमिस्र नामक पाँचवें प्रस्तारमें एक सौ पच्चीस धनुष है। इस प्रकार पांचवीं पृथिवीमें विद्वानोंने ऊँचाईका वर्णन किया है ॥३३५॥

छठवीं पृथिवीके हिम नामक प्रथम प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई एक सौ छयासठ धनुष, दो हाथ तथा सोलह अंगुल बतलायी है ॥३३६॥ वर्दल नामक दूसरे प्रस्तारमें शास्त्ररूपी नेत्रोंके धारक विद्वानोंने नारकियोंकी ऊँचाई दो सौ आठ धनुष, एक हाथ और छः अंगुल प्रमाण देखी है ॥३३७॥ और लल्लक नामक तीसरे प्रस्तारमें नारकियोंको ऊँचाई दो सौ पचास धनुष बतलायी है। इस प्रकार कृतकृत्य सर्वज्ञ देवने छठवीं पृथिवीमें ऊँचाईका वर्णन किया ॥३३८॥ सातवीं

पृथिवीमें एक ही अप्रतिष्ठान नामका प्रस्तार है तो उसमें सन्देहरहित ज्ञानके धारक आचार्योंने नारकियोंकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण निश्चित की है ॥३३९॥

प्रथम पृथिवीको आदि लेकर उन सातों पृथिवियोंमें यथाक्रमसे अवधिज्ञानका विषय इस प्रकार जानना चाहिए ॥३४०॥ पहली पृथिवीमें अवधिज्ञानका विषय एक योजन अर्थात् चार कोश, दूसरीमें साढ़े तीन कोश, तीसरीमें तीन कोश, चौथीमें अढ़ाई कोश, पाँचवींमें दो कोश, छठवींमें डेढ़ कोश और सातवींमें एक कोश प्रमाण है ॥३४१॥ प्रथम पृथिवी सम्बन्धी पहले पटलकी मिट्टीकी दुर्गन्ध आध कोश तक जाती है और उसके नीचे प्रत्येक पटलके प्रति आधा-आधा कोश अधिक बढ़ती जाती है ॥३४२॥ पहली और दूसरी पृथिवीमें रहनेवाले नारकी कापोत लेश्यासे युक्त हैं। तीसरी पृथिवीके ऊर्ध्व भागमें रहनेवाले कापोत लेश्यासे और अधोभागमें रहनेवाले नील लेश्यासे सहित हैं ॥३४३॥ चौथी पृथिवीके ऊपर-नीचे दोनों स्थानोंपर तथा पांचवीं पृथिवीके ऊपरी भागमें नील लेश्यासे युक्त हैं और अधोभागमें कृष्ण लेश्यासे सहित हैं ॥३४४॥ छठवीं पृथिवीके ऊर्ध्वभागमें कृष्ण लेश्यासे, अधोभागमें परमकृष्ण लेश्यासे और सातवीं पृथिवीके ऊपर-नीचे दोनों ही जगह रहनेवाले परमकृष्ण लेश्यासे संक्लिष्ट हैं अर्थात् संक्लेशको प्राप्त होते रहते हैं ॥३४५॥ प्रारम्भकी चार भूमियोंमें रहनेवाले नारकी उष्ण स्पर्शसे, पांचवीं भूमिमें रहनेवाले उष्ण और शीत दोनों स्पर्शोंसे तथा अन्तकी दो भूमियोंमें रहनेवाले केवल शीत स्पर्शसे ही पीड़ित रहते हैं ॥३४६॥ प्रारम्भकी तीन पृथिवियोंमें नारकियोंके उत्पत्ति-स्थान कुछ तो ऊँटके आकार हैं, कुछ कुम्भी (घड़िया), कुछ कुस्थली, मुद्गर, मृदंग और नाडीके आकार हैं ॥३४७॥ चौथी और पांचवीं पृथिवीमें नारकियोंके जन्मस्थान अनेक तो गौके आकार हैं, अनेक हाथी, घोड़े आदि जन्तुओं तथा धोंकनी, नाव और कमलपुटके समान हैं ॥३४८॥ अन्तिम दो भूमियोंमें कितने ही खेतके समान, कितने ही झालर और कटोरोंके समान, और कितने ही मयूरोंके आकारवाले हैं ॥३४९॥ वे जन्मस्थान एक कोश, दो कोश, तीन कोश और एक योजन विस्तारसे सहित हैं। उनमें जो उत्कृष्ट स्थान हैं वे सौ योजन तक चौड़े कहे गये हैं ॥३५०॥ उन समस्त उत्पत्ति स्थानोंकी ऊँचाई अपने विस्तारसे पँचगुनी है ऐसा वस्तु स्वरूप-को जाननेवाले आचार्य जानते हैं ॥३५१॥ समस्त इन्द्रक बिल तीन द्वारोंसे युक्त तथा तीन कोणों वाले हैं। इनके सिवाय जो श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक निगोद हैं उनमें कितने ही दो द्वारवाले दुकोने, कितने ही तीन द्वारवाले तिकोने, कितने ही पांच द्वारवाले पँचकोने और कितने ही सात द्वारवाले सतकोने हैं ॥३५२॥ इनमें संख्यात योजन विस्तारवाले बिलोंका अपना जघन्य अन्तर छः कोश और उत्कृष्ट अन्तर बारह कोश है ॥३५३॥ एवं असंख्यात योजन विस्तारवाले बिलोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात योजन तथा जघन्य अन्तर सात हजार योजन है ॥३५४॥

घर्मा नामक पहली पृथिवीके उत्पत्ति-स्थानोंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी जीव जन्मकालमें जब नीचे गिरते हैं तब सात योजन सवा तीन कोश ऊपर आकाशमें उछलकर पुनः नीचे गिरते हैं ॥३५५॥ दूसरी वंशा पृथिवीके निगोदोंमें जन्म लेनेवाले नारकी पन्द्रह योजन अढ़ाई कोश आकाशमें उछलकर नीचे गिरते हैं ॥३५६॥ तीसरी मेघा पृथिवीमें जन्म लेनेवाले जीव इकतीस योजन एक कोश आकाशमें उछलकर नीचे गिरते हैं ॥३५७॥ चौथी अंजना पृथिवीके निगोदोंमें जन्म लेनेवाले जीव बासठ योजन दो कोश उछलकर नीचे गिरते हैं और तीव्र दुःखसे दुःखी होते हैं ॥३५८॥ पांचवीं पृथिवीके निगोदोंमें जन्म लेनेवाले नारकी अत्यन्त दुःखी हो एकसौ पच्चीस योजन आकाशमें उछलकर नीचे गिरते हैं ॥३५९॥ छठवीं पृथिवीमें स्थित निगोदोंमें जन्म लेनेवाले जीव दो सौ योजन आकाशमें उछलकर नीचे गिरते हैं ॥३६०॥ और सप्तमी पृथिवीमें स्थित निगोदोंमें उत्पन्न हुए जीव पांच सौ धनुष ऊँचे उछलकर पृथिवी तलपर नीचे गिरते हैं ॥३६१॥ तीसरी पृथिवी तक असुरकुमार देव नारकियोंको परस्पर लड़ाते हैं। इसके सिवाय वे नारकी

पुराने वैर भावको जानकर स्वयं भी लड़ते रहते हैं ।।३६२।। विक्रिया शक्तिके द्वारा अपने शरीरसे ही उत्पन्न होनेवाले भाले, करोंत तथा शूल आदि नाना शस्त्रोंसे उन नारकियोंके खण्ड-खण्ड कर दिये जाते हैं और परस्पर एक दूसरेको पीड़ा पहुँचाते हैं ।।३६३।। खण्ड-खण्ड होनेपर भी पारेके समान उनके शरीरके टुकड़ोंका पुनः समूह बन जाता है और जब तक उनकी आयुकी स्थिति रहती है तब तक उनका मरण नहीं होता ।।३६४।। ये नारकी पूर्व कृत पाप कर्मके उदयसे निरन्तर एक दूसरेके द्वारा दिये हुए शारीरिक एवं मानसिक दुःखको सहते रहते हैं ।।३६५।। वे खारा गरम तथा अत्यन्त तीक्ष्ण वैतरणी नदीका जल पीते हैं और दुर्गन्धि युक्त मिट्टीका आहार करते हैं इसलिए निरन्तर असह्य दुःख भोगते रहते हैं ।।३६६।। रातदिन नरकमें पचनेवाले नारकियोंको निमेष मात्र भी कभी सुख नहीं होता ।।३६७।। उन नारकियोंके निरन्तर अत्यन्त अशुभ परिणाम रहते हैं। तथा नपुंसक लिंग और हुण्डक संस्थान होता है ।।३६८।। जो आगामी कालमें तीर्थंकर होनेवाले हैं तथा जिनके पापकर्मोंका उपशम हो चुका है। देव लोग भक्तिवश छः माह पहलेसे उनके उपसर्ग दूर कर देते हैं ।।३६९।। अन्तरके जाननेवाले आचार्योंने प्रथम पृथिवीमें नारकियोंकी उत्पत्तिका अन्तर अड़तालीस घड़ी बतलाया है ।।३७०।। और नीचेकी छह भूमियोंमें क्रमसे एक सप्ताह, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास और छह मासका विरह—अन्तरकाल कहा है ।।३७१।। जो तीव्र मिथ्यात्वसे युक्त हैं तथा बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रहके धारक हैं ऐसे तिर्यंच और मनुष्य उन पृथिवियोंको प्राप्त होते हैं अर्थात् उनमें उत्पन्न होते हैं ।।३७२।। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पहली पृथिवी तक जाते हैं, सरकनेवाले दूसरी पृथिवी तक, पक्षी तीसरी तक, सर्प चौथी तक, सिंह पाँचवीं तक, स्त्रियाँ छठवीं तक और तीव्र पाप करनेवाले मत्स्य तथा मनुष्य सातवीं पृथिवी तक जाते हैं ।।३७३-३७४।। सातवीं पृथिवीसे निकला हुआ जीव यदि पुनः अव्यवहित रूपसे सातवींमें जावे तो एक बार, छठवींसे निकला हुआ छठवींमें दो बार, पांचवींसे निकला हुआ पांचवींमें तीन बार, चौथीसे निकला हुआ चौथीमें चार बार, तीसरीसे निकला हुआ तीसरीमें पांच बार, दूसरीसे निकला हुआ दूसरीमें छः बार और पहलीसे निकला हुआ पहलीमें सात बार तक उत्पन्न हो सकता है ।।३७५–३७७।। सातवीं पृथिवीसे निकला हुआ प्राणी नियमसे संज्ञी तिर्यंच होता है तथा संख्यात वर्षकी आयुका धारक हो फिरसे नरक जाता है ।।३७८।। छठवीं पृथिवीसे निकला हुआ जीव संयमको प्राप्त नहीं होता। और पांचवीं पृथिवीसे निकला जीव तो संयमको प्राप्त हो सकता है पर मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता ।।३७९।। चौथी पृथिवीसे निकला हुआ मोक्ष प्राप्त कर सकता है परन्तु निश्चयसे तीर्थंकर नहीं हो सकता ।।३८०।। तीसरी दूसरी और पहली पृथिवीसे निकला हुआ जीव सम्यग्दर्शनकी शुद्धतासे तीर्थंकर पद प्राप्त कर सकता है ।।३८१।। नरकोंसे निकले हुए जीव बलभद्र, नारायण और चक्रवर्ती पद छोड़कर ही मनुष्य पर्याय प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् मनुष्य तो होते हैं पर बलभद्र नारायण और चक्रवर्ती नहीं हो सकते ।।३८२।। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे तेरे लिए अधो लोकके विभागका वर्णन किया। अब तू तिर्यंग्लोक—मध्यम लोकके विभागका वर्णन सुन ।।३८३।।

बुद्धिमान् मनुष्य सब समय, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, जिनेन्द्र भगवान्के वचन रूपी उत्तम दीपकोंकी सामर्थ्यसे सूर्य और चन्द्रमाके अगोचर अधोलोकके अन्धकारको नष्टकर वस्तुके यथार्थ स्वरूपको देखते हुए प्रभुत्वको प्राप्त होते हैं इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि तीन लोकमें जिनेन्द्र रूपी सूर्यके द्वारा प्रकाशके उत्पन्न होनेपर अन्धकारका सद्भाव कहां रह सकता है ? ।।३८४।।

इस प्रकार जिसमें अरिष्टनेमिके पुराणका संग्रह किया गया है ऐसे जिनसेनाचार्य प्रणीत हरिवंशपुराणमें अधोलोकका वर्णन करनेवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।।४।।

तनुवातवलयके अन्त भाग तक तिर्यंग्लोक अर्थात् मध्यलोक स्थित है। मेरु पर्वत एक लाख योजन विस्तारवाला है। उसी मेरु पर्वत द्वारा ऊपर तथा नीचे इस तिर्यंग्लोककी अवधि निश्चित है। भावार्थ—मेरु पर्वत कुल एक लाख योजन विस्तारवाला है। उसमें एक हजार योजन तो पृथिवीतलसे नीचे है और निन्यानबे हजार योजन पृथिवीतलसे ऊपर है। तिर्यग्लोककी सीमा इसी मेरु पर्वतसे निश्चित है अर्थात् तिर्यंग्लोक पृथिवीतलके एक हजार योजन नीचेसे लेकर निन्यानबे हजार योजन ऊँचाई तक है ॥१॥ इसी मध्यम लोकमें असंख्यात द्वीप-समुद्रोंसे वेष्टित गोल तथा जम्बू वृक्षसे युक्त जम्बू द्वीप स्थित है ॥२॥ यह जम्बू द्वीप लवण समुद्रका स्पर्श करनेवाला है, वज्रमयी वेदिकासे घिरा हुआ है, महामेरु रूपी नाभिसे युक्त है अर्थात् महामेरु इसके मध्यभागमें अवस्थित है तथा एक लाख योजन विस्तारवाला है ॥३॥ जम्बू द्वीपकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल है ॥४–५॥ विभाग करनेपर गणितज्ञ मनुष्य इस जम्बू-द्वीपका घनाकार क्षेत्र सात सौ नब्बे करोड़ छप्पन लाख, चौरानबे हजार एक सौ पचास योजन बतलाते हैं ॥६–७॥ इस जम्बू द्वीपमें सात क्षेत्र, एक मेरु, दो कुरु, जम्बू और शाल्मली नामक दो वृक्ष, छह कुलाचल, कुलाचलोंपर स्थित छह महासरोवर, चौदह महानदियां, बारह विभंगा नदियां, बीस वक्षार गिरि, चौंतीस राजधानी, चौंतीस रूप्याचल, चौंतीस वृषभाचल, अड़सठ गुहाएँ, चार गोलाकार नाभि गिरि और तीन हजार सात सौ चालीस विद्याधर राजाओंके नगर हैं। ऊपर कही हुई इन सभी चीजोंसे यह जम्बू द्वीप अत्यधिक सुशोभित है। जम्बू द्वीपसे दूने क्षेत्र तथा मेरु आदिसे दूसरा धातकीखण्ड द्वीप देदीप्यमान है और पुष्करार्ध भी धातकीखण्डके समान समस्त क्षेत्रों तथा पर्वतों आदिसे युक्त है ॥८–१२॥ जम्बू द्वीपमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं। इनमें भरत क्षेत्र सबसे दक्षिणमें है और ऐरावत क्षेत्र उत्तरमें है। प्रारम्भसे लेकर विदेह क्षेत्र तकके क्षेत्र विस्तारकी अपेक्षा पूर्व क्षेत्रसे चौगुने-चौगुने विस्तारवाले हैं। भावार्थ—भरत क्षेत्रसे चौगुना विस्तार हैमवत क्षेत्रका है, हैमवत क्षेत्रसे चौगुना विस्तार हरि क्षेत्रका है और हरि क्षेत्रसे चौगुना विस्तार विदेह क्षेत्रका है। विदेह क्षेत्रसे आगेके क्षेत्रोंका विस्तार चौथा भाग है अर्थात् विदेह क्षेत्रके विस्तारसे चौथा भाग विस्तार रम्यक क्षेत्रका है, रम्यक क्षेत्रसे चौथा भाग विस्तार हैरण्यवतका है और उससे चौथा भाग विस्तार ऐरावत क्षेत्रका है ॥१३–१४॥ हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं। इनमें आगे-आगेका कुलाचल पूर्व-पूर्व कुलाचलसे चौगुने-चौगुने विस्तार वाला है। यह क्रम निषध कुलाचल तक ही चलता है। इसके आगे उत्तरके तीन कुलाचल दक्षिणके कुलाचलोंके समान कहे गये हैं ॥१५–१६॥ प्रथम भरत क्षेत्रका विस्तार पांच सौ छब्बीस योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें छह भाग प्रमाण है ॥१७॥ जम्बू द्वीपकी चौड़ाई एक लाख योजनमें यदि एक सौ नब्बे योजनका भाग दिया जाय तो भरत क्षेत्रका उक्त विस्तार स्पष्ट हो जाता है। भावार्थ—भरत

क्षेत्रका जो विस्तार ५२६ ६/१९ योजन बतलाया है। वह जम्बू द्वीपके विस्तारका एक सौ नब्बेवां भाग है ॥१८॥ क्षेत्रसे पर्वत दूने विस्तारवाला है। और पर्वतसे क्षेत्र दूने विस्तारवाला है। दूने विस्तारका यह क्रम विदेह क्षेत्र तक चलता है। उसके आगेके क्षेत्र और पर्वतोंका विस्तार ह्रासको लिये हुए है अर्थात् आगेके क्षेत्र और पर्वत अर्ध-अर्ध विस्तारवाले हैं ॥१९॥ * भरत क्षेत्रके ठीक मध्य भागमें विजयार्ध नामसे प्रसिद्ध एक दूसरा पर्वत सुशोभित है। इसके दोनों अन्तभाग पूर्व और पश्चिमके दोनों समुद्रोंको प्राप्त हैं तथा इसपर विद्याधरोंका निवास है ॥२०॥ यह पर्वत पृथिवीसे पचीस योजन ऊँचा है, सवा छह योजन पृथिवीके नीचे स्थित है, पचास योजन चौड़ा है और चाँदीके समान सफेद वर्णवाला है ॥२१॥ पृथिवीसे दश योजन ऊपर चलकर इस पर्वतकी दो श्रेणियां हैं जो पर्वतके ही समान लम्बी हैं तथा जिनमें अनेक विद्याधरोंका निवास है ॥२२॥ दक्षिण महाश्रेणीमें पचास और उत्तर महाश्रेणीमें साठ नगर हैं, ये सब नगर स्वर्गपुरीके समान हैं ॥२३॥ यहांसे दश योजन और ऊपर चलकर आभियोग्य जातिके देवोंकी क्रीड़ाके योग्य अनेक नगर स्थित हैं ॥२४॥ यहांसे पांच योजन और ऊपर चढ़कर एक पूर्णभद्र नामकी श्रेणी है जो दश योजन चौड़ी है तथा विजयार्ध नामक देवसे आश्रित है अर्थात् जहां विजयार्ध देवका निवास है ॥२५॥ इस विजयार्ध पर्वतपर नौ कूट हैं जिनमें पहला सिद्धायतन, दूसरा दक्षिणार्धक, तीसरा खण्डकप्रपात, चौथा पूर्णभद्र, पांचवां विजयार्धकुमार, छठवां मणिभद्र, सातवां तामिस्रगुहक, आठवां उत्तरार्ध और नौवां वैश्रवण कूट है। ये नौ कूट पर्वतके अग्रभागपर सुशोभित हैं तथा सवा छह योजन ऊँचाईको धारण करते हैं ॥२६-२८॥ इन पर्वतोंका विस्तार मूलमें सवा छह योजन, मध्यमें कुछ कम पाँच योजन और ऊपर कुछ अधिक तीन योजन कहा गया है ॥२९॥ सिद्धायतन कूट-पर पूर्व दिशाकी ओर सिद्धकूट नामसे प्रसिद्ध अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिर सुशोभित है ॥३०॥ इस अविनाशी जिनमन्दिरकी ऊँचाई पौन कोश, चौड़ाई आध कोश और लम्बाई एक कोश है ॥३१॥ भरत क्षेत्रके अर्ध भागमें विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण प्रत्यञ्चा नौ हजार सात सौ अड़तालीस योजन और बारह कला प्रमाण विस्तृत है ॥३२॥ प्रत्यंचा के धनुःपृष्ठका विस्तार नौ हजार सात सौ छयासठ योजन तथा कुछ अधिक एक कला प्रमाण कहा गया है ॥३३॥ इस निकटस्थ धनुषका बाण दो सौ अड़तीस योजन और तीन कला प्रमाण है ॥३४॥ विजयार्ध पर्वतकी उत्तर प्रत्यंचा दश हजार सात सौ सत्ताईस योजन तथा ग्यारह कला प्रमाण है ॥३५॥ इस उत्तर प्रत्यंचाका धनुःपृष्ठ दश हजार सात सौ तैंतालीस योजन तथा कुछ अधिक पन्द्रह कला प्रमाण है ॥३६॥ विजयार्धके इस उत्तर धनुःपृष्ठका बाण दो सौ अठासी योजन तथा तीन कला प्रमाण है ॥३७॥ जिनेन्द्रदेवने विजयार्ध पर्वतकी चूलिका कुछ कम चार सौ छयासी योजन बतलायी है ॥३८॥ विजयार्ध पर्वतकी पूर्व-पश्चिम भुज़ाओंका विस्तार चार सौ अठासी योजन तथा कुछ अधिक सोलह कला प्रमाण है ॥३९॥ भरत क्षेत्रकी प्रत्यंचा चौदह हजार चार सौ इकहत्तर योजन और कुछ कम छह कला है ॥४०॥ इसका धनुःपृष्ठ चौदह हजार पांच सौ अट्ठाईस योजन तथा ग्यारह कला प्रमाण है ॥४१॥ भरतक्षेत्र सम्बन्धी धनुःपृष्ठके बाणका विस्तार पांच सौ छब्बीस योजन और छह कला प्रमाण प्रसिद्ध है ॥४२॥ भरत क्षेत्रकी चूलिका अठारह सौ पचहत्तर योजन तथा कुछ अधिक साढ़े छह भाग बतलायी है ॥४३॥ इसकी पूर्व-पश्चिम भुजाओंका विस्तार एक हजार आठ सौ बानबे योजन तथा कुछ अधिक साढ़े सात भाग है ॥४४॥ हिमवान् कुलाचलकी ऊँचाई सौ योजन, गहराई पचीस योजन और चौड़ाई एक हजार बावन योजन तथा बारह कला प्रमाण कही गयी है ॥४५-४६॥ इस हिमवत् कुलाचलकी प्रत्यंचाका प्रमाण चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन तथा कुछ कम एक कला प्रमाण बतलाया है ॥४७-४८॥ इसका बाण एक हजार

पांच सौ अठहत्तर योजन तथा अठारह कला प्रमाण कहा है ॥४९॥ हिमवत्कुलाचलकी चूलिकाका विस्तार पाँच हजार दो सौ तीस योजन तथा कुछ अधिक सात कला है ॥५०॥ इसकी पूर्व-पश्चिम दोनों भुजाओंका विस्तार पाँच हजार तीन सौ पचास योजन साढ़े पन्द्रह भाग है ॥५१॥ इस सुवर्णमय हिमवत् कुलाचलके शिखरपर पूर्वसे पश्चिम तक पंक्ति रूपसे स्थित ग्यारह कूट सुशोभित हो रहे हैं ॥५२॥ उन कूटोंके नाम इस प्रकार हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. हिमवत्कूट, ३. भरतकूट, ४. इलाकूट, ५. गंगाकूट, ६. श्रीकूट, ७. रोहितकूट, ८. सिन्धुकूट, ९. सुरादेवीकूट, १०. हैमवतकूट और ११. वैश्रवणकूट । इन सभी कूटोंकी ऊँचाई पचीस योजन प्रमाण है ॥५३–५५॥ इन सबका मूलमें पचीस योजन, मध्यमें पौने उन्नीस योजन और ऊपर साढ़े बारह योजन विस्तार है ॥५६॥

इसके आगे दूसरा हैमवत क्षेत्र है इसका विस्तार दो हजार एक सौ पाँच योजन तथा पांच कला प्रमाण माना गया है ॥५७॥ इसकी प्रत्यंचा सैंतीस हजार छह सौ चौहत्तर योजन तथा कुछ कम सोलह कला प्रमाण है ॥५८॥ इस प्रत्यंचाका धनुषपृष्ठ अड़तीस हजार सात सौ चालीस योजन तथा कुछ अधिक दश कला प्रमाण है ॥५९॥ और इसका बाण तीन हजार छह सौ चौरासी योजन तथा चार कला है ॥६०॥ इसकी चूलिका छह हजार तीन सौ इकहत्तर योजन तथा कुछ अधिक सात कला है ॥६१॥ पूर्व-पश्चिम भुजाओंका मान छह हजार सात सौ पचपन योजन और कुछ अधिक तीन भाग है ॥६२॥

इसके आगे महाहिमवान् कुलाचल है इसका विस्तार चार हजार दो सौ दश योजन तथा दश कला है ॥६३॥ यह पर्वत पृथिवीसे दो सौ योजन ऊपर उठा है तथा पचास योजन पृथिवीके नीचे गया है ॥६४॥ इसकी प्रत्यंचाका विस्तार तिरपन हजार नौ सौ इकतीस योजन तथा कुछ अधिक छह कला है ॥६५॥ इस प्रत्यंचाके धनुःपृष्ठका विस्तार सत्तावन हजार दो सौ तिरानबे योजन तथा कुछ अधिक दश अंश है ॥६६॥ इसके बाणकी चौड़ाई सात हजार आठ सौ चौरानबे योजन तथा चौदह भाग है ॥६७॥ इस महाहिमवान् पर्वतकी चूलिका आठ हजार एक सौ अट्ठाईस योजन तथा साढ़े चार कला है ॥६८॥ इसकी दोनों भुजाएँ नौ हजार दो सौ छिहत्तर योजन तथा साढ़े नौ कला प्रमाण हैं ॥६९॥ चांदीके समान श्वेतवर्णवाले इस पर्वतके शिखरपर रत्नोंसे शिखरों-को अनुरंजित करनेवाले उत्तम एवं स्थायी आठ कूट सुशोभित हो रहे हैं ॥७०॥ उन कूटोंके नाम इस प्रकार हैं—१. सिद्धायतनकूट, २. महाहिमवत्कूट, ३. हैमवत कूट, ४. रोहिता कूट, ५. ह्री कूट, ६. हरिकान्त कूट, ७. हरिवर्ष कूट और ८. वैडूर्य कूट । सब कूटोंकी ऊँचाई पचास योजन प्रमाण है ॥७१–७२॥ मूलमें इन कूटोंका विस्तार पचास योजन, मध्यमें साढ़े सैंतीस योजन और ऊपर पचीस योजन है ॥७३॥

इसके आगे हरिवर्ष क्षेत्र है इसका विस्तार आठ हजार चार सौ इक्कीस योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें-से एक भाग प्रमाण है ॥७४॥ इसकी प्रत्यंचाका विस्तार तिहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और सत्रह कला है ॥७५॥ इस प्रत्यंचाका धनुःपृष्ठ आठ हजार चार सौ सोलह योजन तथा कुछ अधिक चार कला है ॥७६॥ इसके बाणका विस्तार सोलह हजार तीन सौ पन्द्रह योजन तथा पन्द्रह कला है ॥७७॥ इसकी चूलिका नौ हजार नौ सौ पचासी योजन तथा साढ़े पाँच कला है ॥७८॥ और इसकी भुजाओंका प्रमाण तेरह हजार तीन सौ इकसठ योजन साढ़े छह कला है ॥७९॥

इसके आगे निषध पर्वत है इसका विस्तार सोलह हजार आठ सौ बयालीस योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥८०॥ इसकी ऊँचाई चार सौ योजन है और पृथिवीके नीचे गहराई सौ योजन प्रमाण है ॥८१॥ इस पर्वतकी प्रत्यंचा चौरानबे हजार एक सौ

छप्पन योजन तथा अधिक दो कला है ॥८२॥ इसका धनुःपृष्ठ एक लाख चौबीस हजार तीन सौ छियालीस योजन तथा कुछ अधिक नौ कला है ॥८३॥ इस धनुःपृष्ठके बाणका विस्तार तैंतीस हजार एक सौ सन्तावन योजन तथा सत्रह कला है ॥८४॥ इस निषध कुलाचलकी चूलिका दश हजार एक सौ सत्ताईस योजन तथा कुछ अधिक दो कला है ॥८५॥ इसकी भुजाओंका प्रमाण बीस हजार एक सौ पैंसठ योजन तथा कुछ अधिक अढ़ाई कला है ॥८६॥ इस स्वर्णमय निषधाचलके मस्तकपर नौ कूट हैं जो कि सब प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे सुशोभित हो रहे हैं ॥८७॥ उन कूटोंके नाम इस प्रकार हैं—१ सिद्धायतन कूट, २ निषध कूट, ३ हरिवर्ष कूट, ४ पूर्व विदेह कूट, ५ ह्री कूट, ६ धृति कूट, ७ सीतोदा कूट, ८ विदेह कूट और ९ रुचक कूट ॥८८-८९॥ इन सबकी ऊँचाई और मूलकी चौड़ाई सौ योजन है। बीचकी चौड़ाई पचहत्तर योजन और मस्तक—ऊर्ध्व भागकी चौड़ाई पचास योजन है ॥९०॥

इसके आगे विदेह क्षेत्र है इसका विस्तार तैंतीस हजार छह सौ चौरासी योजन तथा एक योजनके उन्नीस भागोंमें चार भाग प्रमाण है ॥९१॥ इसकी प्रत्यंचाका प्रमाण मानो समानताके कारण स्पर्धा करनेवाले जम्बू द्वीपके बराबर एक लाख योजन है ॥९२॥ इसके धनुःपृष्ठका विस्तार एक लाख अंठावन हजार एक सौ तेरह योजन तथा कुछ अधिक साढ़े सोलह कला है ॥९३॥ बाणका विस्तार पचास हजार योजन है सो ठीक ही है क्योंकि उतने बड़े धनुषका उतना बड़ा बाण होना उचित ही है ॥९४॥ विदेहार्धकी चूलिका दो हजार नौ सौ इक्कीस योजन तथा कुछ अधिक अठारह कला है ॥९५॥ इसकी दोनों भुजाओंका विस्तार सोलह हजार आठ सौ तिरासी योजन तथा सवा तेरह कलासे कुछ अधिक है ॥९६॥ जम्बू द्वीपके दक्षिणार्ध भागमें क्षेत्र तथा पर्वत आदिका जो प्रमाण बतलाया है वही उत्तरार्ध भागमें भी जानना चाहिए ॥९७॥ प्रत्यंचा, धनुःपृष्ठ, बाण, भुजा तथा चूलिकाका जो विस्तार दक्षिणार्धमें बतलाया गया है वही शेषार्धमें भी है ॥९८॥ उत्तरार्धके पर्वतोंमें जो विशेषता है उसे बतलाते हैं—विदेह क्षेत्रके आगे जो वैडूर्यमणिमय नील पर्वत है उसके ऊपर निम्नलिखित नौ कूट हैं—१ सिद्धायतन कूट, २ नील कूट, ३ पूर्व विदेह कूट, ४ सीताकूट, ५ कीर्ति कूट, ६ नरकान्तककूट, ७ अपर विदेह कूट, ८ रम्यक कूट और ९ अपदर्शन कूट। इन सब कूटोंकी ऊँचाई तथा मूल मध्य और ऊर्ध्व भागकी चौड़ाई निषधाचलके कूटोंके समान है ॥९९-१०१॥ रुक्मी पर्वत चाँदीका है उसके अग्रभागपर निम्नलिखित आठ कूट हैं—पहला सिद्धायतन कूट, दूसरा रुक्मि कूट, तीसरा रम्यक कूट, चौथा नारी कूट, पांचवां बुद्धि कूट, छठा रूप्य कूट, सातवाँ हैरण्यवत कूट और आठवाँ मणिकांचनकूट। इन सबकी सामान्य ऊँचाई मूल मध्य तथा अग्र भागका विस्तार महाहिमवान् पर्वतके कूटोंके समान जानना चाहिए ॥१०२-१०४॥ शिखरी पर्वत सुवर्णमय है उसके अग्रभागपर निम्नलिखित ग्यारह कूट हैं—१ सिद्धायतन कूट, २ शिखरी कूट, ३ हैरण्यवत कूट, ४ सुरदेवी कूट, ५ रक्ता कूट, ६ लक्ष्मी कूट, ७ सुवर्ण कूट, ८ रक्तवती कूट, ९ गन्धदेवी कूट, १० ऐरावत कूट और ११ मणिकांचन कूट। ये सब कूट शोभा, मूल-मध्य और अन्त सम्बन्धी विस्तार तथा सुन्दर ऊँचाईसे हिमवत् पर्वतके कूटोंके समान हैं ॥१०५-१०८॥ ऐरावत क्षेत्रके मध्यमें जो विजयार्ध पर्वत है उसके अग्रभाग पर भी नौ कूट हैं जो कि उत्तमोत्तम रत्न तथा मणियोंके समूहसे देदीप्यमान हो रहे हैं। उन कूटोंके नाम इस प्रकार हैं—१ सिद्धायतन कूट, २ उत्तरार्ध कूट, ३ तामिस्रगुह कूट, ४ मणिभद्र कूट, ५ विजयार्ध कुमार कूट, ६ पूर्णभद्र कूट, ७ खण्डकप्रपात कूट, ८ दक्षिणार्ध कूट और ९ वैश्रवण कूट। ये सब कूट प्रमाणकी अपेक्षा भरत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्धपर स्थित कूटोंके तुल्य हैं ॥१०९-११२॥ सात क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले तथा पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे जिन छह कुलाचलोंका वर्णन पहले कर

आये हैं उनमें-से प्रत्येकके दोनों अन्त भागमें वनखण्ड सुशोभित हैं। ये वनखण्ड समस्त ऋतुओंके फूलोंसे भरे तथा फलोंके भारसे नम्रीभूत वृक्षों और पक्षिसमूह तथा भ्रमरोंके मधुर शब्दोंसे मनोहर हैं, आधा योजन विस्तृत हैं, चित्र-विचित्र मणियोंकी वेदिकाओंसे सहित हैं और पर्वतकी लम्बाईके बराबर हैं ॥११३–११५॥ व्यास—विस्तारके रहस्यको जाननेवाले आचार्योंने इन वनखण्डोंकी वेदिकाकी ऊँचाई आधा योजन और चौड़ाई पांच सौ धनुष बतलायी है ॥११६॥ वेदिकाओंके ऊपर योग्य स्थानों पर चारों ओर उत्तमोत्तम रत्नोंसे निर्मित नाना रंगके तोरण हैं ॥११७॥ कुलाचलोंके ऊपर चारों ओर मणि तथा रत्नोंसे बनी हुई दिव्य तथा दो कोश ऊँची पद्म-वेदिका है ॥११८॥ मध्य लोकमें गृह, द्वीप, समुद्र, पृथिवी, नदी, ह्रद और पर्वतोंकी जो वेदिकाएँ हैं उनकी ऊँचाई और विस्तार भी इसी प्रकार समझना चाहिए अर्थात् सबकी ऊँचाई आधा योजन और चौड़ाई पाँच सौ धनुष हैं ॥११९॥

उक्त छह महाकुलाचलोंके मध्यभागमें पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे छह विशाल सरोवर हैं ॥१२०॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—१ पद्म, २ महापद्म, ३ तिगिंछ, ४ केसरी, ५ महापुण्डरीक और ६ पुण्डरीक ॥१२१॥ उन सरोवरोंसे चौदह नदियां निकली हैं जिनमें सात तो पूर्व सागरमें प्रवेश करती हैं और सात पश्चिम सागरमें ॥१२२॥ उन नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—१ गंगा, २ सिन्धु, ३ रोह्या (रोहित्), ४ रोहितास्या, ५ हरित्, ६ हरिकान्ता, ७ सीता, ८ सीतोदा, ९ नारी, १० नरकान्ता, ११ सुवर्णकूला, १२ रूप्यकूला, १३ रक्ता और १४ रक्तोदा। ये सब नदियां पृथिवीतलपर हजारों सहायक नदियोंसे युक्त हैं ॥१२३–१२५॥ पद्म सरोवर एक हजार योजन लम्बा, पांच सौ योजन चौड़ा और दश योजन गहरा है ॥१२६॥ शुभ एवं शीतल जलसे भरे हुए इस सरोवरको हिमवत्कुलाचलकी वेदिकाके तुल्य एक वेदिका चारों ओरसे घेरे हुए है ॥१२७॥ इस पद्म सरोवरमें एक योजन विस्तारवाला कमल है। यह कमल पानीसे निकलकर आधा योजन ऊपर उठा हुआ है, तथा एक कोशकी उसकी कर्णिका सुशोभित है ॥१२८॥ दक्षिण तथा उत्तर भागमें जो अन्य सरोवर हैं उनको लम्बाई-चौड़ाई आदि पूर्व-पूर्वके सरोवरोंसे दुगुनी-दुगुनी है तथा उन सब सरोवरोंमें कमल सुशोभित हैं ॥१२९॥ कमलोंपर जो ऊँचे-ऊँचे भवन बने हुए हैं उनमें यथाक्रमसे श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी देवियां निवास करती हैं ॥१३०॥ ये सब देवियां एक पल्यकी आयुवाली हैं। इनमें दक्षिण भागकी देवियां सौधर्मेन्द्रकी और उत्तर भागकी देवियां ऐशानेन्द्रकी आज्ञाकारिणी हैं। ये सब सामानिक देवोंकी सभासे सहित हैं ॥१३१॥

पद्म सरोवरके पूर्व द्वारसे गंगा, पश्चिम द्वारसे सिन्धु और उत्तर द्वारसे रोहितास्या नदी निकली है। ये नदियां सरोवरसे निकलकर कुछ दूर तक पर्वतपर ही बहती हैं ॥१३२॥ महापद्मसरोवरसे रोह्या और हरिकान्ता, तिगिंछसे हरित् और सीतोदा, केशरी सरोवरसे सीता और नरकान्ता, महापुण्डरीक सरोवरसे नारी और रूप्यकूला और पुण्डरीक सरोवरसे सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा नदी निकली हैं। इन नदियोंके निकलनेके द्वार तोरणोंसे सुशोभित हैं ॥१३३–१३५॥ जिस वज्रमुख द्वारसे गंगा निकलती है उसका विस्तार छह योजन और एक कोश है तथा उसकी गहराई आधे कोशकी है ॥१३६॥ उस द्वारपर चित्र-विचित्र मणियोंसे देदीप्यमान एक तोरण बना हुआ है जो नौ योजन तथा एक योजनके आठ भागोंमें

तीन भाग प्रमाण ऊँचा है ॥१३७॥ गंगा नदी अपने निर्गम स्थानसे निकलकर पांच सौ योजन तो पूर्व दिशाकी ओर बही है फिर वलखाती हुई गंगा कूटसे लौटकर दक्षिणकी ओर भरत क्षेत्रमें आयी है ॥१३८॥ वह गंगा कुछ अधिक सौ योजन आकाशसे उलंघकर पर्वतसे पचीस योजनकी दूरीपर गिरी है ॥१३९॥

हिमवत् पर्वतके दक्षिण तटपर एक जिह्विका नामकी प्रणाली है जो छह योजन तथा एक कोश चौड़ी है, दो कोश ऊँची तथा उतनी ही लम्बी है और वृषभाकार अर्थात् गोमुखके आकारकी है ॥१४०॥ इस प्रणाली द्वारा गंगा, गोश्रृंगका आकार धारण करती हुई श्रीदेवीके भवनके आगे गिरी है और वहां भूमिपर इसका विस्तार दश योजन हो गया है ॥१४१॥ भूमिपर साठ योजन चौड़ा तथा दश योजन गहरा एक वज्रमुख नामका कुण्ड है इस कुण्डके मध्यमें एक द्वीप है जो आठ योजन चौड़ा है तथा पानीसे दो कोश ऊँचा है। इस द्वीपके ऊपर एक वज्रमय पर्वत है जो मूलमें चार योजन, मध्यमें दो योजन, तथा अन्तमें एक योजन चौड़ा एवं दश योजन ऊँचा है ॥१४२–१४४॥ उस पर्वतके शिखरपर एक सुशोभित वज्रमय भवन है जो मूलमें तीन हजार, मध्यमें दो हजार और अन्तमें एक हजार धनुष विस्तृत है। तथा भीतर पांच सौ धनुष लम्बा, दो-सौ पचास धनुष चौड़ा और दो हजार धनुष ऊँचा है ॥१४५–१४६॥ उस भवनका अस्सी योजन ऊँचा तथा चालीस योजन चौड़ा वज्रकपाट नामका वज्रमय द्वार है ॥१४७॥ वज्रमुख कुण्डसे दक्षिणकी ओर जाकर कहीं कुण्डलके आकार गमन करती हुई गंगा विजयार्ध पर्वतकी गुफामें आठ योजन चौड़ी हो गयी है ॥१४८॥ चौदह हजार नदियोंके साथ जहाँ यह गंगा पूर्व लवण समुद्रमें प्रवेश करती है वहां इसकी चौड़ाई साढ़े बासठ योजनकी हो गयी है ॥१४९॥ गंगा जिस तोरण द्वारसे लवण समुद्रमें प्रवेश करती है वह तेरानबे योजन तीन कोश ऊँचा है तथा आधा योजन गहरा है ॥१५०॥

सिन्धु नदी सब प्रकारसे गंगा नदीके समान है केवल विशेषता यह है कि यह पश्चिम लवण समुद्रमें मिली है। गंगा-सिन्धुसे लेकर विदेह क्षेत्र तककी समस्त नदियोंकी जिह्विका आदिका विस्तार दूना-दूना जानना चाहिए ॥१५१॥ समस्त नदियोंके तोरण गहराईकी अपेक्षा समान हैं तथा उन समस्त तोरणोंमें यथायोग्य दिक्कुमारी देवियां निवास करती हैं ॥१५२॥ रोहितास्या नदी दो सौ छिहत्तर योजन छह कला पर्वतपर बहती है। तदनन्तर पर्वतसे गिरकर श्री देवीके भवनकी ओर गयी है ॥१५३॥ रोह्या नदी एक हजार छह सौ पांच योजन पांच कला पर्वतपर बहकर उससे पचास योजन दूर गिरी है ॥१५४॥ इसी प्रकार हरिकान्ता नदी भी महाहिमवान् पर्वतपर एक हजार छह सौ पचास योजन पांच कला उत्तर दिशाकी ओर बहकर सौ योजन दूर कुण्डमें गिरी है और वहांसे पश्चिम समुद्रकी ओर गयी है ॥१५५॥ हरित् नदी सात हजार चार सौ इक्कीस योजन एक कला निषध पर्वतपर बहकर सौ योजन दूरपर गिरी है ॥१५६॥ सीतोदा नदी भी इतनी ही दूर पर्वतपर बहती है। तदनन्तर चार सौ योजन ऊँचे आकाशको उल्लंघ कर पर्वतसे दो सौ योजन दूर गिरती है ॥१५७॥ सीता नदी भी इतनी ही दूर नील पर्वतपर बहती है और इतनी ही दूर आकाशमें उछलकर पूर्व विदेह क्षेत्रको भेदन करती है ॥१५८॥ उत्तर दिशाकी छह नदियां दक्षिण दिशाकी छह नदियोंके समान हैं इसलिए उनके प्रपात आदिका वर्णन दो-दो नदियोंके युगल रूपमें यथायोग्य करना चाहिए ॥१५९॥ गंगा, रोह्या, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदियां पूर्व समुद्रकी ओर जाती हैं और शेष सात नदियां पश्चिम समुद्रकी ओर ॥१६०॥ हैमवत आदि चार क्षेत्रोंके मध्यमें क्रमसे श्रद्धावान्, विजयावान्, पद्मवान् और गन्धवान् नामके चार गोलाकार विजयार्ध पर्वत हैं ॥१६१॥ ये पर्वत मूलमें एक हजार योजन, मध्यमें सात सौ पचास योजन और मस्तकपर पांच सौ योजन चौड़े हैं तथा एक हजार योजन

ऊँचे हैं ॥१६२॥ इन पर्वतोंका दूसरा नाम नाभि गिरि है जिस प्रकार सीता, सीतोदा नदी मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देती हुई गयी है इसी प्रकार रोह्या, रोहितास्या आदि नदियाँ भी आधा योजन दूर रहकर इन पर्वतोंकी प्रदक्षिणा देती हुई गयी हैं ॥१६३॥ इन पर्वतोंके शिखरोंपर निर्मित भवनोंमें क्रमसे स्वाति, अरुण, पद्म और प्रभास नामके व्यन्तर देव निवास करते हैं ॥१६४॥

जम्बू द्वीपमें जिन क्षेत्र, पर्वत तथा नदी आदिका वर्णन किया है, धातकीखण्ड तथा पुष्करार्धमें वे सब दूने-दूने हैं ॥१६५॥ संख्यात द्वीप समुद्रोंको उल्लंघकर एक दूसरा जम्बू द्वीप भी है। इस जम्बू द्वीपमें जिन देवोंका कथन किया है उस दूसरे जम्बू द्वीपमें भी इन देवोंके नगर हैं ॥१६६॥ नील कुलाचल और सुमेरु पर्वतके मध्यमें जो प्रदेश स्थित हैं वे उत्तरकुरु माने जाते हैं और सुमेरु तथा निषध कुलाचलके बीचके प्रदेश देवकुरु कहे जाते हैं ॥१६७॥ ये दोनों कुरु विस्तार-की अपेक्षा ग्यारह हजार आठ सौ योजन दो कला प्रमाण माने गये हैं ॥१६८॥ इनकी प्रत्यंचा त्रेपन हजार और धनुःपृष्ठ छह हजार चार सौ अठारह योजन बारह कला है ॥१६९॥ इन कुरु प्रदेशोंका वृत्तक्षेत्र इकहत्तर हजार एक सौ तैंतालीस योजन तथा एक योजनके नौ अंशोंमें चार अंश प्रमाण है ॥१७०॥

विदेह क्षेत्रका समस्त विस्तार तैंतीस हजार छह सौ चौरासी योजन चार कला है ॥१७१॥ मेरु पर्वतकी पूर्वोत्तर (ऐशान) दिशामें, सीता नदीके पूर्व तटपर नील कुलाचलके समीप जम्बू स्थल कहा गया है ॥१७२॥ पाँच सौ धनुष चौड़ी और दो कोश ऊँची रत्नमयी वेदिका इस स्थलको चारों ओरसे घेरे हुए है ॥१७३॥ इस स्थलकी चौड़ाई मूलमें पाँच सौ कोश, मध्यमें आठ कोश और अन्तमें दो कोश कही गयी है ॥१७४॥ इस स्वर्णमय स्थलमें आठ कोश ऊँची एक पीठिका स्थित है जो मूलमें बारह कोश, मध्यमें आठ कोश और अन्तमें चार कोश चौड़ी है ॥१७५॥ इस पीठिकाके नीचे-नीचे चारों ओर रत्ननिर्मित छह वेदिकाएँ और हैं तथा उन प्रत्येक वेदिकाओंपर दो-दो रत्नमयी वेदिकाएँ हैं। उन छहों वेदिकाओंपर जो लघु वेदिकाएँ हैं वे पद्मवेदिका कहलाती हैं ॥१७६॥

इस पूर्वोक्त पीठिकाके ऊपर जम्बू वृक्ष सुशोभित है। वह जम्बू वृक्ष मूलमें एक कोश चौड़ा है, उसका स्कन्ध दो योजन ऊँचा है, उसकी गहराई दो कोश है, उसकी शाखाएँ आठ योजन तक फैली हुई हैं, उसका महास्कन्ध नीलमणिका बना हुआ है, वह हीराकी शाखाओंसे शोभित है, चाँदीके सुन्दर पत्तोंसे युक्त है, उसके फूल-फल तथा अंकुर मणिमय हैं, और उसने अपने लाल-लाल पल्लवोंके समूहसे समस्त दिशाओंके अन्तरालको लाल-लाल कर दिया है ॥१७७–१७९॥ पृथिवीकाय रूप तथा नाना शाखाओंसे सुशोभित इस महावृक्षकी चारों दिशाओं-में चार महाशाखाएँ हैं ॥१८०॥ इनमें उत्तर दिशाकी शाखापर आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला जिनमन्दिर है और शेष तीन दिशाओंकी शाखाओंपर भवन बने हुए हैं जिनमें आदर-अनादरका निवास है ॥१८१॥ उस जम्बू वृक्षके नीचे उन दोनों देवोंके तीस योजन चौड़े और पचास योजन ऊँचे अनेक भवन बने हुए हैं ॥१८२॥ वेदिकाओंके सात अन्तरालोंमें एक-एक प्रधान वृक्षसे सहित जो अनेक वृक्ष हैं वे ही इस जम्बू वृक्षके परिवार-वृक्ष कहलाते हैं ॥१८३॥ प्रथम वृक्षके परिवार-वृक्ष चार हैं, दूसरेके एक सौ आठ, तीसरेके चार हजार, चौथेके सोलह हजार, पाँचवेंके बत्तीस हजार, छठेके चालीस हजार और सातवेंके अड़तालीस हजार हैं। सात प्रधान वृक्षोंको साथ मिलानेपर इन समस्त वृक्षोंकी संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ उन्नीस होती है ॥१८४-१८६॥

मेरु पर्वतकी दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) दिशामें सीतोदा नदीके दूसरे तटपर निषधाचलके समीप रजतमय एक शाल्मली स्थल है ॥१८७॥ जम्बू स्थलकी समानता रखनेवाले इस शाल्मली

स्थलमें शालमली वृक्ष है। उसका सब वर्णन जम्बू वृक्षके वर्णनके समान जानना चाहिए ॥१८८॥ शालमली वृक्षकी दक्षिण शाखापर अविनाशी जिन-मन्दिर है और शेष तीन शाखाओंपर जो भवन बने हुए हैं उनमें वेणु और वेणुदारी देव निवास करते हैं। जिस प्रकार उत्तरकुरुमें आदर और अनादर देव इष्ट माने गये हैं उसी प्रकार देवकुरुमें वेणुदारी देव इष्ट माने गये हैं ॥१८९–१९०॥

नील पर्वतकी दक्षिण दिशामें सीता नदीके पूर्व तटपर एक हजार योजन विस्तारवाले चित्र और विचित्र नामके दो कूट हैं ॥१९१॥ इसी प्रकार निषध पर्वतकी उत्तर दिशामें सीतोदा नदीके दोनों तटोंपर यम कूट और मेघ कूट नामके दो कूट हैं ॥१९२॥ ये कूट नाभि पर्वतोंके समान विस्तारवाले हैं तथा इन कूटोंपर कूटोंके ही समान नामवाले देव अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं ॥१९३॥ नील पर्वतसे साढ़े पाँच सौ योजन दूरीपर नदीके मध्यमें नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावण और माल्यवान् नामके पांच ह्रद हैं। ये समस्त ह्रद पांच-पांच सौ योजनके अन्तरसे हैं तथा इनकी दक्षिणोत्तर लम्बाई पद्म ह्रदके समान मानी गयी है ॥१९४–१९५॥ इसी प्रकार निषध पर्वतसे उत्तरकी ओर नदीके बीच निषध, देवकुरु, सूर्य, सुलस और तडित्प्रभ नामके पाँच महाह्रद हैं। इन सबके तट रत्नोंसे चित्र-विचित्र हैं तथा सबके मूल भाग वज्रमय हैं। इन महाह्रदोंमें कमलोंपर जो भवन बने हैं उनमें नागकुमार देव निवास करते हैं ॥१९६–१९७॥ प्रत्येक महाह्रदमें एक-एक प्रधान कमल है जो जलसे दो कोश ऊँचा है, एक योजन विस्तृत है और एक कोश विस्तृत कर्णिकासे युक्त है ॥१९८॥ प्रत्येक प्रधान कमलके साथ परिवार रूपमें एक लाख चालीस हजार एक सौ सत्रह कमल और भी हैं ॥१९९॥ तथा एक-एक महाह्रदके सम्मुख सीता, सीतोदा नदियोंके तटपर कांचनकूट नामके दश-दश पर्वत हैं ॥२००॥ इन पर्वतोंकी ऊँचाई सौ योजन है तथा विस्तार मूलमें सौ योजन, मध्यमें पचहत्तर योजन और अग्रभागमें पचास योजन है ॥२०१॥ उन कांचनकूटोंमें प्रत्येकके ऊपर एक-एक अकृत्रिम शुभ जिन-प्रतिमाएँ हैं जो निराधार हैं, मोक्ष मार्गको प्रकाशित करनेवाली हैं, पाँच सौ धनुष ऊँची हैं, मणिमयी, सुवर्णमयी तथा रत्नमयी हैं। एक-एक मेरुपर दो-दो सौ कूट हैं और पांचों मेरुओंके एक हजार कूट प्रसिद्ध हैं ॥२०२–२०३॥ इन पर्वतोंके शिखरोंपर अनेक क्रीड़ागृह बने हुए हैं उनमें महाकान्तिके धारक कांचनक नामके देव सब ओर क्रीड़ा करते रहते हैं ॥२०४॥ मेरु पर्वतसे पूर्वकी ओर सीता नदीके उत्तर तटपर पद्मोत्तर और दक्षिण तटपर नीलवान् नामका कूट है ॥२०५॥ मेरु पर्वतसे दक्षिणकी ओर सीतोदा नदीके पूर्व तटपर स्वस्तिक और पश्चिम तटपर अंजनगिरि कूट है ॥२०६॥ इसी सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर कुमुद कूट और उत्तर तटपर पलाश कूट है। ये दोनों ही कूट मेरुसे पश्चिम दिशामें माने गये हैं ॥२०७॥ सीता नदीके पश्चिम तटपर वतंस कूट और पूर्व तटपर रोचन नामका विशाल कूट है। ये दोनों कूट मेरु पर्वतसे उत्तरको ओर हैं। ये समस्त कूट भद्रशाल वनमें सुशोभित हैं, कांचन कूटोंके समान हैं तथा इनमें दिग्गजेन्द्र नामके देव निवास करते हैं ॥२०८–२०९॥ मेरु पर्वतकी पश्चिमोत्तर दिशामें गन्धमादन नामका प्रसिद्ध पर्वत है। यह पर्वत सब ओरसे सुवर्णमय है ॥२१०॥ मेरुकी पूर्वोत्तर दिशामें माल्यवान् नामका प्रसिद्ध पर्वत है। यह पर्वत वैडूर्यमणिमय है तथा स्वयं देदीप्यमान होता हुआ अतिशय प्रिय मालूम होता है ॥२११॥ मेरुकी पूर्व-दक्षिण दिशामें रजतमय सौमनस्य पर्वत और दक्षिण-पश्चिम कोणमें सुवर्णमय विद्युत्प्रभ नामका पर्वत है ॥२१२॥ ये चारों पर्वत नील और निषध पर्वतके समीप चार सौ योजन तथा मेरु पर्वतके समीप पांच सौ योजन ऊँचे कहे गये हैं ॥२१३॥ इनकी गहराई अपनी ऊँचाईसे चतुर्थभाग है, तथा देवकुरु और उत्तरकुरुके समीप इनकी चौड़ाई पांच सौ योजन है ॥२१४॥ इन चारोंकी लम्बाई तीस हजार दो सौ नौ योजन तथा छह कला प्रमाण कही गयी है ॥२१५॥ इन चारों

पर्वतोंपर मेरु पर्वतसे लेकर अन्त तक क्रमसे सात, नौ, सात और नौ कूट हैं अर्थात् गन्धमादनपर सात, माल्यवान्‌पर नौ, सौमनस्यपर सात और विद्युत्प्रभपर नौ कूट हैं ॥२१६॥ १ सिद्धायतन कूट, २ गन्धमादन कूट, ३ उत्तरकुरु कूट, ४ गन्धमालिनिका कूट, ५ लोहिताक्ष कूट, ६ स्फटिक कूट और ७ आनन्द कूट ये सात कूट गन्धमादन पर्वतपर हैं ॥२१७-२१८॥ १ सिद्ध कूट, २ माल्यवत्कूट, ३ उत्तरकुरु कूट, ४ कच्छा कूट, ५ सागर कूट, ६ रजत कूट, ७ पूर्णभद्र कूट, ८ सीता कूट और ९ हरिसह कूट ये नौ कूट माल्यवान् पर्वतपर हैं ॥२१९-२२०॥ १ सिद्ध कूट, २ सौमनस कूट, ३ देवकुरु कूट, ४ मंगल कूट, ५ विमल कूट, ६ कांचन कूट और ७ विशिष्टक कूट ये सात कूट सौमनस्य पर्वतपर हैं ॥२२१॥ १ सिद्ध कूट, २ विद्युत्प्रभ कूट, ३ देवकुरु कूट, ४ पद्मक कूट, ५ तपन कूट, ६ स्वस्तिक कूट, ७ शतज्वल कूट, ८ सीतोदा कूट और ९ हरिसह कूट ये नौ कूट विद्युत्प्रभ पर्वतपर हैं ॥२२२-२२३॥ इन सब कूटोंकी ऊँचाई यथायोग्य अपनी-अपनी गहराईके समान कही गयी है ॥२२४॥ इन चारों पर्वतोंके सिद्धायतन कूटोंपर जो मन्दिर हैं वे श्री सिद्ध भगवान्‌की प्रतिमाओंसे सहित हैं तथा यथायोग्य सुशोभित हो रहे हैं ॥२२५॥ शेष तीन पर्वतोंके अन्तिम दो कूटोंमें व्यन्तर देव क्रीड़ा करते हैं और मध्यमें बने हुए सुन्दर क्रीड़ा-भवनोंमें दिक्कुमारी देवियाँ रमण करती हैं ॥२२६॥ चारों पर्वतोंके बीच-बीचके दो-दो कूट मिलकर आठ कूट होते हैं .उनमें क्रमसे १ भोगंकरा, २ भोगवती, ३ सुभोगा, ४ भोगमालिनी, ५ वत्समित्रा, ६ सुमित्रा, ७ वारिषेणा और ८ अचलावती ये आठ देवियाँ क्रीड़ा करती हैं ॥२२७॥

विदेह क्षेत्रमें सोलह वक्षार गिरि हैं, उनमें १ चित्रकूट, २ पद्मकूट, ३ नलिन और ४ एकशैल ये चार पर्वत पूर्व विदेहमें हैं तथा नील पर्वत और सीता नदीके मध्य लम्बे हैं ॥२२८॥ १ त्रिकूट, २ वैश्रवण, ३ अंजन और ४ आत्मांजन ये चार भी पूर्व विदेहमें हैं तथा सीता नदी और निषध कुलाचलका स्पर्श करनेवाले हैं अर्थात् उनके मध्य लम्बे हैं ॥२२९॥ १ श्रद्धावान्, २ विजयावान्, ३ आशीर्विष और ४ सुखावह ये चार पश्चिम विदेह क्षेत्रमें हैं। ये चारों देशोंका भेद करनेवाले हैं और अपनी प्रसिद्ध लम्बाईसे सीतोदा नदी तथा निषध पर्वतका स्पर्श करनेवाले हैं ॥२३०-२३१॥ १ चन्द्रमाल, २ सूर्यमाल, ३ नागमाल और ४ मेघमाल ये चार पश्चिम विदेहक्षेत्रमें हैं तथा नील और सीतोदाके मध्यमें स्थित हैं ॥२३२॥ इन समस्त वक्षार पर्वतोंकी ऊँचाई नदी तटपर पांच सौ योजनकी और अन्यत्र सब जगह पूर्व वर्णित वक्षारोंके समान चार सौ योजन है ॥२३३॥ इन सोलह वक्षार पर्वतोंमें प्रत्येकके शिखरपर चार-चार कूट हैं उनमें कुलाचलोंके समीपवर्ती कूटोंपर दिक्कुमारी देवियाँ रहती हैं। नदीके समीपवर्ती कूटोंपर जिनेन्द्र भगवान्‌के चैत्यालय हैं और बीचके कूटोंपर व्यन्तर देवोंके क्रीडागृह बने हुए हैं ॥२३४-२३५॥

मेरुकी पूर्व-पश्चिम दिशामें लम्बा तथा नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त एक सुन्दर भद्रशाल वन है। यहाँ क्रमसे उसका वर्णन किया जाता है ॥२३६॥ उसकी पूर्व-पश्चिम भागकी लम्बाई बाईस हजार योजन और दक्षिण-उत्तर चौड़ाई ढाई सौ योजन है ॥२३७॥ वनके पूर्व-पश्चिम भागमें एक वेदिका है। यह वेदिका एक योजन ऊँची, एक कोश गहरी और दो कोश चौड़ी जानना चाहिए ॥२३८॥ १ ग्राहवती, २ ह्रदवती और ३ पंकवती ये तीन नदियाँ नील पर्वतसे निकलकर सीता नदीकी ओर जाती हैं तथा वक्षार पर्वतोंके मध्यमें स्थित हैं ॥२३९॥ १ तप्तजला, २ मत्तजला, ३ उन्मत्तजला ये तीन नदियाँ निषध पर्वतसे निकलकर सीता नदीकी ओर जाती हैं ॥२४०॥ १ क्षीरोदा, २ सीतोदा और ३ स्रोतोऽन्तर्वाहिनी ये तीन नदियाँ निषध पर्वतसे निकलकर सीतोदा नामक महानदीमें प्रवेश करती हैं ॥२४१॥ उत्तर विदेह क्षेत्रमें १ गन्धमादिनी, २ फेनमालिनी और ऊर्मिमालिनी ये तीन नदियाँ नीलाचलसे निकलकर सीतोदा नदीमें मिली

हैं ॥२४२॥ ऊपर कही हुई बारह नदियां विभंगा नदी कहलाती हैं। ये प्रमाणमें रोह्या नदीके समान हैं तथा इनके संगम स्थानोंमें जो तोरण द्वार हैं उनमें दिक्कुमारी देवियां निवास करती हैं ॥२४३॥

वक्षारगिरि और विभंगा नदियोंके मध्यमें सीता-सीतोदा नदियोंके दोनों तटोंपर मेरुकी पूर्व और पश्चिम दिशामें बत्तीस विदेह हैं ॥२४४॥ उनमें १ कक्षा, २ सुकच्छा, ३ महाकच्छा, ४ कच्छकावती, ५ आवर्ता, ६ लांगलावर्ता, ७ पुष्कला और ८ पुष्कलावती ये आठ देश पश्चिम विदेह क्षेत्रमें सीता नदी और नील कुलाचलके मध्य प्रदक्षिणा रूपसे स्थित हैं तथा प्रत्येक देशके छह खण्ड हैं ॥२४५-२४६॥ १ वत्सा, २ सुवत्सा, ३ महावत्सा, ४ वत्सकावती, ५ रम्या, ६ रम्यका, ७ रमणीया और ८ मंगलावती ये आठ देश पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदी और निषध पर्वतके मध्य स्थित हैं। ये चक्रवर्तियोंके देश हैं और दक्षिणोत्तर लम्बे हैं ॥२४७-२४८॥ १ पद्मा, २ सुपद्मा, ३ महापद्मा, ४ पद्मकावती, ५ शंखा, ६ नलिनी, ७ कुमुदा और ८ सरिता ये आठ देश पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदी और निषध पर्वतके मध्य स्थित हैं तथा दक्षिणोत्तर लम्बे हैं ॥२४९-२५०॥ १ वप्रा, २ सुवप्रा, ३ महावप्रा, ४ वप्रकावती, ५ गन्धा, ६ सुगन्धा, ७ गन्धिका और ८ गन्धमालिनी ये आठ देश पश्चिम विदेह क्षेत्रमें नील पर्वत और सीतोदा नदीके मध्य स्थित हैं तथा दक्षिणोत्तर लम्बे हैं। ये चक्रवर्तियोंके क्षेत्र कहे गये हैं अर्थात् इनमें चक्रवर्तियोंका निवास रहता है ॥२५१-२५२॥ इन सबका पूर्वापर विस्तार योजनके आठ भागोंमें-से एक भाग कम दो हजार दो सौ तेरह योजन है ॥२५३॥ समस्त विदेह क्षेत्रके विस्तारमें-से नदीका विस्तार घटा देनेपर जो शेष रहे उसका आधा भाग किया जाये। यही देश, वक्षारगिरि और विभंगा नदियोंकी लम्बाई है। भावार्थ—समस्त विदेह क्षेत्रका विस्तार तैंतीस हजार छह सौ चौरासी योजन चार कला है, उसमें सीता नदीका पांच सौ योजनका विस्तार घटा देनेपर तैंतीस हजार एक सौ चौरासी योजन चार कलाका विस्तार शेष रहता है। इसका आधा करनेपर सोलह हजार पांच सौ बानबे योजन दो कला क्षेत्र बचता है। यही कच्छा आदि देश वक्षार गिरि और विभंगा नदियोंकी लम्बाईका है ॥२५४॥ इन बत्तीस विदेहोंमें बत्तीस विजयार्ध पर्वत हैं। इनकी लम्बाई कच्छादि देशोंकी चौड़ाईके समान है अर्थात् ये कुलाचलसे लेकर नदी तक लम्बे हैं। प्रत्येक विजयार्धपर नौ-नौ कूट हैं और इन सबका वर्णन भरत क्षेत्रके विजयार्धके समान है ॥२५५॥ इन विजयार्धोंकी दो-दो श्रेणियां हैं, प्रत्येक श्रेणीमें पचपन-पचपन नगर हैं और उन नगरोंमें भरत तथा ऐरावत क्षेत्रके समान विद्याधर निवास करते हैं ॥२५६॥ १ क्षेमा, २ क्षेमपुरी, ३ रिष्टा, ४ रिष्टपुरी, ५ खड्गा, ६ मंजूषा, ७ औषधी और ८ पुण्डरीकिणी ये आठ नगरियां क्रमसे कच्छा आदि देशोंकी राजधानियां कही गयी हैं। इनमें शलाका पुरुषोंकी उत्पत्ति होती है ॥२५७-२५८॥ १ सुसीमा, २ कुण्डला, ३ अपराजिता, ४ प्रभंकरा, ५ अंकावती, ६ पद्मावती, ७ शुभा और ८ रत्नसंचया ये आठ क्रमसे वत्सा आदि देशोंकी राजधानियां जानना चाहिए ॥२५९-२६०॥ १ अश्वपुरी, २ सिंहपुरी, ३ महापुरी, ४ विजयापुरी, ५ अरजा, ६ विरजा, ७ अशोका और ८ वीतशोका ये आठ नगरियां क्रमसे पद्मा आदि देशोंकी राजधानियां प्रसिद्ध हैं ॥२६१-२६२॥ १ विजया, २ वैजयन्ती, ३ जयन्ती, ४ अपराजिता, ५ चक्रा, ६ खड्गा, ७ अयोध्या और ८ अवध्या ये आठ वप्रा आदि देशोंकी राजधानियां हैं। ये सभी नगरियां दक्षिणोत्तर दिशामें बारह योजन लम्बी हैं, पूर्व-पश्चिममें नौ योजन चौड़ी हैं, सुवर्णमयी कोट और तोरणोंसे युक्त हैं। रत्नमयी चित्र-विचित्र किवाड़ोंसे युक्त पांच सौ छोटे और एक हजार बड़े दरवाजों तथा सात सौ झरोखोंसे सहित हैं ॥२६३-२६५॥ इन अविनाशी नगरियोंमें बारह हजार गलियां और एक हजार चौक हैं ॥२६६॥

कच्छा आदि प्रत्येक क्षेत्रमें गंगा-सिन्धु नामकी दो नदियां हैं जो नील पर्वतसे निकलकर

विजयार्ध पर्वतकी दोनों गुफाओंको उल्लंघन करती हुई सीता नदीमें प्रवेश करती हैं ॥२६७॥ प्रत्येक विजयार्ध पर्वतमें उसकी चौड़ाईके समान लम्बी, आठ योजन ऊँची और बारह योजन चौड़ी दो-दो गुफाएँ हैं ॥२६८॥ ये गंगा आदि सोलह नदियां, भरत क्षेत्रकी गंगा नदीके समान हैं। इसी प्रकार निषधाचलसे निकली हुई सोलह रक्ता, रक्तोदा नदियाँ भी ऐरावतकी रक्ता-रक्तोदाके समान हैं ॥२६९॥ पश्चिम विदेह क्षेत्रमें भी इसी प्रकार गंगा, सिन्धु और रक्ता-रक्तोदा नामकी सोलह-सोलह नदियां निषधाचल और नीलाचलसे निकलकर सीतोदा नदीकी ओर जाती हैं ॥२७०॥ समान नामसे जिनका कथन किया गया है ऐसी ये समस्त नदियां अत्यन्त प्रीतिको बढ़ानेवाली हैं तथा प्रत्येक नदियाँ चौदह हजार नदियोंसे युक्त हैं ॥२७१॥ सीता और सीतोदा नदियोंका परिवार देवकुरु और उत्तरकुरुमें चौरासी हजार नदियोंका है। दोनों नदियोंमें प्रत्येक नदीके तटसे व्यालीस हजार नदियोंका प्रवेश होता है ॥२७२॥ सीता, सीतोदा नामक उक्त नदियोंमें-से प्रत्येक नदीमें पांच लाख बत्तीस हजार अड़तीस नदियां मिली हैं ॥२७३॥ पूर्व और पश्चिम विदेहमें इन समस्त नदियोंका प्रमाण दश लाख चौंसठ हजार अठहत्तर कहा गया है ॥२७४॥ गंगा, सिन्धु एवं रक्ता-रक्तोदा नदियोंमें प्रत्येकका परिवार चौदह-चौदह हजार नदियोंका है ॥२७५॥ रोह्या, रोहितास्या और सुवर्णकूला, रूप्यकूलामें प्रत्येकका अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियोंका परिवार है ॥२७६॥ हरित्, हरिकान्ता और नारी, नरकान्तामें प्रत्येक नदीका परिवार छप्पन हजार नदियोंका है ॥२७७॥ विदेह क्षेत्रको छोड़ अन्य क्षेत्रोंकी गंगा, सिन्धु आदि नदियोंकी समस्त परिवार-नदियां मिलकर तीन लाख बानबे हजार बारह हैं ॥२७८॥ विदेह क्षेत्रकी समुद्र तक जानेवाली समस्त नदियोंकी संख्या चौदह लाख छप्पन हजार नब्बे है ॥२७९॥

जम्बू द्वीपमें कांचन कूटोंके समान वैडूर्य मणिमय तथा श्रेष्ठ देवोंके द्वारा सेवनीय चौंतीस वृषभाचल हैं ॥२८०॥ सीता और सीतोदा दोनों नदियोंके तटपर पूर्व-पश्चिम विदेहपर्यन्त लम्बे तथा समुद्र तटसे मिले हुए चार देवारण्य [दो देवारण्य, दो भूतारण्य] वनके प्रदेश हैं ॥२८१॥ इन वनोंकी वेदिकाएँ भद्रशाल वनके समान बाईस हजार दो सौ नौ योजन विस्तृत हैं ॥२८२॥ विदेह क्षेत्रके मध्यमें प्रसिद्ध मेरु पर्वत स्थित है, उसकी सीमा देवकुरु और उत्तरकुरु तक फैली हुई है, वह निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है, तीन मेखलाओंसे युक्त है, चालीस योजन ऊँची चूलिकासे सुशोभित है, उसकी गहराई एक हजार योजन है और पृथिवी तलपर चौड़ाई दश हजार नब्बे योजन तथा एक योजनके ग्यारह भागोंमें दश भाग प्रमाण है ॥२८३–२८५॥ उसकी परिधि इकतीस हजार नौ सौ दश योजन तथा कुछ अधिक दो भाग प्रमाण है ॥२८६॥ तल भागसे एक हजार योजन ऊपर चलकर पृथिवीपर इस पर्वतकी चौड़ाई दश हजार योजन है ॥२८७॥ भद्रशाल वनके समीप इसकी परिधि इकतीस हजार छह सौ बाईस योजन तीन कोश बारह धनुष तीन हाथ और कुछ अधिक तेरह अंगुल है ॥२८८-२८९॥ भद्रशाल वनसे पांच सौ योजन ऊपर चलकर मेरु पर्वतकी चारों ओर मेखलापर पांच सौ योजन चौड़ा दूसरा नन्दन वन है ॥२९०॥ वहां इस पर्वतकी चौड़ाई नौ हजार नौ सौ चौवन योजन छह कला है ॥२९१॥ नन्दन वनके समीप इस पर्वतकी बाह्य परिधि इकतीस हजार चार सौ उन्यासी योजनसे कुछ अधिक है ॥२९२॥ भीतरी चौड़ाई आठ हजार नौ सौ चौवन योजन छह कला है। अब इसकी अभ्यन्तर परिधि कहते हैं ॥२९३॥ नन्दन वनके समीप मेरुकी अभ्यन्तर परिधि अट्ठाईस हजार तीन सौ सोलह योजन तथा कुछ अधिक आठ कला है ॥२९४॥ नन्दन वनसे साढ़े बासठ हजार योजन ऊपर चलकर तीसरा सौमनस वन है। यह वन नन्दन वनके ही समान है ॥२९५॥ सौमनस वनमें पर्वतकी बाह्य चौड़ाई चार हजार दो सौ बहत्तर योजन आठ कला है ॥२९६॥ और बाह्य परिधि तेरह हजार पांच सौ ग्यारह योजन छह कला है ॥२९७॥ पर्वतकी जो बाह्य चौड़ाई बतलायी है उसमें एक

हजार योजन कम करनेपर भीतरी चौड़ाई निकलती है ऐसा मुनिगण कहते हैं ॥२९८॥ पर्वतकी भीतरी परिधि दश हजार तीन सौ उनचास योजन तथा एक योजनके ग्यारह भागोंमें तीन भाग प्रमाण है ॥२९९॥ यहांसे छत्तीस हजार योजन ऊपर चलकर पर्वतके ऊपर चौथा पाण्डुक वन है, यहां पर्वत चार सौ चौरानबे योजन चौड़ा है ॥३००॥ यहाँ पर्वतकी परिधि तीन हजार एक सौ बासठ योजन कुछ अधिक एक कोश है ॥३०१॥ मेरु पर्वतके मस्तकपर चालीस योजन ऊँची वैडूर्य मणिमयी चूलिका है। यह चूलिका मूलमें बारह योजन, मध्यमें आठ योजन और अन्तमें चार योजन चौड़ी है ॥३०२॥ चूलिकाकी परिधि मूलमें सैंतीस योजन, मध्यमें पचीस योजन और अग्र भागमें कुछ अधिक बारह योजन है ॥३०३॥ मेरु पर्वतकी चूलिकासे लेकर नीचे तक १ लोहिताक्ष-मय, २ पद्मरागमय, ३ वज्रमय, ४ सर्वरत्नमय, ५ वैडूर्यमय और ६ हरितालमय ये छह पृथिवीकाय रूप परिधियां हैं। इन परिधियोंमें प्रत्येकका विस्तार सोलह हजार पांच सौ योजन है। *इनके सिवाय वनोंके द्वारा की हुई एक सातवीं परिधि और भी है। तथा उसके नीचे लिखे अनुसार ग्यारह भाग परीक्षकोंके द्वारा जानने योग्य हैं—१ भद्रशाल वन, २ मानुषोत्तर, ३ देवरमण, ४ नागरमण, ५ भूतरमण, ६ नन्दन, ७ उपनन्दन, ८ सौमनस, ९ उपसौमनस, १० पाण्डुक और ११ उपपाण्डुक। इनमें-से पृथिवीपर जो भद्रशाल वन है उसमें भद्रशाल, मानुषोत्तर, देवरमण, नागरमण और भूतरमण ये पांच वन हैं। उससे ऊपर चलकर नन्दन वनमें नन्दन और उपनन्दन, सौमनस वनमें सौमनस और उपसौमनस तथा पाण्डुक वनमें पाण्डुक और उपपाण्डुक वन हैं ॥३०४-३०९॥ इन भागोंमें यदि ग्यारह भाग मेरुपर चढ़ा जाये तो वहाँ मूल भागकी चौड़ाईसे एक भाग कम चौड़ाई हो जाती है। इसी प्रकार सब जगह योजन पर्यन्त अंगुल हाथ आदि प्रमाणोंमें भी मेरुके विस्तारमें हानि तथा वृद्धि समझना चाहिए। भावार्थ—ऊपर जो ग्यारह भाग बतलाये हैं उनमें प्रथम भागसे यदि ग्यारह योजन ऊँचा चढ़ा जाये तो मेरुकी चौड़ाई मूलभागकी चौड़ाईसे एक योजन कम हो जाती है और यदि ग्यारह हाथ या ग्यारह अंगुल चढ़ा जाये तो वहांकी चौड़ाई मूलभागकी चौड़ाईसे एक हाथ या एक अंगुल कम हो जाती है। इसी प्रकार यदि ऊपरसे नीचेकी ओर आया जाये तो वहाँ उसकी चौड़ाई वृद्धिगत हो जाती है ॥३१०–३११॥ परन्तु विशेषता यह है कि यदि नन्दन वन और सौमनस वनसे ग्यारह योजन ऊँचा चढ़ा जाये तो वहांकी चौड़ाई मूलभागकी चौड़ाईसे कम नहीं होती किन्तु बराबर रही आती है ॥३१२॥ चूलिकासे पांच योजन ऊपर चढ़ने-पर एक योजन चौड़ाई कम हो जाती है और पाँच अंगुल अथवा पांच हाथ चढ़नेपर एक अंगुल वा एक हाथ चौड़ाई घट जाती है ॥३१३॥ एक लाख योजन विस्तारवाले मेरु पर्वतकी दोनों पार्श्व भुजाओंकी लम्बाई एक लाख सौ योजन तथा ग्यारह भागोंमें दो भाग प्रमाण है ॥३१४॥ नन्दन वनकी पूर्व दिशामें पण्य नामका, दक्षिण दिशामें चारण नामका, पश्चिम दिशामें गन्धर्व नामका और उत्तर दिशामें चित्रक नामका भवन है। इन भवनोंकी चौड़ाई तीस योजन, ऊँचाई पचास योजन और परिधि नब्बे योजन है ॥३१५–३१६॥ इनमें पण्य नामक भवनमें सोम, चारण नामक भवनमें यम, गान्धर्व नामक भवनमें वरुण और चित्रक नामक भवनमें कुबेर सपरिवार क्रीड़ा करता है ॥३१७॥ ये चारों लोकपाल पृथक्-पृथक् दिशाओंमें साढ़े तीन करोड़ साढ़े तीन करोड़ स्त्रियोंके साथ निरन्तर क्रीड़ा करते हैं ॥३१८॥

सौमनस वनकी चारों दिशाओंमें क्रमसे वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्णभवन और सुवर्णप्रभ नामके चार भवन हैं ॥३१९॥ इन भवनोंको परिधि तथा अग्रभागकी चौड़ाई और ऊँचाई नन्दनवनके भवनोंसे आधी समझनी चाहिए ॥३२०॥ इन भवनोंमें भी वे ही सोम, यम आदि लोकपाल अपनी इच्छानुसार उतनी ही स्त्रियोंके साथ यथायोग्य क्रीड़ा करते हैं ॥३२१॥ पाण्डुक वनकी चारों

दिशाओंमें लोहित, अंजन, हारिद्र और पाण्डु नामके चार भवन हैं। इन भवनोंकी ऊँचाई आदि सौमनस वनके भवनोंके समान है तथा इनमें वे ही लोकपाल उतनी ही स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हैं ॥३२२॥ इन लोकपालोंमें सोम नामका लोकपाल पूर्व दिशाका स्वामी तथा स्वयम्प्रभ विमानका अधिपति है। इसके वाहन तथा वस्त्राभूषण आदि सब लाल रंगके हैं और इसकी आयु अढ़ाई पल्य प्रमाण है। यह छह लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ देदीप्यमान भवनोंका भोग करनेवाला है अर्थात् इतने भवनोंका यह स्वामी है ॥३२३–३२४॥ यम दक्षिण दिशाका राजा तथा अरिष्ट विमानका स्वामी है। इसके वाहन तथा वस्त्राभूषण आदि काले रंगके हैं और इसकी आयु ढाई पल्य प्रमाण है ॥३२५॥ वरुण पश्चिम दिशाका राजा है तथा जलप्रभ विमानका स्वामी है। उसकी वेषभूषा पीले रंगकी है और वह तीन भाग कम तीन पल्यकी आयुवाला है ॥३२६॥ कुबेर उत्तर दिशाका राज्य तथा वल्गुप्रभ विमानका स्वामी है। इसकी वेषभूषा शुक्ल रंगकी है तथा आयु तीन पल्य प्रमाण है ॥३२७॥ मेरुकी पूर्वोत्तर दिशामें नन्दनवनके बीच कांचन कूटके समान एक बलभद्रक नामका कूट है और उसमें कूट नामधारी बलभद्रक देवका निवास है ॥३२८॥ वहींपर १ नन्दन, २ मन्दर, ३ निषध, ४ हिमवत्, ५ रजत, ६ रजक, ७ सागर और ८ चित्रक नामके आठ कूट और हैं। ये प्रत्येक दिशामें क्रमसे दो-दो हैं ॥३२९–३३०॥ इन कूटोंकी ऊँचाई पांच सौ योजन है तथा मूल भागकी चौड़ाई पांच सौ योजन, मध्यभागकी तीन सौ पचहत्तर योजन और ऊर्ध्व-भागकी ढाई सौ योजन है ॥३३१॥ इन कूटोंमें क्रमसे १ मेघंकरा, २ मेघवती, ३ सुमेघा, ४ मेघमालिनी, ५ तोयधारा, ६ विचित्रा, ७ पुष्पमाला और ८ अनिन्दिता ये आठ प्रसिद्ध दिक्कुमारी देवियां निवास करती हैं ॥३३२–३३३॥ मेरु पर्वतकी पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) दिशामें १ उत्पलगुल्मा, २ नलिना, ३ उत्पला और ४ उत्पलोज्ज्वला ये चार वापिकाएँ हैं। इनकी लम्बाई पचास योजन, गहराई दश योजन और चौड़ाई पचीस योजन है ॥३३४–३३५॥ इन वापिकाओंके मध्यमें इन्द्रका भवन स्थित है। इस भवनकी चौड़ाई इकतीस योजन एक कोश, ऊँचाई साढ़े बासठ योजन और गहराई अर्धयोजन प्रमाण है ॥३३६–३३७॥ उस भवनके मध्यमें इन्द्रका सिंहासन है तथा चारों दिशाओंमें चार लोकपालोंके आसन हैं ॥३३८॥ इन्द्रासनसे उत्तर-पूर्व तथा पश्चिमोत्तर दिशामें सामानिक देवोंके भद्रासन हैं ॥३३९॥ आगे आठ पट्टरानियोंके भद्रासन हैं, पूर्व-दक्षिण दिशामें सभाके मुख्य-मुख्य अधिकारी देव बैठते हैं, दक्षिणमें मध्यम अधिकारी, दक्षिण-पश्चिममें सामान्य अधिकारी एवं त्रायस्त्रिंश देव तथा उनके पीछे सैन्यके महत्तर देव आसन ग्रहण करते हैं ॥३४०–३४१॥ चार दिशाओंमें आत्मरक्ष देवोंके भद्रासन हैं। इन्द्र अपने आसनपर पूर्वाभिमुख बैठता है और आत्मरक्ष उसकी सेवा करते हैं ॥३४२॥ पश्चिम-दक्षिण (नैऋत्य) दिशामें उक्त वापिकाओंके समान १ भृंगा, २ भृंगनिभा, ३ कज्जला और ४ कज्जलप्रभा ये चार वापिकाएँ हैं ॥३४३॥ पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशामें १ श्रीकान्ता, २ श्रीचन्द्रा, ३ श्रीमहिता और ४ श्रीनिलया ये चार वापिकाएँ हैं।* इनमें ऐशानेन्द्र क्रीड़ा करता है ॥३४४॥ उत्तर-पूर्व (ऐशान) दिशामें १ नलिना, २ नलिनगुल्मा, ३ कुमुदा और ४ कुमुदप्रभा ये चार वापिकाएँ हैं। इनमें भवन आदिकी समस्त रचना पूर्ववत् जाननी चाहिए। जिस प्रकार नन्दन वनमें इन सबकी रचना है उसी प्रकार सौमनस वनमें भी जानना चाहिए ॥३४५–३४६॥

पाण्डुक वनकी उत्तर-पूर्वादि दिशाओंमें क्रमसे १ पाण्डुक, २ पाण्डुकम्बला, ३ रक्ता और ४ रक्तकम्बला ये चार शिलाएँ हैं। ये शिलाएँ विदिशाओंमें हैं तथा क्रमसे सुवर्णमयी, रजतमयी, सन्तप्त स्वर्णमयी और लोहिताक्ष मणिमयी हैं। एवं इनका अर्धचन्द्रके समान आकार है ॥३४७–३४८॥ ये शिलाएँ आठ योजन ऊँची, सौ योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी हैं तथा

इनपर जम्बू द्वीपमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है ॥३४९॥ इनमें रक्ता और पाण्डुक शिलाकी लम्बाई दक्षिणोत्तर दिशामें है तथा रक्ता और रक्तकम्बलाकी लम्बाई पूर्व-पश्चिम दिशामें है ॥३५०॥ उन शिलाओंपर रत्नमयी तीन-तीन सिंहासन हैं जो पांच सौ धनुष ऊँचे तथा उतने ही चौड़े हैं ॥३५१॥ तीन सिंहासनोंमें दक्षिण सिंहासन सौधर्मेन्द्रका, उत्तर सिंहासन ऐशानेन्द्रका तथा मध्य स्थित सिंहासन जिनेन्द्र देवका है। इन सब सिंहासनोंका मुख पूर्व दिशाकी ओर होता है। भावार्थ—मध्यके सिंहासनपर श्री जिनेन्द्र देव विराजमान होते हैं और दक्षिण तथा उत्तरके सिंहासनोंपर क्रमसे सौधर्मेन्द्र और ऐशानेन्द्र खड़े होकर उनका अभिषेक करते हैं ॥३५२॥ उन पाण्डुक आदि शिलाओंके सिंहासनोंपर क्रमसे भरत, पश्चिम विदेह, ऐरावत और पूर्व विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न हुए तीर्थंकर बाल्यकालमें देवोंके द्वारा अभिषेकको प्राप्त होते हैं। भावार्थ—भरत क्षेत्रके तीर्थंकरोंका पाण्डुक शिलापर, पश्चिम विदेह क्षेत्रके तीर्थंकरोंका रक्तापर और पूर्व विदेहके तीर्थंकरोंका रक्तकम्बला शिलापर जन्माभिषेक होता है ॥३५३॥

पाण्डुक वनकी चारों महादिशाओंमें चार जिनालय हैं जो सर्वरत्नमय हैं, दिव्य हैं तथा अकृत्रिम होनेसे नित्य हैं ॥३५४॥ इनकी पचीस योजन लम्बाई, साढ़े बारह योजन चौड़ाई, आधा कोश गहराई और पौने उन्नीस योजन ऊँचाई है ॥३५५॥ प्रत्येक मन्दिरमें एक बड़ा तथा आजू-बाजूमें दो लघु द्वार हैं। इनमें बड़े द्वारकी ऊँचाई चार योजन और चौड़ाई दो योजन है। तथा लघु द्वारोंकी ऊँचाई और चौड़ाई इससे आधी है ॥३५६॥ पाण्डुक वनके समान सौमनस वनकी चारों दिशाओंमें भी चार जिनालय हैं और उनके द्वारोंकी लम्बाई-चौड़ाई आदि पाण्डुक वनके चैत्यालयोंसे दूनी है। कुलाचल तथा वक्षार गिरियोंपर जो जिनालय हैं उनकी लम्बाई-चौड़ाई आदि भी सौमनस वनके चैत्यालयोंके समान कही गयी है ॥३५७॥ इसी प्रकार नन्दन वन और भद्रशाल वनमें भी चार-चार जिनालय हैं उनकी ऊँचाई तथा चौड़ाई आदिका प्रमाण सौमनस वनके जिनालयोंसे दूना है ॥३५८॥ समस्त विजयार्ध पर्वतोंपर जो सिद्धायतन-जिनमन्दिर हैं उनका प्रमाण वही जानना चाहिए जो कि भरत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्धके जिन-मन्दिरोंका है ॥३५९॥ उन समस्त जिनालयोंमें आठ योजन लम्बा, दो योजन चौड़ा, चार योजन ऊंचा और एक कोश गहरा देवच्छन्द नामका एक गर्भगृह है ॥३६०॥ वह गर्भगृह, देदीप्यमान रत्नोंसे बने हुए विशाल स्तम्भों, सुवर्णमयी दीवालों तथा उनमें खिचे हुए चन्द्र, सूर्य, उड़ते हुए पक्षी एवं हरिण-हरिणियोंके जोड़ोंसे अलंकृत है ॥३६१॥ उस गर्भगृहमें सुवर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित पांच सौ धनुष ऊँची एक सौ आठ जिन-प्रतिमाएँ विद्यमान हैं ॥३६२॥ उन प्रतिमाओंके समीप चमर लिये हुए नागकुमार और यक्षोंके युगल खड़े हुए हैं तथा समस्त प्रतिमाएँ सनत्कुमार और सर्वाह्ण यक्ष तथा निर्वृत्ति और श्रुत देवी की मूर्तियोंसे युक्त हैं ॥३६३॥ झारी, कलश, दर्पण, पात्री, शंख, सुप्रतिष्ठक, ध्वजा, धूपनी, दीप, कूर्च, पाटलिका आदि तथा झांझ-मंजीरा आदि एक सौ आठ-एक सौ आठ उपकरण उन प्रतिमाओंके परिवारस्वरूप जानना चाहिए अर्थात् ये सब उनके समीप यथायोग्य विद्यमान रहते हैं ॥३६४–३६५॥ उन जिनालयोंमें झरोखे, गृहजाली, मोतियोंकी झालर, रतन तथा मूँगारूप कमल और छोटी-छोटी घण्टियोंके समूह सुशोभित रहते हैं ॥३६६॥ प्रत्येक जिनमन्दिरमें एक-एक प्राकार—कोट है जो मूलमें छह योजन, मध्यमें चार योजन और मस्तकपर दो योजन चौड़ा है। चार योजन ऊँचा है, एक कोश गहरा है तथा सुवर्ण निर्मित है ॥३६७॥ इसकी चारों दिशाओंमें आठ योजन ऊँचे, तथा चार योजन चौड़े चार तोरण द्वार हैं और पचास योजन ऊँचा इसका गोपुर है ॥३६८॥ सिंह, हंस, गज, कमल, वस्त्र, वृषभ, मयूर, गरुड़, चक्र और मालाके चिह्नोंसे सुशोभित दश प्रकारकी पंचवर्णी महाध्वजाओंसे उन चैत्यालयोंकी दशों दिशाएँ ऐसी जान पड़ती हैं

मानो लहलहाते हुए नूतन पत्तोंसे ही युक्त हों। वे ध्वजाएँ एक-एक जातिकी एक सौ आठ-एक सौ आठ तथा दशों दिशाओंकी मिलाकर एक हजार अस्सी होती हैं ॥३६९-३७०॥ चैत्यालयोंके आगे विशाल सभामण्डप, उसके आगे लम्बा-चौड़ा प्रेक्षा-गृह, उसके आगे स्तूप और स्तूपोंके आगे पद्मासनसे विराजमान प्रतिमाओंसे सुशोभित चैत्यवृक्ष हैं ॥३७१॥ जिनालयोंसे पूर्व दिशामें मच्छ तथा कछुआ आदि जल-जन्तुओंसे रहित, एवं स्वच्छ जलसे भरा हुआ नन्द नामका सरोवर है ॥३७२॥ वज्रमूक, सर्वेडूर्यचूलिक, मणिचित, विचित्राश्चर्यकीर्ण, स्वर्णमध्य, सुरालय, मेरु, सुमेरु, महामेरु, सुदर्शन, मन्दर, शैलराज, वसन्त, प्रियदर्शन, रत्नोच्चय, दिशामादि, लोकनाभि, मनोरम, लोकमध्य, दिशामन्त्य, दिशामुत्तर, सूर्याचरण, सूर्यावर्त, स्वयम्प्रभ और सुरगिरि····इस प्रकार विद्वानोंने अनेक नामोंके द्वारा सुमेरु पर्वतका वर्णन किया है ॥३७३-३७६॥

इस प्रकारसे वर्णित जम्बू द्वीपको चारों ओरसे जगती घेरे हुए है। यह जगती इसी जम्बू द्वीपका अन्तिम अवयव—भाग है ॥३७७॥ वह मूलमें बारह योजन, मध्यमें आठ योजन, और अग्रभागमें चार योजन चौड़ी है, आठ योजन ऊँची है तथा पृथिवीके नीचे आधा योजन गहरी है ॥३७८॥ उसका मूल भाग वज्रमय है, मध्य भाग सब प्रकारके रत्नोंसे निर्मित है और मस्तक—अग्रभाग वेडूर्य मणियोंका बना है। वह जगती अपनी कान्तिसे दशों दिशाओंको देदीप्यमान करती हुई स्थित है ॥३७९॥ जगतीके मध्यमें एक वेदिका है जो मूल और अग्र भागमें पांच सौ धनुष चौड़ी है तथा दो कोश ऊँची है ॥३८०॥ वेदिकाके आभ्यन्तर तथा बाह्य—दोनों भागोंमें सुवर्णमय उत्तम शिलापट्टोंसे युक्त, एवं वापिकाओं और भवनोंसे सुशोभित देवारण्य नामका सुन्दर वन है ॥३८१॥ इनमें निम्न श्रेणीकी वापियां सौ धनुष, मध्यम श्रेणीकी डेढ़ सौ धनुष और उत्तम श्रेणीकी दो सौ धनुष चौड़ी हैं। इन सबकी गहराई अपनी-अपनी चौड़ाईके दशवें भाग हैं ॥३८२॥ देवारण्य वनमें जो लघु प्रासाद हैं वे पचास धनुष चौड़े, सौ धनुष लम्बे और पचहत्तर धनुष ऊँचे हैं ॥३८३॥ इन प्रासादोंके द्वार छह धनुष चौड़े, बारह धनुष ऊँचे और चार धनुष गहरे हैं ॥३८४॥ मध्यम और उत्तम प्रासादों तथा उनके द्वारोंकी लम्बाई-चौड़ाई एवं ऊँचाई लघु प्रासादोंसे क्रमशः दूनी और तिगुनी है। किन्तु द्वारोंकी गहराई दूनी-दूनी है ॥३८५॥ उस वनमें मालाओंकी पंक्ति कदली आदि वृक्ष, प्रेक्षागृह, सभागृह, वीणागृह, गर्भगृह, लतागृह, चित्रगृह, प्रसाधनगृह तथा मोहना स्थान नामके अनेक रत्नमयी सुन्दर-सुन्दर गृह सब ओर सुशोभित हैं। ये सब स्थान व्यन्तर देवोंके द्वारा सेवित हैं ॥३८६-३८७॥ ये भवन देवोंके मनको हर्षित करनेवाले रत्नखचित हंसासन, क्रौंचासन, मुण्डासन, मृगेन्द्रासन, मकरासन, प्रबालासन, गरुडासन, विशाल इन्द्रासन और गन्धासन आदि अनेक आसनोंसे युक्त हैं। ये आसन स्फटिक मणिके बने हैं, इनमें कितने ही आसन ऊँचे हैं, कितने ही नीचे हैं, कितने ही लम्बे हैं, कितने ही स्वस्तिकके समान हैं और कितने ही गोल हैं ॥३८८-३८९॥ जगतीकी पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमसे विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामके चार द्वार हैं ॥३९०॥ इनमें प्रत्येक द्वार आठ योजन ऊँचा, चार योजन चौड़ा, नाना रत्नोंकी किरणोंसे अनुरंजित और वज्रमयी देदीप्यमान किवाड़ोंसे युक्त है ॥३९१॥ जगतीके अभ्यन्तर भागमें उन द्वारोंकी अन्तरज्याका प्रमाण सत्तर हजार सात सौ दश योजन तीन कोश, चौदह सौ चौबीस धनुष, तीन हाथ और इक्कीस अंगुल है ॥३९२-३९३॥ इस ज्याके धनुष पृष्ठका परिमाण, उन्यासी हजार छप्पन योजन, तीन कोश, एक हजार पाँच सौ बत्तीस धनुष तथा सात अंगुल है ॥३९४-३९५॥ अन्तरके जाननेवाले आचार्योंने उन द्वारोंका पारस्परिक अन्तर धनुःपृष्ठके प्रमाणसे चार योजन कम निश्चित किया है ॥३९६॥

संख्यात द्वीपोंके अनन्तर जम्बू द्वीपके समान एक दूसरा जम्बू द्वीप है उसकी पूर्व दिशामें

विजय द्वारके रक्षक विजय देवका नगर सुशोभित है ॥३९७॥ वेदिकासे युक्त वह नगर बारह योजन चौड़ा है, चारों दिशाओंके चार तोरणोंसे विभूषित, सब ओरसे सुन्दर और आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला है ॥३९८॥

उस नगरके चारों ओर एक प्राकार है, उसका विस्तार अग्र भागमें एक धनुषके आठ भागोंमें तीन भाग तथा मूलमें उससे चौगुना है। इस प्राकारकी गहराई आधा योजन है ॥३९९॥ ऊँचाई साढ़े सैंतीस योजन है और इसकी प्रत्येक दिशामें पचीस-पचीस गोपुर हैं ॥४००॥ प्रत्येक गोपुरकी ऊँचाई इकतीस योजन एक कोश है, चौड़ाई उससे दूनी है और गहराई आधा योजन प्रमाण है ॥४०१॥ उन गोपुरोंपर सत्रह-सत्रह खण्डके भवन बने हुए हैं। ये भवन सब प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त तथा स्वर्णमय हैं ॥४०२॥ गोपुरोंके मध्यमें देवोंके उत्पन्न होनेका स्थान है जो एक कोश मोटा और बारह योजन चौड़ा है ॥४०३॥ उस उत्पत्ति स्थानके चारों ओर एक वेदिका है जो पाँच सौ धनुष चौड़ी, दो कोश ऊँची और चार तोरणोंसे युक्त है ॥४०४॥

उस नगरके मध्यमें एक विशाल भवन है जो प्रमाणमें गोपुरके समान है। और उसका दरवाजा आठ योजन ऊँचा, चार योजन चौड़ा तथा विजय नामक देवके द्वारा सेवित है ॥४०५॥ उस भवनके द्वारका तोरण हीरेका बना है तथा स्वर्ण और रत्नमय उसके किवाड़ हैं। उसकी चारों दिशाओंमें उसीके समान विस्तारवाले और भी अनेक भवन बने हुए हैं ॥४०६॥ दूसरे मण्डलमें उन भवनोंकी चारों दिशाओंमें उन्हींके समान विस्तारवाले, रत्नोंके देदीप्यमान भवन बने हुए हैं ॥४०७॥ तीसरे मण्डलमें भी इसी प्रकार भवनोंकी रचना है परन्तु उनका प्रमाण पूर्व प्रमाणसे आधा है। चौथे मण्डलकी चारों दिशाओंमें जो भवन-रचना है वह तीसरे मण्डलकी भवन-रचनाके समान है ॥४०८॥ पाँचवें मण्डलमें जो भवन हैं वे चौथे मण्डलके भवनोंसे अर्ध प्रमाण हैं और छठे मण्डलके भवन पाँचवें मण्डलके भवनोंके समान हैं ॥४०९॥ आदि-के दो मण्डलोंमें उत्पत्ति स्थानकी वेदिकाके तुल्य वेदिका है और उसके आगे दो-दो मण्डलोंकी वेदिकाएँ पूर्व-पूर्व वेदिकाके प्रमाणसे आधी-आधी विस्तारवाली जानना चाहिए ॥४१०॥

बीचके भवनमें चमर और सफेद छत्रोंसे युक्त विजयदेवका उत्तम सिंहासन है। उसपर वह विजयदेव पूर्वाभिमुख होकर बैठता है ॥४११॥ उसकी उत्तर दिशामें छह हजार सामानिक देव बैठते हैं। तथा आगे और दो दिशाओंमें छह पट्टदेवियाँ आसन ग्रहण करती हैं ॥४१२॥ पूर्व-दक्षिण—आग्नेय दिशामें आठ हजार उत्तम पारिषद देव बैठते हैं। मध्यम परिषद्के दश हजार देव दक्षिण दिशामें स्थित होते हैं। बाह्य परिषद्के बारह हजार देव, पश्चिम-दक्षिण—नैऋत्य दिशामें आसनारूढ़ होते हैं और सात सेनाओंके महत्तर देव पश्चिम दिशामें आसन ग्रहण करते हैं ॥४१३–४१४॥ चारों दिशाओंमें अठारह हजार अंग-रक्षक रहते हैं और चारों दिशाओंमें उतने ही उनके भद्रासन हैं ॥४१५॥ विजयदेवके अठारह हजार परिवार देव हैं। इन सबके द्वारा सेवित होता हुआ वह कुछ अधिक एक पल्य तक जीवित रहता है ॥४१६॥ विजयदेवके भवनसे उत्तर दिशामें एक सुधर्मा नामकी सभा है जो छह योजन लम्बी, तीन योजन चौड़ी, नौ योजन ऊँची और एक कोश गहरी है ॥४१७॥ सुधर्मा सभासे उत्तर दिशामें एक जिनालय है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई आदिका विस्तार सुधर्मा सभाके समान है। पश्चिमोत्तर दिशामें उपपार्श्व सभा है ॥४१८॥ उसके आगे अभिषेक सभा, उसके आगे अलंकार सभा, और उसके आगे व्यवसाय सभा है। ये सब सभाएँ सुधर्मा सभाके समान हैं ॥४१९॥ विजयदेवके नगरमें सब मिलाकर पाँच हजार चार सौ सड़सठ भवन हैं ॥४२०॥

विजयदेवके नगरसे बाहर पचीस योजन चलकर पूर्वादि दिशाओंमें चार बन

हैं ॥४२१॥ उनमें पहला अशोकवन, दूसरा सप्तपर्णवन, तीसरा चम्पकवन और चौथा आम्रवन है ॥४२२॥ ये वन बारह योजन लम्बे और पांच सौ योजन चौड़े हैं। इन वनोंके मध्यमें क्रमसे अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आमके प्रधान वृक्ष हैं। इन वृक्षोंकी पीठिका जम्बू वृक्षकी पीठिकासे आधी है तथा इनका निजका विस्तार जम्बू वृक्षसे आधा है ॥४२३-४२४॥ उन चारों वनोंकी चारों दिशाओंमें यथायोग्य अशोकादि देवोंके द्वारा पूजित जिनेन्द्र देवकी रत्नमयी चार प्रतिमाएँ हैं ॥४२५॥ अशोक वनकी उत्तर-पूर्व दिशामें अशोकपुर नामका नगर है इसमें अशोक नामक देवका भवन है जिसका विस्तार विजयदेवके भवनके समान है ॥४२६॥ सप्तपर्ण वनकी पूर्व-दक्षिण दिशामें सप्तपर्णपुर है उसमें पूर्व प्रमाणको धारण करनेवाला सप्तपर्ण देवका भवन है ॥४२७॥ चम्पक वनकी दक्षिण-पश्चिम दिशामें चम्पक देवका चम्पकपुर और आम्रवनकी पश्चिमोत्तर दिशामें आम्रदेवका आम्र नगर है ॥४२८॥ वैजयन्त आदि तीन देव दक्षिणादि दिशाओंमें बने हुए नगरोंके स्वामी हैं तथा अपने भवन वायु और परिवार आदिकी अपेक्षा विजयदेवके समान हैं ॥४२९॥ इस प्रकार जम्बू द्वीपका वर्णन किया। अब लवणसमुद्रका वर्णन करते हैं—

वेदिकासे सहित लवणसमुद्र, दो लाख योजन विस्तारवाला है और वह परिखाके समान जम्बू द्वीपको घेरकर स्थित है ॥४३०॥ इसकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस योजनमें कुछ कम है ॥४३१॥ तथा इसके गणितका प्रकीर्णक पद (क्षेत्रफल) अठारह हजार नौ सौ तिहत्तर करोड़, छयासठ लाख, उनसठ हजार छह सौ योजन है ॥४३२-४३३॥ इसकी ऊपर-नीचे चौड़ाई दश हजार योजन, गहराई एक हजार योजन और अवस्थित रूपसे ऊंचाई ग्यारह योजन प्रमाण है ॥४३४॥ वह लवणसमुद्र, तटान्तसे पंचानबे हाथ जानेपर एक हाथ, पंचानबे अंगुल जानेपर एक अंगुल और पंचानबे योजन जानेपर एक योजन गहरा है ॥४३५॥ और पंचानबे अंगुल, पंचानबे हाथ या पंचानबे योजन जानेपर यह समुद्र सोलह अंगुल, सोलह हाथ वा सोलह योजन ऊंचा है अर्थात् तटान्तसे पंचानबे अंगुल जानेपर सोलह अंगुल ऊंचा है, पंचानबे हाथ जानेपर सोलह हाथ ऊंचा है और पंचानबे योजन जानेपर सोलह योजन ऊंचा है ॥४३६॥ शुक्ल पक्षमें समुद्रका जल पांच हजार योजन तक ऊंचा बढ़ जाता है और कृष्ण पक्षमें स्वाभाविक ऊंचाई जो ग्यारह हजार योजन है वहां तक घट जाता है ॥४३७॥ शुक्ल पक्षमें समुद्र प्रतिदिन तीन सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन भाग बढ़ता है तथा कृष्ण पक्षमें उतना ही घटता है ॥४३८॥ वेदिकाके अन्तमें समुद्र मक्षिकाके पंखके समान अत्यन्त सूक्ष्म है परन्तु जब उसके जलमें वृद्धि होती है तब आधा योजन तक बढ़ जाता है ॥४३९॥ शुक्लपक्षमें वेदिकाके अन्तमें प्रतिदिन समुद्रकी वृद्धि दो सौ छयासठ धनुष, दो हाथ और सोलह अंगुल होती है और कृष्णपक्षमें प्रतिदिन उतनी ही हानि होती है ॥४४०॥ संकुचित होता हुआ समुद्र नीचे भागमें नावके समान रह जाता है और ऊपर पृथिवीपर विस्तीर्ण हो जाता है तथा आकाशमें इसके विपरीत जुड़ी हुई दो नौकाओंके पुटके समान अथवा जौकी राशिके समान नीचे चौड़ा और ऊपर संकीर्ण हो जाता है ॥४४१॥

वेदीसे पंचानबे हजार योजन भीतर प्रवेश करनेपर चारों दिशाओंमें नीचे चार पाताल-विवर हैं ॥४४२॥ उनमें पूर्व दिशामें पाताल, दक्षिणमें बडवामुख, पश्चिममें कदम्बुक और उत्तरमें यूपकेसर नामका पाताल है ॥४४३॥ इन चारों पातालोंके मूल और अग्रभागका विस्तार दश हजार योजन है तथा गहराई और अपने मध्य भागका विस्तार एक-एक लाख योजन प्रमाण माना गया है ॥४४४॥ ये पाताल-विवर गोलीके समान हैं अर्थात् इनका तल और ऊपरका विस्तार अल्प है तथा मध्यका अधिक है। इनकी वज्रमयी दीवालोंकी मोटाई सब ओरसे पांच-पांच सौ योजन

है ॥४४५॥ इन विवरोंके तीन-तीन भाग हैं उनमें-से एक भाग तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस योजन और एक कला प्रमाण है ॥४४६॥ इनके तीसरे ऊर्ध्व भागमें केवल जल रहता है, नीचेके भागमें बलवान् वायु रहती है और बीचके भागमें क्रमसे जल तथा वायु दोनों रहते हैं ॥४४७॥ पातालोंमें जो वायु है उसका उच्छ्वास—ऊँचा उठना और निःश्वास—नीचे आना स्वाभाविक है उसीके कारण उनमें जलका ऊँचा-नीचा परिवर्तन होता रहता है अर्थात् जब वायु ऊपर उठती है तब जल ऊपर उठ जाता है और जब वायु नीचे बैठती है तब जल नीचे बैठ जाता है ॥४४८॥ पातालोंका पन्द्रहवाँ भाग शुक्लपक्षमें धीरे-धीरे वायुसे भरता रहता है और कृष्णपक्षमें जलसे। अमावस्या और पूर्णिमा-के दिन उनकी स्वाभाविक स्थिति हो जाती है ॥४४९॥ इन पाताल-विवरोंका पृथक्-पृथक् अन्तर दो लाख सत्ताईस हजार एक सौ पौने इकहत्तर योजन है ॥४५०॥

चारों विदिशाओंमें चार क्षुद्र पाताल-विवर हैं इनका ऊपर और नीचे एक-एक हजार तथा मध्यमें दश हजार योजन विस्तार है एवं उनकी ऊँचाई भी दश हजार योजन है ॥४५१॥ इन चारोंकी दीवालोंकी चौड़ाई पचास योजन है तथा प्रत्येकके तीन-तीन भाग हैं और उनमें पूर्वकी भाँति जल तथा वायुका सद्भाव है ॥४५२॥ तीनों भागोंमें प्रत्येक भाग तीन हजार तीन सौ तीस योजन तथा एक योजनके तीन भागोंमें एक भाग प्रमाण है ॥४५३॥ दिशाओं और विदिशाओंके पाताल-विवरोंका परस्पर अन्तर एक लाख तेरह हजार पचासी योजन है ॥४५४॥ लवण समुद्रमें इन आठ पाताल-विवरोंके आठ अन्तरालोंमें एक हजार क्षुद्र पाताल और भी हैं जो मोतियोंकी मालाके समान सुन्दर जान पड़ते हैं ॥४५५॥ इन क्षुद्र पाताल-विवरोंकी गहराई एक हजार योजन है और विस्तार मध्यमें एक हजार योजन तथा ऊपर-नीचे सौ-सौ योजन है ॥४५६॥ ये क्षुद्र पाताल विवर एक-एक अन्तरालके बीचमें एक सौ पचीस-एक सौ पचीस हैं तथा इनका पारस्परिक अन्तर सात सौ अंठानबे योजन एवं कुछ अधिक एक कोश है ॥४५७॥ जिनमें यथायोग्य पानीका प्रवेश तथा निर्गम होता रहता है, ऐसे ये समस्त पाताल-विवरोंके समूह क्षुद्र पाताल कहे गये हैं ॥४५८॥

तटसे बयालीस हजार योजन चलकर चारों दिशाओंमें एक-एक हजार योजन ऊँचे दो-दो पर्वत हैं ॥४५९॥ पूर्व दिशाके पाताल-विवरकी दोनों ओर कौस्तुभ और कौस्तुभास नामके अर्धकुम्भाकार चाँदीके दो पर्वत हैं इनके अधिष्ठाता (उदक और उदवास) देव विजयदेव के समान वैभवको धारण करनेवाले हैं ॥४६०॥ दक्षिण दिशाके कदम्बुक पातालविवरके समीप उदक और उदवास नामके दो पर्वत हैं। क्रमसे शिव तथा शिवदेव उनके अधिष्ठाता देव हैं ॥४६१॥ पश्चिम दिशाके बडवामुख पातालविवरके समीप शंख और महाशंख नामके दो पर्वत हैं तथा शंखके समान आभावाले शिव और शिवदेव नामक देव अधिष्ठाता हैं ॥४६२॥ उत्तर दिशाके भूपकेसर पाताल-विवरके समीप उदक और उदवास ये दो पर्वत हैं तथा रोहित और लोहितांक उनके अधिष्ठाता देव हैं ॥४६३॥ इन पर्वतोंका अपने-अपने पाताल-विवरोंसे एक लाख सोलह हजार योजन अन्तर है ॥४६४॥ इन पर्वतोंके ऊपर अनेक नगर बने हुए हैं उनमें वेलन्धर जातिके नागकुमार देवोंके साथ उनके स्वामी निवास करते हैं ॥४६५॥ लवण समुद्रमें बयालीस हजार नागकुमार अपने नियोगके अनुसार उसकी आभ्यन्तर वेलाको धारण करते हैं और बहत्तर हजार नागकुमार जलसे भरी बाह्य वेलाको सदा धारण करते हैं। ये नागकुमार जलक्रीडा करनेमें दृढ़ आदर रखते हैं ॥४६६–४६७॥ अट्ठाईस हजार नागकुमार लवण समुद्रकी उन्नत अग्रशिखाको धारण करते हैं ॥४६८॥ लवण समुद्रकी पश्चिमोत्तर दिशामें बारह योजन दूर चलकर बारह हजार योजन विस्तारवाला एक गोतम नामका द्वीप है। यह द्वीप सब ओरसे सम है तथा गोतम नामका देव

उसका अधिष्ठाता है। परिवार आदिकी अपेक्षा गोतम देव कौस्तुभ ं के समान हैं ॥४६९-४७०॥ लवण समुद्रकी पूर्व दिशामें एक टांगवाले, दक्षिणमें सींगवाले, पश्चिममें पूँछवाले और उत्तरमें गूँगे मनुष्य रहते हैं ॥४७१॥ चारों विदिशाओंमें खरगोशके समान कानवाले मनुष्य कहे गये हैं। एक टाँगवालोंकी उत्तर और दक्षिण दिशामें क्रमसे घोड़े और सिंहके समान मुखवाले मनुष्य रहते हैं ॥४७२॥ सींगवाले मनुष्योंकी दोनों ओर शष्कुलीके समान कानवाले और पूँछ-वालोंको दोनों ओर क्रमसे कुत्ते और वानरके समान मुखवाले मनुष्य रहते हैं ॥४७३॥ गूँगे मनुष्यों-की दोनों ओर शष्कुलीके समान कानवाले रहते हैं। विजयार्ध पर्वतके दोनों किनारोंपर जो कि पूर्व-पश्चिम समुद्रमें निकले हुए हैं क्रमसे गौ और भेड़के समान मुखवाले रहते हैं ॥४७४॥ हिमवत् पर्वतके पूर्व और पश्चिम कोणोंपर क्रमसे उल्कामुख और कृष्णमुख तथा शिखरी पर्वतके पूर्व-पश्चिम कोणोंपर मेघमुख और विद्युन्मुख मनुष्य रहते हैं ॥४७५॥ और ऐरावत क्षेत्रमें जो विजयार्ध है उसके दोनों कोणोंपर दर्पण तथा हाथीके समान मुखवाले मनुष्य माने गये हैं। इस प्रकार उक्त चौबीस द्वीप ही ऊपर कहे हुए मनुष्योंके आश्रय हैं ॥४७६॥ दिशाओं और विदिशाओंके अन्तरद्वीप समुद्रतटसे पाँच सौ योजन, अन्तरदिशाओंके साढ़े पाँच सौ योजन और पर्वतोंके कोणवर्ती द्वीप छह सौ योजन आगे चलकर हैं इन द्वीपोंके अग्रभागमें एक-एक पर्वत हैं ॥४७७॥ दिशाओंके द्वीप सौ योजन, विदिशाओं तथा अन्तरदिशाओंके पाँच सौ योजन और पर्वतोंके तटान्तवर्ती द्वीप पचीस योजन विस्तारवाले हैं ॥४७८॥ इनका पंचानबेवाँ भाग जलमें डूबा है तथा ये एक योजन जलसे ऊपर उठी हुई वेदिकाओंसे घिरे हुए हैं ॥४७९॥ पंचानबेवें भागको सोलहसे गुणा करनेपर गुणित भागोंके बराबर इनके ऊपर-नीचेका क्षेत्र जलसे आवृत कहना चाहिए ॥४८०॥ लवण समुद्रके जितने अन्तर्द्वीप जम्बूद्वीपके निकटवर्ती हैं उतने ही धातकी खण्डके निकटवर्ती हैं। भावार्थ—दिशाओंमें चार, विदिशाओंमें चार, अन्तरालोंमें आठ और हिमवत् शिखरी तथा दोनों विजयार्ध पर्वतोंके आठ इस प्रकार चौबीस अन्तर्द्वीप जम्बूद्वीपके निकटवर्ती लवणसमुद्रमें हैं तथा चौबीस धातकीखण्डके निकटवर्ती लवण समुद्रमें। सब मिलाकर लवण समुद्रमें ४८ अन्तर्द्वीप हैं ॥४८१॥ उनमें अठारह कुल कुभोगभूमिया जीवोंकी हैं और वे एक पल्यकी आयुवाले हैं।

एक टांगवाले मनुष्य गुफाओंमें रहते हैं तथा मधुर मिट्टीका भोजन करते हैं ॥४८२॥ शेष मनुष्य फूल और फलोंका आहार करते हैं तथा वृक्षोंके नीचे निवास करते हैं। ये सब एक दिनके अन्तरसे भोजन करते हैं और मरकर व्यन्तर तथा भवनवासी देव होते हैं ॥४८३॥ लवण समुद्रकी जगती (वेदी) जम्बू द्वीपकी जगतीके समान है उसके भीतरी भागमें शिलापट्ट हैं और बाहरी भागमें वन-पंक्तियाँ हैं ॥४८४॥ किसी भी द्वीप अथवा समुद्रका जितना विस्तार है उसे चौगुना कर उसमें-से तीन घटा देनेपर उसके अन्तिम मण्डलकी सूचीका प्रमाण निकलता है ॥४८५॥ इस करणसूत्रके अनुसार लवण समुद्रकी सूची पाँच लाख है उसमें-से विस्तार-के दो लाख घटा देनेपर तीन लाख रहे। उसमें चारका गुणा करनेपर बारह लाख हुए और उसमें विस्तारका प्रमाण जो दो लाख है उसका गुणा करनेपर चौबीस लाख हुए। इस तरह लवण समुद्रके जम्बू द्वीपके बराबर चौबीस खण्ड हैं। धातकी खण्डमें इससे छह गुने—एक सौ चालीस हैं। कालोदधिमें धातकीखण्डके खण्डोंसे सतगुने—छह सौ बहत्तर हैं और पुष्करार्धमें कालोदधिके खण्डोंसे चौगुने—दो हजार आठ सौ अस्सी हैं ॥४८६-४८८॥ इस प्रकार लवण समुद्रका वर्णन हुआ। अब धातकीखण्डका वर्णन करते हैं—

चार लाख योजन विस्तारवाला चूड़ीके आकार दूसरा धातकीखण्ड द्वीप भी चारों ओरसे

लवणसमुद्रको घेरे हुए है ।।४८९।। धातकी अर्थात् आंवलेके वृक्षोंसे सुशोभित इस धातकीखण्ड द्वीपकी आभ्यन्तर सूची पांच लाख, मध्यम सूची नौ लाख और बाह्य सूची तेरह लाख योजनकी है ।।४९०।। इनमें पूर्व—आभ्यन्तर सूचीकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस योजन है ।।४९१।। मध्यम सूचीकी परिधि अट्ठाईस लाख छियालीस हजार पचास योजनकी है ।।४९२।। और बाह्य सूचीकी परिधि इकतालीस लाख दश हजार नौ सौ इकसठ योजनकी है ।।४९३।।

इस द्वीपमें जम्बू द्वीपके महामेरुसे पूर्व और पश्चिम दिशामें दो मेरु पर्वत हैं तथा दक्षिण और उत्तरके भेदसे दो इष्वाकार पर्वत इसका विभाग करनेवाले हैं ।।४९४।। वे दोनों इष्वाकार पर्वत एक हजार योजन चौड़े, द्वीपकी चौड़ाई बराबर चार लाख योजन लम्बे तथा ऊँचाई और गहराईकी अपेक्षा निषध पर्वतके समान (चार सौ योजन ऊँचे और सौ योजन गहरे) हैं ।।४९५।। द्वीपके समान इस धातकीखण्डमें भी प्रत्येक मेरुकी अपेक्षा भरतको आदि लेकर सात क्षेत्र तथा हिमवान् आदि छह कुलाचल हैं ।।४९६।। यहाँके समस्त पर्वत, नदी और सरोवर जम्बू द्वीपके पर्वत, नदी और सरोवरके समान नामवाले हैं तथा उन्हींके समान ऊँचाई और गहराईसे युक्त हैं केवल विस्तार उनका दूना-दूना है ।।४९७।। इस द्वीपके पर्वत और क्षेत्र भीतरकी ओर नौ गाड़ीके पहियेमें लगे आरों तथा उनके बीचके अन्तरके समान हैं और बाहरकी ओर क्षुराके समान हैं अर्थात् इनका आभ्यन्तर भाग संक्षिप्त और बाह्य भाग विस्तृत है ।।४९८।। इस धातकीखण्डमें एक लाख अठहत्तर हजार आठ सौ बयालीस योजन प्रमाण क्षेत्र पर्वतोंसे रुका हुआ है ।।४९९।। भरत क्षेत्रका आभ्यन्तर विस्तार छह हजार छह सौ चौदह योजन तथा एक योजनके दो सौ बारह भागोंमें एक सौ उनतीस भाग प्रमाण है ।।५००।। धातकीखण्ड द्वीपमें पर्वत रहित क्षेत्रोंके दो सौ बारह खण्ड और पर्वतावरुद्ध क्षेत्रके एक सौ उन्नीस खण्ड होते हैं ।।५०१।। भरत क्षेत्रके मध्यम भागका विस्तार बारह हजार पांच सौ इक्यासी योजन छत्तीस भाग है ।।५०२।। और बाह्य विस्तार अठारह हजार पाँच सौ सैंतालीस योजन एक सौ पचपन भाग है ।।५०३।। यह तीनों प्रकारका विस्तार विदेह क्षेत्र तकके क्षेत्रोंमें भरत क्षेत्रके विस्तारसे आगे-आगे चौगुना-चौगुना अधिक है और उसके आगे ऐरावत क्षेत्र तक क्रमसे चौगुना-चौगुना कम होता गया है ।।५०४।। धातकीखण्ड द्वीपमें हिमवान् आदि बारहों पर्वतोंका विस्तार जम्बू द्वीपके पर्वतोंसे दूना-दूना है। इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपमें भी उनसे दूना-दूना विस्तार है ।।५०५।। अढ़ाई द्वीपमें मेरु पर्वतको छोड़कर कुलाचल, वृक्ष, वक्षार पर्वत और वेदिकाओंकी गहराई अपनी ऊँचाईसे चौथा भाग है ।।५०६।। धातकीखण्डके कुण्डोंका विस्तार उनकी गहराईसे छह गुना और नदी-सरोवरोंका विस्तार उनकी गहराईसे पचास गुना है ।।५०७।। धातकीखण्डके चैत्यालयोंकी ऊँचाई डेढ़ सौ योजन है और जम्बू आदि दशों महावृक्ष एक समान विस्तारवाले हैं ।।५०८।। नदी, सरोवर, वन, कुण्ड, पद्म, पर्वत और सरोवर गहराईकी अपेक्षा जम्बू द्वीपकी नदी आदिके समान हैं तथा विस्तारकी अपेक्षा दूने-दूने हैं ।।५०९।। चैत्य, चैत्यालय, वृषभाचल, नाभिपर्वत, चित्रकूट आदि कांचनगिरि आदि पर्वत, दिग्गजेन्द्रोंके कूट, तथा वेदिका आदि हैं वे सब विस्तार, गहराई तथा ऊँचाईकी अपेक्षा तीनों द्वीपोंमें समान हैं ।।५१०-५११।। धातकीखण्डमें समस्त कूटोंके रत्नमयी तोरण आधा योजन ऊँचे और पाँच सौ धनुष चौड़े हैं ।।५१२।। धातकीखण्ड और पुष्कर इन दोनों द्वीपोंके चारों मेरु पर्वतोंकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है ।।५१३।। वे मेरु पर्वत एक हजार योजन नीचे तो पृथिवीमें गहरे हैं और नौ हजार पाँच सौ योजन उनके मूलका विस्तार है ।।५१४।। उनके मूल भागकी परिधि तीस हजार बयालीस योजन है ।।५१५।।

तथा पृथिवीपरका विस्तार नौ हजार चार सौ योजन है ॥ ५१६ ॥ पृथिवीतलपर उनको परिधि उनतीस हजार सात सौ पच्चीस योजन है ॥५१७॥ भूमितलसे पाँच सौ योजन ऊपर चलकर अत्यन्त विस्तृत नन्दन वन है तथा पचपन हजार पाँच सौ योजन ऊपर सौमनस वन है ॥५१८॥ सौमनस वनसे अट्ठाईस हजार चार सौ चौरानबे योजनपर जाकर विशाल पाण्डुक वन है ॥५१९॥ नन्दन वनमें मेरुका विस्तार नौ हजार तीन सौ पचास योजन कहा गया है ॥५२०॥ इसी वनमें मेरुकी बाह्य परिधिका विस्तार उनतीस हजार पाँच सौ सड़सठ योजन है ॥५२१॥ नन्दन वनको छोड़कर मेरु पर्वतका भीतरी विस्तार आठ हजार तीन सौ पचास योजन है ॥५२२॥ मेरु पर्वतकी नन्दन वन सम्बन्धी परिधि छब्बीस हजार चार सौ पाँच योजन है ॥५२३॥ सौमनस वनमें मेरु पर्वतका बाह्य विस्तार तीन हजार आठ सौ योजन है और आभ्यन्तर विस्तार इससे एक हजार योजन कम है ॥५२४॥ सौमनस वनमें मेरु पर्वतकी बाह्य परिधि बारह हजार सोलह योजन है ॥५२५॥ और आभ्यन्तर परिधि आठ हजार आठ सौ चौवन योजन है ॥५२६॥ पाण्डुक वनमें मेरु पर्वतकी परिधि तीन हजार एक सौ बासठ योजन तथा कुछ अधिक एक कोश जानना चाहिए ॥५२७॥ ये चारों मेरु पर्वत नन्दन वनसे दश हजार ऊपर तक जो समरुन्द्र हैं अर्थात् समान चौड़ाईवाले हैं और उसके बाद क्रमसे कम-कम होते जाते हैं। यह क्रम सौमनस वनके आगे भी जानना चाहिए। क्रम यह है कि मूलसे लेकर दश हजार योजनकी वृद्धि होनेपर अंगुल हस्त तथा योजनका दसवाँ-दसवाँ भाग कम होता जाता है। अर्थात् दस हजार योजन की ऊँचाईपर एक हजार योजन, दश हाथकी ऊँचाई पर एक हाथ और दश अंगुलकी ऊँचाईपर एक अंगुल विस्तार कम हो जाता है ॥५२८-५२९॥ पाँचों मेरुओंकी वापियाँ, शिला, कूट, प्रासाद, चैत्य और चूलिकाएँ, चौड़ाई, गहराई और ऊँचाईकी अपेक्षा एक समान हैं ॥५३०॥ धातकीखण्डके भद्रशाल वनकी चौड़ाई बारह सौ पचीस योजन है ॥५३१॥ और इसकी लम्बाई एक लाख सात हजार आठ सौ उन्यासी योजन है ॥५३२॥ धातकीखण्डके गन्धमादन और विद्युद् गजदन्त पर्वतोंकी लम्बाई तीन लाख छप्पन हजार दो सौ सत्ताईस योजन है ॥५३३॥ तथा माल्यवान् और सौमनस्य गजदन्तोंकी लम्बाई पाँच लाख उनहत्तर हजार दो सौ उनसठ योजन हैं ॥५३४॥ कुलाचलोंके समीप कुरुक्षेत्रका विस्तार दो लाख तेईस हजार एक सौ अंठावन योजन है ॥५३५॥ धातकी खण्ड द्वीपके पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध दोनों भागोंमें मेरु पर्वतसे लेकर कुलाचलों तक कुरु प्रदेशोंकी वक्र लम्बाई तीन लाख सत्तानबे हजार आठ सौ सत्तानबे योजन और बानबे भाग है ॥५३६–५३७॥ और दोनों ओर सीधी लम्बाई तीन लाख छयासठ हजार छह सौ अस्सी योजन है ॥५३८॥ जिस प्रकार जम्बू द्वीपमें एक मेरु पर्वतके बत्तीस विदेह हैं उसी प्रकार धातकी खण्डमें भी प्रत्येक मेरुको अपेक्षा बत्तीस-बत्तीस विदेह हैं। इनमें पूर्वको ओर पूर्व विदेह और पश्चिमकी ओर पश्चिम विदेह स्थित हैं ॥५३९॥ मेरु पर्वतसे पूर्वमें कच्छा नामका देश है और पश्चिममें सूचीसे युक्त गन्धमालिनी देश है। वह सूची ग्यारह लाख पचीस हजार एक सौ अंठावन योजन है ॥५४०–५४१॥ इस सूचीकी परिधि पैंतीस लाख अंठावन हजार बासठ योजन प्रमाण है ॥५४२॥ पद्मा देशको आदि लेकर मंगलावती देश तक वह सूची ली जाती है जो पूर्व-पश्चिम मेरु पर्वतोंके अन्तरालमें स्थित है ॥५४३॥ यह सूची छह लाख चौहत्तर हजार आठ सौ बयालीस योजन प्रमाण है ॥५४४॥ इस सूचीकी परिधिका प्रमाण इक्कीस लाख चौंतीस हजार अड़तीस योजन है ॥५४५॥ इसके देशका विस्तार नौ हजार छह सौ तीस योजन तथा एक योजनके आठ भागोंमें तीन भाग प्रमाण है ॥५४६॥ क्षेत्र, वक्षारगिरि, विभंगा नदी और देवारण्य इनकी लम्बाई आदि, मध्य और अन्तके भेदसे तीन-तीन प्रकारकी है ॥५४७॥ कच्छा देशकी आदि लम्बाई पाँच लाख नौ हजार पाँच सौ

सत्तर योजन तथा एक योजनके दो सौ बारह भागोंमें दो सौ भाग है ॥५४८॥ इसकी आदि लम्बाईमें देशकी लम्बाई मिला देनेपर मध्य लम्बाई हो जाती है और मध्य लम्बाईमें देशकी लम्बाई मिल जानेपर अन्त लम्बाई हो जाती है। यही क्रम पर्वतादिकमें जानना चाहिए ॥५४९॥ पूर्वमें देश, वक्षार पर्वत और विभंग नदीकी जो अन्त्य लम्बाई है वही आगेके देश, वक्षार पर्वत और विभंग नदीकी आदि लम्बाई है ॥५५०॥ देशकी आयामवृद्धि चार हजार पांच सौ चौरासी योजन कही गयी है ॥५५१॥ वक्षार गिरियोंकी आयामवृद्धि चार सौ सतहत्तर योजन साठ कला है ॥५५२॥ विभंग नदियोंकी आयामवृद्धि एक सौ उन्तीस योजन बावन कला है ऐसा वृद्धिके जाननेवाले आचार्य कहते हैं ॥५५३॥ और देवारण्यकी वृद्धि दो हजार सात सौ नवासी योजन बानबे कला है ॥५५४॥ पद्मा देशकी लम्बाई दो लाख चौरानबे हजार छह सौ तेईस योजन एक सौ छियानबे कला है ॥५५५॥ यहाँके वक्षार पर्वत, क्षेत्र तथा नदी आदिकी आयामवृद्धि हीन जो आदि लम्बाई है वही इनकी मध्य लम्बाई है और आयामवृद्धि हीन जो मध्य लम्बाई है वही इनकी अन्त्य लम्बाई यथाक्रमसे जानने योग्य है ॥५५६॥ देश, वक्षारगिरि और विभंग नदियाँ सीता, सीतोदा नदियोंके दोनों तटोंपर आमने-सामने स्थित हैं तथा एक समान आयामके धारक हैं ॥५५७॥ पश्चिम मेरुसे पूर्व और पश्चिममें जो विदेह हैं वे क्रमशः पूर्व मेरुसे पूर्व तथा पश्चिमके विदेहोंके समान हैं ॥५५८॥ इस धातकीखण्डमें जम्बूद्वीपके समान एक-एक लाख विस्तारवाले एक सौ चौवालीस खण्ड हैं और समस्त धातकीखण्ड द्वीपका क्षेत्रफल एक लाख तेरह हजार आठ सौ इकतालीस करोड़ निन्यानबे लाख संतावन हजार छह सौ इकसठ योजन है ॥५५९–५६१॥ इस प्रकार धातकी खण्डका वर्णन किया। अब कालोदधिका वर्णन करते हैं—

धातकीखण्ड द्वीपसे दूने विस्तारवाला काले रंगका कालोदधि सागर धातकीखण्ड द्वीपको सब ओरसे घेरे हुए है ॥५६२॥ इसकी परिधि एकानबे लाख सत्तर हजार छह सौ पांच योजनसे कुछ अधिक मानी गयी है ॥५६३॥ विद्वानोंने कालोदधि समुद्रमें जहाँ-तहाँ जम्बूद्वीपके समान एक लाख योजन विस्तारवाले छह सौ बहत्तर खण्ड संकलित किये हैं ॥५६४॥ कालोदधि समुद्रका समस्त क्षेत्रफल पांच लाख उनहत्तर हजार अस्सी योजन है ॥५६५–५६६॥ कालोदधि समुद्रकी पूर्व दिशामें पानीके समान मुखवाले, दक्षिण दिशामें घोड़ेके समान कानवाले, पश्चिम दिशामें पक्षियोंके समान मुखवाले और विदिशाओंमें शूकरके समान मुखवाले मनुष्य रहते हैं। पूर्व दिशामें जो पानीके समान मुखवाले मनुष्य रहते हैं उनके दक्षिण और उत्तरमें—दोनों ओर क्रमसे ऊँट तथा गौके समान कानवाले मनुष्य रहते हैं। गजकर्ण और अश्वकर्ण मनुष्योंकी दोनों ओर बिल्लीके समान मुखवाले तथा पक्षियोंके समान मुखवालोंकी दोनों ओर हाथीके समान मुखवाले मनुष्य स्थित हैं। इन मनुष्योंके कान इतने लम्बे होते हैं कि ये उन्हींको ओढ़-बिछाकर सो जाते हैं ॥५६७–५६९॥ कालोदधि समुद्रमें विजयार्ध पर्वतके जो दो छोर निकले हुए हैं उनपर शिशुमारके समान तथा मगरके समान मुखवाले मनुष्य रहते हैं ॥५७०॥ हिमवान् पर्वतके दोनों छोरोंपर भेड़िया और व्याघ्रके समान मुखवाले तथा शिखरी पर्वतके दोनों भागोंपर शृगाल और भालूके समान मुखवाले मनुष्य स्थित हैं ॥५७१॥ ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वतके दोनों भागोंपर चीता तथा भृंगार (झारी) के समान मुखवाले और बाह्य एवं आभ्यन्तर जगतीपर चीतेके समान मुखवाले मनुष्य निवास करते हैं। ये समस्त मनुष्य आयु, वर्ण, गृह, आहार और गतिकी अपेक्षा लवण समुद्रके मनुष्योंके समान हैं, ये द्वीप एक हजार योजन गहरे हैं तथा जहाँ स्थित हैं वहाँ समुद्रका तट कटा हुआ है ॥५७२–५७३॥ कालोदधिमें स्थित रहनेवाले ये द्वीप प्रवेशकी अपेक्षा पांच सौ योजनसे अधिक हैं अर्थात् दिशाओंके द्वीप समुद्रतटसे पांच सौ योजन

प्रवेश करनेपर, विदिशाओंके द्वीप पांच सौ पचास योजन प्रवेश करनेपर और अन्तर्दिशाओंके द्वीप छह सौ योजन प्रवेश करनेपर स्थित हैं। इन सभीका विस्तार लवण समुद्रके द्वीपोंसे दूना माना गया है तथा कुमानुष कुभोग भूमिया जीव इनमें रहते हैं ॥५७४॥ चौबीस द्वीप कालोदधिकी आभ्यन्तर (धातकीखण्डकी समीपवर्ती) सीमामें और चौबीस द्वीप बाह्य (पुष्कराद्धंकी समीपवर्ती) सीमामें स्थित हैं। इस प्रकार कालोदधिमें अड़तालीस हैं। लवण समुद्रके अड़तालीस द्वीपोंके साथ मिलकर सब अन्तर्द्वीप छियानबे हो जाते हैं ॥५७५॥ इस प्रकार कालोदधिका वर्णन किया। अब पुष्कर द्वीपका वर्णन करते हैं—

जिसकी पूर्व-पश्चिम दिशाओंमें दो मेरु हैं, कालोदधिकी अपेक्षा जिसका दूना विस्तार है और जो पुष्कर अर्थात् कमलके विशाल चिह्नसे युक्त है ऐसा पुष्करवर द्वीप कालोदधिको चारों ओरसे घेरकर स्थित है ॥५७६॥ पुष्करवर द्वीपका अर्धभाग, मनुष्य क्षेत्रकी सीमा निश्चित करनेवाले मानुषोत्तर पर्वतसे घिरा हुआ है इसलिए पुष्करार्ध माना गया है ॥५७७॥ यह द्वीप उत्तर और दक्षिण दिशामें पड़े हुए इष्वाकार पर्वतोंसे विभक्त है इसलिए इसके पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम पुष्करार्ध इस प्रकार दो भेद हो जाते हैं ॥५७८॥ इन दोनों ही खण्डोंके मध्यमें धातकीखण्डके समान मेरु पर्वत है तथा पहलेके ही समान नामवाले क्षेत्र पर्वत तथा नदी आदिसे दोनों खण्डयुक्त हैं ॥५७९॥ पुष्करार्धके भरत क्षेत्रका आभ्यन्तर विस्तार इकतालीस हजार पांच सौ उन्यासी योजन तथा एक सौ तेहत्तर भाग है। मध्य विस्तार त्रेपन हजार पांच सौ बारह योजन एक सौ निन्यानबे भाग है और बाह्य विस्तार पैंसठ हजार चार सौ छियालीस योजन तेरह भाग कहा जाता है ॥५८०-५८३॥ गणितज्ञ आचार्योंने विदेह क्षेत्र तक पूर्व क्षेत्रसे आगेके क्षेत्रका और पूर्व भवनसे आगेके पर्वतका चौगुना विस्तार बतलाया है ॥५८४॥ समस्त पुष्करार्धकी बाह्य परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजनसे कुछ अधिक कही गयी है ॥५८५-५८६॥ पुष्करार्ध-का तीन लाख पचपन हजार छह सौ चौरासी योजन प्रमाण क्षेत्र पर्वतोंसे रुका हुआ है ॥५८७॥ पुष्करार्धके विजयार्ध नाभिगिरि तथा कुलाचल आदि अपनी-अपनी ऊँचाई और गहराईकी अपेक्षा जम्बू द्वीपके विजयार्ध आदिके समान हैं ॥५८८॥ परन्तु विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डके विजयार्ध आदिके दूने-दूने हैं। पुष्करार्धके दोनों इष्वाकार तथा दोनों मेरु धातकीखण्डके इष्वाकार और मेरुओंके समान हैं ॥५८९॥ अढ़ाई द्वीप तथा लवणोदधि और कालोदधि ये दो समुद्र मनुष्यक्षेत्र कहलाते हैं। इसका विस्तार पैंतालीस लाख योजन है ॥५९०॥ उत्तम शोभासे सम्पन्न मानुषोत्तर पर्वतकी ऊँचाई एक हजार सात सौ इक्कीस योजन है ॥५९१॥ गहराई चार सौ तीस योजन एक कोश है। मूल विस्तार एक हजार बाईस योजन, मध्य विस्तार सात सौ तेईस योजन और उपरितन भागका विस्तार चार सौ चौबीस योजन है ॥५९२-५९३॥ मानुषोत्तरकी परिधिका विस्तार एक करोड़ बयालीस लाख छत्तीस हजार सात सौ तेरह है ॥५९४॥ यह मानुषोत्तर भीतरकी ओर छिन्नतट टाँकीसे कटे हुएके समान एक सदृश है और इसका बाह्य भाग पिछली ओरसे क्रमसे ऊँचा उठता गया है अतः भीतरकी ओर मुख कर बैठे हुए सिंहके समान उसका आकार जान पड़ता है ॥५९५॥ यह पर्वत चौदह गुफारूपी दरवाजों-के द्वारा निकलनेका मार्ग देकर पूर्व-पश्चिमकी नदीरूपी स्त्रियोंको पुष्करोदधिके पास भेजता रहता है ॥५९६॥ जिन गुफाओंसे नदियां निकलती हैं वे पचास योजन लम्बी, पचीस योजन चौड़ी और साढ़े सैंतीस योजन ऊँची हैं ॥५९७॥ मानुषोत्तर पर्वतके उपरितन भागपर चारों दिशाओंमें आठ योजन ऊँचे और चार योजन चौड़े गृह-द्वारोंसे सुशोभित चार जिनालय हैं ॥५९८॥ इसी मानुषोत्तर पर्वतकी पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिणा रूपसे इष्ट स्थानोंपर बने हुए अठारह कूट

हैं ॥५९९॥ ये कूट पांच सौ योजन ऊँचे हैं। इनके मूल भागका विस्तार पाँच सौ योजन और ऊर्ध्वभागका ढाई सौ योजन है ॥६००॥ मानुषोत्तर पर्वतकी चारों दिशाओंमें तीन-तीन तथा विदिशाओंमें चार* कूट हैं। इन चारके सिवाय ऐशान दिशामें वज्रकूट और आग्नेय दिशामें तपनीयक कूट और भी हैं ॥६०१॥ पूर्व दिशाके वैडूर्य नामक पहले कूटपर यशस्वान् देव, दूसरे अश्मगर्भ कूटपर यशस्कान्त और तीसरे सौगन्धिक कूटपर सुपर्णकुमारोंका स्वामी यशोधर देव रहता है। तदनन्तर दक्षिण दिशाके रुचक कूटपर नन्दन, लोहिताक्ष कूटपर नन्दोत्तर और अंजन कूटपर अशनिघोष देव रहता है। पश्चिम दिशाके अंजनमूल कूटपर सिद्धदेव, कनक कूटपर क्रमण देव और रजत कूटपर मानुष नामका देव रहता है। उत्तर दिशाके स्फटिक कूटपर सुदर्शन, अंक कूटपर मोघ और प्रवाल नामक कूटपर सुप्रवृद्ध देव रहता है। आग्नेय विदिशाके पूर्वोक्त तपनीयक कूटपर स्वाति देव तथा ऐशान दिशाके वज्रक कूटपर हनुमान् नामका देव रहता है। मानुषोत्तर पर्वतके पूर्व-दक्षिण कोणमें निषधाचलसे स्पृष्ट भागमें रत्न नामका कूट है और उसपर नागकुमारोंका स्वामी वेणुदेव रहता है। पूर्वोत्तर कोणमें नीलाचलसे स्पृष्ट भागमे सर्वरत्न नामका कूट है उसपर गरुडकुमारोंका इन्द्र वेणुदारी रहता है। दक्षिण-पश्चिम कोणमें निषधाचलसे स्पृष्ट भागमें वेलम्ब नामका कूट है उसपर वरुणकुमारोंका अधिपति अतिवेलम्ब देव रहता है। तथा पश्चिमोत्तर दिशामें नीलाचलसे स्पृष्ट भागमें प्रभंजन नामका कूट है और उसके ऊपर वायुकुमारोंका इन्द्र प्रभंजन नामका देव रहता है ॥६०२–६१०॥ इस प्रकार अनेक आश्चर्योंसे भरा हुआ यह सुवर्णमय मानुषोत्तर पर्वत मनुष्य क्षेत्रके कोटके समान जान पड़ता है ॥६११॥ समुद्घात और उपपादके सिवाय विद्याधर तथा ऋद्धि प्राप्त मुनि भी इस पर्वतके आगे नहीं जा सकते ॥६१२॥

जिस प्रकार जम्बूद्वीपको लवण समुद्र घेरे हुए है उसी प्रकार पुष्करवर द्वीपको पुष्करवर समुद्र घेरे हुए है ॥६१३॥ उसके आगे वारुणीवर द्वीपको वारुणीवर सागर, क्षीरवर द्वीपको क्षीरोद-सागर, घृतवर द्वीपको घृतवर सागर, इक्षुवर द्वीपको इक्षुवर सागर, आठवें नन्दीश्वर द्वीपको नन्दीश्वरवर सागर, नौवें अरुण द्वीपको अरुणसागर, अरुणोद्भास द्वीपको अरुणोद्भास सागर, कुण्डलवर द्वीपको कुण्डलवर सागर, शंखवर द्वीपको शंखवर सागर, रुचकवर द्वीपको रुचकवर सागर, भुजगवर द्वीपको भुजगवर सागर, कुशवर द्वीपको कुशवर सागर, और क्रौंचवर द्वीपको क्रौंचवर सागर ये सब ओरसे घेरे हुए हैं। जिस प्रकार दूने-दूने विस्तारवाले इन सोलह द्वीप-सागरोंका नामोल्लेख पूर्वक वर्णन किया है उसी प्रकार दूने-दूने विस्तारवाले असंख्यात द्वीप-सागर इनके आगे और हैं ॥६१४–६२१॥

सोलहवें द्वीप सागरके आगे असंख्यात द्वीप सागरोंका उल्लंघन कर १ मनःशिल नामका द्वीप है उसके बाद २ हरिताल, ३ सिन्दूर, ४ श्यामक, ५ अंजन, ६ हिंगुलक, ७ रूपवर, ८ सुवर्णवर, ९ वज्रवर, १० वैडूर्यवर, ११ नागवर, १२ भूतवर, १३ यक्षवर, १४ देववर १५ इन्दुवर तथा सबसे अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीप तथा स्वयम्भूरमण सागर है। ये सभी द्वीप अपने समान नामवाले सागरोंसे वेष्टित हैं ॥६२२–६२६॥ आदिके सोलह और अन्तके सोलह इन दोनों राशियोंके बीच अनादि कालिक शुभ नामोंको धारण करनेवाले असंख्यात द्वीप और असंख्यात सागर हैं। इनमें द्वीपोंके बीच सागरका और सागरोंके बीच द्वीपका अन्तर विद्यमान है अर्थात् द्वीपके बाद सागर और सागरके बाद द्वीप इस क्रमसे इनका सद्भाव है ॥६२७॥ इन समुद्रोंमें लवणसमुद्रके जलका स्वाद नमकके समान है, वारुणीवर समुद्रके जलका स्वाद वारुणी—शराबके तुल्य है, घृतवर और क्षीर समुद्रका जल क्रमसे घृत और दूधके समान है। कालोदधि और अन्तिम-स्वयम्भूरमणका जल पानीके समान है। पुष्करवर समुद्र मधु और पानी दोनोंके स्वादसे युक्त है

तथा बाकी समस्त समुद्र इक्षुरसके समान स्वादवाले हैं ॥६२८–६२९॥ लवण समुद्रके तीरपर सम्मूर्च्छन जन्मसे उत्पन्न हुए महामच्छ नौ योजन लम्बे हैं तथा मध्यमें इससे दूने अर्थात् अठारह योजन लम्बे हैं। कालोदधि समुद्रमें नदियोंके प्रवेशस्थानपर अठारह योजन और मध्यमें छत्तीस योजन लम्बे हैं। गर्भजन्मसे उत्पन्न होनेवाले मच्छोंकी लम्बाई सम्मूर्च्छनज मत्स्योंसे आधी है ॥६३०-६३१॥ स्वयम्भूरमण समुद्रके तीरपर मच्छोंकी लम्बाई पांच सौ योजन और मध्यमें एक हजार योजन है। लवण समुद्र, कालोदधि और स्वयम्भूरमण इन तीन समुद्रोंके सिवाय अन्य समुद्रोंमें मच्छ आदि जलचर जीव नहीं हैं ॥६३२॥ इस ओर विकलेन्द्रिय जीव (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय) मानुषोत्तर पर्वत तक ही रहते हैं। उस ओर स्वयम्भूरमण द्वीपके अर्ध भागसे लेकर अन्त तक पाये जाते हैं ॥६३३॥ यदि किसी द्वीप या सागरका विस्तार जानना है तो उसके पहले जो भी द्वीप और सागर निकल चुके हैं उन सबके विस्तारको इकट्ठा कर लीजिए उससे एक लाख योजन अधिक विस्तार उस विवक्षित द्वीप या सागरका होता है ॥६३४॥ मेरु पर्वतकी अर्ध चौड़ाईसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रके अन्त तक आधी राजू होती है। इस आधी राजूका मध्य स्वयम्भूरमण समुद्रमें पचहत्तर हजार योजन प्रवेश करनेपर होता है। भावार्थ—समस्त मध्यम लोकका विस्तार एक राजू है। मेरु पर्वतकी जो चौड़ाई है उसके अर्ध भागसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रके अन्त तक आधी राजू होती है। आधी राजूके आधे भागमें आधा जम्बूद्वीप तथा असंख्यात द्वीप सागर और अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रके पचहत्तर हजार योजन तकका प्रदेश आता है, बाकी आधी राजूमें स्वयम्भूरमण समुद्रका अवशिष्ट भाग है ॥६३५–६३६॥ जम्बू द्वीपका रक्षक अनावृत्त यक्ष है, लवण समुद्रका स्वामी सुस्थित देव कहा गया है ॥६३७॥ धातकीखण्डके स्वामी प्रभास और प्रियदर्शन, कालोदधिके काल और महाकाल, पुष्करवर द्वीपके पद्म और पुण्डरीक, मानुषोत्तर पर्वतके चक्षुष्मान् और सुचक्षु, पुष्करवर समुद्रके श्रीप्रभ और श्रीधर, वारुणीवर द्वीपके वरुण और वरुणप्रभ, वारुणीवर समुद्रके मध्य और मध्यम, क्षीरवर द्वीपके पाण्डुर और पुष्पदन्त, क्षीरवर समुद्रके विमल और विमलप्रभ, घृतवर द्वीपके सुप्रभ और महाप्रभ, घृतवर समुद्रके कनक और कनकाभ, इक्षुवर द्वीपके पूर्ण और पूर्णप्रभ, इक्षुवर समुद्रके गन्ध और महागन्ध, नन्दीश्वर द्वीपके नन्दी और नन्दिप्रभ, नन्दीश्वर समुद्रके भद्र और सुभद्र, अरुण द्वीपके अरुण और अरुणप्रभ और अरुण समुद्रके सुगन्ध और सर्वगन्ध देव स्वामी हैं। इसी प्रकार आगे भी प्रत्येक द्वीप और सागरके दो-दो देव स्वामी हैं। उनमें एक दक्षिणका और दूसरा उत्तरका स्वामी है ॥६३८–६४६॥

जिनेन्द्र भगवान्‌ने आठवें नन्दीश्वर द्वीपका विस्तार एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन कहा है ॥६४७॥ नन्दीश्वर द्वीपकी आभ्यन्तर परिधि एक हजार छत्तीस करोड़ बारह लाख दो हजार सात सौ योजन है तथा बाह्य परिधि दो हजार बहत्तर करोड़ तैंतीस लाख चौवन हजार एक सौ नबे योजन है ॥६४८-६५१॥ नन्दीश्वर द्वीपके मध्यमें चारों दिशाओंमें चार अंजनगिरि हैं। ये पर्वत चौरासी हजार योजन ऊंचे, उतने ही चौड़े और एक हजार योजन गहरे हैं ॥६५२॥ ये सभी पर्वत ढोलके आकार हैं, चित्र-विचित्र हैं, वज्रमय मूलके धारक हैं, प्रभासे उज्ज्वल हैं और सब ओरसे मनको हरण करते हुए देदीप्यमान हैं ॥६५३॥ सुन्दर काले शिखरोंसे युक्त वे सुवर्णमयी पर्वत, दिशाओंमें सब ओर उत्तम कान्ति बिखेरते रहते हैं ॥६५४॥ एक लाख योजन आगे चलकर इन पर्वतोंकी चारों दिशाओंमें चार चौकोर अविनाशी वापियां हैं ॥६५५॥ ये वापियां कमलोंसे आच्छादित हैं, स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे युक्त हैं, मगरमच्छादिसे रहित और वेदिकाओंसे युक्त हैं ॥६५६॥ इनकी गहराई एक हजार योजन तथा लम्बाई और चौड़ाई जम्बू द्वीपके बराबर एक-एक लाख योजनकी है ॥६५७॥ पूर्व दिशामें जो अंजनगिरि है उसकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमसे नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दीघोषा नामकी वापिकाएँ स्थित हैं ॥६५८॥ इनमें पहली नन्दा नामकी

वापी सौधर्मेन्द्रकी, दूसरी नन्दवती ऐशानेन्द्रकी, तीसरी नन्दोत्तरा चमरेन्द्रकी और चौथी नन्दीघोषा वैरोचनको भोग्य है—क्रीड़ाका स्थान है ॥६५९॥ दक्षिण दिशामें जो अंजनगिरि है उसकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमसे विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता ये चार वापिकाएँ हैं ॥६६०॥ इनमें-से पहली वापिकामें वरुण, दूसरीमें यम, तीसरीमें सोम, चौथीमें वैश्रवण क्रीड़ा करता है। ये चारों सौधर्मेन्द्रके लोकपाल हैं ॥६६१॥ पश्चिम दिशामें जो अंजनगिरि है उसकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमसे अशोका, सुप्रबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीकिणी ये चार वापिकाएँ हैं। इनमें-से पहली वापी वेणुदेवकी, दूसरी वेणुतालिकी, तीसरी धरणकी और चौथी भूतानन्दकी क्रीड़ा-भूमि है ॥६६२-६६३॥ उत्तर दिशामें जो अंजनगिरि है उसकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमसे सुप्रभंकरा, सुमना, आनन्दा और सुदर्शना ये चार वापिकाएँ हैं। इनमें ऐशानेन्द्रके लोकपाल, वरुण, यम, सोम और कुबेर क्रमसे क्रीड़ा करते हैं ॥६६४-६६५॥ इन सोलह वापिकाओंका भीतरी अन्तर पैंसठ हजार पैंतालिस योजन है। मध्य अन्तर एक लाख चार हजार छह सौ दो योजन है और बाहरी अन्तर दो लाख तेईस हजार छह सौ इकसठ योजन है ॥६६६-६६८॥ उन वापिकाओंके मध्यमें रूपामयी सफेद शिखरोंसे युक्त सुवर्णमय सोलह दधिमुख पर्वत हैं ॥६६९॥ ये सभी पर्वत एक-एक हजार योजन गहरे, दश-दश हजार योजन चौड़े, लम्बे तथा ऊँचे एवं ढोलके आकार हैं ॥६७०॥ चारों वापिकाओंकी चारों ओर चार वन हैं जो वापिकाओंके समान एक लाख योजन लम्बे और उनसे आधे अर्थात् पचास हजार योजन चौड़े हैं ॥६७१॥ उनमें पूर्व दिशामें अशोकवन है, दक्षिणमें सप्तपर्णवन है, पश्चिममें चम्पकवन है और उत्तरमें आम्रवन है ॥६७२॥ वापिकाओंके कोणोंके समीप रतिकर नामके पर्वत हैं। ये पर्वत प्रत्येक वापिकाके प्रति चार-चार हैं, सुवर्णमय हैं तथा ढोलके आकार हैं ॥६७३॥ ढाई सौ योजन गहरे हैं, एक हजार योजन ऊँचे-चौड़े तथा लम्बे हैं और विनाशसे रहित हैं ॥६७४॥ इनमें बत्तीस रतिकर आभ्यन्तर कोणोंमें हैं और बत्तीस बाह्य कोणोंमें। ये सभी देवोंके द्वारा सेवित हैं तथा प्रत्येकपर एक-एक चैत्यालय है ॥६७५॥* रतिकरोंकी भाँति अंजनगिरि तथा दीर्घमुख पर्वतोंके मस्तक भी एक-एक जिन-मन्दिरसे पवित्र हैं अर्थात् उन सबपर एक-एक चैत्यालय है ॥६७६॥ ये समस्त चैत्यालय पूर्वाभिमुख, सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और पचहत्तर योजन ऊँचे हैं ॥६७७॥

आठ योजन ऊँचे, चार योजन चौड़े तथा गहरे तीन-तीन द्वारोंसे देदीप्यमान नन्दीश्वर द्वीपके ये पावन चैत्यालय अतिशय शोभायमान हैं ॥६७८॥ उन चैत्यालयोंमें संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌की पाँच सौ धनुष ऊँची रत्न एवं स्वर्ण निर्मित मूर्तियाँ विराजमान हैं ॥६७९॥ प्रतिवर्ष फाल्गुन, आषाढ़ और कार्तिकके आष्टाह्निक पर्वोंमें सौधर्मेन्द्र आदि देव उन चैत्यालयोंमें पूजा करते हैं ॥६८०॥ पहले जिन चौंसठ वनखण्डोंका वर्णन किया गया है उनमें चौंसठ प्रासाद है तथा उन प्रासादोंमें वनोंके नामवाले देव रहते हैं ॥६८१॥ वे प्रासाद बासठ योजन ऊँचे, इकतीस योजन लम्बे, इतने ही चौड़े तथा पूर्वोक्त प्रमाणवाले द्वारोंसे सहित हैं ॥६८२॥

नन्दीश्वर समुद्रसे आगे अरुण द्वीप तथा अरुण सागर है वहाँ समुद्रसे लेकर ब्रह्मलोकके अन्त तक अन्धकार ही अन्धकार है ॥६८३॥ अरुण समुद्रके बाहर मृदंगके समान आकारवाली घनाकार आठ काली पंक्तियाँ फैली हुई हैं ॥६८४॥ अल्प ऋद्धिके धारी देव इस अन्धकारमें दिशामूढ़ हो चिरकाल तक भटकते रहते हैं। वे बड़ी ऋद्धिके धारक देवोंके साथ ही इस समुद्रको लाँघ सकते हैं ॥६८५॥ कुण्डलवर द्वीपके मध्यमें चूड़ीके आकारका एक कुण्डलगिरि पर्वत है जो सम्पूर्ण यवोंकी राशिके समान सुशोभित है ॥६८६॥ मणियोंके समूहसे सुशोभित रहनेवाले इस पर्वतकी गहराई एक हजार योजन और ऊँचाई बयालीस हजार योजन है ॥६८७॥ उस पर्वतकी मूलमें दश हजार दो सौ बीस योजन, मध्यमें सात हजार एक सौ इकसठ योजन और अन्तमें चार हजार

छियानबे योजन चौड़ाई है ॥६८८॥ उसके मूर्धभागपर पूर्वादि दिशाओंमें चार-चार कूट हैं। चारों दिशाओंके ये सोलह कूट सदा देवोंके द्वारा सेवित हैं तथा अत्यन्त सुशोभित हैं ॥६८९॥ पूर्व दिशाके वज्र नामक पहले कूटपर त्रिशिरस्, वज्रप्रभ नामक दूसरे कूटपर पंचशिरस्, कनक नामक तीसरे कूटपर महाशिरस् और कनकप्रभ नामक चौथे कूटपर महाभुज नामका देव रहता है। दक्षिण दिशाके रजतकूटपर पद्म, रजतप्रभ कूटपर पद्मोत्तर, सुप्रभ कूटपर महापद्म और महाप्रभ कूटपर वासुकि देव रहता है। पश्चिम दिशाके अंक कूटपर स्थिरहृदय, अंकप्रभ कूटपर महाहृदय, मणि कूटपर श्रीवृक्ष और मणिप्रभ कूटपर स्वस्तिक देव रहता है। उत्तर दिशाके स्फटिक कूटपर सुन्दर, स्फटिकप्रभ कूटपर विशालाक्ष, महेन्द्र कूटपर पाण्डुक और हिमवत् कूटपर पाण्डुर देव रहता है ॥६९०-६९४॥ ये सोलह देव नागकुमार देवोंके इन्द्र हैं, सबकी एक पल्य प्रमाण आयु है और सब यथायोग्य अपने-अपने कूटोंपर बने हुए प्रासादोंमें निवास करते हैं ॥६९५॥ कुण्डल गिरिके ऊपर पूर्व-पश्चिम दिशामें कुण्डलवर द्वीपके स्वामीके दो कूट प्रकट हैं। उन कूटोंकी ऊँचाई एक हजार योजन है, मूल विस्तार एक हजार योजन, मध्य विस्तार सात सौ पचास योजन और उपरितन विस्तार पांच सौ योजन है ॥६९६-६९७॥ उसी कुण्डलगिरिके ऊपर चारों महादिशाओंमें चार जिनालय हैं जो प्रमाणकी अपेक्षा अंजनगिरिके जिनालयोंके समान हैं ॥६९८॥

रुचकवर नामका जो तेरहवां द्वीप है उसके मध्यमें चूड़ीके आकारका रुचकवर नामका पर्वत है ॥६९९॥ इसकी गहराई एक हजार योजन, ऊँचाई चौरासी हजार योजन और चौड़ाई बयालीस हजार योजन है ॥७००॥ उस पर्वतके शिखरपर चारों दिशाओंमें एक हजार योजन चौड़े और पांच सौ योजन ऊँचे चार कूट सुशोभित हैं ॥७०१॥ उनमें पूर्व दिशाके नन्द्यावर्त कूटपर पद्मोत्तर देव रहता है, दक्षिण दिशाके स्वस्तिक कूटपर स्वहस्ती देव रहता है। पश्चिम दिशाके श्रीवृक्ष कूटपर नीलक देव रहता है और उत्तर दिशाके वर्धमानक कूटपर अंजनगिरि देव रहता है। ये चारों देव दिग्गजेन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा एक पल्यकी आयुवाले हैं ॥७०२-७०३॥ इसी पर्वतकी पूर्व दिशामें पहले कहे हुए अन्य कूटोंके समान आठ कूट हैं और वे दिक्कुमारी देवियोंके द्वारा सेवित हैं ॥७०४॥ उनमें पहले वैडूर्य कूटपर विजया, दूसरे कांचन कूटपर वैजयन्ती, तीसरे कनक कूटपर जयन्ती, चौथे अरिष्ट कूटपर अपराजिता, पाँचवें दिक्नन्दन कूटपर नन्दा, छठे स्वस्तिकनन्दन कूटपर नन्दोत्तरा, सातवें अंजनकूटपर आनन्दा और आठवें अंजनमूलक कूटपर नान्दीवर्धना देवी निवास करती हैं ॥७०५-७०६॥ ये दिक्कुमारियां तीर्थंकरके जन्मकालमें पूजाके निमित्त हाथमें देदीप्यमान झारियां लिये हुए तीर्थंकरकी माताके समीप रहती हैं ॥७०७॥ दक्षिण दिशामें भी आठ कूट हैं और उनमें पहले अमोघ कूटपर स्वस्थिता, दूसरे सुप्रबुद्ध कूटपर सुप्रणिधि, तीसरे मन्दर कूटपर सुप्रबुद्धा, चौथे विमल कूटपर यशोधरा, पांचवें रुचक कूटपर लक्ष्मीमती, छठे रुचकोत्तर कूटपर कीर्तिमती, सातवें चन्द्र कूटपर वसुन्धरा और आठवें सुप्रतिष्ठ कूटपर चित्रादेवी निवास करती हैं ॥७०८-७१०॥ ये देवियां तीर्थंकरकी उत्पत्तिके समय सन्तुष्ट होकर आती हैं और मणिमय दर्पण धारण कर तीर्थंकरकी माताकी सेवा करती हैं ॥७११॥ पश्चिम दिशामें भी आठ कूट हैं उनमें पहले लोहिताख्य कूटपर इलादेवी, दूसरे जगत्कुसुम कूटपर सुरा देवी, तीसरे नलिन कूटपर पृथिवी देवी, चौथे पद्मकूटपर पद्मावती देवी, पांचवें कुमुद कूटपर कांचना देवी, छठे सौमनस कूटपर नवमिका देवी, सातवें यशःकूटपर शीता देवी और आठवें भद्र कूटपर भद्रिका देवीका निवास है। ये देवियां तीर्थंकरकी उत्पत्तिके समय शुक्ल छत्र धारण करती हुईं सुशोभित होती हैं ॥७१२-७१४॥ इसी प्रकार उत्तर दिशामें भी आठ कूट हैं और उनमें पहले स्फटिक कूटपर लम्बुसा, दूसरे अंक

कूटपर मिश्रकेशी, तीसरे अंजनक कूटपर पुण्डरीकिणी, चौथे कांचन कूटपर वारुणी, पांचवें रजत कूटपर आशा, छठवें कुण्डल कूटपर ह्री, सातवें रुचक कूटपर श्री और आठवें सुदर्शन कूटपर धृति नामकी देवी रहती है। देवियाँ हाथमें चमर लेकर जिनमाताकी सेवा करती हैं ॥७१५-७१७॥ इनके सिवाय पूर्वादि दिशाओंमें दीप्तिसे दिशाओंके अन्तरालको देदीप्यमान करनेवाले चार कूट और हैं जो यथाक्रमसे इस प्रकार हैं—पूर्व दिशामें विमल नामक कूट है और उसपर चित्रा देवी रहती है। दक्षिण दिशामें नित्यालोक नामका कूट है और उसपर कनकचित्रा देवीका निवास है। पश्चिम दिशामें स्वयंप्रभ नामका कूट है और उसपर त्रिशिरस् देवी निवास करती है तथा उत्तर दिशामें नित्योद्योत नामका कूट है और उसपर सूत्रामणि देवी रहती है। ये विद्युत्कुमारी देवियाँ सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाश करती हुई जिनमाताके समीप स्थिर रहती हैं ॥७१८-७२१॥ पूर्वोत्तर—ऐशान विदिशामें वैडूर्य नामका कूट है उसपर रुचका देवी रहती है, दक्षिणपूर्वा—आग्नेयविदिशामें रुचक नामका कूट है उसपर रुचकोज्ज्वला देवी रहती है, दक्षिण-पश्चिम – नैऋत्य विदिशामें मणि-प्रभ कूट है उसपर रुचकाभा देवी निवास करती है और पश्चिमोत्तर—वायव्य दिशामें रुचकोत्तम कूट है उसपर रुचकप्रभा देवीका निवास है ॥७२२-७२३॥ ये चारों दिक्कुमारी देवियोंकी उत्कृष्ट महत्तरिका (प्रधान) देवियाँ हैं। इनके सिवाय विदिशाओंमें निम्नलिखित चार कूट और हैं ॥७२४॥ उनमें ऐशान दिशामें रत्न कूटपर विजया देवीका निवास है, आग्नेय दिशामें रत्नप्रभ कूटपर वैजयन्ती देवी निवास करती है; नैऋत्य दिशामें सर्वरत्न कूटपर जयन्ती देवी रहती है और वायव्य दिशामें रत्नोच्चय कूटपर अपराजिता देवी निवास करती है। ये चार देवियाँ विद्युत्कुमारी देवियोंकी महत्तरिका हैं। ऊपर कही हुई चार विद्युत्कुमारियाँ तथा चार ये इस प्रकार आठों देवियाँ यहाँ आकर तीर्थंकरका जातकर्म करती हैं ॥७२५-७२७॥ रुचिकगिरिके ऊपर चारों दिशाओंमें, चार जिनमन्दिर हैं। ये अंजनगिरियोंके समान विस्तारवाले हैं तथा पूर्वकी ओर इनका मुख है ॥७२८॥ दिशाओं एवं विदिशाओंमें रहनेवाली देवियोंके निवास-कूटों तथा जिन-मन्दिरोंसे जिसका मस्तक सदा अलंकृत रहता है ऐसा यह रुचकगिरि अतिशय सुशोभित है ॥७२९॥

स्वयंभूरमण द्वीपके मध्यमें स्थित, चूड़ीके आकारवाला एक स्वयंप्रभ नामका पर्वत सुशोभित है ॥७३०॥ मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके बीच असंख्यात द्वीपोंमें जो तिर्यंच रहते हैं उनकी जघन्य भोगभूमि तिर्यंचोंकी सदृशता है ॥७३१॥ स्वयंप्रभ पर्वतके आगे जो तिर्यंच हैं वे कर्मभूमिज तिर्यंचोंके समान हैं क्योंकि उनमें असंख्यात तिर्यंच संयतासंयत—देशव्रती भी होते हैं ॥७३२॥ ऊपर कहे हुए द्वीप समुद्रोंमें तथा मनोहारी पर्वतोंपर किन्नर आदि व्यन्तर देव यथायोग्य निवास करते हैं ॥७३३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि श्रेणिक! इस प्रकार तूने द्वीपसागर सम्बन्धी प्रज्ञप्ति जानी अब इसके आगे संक्षेपमें ज्योतिर्लोक तथा ऊर्ध्वलोक सम्बन्धी प्रज्ञप्तिका श्रवण कर ॥७३४॥ जम्बू द्वीप तथा लवणसमुद्रको आदि लेकर उत्तमोत्तम द्वीप तथा सागर सम्बन्धी प्रज्ञप्तिके इस मुनि सम्मत स्पष्ट संग्रहको जो भव्य सुनता है उसका पृथिवी लोक सम्बन्धी समस्त संशय नष्ट हो जाता है सो ठीक ही है क्योंकि मुनि रूपी सूर्यके उदित होनेपर क्या अन्धकारका समूह कहीं ठहर सकता है? अर्थात् नहीं ॥७३५॥

इस प्रकार जिसमें अरिष्टनेमि पुराणका संग्रह किया गया है ऐसे जिनसेनाचार्यरचित हरिवंश पुराणमें द्वीप सागरोंका वर्णन करनेवाला पंचम सर्ग समाप्त हुआ।

□

पृथिवीतलसे सात सौ नब्बे योजन ऊपर चलकर आकाशमें सबसे नीचे तारा स्थित है ॥१॥ और पृथिवी तलसे नौ सौ योजन ऊपर चलकर आकाशमें सबसे ऊपर ज्योतिष्पटल स्थित है। भावार्थ—आकाशमें ज्योतिष्पटल सात सौ नब्बे योजनकी ऊँचाईमें शुरू होकर नौ सौ योजन तक है ॥२॥ यह ज्योतिष्पटल एक सौ दस योजन मोटा है तथा आकाशमें घनोदधिवातवलय पर्यन्त सब ओर फैला है ॥३॥ ताराओंके पटलसे दश योजन ऊपर जाकर सूर्योंका पटल है और उससे अस्सी योजन ऊपर जाकर चन्द्रमाओंका पटल है ॥४॥ उससे चार योजन ऊपर जाकर नक्षत्रोंका पटल है और उससे चार योजन ऊपर चलकर बुधका पटल है ॥५॥ उससे तीन-तीन योजन ऊपर चलकर क्रमसे शुक्र, गुरु, मंगल और शनैश्चर ग्रहोंके पटल हैं ॥६॥ सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह और तारा ये पांच प्रकारके ज्योतिर्विमान हैं। इनमें रहनेवाले देव भी इन्हींके समान नामवाले हैं तथा इन्हींके समान पाँच प्रकारके हैं ॥७॥ इनमें चन्द्र एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य तक, सूर्य एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य तक, शुक्र सौ वर्ष अधिक एक पल्य तक, बृहस्पति पौन पल्य तक, मंगल, बुध और शनैश्चर आधा पल्य तक और तारा चौथाई पल्य तक, जीवित रहते हैं। यह सबकी उत्कृष्ट आयु है। जघन्य आयु पल्यके आठवें भाग प्रमाण है ॥८-९॥ बुद्धि द्वारा योजनके जो इकसठ भाग किये जाते हैं उनमें छप्पन भाग प्रमाण चन्द्र मण्डलका विस्तार है ॥१०॥ और अड़तालीस भाग प्रमाण सूर्यका विस्तार है। शुक्रका विस्तार एक कोश, बृहस्पतिका कुछ कम एक कोश, और शेष समस्त ग्रहोंका विस्तार आधा कोश प्रमाण है। जघन्य तारा मण्डल पाव कोश, मध्यम तारा मण्डल कुछ अधिक पाव कोश और उत्कृष्ट तारामण्डल आधाकोश विस्तृत है ॥११-१३॥ ताराओंका जघन्य अन्तर कोशका सातवाँ, मध्यम अन्तर पचास योजन और उत्कृष्ट अन्तर एक हजार योजन है ॥१४॥ सूर्यके विमान लोहिताक्षमणिके हैं, अर्ध गोलकके समान गोल तथा तपाये हुए सुवर्णके समान सुशोभित हैं ॥१५॥ चन्द्रमाके विमान स्फटिक मणिमय हैं, मृणालके समान सफेद हैं तथा कान्तिके समूहसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त सुशोभित हैं ॥१६॥ राहुके विमान अरिष्टमणिमय हैं, अंजनकी राशिके समान श्याम हैं तथा चन्द्रमा और सूर्य विमानके नीचे स्थित हैं ॥१७॥ राहुके विमान एक योजन चौड़े, एक योजन लम्बे, तथा ढाई सौ धनुष मोटे हैं ॥१८॥ शुक्रके विमान रजतमय हैं, अपनी कान्तिसे नूतन मालतीकी मालाको जीतते हैं तथा सब ओरसे प्रकाशमान हैं ॥१९॥ जिनकी आभा उत्तम मुक्ताफलके समान है, ऐसे बृहस्पतिके विमान स्फटिक मणिसदृश कान्तिसे सुशोभित हैं। बुधके विमान सुवर्णमय हैं, शनैश्चरके विमान तप्त स्वर्णमय हैं, और अंगारक—मंगलके विमान लोहिताक्षमणिमय हैं ॥२०-२१॥ यह वर्णोंकी विविधरूपता ज्योतिर्लोक गत विमानोंकी है किन्तु अरुण समुद्रके ऊपर जो ज्योतिर्विमान हैं उनका केवल श्यामवर्ण ही है ॥२२॥ ज्योतिर्विमानोंके उदय और अस्तकी व्यवस्था मानुषोत्तर पर्वतके इसी ओर है उसके आगेके समस्त विमान आकाशमें स्थित ही हैं उनमें संचार नहीं होता ॥२३॥ मानुषोत्तर पर्वत तकके ज्योतिषी संख्यात हैं और उसके आगेके असंख्यात। उन दोनों प्रकारके

ज्योतिषियोंके इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा हैं। संख्यात ज्योतिषियोंके इन्द्र संख्यात सूर्य चन्द्रमा हैं और असंख्यात ज्योतिषियोंके इन्द्र असंख्यात सूर्य चन्द्रमा हैं ॥२४॥ उनमें जो गतिशील ज्योतिषी हैं वे ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर हटकर मेरुकी प्रदक्षिणा देते हुए भ्रमण करते हैं ॥२५॥ जम्बू द्वीपमें दो सूर्य, दो चन्द्रमा, लवण समुद्रमें चार सूर्य, चार चन्द्रमा, धातकीखण्डमें बारह सूर्य, बारह चन्द्रमा, कालोदधिमें बयालीस सूर्य, बयालीस चन्द्रमा और पुष्कराधंमें बहत्तर सूर्य और बहत्तर चन्द्रमा हैं ॥२६–२७॥ एक-एक चन्द्रमाके छयासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ा-कोड़ी तारा, अट्ठाईस नक्षत्र और अठासी महाग्रह हैं ॥२८–२९॥ मानुषोत्तरके आगे पुष्कराधंमें बहत्तर सूर्य और बहत्तर चन्द्रमा हैं, ये सदा निश्चल रहते हैं ॥३०॥ मानुषोत्तर पर्वतसे पचास हजार योजन आगे चलकर सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिषी-वलयके रूपमें स्थित हैं। भावार्थ—मानुषोत्तरसे पचास हजार योजन चलकर ज्योतिषियोंका पहला वलय है ॥३१॥ उसके आगे एक-एक लाख योजन चलकर ज्योतिषियोंके वलय हैं। प्रत्येक वलयमें चार-चार सूर्य और चार-चार चन्द्रमा अधिक हैं एवं एक दूसरेको किरणें निरन्तर परस्परमें मिली हुई हैं ॥३२॥ धातकीखण्ड आदि द्वीप-समुद्रोंमें सूर्य-चन्द्रमा क्रमसे तिगुने-तिगुने हैं। विशेषता यह है कि उनमें पिछले द्वीप-समुद्रोंके सूर्य-चन्द्रमाओंकी संख्या भी मिलानी पड़ती है। जैसे, कालोदधि समुद्रके सूर्य-चन्द्रमाओंकी संख्या बयालीस है, वह इस प्रकार निकलती है—कालोदधिसे पिछला द्वीप धातकीखण्ड है इसके सूर्य-चन्द्रमाओंकी संख्या बारह है, इससे तिगुनी संख्या छत्तीस हुई, उसमें लवण समुद्र तथा जम्बूद्वीपके सूर्य-चन्द्रमाओंकी छह संख्या जोड़ देनेसे कालोदधिके सूर्य-चन्द्रमाओंकी संख्या बयालीस निकल आती है। पुष्करवर द्वीपके मानुषोत्तर तक बहत्तर और उसके आगे बहत्तर दोनों मिलाकर एक सौ चौवालीस सूर्य-चन्द्रमा हैं। उनके निकालनेकी विधि यह है कि पुष्कर द्वीपसे पूर्ववर्ती कालोदधिकी संख्या बयालीसको तिगुना किया तो एक सौ छब्बीस हुए, उनमें कालोदधिके बारह, लवण समुद्रके चार और जम्बूद्वीपके दो इस प्रकार अठारह और मिलाये जिससे एक सौ चौवालीस सिद्ध हुए। इसी प्रकार आगे-आगेके द्वीप-समुद्रोंमें जानना चाहिए ॥३३॥ इस प्रकार यह ज्योतिर्लोकके विभागका संक्षेपसे वर्णन किया। अब ऊर्ध्वलोकके विभागका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है ॥३४॥

मेरु पर्वतकी चूलिकाके साथ ऊर्ध्वलोक शुरू होता है अर्थात् चूलिकासे ऊपर ऊर्ध्वलोक है। चूलिकाके ऊपर-ऊपर स्वर्ग तथा ग्रैवेयक आदि हैं ॥३५॥ १ सौधर्म, २ ऐशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ ब्रह्मोत्तर, ७ लान्तव, ८ कापिष्ठ, ९ शुक्र, १० महाशुक्र, ११ शतार, १२ सहस्रार, १३ आनत, १४ प्राणत, १५ आरण और १६ अच्युत ये सोलह कल्प कहे गये हैं। इनकी रचना दक्षिण और उत्तरके भेदसे दो-दोके जोड़के रूपमें है ॥३६–३८॥ उनके ऊपर अधोग्रैवेयक, मध्यग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकके भेदसे तीन प्रकारके ग्रैवेयक हैं। इन तीनों ग्रैवेयकोंके भी आदि, मध्य और ऊर्ध्वके भेदसे तीन-तीन भेद होते हैं। इन ग्रैवेयकोंके नौ पटल* हैं ॥३९॥ उसके आगे नौ अनुदिश* और अनुदिशोंके आगे पांच अनुत्तर† विमान हैं। अनुदिश और अनुत्तर विमानोंका एक-एक पटल है। अन्तमें ईषत्प्राग्भार भूमि है। उसीके अन्त तक ऊर्ध्वलोक कहलाता है ॥४०॥ स्वर्गोंके समस्त विमान चौरासी लाख संत्तानबे हजार तेईस हैं ॥४१॥ इनमें त्रेसठ पटल और त्रेसठ ही इन्द्रक विमान हैं। इन्द्रक विमानोंका समूह पटलोंके मध्यमें ऊर्ध्व रूपसे स्थित है ॥४२॥ आदि इन्द्रकका नाम ऋतु है उसकी चारों दिशाओंमें त्रेसठ-त्रेसठ श्रेणीबद्ध विमान हैं और आगे प्रत्येक इन्द्रकमें एक-एक विमान कम होता जाता है ॥४३॥ सौधर्म और ऐशान नामक प्रारम्भके दो स्वर्गोंमें १ ऋतु, २ विमल, ३ चन्द्र, ४ वल्गु, ५ वीर, ६ अरुण, ७ नन्दन, ८ नलिन, ९ कांचन, १० रोहित, ११ चंचल, १२ मारुत, १३ ऋद्धीश, १४ वैडूर्य, १५ रुचक, १६ रुचिर, १७ अर्क, १८ स्फटिक,

१९ तपनीयक, २० मेघ, २१ भद्र, २२ हारिद्र, २३ पद्म, २४ लोहिताक्ष, २५ वज्र, २६ नन्द्यावर्त, २७ प्रभंकर, २८ प्रष्टक, २९ जग, ३० मित्र और ३१ प्रभा ये इकतीस पटल हैं ॥४४–४७॥ सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पमें १ अंजन, २ वनमाल, ३ नाग, ४ गरुड़, ५ लांगल, ६ बलभद्र और ७ चक्र ये सात इन्द्रक विमान हैं ॥४८॥ ब्रह्म लोकमें १ अरिष्ट, २ देवसंगीत, ३ ब्रह्म और ४ ब्रह्मोतर ये चार इन्द्रक विमान हैं ॥४९॥ लान्तवमें १ ब्रह्महृदय और २ लान्तव ये दो इन्द्रक विमान हैं। महाशुक्रमें १ शुक्र, सहस्रारमें १ शताह्य, आनतमें १ आनत, २ प्राणत और ३ पुष्पक ये तीन, अच्युतमें १ सानुकार, २ आरण और ३ अच्युत ये तीन इन्द्रक विमान हैं ॥५०–५१॥ अधोग्रैवेयकमें १ सुदर्शन, २ अमोघ और ३ सुप्रबुद्ध ये तीन, मध्य गैवेयकमें १ यशोधर, २ सुभद्र और ३ सुविशाल ये तीन और ऊर्ध्व-ग्रैवेयकमें १ सुमन, २ सौमनस्य और ३ प्रीतिंकर ये तीन इन्द्रक विमान हैं ॥५२–५३॥ नौ अनुदिशोंके मध्यमें आदित्य नामका एक इन्द्रक विमान है और पाँच अनुत्तरोंमें सर्वार्थसिद्धि नामका एक इन्द्रक विमान है ॥५४॥ सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख, ऐशानमें अट्ठाईस लाख. सनत्कुमारमें बारह लाख, माहेन्द्रमें आठ लाख, ब्रह्म-स्वर्गमें दो लाख छियानबे हजार, ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें एक लाख चार हजार, लान्तवमें पचीस हजार बयालीस, कापिष्ठमें चौबीस हजार नौ सौ अंठावन, शुक्रमें बीस हजार बीस, महाशुक्रमें उन्नीस हजार नौ सौ अस्सी, शतारमें तीन हजार उन्नीस, सहस्रारमें उन्नीस कम तीन हजार, आनत-प्राणतमें चार सौ चालीस, तथा आरण-अच्युतमें दो सौ साठ विमान हैं ॥५५–६१॥ ग्रैवेयकोंके पहले त्रिकमें एक सौ ग्यारह, दूसरे त्रिकमें एक सौ सात, तीसरे त्रिकमें एकानबे और अनुदिशोंमें नौ विमान हैं ॥६२॥ अनुदिशोमें आदित्य नामका विमान बीचमें है और उसकी पूर्व आदि दिशाओं तथा विदिशाओंमें क्रमसे १ अर्चि, २ अर्चि-मालिनी, ३ वज्र, ४ वैरोचन, ५ सौम्य, ६ सौम्य-रूपक, ७ अंक और ८ स्फुटिक ये आठ विमान हैं ॥६३–६४॥ अनुत्तर विमानोंमें सर्वार्थ-सिद्धि विमान बीचमें है और उसकी पूर्वादि चार दिशाओंमें १ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त और ४ अपराजित ये चार विमान स्थित हैं ॥६५॥

सब श्रेणी-बद्ध विमान मिलकर आठ हजार एक सौ सत्ताईस हैं ॥६६॥ उनमें सौधर्म स्वर्गमें श्रेणीबद्ध विमान चार हजार चार सौ पंचानबे, ऐशानमें एक हजार चार सौ अट्ठासी, सनत्कुमारमें छह सौ सोलह, माहेन्द्रमें दो सौ तीन, ब्रह्मलोकमें दो सौ छियासी, ब्रह्मोत्तरमें चौरानबे, लान्तवमें एक सौ पचीस, कापिष्ठमें इकतालीस, शुक्रमें अंठावन, महाशुक्रमें उन्नीस, शतारमें पचपन, सहस्रारमें अठारह, आनतमें एक सौ सैंतालीस, प्राणतमें अड़तालीस, आरणमें एक सौ बीस और अच्युतमें उनतालीस कहे जाते हैं ॥६७–७३॥ अधोग्रैवेयकके तीन विमानोंमें क्रमसे पैंतालीस, इकतालीस और सैंतीस, मध्यमग्रैवेयकके तीन विमानोंमें क्रमसे तैंतीस, उनतीस और पचीस तथा ऊर्ध्व-ग्रैवेयकके तीन विमानोंमें क्रमसे इक्कीस, सत्तरह और तेरह, अनुत्तरोंमें पांच श्रेणी-बद्ध विमान हैं। विमान संख्याकी मूल राशिमें-से इन इन्द्रक और श्रेणी-बद्ध विमानोंकी संख्या घटा देनेपर जो शेष बचते हैं वे प्रकीर्णक विमान हैं ऐसा विद्वज्जन जानते हैं ॥७४–७७॥

उन विमानोंमें संख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंकी संख्या सौधर्म स्वर्गमें छह लाख चालीस हजार है। ऐशान स्वर्गमें पाँच लाख साठ हजार, सनत्कुमार स्वर्गमें दो लाख चालीस हजार, माहेन्द्र स्वर्गमें एक लाख साठ हजार, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अस्सी हजार, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्गमें दश हजार, शुक्र स्वर्गमें चार हजार चार, महाशुक्र स्वर्गमें तीन हजार नौ सौ छियानबे, शतार-सहस्रार स्वर्गमें बारह सौ, आनत-प्राणत स्वर्गमें अठासी, और आरण-अच्युत स्वर्गमें बावन हैं ॥७८–८४॥ इन सभी स्वर्गोंमें संख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंकी जो संख्या है उससे चौगुने असंख्यात योजन विस्तारवाले विमान हैं ॥८५॥ नव-ग्रैवेयकादिकमें

इन्द्रक विमानोंको छोड़कर श्रेणी-बद्ध विमानोंमें संख्यात योजन विस्तारवाले और असंख्यात योजन विस्तारवाले—दोनों प्रकारके विमान हैं। इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तारवाले ही हैं ॥८६॥ संख्यात योजन विस्तारवाले सब विमान मिलाकर सोलह लाख निन्यानबे हजार तीन सौ अस्सी हैं और असंख्यात योजन विस्तारवाले विमान सड़सठ लाख संत्तानबे हजार, छह सौ उनचास कहे गये हैं ॥८७-८८॥ प्राग्भार-भूमि (सिद्धशिला) ढाई द्वीप, प्रथम स्वर्गका ऋतु विमान, प्रथम नरकका सीमन्तक इन्द्रक विल और सिद्धालय ये पांच विस्तारकी अपेक्षा समान हैं अर्थात् सब पैंतालीस लाख योजन विस्तारवाले हैं। इनमें ऋतु विमान बाल मात्रका अन्तर देकर मेरुकी चूलिकाको प्राप्त है अर्थात् चूलिका और ऋतु विमानमें बालमात्रका अन्तर है ॥८९॥ जम्बूद्वीप, सातवें नरकका अप्रतिष्ठान नामका इन्द्रक विल और सर्वार्थसिद्धि ये तीनों विस्तारके जानेवाले आचार्योंने समान विस्तारसे युक्त कहे हैं अर्थात् इन सबका एक-एक लाख योजन विस्तार है ॥९०॥ समस्त श्रेणी-बद्ध विमानोंकी जो संख्या है उसका आधा भाग तो स्वयंभू-रमण समुद्रके ऊपर है और आधा अन्य समस्त द्वीप समुद्रोंके ऊपर फैला हुआ है ॥९१॥ सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें भवनोंके मूल शिलापीठकी मोटाई ग्यारह सौ इक्कीस योजन है ॥९२॥ ऊपर प्रत्येक कल्प युगलमें निन्यानबे-निन्यानबे योजन मोटाई कम होती है। ग्रैवेयकोंके तीनों त्रिक तथा अनुदिश और अनुत्तर विमानोंके चौदह विमानोंमें समान मोटाई होती है ॥९३॥ प्रथम कल्प युगल—सौधर्म, ऐशान स्वर्गमें भवनोंकी चौड़ाई एक सौ बीस योजन, दूसरे कल्प युगल —सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्गमें सौ योजन और इसके आगे प्रत्येक कल्प युगल तथा ग्रैवेयकोंके प्रत्येक त्रिकोंमें दश-दश योजन कम होती जाती है। अनुदिशों और अनुत्तरोंके चौदह विमानोंमें केवल पांच योजन चौड़ाई रह जाती है ॥९४॥ प्रथम कल्प युगलमें भवनोंकी ऊँचाई छह सौ योजन है, दूसरे कल्प युगलमें पांच सौ योजन है और आगेके युगलोंमें पचास-पचास योजन ऊँचाई कम होती जाती है। इसके आगे अनुदिश और अनुत्तरोंके भवन मात्र पचीस योजन ऊँचे हैं ॥९५॥ प्रथम कल्प युगलमें भवनोंकी गहराई साठ योजन है, दूसरे कल्प युगलमें पचास योजन है और इसके आगेके कल्पोंमें पाँच-पांच योजन कम होती जाती है। अनुदिश और अनुत्तर सम्बन्धी चौदह विमानोंमें मात्र ढाई योजन गहराई है ॥९६॥ सौधर्म और ऐशान स्वर्गके भवन काले, नीले, लाल, पीले और सफेदके भेदसे पांच रंगके कहे गये हैं ॥९७॥ आगेके युगल—सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें नीलेको आदि लेकर चार रंगके हैं, उसके आगे चार स्वर्गोंमें लालको आदि लेकर तीन रंगके हैं, उसके आगे सहस्रार स्वर्ग तकके चार स्वर्गोंमें पीले और सफेद दो रंगके हैं अन्य रंगके नहीं हैं ॥९८॥ उसके आगे आनत-प्राणतको आदि लेकर समस्त स्वर्ग, ग्रैवेयक, अनुदिश तथा अनुत्तरविमानोंके भवन मात्र सफेद वर्णके हैं। वैमानिक देवोंके ये भवन जगमगाती हुई प्रभासे युक्त हैं ॥९९॥ सौधर्म और ऐशान स्वर्गके विमान घनोदधिके आधार हैं, सानत्कुमार और माहेन्द्रके विमान घनवातवलयके आधार हैं, आगे आठ कल्प अर्थात् सहस्रार स्वर्ग तकके विमान घनोदधि और घनवात दोनोंके आधार हैं और शेष विमान आकाशके आधार हैं ॥१००॥ छह युगलों तथा शेष कल्पोंमें अपने-अपने निवासके योग्य अन्तिम इन्द्रकके श्रेणी-बद्ध विमानोंमें इन्द्रोंका निवास है। पहले युगलके अन्तिम इन्द्रक सम्बन्धी अठारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें इन्द्रका निवास है और आगे दो-दो श्रेणीबद्ध विमानोंकी क्रमिक हानि है। १ सौधर्म, २ सनत्कुमार, ३ ब्रह्म, ४ शुक्र, ५ आनत और ६ आरण कल्पोंमें रहनेवाले इन्द्र दक्षिण दिशामें रहते हैं और १ ऐशान, २ माहेन्द्र, ३ लान्तव, ४ शतार, ५ प्राणत और ६ अच्युत इन छह कल्पोंमें रहनेवाले उत्तर दिशामें रहते हैं। ये इन्द्र सुखरूपी सागरके मध्यमें स्थित हैं तथा प्रतिद्वन्द्वियोंसे रहित हैं—

भावार्थ—सौधर्म स्वर्गके अन्तिम पटलके इन्द्रक विमानसे दक्षिण दिशामें जो अठारहवाँ श्रेणीबद्ध विमान है उसमें सौधर्मेन्द्र रहता है और उत्तर दिशामें जो अठारहवाँ श्रेणीबद्ध विमान है उसमें ऐशानेन्द्र रहता है। सनत्कुमार इन्द्र अपने स्वर्गके अन्तिम पटल सम्बन्धी इन्द्रकसे दक्षिण दिशा सम्बन्धी सोलहवें श्रेणीबद्ध विमानमें रहता है और माहेन्द्र उत्तर दिशा सम्बन्धी। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए ॥१०१–१०२॥ पंचाग्नि आदि तप तपनेवाले तपस्वियोंकी उत्पत्ति भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें होती है, परिव्राजक—संन्यासियोंकी उत्पत्ति ब्रह्मलोक तक और सम्यग्दृष्टि आजीवकोंकी उत्पत्ति सहस्रार स्वर्ग तक हो सकती है। जिन-लिंगके सिवाय अन्य लिंगके द्वारा जीव सहस्रार स्वर्गके आगे नहीं जा सकते यह नियम है ॥१०३–१०४॥ श्रावक सौधर्म स्वर्गसे लेकर अच्युत स्वर्ग तक जाते हैं और मुनि उसके आगे भी जा सकते हैं ॥१०५॥ अभव्य जीवोंका उपपाद अग्रिम ग्रैवेयक तक हो सकता है, परन्तु यह नियम है कि ग्रैवेयकोंमें उपपाद निर्ग्रन्थ लिंगके द्वारा उग्र तपश्चरण करनेसे ही हो सकता है ॥१०६॥ इसके सर्वार्थ-सिद्धि तक रत्नत्रय तपस्वी भव्य जीवकी ही उत्पत्ति होती है ॥१०७॥

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें द्रव्य तथा भावकी अपेक्षा कृष्ण, नील और कापोतलेश्या तथा जघन्य पीतलेश्या होती है ॥१०८॥ सौधर्म और स्वर्गके देवोंके मध्यम पीत-लेश्या होती है। माहेन्द्र स्वर्गके देवोंके उत्कृष्ट पीतलेश्या और जघन्य पद्मलेश्या होती है ॥१०९॥ इसके आगे तीन युगलोंमें मध्यम पद्मलेश्या होती है। उसके आगे दो युगलोंमें उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ललेश्या होती है। तदनन्तर अच्युत स्वर्ग तकके चार स्वर्गों और नौ ग्रैवेयकोंके समस्त देवोंके मध्यम शुक्ललेश्या होती है और उसके आगे अनुदिश और अनुत्तर सम्बन्धी अहमिन्द्रोंके चौदह विमानोंमें परम शुक्ललेश्या होती है। यहाँके निवासी अहमिन्द्र संक्लेशसे रहित होते हैं ॥११०–११२॥

प्रथम दो स्वर्गके देवोंके अवधिज्ञानका विषय धर्मा पृथिवी तक है, उसके आगेके दो स्वर्गों सम्बन्धी देवोंका विषय वंशा पृथिवी तक है। उसके आगे चार स्वर्गों सम्बन्धी देवोंका विषय मेघा पृथिवी तक है, उनके आगे चार स्वर्गों सम्बन्धी देवोंका विषय अंजना नामक चौथी पृथिवी तक है। उसके आगे आनतादि चार स्वर्गोंके देवोंका विषय अरिष्टा नामकी पाँचवीं पृथिवी तक है। नव ग्रैवेयकवासियोंका छठवीं पृथिवी तक है। नवानुदिशवासियोंका सातवीं पृथिवीके अन्त तक है और पञ्चानुत्तरवासियोंका समस्त लोकनाडी तक है। समस्त देवोंके अवधिज्ञान रूपी नेत्रका ऊपर-की ओरका विषय अपने-अपने विमानके अन्त भाग तक है ऐसा सर्वज्ञ देव जानते हैं ॥११३–११७॥ चारों निकायके देवोंकी स्थिति, ऊँचाई तथा प्रवीचार—कामसेवनका वर्णन जैसा जिनेन्द्र भगवान्‌ने किया है वैसा यथायोग्य जानना चाहिए ॥११८॥ आरण स्वर्ग पर्यन्त दक्षिण दिशाके देवोंकी देवियाँ सौधर्म स्वर्गमें ही अपने-अपने उपपाद स्थानोंमें उत्पन्न होती हैं और नियोगी देवोंके द्वारा यथास्थान ले जायी जाती हैं ॥११९॥ तथा अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्तर दिशाके देवोंकी सुन्दर देवियाँ ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न होती हैं एवं अपने-अपने नियोगी देवोंके स्थानपर जाती हैं ॥१२०॥ मुनियोंके ईश्वर गणधर देवने सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें शुद्ध देवियोंसे युक्त विमानोंकी संख्या क्रमसे छह लाख और चार लाख बतलायी है अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्गमें केवल देवियोंके उत्पत्ति स्थान छह लाख और चार लाख प्रमाण हैं ॥१२१॥ सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न एवं दीर्घ आयुको धारण करनेवाले इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि देव, दिव्य वस्त्रालंकारोंसे विभूषित, शुभ विक्रिया करनेवाली हृदय तथा नेत्रोंको हरण करनेवाली उत्कृष्ट रूप और विभ्रमसे सहित, हाव-भाव दिखलानेमें चतुर स्वाभाविक प्रेमकी भूमि एवं अनेक पल्य-प्रमाण आयुवाली अनेक देवियोंके साथ सुखको प्राप्त होते हैं ॥१२२–१२४॥ सोलहवें स्वर्गके आगेके अहमिन्द्र, साता वेदनीयके उदयसे

उत्पन्न, स्त्री रहित, शान्तिरूप आत्मासे उत्पन्न होनेवाले, देव पर्यायजन्य अपरिमित सुखका उपभोग करते हैं ॥१२५॥ सर्वार्थसिद्धिसे बारह योजन आगे जाकर तीन लोकके मस्तकपर सिद्ध भगवान्‌का उत्कृष्ट स्थान है ॥१२६॥ सिद्धोंका यह स्थान (सिद्धशिला) ईषत्प्राग्भार नामकी आठवीं पृथिवी कहलाती है। यह पृथिवी मध्यमें आठ योजन मोटी है उसके आगे क्रमसे कम-कम होती हुई अन्त भागमें अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अत्यन्त सूक्ष्म रह जाती है, वह ऊपरकी ओर उठे हुए विशाल गोल सफेद छत्रके आकार है ॥१२७–१२८॥ विद्वज्जन उस पृथिवीका विस्तार पैंतालीस लाख योजन बतलाते हैं ॥१२९॥ उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन है ॥१३०॥ उस पृथिवीके ऊपर पहले कहे हुए तीन वातवलय हैं, उनमें तीन कोश विस्तारवाले दो वलयोंका उल्लंघन कर एक हजार पाँच सौ पचहत्तर धनुष विस्तारवाला जो तीसरा तनुवातवलय है। उसके पाँच सौ पच्चीस धनुष मोटे अन्तिम भागको अपनी उत्कृष्ट अवगाहनासे व्याप्तकर सिद्ध भगवान् विराजमान हैं। जिन सिद्ध भगवान्‌का अनन्तर पूर्व शरीर साढ़े तीन हाथ ऊँचा रहता है उनकी अवगाहना सम्बन्धी आकाशका प्रदेश साढ़े तीन हाथसे कुछ कम माना जाता है ॥१३१–१३४॥ जहाँ कृतकृत्य अवस्थाको प्राप्त हुए एक सिद्ध भगवान् विराजमान हैं वहाँ अपनी अवगाहनासे अनन्त सिद्ध परमेष्ठी स्थित है। भावार्थ—अवगाह दानकी सामर्थ्य होनेसे सिद्ध परमेष्ठी एक दूसरेको बाधा नहीं पहुँचाते इसलिए जहाँ एक सिद्ध है वहीं अनन्त सिद्ध विराजमान रहते हैं ॥१३५॥ ये सिद्ध परमेष्ठी शरीररहित हैं, सुख रूप हैं, जीवके घन प्रदेशोंसे युक्त हैं और अपने ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोगके द्वारा अनन्त पर्यायोंसे युक्त समस्त लोक और अलोकको एक साथ जानते हुए सदा सुखसे स्थिर रहते हैं ॥१३६–१३७॥ जो कर्म कलंकसे रहित होनेके कारण शुद्ध हैं, अनन्त ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण जिन्होंने समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो आयुकर्मसे रहित होनेके कारण नूतन जन्मसे रहित हैं, शरीर रहित होनेके कारण अजर-अमर हैं, मोहजन्य विकारसे रहित होनेके कारण जो कर्मबन्धनसे दूर हैं और स्वाश्रित होनेसे शाश्वत हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठी उस शाश्वत—अविनश्वर स्थानपर सदा विद्यमान रहते हैं ॥१३८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे नररत्न श्रेणिक ! इस प्रकार हमने तेरे कल्याणके लिए ज्योतिर्लोक और अनेक पटलोंसे युक्त स्वर्ग एवं मोक्षसे सहित ऊर्ध्व लोकका कथन करनेवाले इस क्षेत्रका संक्षेपसे कर्णप्रिय वर्णन किया है। अब हे आयुष्मन् ! हम कालद्रव्यका कथन करते हैं सो एकाग्रचित्तसे श्रवण कर ॥१३९॥ श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌ने आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचयके द्वारा चित्तवृत्तिके निरोध करनेको उज्ज्वल धर्मध्यान कहा है और चूँकि धर्मध्यान मोक्षका कारण है इसलिए इन्द्रियोंको वश करनेवाले पुरुषोंको लोकके संस्थान—आकारका चिन्तन करना चाहिए। आचार्योंने ठीक ही कहा है कि इन्द्रियरूपी मदोन्मत्त हाथी और इन्द्रियरूपी घोड़े मन्द आक्रमण होनेपर वशमें नहीं रहते। भावार्थ—मोक्षाभिलाषी पुरुषोंको मन और इन्द्रियोंको स्वतन्त्र नहीं छोड़ना चाहिए ॥१४०॥

इस प्रकार जिसमें श्रीअरिष्टनेमि जिनेन्द्रके पुराणका संग्रह किया गया है ऐसे जिनसेनाचार्यरचित हरिवंश पुराणमें ज्योतिर्लोक तथा ऊर्ध्वलोकका वर्णन करनेवाला छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥६॥

□

सर्ग- ७

रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे रहित व हलका व भारी और वर्तना लक्षणसे युक्त कालद्रव्य है। वह मुख्य और गौणके भेदसे दो प्रकारका है ।।१।। जिस प्रकार जीव और पुद्‌गलके गमन करनेमें धर्म द्रव्य, ठहरनेमें अधर्म द्रव्य और समस्त द्रव्योंको अवगाह देनेमें आकाश द्रव्य निमित्त है उसी प्रकार समस्त द्रव्योंकी वर्तना--षड्‌गुणी हानि-वृद्धिरूप परिणमनमें निश्चय कालद्रव्य निमित्त है।।२।। जिस प्रकार धर्म-अधर्म और आकाशद्रव्यका आगमदृष्टिसे निश्चय किया जाता है उसी प्रकार विद्वानोंको काल द्रव्यका भी निश्चय करना चाहिए ।।३।। जीव और पुद्‌गलोंका परिणमन नाना प्रकारका होता है और गौण कालकी प्रवृत्ति मुख्य कालके कारण है ।।४।। समस्त पदार्थोंमें जो परिणाम क्रिया परत्व और अपरत्वरूप परिणमन होते हैं वे अपने-अपने अन्तरंग तथा बहिरंग निमित्तोंसे ही सब ओर प्रवृत्त होते हैं ।।५।। उन अन्तरंग, बहिरंग निमित्तोंमें अन्तरंग निमित्त तो वस्तुकी अपनी योग्यता है जो सदा उसमें स्थित रहती है और बाह्य निमित्त निश्चय कालद्रव्य है ऐसा तत्त्वदर्शी आचार्योंने निश्चित किया है ।।६।। परस्परके प्रवेशसे रहित कालाणु पृथक्-पृथक् समस्त लोकको व्याप्त कर राशिरूपमें स्थित हैं ।।७।। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा कालाणुओंमें विकार नहीं होता इसलिए उत्पाद-व्ययसे रहित होनेके कारण वे कथंचित् नित्य हैं और अपने स्वरूपमें स्थित हैं ।।८।। अगुरु लघु गुणके कारण उन कालाणुओंमें प्रत्येक समय परिणमन होता रहता है तथा परपदार्थके सम्बन्धसे वे विकारी हो जाते हैं इसलिए पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा कथंचित् अनित्य भी है ।।९।। भूत, भविष्य और वर्तमानरूप तीन प्रकारके समयका कारण होनेसे वे कालाणु तीन प्रकारके माने गये हैं और अनन्त समयोंके उत्पादक होनेसे अनन्त भी कहे जाते हैं ।।१०।। उन कारणभूत कालाणुओंसे समयकी उत्पत्ति होती है सो ठीक ही है क्योंकि कारणके बिना कभी कार्य उत्पन्न नहीं होता ।।११।। यदि असद्‌भूत कार्यकी उत्पत्ति कारणके बिना स्वयं ही होती है तो फिर गधेके सींगकी उत्पत्ति स्वयं ही क्यों नहीं हो जाती ? ।।१२।। कालके सिवाय अन्य कारणसे कालरूप कार्यकी उत्पति नहीं होती क्योंकि धानके बीजसे कभी जौका अंकुर उत्पन्न नहीं होता ।।१३।। जहाँ कहीं भिन्न जातीय कारण कार्य उत्पादक होता है वहाँ वह सहकारी कारण ही होता है। कार्यकी उत्पत्तिमें मुख्य कारण उपादान है और सहकारी कारण उसका सहायक होता है ।।१४।। इस प्रकार जो अतीन्द्रियदर्शी नहीं हैं अर्थात् स्थूल पदार्थको ही जानते हैं उनके लिए युक्ति और आगमके बलसे मुख्यकालका सद्भाव बताकर उसे व्यवस्थित किया है ।।१५।। समय, आवलि, उच्छ्‌वास, प्राण, स्तोक और लव आदिको व्यवहार-काल जानना चाहिए ऐसा समयके ज्ञाता आचार्योंने वर्णन किया है ।।१६।। सर्वजघन्य गतिसे परिणामको प्राप्त हुआ परमाणु जितने समयमें अपने द्वारा प्राप्त स्वर्गीय प्रदेशका उल्लंघन करता है उतने समयको समय-शास्त्रके ज्ञाता आचार्योंने समय कहा है। यह समय अविभागी होता है तथा परकी मान्यताको रोकनेवाला है ।।१७-१८।। असंख्यात समयकी एक आवली होती है, संख्यात आवलियोंका एक उच्छ्‌वास निश्वास होता है, दो उच्छ्‌वास निश्वासोंका एक प्राण होता है। सात प्राणोंका एक

स्तोक होता है, सात स्तोकोंका एक लव होता है, सत्तर लवोंका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्त्तोंका एक दिन-रात होता है, पन्द्रह दिन-रातका एक पक्ष होता है, दो पक्षका एक मास होता है, दो मासकी एक ऋतु होती है, तीन ऋतुओंका एक अयन होता है, दो अयनोंका एक वर्ष होता है, पांच वर्षोंका एक युग होता है, दो युगोंके दश वर्ष होते हैं, इसमें दशका गुणा करनेपर सौ वर्ष होते हैं, इसमें दशका गुणा करनेपर हजार वर्ष होते हैं, इसमें दशका गुणा करनेपर दश हजार वर्ष होते हैं, इसमें दशका गुणा करनेपर एक लाख वर्ष होते हैं, इसमें चौरासीका गुणा करनेपर एक पूर्वांग होता है, चौरासी लाख पूर्वांगोंका एक पूर्व, चौरासी लाख पूर्वोंका एक नियुतांग, चौरासी लाख नियुतांगोंका एक नियुत, चौरासी लाख नियुतोंका एक कुमुदांग, चौरासी लाख कुमुदांगों-का एक कुमुद, चौरासी लाख कुमुदोंका एक पद्मांग, चौरासी लाख पद्मांगोंका एक पद्म, चौरासी लाख पद्मोंका एक नलिनांग, चौरासी लाख नलिनांगोंका एक नलिन, चौरासी लाख नलिनोंका एक कमलांग, चौरासी लाख कमलांगोंका एक कमल, चौरासी लाख कमलोंका एक तुटयांग, चौरासी लाख तुटयांगोंका एक तुटय, चौरासी लाख तुटयोंका एक अटटांग, चौरासी लाख अटटांगोंका एक अटट, चौरासी लाख अटटोंका एक अममांग, चौरासी लाख अममांगोंका एक अमम, चौरासी लाख अममोंका एक ऊहांग, चौरासी लाख ऊहांगोंका एक ऊह, चौरासी लाख ऊहोंका एक लतांग, चौरासी लाख लतांगोंकी एक लता, चौरासी लाख लतांगोंका एक महालतांग, चौरासी लाख महालतांगोंकी एक महालता, चौरासी लाख महालताओंका एक शिर:प्रकम्पित, चौरासी लाख शिर:प्रकम्पितोंकी एक हस्त प्रहेलिका और चौरासी लाख हस्त प्रहेलिकाओंकी एक र्चिचका होती है। इस प्रकार र्चिचका आदिको लेकर संख्यात काल कहा गया है ॥१९-३०॥ जो वर्षोंकी संख्यासे रहित है वह असंख्येय काल माना जाता है। इसके पल्य, सागर, कल्प तथा अनन्त आदि अनेक भेद हैं ॥३१॥

जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित है, निर्विभाग है, अतीन्द्रिय है और मूर्त होनेपर भी अप्रदेश—द्वितीयादिक प्रदेशोंसे रहित है उसे परमाणु कहते हैं ॥३२॥ वह परमाणु एक कालमें एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध और परस्परमें बाधा नहीं करनेवाले दो स्पर्शोंको धारण करता है, अभेद्य है, शब्दका कारण है और स्वयं शब्दसे रहित है ॥३३॥ पदार्थके स्वरूपको जाननेवाले लोगोंको ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए कि सब ओरसे एक समय आकाशके छह अंशोंके साथ सम्बन्ध होनेसे परमाणुमें षडंशता है ॥३४॥ क्योंकि ऐसा माननेपर आकाशके छोटे-छोटे छह अंश और एक परमाणु सब मिलकर सप्तमांश हो जाते हैं। अब परमाणुमें षडंशता कैसे हो सकती है ? ॥३५॥ क्योंकि परमाणु रूप, गन्ध, रस और स्पर्शके द्वारा पूरण तथा गलन करते रहते हैं इसलिए स्कन्धके समान परमाणु पुद्गल द्रव्य हैं ॥३६॥ अनन्तानन्त परमाणुओंके समूह-को अवसंज्ञ कहते हैं। ये अवसंज्ञ आदि स्कन्धकी ही जातियां हैं ॥३७॥ आठ अवसंज्ञाओंकी एक संज्ञा-संज्ञा कही गयी है, आठ संज्ञा-संज्ञाओंका एक त्रुटिरेणु प्रकट किया गया है ॥३८॥ [आठ* त्रुटिरेणुओंका एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओंका एक रथरेणु, आठ रथरेणुओंका एक उत्तम भोग-भूमिज मनुष्यके बालका अग्रभाग, उत्तमभोगभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्रभागोंका एक मध्यमभोग-भूमिज मनुष्यका बालाग्र और आठ मध्यमभोगभूमिज मनुष्यके बालाग्रोंका एक जघन्य भोगभूमिज मनुष्यका बालाग्र होता है] जघन्य भोगभूमिज मनुष्योंके आठ बालाग्रोंका एक कर्मभूमिज मनुष्यका बालाग्र होता है, इन आठ बालाग्रोंकी एक लीख, आठ लीखोंका एक जूँआ, आठ जुंओंका एक जौ और आठ जौ का एक उत्सेधांगुल होता है। इस उत्सेधांगुलसे जीवोंके शरीरकी ऊँचाई और छोटी वस्तुओंका प्रमाण ग्रहण किया जाता है ॥३९-४१॥ उत्सेधांगुलमें पांच सौका गुणा करनेपर एक

प्रमाणांगुल होता है। यह प्रमाणांगुल अवसर्पिणीके प्रथम चक्रवर्तीका अंगुल है ॥४२॥ इस अंगुलसे बड़े-बड़े द्वीप, समुद्र आदिकी ऊँचाई, चौड़ाई आदि यथायोग्य जानी जाती है ॥४३॥ अपने-अपने समयमें मनुष्योंका जो अंगुल है वह स्वांगुल माना गया है। इसके द्वारा छत्र, कलश तथा नगर आदिका विस्तार नापा जाता है ॥४४॥ छह अंगुलोंका एक पाद होता है, दो पादोंकी एक वितस्ति, दो वितस्तियोंका एक हाथ और दो हाथोंका एक किष्कु होता है ॥४५॥ दो किष्कुओंका एक दण्ड, धनुष अथवा नाड़ी होती है, आठ हजार दण्डोंका एक योजन कहा गया है ॥४६॥

एक ऐसा क्षेत्र (गर्त) बनाया जाये जो एक प्रमाण योजन बराबर लम्बा-चौड़ा तथा गहरा हो, जिसकी परिधि इससे कुछ अधिक तिगुनी हो तथा जिसके चारों तरफ दीवालें बनायी गयी हों ॥४७॥ इस क्षेत्रको एकसे लेकर सात दिन तककी भेड़के बालोंके ऐसे टुकड़ोंसे जिनके कि दूसरे टुकड़े न हो सकें ऊपर तक कूट-कूटकर भरा जाये। इस गर्तको व्यवहारपल्य कहते हैं ॥४८॥ सौ-सौ वर्षके बाद एक-एक बालका टुकड़ा उस गर्तसे निकालनेपर जितने समयमें वह खाली हो जाये उतने समयको व्यवहारपल्योपम काल कहते हैं ॥४९॥ तदनन्तर उन्हीं बालके टुकड़ोंमें प्रत्येक टुकड़ेके, असंख्यात करोड़ वर्षोंमें जितने समय हैं उतने टुकड़े बुद्धिसे कल्पित टुकड़ोंसे पूर्वोक्त प्रमाणवाले गर्तको भरा जाये। इस भरे हुए गर्तको उद्धारपल्य कहते हैं और एक-एक समयमें एक-एक टुकड़ा निकालनेपर जितने समयमें वह गर्त खाली हो जाये उतने समयको उद्धारपल्योपम काल कहते हैं ॥५०॥ दश कोड़ाकोड़ी उद्धारपल्योंका एक उद्धार सागर होता है और ढाई उद्धार सागरोपम काल अथवा पचीस कोड़ाकोड़ी उद्धारपल्योंके बालोंके जितने टुकड़े हों उतने द्वीपसागरोंका प्रमाण है ॥५१॥ द्वीपसागरोंका जो अध्वा अर्थात् एक दिशाका विस्तार है उसे दुगुना करनेपर रज्जुका प्रमाण निकलता है। यह रज्जु दोनों दिशाओंके तनुवातवलयके अन्त भागको स्पर्श करती है। विद्वान् लोग इसके द्वारा तीन लोकोंका प्रमाण निकालते हैं ॥५२॥ उद्धार पल्यके रोम खण्डोंके असंख्यात करोड़ वर्षोंके समय बराबर बुद्धि द्वारा खण्ड कल्पित किये जावें और उनसे पूर्वोक्त गर्तको भरा जाये। इस गर्तको अद्धा पल्य कहते हैं। उनमें-से एक-एक समयके बाद एक-एक टुकड़ाके निकालनेपर जितने समयमें वह खाली हो जाये उतने समयको अद्धापल्योपम काल कहते हैं। आयुका प्रमाण बतलानेके लिए इसका उपयोग होता है ॥५३–५४॥ दश कोड़ाकोड़ी अद्धापल्योंका अद्धासागर होता है, इसके द्वारा संसारी जीवोंकी आयु, कर्म तथा संसारकी स्थिति जानी जाती है ॥५५॥ दश कोड़ाकोड़ी अद्धासागरोंकी एक अवसर्पिणी तथा उतने ही सागरोंकी एक उत्सर्पिणी होती है। इनमें प्रत्येकके छह-छह भेद हैं ॥५६॥ जिसमें वस्तुओंकी शक्ति क्रमसे घटती जाती है उसे अवसर्पिणी और जिसमें बढ़ती जाती है उसे उत्सर्पिणी कहते हैं। इनका अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम सार्थक है ॥५७॥ १ सुषमासुषमा, २ सुषमा, ३ सुषमादुःषमा, ४ दुःषमा-सुषमा, ५ दुःषमा और ६ दुःषमादुःषमा ये अवसर्पिणीके छह भेद हैं और इससे उलटे अर्थात् १ दुःषमादुःषमा, २ दुःषमा, ३ सुषमादुःषमा, ४ दुःषमासुषमा, ५ सुषमा और ६ सुषमासुषमा ये छह उत्सर्पिणीके भेद हैं ॥५८-५९॥ प्रारम्भके तीन कालोंका प्रमाण क्रमसे चार कोड़ाकोड़ी सागर, तीन कोड़ाकोड़ी सागर और दो कोड़ाकोड़ी सागर है ॥६०॥ चौथे कालका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर है और पाँचवें तथा छठे कालका प्रमाण इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है ॥६१-६२॥ जिस प्रकार दश कोड़ाकोड़ी सागरका अवसर्पिणी काल है उसी प्रकार दश कोड़ाकोड़ी सागरका उत्सर्पिणी काल है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी दोनों मिलकर कल्प काल कहलाते हैं। इन दोनों कालोंके समय भरत-ऐरावत क्षेत्रमें पदार्थोंकी स्थिति हानि और वृद्धिको लिये हुए होती है। इन दो क्षेत्रोंके सिवाय अन्य क्षेत्रोंमें पदार्थोंकी स्थिति

हानिवृद्धिसे रहित—अवस्थित है ॥६३॥ प्रारम्भके तीन कालोंमें भरत क्षेत्रकी यह भूमि भोग-भूमि कहलाती है जो कि यथार्थमें नाना प्रकारके भोगोंकी भूमि—स्थान भी है ॥६४॥ उन तीनों कालोंके प्रारम्भमें मनुष्य क्रमसे छह हजार, चार हजार और दो हजार धनुष ऊँचे रहते थे तथा स्त्री-पुरुषोंकी उत्पत्ति युगल रूपमें—साथ ही साथ होती थी ॥६५॥ उस समय उनकी आयु देवकुरु, उत्तरकुरु, हरिवर्ष तथा हैमवत क्षेत्रके मनुष्योंके समान क्रमसे तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्यके तुल्य होती थी ॥६६॥ उन तीन कालोंमें स्त्री-पुरुष क्रमसे उदित होते हुए सूर्यके समान, पूर्णचन्द्रके समान और प्रियंगु पुष्पके समान आभावाले होते थे ॥६७॥ उनकी पीठकी हड्डियोंकी संख्या पहले कालमें दो सौ छप्पन, दूसरे कालमें एक सौ अट्ठाईस और तीसरे कालमें चौसठ थी ॥६८॥ उनका पहले कालमें चार दिनके अन्तरसे बेरके बराबर, दूसरे कालमें दो दिनके अन्तरसे बहेड़ाके बराबर और तीसरे कालमें दो दिनके अन्तरसे आँवलेके बराबर दिव्य—कल्पवृक्षोत्पन्न आहार होता था ॥६९॥ उन तीन कालोंके नियोगसे नियन्त्रित यह भारतवर्षकी भूमि उस समय क्रमशः तीन प्रकारकी स्थायी भोगभूमियोंकी रीतिको ग्रहण करती थी अर्थात् उस समय यहांकी व्यवस्था शाश्वती उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमियोंके समान थी ॥७०॥ जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथिवी, स्थायी लगे हुए रत्नोंके पटलोंसे सुशोभित है उसी प्रकार भरत क्षेत्रकी यह भूमि भी उस समय ऊपर स्थित देदीप्यमान रत्नोंके पटलोंसे सुशोभित होती है ॥७१॥ अपनी किरणोंसे दिशाओंको व्याप्त करनेवाले इन्द्रनील आदि नीलमणि, जात्यंजन आदि कृष्णमणि, पद्मराग आदि कालमणि, हैम आदि पीले मणि और मुक्ता आदि सफेद मणि इस प्रकार पाँच वर्णके मणियोंसे व्याप्त हुई यह भूमि उस समय स्वर्गभूमिके समान सुशोभित हो रही थी ॥७२–७३॥ चन्द्रकान्तमणि जिसका मुख था, मूँगा जिसके ओठ थे तथा रत्न और स्वर्ण जिसकी चोली थे ऐसी यह भूमि उस समय किसी स्त्रीके समान सुशोभित होती थी ॥७४॥ चन्द्र-कान्त मणिकी किरणें शीतल होती हैं और सूर्यकान्त मणिकी उष्ण। परन्तु यहाँ दोनों ही एक दूसरेसे मिलकर अलग-अलग नहीं होती थीं जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रकान्तकी किरणें ठण्डसे पीड़ित थीं इसलिए सूर्यकान्तकी उष्ण किरणोंको नहीं छोड़ना चाहती थीं और सूर्यकान्तकी किरणें गर्मीसे पीड़ित हैं इसलिए चन्द्रकान्तकी शीतल किरणोंको नहीं छोड़ना चाहती थीं ॥७५॥ जिस प्रकार प्रेमके वशीभूत हुए मनुष्य परस्पर कराश्लेष अर्थात् हाथोंका आलिंगन करते हैं और राग अर्थात् प्रेमसे उनके शरीर मूर्च्छित रहते हैं, उसी प्रकार यहांके नाना प्रकारके मणि भी परस्पर कराश्लेष अर्थात् किरणोंका आलिंगन करते हैं और राग अर्थात् रंगसे उनकी आकृति मूर्च्छित—वृद्धिगत होती रहती है। इस प्रकार जो प्रेमके वशीभूतके समान जान पड़ते थे ऐसे मणियोंसे यह भूमि अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥७६॥ जिनका वर्ण पांच प्रकारका था, स्पर्श सुखकारी था तथा गन्ध, रस और शब्द जिनके उत्तम थे ऐसे चार अंगुल प्रमाण तृणोंसे ढकी हुई यहांकी भूमि सुशोभित हो रही थी ॥७७॥ जो दही, मधु, दूध, घी और ईखके समान स्वादवाले उत्तम जलसे भरे हुए थे तथा जिनके तट रत्ननिर्मित थे ऐसी सुन्दर-सुन्दर बावड़ियों और सरोवरोंसे वह भूमि अत्यधिक सुशोभित थी ॥७८॥ रंग-बिरंगे मणियोंसे आच्छादित एवं प्राणियोंको सुख देनेवाले सुवर्णमय सुन्दर पर्वतोंसे यह भूमि सदा अत्यधिक सुशोभित रहती थी ॥७९॥ १ ज्योतिरंग, २ गृहांग, ३ प्रदीपांग, ४ तूर्यांग, ५ भोजनांग, ६ भाज-नांग, ७ वस्त्रांग, ८ माल्यांग, ९ भूषणांग और १० मद्यांग जातिके कल्पवृक्षोंसे वह भूमि सदा सुशोभित रहती थी ॥८०॥ जिन्होंने अपनी कान्तिसे चन्द्रमा और सूर्यके मण्डलको आच्छादित कर रखा था ऐसे ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्ष दिन-रातका भेद दूर करते हुए सदा सुशोभित

रहते थे ॥८१॥ जो बाग-बगीचोंसे सहित थे तथा जिनमें अनेक खण्ड थे ऐसे गृहांग जातिके कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए नाना प्रकारके वृक्ष आकाशरूपी आंगनको सुशोभित कर रहे थे ॥८२॥ प्रदीपांग जातिके कल्पवृक्ष अपनी लम्बी-चौड़ी शाखाओंसे दीपकके समान आभावाले कमलकी बोड़ियोंके आकार नये-नये पत्तोंको धारण कर रहे थे ॥८३॥ यहाँ जो तूर्यांग जातिके कल्पवृक्ष थे वे तत, वितत, घन और सुषिरके भेदसे चार प्रकारके शुभ बाजोंको सदा उत्पन्न करते रहते थे ॥८४॥ भोजनांग जातिके कल्पवृक्ष भोगी मनुष्योंके लिए छह प्रकारके रसोंसे परिपूर्ण, अत्यन्त स्वादिष्ट तथा अन्न, पान, खाद्य और लेह्यके भेदसे चार भेदवाले नाना प्रकारके भोजनको उत्पन्न करते रहते थे ॥८५॥ भाजनांग जातिके कल्पवृक्ष मणि एवं सुवर्णादिसे निर्मित थाली, कटोरा आदि अनेक प्रकारके बर्तन उत्पन्न करते थे ॥८६॥ वस्त्रांग जातिके कल्पवृक्ष अपनी पींड तथा शाखाओंपर पाट, चीनी तथा रेशम आदिके बने हुए नाना प्रकारके वस्त्र धारण करते हुए सुशोभित होते थे ॥८७॥ माल्यांग जातिके कल्पवृक्ष मालती, मल्लिका आदिके ताजे फूलोंसे गुँथी हुई मालाओंको धारण करते हुए सुशोभित हो रहे थे ॥८८॥ भूषणांग जातिके कल्पवृक्ष स्त्री-पुरुषोंके योग्य हार, कुण्डल, बाजूबन्द तथा मेखला आदि आभूषणोंसे व्याप्त हो सुशोभित थे ॥८९॥ और मद्यांग जातिके कल्पवृक्षोंके द्वारा स्त्री-पुरुषोंके लिए प्रिय तथा उनकी मदशक्तिको उत्पन्न करनेवाले प्रसन्ना आदि नाना प्रकारके मद्य उत्पन्न किये जाते थे ॥९०॥ उस समय यहाँ स्त्री-पुरुषोंके युगल दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न चक्रवर्तीके दशांग भोगोंसे भी अधिक भोगोंका उपभोग करते थे ॥९१॥ उस समय गर्भसे उत्पन्न हुए स्त्री-पुरुषों (युगलियों) के सात दिन तो अपना अँगूठा चूसते-चूसते व्यतीत हो जाते थे, तदनन्तर सात दिन रेंगते, सात दिन लड़खड़ाती हुई गतिसे, सात दिन स्थिर गतिसे, सात दिन कला तथा अनेक गुणोंके अभ्याससे और सात दिन यौवनरूप सम्पदाके प्राप्त करनेमें व्यतीत होते थे। उसके सातवें सप्ताहमें उन्हें सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेकी योग्यता आती थी ॥९२-९४॥ स्त्री-पुरुषोंके उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त, विशुद्ध इन्द्रिय और बुद्धिके धारक, कला और गुणोंमें चतुर एवं रोगोंसे रहित उस समयके लोग आनन्दसे क्रीड़ा करते थे ॥९५॥ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और वेषके द्वारा मनको आनन्दित करनेवाले वहाँके लोग देवकुमारोंके समान तथा वहाँकी स्त्रियाँ देवांगनाओंके समान जान पड़ती थीं ॥९६॥ उस समय स्त्री-पुरुषोंके कान परस्परके संगीत शब्दोंमें, चक्षु रूपके देखनेमें, घ्राण सुगन्धिके ग्रहण करनेमें, जिह्वा मुखके रसास्वादमें और स्पर्शन शरीरके उत्तम स्पर्शके ग्रहण करनेमें निरन्तर आसक्त रहते थे। उनके मन तथा इन्द्रियाँ रंचमात्र भी सन्तुष्ट नहीं होती थीं ॥९७-९८॥ जिस प्रकार मनुष्योंके जोड़े कल्पवृक्ष सम्बन्धी आहारोंसे सन्तुष्ट हो प्रेमपूर्वक क्रीड़ा करते हैं उसी प्रकार सन्तुष्ट चित्तके धारक तिर्यंचोंके जोड़े भी प्रेमपूर्वक क्रीड़ा करते थे ॥९९॥ उस समय कहीं सिंहोंके युगल, कहीं हाथियोंके युगल, कहीं ऊँटोंके युगल, कहीं शूकरोंके युगल, और कहीं मदसे धीमी चाल चलनेवाले व्याघ्रोंके युगल क्रीड़ा करते थे ॥१००॥ कहीं मनुष्योंके बराबर आयुको धारण करनेवाले गाय, घोड़े और भैंसोंके जोड़े अपनी इच्छानुसार अत्यधिक क्रीड़ा करते थे॥१०१॥ वह पुरुष स्त्रीको आर्या और स्त्री पुरुषको आर्य कहती थी। यथार्थमें भोगभूमिज स्त्री-पुरुषोंका वह साधारण नाम है॥१०२॥ उस समय सबकी एक ही उत्तम जाति होती है, वहां न ब्राह्मणादि चार वर्ण होते हैं व असि, मषी आदि छह कर्म होते हैं, न सेवक और स्वामीका सम्बन्ध होता है और न वेषधारी ही होते हैं ॥१०३॥ वहाँके मनुष्य सब विषयोंमें मध्यस्थ रहते हैं, वहाँ न मित्र होते हैं और न शत्रु। एवं स्वभावसे ही अल्पकषायी होनेके कारण आयु समाप्त होनेपर सब नियमसे देव पर्यायको ही प्राप्त होते हैं ॥१०४॥ जन्मसे ही जिसका प्रेमभाव परस्परमें निबद्ध रहता था ऐसे पुरुषकी मृत्यु छींक आनेसे

तथा स्त्रीकी मृत्यु जिमहाई लेने मात्रसे सुखपूर्वक हो जाती थी ॥१०५॥

अथानन्तर गणधर देव श्रेणिकका मनोभिप्राय जानकर भोगभूमिमें उत्पन्न होनेके कारण इस प्रकार कहने लगे ॥१०६॥ कर्म-भूमिके जो मनुष्य स्वभावसे ही मन्दकषाय होते हैं वे पात्रदानके प्रभावसे भोगभूमिमें मनुष्य होते हैं ॥१०७॥ जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तपकी शुद्धिसे पवित्र हैं तथा शत्रु और मित्रोंपर मध्यस्थ भाव रखते हैं ऐसे साधु उत्तम पात्र कहलाते है ॥१०८॥ संयमासंयमको धारण करनेवाले श्रावक मध्यम पात्र हैं और अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र कहे जाते हैं ॥१०९॥ उक्त तीनों प्रकारके पात्रोंमें यथायोग्य दान देकर बुद्धिमान् मनुष्य भोगभूमिमें आर्य होकर वहाँका दिव्य सुख भोगता है ॥११०॥ जिस प्रकार उत्तम क्षेत्रमें विधि-पूर्वक बोया हुआ छोटा भी बीज वृद्धिको प्राप्त होता है उसी प्रकार पात्रके लिए दिया हुआ आहार आदि दान भी वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१११॥ जिस प्रकार धान और ईखके खेतमें पड़ा हुआ जल मीठा हो जाता है और गायोंके द्वारा पीया हुआ पानी दूध पर्यायको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार पात्रके लिए दिया हुआ अल्प रसवाला अन्न, पान तथा औषध्यादिकका दान परभवमें अविनाशी तथा अमृतके समान स्वादसे युक्त हो जाता है ॥११२-११३॥ जो स्थूल हिंसा आदिसे निवृत्त हैं परन्तु मिथ्यादृष्टि, मिथ्याज्ञान और मिथ्या-चारित्रके धारक हैं वे कुपात्र कहलाते हैं और जो स्थूल हिंसा आदिसे भी निवृत्त नहीं हैं उन्हें अपात्र जानना चाहिए ॥११४॥ कुपात्र दानके प्रभावसे मनुष्य, भोगभूमियोंमें तिर्यञ्च होते हैं अथवा कुमानुष कुलोंमें उत्पन्न होकर अन्तर द्वीपोंका उपभोग करते हैं ॥११५॥ जिस प्रकार खराब खेतमें बोया हुआ बीज अल्प फलवाला होता है उसी प्रकार कुपात्रके लिए दिया हुआ दान भी दाताको कुभोग प्राप्त करानेवाला होता है ॥११६॥ जिस प्रकार ऊषर क्षेत्रमें बोया हुआ धान समूल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार कुपात्रके लिए दिया हुआ दान भी निष्फल हो जाता है ॥११७॥ जिस प्रकार नीमके वृक्षमें पड़ा हुआ पानी कड़ुआ हो जाता है, कोदोंमें दिया हुआ पानी मद-कारक हो जाता है और सर्पके मुखमें पड़ा हुआ दूध विष हो जाता है, उसी प्रकार अपात्रके लिए दिया हुआ दान विपरीत फलको करनेवाला हो जाता है ॥११८॥ चूँकि सुपात्रके लिए दिया हुआ दान सुफलको देनेवाला है, कुपात्रके लिए दिया हुआ दान कुफलको देनेवाला है और अपात्रके लिए दिया हुआ दान दुःख देनेवाला है अतः पात्रके लिए ही दान देना चाहिए ॥११९॥ जिस प्रकार निर्मल स्फटिकमणि उपाधिके वशसे भेदको प्राप्त होता है उसी प्रकार पात्रके भेदसे दानका फल भी भेदको प्राप्त हो जाता है ॥१२०॥ निर्मल अभिप्रायको धारण करनेवाला सम्यग्-दृष्टि गृहस्थ यदि पात्रके लिए दान देता है तो वह नियमसे स्वर्ग ही जाता है ॥१२१॥

अथानन्तर सुखके कारणभूत जब प्रारम्भके दो काल बीत गये और पल्यके आठवें भाग बराबर तीसरा काल बाकी रह गया तथा कल्पवृक्ष जो पहले अधिक मात्रामें थे क्रम-क्रमसे कम होने लगे तब इस क्षेत्रमें कुलकरोकी उत्पत्ति हुई। हे श्रेणिक ! मैं इस समय उन्हीं कुलकरोंकी उत्पत्ति कहता हूँ तू श्रवण कर ॥१२२-१२३॥ गंगा और सिन्धु महानदियोंके बीच दक्षिण भरत क्षेत्रमें क्रमसे चौदह कुलकर उत्पन्न हुए थे ॥१२४॥ उन कुलकरोंमें पहला कुलकर प्रतिश्रुति था। वह महाप्रभावसे सम्पन्न था तथा अपने पूर्वभवके स्मरणसे सहित था ॥१२५॥ उसके समय प्रजाके लोग पौर्णमासीके दिन आकाशमें एक साथ, आकाशरूपी हाथीके दो घंटाओंके समान आभावाले चन्द्र और सूर्य-मण्डलको देखकर अपने ऊपर आनेवाले किसी महान् उत्पातसे शंकित हो आकस्मिक भयसे उद्विग्न हो उठे तथा सब एकत्रित हो प्रतिश्रुति कुलकरकी शरणमें जाकर उससे पूछने लगे ॥१२६-१२७॥ कि हे नररत्न ! आकाशके दोनों छोरोंपर, मण्डलाकार तथा असमयमें हम लोगोंको भय उत्पन्न करनेवाले ये दो कौन अपूर्व पदार्थ दीख रहे हैं ? ॥१२८॥ अहो ? हम लोगोंके

लिए यह अकस्मात् ही दुःसह भय प्राप्त हुआ है। क्या यह प्रजाके लिए दुस्तर महाप्रलय ही आ पहुँचा है?॥१२९॥ इस प्रकार पूछे जानेपर स्वामी प्रतिश्रुतिने कहा कि हे प्रजाजनो! भय छोड़ो, हमारे लिए कुछ भी भय प्राप्त नहीं हुआ है। आप लोग स्वस्थ रहिए। ये जो दिखाई दे रहे हैं मैं उनका कथन करता हूँ॥१३०॥ हे भद्रपुरुषो! यह पश्चिममें प्रभाके समूहसे व्याप्त सूर्य-मण्डल और यह पूर्व दिशामें चन्द्र-मण्डल दिखाई दे रहा है॥१३१॥ ये सूर्य और चन्द्रमा समस्त ज्योतिश्चक्रके स्वामी हैं, भ्रमणशील हैं और निरन्तर मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देते हुए घूमते रहते हैं॥१३२॥ चार प्रकारके देवोंमें जो ज्योतिषी देवोंका समूह है वह आकाशमें निरन्तर अपने इन दोनों स्वामियोंके पीछे-पीछे भ्रमण करता है॥१३३॥ पहले इनका आकार ज्योतिरंग जातिके महावृक्षोंकी प्रभासे आच्छादित था इसलिए ये विदेह क्षेत्रको छोड़ अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं थे॥१३४॥ इस समय लोक, ज्योतिरंग वृक्षोंकी प्रभा क्षीण हो जानेसे तेजरहित हो गया है इसलिए उसे जीतनेकी इच्छासे ही मानो चन्द्रमा और सूर्य अपने शरीरको प्रकट कर स्थित हैं॥१३५॥ अब पृथिवीपर सूर्यके भेदसे दिन-रातका भेद होगा और चन्द्रमाके द्वारा शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष प्रकट होंगे॥१३६॥ दिनके समय चन्द्रमा सूर्यके द्वारा अस्त-जैसा हो जाता है, स्पष्ट नहीं दिखाई देता और रात्रिके समय स्पष्टताको प्राप्त हो जाता है। यह चन्द्रमा समस्त ज्योतिश्चक्रका सखा है॥१३७॥ तुम लोगोंने पूर्व जन्मके समय विदेह क्षेत्रमें इन्हें अच्छी तरह देखा है इसलिए आज इनका दिखना तुम्हारे लिए अपूर्व नहीं है॥१३८॥ पहले देखी-सुनी और अनुभवमें आयी वस्तुका दर्शन होनेपर आप लोगोंको उत्पातकी आशंका नहीं होनी चाहिए। हे प्रजाजनो! तुम सब निर्भय होओ—उत्पातका भय छोड़ो॥१३९॥ कालके स्वभावमें भेद होनेसे पदार्थोंका स्वभाव भिन्न रूप हो जाता है और उसीसे द्रव्य-क्षेत्र तथा प्रजाके व्यवहारमें विपरीतता आ जाती है॥१४०॥ इसलिए हे प्रजाजनो! अब इसके आगे अव्यवस्था दूर करनेके लिए हा, मा और धिक् ये तीन दण्डकी धाराएँ स्थापित की जाती हैं॥१४१॥ यदि कोई स्वजन या परजन कालदोषसे मर्यादाके लाँघनेकी इच्छा करता है तो उसके साथ दोषोंके अनुरूप उक्त तीन धाराओंका प्रयोग करना चाहिए॥१४२॥ तीन धाराओंसे नियन्त्रणको प्राप्त हुए समस्त मनुष्य इस भयसे त्रस्त रहते हैं कि हमारा कोई दोष दृष्टिमें न आ जाये। और इसी भयसे वे दोषोंसे दूर हटते रहते हैं॥१४३॥ अनर्थोंसे बचनेके लिए तथा प्रजाकी भलाईके लिए आप लोगोंको ये निश्चित की हुई दण्डकी धाराएँ स्वीकृत करनी चाहिए॥१४४॥ हमारी आज्ञाका स्मरण कर अब सब युगल निर्भय हो यथास्थान महलोंमें निवास करें॥१४५॥ इस प्रकार कहनेपर सब लोगोंने प्रतिश्रुति कुलकरके वचन शीघ्र ही स्वीकृत किये और सब बड़ी प्रसन्नतासे यथास्थान महलोंमें रहने लगे॥१४६॥ जिस प्रकार गुरुके वचन स्वीकृत किये जाते हैं उसी प्रकार प्रजाने चूँकि उसके वचन स्वीकृत किये थे इसलिए वह पृथिवीपर सर्वप्रथम प्रतिश्रुति इस नामसे प्रसिद्ध हुआ था॥१४७॥ यह प्रतिश्रुति कुलकर, पल्यके दशवें भाग तक जीवित रहकर तथा सन्मति नामके पुत्रको उत्पन्न कर आयुके अन्तमें स्वर्ग गया॥१४८॥ सन्मति कुलकर पिताकी मर्यादाकी रक्षा करता था, प्रजाको अतिशय मान्य था और अनेक कलाओंका घर था इसलिए सन्मति इस नामसे प्रसिद्ध हुआ था॥१४९॥ वह सन्मति पल्यके सौवें भाग जीवित रहकर तथा क्षेमंकर नामक पुत्रको उत्पन्न कर स्वर्ग गया॥१५०॥ उसके समयमें प्रजाको सिंह तथा व्याघ्रोंसे भय उत्पन्न होने लगा था उससे उनका कल्याण कर वह क्षेमंकर इस नामको प्राप्त हुआ था॥१५१॥ यह प्रजाका स्वामी पल्यके हजारवें भाग जीवित रहकर तथा क्षेमन्धर नामक पुत्रको उत्पन्न कर स्वर्ग गया॥१५२॥ वह क्षेमन्धर पिताकी आर्य मर्यादाकी रक्षा करनेवाला था और पल्यके दश हजारवें भाग जीवित रहकर तथा सीमङ्कर नामक पुत्रको उत्पन्न कर स्वर्ग गया।

इसके समयमें कल्पवृक्षोंकी संख्या कम हो गयी थी इसलिए उनकी लोभी प्रजामें परस्पर कलह होने लगी थी। इसने उनकी सीमा निर्धारित की थी इसलिए यह सीमंकर इस सार्थक नामको धारण करता था। यह पल्यके लाखवें भाग जीवित रहकर स्वर्गगामी हुआ और इसके सीमन्धर इस सार्थक नामको धारण करनेवाला पुत्र हुआ। वह पल्यके दश लाखवें भाग जीवित रहकर स्वर्ग गया। इसके विपुलवाहन नामका पुत्र हुआ, यह बड़े-बड़े हाथियोंको वाहन बनाकर उनपर अत्यधिक क्रीड़ा करता था इसलिए विपुलवाहन इस नामका धारी हुआ था ॥१५३–१५६॥ वह पल्यके करोड़वें भाग जीवित रहकर स्वर्ग गया और उसके चक्षुष्मान् नामका पुत्र हुआ ॥१५७॥ पहले माता-पिता पुत्रका मुख तथा चक्षु देखे बिना ही मर जाते थे पर इसके समय पुत्रका मुख और चक्षु देखकर मरने लगे इससे प्रजाको कुछ भय उत्पन्न हुआ परन्तु इसने उन सबके भयको दूर किया इसलिए कुछ अधिक काल तक जीवित रहनेवाली प्रजाने इसे 'चक्षुष्मान्' इस नामसे सम्बोधित किया ॥१५८॥ स्तुतिको प्राप्त हुआ वह चक्षुष्मान् पल्यके दश करोड़वें भाग तक भोग भोगकर आयु समाप्त होनेपर स्वर्ग गया। वह यद्यपि उदात्त=उदात्त नामका स्वर था तो भी स्वरित=स्वरित नामका स्वर हुआ था यह विरोध है। परिहार पक्षमें वह उदात्त-महान् था और स्वरितः=स्वर् इतः—स्वर्ग गया था ॥१५९॥ चक्षुष्मान्का पुत्र यशस्वी हुआ। इसने अपने समयमें प्रजाको पुत्रका नाम रखना सिखाया इसलिए प्रजाने इसे विस्तृत यशसे युक्त किया अर्थात् इसका यशस्वी यह नाम रखा ॥१६०॥ वह पल्यके सौ करोड़वें भाग जीवित रहकर तथा अभिचन्द्र नामक उत्तम पुत्रको उत्पन्न कर स्वर्ग गया ॥१६१॥ उसके समयमें प्रजा अपनी सन्तानको ऊपर उठा चन्द्रमाके सामने क्रीड़ा कराती थी इसलिए वह अभिचन्द्र इस नामको प्राप्त हुआ ॥१६२॥ वह गुणवान् कुलकर पल्यके हजार करोड़वें भाग जीवित रहकर तथा चन्द्राभ नामक पुत्रको उत्पन्न कर स्वर्ग गया ॥१६३॥ चन्द्राभने पल्यके दश हजार करोड़वें भाग तक जीवित रहकर मरुदेवको उत्पन्न किया। वह अपने मरुदेव पुत्रको एक मास तक खिलाता रहा अनन्तर स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥१६४॥ मरुदेवके समय स्त्री-पुरुष अपनी सन्तानके मुखसे 'हे माँ', 'हे पिता' इस प्रकारके मनोहर शब्द सुनने लगे थे ॥१६५॥ पहले यहाँ युगल सन्तान उत्पन्न होती थी परन्तु इसके आगे युगल सन्तानकी उत्पत्तिको दूर करनेकी इच्छासे ही मानो मरुदेवने प्रसेनजित् नामक अकेले पुत्रको उत्पन्न किया था ॥१६६॥ इसके पूर्व भोगभूमिज मनुष्योंके शरीरमें पसीना नहीं आता था परन्तु प्रसेनजित्का शरीर जब कभी पसीनाके कणोंसे सुशोभित हो उठता था। वीर मरुदेवने अपने पुत्र प्रसेनजित्को विवाह-विधिके द्वारा किसी प्रधान कुलकी कन्याके साथ मिलाया था ॥१६७॥ अन्तमें मरुदेव पल्यके लाख करोड़वें भाग तक जीवित रहकर स्वर्ग गया ॥१६८॥ तदनन्तर प्रसेनजित्ने एक करोड़ पूर्वकी आयुवाले, जन्मकालमें बालकोंकी नाल काटनेकी व्यवस्था करनेवाले थे, तथा स्वर्गगामी नाभिराज पुत्रको उत्पन्न किया ॥१६९॥ पल्यके दश लाख करोड़वें भाग तक जीवित रहकर आयु समाप्त होनेपर प्रसेनजित् स्वर्ग गया ॥१७०॥

प्रथम कुलकर प्रतिश्रुतिकी ऊँचाई अठारह सौ धनुष थी, इसके पुत्र दूसरे कुलकर सन्मतिकी तेरह सौ धनुष थी, प्रतिश्रुतिके पौत्र—तीसरे कुलकर क्षेमंकरकी आठ सौ धनुष थी और इसके आगे प्रत्येककी पचीस-पचीस धनुष कम होती गयी है। इस तरह अन्तिम कुलकर नाभिराजकी ऊँचाई पाँच सौ पचीस धनुष थी ॥१७१–१७२॥ ये चौदह कुलकर समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभ नाराचसंहननसे युक्त गम्भीर तथा उदार शरीरके धारक थे, इनको अपने पूर्वभवका स्मरण था तथा इनकी मनुसंज्ञा थी ॥१७३॥ इन कुलकरोंमें चक्षुष्मान्, यशस्वी और प्रसेनजित् ये तीन कुलकर प्रियंगु पुष्पके समान श्याम कान्तिके धारक थे, चन्द्राभ चन्द्रमाके समान गौरवर्ण था, और बाकी दश तपाये हुए स्वर्णके समान प्रभासे युक्त थे ॥१७४-१७५॥ ये

चौदहों राजा मर्यादाकी रक्षाके उपायभूत 'हा', 'मा' और 'धिक्' इन तीन प्रकारकी दण्डनीतियों-को अपनाते थे, प्रजाके पिताके तुल्य थे और अत्यधिक प्रतिभाशाली थे ॥१७६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस तरह मैंने समस्त कुलकरोंकी उत्पत्ति कही। अब नाभिराजाके पुत्र भगवान् आदिनाथकी पापनाशिनी कथा सुन ॥१७७॥ यद्यपि यह समस्त संसार छह अकृत्रिम द्रव्योंसे व्याप्त है तो भी उद्यमशील आचार्योंने उसे अरहन्त भगवान्‌के दिव्य ज्ञानके प्रभावसे जान लिया है सो ठीक ही है क्योंकि नित्य और श्रीसम्पन्न उदयको धारण करनेवाला जिनेन्द्ररूपी सूर्यका प्रकाश, काल आदि द्रव्योंके विषयमें जो गाढ़ अन्धकार है उसे भी क्षण-भरमें नष्ट कर देता है ॥१७८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्यरचित हरिवंशपुराणमें कालद्रव्य तथा कुलकरोंकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

☐

सर्ग- ८

अथानन्तर ऊपर जिन नाभिराजका कथन किया गया है वे श्रीमान् पुरुषोंके अनुरूप परिणामको प्राप्त थे तथा समस्त पुरुषार्थोंका मनन करनेसे मनु कहलाते थे ।।१।। उस समय दक्षिण भरत क्षेत्रमें कल्पवृक्षरूप प्रासाद अन्यत्र नष्ट हो गये थे परन्तु राजा नाभिराजका जो कल्पवृक्षरूप प्रासाद था वही पृथिवी निर्मित प्रासाद बन गया था ।।२।। राजा नाभिराजके उस प्रासादका नाम सर्वतोभद्र था, उसके खम्भे स्वर्णमय थे, दीवालें नाना प्रकारकी मणियोंसे निर्मित थीं, वह पुखराज, मूँगा तथा मोती आदिकी मालाओंसे सुशोभित था, इक्यासी खण्डसे युक्त था और कोट, वापिका तथा बाग-बगीचोंसे अलंकृत था ।।३-४।। वह अधिष्ठाता नाभिराजके प्रभावसे अकेला ही अनेक कल्पवृक्षोंसे आवृत था तथा पृथिवीके मध्य अपने स्थानपर अधिष्ठित था ।।५।।

अथानन्तर राजा नाभिराजकी मरुदेवी नामकी पटरानी थी। यह शुद्ध कुलमें उत्पन्न हुई थी तथा जिस प्रकार इन्द्रको इन्द्राणी प्रिय होती है उसी प्रकार राजा नाभिराजको प्रिय थी ।।६।। जिनके नख अत्यन्त चमकदार थे ऐसे उसके उठे हुए दोनों पैरोंके अँगूठे ऐसे जान पड़ते थे मानो ललाटके देखनेकी इच्छासे ही ऊपरकी ओर उठ रहे हों ।।७।। उसके दोनों चरण, उन्नत अग्रभागसे युक्त, सम, स्निग्ध, पतले और लाल-लाल नखोंकी किरणोंसे फर्शपर कुरवककी शोभा उत्पन्न कर रहे थे ।।८।। जिनकी अंगुलियाँरूपी कलिकाएँ परस्परमें सटी हुई थीं, जिनकी गाँठें छिपी हुई थीं और जो कछुओंके समान उन्नत थे, ऐसे उसके दोनों चरणकमल कान्तिरूपी जलमें मानो तैर ही रहे थे ।।९।। सुन्दर मच्छ तथा शंख आदिके लक्षणोंसे युक्त जिसके चरण, क्रीड़ाओंके समय ही पतिका स्पर्श पाकर पसीनाके सम्बन्धसे युक्त होते थे अन्य समय नहीं ।।१०।। अनुक्रमिक गोलाईसे युक्त, तथा रोम एवं नसोंसे रहित उसकी दोनों जंघाएँ सौन्दर्य रससे भरे हुए मानो कामदेवके दो तरकश ही हैं ।।११।। गूढ़ सन्धिसे युक्त जिसके दोनों कोमल घुटने पतिके अवयवोंको कोमल स्पर्शजन्य सुख प्रदान करते थे ।।१२।। केलेके स्तम्भ सार रहित हैं और हाथीके शुण्डादण्ड कठोर स्पर्शसे युक्त हैं अतः विस्ताररूपी गुणोंसे युक्त होनेपर भी दोनों मरु देवीकी जाँघोंके समान नहीं थे ।।१३।। जिसके कूल्हे, गर्तविशेषसे मनोहर नितम्ब और स्थूल जघन सादृश्यसे परे थे अर्थात् अनुपम थे ।।१४।। जिसकी आवर्त—जलभँवरके समान गोल, गहरी एवं रोमराजिसे युक्त नाभि, राजा नाभिराजके हर्षका कारण थी ।।१५।। जिसकी रोम रहित, पतली एवं त्रिवलिसे युक्त कमर ऐसी जान पड़ती थी मानो गोल, सम, ऊँचे और स्थूल स्तनोंके भारसे ही झुक रही हो ।।१६।। जिस प्रकार मन्द भयके साथ क्रीड़ा करते हुए चकवा-चकवियोंके युगलसे नदी सुशोभित होती है उसी प्रकार जिसका वक्षःस्थल कठोर स्तनोंके मण्डलसे सुशोभित हो रहा था ।।१७।। जिनकी हथेलियाँ लाल-लाल थीं, जिनकी कोहनी और कलाई उत्तम थीं और जिनके कन्धे शोभास्पद थे ऐसी उसकी दोनों कोमल भुजाएँ कामपाशके समान जान पड़ती थीं ।।१८।। उसकी ग्रीवा शंखके आवर्तके समान थी, अधर पल्लव मूँगाके समान थे और दाँत मोतियोंके समान प्रकाशमान थे इसलिए वह समुद्रकी वेलाके समान सुशोभित

हो रही थी ॥१९॥ जिसका तालु और जिह्वाका अग्रभाग अत्यन्त लाल था ऐसा उसका अन्तर्मुख सुशोभित था और जब उसके शब्द निकलते थे तब वह कोकिलाके शब्दको भी अशब्द कर देता था—फीका बना देता था ॥२०॥ प्रियाके मुखके समान जब नाभिराज अपना मुख देखनेकी इच्छा करते थे तब सामने स्थित मरुदेवीके दोनों कपोल दर्पणके समान हो जाते थे ॥२१॥ ठीक बीचमें स्थित सम और समान पुटवाली उसकी नासिका ऐसी जान पड़ती थी मानो स्पर्धा करनेवाले दोनों नेत्रोंके पारस्परिक दर्शनको रोक ही रही थी ॥२२॥ सफेद, काले और लाल इन तीन वर्णके कमलोंके समान जिसके बड़े-बड़े नेत्र किसी मन्त्रकी सलाह करनेके लिए ही मानो कानोंके समीप तक गये थे ॥२३॥ जिसकी पतली भौंहें न दूर थीं और न पास ही थीं। शुभ लक्षणोंसे युक्त थीं तथा चढ़ाये हुए धनुषके समान सुशोभित थीं ॥२४॥ जिसका ललाटपट्ट न अधिक नीचा था और न अधिक ऊँचा था इसलिए उसका सादृश्य प्राप्त करनेके लिए अर्ध-चन्द्रकी सामर्थ्य नहीं थी ॥२५॥ जिसके कानोंका युगल अपने कुण्डलोंसे गालोंको उज्ज्वल बना रहा था, स्थूल था, कोमल था और समान था अतः उसकी कहीं भी उपमा नहीं थी ॥२६॥ काले घुँघराले चिकने और महीन केशोंके समूहसे युक्त जिसके सुन्दर शिरकी शोभा वचन मार्गको उल्लंघन कर गयी थी ॥२७॥ जिसके मुख-मण्डलकी शोभासे पराजित हुआ पूर्णचन्द्र मानसिक व्यथासे ही मानो अत्यन्त सफेदीको प्राप्त हो गया था ॥२८॥ चन्द्रमाकी मूर्ति सोलह कलाओंसे युक्त है और मरुदेवी बहत्तर कलाओंसे सहित थी, चन्द्रमाकी मूर्ति कलंक सहित है और मरुदेवी अत्यन्त उज्ज्वल थी अतः चन्द्रमाकी मूर्तिसे उसकी तुलना कैसे हो सकती है? ॥२९॥ मरुदेवी चौंसठ गुणोंसे युक्त थी और पृथिवी मात्र चार गुणोंको धारण करनेवाली है। मरुदेवी कोमलताके अति-शयको प्राप्त थी और पृथिवी अत्यन्त कठिन है अतः यह उसके तुल्य कैसे हो सकती है? ॥३०॥ यद्यपि जल स्निग्ध है—कुछ-कुछ चिकनाईसे युक्त है पर मरुदेवी सुस्निग्धा—अत्यधिक चिकनाई-से युक्त थी (पक्षमें पति-विषयक स्नेहसे सहित थी), जल जड़रूप है, मूर्ख है—(पक्षमें पानीरूप है) और मरुदेवी कलाओंमें निपुण थी, जल, अन्यप्रणेया—दूसरेके द्वारा ले जाने योग्य है और मरुदेवी अन्यप्रणेया नहीं थी—स्वावलम्बी थी अतः उसकी जलके साथ उपमा कैसे हो सकती है? ॥३१॥ यद्यपि अग्नि मरुदेवीके समान भास्वर रूप है परन्तु साथ ही दाहमयी भी है अतः वह मरुदेवीके शरीरकी उपमाको कैसे प्राप्त हो सकती है? ॥३२॥ मरुदेवी, दर्शन और स्पर्श दोनोंके द्वारा नाभिराजको अतिशय सुख देनेवाली थी परन्तु वायु मात्र स्पर्शके द्वारा सुख पहुँचाती थी अतः वह वायुके समान कैसे हो सकती थी? ॥३३॥ मरुदेवी पतिके हृदयका स्पर्श करनेवाली थी जबकि आकाश स्पर्शसे शून्य है अतः वह शुद्ध होनेपर भी आकाशरूपी शक्तिके सदृश कैसे हो सकती है? ॥३४॥ कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए चौदह प्रकारके आभूषण जिसके अंग-प्रत्यंगका सम्बन्ध पाकर भूष्यताको प्राप्त हुए थे। भावार्थ—आभूषणोंने उसके शरीरको विभूषित नहीं किया था किन्तु उसके शरीरने ही आभूषणोंको विभूषित किया था ॥३५॥ उस मरुदेवीके साथ स्वर्ग लोकके समान भोग भोगनेवाले राजा नाभिका यदि स्पष्ट वर्णन करनेके लिए कोई समर्थ है तो वक्ता शुक्र और बृहस्पति ही समर्थ हैं अन्य नहीं ॥३६॥

अथानन्तर जब प्रथम तीर्थंकर भगवान् वृषभदेव सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्युत हो राजा नाभिराज और मरुदेवीके यहाँ अवतार लेंगे उसके छह माह पूर्वसे ही उनके घरके आँगनमें इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरके द्वारा छोड़ी हुई रत्नोंकी धारा आकाशमें पड़ने लगी ॥३७-३८॥ श्री, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति आदि निन्यानवे विद्युत्कुमारी और दिक्कुमारी देवियाँ भी छह माह पहलेसे बड़े हर्षके साथ दिशाओं और विदिशाओंमें आ गयीं ॥३९॥ उन्होंने आकर बड़े सन्तोषसे जिनेन्द्र भगवान्के

होनहार माता-पिताको नमस्कार किया और हम इन्द्रकी आज्ञासे स्वर्गलोकसे यहाँ आयी हैं, इस प्रकार अपना परिचय दिया ।।४०।। 'हे देवि ! आज्ञा दो, समृद्धिसम्पन्न होओ, और चिर काल तक जीवित रहो' इस प्रकारकी उत्तम वाणीको बोलती हुई वे देवियाँ महान् आदरके साथ मरुदेवीके आदेशको प्रतीक्षा करने लगीं ।।४१।। उस समय परम आश्चर्यको प्राप्त हुईं कितनी ही देवियाँ मरुदेवीके रूप, यौवन, सौन्दर्य और सौभाग्य आदि गुणोंके सागरका वर्णन करती थीं ।।४२।। कितनी ही देवियाँ मरुदेवीके अक्षर-विज्ञान, चित्र-विज्ञान, संगीत-विज्ञान, गणित-विज्ञान और आगम-विज्ञानको आदि लेकर उसके कला-कौशलको प्रशंसा करती थीं ।।४३।। कितनी ही देवियाँ स्वयं अपनी तन्त्री तथा वीणा आदि विषयक चतुराई दिखलाती थीं । कितनी ही कानोंके लिए रसायन-स्वरूप मधुर गान गाती थीं ।।४४।। हाव, भाव और विलाससे भरी हुई कितनी ही देवियाँ सुन्दर अभिनयसे युक्त, शृंगारादि रसोंसे उत्कट और नेत्रोंके लिए अमृतस्वरूप मनोहर नृत्य करती थीं ।।४५।। कोमल हाथोंको धारण करनेवाली कितनी ही देवियाँ मरुदेवीके हाथ दाबनेमें, कितनी ही पैर दाबनेमें तथा कितनी ही अन्य अंगोंके दाबनेमें लग गयी थीं ।।४६।। कितनी ही शरीरपर तेलका मर्दन करनेमें, कितनी ही उबटन लगानेमें, कितनी ही स्नान करानेमें और कितनी ही स्नानके वस्त्र निचोड़नेमें तत्पर थीं ।।४७।। कोई उत्तम गन्धके लानेमें, कोई उसका लेप लगानेमें, कोई चित्र-विचित्र वस्त्र सँभालनेमें, और कोई वस्त्र पहनानेमें लग गयी ।।४८।। कोई आभूषण तथा मालाओंके लानेमें, कोई शरीरको सजावटमें, कोई दिव्य भोजनके लानेमें और कोई भोजन करानेमें व्यग्र थी ।।४९।। कोई विस्तर तथा आसनके बिछानेमें, कोई पान लगानेमें, कोई पीकदान रखनेमें, कोई गृह-सम्बन्धी कार्यमें, कोई दर्पण उठानेमें, कोई चमर ग्रहण करनेमें, कोई छत्र लगानेमें और कोई पंखा झलनेमें तत्पर थी ।।५०-५१।। कितनी ही देवियाँ हाथमें तलवार ले अंग-रक्षा करनेमें तत्पर रहती थीं एवं ग्रह, राक्षस और पिशाचोंसे रक्षा करती हुई जागृत रहती थीं ।।५२।। कितनी ही देवियाँ घरके भीतरी द्वारपर और कितनी ही बाह्य द्वारपर तलवार, चक्र, गदा, शक्ति और स्वर्णमय छड़ी हाथमें लेकर खड़ी थीं ।।५३।। इस प्रकार लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ थी, ऐसी देवियों द्वारा अपनी आज्ञाकी पूर्ति देखकर तथा लगातार छह माहसे पड़ती हुई रत्नधारासे राजा नाभिराज और मरुदेवीने निश्चय कर लिया कि हमारे यहाँ सबके द्वारा प्रार्थनीय तीर्थंकरका जन्म होगा ।।५४-५५।।

अथानन्तर मनोहर ताराओंसे सेवित चन्द्रकलाके समान अनेक देवियोंसे सेवित मनोहरांगी मरुदेवी, शरद् ऋतुकी मेघावलीके समान सफेद एवं अगुरु चन्दनसे सुवासित राजभवनमें नाना गद्दा-तकियोंसे युक्त चन्द्रतुल्य शय्यापर शयन कर रही थी कि उसने रात्रिके पश्चिम भागमें निधियोंके समान शुभसूचक, इन दुर्लभ सोलह स्वप्नोंको क्रमसे देखा ।।५६-५८।। प्रथम ही उसने सफेद हाथी देखा, ऐसा हाथी कि जो अत्यधिक मदकी धारासे गीली सूँड़ और उसके अग्रभागको धारण कर रहा था तथा मदके अर्थी भ्रमर जिसके आस-पास गुंजार कर रहे थे । वह हाथी किसी राजाके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार राजाके कर पुष्कर—हस्त कमल अत्यधिक दानके संकल्पके लिए गृहीत जलकी धारासे गीले रहते हैं उसी प्रकार उस हाथीके कर पुष्कर—सूँड़ और उसके नथने अत्यधिक दान —मद जलकी धारासे गीले थे और जिस प्रकार राजाके समीप खड़े दानके अर्थीजन उसकी स्तुति किया करते हैं उसी प्रकार दान—मदके अर्थी भ्रमर उसके समीप गुंजार कर रहे थे ।।५९।। दूसरी बार उसने भद्र आकृतिको धारण करनेवाला एक धीर-वीर बैल देखा। वह बैल ठीक धर्मके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार धर्म अपनी मधुर देशनासे एकान्तवादी प्रतिपक्षियोंको पराजित कर देता है उसी प्रकार वह बैल भी अपनी हुम्बाध्वनिसे प्रतिपक्षी बैलोंको

पराजित कर रहा था, जिस प्रकार धर्म शुभ अभ्युदयको देता है उसी प्रकार वह बैल भी शुभ अभ्युदय-को सूचित करनेवाला था। जिस प्रकार धर्म भद्राकृति—मंगलकारी होता है उसी प्रकार वह बैल भी भद्राकृति—उत्तम आकृतिका धारक था, जिस प्रकार धर्म धीर–धी बुद्धिको प्रेरणा करनेवाला है उसी प्रकार वह बैल भी धीर-गम्भीर था और जिस प्रकार धर्म उन्नत—उत्कृष्ट होता है उसी प्रकार वह बैल भी उन्नत—ऊँचा था ॥६०॥ तीसरी बार तीक्ष्ण नख, दंष्ट्रा और सटा (गरदनके बालों) से युक्त एक सिंह देखा। वह सिंह ऐसा जान पड़ता था मानो पहले स्वप्नमें दिखे हाथीके मदकी गन्ध पा उसे ढूँढ़नेके लिए ही तैयार खड़ा हो ॥६१॥ चौथी बार उसने नाना रत्नमयी घड़ोंके विशाल शब्दसे युक्त मदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा कमलपर बैठी लक्ष्मीका अभिषेक देखा। लक्ष्मीका वह अभिषेक ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रधनुषसे उपलक्षित एवं घनघोर गर्जना करनेवाले मेघ नूतन जलसे पृथिवीका ही अभिषेक कर रहे हों ॥६२॥ पांचवीं बार उसने नाना पुष्पोंसे व्याप्त तथा अत्यन्त सुगन्धित दो बड़ी-बड़ी मालाएँ देखीं। वे मालाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो समस्त ऋतुओंकी लक्ष्मीने मिलकर मरुदेवीकी सेवाके लिए उन मालाओंको बनाकर ऊपर उठा रखा हो ॥६३॥ छठवीं बार उसने चन्द्रमण्डलको देखा। वह चन्द्रमण्डल ऐसा जान पड़ता था मानो तारारूपी आभूषणोंसे युक्त रात्रिरूपी स्त्रीके द्वारा ऊपर उठाया हुआ छत्र ही हो। ऐसा छत्र कि जिसकी नीचेकी ओर आनेवाली किरणोंका समूह ही दण्डका काम दे रहा था ॥६४॥ सातवीं बार उसने सन्ध्याकी लालिमा-रूपी अंगरागसे युक्त उदित होता हुआ सूर्य देखा। वह सूर्य ऐसा जान पड़ता था मानो पूर्व दिशा-रूपी स्त्रीने मंगलके लिए सिन्दूरसे रँगा हुआ कलश ही ऊपर उठाया हो ॥६५॥ आठवीं बार उसने जलके भीतर क्रीड़ा करते हुए दो मीन देखे। वे मीन ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने उदरकी शोभा-को हरनेवाले चंचल नेत्रोंका उलाहना देनेके लिए ही मरुदेवीके पास आये हों ॥६६॥ नौवीं बार उसने जलसे भरे हुए दो स्वर्णमय विशाल कलश देखे। वे कलश ऐसे जान पड़ते थे मानो अपनी उपमा धारण करनेवाले माताके स्तनोंको देखनेके लिए ही ऊपर उठे हों ॥६७॥ दशवीं बार उसने एक ऐसा सरोवर देखा जो किसी बलिष्ठ सेनाके समान जान पड़ता था। क्योंकि जिस प्रकार सेना, सोद्दण्डपुण्डरीकौघ—ऊपर उठे दण्डोंसे युक्त छत्रोंके समूहसे सहित होती है उसी प्रकार वह सरोवर भी सोद्दण्डपुण्डरीकौघ—ऊँचे-ऊँचे डण्ठलोंसे युक्त श्वेत कमलोंके समूहसे सहित था। जिस प्रकार सेना, राजहंस मनोहर—उत्तम राजाओंसे मनोहर होती है उसी प्रकार वह सरोवर भी राजहंस मनोहर—हंस* विशेषोंसे सुन्दर था। और जिस प्रकार सेना, रथपादातिनादाढय—रथके पहियोंकी विशाल चीत्कारसे युक्त होती है उसी प्रकार वह सरोवर भी रथपादातिनादाढय—चक्रवाक पक्षियोंके अत्यधिक शब्दके युक्त था ॥६८॥ ग्यारहवीं बार उसने बढ़ता हुआ एक ऐसा महासमुद्र देखा जो ठीक आकाशके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार आकाश मीन, मिथुन, मकर आदि राशियोंसे युक्त होता है—उसी प्रकार महासमुद्र भी उत्तम मीन युगलोंकी उछल-कूद तथा मगर-मच्छ आदिकी विशाल राशिसे पूर्ण था ॥६९॥ बारहवीं बार उसने एक सुवर्णमय सिंहासन देखा। वह सिंहासन जिस प्रकार सबल भुजाओंके धारक, प्रौढ़ दृष्टिसे युक्त एवं कार्य करनेमें तत्पर कुलकरोंके द्वारा जगत् धारण किया जाता है उसी प्रकार मजबूत भुजस्तम्भोंसे युक्त, प्रौढ़ दृष्टिसे सहित एवं ऊपरकी ओर मुख किये हुए सिंहोंके द्वारा धारण किया गया था ॥७०॥ तेरहवीं बार उसने एक विमान देखा जो ऐसा जान पड़ता था मानो मनुष्योंको स्वर्गलोकका सौन्दर्य दिखलानेके लिए सुन्दर गीत गानेवाली देवकन्याएँ उसे पृथिवीपर ले आयी हों ॥७१॥ चौदहवीं बार उसने नागेन्द्रका भवन देखा जो ऐसा जान पड़ता था मानो वह अपनी शोभासे नाग-लोकको तो जीत चुका था अब अन्य लोकोंको जीतनेकी इच्छासे ही नागकन्याएँ उसे पृथिवीपर ऊपर लायी हों ॥७२॥ पन्द्रहवीं बार उसने आकाशमें महारत्नोंकी एक ऐसी राशि देखी जो अपनी

उन्नत किरणोंके द्वारा मेघ रहित आकाशमें बिजली और इन्द्रधनुषसे शोभित मेघकी रचना कर रही थी ॥७३॥ और सोलहवीं बार उसने अत्यन्त निर्मल एवं घूमती हुई ज्वालाओंसे युक्त, निर्धूम अग्नि देखी। वह अग्नि ऐसी जान पड़ती थी मानो चंचल फूलोंसे युक्त पलाशके बड़े-बड़े वृक्षोंका समूह ही हो ॥७४॥ इस प्रकार पृथक्-पृथक् दिखनेवाले इन सोलह स्वप्नोंको देखकर रानी मरुदेवीने उसके बाद बैलके रूपमें मुख मार्गसे प्रविष्ट हुए जिनेन्द्र भगवान्‌को भीतर धारण किया ॥७५॥

मैं स्वामिनीको उत्तम स्वप्नोंके देखनेका नूतन आनन्द प्राप्त करा चुकी हूँ इसलिए कृत-कृत्य हुईकी तरह रानी मरुदेवीकी निद्रारूपी सखी कहीं भाग निकली ॥७६॥ महारानी मरुदेवी स्वप्न-दर्शनके बाद स्वयं जाग गयी थीं, इसलिए दिक्कुमारियोंके द्वारा उसके जगानेके लिए 'हे पदार्थोंको जाननेवाली माता ! जागो, हे वृद्धिरूपिणी माता ! वृद्धिको प्राप्त होओ, हे जयलक्ष्मीकी स्वामिनि ! पूर्ण मनोरथोंवाली माता ! जयवन्त रहो' इत्यादि कहे गये वचन केवल मंगलरूपताको प्राप्त हुए थे ॥७७-७८॥ हे माता ! यह चन्द्रमा दोषाकर—दोषोंकी खान (पक्षमें निशाकर) और कलंकी—दोषयुक्त (पक्षमें काले चिह्नसे युक्त) है अतः तुम्हारे निष्कलंक और गुणोंकी खानभूत मुखचन्द्रको देखकर लज्जासे ही मानो प्रभा-रहित हो गया है ॥७९॥ अब तो यह घर तुम्हारे ही दोनोंकी प्रभासे प्रकाशित है—हम लोगोंकी आवश्यकता नहीं, यह विचारकर ही मानो ये दीपक स्फुरणके बहाने अपने आपकी हँसी कर रहे है ॥८०॥ हे माता ! यह प्रातः सन्ध्या, दुष्टकी चंचल मित्रताके समान राग-रहित होती जा रही है अर्थात् जिस प्रकार दुष्टकी मित्रता प्रारम्भमें रागसे सहित होती है और क्षण-भर बाद ही शत्रुओंको अनुरंजित करने लगती है उसी प्रकार यह प्रातः सन्ध्या पहले तो राग अर्थात् लालिमासे सहित थी और अब क्षण-भर बाद लालिमासे रहित हुई जा रही है। जिस प्रकार दुष्टकी मित्रता वन्ध्या—निष्फल रहती है—उससे किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती उसी प्रकार यह प्रातः सन्ध्या भी वन्ध्या है—इससे किसी कार्यकी सिद्धि दृष्टिगत नहीं हो रही है ॥८१॥ और यह उदित होते हुए सूर्यकी प्रभा सज्जन-की मित्रताके समान उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है। क्योंकि जिस प्रकार सज्जनकी मित्रता प्रारम्भमें मत्सर-युक्त होनेके कारण फीकी रहती है और आगे चलकर खूब फैल जाती है उसी प्रकार सूर्यकी प्रभा पहले मन्द होती है और आगे चलकर खूब फैल जाती है—सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। जिस प्रकार सज्जनकी मित्रता सार्थक है उसी प्रकार सूर्यकी प्रभा सार्थक है ॥८२॥ भास्वर-अम्बर—देदीप्यमान आकाश ही जिसका आभूषण है (पक्षमें जिसके वस्त्र और आभूषण देदीप्यमान हैं तथा भास्वद्विशेषका—सूर्य ही जिसका तिलक है (पक्षमें देदीप्यमान तिलक-से युक्त है) ऐसी यह पूर्व दिशा सौभाग्यवती स्त्रीके समान मानो तुम्हारा मंगल करनेके लिए ही उद्यत हुई है ॥८३॥ वापिकाओंमें लम्बी रात बितानेके बाद अब सूर्यका दर्शन हुआ है इसलिए यह चकवी प्रसन्न हो अपने मधुर शब्द कर रही है अथवा मधुर शब्द करनेवाले आत्मीय जनोंको इकट्ठा कर रही है ॥८४॥ इधर मधुर शब्द करता हुआ यह कलहंसोंका समूह तुम्हें उठा रहा है जिससे ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारे पादनिक्षेपकी लीलाको देखनेके लिए अत्यन्त उतावला हो रहा है ॥८५॥ जो मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे हैं, तथा अभिनयकी मुद्राको धारण किये हैं ऐसे ये वृक्ष, आपके लिए मानो अपने नृत्यका आरम्भ ही दिखला रहे हैं ॥८६॥ हे माता ! इस समय समस्त दिशाएँ तुम्हारी चेष्टाके समान निर्मल हो गयी हैं एवं सुन्दर प्रभातकाल हो गया है, इसलिए हे अनिन्दिते देवि ! शय्याको छोड़ो ॥८७॥ इस प्रकार बन्दीजनोंके द्वारा वन्दनीय, एवं निर्मल शरीरको धारण करनेवाली महारानी मरुदेवीने शय्याको उस प्रकार छोड़ा जिस प्रकार कि हंसी नदीके रेतीले तटको छोड़ती है ॥८८॥ उज्ज्वल कान्तिको धारण करनेवाली मरुदेवी धुले हुए वस्त्रको ग्रहण कर जब शयनागारसे बाहर निकली तब शरद् ऋतुके मेघसे बाहर निकली

चन्द्रमाकी पतली कलाके समान सुशोभित होने लगी ॥८९॥ विद्युत्कुमारी और दिक्कुमारी देवियोंने जिसे नवीन-नवीन आभूषण पहनाये थे तथा जो अन्तर्गतगर्भा होनेसे गृहीतजला मेघमाला-के समान जान पड़ती थी ऐसी मरुदेवी नाभिराजरूपी पर्वतके समीप गयी ॥९०॥ जो शोभामें लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी मरुदेवी वहाँ जाकर अपने आसनपर बैठी और हस्तकमल जोड़, भद्रासनपर बैठे हुए महाराजसे क्रम-पूर्वक स्वप्नोंका वर्णन करने लगी ॥९१॥

स्वप्नोंका फल समझकर महाराज नाभिराजने उससे कहा कि हे प्रिये! निश्चय ही आज तुम्हारे गर्भमें तीन लोकके नाथ तीर्थंकरने अवतार लिया है ॥९२॥ दूरवर्ती तथा अल्प फलकी प्राप्तिके समय ऐसे स्वप्न नहीं दिखते इसलिए मुझे विश्वास है कि आज ही आपके गर्भ रहा है ॥९३॥ लगातार छह माससे होनेवाली रत्नोंकी वर्षा और देवताओंके द्वारा की हुई शुश्रूषासे हम दोनोंको जिनेन्द्रदेवके जिस जन्मकी सूचना मिली थी वह आज सफल हुई ॥९४॥ हे प्रिये! निश्चय ही समस्त कल्याणोंके पात्ररूप पुत्रको उत्पन्न कर तुम शीघ्र ही संसारको आनन्दित करोगी ॥९५॥ इन उत्तम स्वप्नोंका फल अपने-आपमें शीघ्र ही संघटित हो चुका है, यह सुन दीप्ति और कान्तिको धारण करती हुई मरुदेवी बहुत ही प्रसन्न हुई ॥९६॥ तीसरे कालमें जब चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष साढ़े आठ माह बाकी रहे थे तब आषाढ़ कृष्ण द्वितीयाके दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें समस्त जगत्के द्वारा नमस्कृत श्री जिनेन्द्रदेवका स्वर्गावतरण हुआ था ॥९७–९८॥ क्रम-क्रमसे गर्भमें वृद्धि होनेपर माताका शरीर भी बढ़ गया परन्तु त्रिवलिकी शोभा कहीं नष्ट न हो जाये इस भयसे मानो उसके उदरमें वृद्धि नहीं हुई ॥९९॥ माता मरुदेवी स्वयं अत्यधिक गौरवसे सुशोभित थी और उसपर तीनों जगत्के गुरु—भारी (पक्षमें श्रेष्ठ) जिनेन्द्र देवको धारण कर रही थी, फिर भी वह शरीरमें अत्यधिक लघुताका अनुभव करती थी यह बड़े आश्चर्यकी बात थी ॥१००॥ मैं गर्भमें स्थिर रहकर माताके सन्तापका कारण न बनूँ यह जानकर ही मानो जिन-बालक गर्भमें अत्यन्त निश्चल रहते थे। माताके गर्भमें उनका निवास वैसा ही था जैसा कि जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यका होता है ॥१०१॥ मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानरूपी नेत्रोंके द्वारा जगत्को देखते हुए जिन-बालक, दिक्कुमारियोंके द्वारा शुद्ध किये हुए गर्भमें नौ माह तक सुखसे स्थित रहे ॥१०२॥

तदनन्तर नौ माह पूर्ण होनेपर जब लगातार रत्नोंकी वर्षा हो रही थी तब उत्तराषाढ़ा नक्षत्रके समय माताने जिन-बालकको उत्पन्न किया ॥१०३॥ जिस प्रकार निर्मल पूर्व दिशामें विशुद्ध स्फटिकके तुल्य मेघमण्डलके मध्यसे निकला हुआ सूर्य सुशोभित होता है उसी प्रकार माता मरुदेवीके स्फटिकके समान स्वच्छ गर्भसे निकले हुए जिन-बालक सुशोभित हो रहे थे ॥१०४॥ उस समय वहाँ जो देवियाँ थीं वे शीघ्र ही करने योग्य जातकर्ममें लग गयीं सो ठीक ही है क्योंकि जो अन्तरंग व्यक्ति होते हैं वे संसारमें शीघ्र ही अपने करने योग्य काममें लग जाते हैं ॥१०५॥ चंचल कुण्डलोंके प्रकाशसे जिनके कपोल सुशोभित हो रहे थे ऐसी १ विजया, २ वैजयन्ती, ३ जयन्ती, ४ अपराजिता, ५ नन्दा, ६ नन्दोत्तरा, ७ नन्दी और ८ नन्दीवर्धना ये आठ दिक्कुमारी देवियाँ हाथोंमें झारियाँ लिये हुए खड़ी थीं ॥१०६–१०७॥ नाना प्रकारके आभरणोंसे सुशोभित १ सुस्थिता, २ प्रणिधान्या, ३ सुप्रबुद्धा, ४ यशोधरा, ५ लक्ष्मीमती, ६ कीर्तिमती, ७ वसुन्धरा और ८ चित्रा ये आठ दिक्कुमारी देवियाँ हाथोंमें दर्पण लिये हुए खड़ी थीं ॥१०८–१०९॥ अपने शरीरकी श्रेष्ठ प्रभासे दिशाओंको सुशोभित करनेवाली १ इला, २ सुरा, ३ पृथिवी, ४ पद्मावती, ५ कांचना, ६ सीता, ७ नवमिका और ८ भद्रका ये आठ दिक्कुमारी देवियाँ आश्चर्यचकित हो सफेद छत्र धारण कर रही थीं ॥११०–१११॥ देदीप्यमान स्वर्णके कुण्डलोंको धारण करनेवाली १ ह्री, २ श्री, ३ धृति, ४ वारुणी, ५ पुण्डरीकिणी, ६ अलम्बुसा, ७ अम्बुजास्यश्री और ८ मिश्रकेशी

ये आठ दिक्कुमारी देवियाँ देदीप्यमान सुवर्णमय दण्डोंसे युक्त चामर लेकर खड़ी थीं ॥११२-११३॥ बिजलीके समान प्रभावशाली १ चित्रा, २ कनकचित्रा, ३ सूत्रामणि और ४ त्रिशिरा इन चार विद्युत्कुमारी देवियोंने सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश कर दिया था ॥११४॥ १ विजया, २ वैजयन्ती, ३ जयन्ती और ४ अपराजिता ये चार देवियाँ विद्युत्कुमारियोंमें प्रमुख थीं ॥११५॥ १ रुचका, २ रुचकोज्ज्वला, ३ रुचकाभा और ४ रुचकप्रभा ये चार देवियाँ दिक्कुमारियोंमें प्रधान थीं ॥११६॥ इन आठ देवियोंने विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेवका जातकर्म किया था। ये देवियाँ जातकर्ममें अत्यन्त निपुण हैं और सब जगह जिनेन्द्र देवका जातकर्म ये ही देवियाँ करती हैं ॥११७॥ उस समय तीनों लोकोंमें जो इन्द्र थे, जिनेन्द्रजन्मके प्रभावसे उन सबके मुकुट चंचल हो गये और सबके आसन कम्पायमान हो उठे ॥११८॥ अवधिज्ञानका प्रयोग करनेवाले अहमिन्द्र अपने-अपने निवासस्थानोंमें ही स्थिर रहे, मात्र उन्होंने सिंहासनोंसे सात डग चलकर जिनेन्द्र भगवान्‌को शीघ्र ही परोक्ष नमस्कार किया ॥११९॥ भवनवासी देवोंके लोकमें अपने-आप शंखोंका शब्द, व्यन्तरोंके लोकमें भेरीका शब्द और ज्योतिषी देवोंके लोकमें सिंहोंके शब्द होने लगे ॥१२०॥ श्रेष्ठ घण्टाओंके जोरदार शब्दने कल्पवासी देवोंके लोकको व्याप्त कर लिया। उस समय तीनों लोक 'क्या करना चाहिए' यह विचार करनेमें तत्पर हो गये ॥१२१॥ उस समय आसनके कम्पायमान होनेसे जिसकी बुद्धि चकित हो गयी थी ऐसा सौधर्मेन्द्र मुकुट हिलाकर तथा ऊँचे मस्तकको कँपाकर विचार करने लगा कि उत्पन्न बालक, मूर्ख, स्वच्छन्द, सहसा कार्य करनेवाले निर्भय एवं शंकारहित किस व्यक्तिने यह कार्य किया है? ॥१२२-१२३॥ अपने पराक्रमसे सुशोभित देव-दानवोंका समूह भी यदि कदाचित् प्रतिकूल हो जावे तो उसे भी जो नष्ट करनेमें समर्थ है ऐसा मैं इन्द्र, शक्र या पुरन्दर हूँ फिर मेरे अकम्पित आसनको कम्पित करनेवाले इस मूर्खने इस समय मुझे कुछ क्यों नहीं समझा? ॥१२४-१२५॥ मैं तीनों लोकोंमें तीर्थंकरके सिवाय किसी दूसरे प्रभुको ऐसे प्रभावसे युक्त नहीं समझता हूँ, ऐसा विचारकर उसने अवधिज्ञानका आश्रय लिया ॥१२६॥

तदनन्तर सौधर्मेन्द्रने प्रकट हुए अवधिज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा भरत क्षेत्रमें उत्पन्न हुए प्रथम तीर्थंकरको देख लिया ॥१२७॥ उसने शीघ्र ही आसनसे उतरकर तथा सात डग आगे जाकर 'जिनेन्द्र भगवान्‌की जय हो' यह कहते हुए हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया ॥१२८॥ तदनन्तर सिंहासनपर आरूढ़ हो सौधर्मेन्द्रने विचार करते ही नमस्कार कर सामने खड़े हुए सेनापतिको आदेश दिया कि 'इस समय इस अवसर्पिणीके प्रथम तीर्थंकर उत्पन्न हो चुके हैं अतः समस्त देवोंको भरतक्षेत्र चलना है।' तुम यह सूचना सबके लिए देओ ॥१२९-१३०॥ सेनापतिके द्वारा स्वामीका आदेश सुनाये जाते ही सौधर्म स्वर्गमें रहनेवाले समस्त देव चल पड़े। तथा अच्युत स्वर्ग तकके समस्त इन्द्र स्वयं ही इस समाचारको जान देवोंके साथ बाहर निकले ॥१३१॥ अपने-अपने स्थानोंमें होनेवाले निमित्तोंसे जिन्हें जिनेन्द्रजन्मका समाचार ज्ञात हुआ था, ऐसे हर्षसे भरे हुए ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देव अपने-अपने स्थानोंसे बाहर निकले ॥१३२॥ उस समय १ हाथी, २ घोड़ा, ३ रथ, ४ पैदल सैनिक, ५ बैल, ६ गन्धर्व और ७ नर्तकी इन सात प्रकारकी सेनाओंसे आकाश व्याप्त हो गया था ॥१३३॥ असुर कुमार आदि दश प्रकारके भवनवासी देवोंकी भैंसा, नौका, गेंडा, हाथी, गरुड़, पालकी, घोड़ा, ऊँट, मगर, हाथी और हंसको आदि लेकर क्रमसे जो सात प्रकारकी सेनाएँ थीं उन सबसे व्याप्त हुआ आकाश उस समय अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥१३४-१३५॥ उन देवोंमें कितने ही देव विमानोंमें बैठे थे, कितने ही बैलोंपर, कितने ही रोझोंपर, कितने ही रथोंपर, कितने ही घोड़ोंपर, कितने ही अष्टापद और शार्दूलोंपर, कितने ही मगरोंपर, कितने ही ऊँटोंपर, कितने ही वराह और भैंसोंपर, कितने ही

सिंहोंपर, कितने ही हरिणोंपर, कितने ही चीतोंपर, कितने ही हाथियोंपर, कितने ही सुरागायोंपर, कितने ही सामान्य हरिणोंपर, कितने ही श्याम हरिणोंपर, कितने ही गरुड़ोंपर, कितने ही तोताओं-पर, कितने ही कोकिलाओंपर, कितने ही क्रौंच पक्षियोंपर, कितने ही कुररोंपर, कितने ही मयूरों और मुर्गोंपर, कितने ही कबूतरों, हंसों, कारण्डव और सारसोंपर, कितने ही चकवा और बला-काओंके समूहपर और कितने ही बगुला आदि जीवोंपर बैठे थे। इस प्रकार उस समय चारों निकायके देव इधर-उधर जा रहे थे ॥१३६–१३९॥ सफेद छत्रों, नाना प्रकारकी ध्वजाओं, और फेनके समान सफेद चमरोंसे समस्त आकाशको व्याप्त करते हुए वे चारों निकायके देव जहाँ-तहाँ चल रहे थे ॥१४०॥ भेरी, दुन्दुभि तथा शंख आदिके शब्दोंसे जिसने समस्त लोकको भर दिया था तथा जो नृत्य और गीतसे युक्त था, ऐसा वह देवोंका आश्चर्यकारी आगमन अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१४१॥ उस समय सौधर्मेन्द्र, हाथियोंकी सेनाके अधिपति तथा आकाशके समान अपने शरीरकी विक्रिया करनेवाले ऐरावत हाथीपर आरूढ़ था ॥१४२॥ वह ऐरावत, दोनों खीसोंके बीच उठी हुई सूँड़के अग्रभाग फैलाये हुए था, अतएव जिसके बाँसोंके अंकुशोंके बीच सर्पराज ऊपरकी ओर उठ रहा था, ऐसे पर्वतके समान जान पड़ता था ॥१४३॥ वह ऐरावत ठीक आकाशके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार आकाश, बलाका, हंस और बिजलियोंसे युक्त होता है, उसी प्रकार वह हाथी भी कर्ण, चामर, शंख तथा कक्षामें लटकती हुई नक्षत्रमालासे युक्त था ॥१४४॥ अन्य—दूसरे गजराजोंपर बैठे हुए इन्द्रोंके समूहसे युक्त सौधर्मेन्द्र, समस्त देवोंके साथ-साथ जिनेन्द्र भगवान्के पवित्र जन्मक्षेत्रको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ आकाशसे उतरती हुई उस सुर और असुरोंकी पंक्तिने पृथिवीपर कुबेरके द्वारा निर्मित नगरको ऐसा देखा मानो स्वर्ग ही हो ॥१४६॥ वह नगर धूलिके बन्धान, कोट और परिखाके चक्रसे मनोहर था तथा उद्यान, वन, आराम, सरोवर और वापिकाओंसे अलंकृत था ॥१४७॥ इन्द्रनील, महानील, हीरा और वैडूर्यमणिकी दीवालोंसे युक्त तथा पद्मराग आदि मणियोंकी प्रभासे परिपूर्ण वहाँके भवन अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१४८॥ उस नगरकी शोभा देखनेवाले सुर और असुरोंका मन स्वर्ग तथा पाताल सम्बन्धी शोभाके देखनेकी उत्कण्ठा दूर कर चुका था ॥१४९॥ क्योंकि सुर, असुर आदि तीनों जगत्के जीव वहाँ पहले एक साथ पहुँचे थे इसलिए वह कीर्तिशाली नगर उस समयसे 'साकेत' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ था ॥१५०॥

तदनन्तर देवोंके साथ-साथ उस नगरकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर सौधर्मेन्द्रने भीतर प्रवेश किया और पवित्र जिनेन्द्रको लानेके लिए इन्द्राणीको आज्ञा दी ॥१५१॥ इन्द्रकी आज्ञा पाते ही इन्द्राणीने माताके प्रसूतिगृहमें प्रवेश किया और देवकृत मायासे माताको सुखनिद्रामें निमग्न कर उसके पास मायामयी दूसरा बालक लिटा दिया ॥१५२॥ तत्पश्चात् प्रणाम करनेके बाद जिन-बालकको लेकर उसने इन्द्रके हाथोंमें सौंपा। इन्द्रने हजार नेत्र बनाकर उनका अतिशय सुन्दर रूप देखा फिर भी वह तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥१५३॥ जिन-बालकको अपनी गोदमें रखकर ऐरावत हाथीपर बैठा हुआ सौधर्मेन्द्र उस समय ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो सूर्योदयसे सहित निषधाचलका शिखर ही हो ॥१५४॥ जो छत्रकी छायारूपी वस्त्रसे आच्छादित थे तथा जिनकी दोनों ओर चामरोंके समूह ढोले जा रहे थे, ऐसे जिन बालकको सौधर्मेन्द्र देव-समूहके साथ सुमेरुके शिखरपर ले गया ॥१५५॥ इन्द्रने पहले आकर देव-समूहके साथ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा दी फिर पाण्डुक शिलापर स्थित सिंहासनपर जिन-बालकको विराजमान किया ॥१५६॥ उस समय देवोंने क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान गम्भीर शब्दवाले भेरी, पटह, मर्दल तथा मृदंग आदि बाजे बजाये और शंख फूँके ॥१५७॥ किन्नर, गन्धर्व, तुम्बुरु, नारद तथा विश्वावसु

जातिके समस्त देव अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ कानों एवं हृदयको हरनेवाले भाँति-भाँतिके गान गाने लगे ॥१५८॥ उस समय देव तत*, वितत, घन और सुषिर नामके चारों मनोहारी बाजे बजा रहे थे ॥१५९॥ हाव-भावसे सुन्दर, अंगहारोंसे युक्त तथा शृंगारादि रसोंसे आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला अप्सराओंका नृत्य हो रहा था ॥१६०॥ इस प्रकार जब वहाँ देव-समूहके द्वारा महान् आनन्द मनाया जा रहा था, लम्बी-चौड़ी गुफाओंसे युक्त मेरु पर्वत उनकी प्रतिध्वनिसे गूँज रहा था, हर्षसे भरा सौधर्मेन्द्र अभिषेकके लिए योग्य वेष धारण कर रहा था, और उत्तम देवांगनाएँ अपने हाथोंमें अष्ट मंगल द्रव्य धारण कर रही थीं, तब महावेगशाली देवोंके समूह घट लेकर विशाल मेघोंके समान समस्त दिशाओंमें फैल गये और उन्होंने क्षीरसागरको क्षोभित कर दिया ॥१६१-१६३॥ क्षीरसे भरे चाँदी और सोनेके कलश देवों द्वारा एक हाथसे दूसरे हाथमें दिये जाकर सुमेरु पर्वतपर पहुँच रहे थे और वे चन्द्र तथा सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१६४॥ निरन्तर शब्द करनेवाले एवं क्षीरसागरके जलसे भरे हुए कलशोंके द्वारा हजारों देवोंने जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया ॥१६५॥ उस समय इन्द्रोंके कलशरूपी महामेघ जिनबालकरूपी पर्वतके ऊपर क्षीरोदककी वर्षा कर रहे थे परन्तु वे उन्हें रंचमात्र भी खेदके कारण नहीं हुए थे ॥१६६॥ भगवान्के श्वासोच्छ्वाससे बार-बार उछाले हुए क्षीरोदकके प्रवाहसे प्रेरित देव, उस क्षीरोदकके समूहमें क्षण-भरके लिए मक्खियोंके समूहके समान तैरने लगते थे ॥१६७॥ देवोंके समूहने पहले जिस मेरुको रत्नोंसे पीला देखा वही उस समय क्षीरोदकके पूरसे सफेद दिखने लगा था ॥१६८॥ यद्यपि क्षीरसागर अत्यन्त परोक्ष है तथापि जिनेन्द्रके जन्माभिषेकके समय देवोंके समूहने उसे प्रत्यक्ष कर दिखाया था ॥१६९॥ जिसमें मेरु पर्वत स्नानका आसन था, क्षीर समुद्रका क्षीर स्नान जल था, और देव स्नान करानेवाले थे ऐसा वह भगवान्का स्नान था ॥१७०॥ इन्द्र सामानिक तथा लोकपाल आदि अनेक देवोंने क्षीरसागरके जलसे भगवान्का क्रमपूर्वक अभिषेक किया था ॥१७१॥

तदनन्तर जिनके हाथ पल्लवोंके समान अत्यन्त सुकुमार थे, ऐसी इन्द्राणी आदि देवियोंने अतिशय सुकुमार जिन-बालकको अपनी दिव्य सुगन्धिसे भ्रमर-समूहको आकृष्ट करनेवाले अनुलेपनसे उबटन किया और इस तरह उन्होंने जिन-बालकके स्पर्शसे समुत्पन्न नूतन सुख प्राप्त किया ॥१७२-१७३॥ तदनन्तर पयोधरभार—मेघोंके भारसे नम्रीभूत वर्षा ऋतु जिस प्रकार पर्वतका अभिषेक करती है उसी प्रकार पयोधरभार—स्तनोंके भारसे नम्रीभूत देवियोंने सुगन्धित जलसे भरे कलशों द्वारा भगवान्का अभिषेक किया ॥१७४॥ जो परम सुन्दर समचतुरस्र संस्थानको धारण कर रहे थे तथा वज्रर्षभ नाराच संहननसे जिनका शरीर अत्यन्त सुदृढ़ था, ऐसे अक्षतकाय जिन-बालकके वज्रके समान मजबूत कानोंको इन्द्र वज्रमयी सूचीकी नोंकसे किसी तरह वेध सका था ॥१७५-१७६॥ तदनन्तर कानोंमें पहनाये हुए दो कुण्डलोंसे भगवान् उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कि सदा सेवा करनेवाले दो सूर्योंसे जम्बूद्वीप सुशोभित होता है ॥१७७॥ भगवान्की चिकनी एवं नीली चोटीपर धारण किया पद्मराग मणि, ऐसा वर्णोत्कर्षको प्राप्त हो रहा था मानो इन्द्रनील मणिके ऊपर ही धारण किया गया हो ॥१७८॥ भगवान्के ललाट पटपर बनायी हुई सफेद चन्दनकी खौर, सन्ध्याके पीले बादलोंके बीच वर्तमान अर्धचन्द्रकी रेखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥१७९॥ उत्तम रत्नोंसे खचित स्वर्णमय बाजूबन्दोंसे सुशोभित उनकी दोनों कोमल भुजाएँ फणाके मणियोंसे सहित दो बाल सर्पोंके समान जान पड़ती थीं ॥१८०॥ उत्तम मणिमय कड़ोंसे जिनकी शोभा बढ़ रही थी ऐसी उनकी दोनों कलाइयाँ, देवोंसे आश्रित रत्नाचलके दो तटोंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥१८१॥ जिसमें बड़े-बड़े मोती लगे हुए थे ऐसे सुन्दर हारसे उनका वक्षःस्थल उस तरह सुशोभित हो रहा था जिस तरह कि झरनेसे किसी पर्वतका उत्तम

तट सुशोभित होता है ॥१८२॥ देदीप्यमान रत्नोंसे निर्मित प्रालम्ब सूत्रसे भगवान् उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कि सुन्दर कल्पलतासे वेष्टित कल्पवृक्ष सुशोभित होता है ॥१८३॥ रंग-बिरंगे वस्त्रके ऊपर स्थित कटिसूत्रसे भगवान्‌की कटि ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघके ऊपर स्थित बिजलीकी किरणसे शोभित किसी पर्वतकी तटी ही हो ॥१८४॥ जिनमें रुनझुन करनेवाले मणिमय आभूषण पहनाये गये थे, ऐसे उनके दोनों चरण परस्पर वार्तालाप करते हुएके समान जान पड़ते थे ॥१८५॥ रत्न-जटित स्वर्णमय मुदरियोंसे वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो अपनी अंगुलियोंसे टपकते हुए अत्यधिक सौन्दर्यकी रक्षाके निमित्त उनपर मुद्रा (मुहर) ही लगा दी हो ॥१८६॥ पहले तो भगवान्‌पर चन्दनका लेप लगाया और उसके ऊपर केशरके तिलक लगाये गये जिससे वे सन्ध्याकालके पीले-पीले मेघखण्डोंसे युक्त स्फटिकके पर्वतके समान सुशोभित होने लगे ॥१८७॥ स्वच्छ एवं हंसमालाके समान उज्ज्वल उत्तरीय वस्त्रको धारण किये हुए भगवान् शुभ आकारवाले, शरद्‌ऋतुके निर्मल मेघके समान जान पड़ते थे ॥१८८॥ उस समय माला बनानेके कौशल-में अत्यन्त निपुण देवांगनाओंके द्वारा सन्तानक, पारिजात आदि देवलोकके वृक्षोंसे उत्पन्न पुष्पोंसे, जल-स्थल सम्बन्धी नाना प्रकारके शुभ सुगन्धित पुष्पोंसे तथा भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनके पुष्पोंसे गूँथी हुई मुण्डमालाके अग्रभागको अलंकृत करनेवाली मालासे वे सुमेरुके आभूषण भगवान् अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१८९-१९१॥ वे भगवान् भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक इन चारों वन-स्वरूप सुशोभित थे। भद्रशाल इसलिए थे कि उनकी शाला अर्थात् प्रासाद भद्र अर्थात् उत्तम था। नन्दन इसलिए थे कि जगत्‌के सब जीवोंको अत्यधिक आनन्दित करनेवाले थे, सौमनस इसलिए थे कि उत्तम हृदयको धारण करनेवाले थे और पाण्डुक इसलिए थे कि वे स्वयं यशसे पाण्डुक—सफेद हो रहे थे ॥१९२॥ जो तीनों लोकोंमें विशेषक अर्थात् तिलकके समान श्रेष्ठ थे, जो विशेषकों अर्थात् तिलकोंके द्वारा सुशोभित थे और जो देव-विशेषक अर्थात् विशिष्ट देवोंके द्वारा विभूषित किये गये थे ऐसे भगवान् उस समय विशेष रूपसे शोभायमान हो रहे थे ॥१९३॥ यद्यपि जिन-बालक स्वयं निरंजन—कज्जल (पक्षमें पाप) से रहित थे तो भी उनके मुखपर जो नेत्र थे वे उत्तम अंजन—कज्जलसे अलंकृत थे और सूर्य तथा चन्द्रमाकी दीप्ति एवं कान्तिको जीतनेवाले थे ॥१९४॥ श्री, शची, कीर्ति तथा लक्ष्मी नामक देवियोंने अपने हाथोंसे उन्हें उस तरह अलंकृत किया था कि जिससे वे इन्द्रादिक देवोंका मन हरण करने लगे थे ॥१९५॥ तदनन्तर युगके आदिमें हुए उन प्रधान पुरुषका ऋषभ नाम रखकर इन्द्र आदि देव उनकी इस प्रकार स्तुति करनेके लिए तत्पर हुए ॥१९६॥

हे ऋषभदेव! मति, श्रुति और अवधिज्ञानरूपी श्रेष्ठ नेत्रोंको धारण करनेवाले आप यद्यपि भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए हैं फिर भी आपने तीनों लोकोंको प्रकाशमान कर दिया है ॥१९७॥ हे भगवान्! जब आप मनुष्य-भवमें आनेके लिए सम्मुख ही थे तभी रत्नवृष्टि आदि अद्भुत कार्य दिखाकर आपने जगत्‌को आधीन कर लिया था फिर अब तो आप मनुष्य-भवमें स्वयं उत्पन्न हुए, अब आश्चर्यकी बात ही क्या है? ॥१९८॥ हे नाथ! बहुत बड़े शिखर (पक्षमें मानरूपी शिखर) से युक्त सुमेरु पर्वतको भी आपने अपने पैरके नीचे दबा दिया इसलिए आप समस्त स्वामियोंमें महागुरु—अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। और बालक अवस्थामें भी बालकों-जैसी आपकी चेष्टा नहीं है ॥१९९॥ जो देवरूपी पर्वत अपने चरणोंके अग्रभागसे कभी समस्त पृथिवीका स्पर्श भी नहीं करते वे ही देवरूपी पर्वत अपने मुकुटरूपी ऊँचे शिखरोंसे आपके दोनों चरणोंको धारण कर रहे हैं। सो यह क्या आपकी मन्त्र शक्ति है? या प्रभु शक्ति है? या उत्साह शक्ति है? अथवा कोई दूसरा ही महान् आश्चर्य है? भावार्थ—जो देव, देवत्वके अभिमानमें चूर होकर पृथिवीको तुच्छ समझते हैं वे ही आपको अपने शिरपर धारण कर रहे हैं, इससे आपका सर्वोपरि प्रभाव सिद्ध है ॥२००-२०१॥ हे नाथ!

पौरुषसे वशमें न होनेवाले तीनों जगत्को आपने कैसे विधिके समान एक साथ अपने आधीन कर लिया ? भावार्थ—जिस प्रकार विधि—नियति तीनों जगत्को अपने आधीन किये हुए है उसी प्रकार आपने भी तीनों जगत्को अपने आधीन कर लिया है, परन्तु यह कार्य पुरुषार्थ साध्य नहीं है, यह तो केवल आपकी अचिन्त्य आत्मशक्तिका ही प्रभाव है ॥२०२॥ हे नाथ ! कहाँ तो यह सुकुमारता ? और कहाँ ऐसी कठोरता ? हे प्रभो ! विरुद्ध पदार्थोंका सम्भव आपमें ही दीख पड़ता है ॥२०३॥ मनुष्य, देव और दानवोंके लिए दुर्लभ तथा एक हजार आठ व्यंजन और लक्षणों-से युक्त आपका यह रूप अतिशय शोभायमान हो रहा है ॥२०४॥ हे भगवान् ! आपका शरीर चरम—पर्याय धारण करनेकी अपेक्षा अन्तिम है तथा रूपके अतिशयसे प्रथम है—सर्वश्रेष्ठ है और युद्धके बिना ही समस्त विश्वको नम्रीभूत कर रहा है ॥२०५॥ हे नाथ ! जब आप गर्भमें स्थित थे तभी सबको इष्ट हिरण्य—सुवर्णकी वृष्टि हुई थी इसलिए देव आपको हिरण्यगर्भ (हिरण्यं गर्भे यस्य सः) कहते हैं ॥२०६॥ हे प्रभो ! इस भवसे पूर्व तीसरे भवमें जो तीन ज्ञान प्रकट हुए थे उन्हींके साथ आप यहाँ स्वयं उत्पन्न हुए हैं इसलिए आप स्वयम्भू कहे जाते हैं ॥२०७॥ क्योंकि आप भरत क्षेत्रमें नाना प्रकारकी व्यवस्थाओंके करनेवाले होंगे इसलिए आप विधाता इस सार्थक नामके धारी कहे जाते हैं ॥२०८॥ हे प्रभो ! आप सब ओरसे प्रजाकी रक्षा करते हुए अपूर्व ही प्रभु हुए हैं इसलिए आप प्रजापति कहलाते हैं ॥२०९॥ हे प्रभो ! आपके रहते हुए प्रजा बहुत प्रीतिसे इक्षुरसका आस्वादन करेगी इसलिए आप इक्ष्वाकु कहे जाते हैं ॥२१०॥ आप समस्त पुराण पुरुषोंमें प्रथम हैं, महामहिमाके धारक हैं, स्वयं महान् हैं और यहाँ अतिशय देदीप्यमान हैं इसलिए पुरुदेव कहलाते हैं ॥२११॥ हे भगवान् ! आपने भरतक्षेत्रके आसनपर आरूढ़ होकर तीन लोकका ऐश्वर्य उपार्जित किया है सो अनन्त ऐश्वर्यको धारण करनेवाले आपके लिए यह अत्यन्त तुच्छ बात है—आश्चर्यकी बात नहीं है ॥२१२॥ हे प्रभो ! आप स्वयं बुद्ध होकर अतिशय कठिन तपके करनेवाले हैं तथा उत्तम ज्ञान और बहुत भारी यशके संचेता हैं ॥२१३॥ हे विभो ! पृथिवीपर आप धीर-वीर मुनि बनकर प्राणियोंके लिए कल्याणकारी दान, धर्मकी श्रेष्ठता तथा स्वयं निर्दोष पात्रताको दिखलावेंगे। भावार्थ आप मुनि बनकर लोगोंमें दान-धर्मकी प्रवृत्ति चलावेंगे तथा अपनी प्रवृत्तिसे प्रकट करेंगे कि निर्दोष पात्र कैसे होते हैं ? ॥२१४॥ हे भगवान् ! आप कामरूपी भुजंगको नष्ट करनेके लिए मन्त्र हैं, द्वेषरूपी हाथीको वश करनेके लिए अंकुश हैं तथा मोहरूपी मेघ-पटलके संचारको नष्ट करनेके लिए प्रचण्ड वायु हैं ॥२१५॥ हे स्वामिन् ! आप प्रशस्त तथा निश्चल ध्यानके द्वारा जिसमें मछलियाँ सो रही हैं ऐसे महासरोवरके समान हैं, तथा संवरको धारण कर आप घातिया कर्मरूपी ईंधनको जलानेके लिए अग्निस्वरूप हैं ॥२१६॥ हे नाथ ! तेलसे निरपेक्ष केवल-ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा जिन्होंने समस्त पदार्थोंको प्रकाशित कर दिया है ऐसे मोक्षमार्गके उपदेशक आप पृथिवीपर स्वभावसे ही होंगे ॥२१७॥ हे भगवन् ! इस भारतवर्षमें अठारह कोड़ाकोड़ी सागर तक धर्मका नाम निर्मूल नष्ट रहा अब आप पुनः उसकी सृष्टि करेंगे। भावार्थ—उत्सर्पिणीके चौथे, पाँचवें, छठे और अवसर्पिणीके पहले, दूसरे तथा तीसरे कालके अठारह कोड़ाकोड़ी सागर तक यहाँ भोग-भूमिकी प्रवृत्ति रही इसलिए भोगोंकी मुख्यता होनेसे यहाँ *चारित्ररूप धर्म नहीं रहा, अब आप पुनः उसकी प्रवृत्ति करेंगे ॥२१८॥ हे नाथ ! आप परम बुद्धिमान् हो तथा दिशाभ्रान्तिके कारण जिनकी बुद्धि अन्धी हो रही है ऐसे भव्य प्राणियोंके लिए आप स्वर्ग तथा मोक्षका मार्ग बतलानेके लिए उपदेशक हुए हैं ॥२१९॥ हे नाथ ! इस समय आपके उपदेशसे भव्य जीवोंके समूह, संसारमें स्वर्ग लक्ष्मीके स्वामी तथा मोक्षलक्ष्मीके आश्रय होंगे ॥२२०॥ हे भगवन् ! आपके द्वारा चलाया हुआ मार्ग प्रमाण और नयमार्गके अविरुद्ध है, उसपर चलकर जगत्के प्राणी अपने प्रिय स्थानको प्राप्त करें ॥२२१॥ हे नाथ ! आप तीनों लोकोंका उपकार करनेवाले हैं इसलिए

हितके इच्छुक जीवोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक नमस्कार करने योग्य, स्तुति करने योग्य और ध्यान करने योग्य हैं ॥२२२॥ हे प्रभो ! आपको प्रणाम करनेसे प्राणियोंका काय कृतार्थ हो जाता है, आपके गुणोंकी स्तुति करनेसे उसकी वाणी सार्थक हो जाती है और आपका ध्यान करनेसे उनका मन गुणसहित हो जाता है ॥२२३॥ हे नाथ ! आप मृत्युको नष्ट करनेके लिए मल्ल हैं अतः आपको नमस्कार हो, आप संसारको नष्ट करनेवाले हैं अतः आपको नमस्कार हो, आप बुढ़ापेका अन्त करनेवाले हैं अतः आपको नमस्कार हो, आप कर्मोंको नष्ट करनेवाले हैं अतः आपको नमस्कार हो ॥२२४॥ हे भगवन् ! आप अनन्त ज्ञानके स्वामी हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अनन्त दर्शनके धारक हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अनन्त-बलसे सहित हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अनन्त सुखसे सम्पन्न हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२२५॥ आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप समस्त जीवोंके बन्धु हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप लोकमें अद्वितीय वीर हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप लोकके विधाता हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२२६॥ हे जिन ! आप चन्द्रमारूप हो इसलिए आपको नमस्कार हो, हे जिन ! आप सूर्यस्वरूप हो इसलिए आपको नमस्कार हो, हे जिन ! आप सबका हित करनेवाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो और हे जिन ! आप सबकी रक्षा करनेवाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२२७॥ इस तरह सैकड़ों प्रकारकी स्तुतियोंसे स्तुति कर तथा नमस्कार कर इन्द्र आदि देवोंने उनसे बार-बार यही याचना की कि हे भगवन् ! हमारी उत्तम भक्ति सदा आपमें बनी रहे ॥२२८॥

तदनन्तर शीघ्रगामी देवोंकी सेनासे घिरा हुआ इन्द्र, जिन-बालकको साथ ले मेरु पर्वतसे चला ॥२२९॥ सुवर्ण और कनेरके फूलोंकी राशिके समान पीत शरीरके धारक जिन-बालकको चलते-फिरते रजताचलके सदृश ऐरावत हाथीपर सवार कर वह अयोध्याकी ओर चला ॥२३०॥ जो शत्रुओंके द्वारा अयोध्या थी, ध्वजाओंकी पंक्तियोंसे सुशोभित थी, बाजोंकी ध्वनिसे व्याप्त थी तथा अपनी सेनाके समान जान पड़ती थी ऐसी अयोध्यामें पहुँचकर उसने जिन-बालकको इन्द्राणी-के द्वारा माताकी गोदमें विराजमान कराया। तदनन्तर माता-पिताको नमस्कार कर शीघ्र ही सुन्दर वेषभूषासे युक्त हो ताण्डव-नृत्य करना प्रारम्भ किया। उस समय वह इन्द्र, नृत्य करनेवाली देवांगनाओंसे सुशोभित सुन्दर भुजारूपी वनसे घिरा हुआ था और ताण्डव नृत्यके प्रारम्भमें ही उसने पृथिवीको कम्पायमान कर दिया था ॥२३१-२३३॥ भगवान्के माता-पिता इस नृत्यके दर्शक थे। उनके आगे चिर काल तक आनन्द नाटकका अभिनय कर तथा यथायोग्य उनका सत्कार कर इन्द्र देवोंके साथ अपने स्थानपर चला गया ॥२३४॥ जिनेन्द्र भगवान्के जन्मसे पन्द्रह माह पूर्व प्रतिदिन उनके पिताके घर साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा आकाशसे पड़ती थी ॥२३५॥ 'हमारा पुत्र इन्द्रोंके समूह द्वारा सुमेरु पर्वतपर अभिषेकको प्राप्त हुआ है तथा तीनों लोकोंका स्वामी है' यह जानकर उस समय अतिशय उदार राजा नाभिराज और मरुदेवी महान् आनन्दके वशीभूत हो स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हुए ॥२३६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि भगवान् वृषभदेवके स्वर्गावतार और जन्माभिषेक इन दो कल्याणकोंके इस वर्णनको जो भक्तिपूर्वक सदा पढ़ता है, अथवा जो सुनता है वह इस संसारमें जिन-सूर्यके ही समान कल्याणको प्राप्त होता है ॥२३७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें भगवान् ऋषभदेवके जन्माभिषेकका वर्णन करनेवाला आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥८॥

□

सर्ग- ६

अथानन्तर इन्द्रके द्वारा हाथके अँगूठेमें स्थापित अमृतको पीते तथा माता-पिताके नेत्रोंके लिए अमृतरूप आहार प्रदान करते हुए भगवान् जिनेन्द्र दिनोंदिन बढ़ने लगे ॥१॥ प्रतिदिन बढ़नेवाले जिन-बालकरूपी चन्द्रमाके देखनेसे संसारके समस्त प्राणियोंका आनन्दरूपी सागर वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥२॥ यद्यपि भगवान्का बालक्रीड़ारूपी अमृतरस पिया जाता था और सबके लिए निरन्तर सुलभ भी था तो भी वह मनुष्योंके नेत्रोंकी तृप्तिके लिए पर्याप्त नहीं था। भावार्थ— भगवान्की बालक्रीड़ा देखकर मनुष्योंके नेत्र सन्तुष्ट नहीं होते थे ॥३॥ जिन-बालक, इन्द्रके द्वारा भेजे हुए, हितकारी एवं अपने ही प्रतिबिम्बके समान दिखनेवाले देव-बालकोंके साथ मनोहर क्रीड़ा करते थे ॥४॥ भगवान्का कोमल बिस्तर, कोमल आसन, वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन, भोजन, वाहन तथा यान आदि सभी वस्तुएँ देव निर्मित थीं ॥५॥ इन्द्रकी आज्ञानुसार अवस्था तथा ऋतुके अनुकूल वस्तुओंसे भक्तिपूर्वक भगवान्की सेवा करनेवाला धनद–कुबेर वास्तवमें ही धनद–धनको देनेवाला था ॥६॥ अपने सहज मित्रोंके समान स्वच्छ एवं दिव्य कलारूप गुणोंसे युक्त तथा यौवनसे परिपूर्ण जिनेन्द्र चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७॥ ऊँचे कन्धोंसे सुशोभित, बाजूबन्दोंसे युक्त गोल तथा उत्तम कलाइयोंसे सहित उनकी दोनों महाभुजाएँ त्रैलोक्यकी लक्ष्मीका आलिंगन करनेके लिए पर्याप्त थीं ॥८॥ भगवान्का विशाल वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नसे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अच्छी तरहसे आलिंगित राज्यलक्ष्मीके स्तनके अग्रभागसे ही पीड़ित हो ॥९॥ जिनके पैर और जंघाएँ अच्छी तरह मिली हुई थीं, जिनके घुटने मांसपेशियोंमें भीतर छिपे हुए थे और जो वक्षःस्थलरूप महलके आधारभूत स्तम्भोंके समान जान पड़ते थे ऐसे उनके दोनों ऊरुओंकी शोभा बहुत चढ़ी-बढ़ी थी ॥१०॥ भगवान्के छत्राकार शिरपर काले घुँघराले बालोंका समूह ऐसा जान पड़ता था मानो सुमेरुके ऊँचे शिखरपर इन्द्रनील मणियोंका समूह ही रखा हो ॥११॥ उनके ललाट, नाक, सुन्दर कानोंपर लगे हुए नील कमलोंकी नाल, और डोरी चढ़े धनुषकी समानता करनेवाली भौंहोंकी शोभा वचन मार्गको उल्लंघन कर चुकी थी ॥१२॥ तीनों लोकोंमें चन्द्रमा अपनी चाँदनीसे रात्रिमें ही आनन्द उत्पन्न करता है और सूर्य अपनी दीप्तिसे दिनमें ही लोगोंको आनन्द पहुँचाता है परन्तु भगवान्का मुख दिन-रातके भेदके बिना निरन्तर सबको आनन्द पहुँचाता था अतः वह न तो चन्द्रमाकी चाँदनीके समान था और न सूर्यकी दीप्तिके ही सदृश था ॥१३॥ उनके कानों तक लम्बे नेत्र कमलपत्रके समान थे और हथेलियां पदतल और अधरोष्ठ महावरके रंगके समान लाल थे ॥१४॥ शुद्ध मोतियोंके समूहसे बनी हुईके समान अत्यन्त चमकदार एवं ऊँचे-नीचे विन्याससे रहित उनकी दाँतोंकी पंक्ति कुन्दपुष्पकी शोभा धारण कर रही थी ॥१५॥ नौ सौ व्यंजन, और एक सौ आठ लक्षणोंसे सहित, पांच सौ धनुष ऊँचे एवं हेमाचल— सुमेरुके समान उनके शरीरकी जो शोभा थी उस सबको यदि सैकड़ों करोड़ इन्द्र भी एक साथ कहना चाहें तो भी लेशमात्र नहीं कह सकते ॥१६-१७॥

जब भगवान् पूर्ण युवा हुए तब तीनों लोकोंकी अद्वितीय सुन्दरी प्रौढ़ यौवनवती नन्दा और

सुनन्दाके साथ उनका विधिपूर्वक विवाह हुआ और उनके साथ वे क्रीड़ा करने लगे ।।१८।। गुच्छोंके समान स्तनोंको धारण करनेवाली उन गौरांगी एवं नवयौवनवती नन्दा और सुनन्दाके बीचमें भगवान् ऐसे जान पड़ते थे मानो अंगमें लगी हुई दो लताओंके बीचमें संसारके कल्पवृक्ष ही हों ।।१९।। संसारमें न वह कान्ति थी, न दीप्ति थी, न सम्पत्ति थी, और न वह कला ही थी जो भगवान् ऋषभदेव और नन्दा-सुनन्दाको प्राप्त नहीं थी फिर उनके सुखका क्या वर्णन किया जाये ? ।।२०।। नन्दाने भरतक्षेत्रको आनन्दित करनेवाले भरत नामक चक्रवर्ती पुत्रको और ब्राह्मी नामक पुत्रीको युगल रूपमें उत्पन्न किया ।।२१।। और सुनन्दा नामक दूसरी रानीने महाबाहुबलसे युक्त बाहुबली नामक पुत्र तथा संसारमें अतिशय रूपवती सुन्दरी नामक पुत्रीको जन्म दिया ।।२२।। भरत और ब्राह्मीके सिवाय भगवान्‌की सुनन्दा रानीके वृषभसेनको आदि लेकर अंठानबे पुत्र और हुए। उनके ये सभी पुत्र चरमशरीरी थे ।।२३।। भगवान्‌ने अतिशय बुद्धिसे सम्पन्न अपने समस्त पुत्रोंके साथ-साथ ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनों पुत्रियोंको भी अक्षर, चित्र, संगीत और गणित आदि कलाओंके सागरमें प्रविष्ट कराया था। भावार्थ—अपने समस्त पुत्र-पुत्रियोंको उन्होंने विविध कलाओंमें पारंगत किया था ।।२४।।

अथानन्तर किसी समय बहुत भारी व्यथासे युक्त समस्त प्रजा, राजा नाभिराजसे प्रेरित हो एक साथ भगवान् वृषभदेवके पास पहुँची और स्तुतिपूर्वक प्रणाम कर कहने लगी ।।२५।। हे प्रभो ! पहले, कल्पवृक्ष प्रजाकी आजीविकाके साधन थे, फिर उनके नष्ट होनेपर स्वयं ही जिनसे रस चू रहा था ऐसे इक्षु वृक्ष साधन हुए ।।२६।। हे प्रजानाथ ! उन दिव्य इक्षु वृक्षोंके रससे प्रजा इतनी सन्तुष्ट हुई और आपके प्रतापने उसकी ऐसी रक्षा की कि उसने कल्पवृक्षोंको दूरसे ही भुला दिया ।।२७।। परन्तु इस समय वे इक्षुवृक्ष छिन्न-भिन्न होनेपर भी रस नहीं देते हैं सो ठीक ही है क्योंकि समयके प्रभावसे कोमल भी कठोरताको प्राप्त हो जाते हैं ।।२८।। यद्यपि फलोंके भारसे झुके हुए नाना प्रकारके तृण दिखाई देते हैं परन्तु हम लोग नहीं जानते कि इनसे अन्न कैसे प्राप्त किया जाता है ? ।।२९।। घटके समान स्थूल स्तनोंको धारण करनेवाली गायों और भैंसोंके स्तनोंसे भी कुछ झर रहा है सो वह भक्ष्य है या अभक्ष्य यह कहिए ।।३०।। जो सिंह, व्याघ्र तथा भेड़िया आदि पहले कण्ठालिंगन करनेके योग्य थे हे नाथ ! अब वे ही इस समय कुपुत्रोंके समान हम लोगोंको भयभीत कर रहे हैं ।।३१।। इसलिए हे स्वामिन् ! क्षुधाकी तीव्र बाधासे ग्रस्त इस प्रजाको जीवन निर्वाहके उपाय दिखाकर तथा भयसे उसकी रक्षा कर अनुगृहीत कीजिए ।।३२।। तदनन्तर दयालु भगवान्‌ने समस्त प्रजाको भूखसे व्याकुल देख पहले तो दिव्य आहारके द्वारा सबकी पीड़ा दूर की फिर आजीविकाके निर्वाहके लिए सब उपाय तथा धर्म, अर्थ और कामरूप साधनोंका उपदेश दिया ।।३३–३४।। उन्होंने सुखकी सिद्धिके लिए अनेक उपायोंके साथ असि, मषी, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मोंका भी उपदेश दिया।।३५।। तदनन्तर उन्होंने यह भी बताया कि गाय, भैंस आदि पशुओंका संग्रह तथा उनकी रक्षा करनी चाहिए और सिंह आदिक दुष्ट जीवोंका परित्याग करना चाहिए ।।३६।। तदनन्तर भगवान्‌के सौ पुत्रों और प्रजाने कला शास्त्र सीखा, एवं लोगोंने सैकड़ों शिल्पी बनाकर उन्हें अपनाया ।।३७।। जिससे शिल्पिजनोंने भरतक्षेत्रकी भूमिपर सब जगह गाँव, नगर तथा खेट, कर्वट आदिकी रचना की ।।३८।। उसी समय क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण भी उत्पन्न हुए। विनाशसे जीवोंकी रक्षा करनेके कारण क्षत्रिय, वाणिज्य-व्यापारके योगसे वैश्य और शिल्प आदिके सम्बन्धसे शूद्र कहलाये ।।३९।। उस समय असि, मषी आदि छह कर्मोंके द्वारा प्रजाने वास्तविक सुख प्राप्त किया और अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उसने उस युगको कृतयुग कहा ।।४०।। उसी समय इन्द्र सहित समस्त देवोंने आकर तथा भगवान् वृषभदेवका राज्याभिषेक कर प्रजाको परम सुखी किया ।।४१।। उस समय विनयी मनुष्योंसे व्याप्त अयोध्या,

विनीता और साकेता नामसे प्रसिद्ध, भगवान्‌की जन्मपुरी अधिक सुशोभित हो रही थी ॥४२॥ जो इक्ष्वाकु क्षत्रियोंमें वृद्ध तथा जाति व्यवहारके जाननेवाले थे, उन्हें लोकबन्धु भगवान् वृषभदेवने यहाँ रक्षाके कार्यमें नियुक्त किया ॥४३॥ जो कुरु देशके स्वामी थे वे कुरु, जिनका शासन उग्र-कठोर था वे उग्र और जो न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते थे वे भोज कहलाये ॥४४॥ इनके सिवाय प्रजाको हर्षित करनेवाले अनेक राजा और भी बनाये गये। उस समय श्रेयान्स तथा सोमप्रभ आदि कुरुवंशी राजाओंसे यह भूमि अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४५॥ तदनन्तर देवोपनीत दिव्य भोगोंको भोगते हुए भगवान्‌के जन्मसे लेकर तेरासी लाख पूर्व व्यतीत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर किसी समय नृत्य करती हुई इन्द्रकी नीलांजना नामक नर्तकीको देख, मति-ज्ञानका उस ओर उपयोग जानेसे भगवान् ऋषभदेव विरक्त हो गये ॥४७॥ इस संसारमें जो पदार्थ पहले रागके कारण थे वे ही पदार्थ अब अन्तरंग निमित्तके शान्त हो जानेपर शान्तिके कारण हो गये ॥४८॥ जो विषय पहले बुद्धिमें विभ्रम उत्पन्न करनेवाले थे वे ही विषय अब शान्तिके अनुकूल समयके आनेपर शान्तिके उत्पादक हो गये ॥४९॥ जिनकी भोगाभिलाषा दूर हो चुकी थी, तथा चिरकाल तक भोगोंमें आसक्त रहनेके कारण जिनकी आत्मा स्वयं अपने आपसे लज्जित हो रही थी ऐसे भगवान् वृषभदेव अपने मनमें विचार करने लगे कि अहो! संसारके जीवोंकी बड़ी विचित्रता देखो, इस संसारके जीव स्वयं कर्मोंके आधीन हैं और दूसरे जीव उनकी आधीनताको प्राप्त हो रहे हैं ॥५०-५१॥ अभिनयके विविध अंगोंसे युक्त यह नर्तकी समीचीन भावको दिखाती हुई हाव-भाव तथा रसपूर्वक इस अभिप्रायसे अधिक नृत्य कर रही है कि मेरे नृत्यसे भगवान् प्रसन्न होंगे, उनके प्रसन्न होनेपर इन्द्र प्रसन्न होगा और इन्द्रकी प्रसन्नतासे मैं अधिक सुखी हो सकूँगी। परन्तु यह भ्रान्तिवश ऐसा मान रही है ॥५२-५३॥ पराधीन प्राणीको जो सुखोपभोगकी इच्छा है उसे धिक्कार है क्योंकि पराधीन मनुष्यका मन निरन्तर आकुल रहता है ॥५४॥ और अपने आपको स्वतन्त्र माननेवालेका जो सुख है वह भी क्या सुख है? क्योंकि वह भी तो अपने कर्मोंके परतन्त्र है तथा भोगोंकी तृष्णासे उसकी आत्मा व्याकुल रहती है ॥५५॥ आत्माधीन मनुष्यका जो सुख है वह आत्माके ही आधीन होनेसे अन्तातीत है और कर्माधीन मनुष्यका सुख इन्द्रिय-विषयोंके आधीन होनेसे अन्तातीत नहीं है ॥५६॥ जिस प्रकार नदियोंके प्रवाहसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार इस संसारमें मनुष्य सुर तथा असुरोंके सुखोंसे अनन्तकालमें भी जीवकी तृप्ति नहीं हो सकती ॥५७॥ मैं पहले विद्याधरोंका राजा महाबल था, फिर ललितांग देव हुआ, फिर वज्रजंघ राजा हुआ, फिर उत्तरकुरुमें आर्य हुआ, फिर श्रीधर देव हुआ, फिर सुविधि राजा हुआ, फिर अच्युतेन्द्र हुआ, फिर वज्रनाभि हुआ और फिर सर्वार्थसिद्धिका देव हुआ। चिरकाल तक भोगे हुए उन दिव्य भोगोंसे जिसे उस समय तृप्ति नहीं हुई उसे आज भले ही जो सुलभ और अधिक हों इन भोगोंसे क्या तृप्ति हो सकती है? ॥५८-६०॥ इसलिए जो अन्तमें दुःखसे दूषित है ऐसे सांसारिक सुखको छोड़कर मैं मोक्ष-सुखकी प्राप्तिके लिए तपोवनमें प्रवेश करता हूँ ॥६१॥ हाय, मैं मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानोंसे युक्त होकर भी साधारण मनुष्यके समान राज्यमें स्थित रहा; यह मेरी समयकी उपेक्षा ही है अर्थात् मैंने व्यर्थ बीतते हुए समयकी ओर दृष्टि नहीं दी। यथार्थमें समयका उल्लंघन करना कठिन है—जिस समय जो जैसा होनेवाला है वैसा ही होता है ॥६२॥ पूर्व भवोंको जाननेवाले जिनेन्द्र भगवान् जब इस प्रकारका ध्यान कर रहे थे तब ब्रह्मलोकके वासी सारस्वत, आदित्य आदि लौकान्तिक देव यह ज्ञात कर यहाँ आये। वे चन्द्रमाके समान थे अतः आकाशको चन्द्रमाओंसे व्याप्त जैसा करते हुए आये और नमस्कार कर भगवान्‌से बोले ॥६३-६४॥ हे नाथ! ठीक है, जिससे स्वपर कल्याण हो वही कीजिए। धर्म-तीर्थके प्रवर्तनका यही समय है ॥६५॥ हे प्रभो! यह संसार चतुर्गतिरूप महावनमें दिशाभ्रान्त हो रहा है इसे आप

मोक्ष-स्थानमें प्रवेश करानेवाला मार्ग दिखलाइए ॥६६॥ हे प्रभो ! हे जगदीश्वर ! मन्त्रकी तरह चिरकालसे जिसकी परम्परा टूट चुकी है ऐसे मोक्षमार्गका आप फिरसे प्रकाश कीजिए ॥६७॥ हे स्वामिन् ! जो जन्म, जरा, मरण इन तीन दुःखरूपी भँवरोंसे युक्त है, तथा राग, द्वेष, मोह ये तीन दोषरूपी बड़े-बड़े सर्प जिसमें निवास कर रहे हैं ऐसे इस संसाररूपी सागरमें भ्रमण करनेवाले— गोता खानेवाले जीवोंके लिए आप कर्णधार होइए ॥६८॥ हे प्रभो ! आप उपदेशरूपी हाथके द्वारा इस वेगशाली घूमते हुए संसाररूपी महाचक्रसे सबको उतारो—सबकी रक्षा करो ॥६९॥ इस समय सत्पुरुष आपके द्वारा दिखलाये हुए मार्गसे चलकर तथा जन्म सम्बन्धी थकावटको दूर कर नित्य सुखसे सम्पन्न तीन लोकके शिखरपर विश्राम करें ॥७०॥ जिस प्रकार समुद्रके लिए चढ़ाया हुआ जल केवल उसकी पूजाके लिए है उसी प्रकार स्वयं ही प्रतिबोधको प्राप्त हुए भगवान्‌के लिए लौकान्तिक देवोंके वचन केवल पूजाके लिए ही थे। भावार्थ—लौकान्तिक देवोंके उपदेशके पहले ही भगवान् विरक्त हो चुके थे इसलिए उनके वचन केवल नियोग पूर्तिके लिए ही थे ॥७१॥ उसी समय इन्द्रको आदि लेकर चारों निकायके देव आ पहुँचे। उन्होंने भी नमस्कार कर वही कहा जो कि लौकान्तिक देवोंने इनके पूर्व बार-बार कहा था ॥७२॥ देवोंके द्वारा सम्बोधित स्वयंबुद्ध भगवान् ऋषभदेव, उस समय, जिसका कमल-समूह सूर्यकी किरणोंसे खिल उठा है उस महा-सरोवरके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ धीर-वीर सौ पुत्रोंके लिए जिन्होंने पृथिवीका विभाग कर दिया था ऐसे कृतकृत्य भगवान् उस समय, एक हजार किरणोंके लिए अपना तेज वितरण करनेवाले सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७४॥ तदनन्तर देवोंने क्षीर समुद्रके जलसे जिनेन्द्र भगवान्‌का अभिषेक किया, उत्तम गन्धसे लेपन किया और उत्तमोत्तम वस्त्र, आभूषण तथा मालाओंसे उन्हें विभूषित किया ॥७५॥ सभामें विराजमान तथा मणिमय आभूषणोंसे विभूषित देव और राजाओंसे घिरे हुए भगवान् उस समय पूर्व-पश्चिम लम्बे कुलाचलोंसे घिरे हुए सुमेरुके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७६॥

अथानन्तर कुबेरने एक नूतन दिव्य पालकी बनायी जो नामकी अपेक्षा सुदर्शना थी और अत्यधिक शोभासे भी सुदर्शना—सुन्दर थी ॥७७॥ वह पालकी आकाश अथवा उत्तम स्त्रीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार आकाश (ताराभरत्नजातीनां प्रभाभिरतिभास्वरा) तारा और श्रेष्ठ नक्षत्रोंकी प्रभासे अतिशय देदीप्यमान होता है, तथा उत्तम स्त्री नेत्रोंकी पुतलियों और नक्षत्रोंके समान देदीप्यमान रत्नोंकी प्रभासे उज्ज्वल होती है उसी प्रकार वह पालकी भी ताराओंके समान आभावाले रत्नोंकी प्रभासे अतिशय देदीप्यमान थी। जिस प्रकार आकाश (मण्डलाकृतिशुभ्राभ्र-धवलातपवारणा) मण्डलाकार सफेद मेघोंसे उज्ज्वल तथा सन्तापको दूर करनेवाला होता है और उत्तम स्त्री मण्डलाकार सफेद मेघावलीके समान उज्ज्वल और सन्तापको हरनेवाली होती है; उसी प्रकार वह पालकी भी मण्डलाकार सफेद मेघके समान उज्ज्वल छत्रसे युक्त थी ॥७८॥ जिस प्रकार आकाश (चलच्चामरसंघात-हंसमालांशुकोज्ज्वला) चंचल चमरोंके समूहके समान उड़ती हुई हंसमालासे देदीप्यमान तथा उज्ज्वल होता है, और उत्तम स्त्री चंचल चमरोंके समूह तथा हंसपंक्तिके समान सफेद वस्त्रोंसे युक्त होती है, उसी प्रकार वह पालकी भी हंसमालाके समान चंचल चमर और वस्त्रोंसे उज्ज्वल थी। जिस प्रकार आकाश (आदर्श-मण्डलाखण्डदीप्तिदिङ्मुखमण्डला) दर्पण तलके समान अखण्ड दीप्तिसे युक्त दिशाओंसे सहित होता है, और उत्तम स्त्रीका मुखमण्डल दर्पण तलकी अखण्ड दीप्तिसे देदीप्यमान दिशाके समान भास्वर होता है उसी प्रकार वह पालकी भी दर्पणोंके समूहसे समस्त दिशाओंको अखण्ड प्रति-भासित करनेवाली थी ॥७९॥ जिस प्रकार आकाश (बुद्बुदापाण्डुगण्डान्ता) जलके बबूलोंके समान सफेद प्रदेशोंसे युक्त होता है, और उत्तम स्त्रीके कपोल चन्दनकी बिन्दुओंसे सफेद होते

हैं उसी प्रकार उस पालकीके छज्जोंका चौगिर्द प्रदेश भी बुद्‌बुदाकार मणिमय गोलकोंसे सफेद था। जिस प्रकार आकाश (मूर्धचन्द्रालिकाकृतिः) ऊपर विद्यमान चन्द्रमासे युक्त होता है और उत्तम स्त्री मस्तक तथा चन्द्राकार ललाटसे युक्त होती है उसी प्रकार वह पालकी भी ऊपर तनी हुई चांदनीसे सहित थी। जिस प्रकार आकाश (संध्याभ्रखण्डसंरक्त-विस्फुरद्‌विद्रुमाधरा) लाल-लाल चमकते हुए मूँगोंके समान सन्ध्याके लाल-लाल मेघखण्डोंको धारण करता है और उत्तम स्त्रीका अधरोष्ठ सन्ध्याकालीन मेघखण्ड तथा चमकते हुए लाल मूँगेके समान होता है, उसी प्रकार वह पालकी भी सन्ध्याकालीन मेघखण्डके समान लाल चमकदार मूँगाको धारण कर रही थी ॥८०॥ जिस प्रकार आकाश (पतज्जललवस्वच्छमुक्तादशनशोभिता) स्वच्छ मोतियों तथा दाँतोंके समान उज्ज्वल पड़ती हुई जलकी बूँदोंसे शोभित होता है और उत्तम स्त्री पड़ते हुए जलकण तथा उज्ज्वल मोतियोंके समान दाँतोंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार वह पालकी भी पड़ते हुए जलकणोंके समान स्वच्छ मोतियोंके जड़ावसे सुशोभित थी। जिस प्रकार आकाश (शुभ्रकेतुपताकालीलीलाभुजलतोज्ज्वला) सुन्दर भुजलताओंके समान केतुके शुभ विमानपर फहराती हुई पताकाओंकी पंक्तिसे सुशोभित होतो है और उत्तम स्त्री शुभध्वजदण्डसे युक्त पताकाओंकी पंक्तिके समान चंचल भुजलताओंसे उज्ज्वल होती है, उसी प्रकार वह पालकी भी उत्तम ध्वजापताकाओं और सुन्दर भुजाओंकी तुलना करनेवाली लताओंसे सुशोभित थी ॥८१॥ जिस प्रकार आकाश (दिग्नागनासिकाजङ्घारम्भास्तम्भोरुशालिनी) दिग्गजोंकी सूँड़ों और केलाके स्तम्भोंके समान सुशोभित उनकी मोटी-मोटी जंघोंसे अत्यधिक शोभित होता है और उत्तम स्त्री दिग्गजोंकी सूँड़के समान जंघाओं और केलाके स्तम्भोंके समान सुन्दर ऊरुओंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार वह पालकी भी दिग्गजोंकी सूँड़ों और स्त्रियोंकी जंघाओंकी समानता करनेवाले केलेके स्तम्भोंसे अत्यधिक सुशोभित थी। जिस प्रकार आकाश (चित्रस्त्रीतारकालोका) चित्रा नक्षत्रके आलोकसे युक्त होता है, और उत्तम स्त्री चित्रा नक्षत्र तथा ताराके समान देदीप्यमान होती है उसी प्रकार वह पालकी भी चित्रा नक्षत्र और ताराके समान प्रकाशसे युक्त थी। जिस प्रकार आकाश (जगतीजघनस्थला) पृथिवीरूपी मध्यम स्थलसे सहित होती है और उत्तम स्त्री पृथिवीके समान स्थूल नितम्ब स्थलसे युक्त होती है, उसी प्रकार वह पालकी भी मध्यलोकमें विराजमान थी ॥८२॥ जिस प्रकार आकाश (वारिधारास्फुरद्धाराशुम्भत्कुम्भपयोधरा) जलसे भरे एवं पड़ती हुई धारोंसे सुशोभित घड़ोंके समान मेघोंसे युक्त होता है और उत्तम स्त्रीके स्तनकलश जलधाराके समान शोभायमान हारसे सुशोभित रहते हैं उसी प्रकार वह पालकी भी जलधाराके समान सुशोभित हारों—मणिमालाओंसे अलंकृत घड़ोंमें जलको धारण करनेवाली थी—जलसे भरे घड़ोंसे युक्त थी। जिस प्रकार आकाश (तारापुष्पवती रम्या) फूलोंके समान ताराओंसे युक्त एवं मनोहर होता है और उत्तम स्त्री तारोंके समान फूलोंसे युक्त एवं मनोहर रहती है उसी प्रकार वह पालकी भी ताराओंके समान चमकीले फूलोंसे युक्त और मनोहर थी। जिस प्रकार आकाश (सुनक्षत्रबृहत्फला) बड़े-बड़े फलोंके समान उत्तम नक्षत्रोंसे युक्त होता है और उत्तम स्त्री अच्छे नक्षत्रोंके विशाल परिणामसे सहित होती है उसी प्रकार वह पालकी भी उत्तम नक्षत्रोंके समान बड़े-बड़े फलोंसे युक्त थी ॥८३॥ और जिस प्रकार आकाश (सुनीलघनकेशा) केशोंके समान अत्यन्त नीले मेघोंसे युक्त रहता है और उत्तम स्त्री अत्यन्त काले एवं सघन केशोंसे युक्त होती है उसी प्रकार वह पालकी भी सघन केशोंके समान उत्तम नील मणियोंसे खचित थी। ऐसी वह सुदर्शना पालकी कुबेरने इन्द्रके लिए दिखलायी ॥८४॥

अथानन्तर हर्षसे भरे हुए इन्द्रने पालकीपर सवार होनेके लिए भगवान्‌से प्रार्थना की। तब

भगवान् अपने माता-पिता, पुत्र तथा आश्रित परिजनोंसे पूछकर बत्तीस कदम पृथिवीपर पैदल ही चले। उस समय चमर तथा छत्र लेकर इन्द्र उनकी सेवा कर रहे थे ॥८५–८६॥ तदनन्तर लोगोंने हाथ जोड़कर जय-जयकार करते हुए जिन्हें नमस्कार किया था और माता-पिता आदि गुरुजनोंने जिन्हें आशीर्वाद दिया था ऐसे भगवान् ऋषभदेव पालकीपर उस तरह आरूढ़ हुए जिस तरह कि सूर्य उदयकालीन लक्ष्मीपर आरूढ़ होता है ॥८७॥ उस पालकीको पृथिवीसे तो राजाओंने उठाया पर बादमें तैयार खड़े हुए इन्द्रोंने उसे आकाशमें उछलकर इस प्रकार धारण कर लिया जिस प्रकार कि प्रभुकी आज्ञाको शिरसे धारण करते हैं ॥८८॥ तदनन्तर दिशाओंको मुखरित करनेवाले शंख, भेरी, बाँसुरी, वीणा तथा जोरदार शब्द करनेवाले नगाड़े शब्द करने लगे ॥८९॥ उस समय ऊपर आकाश तो देवोंकी नाना प्रकारकी चतुरंग सेनाओंसे व्याप्त था और नीचे पृथिवीतल साथ-साथ चलनेवाले अनेक राज—क्षत्रियों तथा उग्रवंशी, भोजवंशी आदि राजाओंसे व्याप्त था ॥९०॥ ऊपर आकाशमें नृत्य करनेवाली अप्सराओंके शृंगारादि नौ रस प्रकट हो रहे थे और नीचे पृथिवीतलपर भगवान्के द्वारा छोड़े हुए माता-पिता आदिके शोक-रस प्रकट हो रहा था ॥९१॥ अनेक देवोंसे सेवित भगवान् अशोक, चम्पा, सप्तपर्ण, आम और वट वृक्षोंसे व्याप्त सिद्धार्थ नामक वनमें पहुँचे ॥९२॥ सिद्धि अर्थात् मोक्षकी इच्छा करनेवाले भगवान् वहाँ पालकीसे उस प्रकार उतरे जिस प्रकार कि पहले स्वर्ग लोकके शिखरपर स्थित सर्वार्थसिद्धि विमानसे उतरे थे ॥९३॥ तदनन्तर भगवान्ने प्रजासे कहा कि हे प्रजाजनो ! तुम लोग शोक छोड़ो क्योंकि प्राणियों का अन्य वस्तुओंकी बात जाने दो, अपने शरीरके साथ भी जो संयोग है वह वियोगके ही लिए है। भावार्थ—जब शरीरका भी वियोग हो जाता है तब अन्य वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ? ॥९४॥ अतिशय चतुर भरतको मैंने आप लोगोंकी रक्षा करनेमें नियुक्त किया है। आप लोग निरन्तर अपने धर्ममें स्थिर रहते हुए उसकी सेवा करें, वह आपकी सेवाका पात्र है ॥९५॥ भगवान्के ऐसा कहनेके बाद प्रजाने उनकी पूजा की। प्रजाने जिस स्थानपर भगवान्की पूजा की वह स्थान आगे चलकर पूजाके कारण प्रयाग इस नामको प्राप्त हुआ ॥९६॥ प्रभुने कुटुम्बके लोगों तथा नम्रीभूत राजाओंसे पूछकर अन्तरंग, बहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहका त्यागकर संयम धारण कर लिया ॥९७॥ इन्द्रने पंचमुट्ठियोंके द्वारा उखाड़े हुए भगवान्के शिरके बालोंको उठाकर पिटारेमें रख लिया और 'इन्हें भगवान्ने शिरपर धारण किया था।' यह विचारकर बड़े आदरसे उन्हें क्षीर-समुद्रमें क्षेप दिया ॥९८॥ इस प्रकार दीक्षाकल्याणक होनेपर समस्त सुर और असुर भगवान्‌की पूजा कर यथायोग्य अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। साथ ही चिन्तासे भरे हुए मनुष्य भी नमस्कार कर यथायोग्य अपने-अपने स्थानोंपर गये ॥९९॥ उस समय इक्ष्वाकु, कुरु, उग्र तथा भोज आदि वंशोंके चार हजार बड़े-बड़े मुख्य स्वामिभक्त राजाओंने भी नग्नदीक्षा धारण की ॥१००॥

परीषहोंको सहनेवाले, महातपस्वी, चार ज्ञानके धारक और पर्वतके समान निश्चल भगवान् छह माहका कायोत्सर्ग लेकर मौनसे विराजमान हुए ॥१०१॥ साथ ही वे अन्य राजा भी जो परमार्थको नहीं जानते थे मात्र स्वामीकी इच्छानुसार काम करना चाहते थे, निश्चल हो कायो-त्सर्गसे स्थित हो गये ॥१०२॥ जब उनकी आत्मा भूख और प्याससे व्याकुल हो उठी तब वे विचार करने लगे कि हमारे नौकर, पुत्र अथवा स्त्रियाँ हमारे लिए भोजन लेकर आज-कलमें आते ही होंगे ॥१०३॥ तदनन्तर कच्छ, महाकच्छ और मरीचि जिनमें अग्रसर थे, ऐसे वे कृत्रिम मुनि छह माहके भीतर ही क्षुधा आदि कठिन परीषहोंसे भ्रष्ट हो गये ॥१०४॥ भूखके कारण जिनके शरीर अत्यन्त कृश हो गये थे ऐसे इन कृत्रिम मुनियोंकी अस्थिर दृष्टि घूमने लगी तथा ऐसी जान पड़ने लगी मानो आगे होनेवाली भ्रान्त दृष्टि (भ्रान्त श्रद्धान) का पूर्वाभ्यास ही कर रही

हो ॥१०५॥ कितने ही लोगोंने अन्धकारका समूह देखा अर्थात् उनको आँखोंके सामने अन्धकार ही अन्धकार छा गया, उनके नेत्र क्षुधाके कारण चन्द्रमाके समान पाण्डुवर्ण हो गये तथा उन्हें उस अन्धकारके बीच आकाशमें एकके बदले सौ चन्द्रमा दिखाई देने लगे ॥१०६॥ कितने ही लोगोंने समस्त संसारको शब्दमय सुना अर्थात् उनके कानोंके सामने शब्द ही शब्द सुनाई पड़ने लगा जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे 'शब्दरूप लक्षणसे सहित आकाश हैं' इस वैशेषिक मतके शास्त्रका ही चिन्तन कर रहे थे ॥१०७॥ कितने ही लोग जमीनपर गिरने लगे तथा उन्हें कुछ भी चेत नहीं रहा जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे आत्माको जड़-स्वभाव करनेके लिए ही उद्यत हुए हों अर्थात् जड़स्वभाव है यह चार्वाकका मत ही प्रचलित करना चाहते हों ॥१०८॥ कितने ही लोगोंको चेत (होश) तो था पर वे स्वच्छन्दता-पूर्वक रहनेके लिए निरीह वृत्तिके कारण अपने आपकी सांख्यमत सम्मत पुरुष-जैसी स्थिति बतलाने लगे ॥१०९॥ जिनकी बुद्धि निरन्वय नष्ट हो गयी थी तथा जो मूर्च्छासे दुःखी हो रहे थे, ऐसे कितने ही लोगोंको आगे-पीछेका कुछ भी स्मरण नहीं रहा, जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे बौद्धोंके क्षणभंगवादका ही अनुकरण कर रहे हों ॥११०॥

इस प्रकार भूख-प्यास आदिसे जिनकी बुद्धि अत्यन्त व्याकुल हो गयी थी ऐसे वे सब कायोत्सर्ग छोड़कर धीरे-धीरे भागने लगे ॥१११॥ सो ठीक ही है क्योंकि जबतक अपने शरीरकी सन्तोषपूर्ण स्थिति रहती है तभी तक मनुष्य स्वामी, कुल, पुत्र और मर्यादाका अनुसरण करता है ॥११२॥ वे राजा नग्नरूपमें रहकर ही फल-मूल आदिका भक्षण तथा जलका पीना और उसमें प्रवेश करना आदि कार्य स्वेच्छासे करनेके लिए उद्यत हुए तो उसी समय आकाशमें देवोंके यह शब्द प्रकट हुए कि स्वयं ग्राहके विरोधी इस नग्नवेषसे आप लोग ऐसी प्रवृत्ति न करें॥११३-११४॥ तदनन्तर देवोंके उक्त शब्द सुनकर वे राजा बड़े लज्जित हुए और भयभीत हो दिशाओंकी ओर देख उन्होंने कुशा, चीवर तथा वल्कल आदिसे नग्नवेश बदल लिया अर्थात् कुशा, चीवर एवं वृक्षोंकी छाल आदि धारण कर नग्न वेष छोड़ दिया ॥११५॥ इसके बाद निश्चिन्ततासे अधम उदरकी पूर्ति कर जब वे स्वस्थ हुए तब कार्यका विचारकर परस्पर कहने लगे सो ठीक ही है क्योंकि चित्तके स्वस्थ होनेपर ही बुद्धि उत्पन्न होती है—विचारशक्ति आती है ॥११६॥

वे कहने लगे कि भगवान्ने समस्त भोगोंको छोड़ दिया है सो इसमें इनका क्या अभिप्राय है यह ज्ञात किया जाये। ऐहिक फलके लिए तो इनकी यह अतिशय कठिन चेष्टा नहीं हो सकती क्योंकि इन्होंने सम्पत्तियोंको विपत्तियोंके समान देखा है, रति और अरतिको नष्ट कर विषयोंको विषके समान समझा है, वस्त्राभूषणको दुःखके समान छोड़ दिया है, शिरके बालोंको शत्रुओंकी तरह अपने हाथसे जड़से उखाड़ दिया है और आहार-पानीका परित्याग कर दिया है इसलिए शरीरको भी छोड़ा हुआ समझना चाहिए। इससे जान पड़ता है कि इन्हें कोई पारलौकिक फल ही अभिप्रेत होगा ॥११७–१२०॥ जबकि भगवान् नैष्ठिक व्रत लेकर इस प्रकार विराजमान हैं—कुछ बोलते-चालते नहीं हैं, तब इस स्थितिमें हमें क्या करना चाहिए, इस एक बातको हम लोग इस समय बिलकुल नहीं जानते॥१२१॥ हम लोग इनके साथ अपने देशसे निकल आये हैं इसलिए अब लौटकर जाना तो हमारी शोभाको नहीं बढ़ाता। साथ ही लौटकर जाना अनेक बाधाओं-कष्टोंसे भरा है ॥१२२॥ यदि हम भगवान्की चर्याका आचरण करनेके लिए समर्थ नहीं हैं तो क्या वनवासीपने-की सदृशतासे हम इनका अनुसरण नहीं कर सकते ? भावार्थ—यदि हमसे इनके समान कुछ तपश्चर्या नहीं बनती है तो इनके समान वनमें तो रह सकते हैं ॥१२३॥ आपसमें ऐसा निश्चय कर वे भ्रष्ट राजा, पके पत्र और फलोंको खाते हुए जटा और वृक्षोंकी छाल धारण कर वनवासी तापस बन गये ॥१२४॥ उनमें मरीचि कुमार नामका जो भगवान्का पोता था, प्याससे उसका शरीर

सन्तप्त हो रहा था, उसने भ्रान्तिवश मरुस्थलकी मरीचिकाको ही जल समझ लिया तथा उसमें लोटने लगा सो जिस प्रकार जलमें प्रवेश करना सन्तप्त हाथीके शरीरको शान्ति पहुँचाता है उसी प्रकार कोमल मिट्टीने उसके शरीरको कुछ शान्ति पहुँचायी ॥१२५–१२६॥ मरीचि बड़ा मानकषायी था इसलिए उसने परिव्राजकोंके व्रतको पोषण करनेवाला गेरुआ वेष स्वीकार कर लिया । वह एक दण्ड अपने साथ रखता था, स्नानादिसे अपनेको पवित्र मानता था तथा शिर मुड़ाये रखता था ॥१२७॥ इधर जो भोगोंकी याचनासे अतिशय दुःखी थे, भोगोंके अभावके कारण उद्विग्न थे, तथा दुःखमय स्थितिमें स्थित थे, ऐसे नमि और विनमि दोनों राजपुत्र भगवान्‌के चरणोंमें आ लगे ॥१२८॥ उसी समय जिसका आसन कम्पायमान हुआ था ऐसा धरणेन्द्र अवधिज्ञानसे यह समाचार जान जिनेन्द्रकी भक्तिपूर्वक वहाँ आया, सो ठीक ही है क्योंकि मौन सब कार्योंको सिद्ध करनेवाला है ॥१२९॥ दिव्यरूपको धारण करनेवाले उस धरणेन्द्रने उन दोनों भाइयोंको अपने भाइयोंके समान विश्वास दिलाकर महाविद्या प्रदान की सो ठीक ही है क्योंकि विद्याकी प्राप्ति गुरुसे ही होती है ॥१३०॥ और जो विद्याधरोंका निवासभूत विजयार्ध नामका पर्वत है वह भी उन दोनोंने धरणेन्द्रसे प्राप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि गुरुसेवासे क्या नहीं होता है ? ॥१३१॥ उनमें नमि दक्षिणश्रेणीके पचास नगरोंका स्वामी हुआ और विनमि उत्तर श्रेणीके साठ नगरोंका अधिपति हुआ ॥१३२॥ नमि अपने बन्धुजनोंके साथ रथनूपुर नामक श्रेष्ठ नगरमें निवास करने लगा और विनमि सार्थक नाम धारण करनेवाले नभस्तिलक नामक नगरमें रहने लगा ॥१३३॥ विद्याधर लोग उन धीर-वीर राजाओंको पाकर अपने-आपको संसारसे ऊपर मानने लगे ॥१३४॥

अथानन्तर—यद्यपि धीर-वीर भगवान् परीषहरूपी अग्निको बुझानेवाले प्रशस्त ध्यान-रूपी सागरमें प्रवेश कर प्रतिमायोगसे विराजमान थे—छह माहसे प्रतिमायोग धारण करनेपर भी आहारके बिना उन्हें कुछ भी आकुलता नहीं थी तो भी 'मोक्ष प्राप्त करनेके लिए कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले जो अन्य मनुष्य वर्तमानमें हैं तथा आगे होंगे आहारके अभावमें उनकी शक्ति क्षीण हो जायेगी' ऐसा मानकर वे विचार करने लगे कि क्षमा आदि लक्षणोंसे युक्त धर्म-पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमें मुख्य है, वही मोक्ष, काम और अर्थका साधन है । धर्मका साधन शरीर है और शरीर प्राणोंका आधार होनेसे प्राणों-पर निर्भर है । प्राणी प्राणोंसे अधिष्ठित है अर्थात् प्राणोंके द्वारा जीवित है और प्राण अन्नसे अधिष्ठित हैं अर्थात् अन्नसे ही प्राण सुरक्षित रहते हैं । इसलिए परम्परासे अन्न भी धर्मका साधन है । अल्पशक्तिके धारक मनुष्योंकी स्थिति प्रधान पुरुषार्थ—धर्ममें बनी रहे इसमें अन्न भी कारण है । अतः इस भरत क्षेत्रमें शासनकी स्थिरताके लिए मैं आहारके इच्छुक मनुष्योंको निर्दोष आहार ग्रहण करनेकी विधि दिखाता हूँ ॥१३५–१४०॥ ऐसा विचारकर, यद्यपि भगवान् क्षुधादिके दूर करनेमें स्वयं समर्थ थे तो भी परोपकारके अर्थ उन्होंने गोचर-वृत्तिसे अन्न-ग्रहण करनेकी इच्छा की ॥१४१॥ तदनन्तर छह महीनेके अनशनके बाद जिन्होंने प्रतिमा योगका संकोच कर लिया था ऐसे भगवान् आदि जिनेन्द्र अपने चरणोंके निक्षेपसे पृथिवीको पल्लवित करते हुए आहारके लिए चले ॥१४२॥ केवलज्ञान प्राप्त होने तक उन्होंने मौन व्रत ले रखा था, मार्गमें चलते समय उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लम्बी थीं, वे न अधिक शीघ्र और न अधिक धीमी चालसे सावधानी-पूर्वक चल रहे थे ॥१४३॥ पृथिवीपर चान्द्री चर्यासे विचरण करते हुए वे मध्याह्नके समय उत्तम नगर तथा ग्रामोंकी गृह-पंक्तियोंमें प्रजाके लिए दर्शन देते थे ॥१४४॥ जिस प्रकार नूतन उगे हुए चन्द्रमाको देखती हुई प्रजा सन्तुष्ट नहीं होती है उसी प्रकार उस तरह भ्रमण करते हुए सौम्य शरीरके धारक भगवान्‌को ऊपरकी ओर मुख उठा-उठाकर देखती हुई प्रजा सन्तुष्ट नहीं होती

थी ॥१४५॥ भगवान्‌को देख अनेक लोग ऐसा तर्क करते थे कि क्या यह राहुके द्वारा ग्रसे जानेके भयसे नक्षत्र और सूर्य मण्डलको छोड़कर चन्द्रमा ही पृथिवी तलपर आ गया है ? अथवा क्या पहाड़, महल और वृक्षोंकी छायारूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए यह सूर्य ही पृथिवीपर अवतीर्ण हुआ है ? ॥१४६-१४७॥ अहो ! ये भगवान् कान्तिके परम स्थान हैं, दीप्तिके अद्वितीय धाम हैं, अहो ! ये उत्तम शीलके मानो पर्वत हैं, अहो ! ये गुणोंके महासागर हैं । ये सुन्दर रूपकी परम सीमा हैं, वे लावण्यकी उत्कृष्ट भूमि हैं, माधुर्यकी परम अवस्था हैं और धैर्यकी उत्कृष्ट रीति हैं ॥१४८-१४९॥ अरे भव्यजनो ! आओ, आओ नेत्रोंको सफल करो । देखो, नग्न-दिगम्बर होनेपर भी इनकी कैसी परम सुन्दरता है ? ॥१५०॥ इस प्रकार आपसमें वार्तालाप करते तथा बहुत-बहुत बड़ी भीड़के साथ इकट्ठे हुए नर-नारी आश्चर्यसे व्याकुल हो भगवान्‌के दर्शन कर रहे थे ॥१५१॥ उस समय कोई चित्र-विचित्र वस्त्र, कोई तरह-तरहके आभूषण और कोई उत्तमोत्तम गन्ध तथा मालाएँ भगवान्‌के आगे समर्पित करते थे ॥१५२॥ कितने ही अज्ञानी लोग तत्काल सजाये हुए घोड़े, ऊँचे-ऊँचे हाथी, रथ तथा अन्य वाहन उनके आगे रखते थे ॥१५३॥ लोगोंने कभी किसीको आहार देते हुए न देखा था और न सुना था और न वे भगवान्‌के अभिप्रायको ही जानते थे इसलिए किसीको आहार देनेका विकल्प नहीं उठा ॥१५४॥ जिस प्रकार लोगोंको जागृत करनेके लिए उगे हुए सूर्यका जगत्‌में भ्रमण करना उसके खेदका कारण नहीं है उसी प्रकार लोगोंको प्रतिबुद्ध करनेके लिए तत्पर जिनेन्द्र भगवान्‌का जगत्‌में जहाँ-तहाँ भ्रमण करना उसके खेदका कारण नहीं था ॥१५५॥ इस प्रकार जिनकी बुद्धिमें रंचमात्र भी विषाद नहीं था ऐसे भगवान् प्रजाके द्वारा पूजित होते हुए लगातार छह माह तक आगमके अनुसार क्रमसे पृथिवीपर विहार करते गये ॥१५६॥तदनन्तर विहार करते-करते भगवान् हस्तिनागपुर नगर पहुँचे । वह नगर जिनसे सदा दान (मद) चूना रहता था और जो मानो इस बातकी सूचना ही दे रहे थे कि यहाँ दान (त्याग) की प्रवृत्ति होगी ऐसे हाथियोंसे सहित था ॥१५७॥ उस नगरके राजा सोमप्रभ और श्रेयान्स थे । उन दोनों भाइयोंने उसी रातमें चन्द्रमा, इन्द्रकी ध्वजा, मेरु पर्वत, बिजली, कल्पवृक्ष, रत्नद्वीप, विमान और पुरुषोत्तम भगवान् ऋषभदेव ये आठ स्वप्न देखे ॥१५८-१५९॥ प्रातःकाल दोनों भाई सभामें बैठे और आश्चर्यसे चकित हो विद्वत्समूहके साथ इन्हीं उत्तम स्वप्नोंके फलकी चर्चा करने लगे ॥१६०॥ विद्वानोंने उक्त स्वप्नोंका फल इस प्रकार बताया कि कुमुदबन्धु—चन्द्रमाके समान पृथिवीपर आनन्दको बढ़ानेवाला तथा उत्कृष्ट कान्तिको धारण करनेवाला हमारा कोई बन्धु आज ही यहाँ आवेगा । वह उत्तम यशरूपी ध्वजाका धारक होगा, संसारमें समस्त कल्याणोंका पर्वत होगा, जगत्‌के मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिए कल्पवृक्षरूप होगा, बिजलीके समान क्षण-भर ही अपना शरीर दिखलानेवाला होगा, धर्मरूपी रत्नोंका महाद्वीप होगा और वैमानिक जगत्—स्वर्ग लोकसे च्युत हुआ होगा । भगवान् ऋषभदेवने जिस प्रकार स्वप्नमें दर्शन दिया है क्या आज वे स्वयं ही दर्शन देंगे—स्वयं यहाँ पधारेंगे । नगर तथा राजभवनकी जो शोभा है वह आज ही दिखाई दे रही है ऐसी शोभा पहले कभी नहीं दिखी । तथा दिशाओंकी निर्मलता भी शीघ्र ही कल्याणकी सूचना दे रही है ॥१६१-१६४॥ इस प्रकार स्वप्नोंका फल जानकर तथा भीतर और बाहर अनेक मनुष्योंको नियुक्त कर जिनेन्द्र भगवान्‌की चर्चा करते हुए दोनों समर्थ भाई जबतक बैठे तबतक मध्याह्न कालके फूँके हुए शंखका जोरदार शब्द हुआ । वह शंखका शब्द ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र भगवान्‌का आगमन होनेवाला है—इस शुभ समाचारसे उन दोनोंको बढ़ा ही रहा हो ॥१६५-१६६॥

तदनन्तर दोनों भाई स्नान कर तैयार हुए और परिजनोंने उनके लिए दिव्य आहारसे

मनोहर उत्तम भोजनकी विधि की - भोजनसे थालियां सजायी। मणिमय फर्शके ऊपर दोनों भाई भोजनके लिए बैठे ही थे कि उसी समय सिद्धार्थ नामका द्वारपाल शीघ्रतासे आकर इस हर्षवर्धक समाचारसे उन्हें वृद्धिगत करने लगा ॥१६७–१६८॥ कि समुद्रान्त पृथिवीका त्याग करते समय इन्द्रादिक देव जिनकी पालकीके उठानेवाले थे। कच्छ, महाकच्छ आदि पूर्व पुरुषोंके भ्रष्ट हो जानेपर जो अकेले ही तपके दुर्धर भारको धारण कर रहे हैं, सभा-गोष्ठियोंमें आप-जैसे विद्वान् जिनकी कथारूपी अमृतसे सन्तुष्ट होकर आहार ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं रखते और जो क्षमा, मैत्री तथा तपरूपी लक्ष्मीसे सहित हैं, वे त्रिलोकीनाथ भगवान् वृषभदेव आज अकस्मात् हमारे अतिथि बनकर आये हुए हैं॥१६९–१७२॥ वे प्रभु उत्तर दिशासे ही नगरमें प्रवेश कर पधार रहे हैं, यथायोग्य ⋆ चान्द्रीचर्याका नियम लेकर जूडा प्रमाण दृष्टिसे विहार कर रहे हैं, हड़बड़ाहटसे युक्त मनुष्य उनके चरणोंमें अर्घ दे रहे हैं तथा स्तुति और वन्दनाके द्वारा उनकी सब ओरसे सेवा कर रहे हैं, वे चन्द्रमाके समान प्रत्येक घरमें अपना तेज बिखेरते हुए अपना समझ अन्तःपुरके आँगनमें आ पहुँचे हैं ॥१७३–१७५॥ इस प्रकार सिद्धार्थके वचनोंका तात्पर्य समझ हर्षसे भरे हुए दोनों भाई, हाथ जोड़ ललाट॰र धारण कर भगवान्के सामने गये ॥१७६॥ हे स्वामिन् ! आइए आज्ञा दीजिए, यह कहते हुए दोनों भाइयोंने जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्य सुमेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं उसी प्रकार मार्गमें भगवान्की प्रदक्षिणा दी ॥१७७॥ तदनन्तर चरणोंमें पड़कर (नमस्कार कर) सुख-समाचार पूछते हुए दोनों भाई आगे खड़े हो गये। उस समय वे मौनके धारक भगवान्के आगमनका कारण विचार रहे थे ॥१७८॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी रेखा ताराओंके साथ सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देती है, उसी प्रकार राजा सोमप्रभकी रानी लक्ष्मीमतीने अन्य अनेक रानियोंके साथ भगवान्की प्रदक्षिणा दी ॥१७९॥ उसी समय टिमकार रहित नेत्रोंसे भगवान्की ओर देखते हुए श्रेयान्सके मनमें यह विचार आया कि ऐसा रूप तो मैंने पहले कहीं देखा है ॥१८०॥ भगवान्के देदीप्यमान होनेपर भी उपशान्त रूपसे प्रतिबोधको प्राप्त हुआ श्रेयान्स अपने तथा भगवान्के दस पूर्व भवोंको जान गया और उनके चरणोंके समीप आकर मूर्च्छित हो गया ॥१८१॥ मूर्च्छित होनेपर भी श्रेयान्सने अपने शिरके कोमल-बालोंसे भगवान्के चरण पोंछे और मार्गका श्रम दूर करनेके लिए आनन्दजन्य गरम-गरम आंसुओंकी धारासे धोये ॥१८२॥ श्रीमती और वज्रजंघने पहले चारण ऋद्धिके धारक अपने दो पुत्रोंके लिए जिस विधिसे दान दिया था वह सब विधि भगवान्का दर्शन करते ही श्रेयान्सकी स्मृतिमें आ गयी ॥१८३॥

तदनन्तर दान-धर्मकी विधिका ज्ञाता और उसकी स्वयं प्रवृत्ति करानेवाला राजा श्रेयान्स श्रद्धा आदि गुणोंसे युक्त हो 'हे भगवन् ! तिष्ठ-तिष्ठ—ठहरिए-ठहरिए' यह कहकर भगवान्को घरके भीतर ले गया, वहां उच्चासनपर विराजमान कर उसने उनके चरण-कमल धोये, उनके चरणोंकी पूजा करके उन्हें मन, वचन, कायसे नमस्कार किया। फिर सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त पात्रके लिए देने-की इच्छासे उसने इक्षुरससे भरा हुआ कलश उठाकर कहा कि प्रभो ! यह इक्षुरस सोलह उद्गम दोष, सोलह उत्पादन दोष, दश एषणा दोष तथा धूम-अंगार प्रमाण और संयोजना इन चार दाता सम्बन्धी दोषोंसे रहित एवं प्रासुक है, इसे ग्रहण कीजिए ॥१८४–१८८॥ तदनन्तर जिनकी आत्मा विशुद्ध थी और जो पैरोंको सीधा कर खड़े थे ऐसे भगवान् वृषभदेवने क्रियासे आहारकी विधि दिखाते हुए चारित्रकी वृद्धिके लिए पारणा की ॥१८९॥ राजा श्रेयान्सने कल्याणकारी श्रीजिनेन्द्र-रूपी पात्र प्राप्त किये इसलिए पाँच प्रकारकी आश्चर्यजनक विशुद्धियोंसे पंचाश्चर्य प्रकट हुए ॥१९०॥ 'अहो दान, अहो दान, अहो पात्र, अहो दान देनेकी पद्धति, धन्य-धन्य', इस प्रकार आकाशमें देवोंके शब्द हुए ॥१९१॥ आकाशमें मेघोंके समान शब्द करनेवाले देव-दुन्दुभि बजने लगे। वे दुन्दुभि तीनों जगत्में मानो इस नामकी घोषणा ही कर रहे थे कि दानरूपी तीर्थको

चलानेवालेकी उत्पत्ति हो चुकी है ॥१९२॥ राजा श्रेयान्सके दानसे उत्पन्न यशकी राशिसे पूर्ण दिशारूपी स्त्रियोंके मुखसे प्रकट हुए श्वासोच्छ्वासके समान सुगन्धित वायु बहने लगी ॥१९३॥ उस समय आकाशमें न समा सकनेके कारण ही मानो सुमन (पुष्पों) की वर्षा होने लगी थी और वह ऐसी जान पड़ती थी मानो राजा श्रेयान्सकी सुमनवृत्ति—पवित्र मनका व्यापार ही भीतर न समा सकनेके कारण शरीरसे बाहर निकल रहा हो ॥१९४॥ राजा श्रेयान्सने पात्रके लिए जो इक्षुरसकी धारा दी थी उसके साथ ईर्ष्या होनेके कारण ही मानो आकाशसे देवकृत रत्नोंकी धारा नीचे पड़ने लगी ॥१९५॥ पूजा होनेके बाद जब धर्म तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव तपकी वृद्धिके लिए वनको चले गये तब देवोंने अभिषेकपूर्वक दान तीर्थंकर—राजा श्रेयान्सकी पूजा की ॥१९६॥ देवोंसे समीचीन दान और उसके फलकी घोषणा सुन भरतादि राजाओंने भी आकर राजा श्रेयान्सकी पूजा की ॥१९७॥ इतिहास—पूर्व घटनाका स्मरण कर राजा श्रेयान्सने जो दानरूपी धर्मकी विधि चलायी थी उसे दानका प्रत्यक्ष फल देखनेवाले भरत आदि राजाओंने बड़ी श्रद्धाके साथ श्रवण किया ॥१९८॥ राजा श्रेयान्सने बताया कि दान सम्बन्धी पुण्यका संग्रह करनेके लिए १ अतिथिको पड़गाहना, २ उच्च स्थानपर बैठाना, ३ पाद-प्रक्षालन करना, ४ दाता द्वारा अतिथिकी पूजा होना, ५ नमस्कार करना, ६ मनःशुद्धि, ७ वचन-शुद्धि, ८ काय-शुद्धि और ९ आहार-शुद्धि बोलना ये नौ प्रकार जाननेके योग्य हैं ॥१९९–२००॥ दानका फल बताते हुए राजा श्रेयान्सने कहा कि इस तरह दान देनेसे जो पुण्य संचित होता है वह दाताके लिए पहले स्वर्गादि रूप फल देकर अन्तमें मोक्षरूपी फल देता है ॥२०१॥ इस तरह यथार्थ बातको सुनकर जिनके चित्त दानरूपी धर्मके लिए उद्यत हो रहे थे ऐसे भरत आदि राजा जैसे आये थे वैसे चले गये ॥२०२॥ चार ज्ञानरूपी चार मुखोंको धारण करनेवाले भगवान् वृषभदेवने स्वयं मोक्ष तत्त्वका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिए एक हजार वर्ष तक नाना प्रकारका तप किया ॥२०३॥ लम्बी-लम्बी जटाओंके भारसे सुशोभित आदि जिनेन्द्र उस समय जिनकी शाखाओंसे पाये लटक रहे थे ऐसे वट-वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२०४॥

अथानन्तर किसी समय विहार करते हुए भगवान्, पूर्वतालपुर नामक उस नगरमें पहुँचे जहाँ कि भरतका छोटा भाई राजा वृषभसेन रहता था ॥२०५॥ वहाँ वे शकटास्य नामक उद्यान-में बड़ी तत्परताके साथ ध्यान धारण कर वटवृक्षके नीचे एक शिलापर पर्यंकासनसे विराजमान हो गये। उस समय उन्होंने शुक्ल ध्यानरूपी तलवारकी धारसे इन्द्रियोंके समूहको अपने वश कर लिया था ॥२०६–२०७॥ उन्होंने क्षपक श्रेणिरूपी रणभूमिमें प्रवेश कर महोत्साहरूपी हाथी-पर सवार हो क्षणभरमें मोहरूपी राजाको नीचे गिरा दिया ॥२०८॥ और उसके बाद ही एक साथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन शत्रुओंको भी नष्ट कर दिया ॥२०९॥ इस तरह चार घातिया कर्मोंके क्षयसे उन्हें समस्त द्रव्यपर्याय तथा लोक-अलोकको दिखानेवाला केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ ॥२१०॥ पूर्वकी भाँति इन्द्रों सहित चारों निकायोंके देवोंने आकर जिनेन्द्र देवको नमस्कार किया। उस समय समस्त देव भगवान्ने कर्म शत्रुओंपर जो विजय प्राप्त की थी उसका गुणगान कर रहे थे ॥२११॥ तदनन्तर तत्क्षणमें उत्पन्न हुए आठ प्रातिहार्यों और चौंतीस अतिशयों-से सहित भगवान् अत्यधिक सुशोभित होने लगे ॥२१२॥ उसी समय भरतको पुत्रकी उत्पत्ति, चक्ररत्नकी प्राप्ति और भगवान्को केवलज्ञानका लाभ ये तीन समाचार एक साथ मिले। इस भाग्यवृद्धिसे प्रसन्न होता हुआ भरत सर्वप्रथम भगवान्की वन्दना करनेके लिए चला ॥२१३॥ कुरुवंशी तथा भोजवंशी आदि राजाओंके साथ चतुरंग सेनासे आवृत भरतने जाकर अरहन्त सम्बन्धी विभूतिसे युक्त भगवान्की पूजा कर उन्हें प्रणाम किया ॥२१४॥ उसी समय अनेक

राजाओंके साथ राजा वृषभसेन भगवान्‌के पास गया और संयम धारण कर उनका प्रथम गणधर हो गया ॥२१५॥ लक्ष्मीमतीके पुत्र जयकुमार तथा उसके छोटे भाईको राज्यकार्यमें नियुक्त कर राजा श्रेयान्स और सोमप्रभने भी दीक्षा धारण कर ली ॥२१६॥ धैर्यसे युक्त ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनों कुमारियाँ अनेक स्त्रियोंके साथ दीक्षा ले आर्यिकाओंकी स्वामिनी बन गयीं ॥२१७॥ वृषभ जिनेन्द्रके अर्हन्त सम्बन्धी वैभवको देखकर अन्य लोग भी उस समय यथायोग्य सम्यग्दर्शन तथा श्रावकोंके व्रतसे युक्त हुए थे ॥२१८॥ उस समय रागरहित स्त्री-पुरुष, पद्मराग मणियोंके समान अपने लाल-लाल हाथोंसे इन्द्रनील मणिके समान काले-काले केशोंको स्वयं उखाड़ते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥२१९॥ उस समय दीक्षा लेनेवाले धैर्यशाली मनुष्योंका जिस प्रकार कोमल, चिकने और सघन बालोंमें स्नेह नहीं था उसी प्रकार अपने शरीरोंमें भी उनका स्नेह नहीं था ॥२२०॥ तदनन्तर बारह योजन विस्तारवाले समवसरणकी रचना हुई, उसमें चतुर्विध संघ और चार निकायके देव यथास्थान आसीन हुए ॥२२१॥ उस समवसरणमें महाप्रभावसे सम्पन्न अप्रतिचक्र आदि शासन देवता, धर्मचक्रके धारक भगवान् वृषभदेवको निरन्तर नमस्कार करते रहते थे ॥२२२॥ समवसरणमें बारह सभाएँ थीं उनमें भगवान्‌की दाहिनी ओरसे लेकर १ मुनि, २ कल्पवासिनी देवियाँ, ३ आर्यिकाएँ, ४ ज्योतिषी देवोंकी देवियाँ, ५ व्यन्तर देवोंकी देवियाँ, ६ भवनवासी देवोंकी देवियाँ, ७ भवनवासी देव, ८ व्यन्तर देव, ९ ज्योतिषी देव, १० कल्पवासी देव, ११ मनुष्य और १२ तिर्यञ्च ये बारह गण पृथक्-पृथक् अपने-अपने विस्तृत स्थानोंपर बैठे थे ॥२२३॥ अथानन्तर जब तीन लोकके जीव भगवान्‌का दिव्य उपदेश सुननेकी इच्छासे शान्ति-पूर्वक बैठ गये तब प्रथम गणधरने समस्त पदार्थोंके प्रकाशित करनेवाले जिनेन्द्ररूपी सूर्यसे प्रश्न किया और उन्होंने नाना भेदोंमें परिवर्तित होनेवाली एवं ओठोंके परिस्पन्दसे रहित अपनी दिव्य ध्वनिरूपी लक्ष्मीके द्वारा मोहरूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया ॥२२४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे सहित जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें श्रीऋषभनाथ भगवान्‌की केवलज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला नवाँ पर्व समाप्त हुआ।

□

सर्ग- १०

उस समय त्रिलोकवर्ती जीवोंके सन्निधानमें धर्मका उपदेश देते हुए भगवान्‌ने एक हजार वर्ष तक दृढ़तापूर्वक धारण किया हुआ मौन खोला ।।१।। श्री आदि जिनेन्द्र स्वयं ही संसार-सागरमें पार करनेवाला तीर्थ दिखला रहे थे, इसलिए संसारके समस्त जीव अतिशय गूढ़ अर्थको भी सरलतासे देख रहे थे । भावार्थ—यद्यपि दिव्यध्वनिमे प्रतिपादित पदार्थ अत्यन्त गम्भीर था फिर भी वक्ताके प्रभावसे लोग उसे सरलतासे समझ रहे थे ।।२।। उस समय जब कि वचन आदिके अतिशयोंसे प्रकाशमान जिनेन्द्ररूपी सूर्य स्वयं पदार्थोंको प्रकाशित कर रहे थे तब कौन मनुष्य मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको प्राप्त हो सकता था ? अर्थात् कोई नहीं ।।३।।

अथानन्तर जिनेन्द्र भगवान्‌ने कहा कि समस्त प्राणियोंको जीव-दया आदि कार्योंमें स्थित धर्म पूर्ण प्रयत्नसे करना चाहिए क्योंकि धर्म ही समस्त सुखोंकी खान है ।।४।। चार निकायके देवों और मनुष्योंमें इन्द्रिय विषयजन्य जो सुख दिखाई देता है वह सब धर्मसे ही उत्पन्न हुआ है ।।५।। और कर्मोंके रूपसे उत्पन्न, स्वाधीन तथा अन्तसे रहित जो मोक्षसम्बन्धी सुख है वह भी धर्मसे ही उत्पन्न होता है ।।६।। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये सूक्ष्म रीतिसे धारण किये जावें तो मुनिका धर्म है और स्थूल रीतिसे धारण किये जावें तो गृहस्थका धर्म है ।।७।। दान, पूजा, तप और शील यह गृहस्थका चार प्रकारका शारीरिक धर्म है– शरीरसे करने योग्य है । गृहस्थका यह चतुर्विध धर्म त्यागसे ही उत्पन्न होता है ।।८।। सम्यग्दर्शन जिसकी जड़ है ऐसा यह गृहस्थका धर्म महर्द्धिक देवोंकी लक्ष्मी प्रदान करता है और पूर्णतासे पालन किया हुआ मुनिधर्म मोक्ष सुखको देनेवाला है ।।९।। जो मात्र अर्वाचीन बातको ही देख सकते हैं ऐसे हिता-भिलाषी मनुष्योंको (छद्मस्थ जीवोंको) स्वर्ग और मोक्षके मूलभूत समीचीन धर्मका लक्षण श्रुतज्ञानके द्वारा जानना चाहिए । भावार्थ—अल्पज्ञानी मनुष्य द्वादशांगके सहारे ही धर्मका लक्षण समझ सकते हैं, इसलिए यहाँ द्वादशांगका वर्णन करना उचित है ।।१०।। द्रव्यश्रुत और भावश्रुतके भेदको प्राप्त हुआ द्वादशांग श्रुतज्ञान आप्तके द्वारा प्रकट होता है और आप्त वही माना गया है जो रागादिक दोष तथा ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन आवरणोंसे रहित हो ।।११।। श्रुतज्ञानके १ पर्याय, २ पर्याय-समास, ३ अक्षर, ४ अक्षर-समास, ५ पद, ६ पद-समास, ७ संघात, ८ संघात-समास, ९ प्रतिपत्ति, १० प्रतिपत्ति-समास, ११ अनुयोग, १२ अनुयोग-समास, १३ प्राभृत-प्राभृत, १४ प्राभृत-प्राभृत-समास, १५ प्राभृत, १६ प्राभृत-समास, १७ वस्तु, १८ वस्तु-समास, १९ पूर्व और २० पूर्व-समास—ये बीस भेद हैं ।।१२–१३।। श्रुतज्ञानके अनेक विकल्पोंमें एक विकल्प एक ह्रस्व अक्षर रूप भी है । इस विकल्पमें द्रव्यकी अपेक्षा अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंसे निष्पन्न स्कन्धका संचय होता है ।।१४।। इस एक ह्रस्वाक्षररूप विकल्पके अनेक बार अनन्तानन्त भाग किये जावें तो उनमें एक भाग पर्याय नामका श्रुतज्ञान होता है ।।१५।। वह पर्याय ज्ञान सूक्ष्म-निगोदिया लब्धपर्याप्तक जीवके होता है और श्रुतज्ञानावरणके आवरणसे रहित होता है ।।१६।। सभी जीवोंके उतने ज्ञानके ऊपर कभी आवरण नहीं पड़ता । यदि उसपर भी आवरण

पड़ जावे तो ज्ञानोपयोगका सर्वथा अभाव हो जायेगा और ज्ञानोपयोगका अभाव होनेसे जीवका भी अभाव हो जायेगा ॥१७॥ यह युक्तिसे सिद्ध है कि जीवकी उपयोग शक्तिका कभी विनाश नहीं होता। जिस प्रकार कि मेघका आवरण होनेपर भी सूर्य और चन्द्रमाको प्रभा कुछ अंशोंमें प्रकट रही आती है उसी प्रकार श्रुतज्ञानका आवरण होनेपर भी पर्याय नामका ज्ञान प्रकट रहा आता है ॥१८॥ जब यही पर्यायज्ञान पर्याय ज्ञानके अनन्तवें भागके साथ मिल जाता है तब वह पर्याय-समास नामका श्रुतज्ञान कहलाने लगता है। यह श्रुतज्ञान आवरणसे सहित होता है अर्थात् जबतक पर्याय-समास नामक श्रुतज्ञानावरणका उदय रहता है तब-तक प्रकट नहीं होता उसका क्षयोपशम होनेपर ही प्रकट होता है ॥१९॥ यह पर्याय-समास-ज्ञान अनन्तभागवृद्धि, असंख्यभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि तथा अनन्तभागहानि, असंख्यात-भागहानि एवं संख्यातभागहानिसे सहित हैं। पर्यायज्ञानके ऊपर संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यात-गुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिके क्रमसे वृद्धि होते-होते जबतक अक्षरज्ञानकी पूर्णता होती है तबतकका ज्ञान पर्याय-समासज्ञान कहलाता है। उसके बाद अक्षरज्ञान प्रारम्भ होता है उसके ऊपर पदज्ञान तक एक-एक अक्षरकी वृद्धि होती है। इस वृद्धि प्राप्त ज्ञानको अक्षर-समास ज्ञान कहते हैं। अक्षर-समासके बाद पदज्ञान होता है ॥२०–२१॥ अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यम-पदके भेदसे पद तीन प्रकारका है ॥२२॥ इनमें एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह और सात अक्षर-तकका पद अर्थपद कहलाता है। आठ अक्षररूप प्रमाणपद होता है और मध्यमपदमें सोलह सौ चौंतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी अक्षर होते हैं, और अंग तथा पूर्वोके पदकी संख्या इस। मध्यम पदसे होती है ॥२३–२५॥ एक-एक अक्षरकी वृद्धि कर पदसमाससे लेकर पूर्व-समास पर्यन्त समस्त द्वादशांग श्रुत स्थित है ॥२६॥ उनमें पहला अंग आचारांग है जो मुनियों-के आचारका अच्छी तरह वर्णन करता है और अठारह हजार पदोंसे सहित है ॥२७॥ दूसरा अंग सूत्रकृतांग है जो स्वसमय और परसमयका विशेषरूपसे वर्णन करता है तथा छत्तीस हजार पदोंसे सहित है ॥२८॥ तीसरा अंग स्थानांग है जो जीवके एकसे लेकर दश तक स्थानोंका वर्णन करता है और बयालीस हजार पदोंसे सहित है। भावार्थ—स्थानांगमें—जीवके एक केवलज्ञान, एक मोक्ष, एक आकाश, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य आदि। दो दर्शन, दो ज्ञान, दो राग-द्वेष आदि। तीन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय, माया, मिथ्या, निदान—तीन शल्य, जन्म-जरा-मरण—तीन दोष आदि। चार गति, चार कषाय, चार अनन्त चतुष्टय आदि। पांच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच अस्तिकाय, पाँच कषाय आदि। छह द्रव्य, छह लेश्या, छह काय, छह आवश्यक आदि। सात तत्त्व, सात भय, सात व्यसन, सात नरक आदि। आठ कर्म, आठ गुण, आठ ऋद्धियां आदि, नौ पदार्थ, नौ नय, नौ शील आदि। तथा दश धर्म, दश परिग्रह, दश दिशा आदि। इस तरह सदृश संख्यावाले पदार्थोंका वर्णन है ॥२९॥ चौथा अंग समवायांग है। यह एक लाख चौंसठ हजार पदोंसे सहित है तथा द्रव्य आदिकी तुल्यताका वर्णन करता है ॥३०॥ जैसे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, एक जीव द्रव्य और लोकाकाशके प्रदेश एक बराबर हैं—असंख्यातप्रदेशी हैं—यह द्रव्यकी अपेक्षा तुल्यता समवाय अंग द्वारा वर्णित है ॥३१॥ सिद्धशिला, प्रथम नरकका सीमन्तक नागका इन्द्रक विल, प्रथम स्वर्गका ऋतु-विमान और अढ़ाई द्वीप ये क्षेत्रसे समान हैं—पैंतालीस लाख योजन विस्तारवाले हैं—यह क्षेत्रकी अपेक्षा समानता उसी समवायांगमें कही गयी है ॥३२॥ कालकी अपेक्षा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीको समानता कही गयी है अर्थात् दोनों दश-दश कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण हैं और भावकी अपेक्षा केवलज्ञान तथा केवलदर्शनकी तुल्यता बतलायी गयी है अर्थात् जिस प्रकार केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद हैं

उसी प्रकार केवलदर्शनके भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं ॥३३॥ पाँचवाँ अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है उसमें पदोंकी संख्या दो लाख अट्ठाईस हजार है। इस अंगमें कुमार्गत्यागी गणधरादि शिष्योंके द्वारा विनय-पूर्वक केवलीसे किये गये अनेक प्रश्न तथा उनके उत्तरका विस्तारके साथ वर्णन है ॥३४–३५॥ छठा अंग ज्ञातृकथांग है यह जिनधर्मकी कथारूप अमृतका व्याख्यान करता है तथा इसमें पाँच लाख छप्पन हजार पद हैं ॥३६॥ सातवाँ अंग उपासकाध्ययनांग है। श्रावकगण इसी अंगके आश्रित हैं अर्थात् श्रावकाचारका वर्णन इसी अंगमें है, इस अंगमें ग्यारह लाख सत्तरह हजार पद हैं ॥३७॥ आठवाँ अंग अन्तकृद् दशांग है इसमें तेईस लाख अट्ठाईस हजार पद हैं ॥३८॥ इसमें प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें दश प्रकारके उपसर्गको जीतकर संसारका अन्त करनेवाले दश-दश मुनियोंका वर्णन है ॥३९॥ नौवाँ अंग अनुत्तरोप-पादिक दशांग है इसमें बानबे लाख चवालीस हजार पद कहे गये हैं। इस अंगमे प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें दश प्रकारके उपसर्ग जीतकर अनुत्तरादि विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले दश-दश मुनियोंका वर्णन है ॥४०–४१॥ स्त्री, पुरुष और नपुंसकके भेदसे तीन प्रकारके तिर्यंच, तीन प्रकारके मनुष्य एवं स्त्री और पुरुषके भेदसे दो प्रकारके देव इन आठ चेतनोंके द्वारा किये हुए आठ प्रकारके चेतनकृत, एक शारीरिक, कुष्ठादिककी वेदनाकृत और एक अचेतनकृत—दीवाल आदिके गिरनेसे उत्पन्न सब मिलाकर दश प्रकारके उपसर्ग कहे गये हैं ॥४२॥ दशवाँ अंग प्रश्नव्याकरणांग है इसमें *आक्षेपिणी आदि कथाओंका वर्णन है तथा इसमें तिरानबे लाख सोलह हजार पद हैं ॥४३॥ ग्यारहवाँ अंग विपाकसूत्रांग है। यह अंग ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके विपाक-फलका वर्णन करता है और इसमें एक करोड़ चौरासी लाख पद हैं ॥४४॥ और बारहवाँ अंग दृष्टिप्रवाद अंग है इसमें पदोंकी संख्या एक सौ आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन हजार पाँच है ॥४५॥ इस अंगमें तीन सौ त्रेसठ दृष्टियोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है ॥४६॥ मूलमें १ क्रियादृष्टि, २ अक्रियादृष्टि, ३ अज्ञानदृष्टि और ४ विनयदृष्टिके भेदसे दृष्टियाँ चार प्रकारकी है। ये दृष्टियाँ क्रमसे क्रिया, अक्रिया, अज्ञान और विनयसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है, ऐसा निरूपण करती हैं ॥४७॥ इनमें क्रियावादी एक सौ अस्सी, अक्रियावादी चौरासी, अज्ञानवादी अड़सठ और विनयवादी बत्तीस है ॥४८॥ नियति, स्वभाव, काल, दैव और पौरुष इन पाँचका स्वतः, परतः, नित्य और अनित्य इन चारके साथ गुणा करनेपर बीस भेद होते हैं और इन बीस भेदोंका जीवादि नौ पदार्थोंके साथ योग करनेपर क्रियावादियोंके एक सौ अस्सी भेद होते हैं। जैसे कोई मानता है कि जीव नियतिसे स्वतः है, कोई मानता है कि परतः है, कोई मानता है कि नित्य है, कोई मानता है कि अनित्य है। कोई मानता है कि जीव स्वभावसे स्वतः है, कोई मानता है कि परतः है, कोई मानता है कि नित्य है, कोई मानता है कि अनित्य है। कोई मानता है कि जीव कालसे स्वतः है, कोई मानता है कि परतः है, कोई मानता है कि नित्य है, कोई मानता है कि अनित्य है और कोई मानता है कि जीव दैवसे स्वतः है। कोई मानता है कि परतः है। कोई मानता है कि नित्य है और कोई मानता है कि अनित्य है। और कोई मानता है कि जीव पौरुषसे स्वतः है, कोई मानता है कि परतः है। कोई मानता है कि नित्य है और कोई मानता है कि अनित्य है। जिस प्रकार नियति आदिके कारण जीव पदार्थके बीस-बीस भंग हैं उसी प्रकार अजीवादि पदार्थोंके भी बीस भंग हैं। इस तरह क्रियावादियोंके सब मिलाकर एक सौ अस्सी भेद होते हैं ॥४९–५१॥ जीवादि सात तत्त्व, नियति, स्वभाव, काल, दैव और पौरुषकी अपेक्षा न स्वतः हैं और न परतः हैं। इस तरह जीवादि सात तत्त्वोंमें नियति आदि पाँचका गुणा करनेपर पैंतीस और पैंतीसमें स्वतः, परतः इन दोका गुणा करनेपर सत्तर भेद हुए। पुनः जीवादि सात तत्त्व

नियति और कालकी अपेक्षा नहीं हैं इसलिए सातमें दोका गुणा करनेपर चौदह भेद हुए। पूर्वोक्त सत्तर भेदोंके साथ इन चौदह भेदोंको मिला देनेपर अक्रियावादियोंके चौरासी भेद होते हैं ॥५२-५३॥ जीवादि नौ पथार्थोंको १ सत्, २ असत्, ३ उभय, ४ अवक्तव्य, ५ सद् अवक्तव्य, ६ असत् अवक्तव्य, और उभय अवक्तव्य इन नौ भंगोंसे कौन जानता है ? इस प्रकार नौ पदार्थोंमें सात भंगोंका गुणा करनेपर आज्ञानिक मिथ्यादृष्टियोंके त्रेसठ भेद होते हैं ॥५४॥ जैसे १ कोई कहता है कि जीव सत् रूप है यह कौन जानता है ? २ कोई कहता है कि जीव असद् रूप है यह कौन जानता है ? ३ कोई कहता है कि जीव सत्-असत्—उभय रूप है यह कौन जानता है ? ४ कोई कहता है कि जीव अवक्तव्य रूप है यह कौन जानता है ? ५ कोई कहता है कि जीव सद् अवक्तव्य रूप है यह कौन जानता है ? ६ कोई कहता है कि जीव असद् अवक्तव्य रूप है यह कौन जानता है ? और कोई कहता है कि जीव सत्-असत् अवक्तव्य रूप है यह कौन जानता है ? इसी प्रकार अजीवादि पदार्थोंके साथ सात-सात भंगोंकी योजना करनेपर त्रेसठ भेद होते हैं। इन त्रेसठ भेदोंमें १ जीवकी सत् उत्पत्तिको जाननेवाला कौन है ? २ जीवकी असत् उत्पत्तिको जाननेवाला कौन है ? ३ जीवकी सत्-असत् उत्पत्तिको जाननेवाला कौन है ? और जीवकी अवक्तव्य उत्पत्तिको जाननेवाला कौन है ? केवल भावकी अपेक्षा स्वीकृत इन चार भेदोंके और मिला देनेपर आज्ञानिक मिथ्यादृष्टियोंके सत्र भेद सड़सठ हो जाते हैं ॥५५-५८॥ १ माता, २ पिता, ३ देव, ४ राजा, ५ ज्ञानी, ६ बालक, ७ वृद्ध और ८ तपस्वी इन आठका मन, वचन, काय और दानसे विनय करना चाहिए। इसलिए मन, वचन, काय और दान इन चारका माता आदि आठके साथ संयोग करनेपर वैनयिक मिथ्यादृष्टियोंके बत्तीस भेद हो जाते हैं ॥५९-६०॥ इस प्रकार अनेक मिथ्यादृष्टियोंका कथन करनेवाले दृष्टिवाद अंगके १ परिकर्म, २ सूत्र, ३ अनुयोग, ४ पूर्वगत और ५ चूलिका ये पांच भेद हैं ॥६१॥ परिकर्ममें १ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूर्यप्रज्ञप्ति, ३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४ द्वीपसमुद्रप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति ये पांच प्रज्ञप्तियाँ कही गयी हैं अर्थात् इन पाँच प्रज्ञप्तियोंकी अपेक्षा परिकर्मके पाँच भेद हैं ॥६२॥ इनमें चन्द्रप्रज्ञप्ति छत्तीस लाख पाँच हजार पदोंके द्वारा चन्द्रमाकी भोग आदि सम्पदाका वर्णन करती है ॥६३॥ सूर्यप्रज्ञप्ति पाँच लाख तीन हजार पदोंके द्वारा सूर्यके स्त्री आदि विभवका निरूपण करती है ॥६४॥ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति तीन लाख पचीस हजार पदोंके द्वारा जम्बूद्वीपके सर्वस्वका वर्णन करती है ॥६५॥ जिसमें बावन लाख छत्तीस हजार पद हैं, ऐसी द्वीप और सागरोंका वर्णन करनेवाली चौथी द्वीपसमुद्रप्रज्ञप्ति है ॥६६॥ जो चौरासी लाख छत्तीस हजार पदोंसे युक्त है वह पाँचवीं व्याख्याप्रज्ञप्ति कही जाती है ॥६७॥ व्याख्याप्रज्ञप्ति रूपीद्रव्य, अरूपीद्रव्य तथा भव्य-अभव्य जीवोंके समूह आदि सबका विस्तारके साथ वर्णन करती है ॥६८॥ दृष्टिवादके दूसरे भेद सूत्रमें अठासी लाख पद हैं, इसके अनेक भेदोंमें-से प्रथम भेदमें अबन्धक—वन्ध न करनेवाले भावोंका वर्णन है। दूसरे भेदमें श्रुति, स्मृति और पुराणके अर्थका निरूपण है। तीसरे भेदमें नियति पक्षका कथन है और चौथे भेदमें नाना प्रकारके परसमयों—अन्य दर्शनोंका निरूपण है ॥६९-७०॥ दृष्टिवादके तीसरे भेद अनुयोगमें पाँच हजार पद हैं तथा इसके अवान्तर भेद प्रथमानुयोगमें त्रेसठ शलाकापुरुषोंके पुराणका वर्णन है ॥७१॥ दृष्टिवादका चौथा भेद पूर्वगत कहा जाता है उसके उत्पाद आदि चौदह भेद हैं और प्रत्येक भेदमें निम्न प्रकार वस्तुओंकी संख्या जाननी चाहिए ॥७२॥ उन भेदोंमें क्रमसे दश, चौदह, आठ, अठारह, बारह, बारह, सोलह, बीस, तीस, पन्द्रह, दश, दश, दश और दश वस्तुएँ हैं तथा प्रत्येक वस्तुके बीस-बीस प्राभृत होते हैं ॥७३-७४॥ पहला उत्पादपूर्व है उसमें एक करोड़ पद हैं तथा द्रव्योंके उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यका वर्णन है ॥७५॥ दूसरा आग्रायणीय पूर्व है उसमें छियानवे लाख पद हैं तथा

स्वमत सम्मत सात तत्त्व नव पदार्थ आदिका वर्णन है ॥७६॥ पहले आग्रायणीय पूर्वकी जिन चौदह वस्तुओंका कथन किया गया है उनके नाम यथाक्रमसे इस प्रकार जानना चाहिए ॥७७॥ १ पूर्वान्त, २ अपरान्त, ३ ध्रुव, ४ अध्रुव, ५ अच्यवन लब्धि, ६ अध्रुव सम्प्रणधि, ७ कल्प, ८ अर्थ, ९ भौमावय, १० सर्वार्थकल्पक, ११ निर्वाण, १२ अतीतानागत, १३ सिद्ध और १४ उपाध्याय ॥७८–८०॥ आग्रायणीय पूर्वकी पंचम वस्तुके बीस प्राभृत (पाहुड़) हैं। उनमें कर्मप्रकृति नामक चौथे प्राभृतमें निम्नलिखित चौबीस योगद्वार हैं ॥८१॥ १ कृति, २ वेदना, ३ स्पर्श, ४ कर्म, ५ प्रकृति, ६ बन्धन, ७ निबन्धन, ८ प्रक्रम, ९ उपक्रम, १० उदय, ११ मोक्ष, १२ संक्रम, १३ लेश्या, १४ लेश्याकर्म, १५ लेश्यापरिणाम, १६ सातासात, १७ दीर्घह्रस्व, १८ भवधारण, १९ पुद्गलात्मा, २० निधत्तानिधत्तक, २१ सनिकाचित, २२ अनिकाचित, २३ कर्मस्थिति और २४ स्कन्ध। इन योगद्वारोंमें समस्त विषयोंकी हीनाधिकता यथायोग्य जाननी चाहिए ॥८२–८६॥ अन्य पूर्वोंकी वस्तु, प्राभृत तथा अनुयोग आदिका भेद आगमके अनुसार जानना चाहिए ॥८७॥ जिसमें सत्तर लाख पद हैं ऐसा तीसरा वीर्यानुप्रवाद नामका पूर्व अतिशय पराक्रमी सत्पुरुषोंके पराक्रमका वर्णन करता है ॥८८॥ जिसमें साठ लाख पद हैं ऐसा चौथा अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व स्वचतुष्टयकी अपेक्षा जीवादि द्रव्योंके अस्तित्व और पर-चतुष्टयकी अपेक्षा उनके नास्तित्वका कथन करता है ॥८९॥ एक कम एक करोड़ पदोंसे सहित जो पाँचवाँ ज्ञानप्रवाद नामका पूर्व है वह पाँच प्रकारके ज्ञानका वर्णन करता है ॥९०॥ जिसमें छह अधिक एक करोड़ पद हैं ऐसा छठवाँ सत्य-प्रवाद नामका पूर्व बारह प्रकारकी भाषा तथा दश प्रकारके सत्य वचनका कथन करता है ॥९१॥ बारह प्रकारकी भाषाओंके नाम और स्वरूप इस प्रकार हैं—हिंसादि पापोंके करनेवाले अथवा नहीं करनेवालेके लिए 'करना चाहिए' इस प्रकार कहना सो अभ्याख्यान भाषा है। कलह कारक वचन बोलना सो कलह भाषा है यह प्रसिद्ध ही है ॥९२॥ दुष्ट मनुष्योंके द्वारा पीठ पीछे दोषोंका प्रकट किया जाना सो पैशुन्य भाषा है। जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार वर्गोंके वर्णनसे रहित है वह बद्धप्रलाप नामक भाषा है ॥९३॥ रति अर्थात् राग उत्पन्न करनेवाली भाषाको रति भाषा कहते हैं और अरति अर्थात् द्वेष उत्पन्न करनेवाली भाषाको अरति भाषा कहते हैं, जिसके द्वारा श्रोता अर्थार्जन आदि कार्योंमें लग जाता है वह उपाधि वाक् भाषा है। जो जीवको धोखा-देहीमें निपुण करती है वह निकृति भाषा है। जो अपनेसे अधिक गुणवालोंको नमस्कार नहीं करती है वह अप्रणति भाषा है ॥९४–९५॥ जो जीवको चोरीमें प्रवृत्त करती है वह मोघ (मोष) भाषा है। जो समीचीन मार्गमें लगाती है वह सम्यग्दर्शन भाषा है और जो मिथ्या मार्गका उपदेश देती है वह मिथ्यादर्शन भाषा है। इन बारह प्रकारकी भाषाओंके बोलनेवाले द्वीन्द्रियादिक जीव हैं ॥९६–९७॥ सत्य वचन दश प्रकारके हैं उनमें पहला नाम सत्य कहा गया है, व्यवहार चलानेके लिए किसीका इन्द्र आदि नाम रख लेना नामसत्य है ॥९८॥ पदार्थके न होनेपर भी रूप-मात्रकी मुख्यतासे जो कथन होता है वह रूपसत्य है जैसे किसी मनुष्यके अचेतन चित्रको उस मनुष्यरूप कहना ॥९९॥ पाँसा तथा खिलौना आदिमें आकारकी समानता होने अथवा न होनेपर भी व्यवहारके लिए जो स्थापना की जाती है वह स्थापना सत्य है जैसे सतरंजकी गोटोंमें वैसा आकार न होनेपर भी बादशाह-वजीर आदिकी स्थापना करना और हाथी, घोड़ा आदिके खिलौनोंमें उन जैसा आकार होनेपर हाथी, घोड़ा आदिकी स्थापना करना ॥१००॥ आगमके अनुसार प्रतीतिकर औपशमिकादि भावोंका कथन करना प्रतीत्य सत्य है। जैसे मिथ्यादृष्टि गुण-स्थानमें आगममें औदयिक भाव बतलाया है। यद्यपि वहाँ ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम भाव होनेसे क्षयोपशमिक तथा जीवत्व और भव्यत्व अथवा जीवत्व और अभव्यत्वकी अपेक्षा

पारिणामिक भाव भी है परन्तु आगमके कहे अनुसार वहाँ दर्शनमोहकी अपेक्षा औदयिक भाव ही कहना ॥१०१॥ समुदायको एक देशकी मुख्यतासे एक रूप कहना संवृति सत्य है, जैसे भेरी, तबला, बाँसुरी, वीणा आदि अनेक बाजोंका शब्द जहां एक समूहमें हो रहा है वहां भेरी आदिकी मुख्यतासे भेरी आदिका शब्द कहना ॥१०२॥ जो चेतन-अचेतन द्रव्योंके विभागको करनेवाला न हो उसे संयोजना सत्य कहते हैं। जैसे क्रौंचव्यूह आदि। भावार्थ—क्रौंचव्यूह, चक्रव्यूह आदि सेनाओंकी रचनाके प्रकार हैं और सेनाएँ चेतन-अचेतन पदार्थोंके समूहसे बनती हैं पर जहाँ अचेतन पदार्थोंकी विवक्षा न कर केवल क्रौंचाकार रची हुई सेनाको क्रौंचव्यूह और चेतन पदार्थोंकी विवक्षा न कर केवल चक्रके आकार रची हुई सेनाको चक्रव्यूह कह देते हैं वहाँ संयोजनासत्य होता है ॥१०३॥ जो वचन आर्य-अनार्य आदि अनेक देशोंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका करनेवाला है उसे जनपदसत्य कहते हैं ॥१०४॥ जो वचन गांवकी रीति, नगरकी रीति तथा राजाकी नीतिका उपदेश करनेवाला हो एवं गण और आश्रमोंका उपदेशक हो वह देशसत्य माना गया है ॥१०५॥ यद्यपि छद्मस्थके द्रव्योंके यथार्थ ज्ञानकी विकलता है तथापि केवलीके वचनकी प्रमाणता कर वे प्रासुक और अप्रासुक द्रव्यका निर्णय करते हैं यह भावसत्य है ॥१०६॥ और जो द्रव्य तथा पर्यायके भेदोंकी यथार्थताको बतलानेवाला तथा आगमके अर्थको पोषण करनेवाला वचन है वह समयसत्य है ॥१०७॥ जिसमें छब्बीस करोड़ पद कहे गये हैं ऐसा सातवां आत्मप्रवाद नामका पूर्व है। इसमें अनेक युक्तियोंका संग्रह है तथा कर्तृत्व, भोक्तृत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि जीवके धर्मों और उनके भेदोंका सयुक्तिक निरूपण है ॥१०८–१०९॥ जिसमें एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं ऐसा आठवां कर्मप्रवाद नामका पूर्व है। यह पूर्व ज्ञानावरणादि कर्मोंके बन्धका निरूपण करनेवाला है ॥११०॥ जिसमें चौरासी लाख पद हैं ऐसा नौवां प्रत्याख्यान पूर्व कहा गया है ॥१११॥ इस पूर्वमें परिमित द्रव्य-प्रत्याख्यान और अपरिमित भाव-प्रत्याख्यानका निरूपण है तथा यह पूर्व मुनिधर्मको बढ़ानेवाला है ॥११२॥ जिसमें एक करोड़ दश लाख पद हैं ऐसा दशवाँ विद्यानुवाद नामका पूर्व है ॥११३॥ इसमें अंगुष्ठ प्रसेन आदि सात सौ लघु विद्याएँ और रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याएँ कही गयी हैं ॥११४॥ जिसमें छब्बीस करोड़ पद प्रतिष्ठित हैं ऐसा ग्यारहवाँ कल्याणवाद नामका पूर्व है। यह सार्थक नामधारी है और सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देवोंके संचार तथा सुरेन्द्र, असुरेन्द्रकृत त्रेसठ शलाकापुरुषोंके कल्याणका विस्तारके साथ वर्णन करता है। साथ ही इसमें १ स्वप्न, २ अन्तरिक्ष, ३ भौम, ४ अंग, ५ स्वर, ६ व्यंजन, ७ लक्षण और ८ छिन्न इन अष्टांग निमित्तों और अनेक शकुनोंका भी वर्णन है ॥११५–११७॥ जो तेरह करोड़ पदोंसे सहित है वह प्राणावाय नामका बारहवां पूर्व है ॥११८॥ इसमें काय-चिकित्सा आदि आठ प्रकारके आयुर्वेदका तथा प्राणापान आदिके विभाग और उनकी पार्थिवी आदि धारणाओंका वर्णन है ॥११९॥ तेरहवां नौ करोड़ पदोंसे सहित क्रियाविशाल नामका पूर्व है। इसमें छन्दःशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र तथा शिल्पकला आदि अनेक गुणोंका वर्णन है ॥१२०॥ और जिसमें बारह करोड़ पचास लाख पद हैं ऐसा चौदहवाँ लोकबिन्दुसार नामक पूर्व है। इसमें समस्त श्रुतरूपी सम्पदाके द्वारा अंकराशिकी विधि, आठ प्रकारके व्यवहारकी विधि तथा परिकर्मकी विधि कही गयी है ॥१२१–१२२॥ पहले बारहवें दृष्टिवाद अंगके पाँच भेदोंमें एक चूलिका नामक भेद बता आये हैं वह जलगता, स्थलगता, आकाशगता, रूपगता और मायागताके भेदसे पाँच प्रकारकी है। चूलिका-के ये समस्त भेद सार्थक नामवाले हैं और इनमें प्रत्येकके दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पाँच पद हैं ॥१२३–१२४॥ इस प्रकार अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानका वर्णन किया, अब अंगबाह्यश्रुतका वर्णन करते हैं—

अंगबाह्यश्रुत सामायिक आदिके भेदसे चौदह प्रकारका है, यह प्रकीर्णकश्रुत कहलाता है और इसका प्रमाण, प्रमाणपदकी संख्यामे ग्रहण करना चाहिए ॥१२५॥ अंगबाह्य श्रुतज्ञानके समस्त अक्षरोंका संग्रह आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर प्रमाण है ॥१२६॥ इसके समस्त पदोंका जोड़ एक करोड़ तेरह हजार पांच सौ इक्कोस पद तथा शेष सात अक्षर प्रमाण है ॥१२७॥ और इसके समस्त श्लोकोंकी संख्या पचीस लाख तीन हजार तीन सौ अस्सी तथा शेष पन्द्रह अक्षर प्रमाण है ॥१२८॥ उन चौदह प्रकीर्णकोंमें पहला सामायिक नामका प्रकीर्णक है। यह प्रकीर्णक शत्रु, मित्र तथा सुख-दुःख आदिमें राग-द्वेषका परित्याग कर समता-भावका वर्णन करनेवाला है ॥१२९॥ दूसरा जिनस्तव नामका प्रकीर्णक है इसमें चौबीस तीर्थं-करोंका स्तवन किया गया है। तीसरा वन्दना नामका प्रकीर्णक है इसमें वन्दना करने योग्य पंचपरमेष्ठी आदिकी वन्दनाकी विधि बतलायी गयी है ॥१३०॥ प्रतिक्रमण नामका चौथा प्रकीर्णक द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिमें किये गये पापको शुद्ध करनेवाले प्रतिक्रमणका कथन करता है ॥१३१॥ वैनयिक नामका पांचवां प्रकीर्णक दर्शन-विनय, ज्ञान-विनय, चारित्र-विनय, तपोविनय और उपचार-विनयके भेदसे पांच प्रकारकी विनयका कथन करता है ॥१३२॥ कृतिकर्म नामका छठा प्रकीर्णक सामायिकके समय चार शिरोनति, मन-वचन-कायसे आदि-अन्तमें दो दण्डवत् नमस्कार और बारह आवर्त करना चाहिए। इस प्रकार कृति-कर्मकी उत्तम विधिका वर्णन करता है ॥१३३॥ दशवैकालिक नामका सातवां प्रकीर्णक मुनियोंकी गोचरी आदि वृत्तियोंके ग्रहण करने आदिका वर्णन करता है। आठवां उत्तराध्ययन नामका प्रकीर्णक महावीर भगवान्‌के निर्वाणगमन सम्बन्धी कथन करता है ॥१३४॥ कल्पव्यवहार नामक नौवां प्रकीर्णक तपस्वियोंके करने योग्य विधिका तथा नहीं करने योग्य कार्योंके हो जानेपर उनकी प्रायश्चित्त-विधिका वर्णन करता है ॥१३५॥ कल्पाकल्प नामक दशवां प्रकीर्णक करने योग्य तथा न करने योग्य दोनों कार्योंका निरूपण करता है। महाकल्प नामका ग्यारहवां प्रकीर्णक मुनिके द्रव्य, क्षेत्र तथा कालके योग्य कार्यका उल्लेख करता है ॥१३६॥ पुण्डरीक नामका बारहवां प्रकीर्णक दोनोंके उपपादका वर्णन करता है। महापुण्डरीक नामका तेरहवां प्रकीर्णक देवियोंके उपपादका निरूपण करता है ॥१३७॥ और निषद्य नामका चौदहवां प्रकीर्णक प्रायश्चित्त-विधिका उत्तम वर्णन करता है। इस प्रकार यह अंगबाह्य श्रुतज्ञानका विस्तार कहा ॥१३८॥ समस्त श्रुतके अक्षरोंका प्रमाण एक, आठ, चार, चार, छह, सात, चार, चार, शून्य, सात, तीन, सात, शून्य, नौ, पाँच, पांच, एक, छह, एक और पांच अर्थात् एक लाख चौरासी हजार चार सौ सड़सठ कोड़ाकोड़ी चवालीस लाख, सात हजार तीन सौ सत्तर करोड़ पंचानबे लाख इक्कावन हजार छह सौ पन्द्रह है ॥१३९-१४३॥ यह श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होता है, मतिज्ञानपूर्वक होता है, परोक्ष है और अनन्त पदार्थोंको विषय करनेवाला है ॥१४४॥

पांच इन्द्रियों तथा मनसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। यह मति-ज्ञान अनेक प्रकारका है एवं परोक्ष है। यदि पदार्थोंके सान्निध्यमें होता है तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहलाता है ॥१४५॥ यह मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमकी अपेक्षा रखता है तथा अवग्रह ईहा अवाय और धारणाके भेदसे चार प्रकारका है ॥१४६॥ अवग्रह आदि चारों भेद पांच इन्द्रिय और मन इन छहके द्वारा होते हैं इसलिए चारमें छहका गुणा करनेसे मति-ज्ञानके चौबीस भेद होते हैं ॥१४७॥ इन चौबीस भेदोंमें शब्द, गन्ध, रस और स्पर्शसे होनेवाले व्यंजनावग्रहके चार भेद मिलानेसे मतिज्ञानके अट्ठाईस भेद हो जाते हैं और इन अट्ठाईस भेदोंमें अवग्रह आदि चार मूलभेद मिला देनेसे बत्तीस भेद हो जाते हैं। इस प्रकार चौबीस

अट्ठाईस और बत्तीस भेद हो जाते हैं। इस प्रकार चौबीस, अट्ठाईस और बत्तीसके भेदमें मति-ज्ञानके भेदोंकी प्रारम्भमें तीन राशियां होती हैं। उनमें क्रमसे बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव इन छह पदार्थोंका गुणा करनेपर एक सौ चवालीस, एक सौ अड़सठ तथा एक सौ बानबे भेद होते हैं। यदि बहु आदि छह तथा इनसे विपरीत एक आदि छह इन बारह भेदों-का उक्त तीन राशियोंमें क्रमसे गुणा किया जावे तो दो सौ अठासी, तीन सौ छत्तीस और तीन सौ चौरासी भेद होते हैं ॥१४८-१५०॥ मतिज्ञानके ये विकल्प मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशममें भेद होनेसे प्रकट होते हैं तथा सम्यग्दृष्टि जीवोंके होते हैं। मिथ्यादृष्टि जीवोंका मतिज्ञान कुमतिज्ञान कहलाता है ॥१५१॥ अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे जीवमें शुद्धि होनेपर देशावधि, सर्वावधि और परमावधि यह तीन प्रकारका अवधिज्ञान होता है। यह अवधिज्ञान देश-प्रत्यक्ष है तथा पुद्गल द्रव्यको विषय करता है ॥१५२॥ मनःपर्यय ज्ञान भी देशप्रत्यक्ष ही है। इसके विपुलमति और ऋजुमतिके भेदसे दो भेद हैं तथा यह अवधिज्ञानकी अपेक्षा सूक्ष्म पदार्थको विषय करता है। अवधिज्ञान परमाणुको जानता है तो यह उसके अनन्तवें भाग तकको जान लेता है ॥१५३॥ अन्तिम ज्ञान केवलज्ञान है यह केवलज्ञानावरणकर्मके क्षयसे होता है, सर्व प्रत्यक्ष है, अविनाशी है और समस्त पदार्थोंको जाननेवाला है ॥१५४॥ परोक्ष प्रमाणका फल हेय पदार्थको छोड़ने और उपादेय पदार्थको ग्रहण करनेकी बुद्धि उत्पन्न होना है तथा प्रत्यक्ष प्रमाणका फल उपेक्षा—रागद्वेषका अभाव एवं उसके पूर्व मोहका क्षय होना है ॥१५५॥ मतिज्ञानादि चार ज्ञान परम्परासे मोक्षके कारण हैं और एक अविनाशी केवलज्ञान साक्षात् ही मोक्षका कारण है ॥१५६॥ प्रमाणके द्वारा जाने हुए पदार्थोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और शुभ क्रियाओंमें प्रवृत्ति होना सम्यक्-चारित्र कहलाता है ॥१५७॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों मोक्षप्राप्तिके उपाय हैं, इसलिए उत्तम सम्पदाकी इच्छा करनेवाले पुरुषको इनका श्रद्धान तथा तदनुरूप आचरण करना चाहिए ॥१५८॥ इन तीनोंसे बढ़कर दूसरा मोक्षका कारण न है, न था, और न होगा। यही सबका सार है ॥१५९॥ इस प्रकार आदि जिनेन्द्रके वचनरूपी औषधिका पानकर तीनों जगत् सन्देह रूपी रोगसे छूटकर ऐसे सुशोभित होने लगे मानो मुक्त ही हो गये हों—मोक्षको ही प्राप्त हो गये हों ॥१६०॥ उस कृतयुगमें जिन जीवोंने रत्नत्रयरूप आभूषणोंको पहलेसे ग्रहण कर रखा था उस समय भगवान्‌की दिव्यध्वनि सुननेसे उनकी भावना और भी दृढ़ हो गयी तथा कितने ही नवीन लोग मुनिधर्म एवं श्रावक धर्मकी दीक्षा ले सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे युक्त हो सुशोभित हुए ॥१६१॥ निर्मल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे युक्त चार प्रकारके देव, चतुर्विध संघसे युक्त तथा जगत्में विहार करनेके लिए उद्यत श्री जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१६२॥ गृहस्थाश्रमसे युक्त तथा श्रावकोंमें मुख्यताको प्राप्त राजा भरतेश्वर, जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजाकर उच्चकुलीन राजाओंके साथ हर्षित होता हुआ अयोध्याकी ओर वापस गया ॥१६३॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्यरचित हरिवंश पुराणमें प्रथम तीर्थंकरके द्वारा धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति होनेका वर्णन करनेवाला दशवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१०॥

□

सर्ग- ११

अथानन्तर समवसरणसे आकर भरतने पुत्र-जन्मका उत्सव किया, चक्ररत्नकी पूजा की और उसके बाद छह खण्डोंको जीतनेकी इच्छासे प्रस्थान किया ॥१॥ उस समय चतुरंग सेना उसके साथ थी, वे राजाओंके समूहसे युक्त थे और नाना दिशाओंसे आये हुए अपार जन-समूहके आगे-आगे चलनेवाले चक्ररत्नसे सहित थे ॥२॥ वे गंगा नदीके किनारे-किनारे चलकर गंगासागरपर पहुँचे। वहाँ गंगाद्वारपर उन्होंने मन, वचन, कायकी क्रियाको प्रशस्त कर तीन दिनका उपवास किया ॥३॥ जिसमें दो घोड़े जुते हुए थे ऐसे वेगशाली रथपर सवार होकर उन्होंने द्वार खोला और समुद्रमें घुटने पर्यन्त प्रवेश किया। उस समय लम्बी भुजाओंके धारक भरत अपने हाथमें वज्रकाण्ड नामक धनुष लिये हुए थे, तथा वैशाख आसनसे खड़े थे। वे दृष्टिके स्थिर करने, कड़ी मुट्ठी बाँधने और डोरीपर बाण स्थापित करनेमें अत्यन्त निपुण थे। उसी समय उन्होंने अपने नामसे चिह्नित अमोघ नामका शीघ्रगामी बाण छोड़ा ॥४–६॥ वज्रके समान चमकता हुआ बाण शीघ्र ही बारह योजन जाकर मागध देवके भवनमें गिरा और उसने भवनमें प्रवेश करते ही समस्त आकाशको शब्दायमान कर दिया ॥७॥ बाणके गिरते ही मागधदेवका भवन और हृदय दोनों ही एक साथ हिल उठे। वह बहुत ही क्षोभको प्राप्त हुआ। परन्तु जब उसने चक्रवर्तीके नामसे चिह्नित बाणको देखा और चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका है यह जाना तब वह अपने पुण्यको अल्प जान अपनी निन्दा करने लगा। तदनन्तर जिसका मान खण्डित हो गया था ऐसा मागधदेव हाथोंमें रत्न लेकर भरतके पास आया ॥८–९॥ आकर उस बुद्धिमान् देवने पृथिवीका सारभूत हार, मुकुट, रत्ननिर्मित दो कुण्डल, अच्छे-अच्छे रत्न, वस्त्र तथा तीर्थोदककी भेंट दी और कहा कि हे स्वामिन्! बताइए मैं क्या करूँ? मुझे आज्ञा दीजिए। तदनन्तर भरतसे विदा हो वह अपने स्थानपर गया और भरत भी वहाँसे चलकर दक्षिण दिशामें रहनेवाले महाबलवान् भूत और व्यन्तर देवोंके समूहको वश करते हुए समुद्रके वैजयन्त-द्वारपर जा पहुँचे ॥१०-१२॥ वहाँपर उन्होंने मागधदेवके समान उस प्रदेशके स्वामी वरतनु देवको बुलाया और वरतनु देवने आकर चूड़ामणि, सुन्दर कण्ठहार, कवच, वीरोंके बाजूबन्द, कड़े और करधनी भेंट कर भरतको प्रणाम किया। तदनन्तर सेवकवृत्तिको स्वीकार करनेवाले वरतनु भरतसे विदा ले अपने स्थानपर चला गया ॥१३-१४॥ वहाँसे चलकर भरत पश्चिम दिशाके समस्त राजाओं-को वश करते हुए वेदिकाके किनारे-किनारे चलकर सिन्धु नदीके मनोहर द्वारपर पहुँचे ॥१५॥ वहाँ इन्द्रके समान पराक्रमको धारण करनेवाले चक्रवर्ती भरतने गंगाद्वारके समान वहाँके अधिपति प्रभास देवको नम्रीभूत कर अपने वश किया ॥१६॥ तथा उससे सन्तानक वृक्षोंके पुष्पोंकी उत्तम माला, मोतियोंकी जाली, मुकुट और रत्नोंसे चित्र-विचित्र कटिसूत्र प्राप्त किया ॥१७॥

तदनन्तर भरत, चक्ररत्नके पीछे-पीछे चलकर विजयार्ध पर्वतकी वेदिकाके समीप आये। वहाँ उन्होंने उपवास कर पर्वतके अधिष्ठाता (विजयार्ध कुमार) देवका स्मरण किया ॥१८॥ वह देव अपने अवधिज्ञानसे भरतको वहाँ आया जानकर आया। उसने भरतको प्रणाम कर बड़ी ऋद्धियोंसे

उनका अभिषेक किया तथा झारी, कलशजल, उत्तम सिंहासन, छत्र और दो चमर भेंट कर कहा कि मैं आपका हूँ—आपका सेवक हूँ। इस प्रकार निवेदन कर वह चला गया ॥१९-२०॥ राजा भरत वहाँ चक्ररत्नकी पूजा कर तमिस्र गुहाके द्वारपर आये। वहीं घबड़ाया हुआ कृतमाल नामका देव उनके पास आया ॥२१॥ और तिलक आदि चौदह दिव्य आभूषण देकर तथा प्रणाम कर 'मैं आपका हूँ' यह कहता हुआ चला गया ॥२२॥ राजराजेश्वर भरतकी आज्ञासे उनके अयोध्य नामक सेनापतिने सूर्यके समान कान्तिवाले कुमुदामेलक नामक अश्वरत्नपर सवार हो तथा पीछेकी ओर अपना मुख कर दण्डरत्नसे गुहा द्वारके किवाड़ोंको ताड़ित किया और ताड़ित कर वह एकदम पीछे भाग गया ॥२३-२४॥ खुला हुआ गुहाद्वार जब छह माहमें ऊष्मारहित हो गया तब चक्रवर्तीने विजयपर्वत नामक हाथीपर सवार हो सेनाके साथ उसमें प्रवेश किया ॥२५॥ गुहाके बीचमें उन्मग्नजला और निमग्नजला नामकी दो नदियाँ थीं, उनके तटपर भरतने सेनाओंको छोड़ दिया—उन्हें विश्राम कराया ॥२६॥ उस गुफामें निरन्तर अन्धकार रहता था जिसे भरतने काकणी मणिकी किरणोंसे दूर कर दिया था। भरतकी सेनाने वहाँ आलस्यरहित होकर एक दिन-रात निवास किया ॥२७॥ कामवृष्टि नामक गृहपतिरत्न और रत्नभद्रमुख नामक स्थपतिरत्न इन दोनोंने उन नदियोंपर मजबूत पुल बनाये ॥२८॥ सेना उन पुलोंके द्वारा शीघ्र ही नदियोंको पार कर आगे बढ़ गयी और पहलेकी तरह उत्तर द्वारको खोलकर उत्तर भारतमें जा पहुँची ॥२९॥ उत्तर भारतके हजारों म्लेच्छ राजा चक्रवर्तीकी अपूर्व सेनाको देखकर क्षुभित हो गये और शीघ्र ही सामने आकर अनायास युद्ध करने लगे ॥३०॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे अयोध्य सेनापतिने युद्धमें म्लेच्छ राजाओंके साथ युद्ध कर तथा उन्हें शीघ्र ही खदेड़कर अपना 'अयोध्य' नाम सार्थक किया ॥३१॥ सेनापतिसे भयभीत हुए म्लेच्छ, अपने कुलदेवता, दर्भशय्यापर शयन करनेवाले एवं भयंकर मेघमुख नागकुमारोंकी शरण गये ॥३२॥ जिसमें मेघमुख देव आकाशको व्याप्तकर युद्धके लिए आ डटे परन्तु जयकुमारने उनके साथ युद्ध कर उन्हें परास्त कर दिया और स्वयं 'मेघस्वर' यह नाम प्राप्त किया ॥३३॥ कुछ देर वाद मेघमुख देव भयंकर मेघोंसे आकाशको व्याप्त कर मुट्ठी बराबर मोटी-मोटी धाराओंसे सेनाके मस्तकपर जलवर्षा करने लगे ॥३४॥ तदनन्तर जिसमें बिजलीके साथ वज्रकी भयंकर गर्जना हो रही थी ऐसी जलवृष्टि देखकर चक्रवर्तीने सेनाके नीचे चर्मरत्न और ऊपर छत्ररत्न फैला दिया ॥३५॥ बारह योजन पर्यन्त फैली एवं जलके भीतर तैरती हुई वह सेना अण्डाके समान जान पड़ती थी। वह सेना सात दिन तक इसी तरह भयभीत रही ॥३६॥ तदनन्तर निधियोंके स्वामी चक्रवर्तीने कुपित होकर गणबद्ध देवोंको आज्ञा दी और उन्होंने उन मेघमुख देवोंको परास्त कर खदेड़ दिया ॥३७॥ तत्पश्चात् जिन्होंने वृष्टिका संकोच कर लिया था ऐसे मेघमुख देवोंकी प्रेरणा पाकर वे म्लेच्छ राजा उत्तमोत्तम कन्याएँ लेकर चक्रवर्तीकी शरणमें आये ॥३८॥ चक्रवर्तीने उन भयभीत तथा आज्ञा पानेकी इच्छा करनेवाले म्लेच्छ राजाओंको अभयदान दिया और उसके बाद श्रमसे रहित हो सिन्धु नदीकी वेदिकाके किनारे-किनारे गमन किया ॥३९॥ बीचमें सिन्धुकूटपर निवास करनेवाली सिन्धु देवीने भरतका अभिषेक कर उन्हें पादपीठसे सुशोभित दो उत्तम आसन भेंट किये ॥४०॥ चक्रवर्ती सेनाको हिमवान् पर्वतकी तराईमें ठहराकर तथा स्वयं तीन दिनके उपवासका नियम लेकर दर्भशय्यापर आरूढ हुए ॥४१॥ तदनन्तर जिन्होंने तीर्थजलमें स्नान किया था, उत्तम वेषभूषा धारण की थी, जो घोड़ोंके रथपर सवार थे, जिनके आगे-आगे चक्ररत्न चल रहा था और जो रणमें अत्यन्त कुशल थे ऐसे भरत, जहाँ हिमवान् पर्वतका हिमवत् नामक छोटा कूट था वहाँ आये और बाण हाथमें ले तथा वैशाख आसनसे खड़े होकर बोले कि 'हे उस कूटमें रहनेवाले नागकुमार, सुपर्णकुमार

आदि देवो ! तुम लोग शीघ्र ही मेरी आज्ञा सुनो।' यह कह उन्होंने धनुष खींचकर बाण छोड़ा ॥४२-४४॥ वज्रके समान शब्द करता हुआ वह बाण बारह योजन दूर जाकर गिरा तथा हिमवत् कूटपर रहनेवाला देव उसे देखकर भरतके पास आया ॥४५॥ उसने दिव्य ओषधिओंकी माला तथा दिव्य हरिचन्दन देकर भरतकी पूजा की। तदनन्तर आज्ञाकी इच्छा करता हुआ वह भरतसे विदा ले अपने स्थानपर चला गया ॥४६॥ चक्रवर्ती वहांसे चलकर वृषभाचल पर्वतपर आये और वहाँ उन्होंने काकणी रत्नसे साफ-साफ अपना यह नाम लिखा कि 'मैं भगवान् वृषभदेव-का पुत्र भरत चक्रवर्ती हूँ'। नाम लिखकर तथा बाँचकर वे विजयार्ध पर्वतकी वेदिकाके समीप आये ॥४७-४८॥ वहाँ जाकर उन्होंने उपवास धारण किया। दोनों श्रेणियोंके निवासी नमि और विनमिको जब यह ज्ञात हुआ कि भरत यहाँ विद्यमान हैं तब वे गन्धार आदि विद्याधरोंके साथ वहाँ आये ॥४९॥ समस्त विद्याधरोंने उन्हें नमस्कार किया और भरतने नमि, विनमिसे सुभद्रा नामक स्त्री-रत्न ग्रहण किया। तत्पश्चात् वे गंगा नदीकी वेदिकाके किनारे-किनारे चलकर गंगा-कूटके समीप आये और तीन दिनके उपवासका नियम लेकर वहाँ ठहर गये। वहाँ गंगाकूटपर रहनेवाली गंगा देवीने उनके आनेका समाचार जानकर सुवर्णमय एक हजार कलशोंसे उनका अभिषेक किया ॥५०-५१॥ अभिषेकके बाद उसने पादपीठसे युक्त दो रत्नोंके सिंहासन भेंट किये। यहां विजयार्ध पर्वतका स्वामी विजयार्ध कुमारदेव चक्रवर्तीकी आज्ञामें खड़ा रहा ॥५२॥

तदनन्तर वहांसे चलकर अठारह हजार म्लेच्छ राजाओंको वश करते और उनसे उत्तमोत्तम रत्नोंकी भेंट स्वीकार करते हुए भरत विजयार्धकी दूसरी गुफा खण्डकाप्रपातके समीप पहुँचे ॥५३॥ वहां वे तीन दिनके उपवासका नियम लेकर ठहर गये। यहां नाट्यमाल नामक देवने उन्हें नाना प्रकारके आभूषण और बिजलीके समान चमकते हुए दो कुण्डल भेंट किये ॥५४॥ जिस प्रकार पहले अयोध्य सेनापतिने दण्डरत्नके द्वारा सिन्धु नदीको गुफाका द्वार खोला था उसी प्रकार यहां भी उसने दण्डरत्नसे गंगानदीकी गुफाका द्वार खोला और भरत उस द्वारसे प्रवेश कर सेना-सहित बाहर निकल आये ॥५५॥ इस तरह अतिशय कुशल भरतने साठ हजार वर्षोंमें छह खण्डोंसे युक्त समस्त भरतक्षेत्रको जीतकर अयोध्या नगरीकी ओर प्रस्थान किया ॥५६॥

अथानन्तर—समीप आनेपर जब सुदर्शनचक्रने अयोध्यामें प्रवेश नहीं किया तब भरतने सन्देहयुक्त हो बुद्धिसागर पुरोहितसे पूछा कि समस्त भरतक्षेत्रको वश कर लेनेपर भी यह दिव्य चक्ररत्न अयोध्यामें प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है ? अब तो हमारे युद्धके योग्य कोई नहीं है ? ॥५७-५८॥ पुरोहितने कहा कि आपके जो महाबलवान् भाई हैं वे आपकी आज्ञा नहीं सुनते हैं ॥५९॥ यह सुनकर भरतने शीघ्र ही उनके पास साम, दाम आदि नीतिके साथ दूत भेजे ॥६०॥ तदनन्तर इस निमित्तसे जिन्हें बोधिकी प्राप्ति हुई थी ऐसे भरतके अभिमानी भाइयोंने त्यागको ही महोत्सव मान अपने-अपने राज्य छोड़ दिये ॥६१॥ जो संसारसे भयभीत थे, जिनकी मानरूपी शल्य छूट चुकी थी, और जो अन्तरंगमें मोक्षकी इच्छा रखते थे ऐसे भरतके समस्त भाइयों ने भगवान् वृषभदेवके समीप जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥६२॥ उन सुकुमार एवं भव्य-शिरोमणि कुमारोंने जो देश छोड़े थे विद्वानोंको उनके नाम इस प्रकार जानना चाहिए ॥६३॥ कुरुजांगल, पंचाल, सूरसेन, पटच्चर, तुलिंग, काशि, कौशल्य, मद्रकार, वृकार्थक, सोल्व, आवृष्ट, त्रिगर्त, कुशाग्र, मत्स्य, कुणीयान्, कोशल और मोक ये मध्यदेश थे ॥६४-६५॥ वाह्लीक, आत्रेय, काम्बोज, यवन, आभीर, मद्रक, क्वाथतोय, शूर, वाटवान, कैकय, गान्धार, सिन्धु, सौवीर, भारद्वाज, दशेरुक, प्रास्थाल और तोर्णकर्ण ये देश उत्तरकी ओर स्थित थे ॥६६-६७॥ खड्ग, अंगारक, पौण्ड्र, मल्ल, प्रवक, मस्तक, प्राद्योतिष, वंग, मगध, मानवर्तिक,

मलद और भार्गव, ये देश पूर्व दिशामें स्थित थे। बाणमुक्त, वैदर्भ, माणव, सक्कापिर, मूलक, अश्मक, दाण्डीक, कलिंग, आंसिक, कुन्तल, नवराष्ट्र, माहिषक, पुरुष और भोगवर्धन, ये दक्षिण दिशाके देश थे। माल्य, कल्लीवनोपान्त, दुर्ग, सूर्पार, कर्बुक, काक्षि, नासारिक, अगर्त, सारस्वत, तापस, महिम, भरुकच्छ, सुराष्ट्र और नर्मद, ये सब देश पश्चिम दिशामें स्थित थे। दशार्णक, किष्कन्ध, त्रिपुर, आवर्त, नैषध, नैपाल, उत्तमवर्ण, वैदिश, अन्तप, कौशल, पत्तन और विनिहात्र, ये देश विन्ध्याचलके ऊपर स्थित थे ॥६८–७४॥ भद्र, वत्स, विदेह, कुश, भंग, सैतव और वज्रखण्डिक, ये देश मध्यदेशके आश्रित थे ॥७५॥ पिता—भगवान् वृषभदेवके द्वारा दिये हुए इन सब देशोंको मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले भरतके छोटे भाइयोंने स्त्रियोंके समान छोड़ दिया साथ ही उन्होंने आज्ञाकारी सेवकोंका भी परित्याग कर दिया ॥७६॥

अथानन्तर कुमार बाहुबलीने भरतके प्रति अपनी प्रतिकूलता प्रकट की। उन्होंने उनके सुदर्शनचक्रको अलातचक्रके समान तुच्छ समझा और 'मैं आपके आधीन नहीं हूँ' यह कहकर दूत भेज दिये तथा वे शीघ्र ही अक्षौहिणी सेना साथ ले युद्धके लिए पोदनपुरसे निकल पड़े ॥७७–७८॥ इधर सेनारूपी सागरसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए चक्रवर्ती भरत भी आ पहुँचे जिससे वितता नदीके पश्चिम दिग्भागमें दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ हुई ॥७९॥ तदनन्तर दोनों राजाओंके मन्त्रियोंने परस्पर सलाह कर कहा कि देशवासियोंका क्षय न हो इसलिए दोनों ही राजाओंमें धर्मयुद्ध हो ॥८०॥ भरत और बाहुबलीने मन्त्रियोंकी यह बात मानकर सर्वप्रथम दृष्टियुद्ध शुरू किया और आकाशमें खड़े हुए देव और विद्याधरोंने दोनोंको चिरकाल तक टिमकाररहित नेत्रोंसे युक्त देखा। अर्थात् दोनों भाई चिरकाल तक टिमकाररहित नेत्रोंसे खड़े रहे और कोई किसीसे हारा नहीं। परन्तु अन्तमें छोटे भाईने बड़े भाईको हरा दिया क्योंकि बड़े भाई पाँच सौ धनुष ऊँचे थे इसलिए उनकी दृष्टि ऊपरकी ओर थी और छोटे भाई उनसे पचीस धनुष ऊँचे थे इसलिए उनकी दृष्टि नीचेकी ओर थी ॥८१–८२॥ दृष्टियुद्धके बाद दोनों भाइयोंका तालाबमें भयंकर जलयुद्ध हुआ। उस समय दोनों ही भाई एक दूसरेपर अपनी भुजाओंसे लहरें उछाल-उछालकर दुःसह आघात कर रहे थे। परन्तु इस युद्धमें भी बड़े भाई भरत हार गये ॥८३॥ तदनन्तर दोनोंका रंगभूमिमें चिरकाल तक मल्लयुद्ध हुआ। उनका वह मल्लयुद्ध तालोंकी फटाटोपसे युक्त था तथा नाना प्रकारके पैंतरा बदलनेकी चतुराईसे पूर्ण था ॥८४॥ उस समय युद्ध करते हुए दोनों वरोंके पदाघातसे जिसका हृदय फट गया था ऐसी पृथिवीरूपी स्त्री भयसे ही मानो चिल्ला उठी थी ॥८५॥ अन्तमें दयावान् बाहुबली अपने भुजयन्त्रसे भरतको पकड़कर तथा ऊपरकी ओर उठाकर इस प्रकार खड़े हो गये मानो कोई देव रत्नोंके पर्वतको उठाकर खड़ा हो ॥८६॥ देखनेवाले देवोंके समूह, विद्याधरों तथा भूमिगोचरी मनुष्योंने उसी समय जोरसे यह शब्द किया कि अहो! वीर्यम्—आश्चर्यकारी शक्ति है, अहो! धैर्यम्—आश्चर्यकारी धैर्य है, साधु-साधु—ठीक है, ठीक है आदि ॥८७॥ तदनन्तर अच्छी तरह जीतकर जब बाहुबलीने भरतको छोड़ा तब उन्होंने क्रोधके कारण अपमृत्यु करनेवाले सुदर्शनचक्रका स्मरण किया और स्मरण करते ही हजार अरोंको धारण करनेवाला सुदर्शनचक्र उनके हाथमें आकर खड़ा हो गया ॥८८॥ एक हजार यक्ष जिसकी रक्षा कर रहे थे तथा जो सूर्यके समान देदीप्यमान प्रभाका धारक था ऐसे सुदर्शनचक्रको उन्होंने ऊपरकी ओर घुमाकर भाईको मारनेके लिए छोड़ा ॥८९॥ परन्तु वह देवाधिष्ठित चक्र चरमोत्तम शरीरके धारक बाहुबलीके मारनेमें असमर्थ रहा इसलिए उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वापस आ गया ॥९०॥ तदनन्तर बाहुबली बड़े भाईको निर्दय देख हाथोंसे कान ढँककर लक्ष्मीकी इस प्रकार निन्दा करने लगे ॥९१॥ जिस प्रकार कीचड़ स्वच्छ, अनुकूल, एवं मिले हुए जलको विपरीत—

मलिन कर देती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी स्वच्छ, अनुकूल और मिले हुए मनुष्योंके चित्तको विपरीत कर देती है अतः इसे धिक्कार हो ॥९२॥ जिस प्रकार यन्त्र-मूर्ति—(कोल्हू) मधुर एवं चिक्कण स्वभाववाले तिलहनोंके दीर्घकालिक स्नेह—तेलको हर लेती है तथा अत्यन्त अस्थिर होती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी मधुर एवं स्नेहपूर्ण स्वभाववाले मनुष्योंके चिर-कालिक स्नेह—प्रियको नष्ट कर देती है एवं अत्यन्त अस्थिर है अतः इसे धिक्कार हो ॥९३॥ जिस प्रकार दृष्टिविष सर्पकी दृष्टि नरेन्द्र—विषवैद्योंके लिए भी सब ओरसे स्वयं अत्यन्त दुःखसे देखनेके योग्य तथा भय उत्पन्न करनेवाली है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी नरेन्द्र—राजाओंके लिए भी सब ओरसे अत्यन्त दुःप्रेक्ष्य—दुःखसे देखने योग्य तथा भय उत्पन्न करनेवाली है इसलिए इसे धिक्कार हो ॥९४॥ जिस प्रकार अग्निकी शिखा सदा मूल, मध्य और अन्तमें दुःखकर स्पर्शसे सहित है तथा देदीप्यमान होकर भी सबको सन्ताप करनेवाली है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी आदि, मध्य और अन्तमें दुःखकर स्पर्शसे सहित है—सब दशाओंमें दुःख देनेवाली है तथा देदीप्यमान—तेज तर्राटेसे युक्त होनेपर भी सबको सन्ताप उत्पन्न करनेवाली है—आकुलताकी जननी है इसलिए इसे धिक्कार हो ॥९५॥ मनुष्यलोकमें सुख वही है जो चित्तको सन्तुष्ट करनेवाला हो परन्तु बन्धुजनोंमें विरोध होनेपर मनुष्योंको न सुख प्राप्त होता है और न धन ही उनके पास स्थिर रहता है ॥९६॥ जिस प्रकार शीत-ज्वरसे आक्रान्त मनुष्योंके लिए शीतल स्पर्श दुःख उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार बन्धुजनोंके विरुद्ध होनेपर भोग भी मनुष्योंके लिए दुःख उत्पन्न करते हैं ॥९७॥ इस प्रकार विचार कर तथा राज्यका परित्याग कर बाहुबली तप करने लगे और कैलास पर्वतपर एक वर्षका प्रतिमा योग लेकर निश्चल खड़े हो गये ॥९८॥ उनके चरण, वामीके बिलोंसे निकले हुए मणिभूषित सर्पोंसे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि पहले मणिभूषित आश्रित राजाओंसे सुशोभित होते थे ॥९९॥ जिस प्रकार पहले कोमलांगी वल्लभा उनके समस्त शरीरका आलिंगन करती थी उसी प्रकार कोमलांगी माधवीलता उनके मुनि होनेपर भी उन बाहुबलीके समस्त शरीरका आलिंगन कर रही थी ॥१००॥ दो विद्याधर परियाँ उनके शरीरपर लिपटी हुई लताको दूर करती रहती थीं जिससे श्याममूर्तिके धारक एवं स्थिर खड़े हुए योगिराज बाहुबली मरकतमणिके पर्वतके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१०१॥ तदनन्तर भरतने आकर जिन्हें नमस्कार किया था ऐसे बाहुबली मुनिराज कषायोंका अन्त कर तथा केवलज्ञान उत्पन्न कर भगवान् वृषभदेवके सभासद् हो गये—उनके समवसरणमें पहुँच गये ॥१०२॥

तदनन्तर चौदह महारत्नों और नौ निधियोंसे युक्त अतिशय बुद्धिमान् चक्रवर्ती भरत, पृथिवीका निष्कण्टक उपभोग करने लगे ॥१०३॥ भरत महाराज दयासे युक्त हो बिना किसी परीक्षाके बारह वर्ष तक लोगोंके लिए मनचाहा दान देते रहे ॥१०४॥ तदनन्तर जिन-शासन सम्बन्धी वात्सल्य और भक्तिके भारसे वशीभूत होकर उन्होंने जौ तथा धान्य आदिके अंकुरोंसे श्रावकोंकी परीक्षा की, काकिणी रत्नसे निर्मित रत्नत्रयसूत्र—यज्ञोपवीतको उनका चिह्न बनाया और आदर-सत्कार कर कृतयुगमें उन्हें भक्तिपूर्वक दान दिया ॥१०५–१०६॥ आगे चलकर भरतके द्वारा आदरको प्राप्त हुए वे व्रती ब्राह्मण कहे जाने लगे। इस तरह पहले कहे हुए तीन वर्णोंके साथ मिलकर अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हो गये ॥१०७॥ १ चक्र, २ छत्र, ३ खड्ग, ४ दण्ड, ५ काकिणी, ६ मणि, ७ चर्म, ८ सेनापति, ९ गृहपति, १० हस्ती, ११ अश्व, १२ पुरोहित, १३ स्थपति और १४ स्त्री चक्रवर्तीके ये चौदह रत्न थे, इनमें प्रत्येकको एक-एक हजार देव रक्षा करते थे तथा ये अत्यधिक सुशोभित थे ॥१०८–१०९॥ १ काल, २ महाकाल, ३ पाण्डुक, ४ माणव, ५ नौसर्प, ६ सर्वरत्न, ७ शंख, ८ पद्म और ९ पिंगल....ये पुण्यशाली चक्रवर्तीकी नौ

निधियाँ थीं। ये सभी निधियाँ अविनाशी थीं, निधिपाल नामक देवोंके द्वारा सुरक्षित थीं और निरन्तर लोगोंके उपकारमें आती थीं ॥११०–१११॥ ये गाड़ीके आकारकी थीं, चार-चार भौरों और आठ-आठ पहियोंसे सहित थीं। नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी, आठ योजन गहरी और वक्षार गिरिके समान विशाल कुक्षिसे सहित थीं। प्रत्येकको एक-एक हजार यक्ष निरन्तर देख-रेख रखते थे ॥११२–११३॥

इनमें-से पहली कालनिधिमें ज्योतिषशास्त्र, निमित्तशास्त्र, न्यायशास्त्र, कलाशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र, एवं पुराण आदिका सद्भाव था अर्थात् कालनिधिसे इन सबकी प्राप्ति होती थी ॥११४॥ दूसरी महाकाल निधिमें विद्वानोंके द्वारा निर्णय करने योग्य पंचलोह आदि नाना प्रकारके लोहोंका सद्भाव था अर्थात् उससे इन सबकी प्राप्ति होती थी ॥११५॥ तीसरी पाण्डुक निधिमें शालि, व्रीहि, जौ आदि समस्त प्रकारकी धान्य तथा कडुए चिरपरे आदि पदार्थोंका सद्भाव था ॥११६॥ चौथी माणवक निधि, कवच, ढाल, तलवार, बाण, शक्ति, धनुष तथा चक्र आदि नाना प्रकारके दिव्य शस्त्रोंसे परिपूर्ण थी ॥११७॥ पाँचवीं सर्प-निधि, शय्या, आसन आदि नाना प्रकारकी वस्तुओं तथा घरमें उपयोग आनेवाले नाना प्रकारके भाजनोंकी पात्र थी ॥११८॥ छठी सर्वरत्न निधि इन्द्रनील मणि, महानील मणि, वज्रमणि आदि बड़ी-बड़ी शिखाके धारक उत्तमोत्तम रत्नोंसे परिपूर्ण थी ॥११९॥ सातवीं शखनिधि, भेरी, शंख, नगाड़े, वीणा, झल्लरी और मृदंग आदि आघातसे तथा फूँककर बजाने योग्य नाना प्रकारके बाजोंसे पूर्ण थी ॥१२०॥ आठवीं पद्मनिधि पाटाम्बर, चीन, महानेत्र, दुकूल, उत्तम कम्बल तथा नाना प्रकारके रंग-बिरंग वस्त्रोंसे परिपूर्ण थी ॥१२१॥ और नौवीं पिंगलनिधि कड़े तथा कटिसूत्र आदि स्त्री-पुरुषोंके आभूषण और हाथी, घोड़ा आदिके अलंकारोंसे परिपूर्ण थी ॥१२२॥ ये नौकी नौ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपतिके आधीन थीं और सदा चक्रवर्तीके समस्त मनोरथोंको पूर्ण करती थीं ॥१२३॥ चक्रवर्तीके एक-से-एक बढ़कर तीन सौ साठ रसोइया थे जो प्रतिदिन कल्याण-कारी सीथोंसे युक्त आहार बनाते थे ॥१२४॥ एक हजार चावलोंका एक कवल होता है ऐसे बत्तीस कबल प्रमाण चक्रवर्तीका आहार था, सुभद्राका आहार एक कवल था और एक कबल अन्य समस्त लोगोंकी तृप्तिके लिए पर्याप्त था और एक कबल अन्य समस्त लोगोंकी तृप्तिके लिए पर्याप्त था ॥१२५॥ चक्रवर्तीके निन्यानवे हजार चित्रकार थे, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा थे, उतने ही देश थे और देवांगनाओंको भी जीतनेवाली छियानबे हजार स्त्रियाँ थीं ॥१२६-१२७॥ एक करोड़ हल थे, तीन करोड़ कामधेनु गायें थीं, वायुके समान वेगशाली अठारह करोड़ घोड़े थे, मत्त एवं धीरे-धीरे गमन करनेवाले चौरासी लाख हाथी और उतने ही उत्तम रथ थे ॥१२८-१२९॥ अर्ककीर्ति और विवर्धनको आदि लेकर पाँचसौ चरम शरीरी तथा आज्ञाकारी पुत्र थे ॥१३०॥ १ भाजन, २ भोजन, ३ शय्या, ४ सेना, ५ वाहन, ६ आसन, ७ निधि, ८ रत्न, ९ नगर और १० नाट्य ये दश प्रकारके भोग थे ॥१३१॥ सेवामें निपुण, प्रमादरहित एवं परमहितकारी सोलह हजार गणबद्ध देव सदा उनकी सेवा करते थे ॥१३२॥ यद्यपि राजाधिराज चक्रवर्ती इस प्रकारके विभवसे सहित थे तथापि उनकी बुद्धि शास्त्रोंका अर्थ विचारनेमें निरत रहती थी और वे दुर्गतिरूपी ग्रहका सदा निग्रह करते रहते थे ॥१३३॥ भुजाओंसे शत्रुओंका मथन करनेवाले चक्रवर्तीने यद्यपि बत्तीस हजार राजाओंको बिखेरकर उनका अभिमान नष्ट कर दिया था तथापि स्वयं अभिमानसे रहित थे ॥१३४॥ जिनका वक्षःस्थल श्रीवृक्षके चिह्नसे सहित था, जो चौंसठ लक्षणोंसे युक्त थे, जो इन्द्रकी लक्ष्मीको तिरस्कृत करनेवाले थे और जो नित्य एवं अखण्डित पौरुषको धारण करनेवाले थे ऐसे स्वयम्भूपुत्र सोलहवें कुलकर भरत महाराज जब भरत क्षेत्र सम्बन्धी छह खण्डोंकी भूमिका

नीतिपूर्वक शासन करते थे तब धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें यथेष्ट अनुराग रखनेवाले लोग निर्विघ्न रूपसे निरन्तर आनन्दका उपभोग करते थे ॥१३५-१३७॥ जो अपनी लक्ष्मीके द्वारा बिना वचन बोले ही अन्य मनुष्योंके लिए पूर्वजन्ममें किये हुए धर्मका फल दिखला रहे थे ऐसे भरत महाराज किनके लिए धर्मके उपदेशक नहीं थे। भावार्थ—उनकी अनुपम विभूतिको देखकर लोग अपने आप समझ जाते थे कि यह इनके पूर्वकृत धर्मका फल है इसलिए सबको धर्म करना चाहिए ॥१३८॥ इस प्रकार पूर्वजन्ममें आचरण किये हुए धर्मके माहात्म्यसे जो स्वयं अतिशय महान् थे, पौरुषसे युक्त थे, सुखके भाण्डार थे, लोगोंके लिए कल्पवृक्षस्वरूप थे, सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे रंजित मनोवृत्तिसे युक्त थे, और लक्ष्मीसे इन्द्रके समान थे ऐसे चक्रवर्ती भरत, सिंहकी चेष्टाके समान सुदृढ़ मनको जिनमार्गमें लीन रखने लगे ॥१३९॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें भरतकी दिग्विजयका वर्णन करनेवाला ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥११॥

सर्ग- १२

अथानन्तर चक्रवर्ती भरत समवसरणमें जाकर निरन्तर भगवान् वृषभदेवको नमस्कार करते थे और त्रेसठ शलाकापुरुषोंके पुराण विस्तारके साथ सुनते थे ।।१।। उन्होंने चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दनाके लिए अपने महलोंके द्वारपर शिरका स्पर्श करनेवाली वन्दनमालाएँ बँधवायी थीं। भावार्थ—चक्रवर्ती भरतने अपने महलोंके द्वारपर रत्ननिर्मित चौबीस घण्टियोंसे सहित ऐसी वन्दन-मालाएँ बँधवायी थीं जिनका निकलते समय शिरसे स्पर्श होता था। घण्टियोंकी आवाज सुनकर भरतको चौबीस तीर्थंकरोंका स्मरण हो आता था जिससे वह उन्हें परोक्ष नमस्कार करता था ।।२।। किसी समय चक्रवर्तीके साथ विवर्द्धन कुमार आदि नौ सौ तेईस राजकुमार भगवान्के समवसरणमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने पहले कभी तीर्थंकरके दर्शन नहीं किये थे। वे अनादि मिथ्यादृष्टि थे और अनादि कालसे ही स्थावर कायोंमें जन्ममरण कर क्लेशको प्राप्त हुए थे। भगवान्की लक्ष्मी देखकर वे सब परम आश्चर्यको प्राप्त हुए और अन्तर्मुहूर्तमें ही उन्होंने संयम प्राप्त कर लिया ।।३-५।। चक्रवर्तीने उन सब कुमारोंकी तथा जिनेन्द्रदेवके शासनकी प्रशंसा की और अन्तमें वे श्रीजिनेन्द्र भगवान् तथा मुनिसंघको नमस्कार कर प्रसन्न होते हुए अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ।।६।।

तदनन्तर धीरे-धीरे समय व्यतीत होनेपर लोगोंकी रक्षा करनेवाले एवं चतुर्वर्गके वास्तविक ज्ञानरूपी जलसे प्रक्षालित चित्तके धारक महाराज भरतके साम्राज्यमें सर्वप्रथम स्वयंवर प्रथाका प्रारम्भ हुआ। स्वयंवर मण्डपमें अनेक भूमिगोचरी तथा विद्याधर इकट्ठे हुए। बनारसके राजा अकम्पनकी पुत्री सुलोचनाने हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभके पुत्र मेघेश्वर जयकुमारको वरा। अर्ककीर्ति और जयकुमारका युद्ध हुआ जिसमें जयकुमारने अर्ककीर्तिको बांध लिया। पश्चात् अकम्पनकी प्रेरणासे जयकुमारने अर्ककीर्तिको छोड़ दिया एवं उसका सत्कार किया और चक्रवर्तीने सुलोचनाके पति जयकुमारका सत्कार किया ।।७-९।।

तदनन्तर किसी समय हस्तिनापुरका राजा जयकुमार स्त्रियोंसे घिरा महलकी छतपर बैठा था कि आकाशमें जाते हुए विद्याधर और विद्याधरीको देखकर अकस्मात् मूर्च्छित हो गया ।।१०।। घबड़ायी हुई अन्तःपुरकी स्त्रियोंने उसकी मूर्च्छाका उपचार किया जिससे सचेत होकर वह कहने लगा कि 'हाय ! प्रभावति ! तू कहाँ गयी ?' ।।११।। उधर विद्याधर और विद्याधरीको देखकर जयकुमारको जातिस्मरण हुआ और इधर महलके छज्जेपर क्रीड़ा करते हुए कबूतर और कबूतरीका युगल देखनेसे सुलोचनाको भी जातिस्मरण हो गया जिससे वह भी मूर्च्छित हो गयी। पश्चात् मूर्च्छाका उपचार प्राप्त कर सुलोचना हिरण्यवर्माका नाम लेती हुई उठी ।।१२-१३।। प्रियाके मुखसे हिरण्यवर्माका नाम सुनकर जयकुमारने उससे कहा कि पहले मैं ही हिरण्यवर्मा था। इसके उत्तरमें सुलोचनाने भी प्रसन्न होती हुई कहा कि वह प्रभावती मैं ही हूँ ।।१४।। इस प्रकार पति-पत्नी दोनोंने अनेक चिह्नोंसे हम पहले विद्याधर थे, इसका स्पष्ट निर्णय कर लिया ।।१५।।

तदनन्तर जिसका चित्त कौतुकसे व्याप्त हो रहा था ऐसे अन्तःपुरके समस्त लोगोंकी 'यह

क्या है' इस जिज्ञासाको दूर करनेके लिए जयकुमारकी प्रेरणा पाकर सुलोचनाने दोनोंके पिछले चार भवोंसे सम्बन्ध रखनेवाला चरित कहना शुरू किया। उनका वह चरित सुख और दुःखरूपी रससे मिला हुआ था तथा संयोग सम्बन्धी सुखसे सहित था ॥१६-१७॥ उसने बताया कि सुकान्त और रतिवेगा नामक दम्पतिके साथ उट्टिटिकारिका क्या सम्बन्ध था तथा किस प्रकार उसने उक्त दोनों दम्पतियोंको जलाकर उनका करुणापूर्ण मरण किया था। उट्टिटिकारि मरकर बिलाव हुआ और सुकान्त तथा रतिवेगा मरकर कबूतर-कबूतरी हुए तो उट्टिटिकारिने कबूतर-कबूतरीका भक्षण किया। जिससे उन्हें मरते समय बड़ा दुःख उठाना पड़ा ॥१८-१९॥ मुनिदानकी अनुमोदनासे कबूतरीका जीव प्रभावती नामकी विद्याधरी हुई और कबूतरका जीव हिरण्यवर्मा नामका विद्याधर हुआ तथा दोनों ही विद्याधरोंकी लक्ष्मीका उपभोग करते रहे। कदाचित् हिरण्यवर्मा और प्रभावती वनमें तपस्या करते थे, उसी समय अपने पूर्व भवके वैरी—मार्जारके जीव (विद्युद्वेग नामक चोर) ने उन्हें अग्निमें जला दिया। संक्लिष्ट परिणामोंके कारण हिरण्यवर्मा और प्रभावती मरकर प्रथम स्वर्गमें देव-देवी हुए और विद्युद्वेग चोरका जीव मरकर नरक गया। किसी समय उक्त देव-देवियोंका युगल क्रीड़ाके लिए पृथिवीपर आया था और विद्युद्वेगका जीव नरकसे निकलकर भीम नामका साधु हुआ था। कारण पाकर तीनों जीवोंने परस्पर क्षमा-भाव धारण किया। काल पाकर भीम मुनि तो मोक्ष चले गये और देवदम्पती स्वर्गसे च्युत होकर हम दोनों हुए हैं। इस प्रकार स्वर्गसे च्युत होने पर्यन्त देवदम्पतीका चरित जैसा देखा, सुना अथवा अनुभव किया था वैसा सुलोचनाने विस्तारके साथ वर्णन किया ॥२०-२३॥ तदनन्तर जयकुमारकी आज्ञा पाकर सुलोचनाने श्रीपाल चक्रवर्तीका भी चरित कहा जिसे अन्तःपुरके साथ-साथ सुनकर जयकुमार परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२४॥ जो पाँच भवोंके सम्बन्धसे समुत्पन्न स्नेहरूपी सागरमें निमग्न थे ऐसे जयकुमार और सुलोचनाको स्मरण मात्रसे ही पूर्व भव सम्बन्धी विद्याएँ प्राप्त हो गयीं ॥२५॥ तदनन्तर विद्याके प्रभावसे विद्याधर और विद्याधरियोंकी शोभाको जीतते हुए वे दोनों विद्याधरोंके लोकमें विहार करने लगे ॥२६॥ धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग-को पुष्ट करनेवाला जयकुमार कभी जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना कर सुमेरुपर्वतकी गुफाओंमें सुलोचनाके साथ रमण करता था और कभी जहाँ किन्नर देव गाते थे ऐसे कुलाचलोंके नितम्बोंपर विशाल नितम्बोंसे सुशोभित सुन्दरी सुलोचनाके साथ क्रीड़ा करता था ॥२७-२८॥ वह यद्यपि कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ था तथापि कला गुणमें विदग्ध आर्य दम्पतीके समान भोगभूमियोंमें इच्छानुसार क्रीड़ा करता था ॥२९॥

किसी समय इन्द्रके द्वारा की हुई प्रशंसासे प्रेरित होकर रतिप्रभ नामक देवने अपनी स्त्रीके साथ सुमेरु पर्वतपर जयकुमारके शीलकी परीक्षा की और परीक्षा करनेके बाद उसकी पूजा की ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि सब प्रकारकी शुद्धियोंमें शीलशुद्धि ही प्रशंसनीय है। जो मनुष्य शीलकी शुद्धिसे विशुद्ध हैं उनके देव भी किंकर हो जाते हैं ॥३१॥ बहुत पत्नियों और बहुत पुत्रोंसे सुशोभित जयकुमार अपने छोटे भाई विजयके साथ उत्तमोत्तम भोग भोगता रहा ॥३२॥

तदनन्तर किसी दिन वह सुलोचनाके साथ पर्वतोंपर क्रीड़ा कर श्री वृषभ जिनेन्द्रकी वन्दनाके लिए समवसरण गया ॥३३॥ समवसरणके समीप पहुँचकर उसने पासमें खड़ी सुलोचनासे कहा कि प्रिये ! तीन लोकके जीवोंसे घिरे हुए जिनेन्द्रदेवको देखो ॥३४॥ ये त्रिलोकीनाथ आठ प्रातिहार्योंसे सहित हैं तथा चौंतीस अतिशयोंसे सुशोभित हो रहे हैं ॥३५॥ हे प्रिये ! ये सौधर्म आदि चारों निकायके देव और इनकी देवियाँ मस्तक झुका-झुकाकर जिनेन्द्र देवको प्रणाम कर

रही हैं ॥३६॥ ये भगवान् ऋषभदेवके समीप नाना ऋद्धियोंके धारक मुनियोंसे युक्त वृषभसेन आदि सत्तर गणधर सुशोभित हो रहे हैं ॥३७॥ हे कान्ते ! यहाँ ये केवलज्ञानी जटाधारी बाहुबली भगवान् विराजमान हैं। ये मुनि अवस्थाको प्राप्त हुए अपने भाइयोंसे घिरे हुए हैं और अनेक वृक्षोंसे घिरे वटवृक्षके समान सुशोभित हो रहे हैं ॥३८॥ हे देवि ! इधर ये तपरूपी लक्ष्मीसे घिरे हुए हमारे पिता सोमप्रभ मुनिराज, अपने छोटे भाई श्रेयान्सके साथ सुशोभित हो रहे हैं ॥३९॥ इधर ये तुम्हारे पिता अकम्पन महाराज एक हजार पुत्रोंके साथ तपमें लीन हैं तथा तपोलक्ष्मीसे अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ॥४०॥ हे कान्ते ! इधर ये तुम्हारे स्वयंवरमें युद्ध करनेवाले दुर्मर्षण आदि बड़े-बड़े राजा शान्त चित्त होकर तपस्या कर रहे हैं ॥४१॥ हे प्रिये ! यह समस्त आर्यिकाओंकी अग्रणी ब्राह्मी है और यह सुन्दरी है। इन दोनोंने कुमारी अवस्थामें ही कामदेवको पराजित कर दिया है ॥४२॥ इधर यह जिनेन्द्र भगवान्‌के समीप अनेक राजाओंके साथ भरत चक्रवर्ती बैठा है और उधर दूसरी ओर उसकी सुभद्रा आदि रानियाँ अवस्थित हैं ॥४३॥ हे प्रिये ! देखो देखो, कैसा आश्चर्य है कि ये परस्पर-के विरोधी तिर्यंच यहाँ एक साथ मित्रकी तरह बैठे हैं ॥४४॥ इस प्रकार प्राणवल्लभा—सुलोचनाके लिए अरहन्त भगवान्‌का समवसरण दिखाता हुआ नीतिका वेत्ता कुमार आकाशसे नीचे उतरा और जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति करता हुआ विनय-पूर्वक चक्रवर्तीके पास बैठ गया तथा सुलोचना सुभद्राके पास जाकर बैठ गयी ॥४५–४६॥ जयकुमारका मोह अत्यन्त सूक्ष्म रह गया था इसलिए वहाँ विस्तृत कथारूपी अमृतसे सहित धर्मका उपदेश सुनकर उसने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी बोधिका लाभ प्राप्त किया ॥४७॥ तदनन्तर अतिशय बुद्धिमान् जयकुमारने स्नेहरूपी सुदृढ़ बन्धनको छेदकर सुलोचनाको समझाया, अनन्तवीर्य नामक पुत्रके लिए अपना राज्य दिया और स्नेहके वशवर्ती चक्रवर्तीके मना करनेपर भी छोटे भाई विजयके साथ जिनेन्द्र-देवके समीप दीक्षा ले ली ॥४८–४९॥ उस समय जयकुमारके साथ एक सौ आठ राजाओंने स्त्री, पुत्र, मित्र तथा राज्यको छोड़कर दीक्षा धारण कर ली ॥५०॥ दुष्ट संसारके स्वभावको जाननेवाली सुलोचनाने अपनी सपत्नियोंके साथ सफेद वस्त्र धारण कर लिये और ब्राह्मी तथा सुन्दरीके पास जाकर दीक्षा ले ली ॥५१॥ मेघेश्वर जयकुमार शीघ्र ही द्वादशांगके पाठी होकर भगवान्‌के गणधर हो गये और आर्यिका सुलोचना भी ग्यारह अंगोंकी धारक हो गयी ॥५२॥ तदनन्तर अनेक भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंने जब दीपवती स्त्रियोंके समान लक्ष्मीका त्याग कर दीक्षा धारण कर ली तब भगवान्‌के चौरासी गणधर हो गये और गणोंकी संख्या चौरासी हजार हो गया ॥५३–५४॥ उनमें चौरासी गणधरोंके नाम ये हैं—१ वृषभसेन, २ कुम्भ, ३ दृढ़रथ, ४ शत्रुदमन, ५ देवशर्मा, ६ धनदेव, ७ नन्दन, ८ सोमदत्त, ९ सुरदत्त, १० वायुशर्मा, ११ सुबाहु, १२ देवाग्नि, १३ अग्निदेव, १४ अग्निभूति, १५ तेजस्वी, १६ अग्निमित्र, १७ हलधर, १८ महीधर, १९ माहेन्द्र, २० वसुदेव, २१ वसुन्धर, २२ अचल, २३ मेरु, २४ भूति, २५ सर्वसह, २६ यज्ञ, २७ सर्वगुप्त, २८ सर्वप्रिय, २९ सर्वदेव, ३० विजय, ३१ विजयगुप्त, ३२ विजयमित्र, ३३ विजयश्री, ३४ पराख्य, ३५ अपराजित, ३६ वसुमित्र, ३७ वसुसेन, ३८ साधुसेन, ३९ सत्यदेव, ४० सत्यवेद, ४१ सर्वगुप्त, ४२ मित्र, ४३ सत्यवान्, ४४ विनीत, ४५ संवर, ४६ ऋषिगुप्त, ४७ ऋषिदत्त, ४८ यज्ञदेव, ४९ यज्ञगुप्त, ५० यज्ञमित्र, ५१ यज्ञदत्त, ५२ स्वायम्भुव, ५३ भागदत्त, ५४ भागफल्गु, ५५ गुप्त, ५६ गुप्तफल्गु, ५७ मित्रफल्गु, ५८ प्रजापति, ५९ सत्ययश, ६० वरुण, ६१ धनवाहिक, ६२ महेन्द्रदत्त, ६३ तेजोराशि, ६४ महारथ, ६५ विजय-श्रुति, ६६ महाबल, ६७ सुविशाल, ६८ वज्र, ६९ वैर, ७० चन्द्रचूड, ७१ मेघेश्वर, ७२ कच्छ, ७३ महाकच्छ, ७४ सुकच्छ, ७५ अतिबल, ७६ भद्रावलि, ७७ नमि, ७८ विनमि, ७९ भद्रबल, ८० नन्दी, ८१ महानुभाव, ८२ नन्दिमित्र, ८३ कामदेव और ८४ अनुपम। भगवान् वृषभदेवके ये चौरासी गणधर थे ॥५५–७०॥ भगवान् वृषभ-

देवकी सभामें नाना प्रकारके गुणोंसे पूर्ण मुनियोंका सात प्रकारका संघ था ॥७१॥ उनमें चार हजार सात सौ पचास महाभाग तो पूर्वधर थे ॥७२॥ चार हजार सात सौ पचास मुनि श्रुतके शिक्षक थे, ये सब मुनि इन्द्रियोंको वश करनेवाले थे ॥७३॥ नौ हजार मुनि अवधिज्ञानी थे, बीस हजार केवलज्ञानी थे, बीस हजार छह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, ये मुनि अपनी विक्रिया शक्तिके योगसे इन्द्रको भी अच्छी तरह जीतनेवाले थे, बीस हजार सात सौ पचास विपुलमति मनः-पर्यय ज्ञानके धारक थे, बीस हजार सात सौ पचास ही असंख्यात गुणोंके धारक; हेतुवादके ज्ञाता तथा प्रतिवादियोंको जीतनेवाले वादी थे, शुद्ध आत्मतत्त्वको जाननेवाली पचास हजार आर्यिकाएँ थीं, पांच लाख श्राविकाएँ थीं और तीन लाख श्रावक थे ॥७४–७८॥ भगवान्‌की कुल आयु चौरासी लाख पूर्व वर्षकी थी उसमें-से छद्मस्थ कालके तेरासी लाख वर्ष पूर्व वर्ष कम कर देनेपर एक लाख पूर्व वर्ष तक उन्होंने अनेक भव्य जीवोंको संसार-सागरसे पार करते हुए पृथिवीपर विहार किया था ॥७९॥ इस प्रकार मुनिगण और देवोंके समूहसे पूजित चरणोंके धारक श्रीवृषभ जिनेन्द्र, संसार-रूपी सागरके जलसे पार करनेमें समर्थ रत्नत्रयरूप भाव तीर्थका प्रवर्तन कर कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाले एवं त्रिभुवन जनहितकारी क्षेत्र तीर्थको प्रवर्तनके लिए स्वभाववश (इच्छाके बिना ही) कैलास पर्वतपर उस तरह आरूढ़ हो गये जिस तरह कि देदीप्यमान प्रभाका धारक वृषका सूर्य निषधाचलपर आरूढ़ होता है ॥८०॥ स्फटिक मणिकी शिलाओंके समूहसे रमणीय उस कैलास पर्वतपर आरूढ़ होकर भगवान्‌ने एक हजार राजाओंके साथ योग निरोध किया और अन्तमें चार अघातिया कर्मोंका अन्त कर निर्मल मालाओंके धारक देवोंसे पूजित हो अनन्त सुखके स्थानभूत मोक्षस्थानको प्राप्त किया ॥८१॥ मोक्षप्राप्तिके अनन्तर मुनियोंका श्रेष्ठ संघ, देवोंका समूह और चक्रवर्ती आदि प्रमुख राजाओंका समूह—इन सबने तीव्र भक्तिवश आकर गन्ध, पुष्प, सुगन्धित धूप, उज्ज्वल अक्षत और देदीप्यमान दीपकके द्वारा त्रिजगद्‌गुरु देवादि देव वृषभदेवके शरीरकी पूजा कर तथा अच्छी तरह नमस्कार कर यही याचना की कि हम लोगोंको श्री ऋषभ जिनेन्द्रके गुण लक्ष्मीरूपी फलकी प्राप्ति होवे ॥८२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें श्रीवृषभदेवकी निर्वाण-प्राप्तिका वर्णन करनेवाला बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१२॥

□

सर्ग- १३

अथानन्तर षट्खण्ड पृथिवीके स्वामी महाराज भरतने चिरकाल तक लक्ष्मीका उपभोग कर अर्ककीर्ति नामक पुत्रका अभिषेक किया और स्वयं अतिशय कठिन आत्मरूप परिग्रहसे युक्त, एवं कठिनाईसे निग्रह करने योग्य इन्द्रियरूपी मृगसमूहको पकड़नेके लिए जालके समान जिनदीक्षा धारण कर ली ।।१-२।। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् श्रेणिक! महाराज भरतने अपने समस्त केश पंचमुट्ठियोंसे उखाड़कर फेंक दिये तथा उनके कर्मबन्धनकी स्थिति इतनी जल्दी क्षीण हुई कि उन्होंने केशलोंचके बाद ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।।३।। तदनन्तर बत्तीसों इन्द्रोंने आकर जिनके केवलज्ञानकी पूजा की थी और जो मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेके लिए दीपकके समान थे ऐसे भगवान् भरतने चिरकाल तक पृथिवीपर विहार किया ।।४।। सर्वदर्शी भगवान् भरतकी आयु भी चौरासी लाख पूर्वकी थी उसमें-से सतहत्तर लाख पूर्व तो कुमार कालमें बीते, छह लाख पूर्व साम्राज्य पदमें व्यतीत हुए और एक लाख पूर्व उन्होंने मुनि पदमें विहार किया ।।५।। आयुके अन्त समय वे वृषभसेन आदि गणधरोंके साथ कैलास पर्वतपर आरूढ़ हो गये और शेष कर्मोंका क्षय कर वहींसे उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, देवोंने उनकी स्तुति-वन्दना की ।।६।।

राजा अर्ककीर्तिके स्मितयश नामका पुत्र हुआ। अर्ककीर्ति उसे लक्ष्मी दे तपके द्वारा मोक्षको प्राप्त हुआ ।।७।। स्मितयशके बल, बलके सुबल, सुबलके महाबल, महाबलके अतिबल, अतिबलके अमृतबल, अमृतबलके सुभद्र, सुभद्रके सागर, सागरके भद्र, भद्रके रवितेज, रवितेजके शशी, शशीके प्रभूततेज, प्रभूततेजके तेजस्वी, तेजस्वीके तपन, तपनके प्रतापवान्, प्रतापवान्के अतिवीर्य, अतिवीर्यके सुवीर्य, सुवीर्यके उदितपराक्रम, उदितपराक्रमके महेन्द्रविक्रम, महेन्द्रविक्रमके सूर्य, सूर्यके इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नके महेन्द्रजित्, महेन्द्रजित्के प्रभु, प्रभुके विभु, विभुके अविध्वंस, अविध्वंसके वीतभी, वीतभीके वृषभध्वज, वृषभध्वजके गरुडांक और गरुडांकके मृगांक आदि अनेक राजा क्रमसे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए। ये सब राजा विशाल यशके धारक थे और पुत्रोंके लिए राज्यभार सौंप तप कर मोक्षको प्राप्त हुए ।।८-१२।। भरतको आदि लेकर चौदह लाख इक्ष्वाकुवंशीय राजा लगातार मोक्ष गये। उसके बाद एक राजा सर्वार्थसिद्धिसे अहमिन्द्र पदको प्राप्त हुआ, फिर अस्सी राजा मोक्ष गये परन्तु उनके बीचमें एक-एक राजा इन्द्रपदको प्राप्त होता रहा ।।१३-१४।। सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए कितने ही धीर-वीर राजा अन्तमें राज्यका भार छोड़ और तपका भार धारण कर स्वर्ग गये तथा कितने ही मोक्षको प्राप्त हुए ।।१५।। भगवान् ऋषभदेवके जो बाहुबली पुत्र थे उनसे सोमयश नामक पुत्र हुआ। वही सोमयश सोमवंश (चन्द्रवंश) का कर्ता हुआ। सोमयशके महाबल, महाबलके सुबल और सुबलके भुजबली पुत्र हुआ। इन्हें आदि लेकर सोमवंशमें उत्पन्न हुए अनेक राजा मोक्षको प्राप्त हुए ।।१६-१७।। इस प्रकार भगवान् वृषभदेवका तीर्थ पृथिवीपर पचास लाख करोड़ सागर तक अनवरत चलता रहा। इस तीर्थकालमें अपनी दो शाखाओं—सूर्यवंश और चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकुवंशीय तथा कुरुवंशीय आदि अनेक राजा स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त हुए ।।१८-१९।।

विद्याधरोंके स्वामी राजा नमिके रत्नमाली, रत्नमालीके रत्नवज्र, रत्नवज्रके रत्नरथ, रत्नरथके रत्नचिह्न, रत्नचिह्नके चन्द्ररथ, चन्द्ररथके वज्रजंघ, वज्रजंघके वज्रसेन, वज्रसेनके वज्रदंष्ट्र, वज्रदंष्ट्रके वज्रध्वज, वज्रध्वजके वज्रायुध, वज्रायुधके वज्र, वज्रके सुवज्र, सुवज्रके वज्रभृत्, वज्रभृत्के वज्राभ, वज्राभके वज्रबाहु, वज्रबाहुके वज्रांक, वज्रांकके वज्रसुन्दर, वज्रसुन्दरके वज्रास्य, वज्रास्यके वज्रपाणि, वज्रपाणिके वज्रभानु, वज्रभानुके वज्रवान्, वज्रवान्के विद्युन्मुख, विद्युन्मुखके सुवक्त्र, सुवक्त्रके विद्युद्दंष्ट्र, विद्युद्दंष्ट्रके विद्युत्वान्, विद्युत्वान्के विद्युदाभ, विद्युदाभके विद्युद्वेग और विद्युद्वेगके वैद्युत पुत्र हुआ। इन्हें आदि लेकर जो विद्याधर राजा हुए वे भी भगवान् आदिनाथके तीर्थमें पुत्रोंके लिए राज्य-वैभव सौंप तपश्चरण कर यथायोग्य स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त हुए ॥२०-२५॥

अथानन्तर सर्वार्थसिद्धिसे चयकर दूसरे अजितनाथ तीर्थंकर हुए। इनके पंच कल्याणकोंका वर्णन भगवन् ऋषभदेवके समान ही जानना चाहिए ॥२६॥ इनके कालमें सगर नामका दूसरा चक्रवर्ती हुआ। यह अक्षीणनिधियों तथा रत्नोंका स्वामी था और भरत चक्रवर्तीके समान प्रसिद्ध था ॥२७॥ इसके अद्गुको आदि लेकर साठ हजार पुत्र थे। ये सभी पुत्र अद्भुत चेष्टाओंके धारक थे और परस्परमें महाप्रीतिसे युक्त थे ॥२८॥ किसी समय ये समस्त भाई कैलास पर्वतपर गये वहाँ आठ पादस्थान बनाकर दण्डरत्नसे वहाँकी भूमि खोदने लगे परन्तु इस क्रियासे कुपित होकर नागराजने सबको भस्म कर दिया ॥२९॥ चक्रवर्ती सगर संसारकी स्थितिका ज्ञाता था इसलिए पुत्रोंका शोक छोड़ उसने अजितनाथ भगवान्के समीप दीक्षा धारण कर ली और कर्म-बन्धनसे छूटकर मोक्ष प्राप्त किया ॥३०॥ तदनन्तर अजिननाथके बाद सम्भवनाथ, उनके बाद अभिनन्दन नाथ, उनके बाद सुमतिनाथ, उनके बाद पद्मप्रभ, उनके बाद सुपार्श्वनाथ, उनके बाद चन्द्रप्रभ, उनके बाद पुष्पदन्त और उनके बाद शीतलनाथ हुए ॥३१-३२॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सर्व-प्रथम इक्ष्वाकु वंश उत्पन्न हुआ फिर उसी इक्ष्वाकुवंशसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश उत्पन्न हुए। उसी समय कुरुवंश तथा उग्रवंश आदि अन्य अनेक वंश प्रचलित हुए। पहले भोगभूमिमें ऋषि नहीं थे परन्तु आगे चलकर भगवान् ऋषभदेवसे दीक्षा लेकर अनेक ऋषि उत्पन्न हुए और उनका उत्कृष्ट श्रीवंश प्रचलित हुआ। इस प्रकार मैंने तेरे लिए अनेक राजाओं और विद्याधरोंके वंशोंका कथन किया ॥३३॥ अब जिस समय शीतलनाथ भगवान्का शुद्ध एवं उज्ज्वल दसवाँ तीर्थ बीत रहा था तथा केवलज्ञानरूपी दीपकसे उज्ज्वल संसारमें इन्द्र और देवोंका आगमन जारी था ऐसे समय महाप्रभावके धारक हरियोंका जो वंश प्रकट हुआ था उसका भी वर्णन करता हूँ। हे राजन् ! जिनमार्गमें इसका जो यथार्थ वर्णन है उसे तू श्रवण कर ॥३४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें इक्ष्वाकुवंशका वर्णन करनेवाला तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१३॥

□

अथानन्तर जम्बूद्वीपमें एक वत्स नामका देश है जो दूसरे देशोंके विद्यमान रहते हुए दोहनकर्ता जब गायको दुहते हैं तब सचमुच ही वत्स—बछड़ेकी आकृतिको धारण करता है। भावार्थ—जिस प्रकार वत्स गायके दूध निकालनेमें सहायक है उसी प्रकार यह देश भी गो—पृथिवीसे धन-सम्पत्ति निकालनेमें सहायक था ॥१॥ यमुना नदीके स्निग्ध एवं नीले जलमें जिसके महलोंका समूह सदा प्रतिबिम्बित रहता था ऐसी कौशाम्बी नगरी उस वत्स देशकी गहरी नाभिके समान अतिशय सुशोभित थी ॥२॥ वप्र, प्राकार और परिखारूपी आभूषण तथा अम्बर—आकाश (पक्षमें वस्त्र) को धारण करनेवाली वह नगरी नितम्ब और स्तनोंके भारसे पीड़ित होकर खड़ी हुई स्त्रीके समान जान पड़ती थी ॥३॥ वह नगरी प्रौढ़ अभिसारिकाके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार प्रौढ़ अभिसारिका रत्नचित्राम्बरधरा—रत्नोंसे चित्र-विचित्र वस्त्रको धारण करती है उसी प्रकार वह नगरी भी रत्न-चित्राम्बरधरा—रत्नोंसे चित्र-विचित्र आकाशको धारण करती थी, और अभिसारिका जिस प्रकार रात्रिके समय अपने स्नेही जनोंका प्रसन्न मुखसे स्पर्श करती है उसी प्रकार वह नगरी भी वर्षाऋतुरूपी रात्रिके समय स्निग्ध—नूतन जलसे भरे मेघोंका महलरूपी मुखोंसे स्पर्श करती थी ॥४॥ अथवा वह नगरी कृष्ण पक्षकी रात्रियोंमें पतिव्रता स्त्रीके समान सुशोभित होती थी क्योंकि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री दोषाकरकराप्राप्ता—दोषोंकी खानस्वरूप दुष्ट मनुष्योंके हाथसे अस्पृष्ट रहती है उसी प्रकार वह नगरी भी बहुलदोषासु—कृष्ण पक्षकी रात्रिमें दोषाकरकराप्राप्ता—चन्द्रमाकी किरणोंसे अस्पृष्ट थी और पतिव्रता स्त्री जिस प्रकार बहुलदोषासु—अनेक दोषोंसे भरी व्यभिचारिणी स्त्रियोंमें रत्नमय आभूषणोंकी किरणोंके समूहसे उत्कृष्ट शोभाको प्राप्त होती है, उसी प्रकार वह नगरी भी बहुलदोषासु—कृष्ण पक्षकी रात्रियोंमें रत्नमय आभूषणोंकी किरणोंसे उत्कृष्ट शोभाको प्राप्त थी ॥५॥ उस कौशाम्बी नगरीका स्वामी राजा सुमुख था। वह सुमुख ठीक सूर्यके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सूर्य प्रताप-प्रभवः—प्रकृष्ट सन्तापका कारण है उसी प्रकार वह राजा भी प्रतापप्रभवः—उत्कृष्ट प्रभावका कारण था। जिस प्रकार सूर्य कराक्रान्तदिक्चक्रः—अपनी किरणोंसे दिङ्मण्डलको व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार वह राजा भी कराक्रान्तदिक्चक्रः—अपने टैक्ससे दिङ्मण्डलको व्याप्त कर रहा था, और जिस प्रकार सूर्य सुखी—उत्तम ख—आकाशसे सहित होता है उसी प्रकार वह राजा भी सुखी—सुखसे सहित था ॥६॥ राजा सुमुखके धनुषने अपने गुणोंसे इन्द्रधनुषको तिरस्कृत कर दिया था क्योंकि राजा सुमुखका धनुष वर्णसंकरविक्षेपि—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन वर्णोंके संकर दोषको दूर करनेवाला था और इन्द्रधनुष अक्षिप्तवर्णसंकरदोषकं—लाल, पीले, नीले, हरे आदि वर्णोंके संकर—संमिश्रणरूपी दोषको दूर नहीं कर सका था ॥७॥ तारुण्य-लक्ष्मीसे सहित होनेके कारण राजा सुमुखका शरीर अत्यन्त सुन्दर था अतः जिसका शरीर ही नहीं दिखाई देता ऐसा कामदेव सौन्दर्यमें उसके समान कैसे हो सकता था ॥८॥ वह राजा धर्मशास्त्रके अर्थ करनेमें कुशल था, कला और गुणोंसे विशिष्ट था, दुष्टोंके निग्रह और सज्जनोंके अनुग्रह करनेमें समर्थ था और प्रजाका सच्चा रक्षक था ॥९॥ वह राजा अन्तःपुररूपी कमलवनकी पंक्तिका भ्रमर था और धर्म, अर्थ, काममें परस्पर बाधा नहीं पहुँचाता हुआ आगत ऋतुओंका सम्मान करता था अर्थात् ऋतुओंके अनुकूल भोग भोगता था ॥१०॥

अथानन्तर किसी समय वसन्त ऋतुका आगमन हुआ। वह वसन्त ऋतु ठीक सुमुख राजाके ही समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार सुमुख राजा उद्यमी—उद्यमसे सम्पन्न था उसी प्रकार वसन्त ऋतु भी उद्यमी—अपना वैभव बतलानेमें उद्यमसम्पन्न थी, जिस प्रकार राजा सुमुख फूलों और पल्लवोंके रागसे युक्त वनमाला नामक स्त्रीके मनको हरण करनेवाला था उसी

प्रकार वसन्त ऋतु भी फूलों और पल्लवोंकी लाल-लाल शोभासे युक्त वनपंक्तियोंसे मनोहर थी ॥११॥ मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले आमोंके वृक्ष उस समय नये-नये पल्लवोंकी लालिमासे युक्त हो गये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो राजा सुमुखके लिए वनमाला—वनपंक्ति (पक्षमें वनमाला नामक स्त्री) के अनुरागकी सूचना ही दे रहे हों ॥१२॥ अग्निज्वालाओंकी शोभाको धारण करनेवाले टेसूके वृक्ष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो विरहके अनन्तर मिले हुए स्त्री-पुरुषोंके द्वारा छोड़ी हुई विरहाग्नि ही हो ॥१३॥ रुनझुन करनेवाले नूपुरोंसे सुन्दर स्त्रीके कोमल पदाघातसे ताड़ित होनेके कारण जिसमें पल्लवरूपी रोमांच निकल आये थे ऐसा अशोक वृक्षरूपी नवीन युवा उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१४॥ अखण्ड मद्यके कुल्लोंके पान करनेसे जिसका दोहला पूर्ण हो गया था ऐसे वकुल वृक्षने अपने फूलोंसे स्त्री जनोंकी अभिलाषाको पूर्ण कर दिया था ॥१५॥ जो कुरवक वृक्ष सुखी युवाओंके लिए भ्रमरोंके शब्दसे सुख उत्पन्न कर रहा था वही कुरवक दुखी (विरही) युवाओंके लिए सार्थक नामका धारक (कु—खोटे रवक—शब्द करानेवाला) था ॥१६॥ उस समय तिलककी शोभाको धारण करनेवाले जो तिलकके फूल चारों ओर फूल रहे थे उन्होंने गुलाबकी सुगन्धिसे सुवासित वनलक्ष्मीरूपी स्त्रीको अत्यधिक पुष्पवती—फूलोंसे युक्त (पक्षमें रजोधर्मसे युक) कर दिया था ॥१७॥ जिस प्रकार इधर-उधर घूमते हुए हस्ति-समूहको जीतनेकी इच्छासे सिंहकी केशर (अयाल) सुशोभित होती है उसी प्रकार पुन्नाग-वृक्षोंके समूहको जीतनेकी इच्छासे सिंहकेशर—वृक्ष विशेषकी केशर सुशोभित हो रही थी ॥१८॥ जो चिरकालके विरहसे सूख रही थी ऐसी मालतीरूपी वल्लभाको चैत्र मासने अपने आलिंगनसे शीघ्र ही पुष्ट तथा पुष्पवती—फूलोंसे युक्त (पक्षमें रजोधर्मसे युक्त) बना दिया था। भावार्थ—जिस प्रकार कोई पुरुष चिरकालके वियोगसे कृश अपनी वल्लभाको आलिंगनसे पुष्ट कर पुष्पवती (रजोधर्मसे युक्त) बना देता है उसी प्रकार चैत्रमासने चिरकालसे वियुक्त सूखी हुई मालती लतारूपी वल्लभाको अपने आलिंगनसे पुष्ट तथा फूलोंसे व्याप्त कर दिया ॥१९॥ उस समय राग-पूर्ण कण्ठ और अतिशय लाल ओठोंको धारण करनेवाले स्त्री-पुरुष, झूला झूलनेकी क्रीड़ामें आसक्त हो हिन्दोल रागमें कोमल गान गा रहे थे ॥२०॥ उस समयके अनुरूप वस्त्राभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही पुरुष अपनी स्त्रियोंके साथ बाग-बगीचोंमें बड़े प्रेमसे मद्यपान करते थे ॥२१॥ हरिण दूबाके अंकुरका पहले स्वयं आस्वादन कर हरिणीके लिए देता था और हरिणी भी उसका आस्वादन कर हरिणके लिए वापस देती थी सो ठीक ही है क्योंकि प्रेमीजनोंके द्वारा सूँघी हुई भी वस्तु प्रिय होती है ॥२२॥

सल्लकी वृक्षके पल्लवोंका हरा-भरा ग्रास खानेमें जिसकी लालसा लग रही थी ऐसी हस्तिनीको हस्तीने अपने मुखके स्पर्शसे समुत्पन्न सुखसे अन्धी कर दिया था—अपने स्पर्शजन्य सुखसे उसके नेत्र निमीलित कर दिये थे ॥२३॥ उस समय वसन्तका विस्तार होनेपर मधुपान सम्बन्धी नशासे उन्मत्त हुए भ्रमर और भ्रमरियोंके जोड़े उच्च शब्द करते हुए तीव्र लालसाके साथ परस्पर एक दूसरेको सूँघ रहे थे ॥२४॥ उस समय हर्षसे पुष्ट हुए कोकिल जहाँ-तहाँ मधुर शब्द कर रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कोकिलाओंके समान कलकण्ठी स्त्रियोंका गीत सुनकर उसे जीतनेकी इच्छासे ही शब्द कर रहे हों ॥२५॥ आचार्य कहते हैं कि जहाँ मनोहर कोलाहलसे आकुल भ्रमर तथा कोकिल भी वसन्तके गीत गाते हैं वहाँ दूसरोंकी तो कथा ही क्या है? ॥२६॥

इस प्रकार मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले चैत्रमासके आनेपर राजा सुमुखने काम-विलाससे परिपूर्ण अपने मनको वन-विहारके लिए उद्यत किया ॥२७॥ तदनन्तर किसी दिन,

जिसने नाना प्रकारके आभूषण धारण किये थे, अपने अखण्डमण्डलवाले देदीप्यमान छत्रसे जिसने सूर्यके मण्डलको आच्छादित कर दिया था, जो सजाये हुए हाथीपर आरूढ़ हो नगरसे बाहर निकल रहा था, जिस प्रकार नदियोंके प्रवाह आकर समुद्रमें मिलते हैं उसी प्रकार अनेक राजा आकर जिसके साथ मिल रहे थे तथा बन्दीजनोंके समूह जिसकी स्तुति कर रहे थे ऐसा राजा सुमुख राजमार्गको प्राप्त हुआ ।।२८-२९।। साक्षात् वसन्तके समान हृदयमें निरन्तर वास करनेवाले राजा सुमुखको देखनेके लिए इच्छुक नगरकी स्त्रियाँ शीघ्र ही क्षोभको प्राप्त हो गयीं ।।३०।। 'हे राजन् ! वृद्धिको प्राप्त होओ, जयवन्त रहो, और समृद्धिमान् हो' जो इस प्रकार शब्द कर रही थीं, हाथ जोड़े हुई थीं तथा बड़ी आकुलताका अनुभव कर रही थीं, ऐसी नगरकी स्त्रियोंने नेत्ररूपी अंजलियोंके द्वारा राजा सुमुखके सौन्दर्यका पान किया ।।३१।। राजा सुमुखने उन स्त्रियोंके मध्यमें स्थित एक अत्यन्त सुन्दर स्त्रीको देखा। वह स्त्री ऐसी जान पड़ती थी मानो साक्षात् रति ही आ पहुँची हो ।।३२।। अतिशय रागको प्राप्त हुआ राजा, उसके मुखचन्द्र, नेत्र कमल, बिम्बके समान लाल-लाल ओठ, शंखतुल्य कण्ठ, स्तनचक्र, पतली कमर, गम्भीर नाभि-मण्डल, सुन्दर जघन, गर्तविशेषसे सुशोभित नितम्ब, जाँघों—घुटनों, पिंडरियों—हाथ एवं पैरोंपर पद-पदमें पड़ती हुई अपनी मनोयुक्त चंचल दृष्टिको संकुचित करनेके लिए समर्थ नहीं हो सका ।।३३-३५।। वह विचार करने लगा कि यह भोली-भाली हरिणीके समान नेत्रोंवाली हर्षसे भरी किसकी स्त्री रूपपाशसे मेरे मनको बाँधकर खींच रही है ।।३६।। यदि मैं इस हृदयहारिणी स्त्रीका उपभोग नहीं करता हूँ तो मेरा यह ऐश्वर्य, रूप एवं नवयौवन व्यर्थ है ।।३७।। जिसका सर्वदा उल्लंघन करना कठिन है ऐसा यह लोक तो एक ओर है और जिसका सहन करना अतिशय कठिन है ऐसी परस्त्री-विषयक अभिलाषा एक ओर है ।।३८।। इस प्रकार विचार करते हुए राजा सुमुखने उसके हरण करनेमें मन लगाया सो ठीक ही है क्योंकि रागी मनुष्य अपवादको तो सह सकता है परन्तु मनकी व्यथाको नहीं सह सकता ।।३९।। आचार्य कहते हैं कि देखो राजा सुमुख यशसे प्रकाशमान था तथा लोक-व्यवहारका ज्ञाता था फिर भी अत्यन्त मोहको प्राप्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि सूर्यके पतनका जब समय आता है तब अन्धकारकी प्रबलता हो ही जाती है ।।४०।। उधर सुन्दर शरीरके धारक राजा सुमुखको देखनेसे उस स्त्रीके भी अंग-अंग ढीले हो गये और वह झूलापर बैठी स्त्रीके समान मनको रोकनेके लिए समर्थ नहीं हो सकी ।।४१।। उसका मन राजा सुमुखमें अत्यन्त लुभा गया था इसलिए वह नाना प्रकारके रसके स्पर्श और प्रादुर्भावरूप फलसे सहित भावको प्रकट करने लगी ।।४२।। जो दूर तक कटाक्ष छोड़ रहा था तथा जिसका अन्तःभाग संकोचको प्राप्त था ऐसा उस स्त्रीका नेत्र, बदलेमें सुमुखकी ओर देखकर उसके चंचल मनको हर रहा था ।।४३।। वह अधर, स्तन, नाभिका मध्यभाग, नितम्ब और चरणोंको दिखानेसे तथा मुड़कर संचारित तिरछी चितवनसे उसके कामको उद्दीपित कर रही थी ।।४४।। उस समय विह्वलताको प्राप्त हुए दोनोंके स्निग्ध तथा परस्पर मिले हुए नेत्रोंने ही मधुर वार्तालाप कर लिया था इसलिए बेचारी जिह्वाको बोलनेका अवसर ही नहीं मिल सका था ।।४५।। जिनका प्रेम बन्धन छूट नहीं सकता था ऐसे दोनों स्त्री-पुरुष, दुर्लभ आलिंगन, तथा सम्भोगरूप फलकी प्राप्ति करानेवाले मनोरथपर आरूढ़ हुए। भावार्थ—आलिंगन तथा सम्भोगकी इच्छा करने लगे ।।४६।।

अतिशय अनुरक्त उस स्त्रीका चित्त लेकर और अपना चित्त उसे देकर राजा सुमुख नगरीसे बाहर निकला। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो आगामी मिलापके लिए बयाना देकर कृत-कृत्य ही हो गया हो ।।४७।। नगरीसे निकलकर राजाने यमुनोत्तंस नामक उद्यान-

में प्रवेश किया। वह उद्यान, वसन्त ऋतुका आभूषणस्वरूप था, जनताको आनन्दित करनेवाला था और नन्दन वनके समान जान पड़ता था ॥४८॥ वह उद्यान, नागलताओंसे आलिंगित फूले-फले सुपारीके वृक्षों और नारियल, अनार तथा केलोंके वनोंसे अतिशय रमणीय था ॥४९॥ अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए राजा सुमुखने उस सुन्दर वनमें विहार किया एवं अनुकूल मित्रों और राज-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा की ॥५०॥ वह वहाँ कुछ काल तक क्रीड़ा करता रहा परन्तु वनमालाके वियोग-से उसे वह मनुष्योंसे व्याप्त वनकी पंक्ति शून्य-जैसी जान पड़ती थी ॥५१॥ वनमालाके अनुरागसे हरे हुए राजाने लौटकर शीघ्र ही कौशाम्बीपुरीमें प्रवेश किया सो ठीक ही है क्योंकि जिनका चित्त दूसरेमें लग रहा है वे कितनी देर तक स्वस्थ रह सकते हैं ? ॥५२॥

सुमति नामक मन्त्रीने एकान्तमें आदरपूर्वक राजासे पूछा कि हे स्वामिन् ! आज आप विषादयुक्त क्यों हैं ? कृपाकर कहिए ॥५३॥ हे प्रभो ! आपका यह एकछत्र राज्य है, प्रजा आपमें अनुरक्त है तथा अन्य राजा अनुराग और प्रतापसे वशीभूत हो आपके दास हो रहे हैं ॥५४॥ अभिलषित वस्तुओंको देकर आपने समस्त याचकोंको सन्तुष्ट कर रखा है तथा प्रेमकी अधिकतासे प्रसन्न होकर आपने समस्त स्त्रियोंको सम्मानित किया है ॥५५॥ धर्म, अर्थ तथा काम-विषयक कोई भी वस्तु आपको दुर्लभ नहीं है, इस प्रकार हे नाथ ! सब प्रकारकी कुशलता होनेपर भी आपका मन दुखी क्यों हो रहा है ? ॥५६॥ सभी लोग प्राणतुल्य मित्रके लिए मनका दुःख बाँटकर सुखी हो जाते हैं यह जगत्की रीति है ॥५७॥ इसलिए हे प्रभो ! बतलाइए मैं आज ही आपकी अभिलाषा-को पूर्ण करूँगा क्योंकि स्वामीके सुखी रहनेपर ही समस्त प्रजा सुखी रहती है ॥५८॥

मन्त्रीके इस प्रकार कहनेपर राजाने शीघ्र ही कहा कि आज उद्यानको जाते समय मैंने एक पर-स्त्रीको देखा था उसीने विद्याकी भाँति मुझे शीघ्र ही वश कर लिया है ॥५९॥ वह ऐसी थी, ऐसी उसकी वेष-भूषा थी और अपनी स्पष्ट चेष्टाओंसे अपना अभिप्राय प्रकट कर रही थी प्रायः आपने भी वह देखी होगी ॥६०॥ यह सुनकर मन्त्रीने कहा कि हे स्वामिन् ! देखी है, अवश्य देखी है, वह वीरक वैश्यकी वनमाला नामकी स्त्री है ॥६१॥ राजाने कहा कि यदि आज उसके साथ मेरा समागम नहीं होता है तो मैं मानता हूँ कि न मेरा जीवन बचेगा और न उस कुटिल भौंहोंवाली वनमालाका ॥६२॥ जान पड़ता है कि वह मेरे बिना एक दिन भी नहीं ठहर सकती और न इसके बिना मैं भी एक दिन ठहर सकता हूँ इसलिए शीघ्र ही इसका उपाय करो ॥६३॥ यद्यपि इस कार्यसे इस जन्ममें अपयश प्राप्त होता है और परजन्ममें अनर्थकी प्राप्ति होती है तथापि जन्मान्धके समान मूर्ख मनुष्य कार्यको नहीं देखता ॥६४॥ इसलिए अकार्यमें प्रवृत्त होनेपर भी मैं तुम्हारे द्वारा रोकने योग्य नहीं हूँ। यदि जीवन रहा तो पापको शान्त करनेके बहुत-से उपाय हो जावेंगे ॥६५॥ यद्यपि राजाका वह वचन अन्यायरूप था तथा मन्त्रीने उसे

मान लिया सो ठीक ही है क्योंकि मन्त्री अत्यन्त निकटवर्ती आपत्तियोंको ही दूर करते हैं ॥६६॥ मन्त्रीने अत्यन्त अनुकूल एवं विनम्र होकर कहा कि हे प्रभो ! मैं प्रयत्न करता हूँ आप वनमालाको आज ही अपने कण्ठमें लगी देखिए ॥६७॥ आप पहलेकी भाँति शीघ्र ही स्नान कीजिए, भोजन कीजिए, दिव्य विलेपन, सुकोमल वस्त्र, पान तथा माला आदि धारण कीजिए ॥६८॥ यद्यपि राजा-को वनमालाके बिना भोजन करना इष्ट नहीं था तथापि बुद्धिरूपी नेत्रको धारण करनेवाले मन्त्रीने जब नमस्कार कर प्रार्थना की तब उसने उसके कहे अनुसार सब कार्य करनेकी इच्छा की ॥६९॥

तदनन्तर सुमुखका अभिप्राय जानकर दयासे ही मानो सूर्य अपनी किरणोंको संकुचित कर पश्चिम दिशाकी ओर चला गया ॥७०॥ जिस समय अतिशय प्रतापी मित्रमण्डल—सूर्यमण्डल (मित्रोंका समूह) प्रताप-रहित हो अस्त होने लगा उस समय समस्त उद्यमी मनुष्य भी उद्यम-

रहित हो गये। भावार्थ – जिस प्रकार समर्थ मित्रोंके समूहको नष्टप्रताप एवं नाशके सम्मुख देखकर उसके अनुगामी अन्य लोग पुरुषार्थहीन हो जाते हैं उसी प्रकार प्रतापी सूर्यको भी नष्टप्रताप एवं अस्त होनेके सम्मुख देख दूसरे उद्यमी मनुष्य भी उद्यम रहित हो गये—दिनभर काम करनेके बाद सन्ध्याके समय विश्रामके लिए उद्यत हुए ॥७१॥ उस समय सूर्य धीरे-धीरे किसी तरह अदृश्यताको प्राप्त हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो चक्रवाक पक्षियोंने उसे अपनी दृष्टि रूपी रस्सियोंसे खींचकर रोक ही रखा था ॥७२॥ तदनन्तर जिस प्रकार राजा सुमुखका अन्तःकरण वनमालाके अनुरागसे व्याप्त था उसी प्रकार समस्त संसार सन्ध्याकालकी लालीसे व्याप्त हो गया ॥७३॥ तत्पश्चात् जिनका तेज खण्डित हो गया था ऐसे कमलोंका समूह भी संकोचको प्राप्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मित्र (सूर्य पक्षमें मित्र) के उदयकालमें अभ्युदयको प्राप्त होनेवाले ऐसे कौन हैं जो मित्रकी विपत्ति-के समय विकसित (पक्षमें हर्षित) रह सकें ? ॥७४॥ धीरे-धीरे अन्धकारने भी जब सन्ध्या-कालिक लालिमाकी खोज की तब संसार लाल वस्त्रको छोड़कर नील-वस्त्रसे आच्छादित हो गया ॥ भावार्थ—सन्ध्याकी लालीको दूर कर उसके स्थानपर अन्धकारने अपना अधिकार जमा लिया जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो संसारने लाल वस्त्र छोड़कर नीला वस्त्र ही धारण कर लिया हो ॥७५॥ जिस प्रकार प्रदोष–दोषपूर्ण विषम कालमें मोहरूपी अन्धकारसे आच्छादित हुए विद्वान् मनुष्य भी ब्राह्मणादि वर्णोंका विवेक नहीं प्राप्त करते हैं—वर्णभेदको भूल जाते हैं उसी प्रकार उस प्रदोष—रात्रिके प्रारम्भ रूप विषम कालमें अन्धकारसे उपद्रुत विद्वान् मनुष्य भी लाल-पीले आदि वर्णोंके भेदको नहीं प्राप्त कर सके थे—उस समय सब पदार्थ एक वर्ण—काले-काले हो दिखाई देते थे ॥७६॥ उस समय मन्त्रीने सलाह कर राजा सुमुखकी आज्ञासे वनमालाके पास आत्रेयी नामकी दूती भेजी ॥७७॥ वनमालाने आसन आदि देकर उस दूतीका सम्मान किया जिससे वह बहुत प्रसन्न हुई। तदनन्तर उस चतुर दूतीने एकान्तमें वनमालासे इस प्रकार कहा कि प्रिय बेटी वनमाला ! तू आज उदास-सी दिख रही है। उदासीका कारण मुझसे कह, क्या पतिने तुझे नाराज कर दिया है ? ॥७८–७९॥ वीरकके तो तू ही एक पत्नी है अतः उसके क्रोधका कारण क्या हो सकता है ? उदासीमें कुछ दूसरा ही कारण होना चाहिए जो कि तेरे अनुभवमें आ रहा है, उसे बता ॥८०॥ बेटी ! तूने सब रहस्योंमें कई बार मेरी परीक्षा की है, मेरे रहते हुए तुझे कौन-सा इष्ट कार्य दुर्लभ रह सकता है ? ॥८१॥ दूतीके यह कहते ही उसके मुखसे गरम-गरम साँसें निकलने लगीं जिनसे उसका अधरपल्लव मुरझा गया। तदनन्तर दूतीके कई बार प्रार्थना करनेपर उसने बड़े दुःखसे यह वचन कहे कि हे माँ ! तुझे छोड़कर इस विषयमें मेरा कोई भी विश्वासपात्र नहीं है। चूँकि छह कानोंमें पहुँचा हुआ मन्त्र फूट जाता है—उसका रहस्य खुल जाता है इसलिए मन्त्रकी यत्न-पूर्वक रक्षा करनी चाहिए ॥८२-८३॥ बात यह है कि आज मैंने प्रशस्त रूप एवं सुन्दर मुखके धारक राजा सुमुखको देखा था और देखते ही कामदेवके साथ वह मेरे मनमें प्रविष्ट हो गया ॥८४॥ इस समय मेरे हृदयकी प्रवृत्ति दुर्जनकी प्रवृत्तिके समान अपने आपको सन्ताप उत्पन्न कर रही है। क्योंकि जिस प्रकार दुर्जन दुर्लभ वस्तुकी अभिलाषा करता है और सुलभ वस्तुसे द्वेष करता है उसी प्रकार मेरा हृदय, जो मेरे लिए सर्वथा दुर्लभ है ऐसे राजा सुमुखकी अभिलाषा कर रहा है और सुलभ वीरकसे द्वेष कर रहा है ॥८५॥ मेरा हृदय चन्दनके लेपसे लिप्त होनेपर भी सूख रहा है, सो ठीक ही है क्योंकि बाह्य उपचार अन्तरंग कार्यमें क्या कर सकता है ? ॥८६॥ मेरे अंग और उपांगोंपर रखा हुआ गीला कपड़ा भी सूख जाता है सो ठीक ही है क्योंकि अत्यन्त उष्ण पदार्थपर रखा हुआ थोड़ा-सा शीतस्पर्श क्या कर सकता है ? ॥८७॥ जिस तापसे कर्कश शरीरके लिए बनाया हुआ पल्लवोंका विस्तर भी अत्यन्त मुरझा जाता है उसके

लिए थोड़ा-सा शीत-स्पर्श क्या कर सकता है ? ॥८८॥ मैं उसके शरीरके स्पर्शके बिना शान्ति नहीं देखती इसलिए हे पवित्रे ! दया करो और मेरे लिए शीघ्र ही उसका समागम प्राप्त कराओ ॥८९॥ तुम यह विश्वास करो कि मेरे देखनेसे उसकी मनोवृत्ति भी मेरी चाहसे मिश्रित है—उसके मनमे मेरी चाह है क्योंकि उसकी समस्त चेष्टाओंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता था ॥९०॥ तुम बड़ी चतुर और समयकी गतिको जाननेवाली हो इसलिए हम दोनों संतप्त स्त्री-पुरुषोंको एकान्तमें मिला दो क्योंकि संतप्त वस्तु दूसरी संतप्त वस्तुके साथ सुखसे मिलाई जा सकती है ॥९१॥

इस प्रकार वनमालाके अभिप्रायको सूचित करनेवाले उन वचनोंको सुनकर दूती बहुत प्रसन्न हुई और निम्नांकित वचन कहने लगी ॥९२॥ उसने कहा कि हे बेटी ! तेरे रूपसे जिसका चित्त हरा गया है ऐसे वत्स देशके स्वामी राजा सुमुखने ही मुझे भेजा है अतः चल मैं शीघ्र ही तुझे उसके साथ मिलाये देती हूँ ॥९३॥ इस प्रकार अपने मनोरथके अनुकूल बात होनेपर कामसे पीड़ित वनमाला, पतिकी अनुपस्थितिमें दूतीके साथ शीघ्र ही राजभवनमें प्रविष्ट हो गयी ॥९४॥ राजा सुमुख, मनको चुरानेवाली सुमुखीको देखकर बहुत सुखी हुआ और हर्षसे 'आइए, आइए' इस प्रकारके प्रिय वचन कहकर उसे सुखी करने लगा ॥९५॥ जिसके स्तनोंका स्पर्श किया गया था ऐसी कृशांगी वनमालाको तरुण सुमुखने अपने स्वेद युक्त हाथसे उसका स्वेद युक्त हाथ पकड़कर अपनी शय्यापर बैठा लिया ॥९६॥ उसी समय रात्रि रूपी स्त्रीके मुखको प्रसन्न करता हुआ (पक्षमें रात्रिके प्रारम्भको प्रकाशमान करता हुआ) चन्द्रमा उदित हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह प्रौढ़ यौवनसे युक्त राजा सुमुख और वनमालाके समागमका अनुकरण करनेके लिए ही उदित हुआ था ॥९७॥ जिस प्रकार राजा सुमुखके करस्पर्श (हाथके स्पर्श) से सुन्दरी वनमाला प्रसन्न हो रही थी उसी प्रकार चन्द्रमाके करस्पर्श (किरणोंके स्पर्श) से कुमुदिनी शीघ्र ही प्रसन्न हो उठी—खिल उठी ॥९८॥ राजा सुमुख और वनमालाने उत्तर-प्रत्युत्तरसे सहित तथा स्त्री-पुरुषोंके गुणोंसे संगत बहुतसे भाव किये—नाना प्रकारकी शृंगार-चेष्टाएँ कीं ॥९९॥ विश्वासकी अधिकतासे नूतन समागमके समय होनेवाला जिसका भय दूर छूट गया था ऐसी वनमालाको राजा सुमुखने गोदमें उठा लिया और अपने शरीरसे लगाकर उसका गाढ़ आलिंगन किया ॥१००॥ तदनन्तर कामसे उत्तप्त दोनों स्त्री-पुरुषोंने, बीच-बीचमें आलिंगन छोड़ देनेसे जिनमें आलिंगन जन्य थकावट दूर हो जाती थी ऐसे भुजाओंके गाढ़ आलिंगनसे, चुम्बनसे, चूषणसे, दशनसे, कण्ठग्रहणसे, केशग्रहणसे, नितम्बास्फालनसे और अंग-प्रत्यंगके स्पर्शसे परस्पर नाना प्रकार की क्रीड़ा की ॥१०१–१०२॥ वनमालामें जैसा उत्साह था, जैसा भाव था, और जैसा चातुर्य था उन सबके अनुसार वह संभोगोत्सवके समय राजा सुमुखके सुखके लिए हुई थी—उसने अपनी समस्त चेष्टाओंसे राजा सुमुखको सुखी किया था ॥१०३॥ तदनन्तर थकावटसे जिनके सर्व शरीरमें पसीना आ गया था और जो परस्पर एक दूसरेका संमर्दन कर रहे थे ऐसे वे दोनों, हस्ती-हस्तिनियोंके समान आलिंगनकर शय्यापर सो गये ॥१०४॥ तदनन्तर अत्यधिक चातुर्यसे जिनकी आत्मा हरी गयी थी, और चित्त प्रेमरूपी बन्धनसे बद्ध थे ऐसे गाढ़ निद्रामें निमग्न सुमुख और वनमालाका क्या हाल है ? यह जाननेके लिए ही मानो सूर्यने प्रभात सन्ध्याको भेजा। भावार्थ—आकाशमें प्रातःकाल की लालिमा छा गई ॥१०५॥ उस समय चन्द्रमाके साथ-साथ सुन्दर प्रभात सन्ध्यासे अनुरंजित (रक्तवर्ण की हुई) द्यावा (आकाशरूपी स्त्री) राजा सुमुख द्वारा उत्तम मनोवृत्तिसे अनुरंजित (प्रसन्न की हुई) सुवदना नव-वधू वनमालाके समान सुशोभित हो रही थी ॥१०६॥ जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् समवसरणमें सिंहासनारूढ़ हो इस समस्त लोकको प्रबुद्ध करते हैं उसी प्रकार आगत सूर्यने उदयाचलपर स्थित होकर कमलोंके समान सुशोभित वनमालाके

सोते हुए राजा सुमुखको प्रबुद्ध किया—जगाया ॥१०७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे सहित जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें सुमुख और वनमालाका वर्णन करनेवाला चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१४॥

□

सर्ग- १५

अथानन्तर खिले हुए कमल वनका स्पर्श करनेवाली सुगन्धित वायुने स्पर्श कर जिसका समस्त श्रम दूर कर दिया था ऐसे उस मिथुनने उस समय परस्परका आलिंगन अत्यन्त ढीला कर दिया ॥१॥ जिसपर तरंगोंके समान कोमल सिकुड़नें उठ रही थीं तथा जिसपर फूलोंका समूह मसला गया था ऐसी शय्यापर सोकर उठा सुमुख, प्रिया वनमालाके साथ उस तरह सुशोभित हो रहा था जिस तरह कि बालूके स्थलपर हंसीके साथ मदोन्मत्त युवा हंस सुशोभित होता है ॥२॥ जिस प्रकार रात्रिके समय बिछुड़नेवाले चकवा-चकवीका हृदय क्षण-भरके लिए भी वियोगरूपी विषको सहन नहीं करता है उसी प्रकार मनोहर चेष्टाके धारक उन प्रिय वधू-वरका हृदय क्षण-भरके लिए भी वियोगरूपी विषको सहन नहीं करना चाहता था ॥३॥ इसलिए राजा सुमुखने वधू—वनमालाको उसके पतिके घर नहीं भेजा अपने ही घर रोक लिया सो ठीक ही है क्योंकि दुर्लभ वस्तुको पाकर उसका रस प्राप्त करनेवाले उसे छोड़ते नहीं हैं ॥४॥ सुन्दरी वनमाला, अपने उत्तम गुणोंसे राजा सुमुखकी समस्त मुख्य स्त्रियोंमें मुख्यताको पाकर परम गौरवको प्राप्त हुई थी सो ठीक ही है क्योंकि भर्ताके अनुकूल रहनेपर कौन-सी वस्तु सुलभ नहीं ? ॥५॥

तदनन्तर किसी समय अचिन्तित निधिके समान उत्कृष्ट तपके भाण्डार वरधर्म नामके पूज्य मुनि राजा सुमुखके घर आये सो ठीक ही है क्योंकि अत्यधिक पुण्यका उदय होनेपर ही अतिथि घर आते हैं ॥६॥ उन मुनिकी बुद्धि उत्कृष्ट दर्शनविशुद्धिसे विशुद्ध थी, अधिक ज्ञानसे वे अनेक पदार्थोंको जानते थे, व्रत गुप्ति और समितिकी अतिशय शुद्धिरूपी चारित्रसे उनका शरीर पवित्र था, वे अनशन तथा स्वाध्याय आदि तपकी निर्मल लक्ष्मीसे युक्त थे और धवल अर्थात् सफेद (पक्षमें उज्ज्वल) समस्त विकारोंसे रहित एवं गौरवको उत्पन्न करनेवाली वृद्धा-वस्थाके समान कर्मोंकी विपुल निर्जरासे सुशोभित थे ॥७-८॥ जिन्होंने दोष कषाय और परिषह-को जीत लिया था एवं इन्द्रियोंकी वृत्तिको अच्छी तरह रोककर परास्त कर दिया था ऐसे अपने घर आये हुए उत्तम मुनिराजको देखकर राजा सुमुख सहसा उठकर खड़ा हो गया ॥९॥ आनन्दके भारसे जिसका हृदय विवश था ऐसे उज्ज्वल परिणामोंके धारक राजा सुमुखने स्त्रीके साथ आगे जाकर पहले तो उन पवित्र मुनिराजको प्रदक्षिणा दी फिर विनय सहित पड़गाहकर उन्हें रत्नमय पवित्र फर्शपर विराजमान किया ॥१०॥ तदनन्तर प्रिय स्त्रीके द्वारा हाथमें धारण की हुई सुवर्णमय झारीको प्रासुक जलधारासे राजाने मुनिराजके चरण धोये ॥११॥ फिर सुगन्धित चन्दन, शुभ अक्षत, नैवेद्य, दीप, धूप आदि अष्टद्रव्यसे पूजा कर मन, वचन, कायसे उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर हर्ष-पूर्वक दान दिया ॥१२॥ उस समय राजा सुमुख और वनमालाके परिणाम एक समान थे इसलिए दोनोंने ही परभवमें एक साथ भोग-रूपी फलको देनेवाला पापापहारी उत्तम पुण्यबन्ध किया ॥१३॥ जिन्होंने अनेक दिनका उपवासरूपी व्रत धारण किया था, जो दाताओंके लिए सुख प्राप्तिका कारण जुटानेवाले थे और जो तत्त्वके विचार करनेमें अतिशय निपुण थे ऐसे मुनिराज अपने कृश शरीरकी स्थिरताके लिए पारणा कर वनको चले गये ॥१४॥

तदनन्तर जो पुण्यका फल भोग रहा था और परस्त्रीके अपहरणसे उत्पन्न पापके प्रति जो निरन्तर पश्चात्ताप करता रहता था ऐसे राजा सुमुखका काल जब अहितोंको नष्ट कर निरन्तर सुखसे बीत रहा था तब वह किसी समय गुणोंकी मालास्वरूप वनमाला स्त्रीके साथ सुगन्धित गर्भगृहमें सोया था। उस गर्भगृहका मध्य भाग मणिसमूहकी कान्तिसे व्याप्त था तथा आदरको प्रदान करनेवाला था ॥१५-१६॥ उसी समय जिनके मन एक दूसरेके आधीन थे ऐसे उन दोनोंकी श्रेष्ठ आयु समाप्त होनेको आयी इसलिए उनके ऊपर वर्षाकालकी बिजली आ गिरी ॥१७॥ बिजली गिरनेसे जिनके प्राण एक ही साथ छूटे थे, तथा जो उत्तम दानके फलको प्राप्त थे ऐसे दोनों दम्पती सुखसे मरण कर विजयार्ध पर्वतपर विद्याधर-विद्याधरी हुए ॥१८॥ वह विजयार्ध पर्वत, अपनी पूर्व-पश्चिम—दोनों कोटियोंसे समुद्रका स्पर्श करता है, उसने अपनी सफेदीसे चन्द्रमा और क्षीर समुद्रको जीत लिया है, वह चाँदीके समान देदीप्यमान मूर्तिका धारक है और पृथिवी रूपी स्त्रीके बड़े भारी हारके समान लम्बा है ॥१९॥ वह विजयार्ध पर्वत पृथिवीसे दश योजन ऊपर चलकर अपनी दो श्रेणियोंके द्वारा विद्याधर राजाओंकी उन नगरियोंको धारण करता है जो संसारमें नूतन भोगभूमियोंके समान जान पड़ती हैं ॥२०॥ यह पर्वत भरत क्षेत्रके समस्त पर्वतोंके स्वामित्वको धारण करता है, इसपर एक सौ दश सुन्दर नगरियां स्थित हैं, यह पचीस योजन चौड़ा तथा सुखको उत्पन्न करनेवाला है ॥२१॥ इसी पर्वतकी उत्तर श्रेणीपर एक हरिपुर नामका नगर है जो सब प्रकारके सुख देनेमें समर्थ है, नाना प्रकारके वृक्षोंके वनसे उत्तरकुरुकी पृथिवीका अनुकरण करता है और शोभामें इन्द्रपुरीके समान जान पड़ता है ॥२२॥ इस नगरका रक्षक पवनगिरि विद्याधर था। वही राजा सुमुखके जीवका पिता था तथा इसकी अनेक कलाओं और गुणोंमें निपुण मृगावती नामकी स्त्री थी वही सुमुखके जीवकी माता थी ॥२३॥ यहाँ सुमुखका जीव, 'आर्य' इस सार्थक नामको धारण करता था। धीरे-धीरे वह आर्यजनोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाले अमृतमय वचन बोलने लगा तथा उसे अपनी पूर्व भवकी स्त्रीका स्मरण हो आया ॥२४॥

इसी विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक मेघपुर नामका उत्तम नगर है जो अपरिमित वैभवसे युक्त है तथा मणिमयी उत्तम महलोंकी पंक्तिको धारण करता है ॥२५॥ उस मेघपुर नगरका राजा पवनवेग था। पवनवेग शत्रुरूपी मदोन्मत्त हाथियोंको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान था। इसकी स्त्री मनोहरी थी। मनोहरी रतिकालमें पतिके मनको हरण करती थी इसलिए वह पवन-वेगको रतिके समान प्यारी थी ॥२६॥ राजा सुमुखकी जो वनमाला नामकी हितकारिणी उत्तम स्त्री थी वह इन्हीं दोनोंके मनोरमा नामकी उत्तम पुत्री हुई। मनोरमा अपने पूर्वभवको जानती थी और संसारमें चन्द्रकलाके समान मनको आनन्दित करती थी ॥२७॥ उन दोनोंने जैसी पहले भावना की थी उसीके अनुसार विवाहके योग्य पवित्र कुल प्राप्त किया और उन दोनोंका विधाता सदा समस्त कार्योंमें स्वयं ऐसा ही प्रयत्न करता था कि जिससे उन दोनों शिशुओंका शीघ्र ही समागम हो जाये ॥२८॥ उन दोनों बालक-बालिकाओंका अपने-अपने घर सुखपूर्वक पालन होता था, वे अपनी हथेलियोंसे कभी अपनी आँखें बन्द कर लेते थे, कभी मन्द हास्य करते थे, कभी वचन बोलनेमें तत्पर होते थे, और कभी किलकारियां भरते हुए अपने कुटुम्बीजनोंके हर्षको बढ़ाते थे ॥२९॥ और अपनी-अपनी कान्तिसे जो सूर्य तथा अग्निकी उपमा धारण कर रहे थे ऐसे उन दोनों बालिका-बालिकाओंका युगल भोगभूमियां बालकोंकी विजययुक्त उत्तम भावनाको प्राप्त हो रहा था अर्थात् वे भोग-भूमियां बालकोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥३०॥ चन्द्रमाके समान शरीरको धारण करनेवाला वह युगल प्रतिदिन कलाओंके साथ जिस प्रकार धीरे-धीरे शरीरकी वृद्धिको प्राप्त होता जाता था उसी प्रकार उनके कुटुम्बीजनोंका आनन्दरूपी सागर भी वृद्धिको

प्राप्त होता जाता था ॥३१॥ संसारको जाननेवाला वह युगल, जिस प्रकार समस्त विद्याधरोंकी सिद्ध की हुई विद्याओंसे सुशोभित हो रहा था उसी प्रकार अनेक गुणके साथ प्राप्त हुई सुन्दर यौवनकी शोभासे लोगोंके मनको हरण कर रहा था ॥३२॥

तदनन्तर जनसमूहके द्वारा नमस्कृत उस विद्याधर युवाको, उसके कुटुम्बीजनोंने वैभव पूर्ण विवाहकी विधिसे लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली विद्याधर-कन्या मनोरमाके साथ युक्त किया ॥३३॥ विवाहके बाद कुमार आर्य, कामजनित हाव-भावोंसे सहित कामदेवरूपी नर्तकाचार्यके द्वारा शिक्षित एवं सुरतरूपी नाटकको रंगभूमिमें लायी हुई इस मनोरमाके साथ सुखका उपभोग करने लगा ॥३४॥ कभी वह देव दम्पतियोंसे सुन्दर कन्दराओंसे युक्त मन्दर गिरिपर इस परम वल्लभाके साथ क्रीड़ा करता था तो कभी सुगन्धित देवदारु और चन्दनके ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे सुशोभित नन्दन वनमें इसके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहता था ॥३५॥ कभी वह कुलाचलोंके पद्म आदि सरोवरों और गंगा आदि महानदियोंके तटोंपर तथा कभी भोगभूमिके वृक्षोंके नीचे खेदरहित सुन्दरो वल्लभाके साथ राग-सहित रति-क्रीड़ाको प्राप्त होता था ॥३६॥ इस प्रकार विजयार्ध पर्वतपर रहनेवाला वह युगल, दिव्य स्त्रियोंके पदनूपुरोंकी झनकारसे युक्त अपने नगरमें उस सुखका उपभोग करता था जो पृथिवीपर दूसरे मनुष्योंके लिए इच्छा करनेपर भी दुर्लभ था और उसे बिना ही प्रयत्नके प्राप्त था ॥३७॥

अथानन्तर—राजा सुमुखके द्वारा ठगा हुआ वीरक सेठ, प्रियतमा—वनमालाके विरहमें शोकके कारण कहीं भी हृदयको शान्तिको प्राप्त नहीं होता था। यहाँ तक कि जिसपर विपत्तिका एक अंश भी नहीं था ऐसे कोमल-पल्लवोंसे रची हुई शीतल शय्यापर भी उसे सुख प्राप्त नहीं होता था ॥३८॥ वह विरह-ज्वाला शान्त करनेके लिए रात्रिके समय खुली चाँदनीमें सरोवरके तटपर जा बैठता था पर वहांपर भी चन्द्रमा बर्फके कणोंके साथ-साथ अपनी किरणोंसे उसके हृदयकी दाहको शान्त नहीं कर पाता था। वह विरही चक्रवाक पक्षीके समान सदा विरहकी दाहमें झुलसता ही रहता था ॥३९॥ तदनन्तर उस वीरकने चिरकाल बाद विरहकी व्यथाको रोककर रतिरूप रहस्यसे युक्त गृहस्थाश्रमको छोड़ दिया और जितेन्द्रिय हो जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा प्रदर्शित आश्रमकी शरण ली अर्थात् दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली, सो ठीक ही है क्योंकि शरणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके लिए वह ही सर्वोत्तम शरण है ॥४०॥ दीक्षा लेकर उसने शरीरको सुखा देनेवाला एवं विषयके लोभी कामदेवको पीस देनेवाला कठिन तप किया जिसके फलस्वरूप वह सुखरूपी सागरको पुष्ट करनेवाले एवं देवोंके सन्तोषदायक प्रथम स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥४१॥ वहाँ देवांगनाओंके समूहको आदि लेकर अनेक प्रकारका परिग्रह जिसे प्राप्त था, सब प्रकारके आभूषणोंसे जिसका शरीर सुशोभित था और जो देवोंके सुखरूपी अमृतके सागरमें निमग्न था ऐसा वह देव अनेक भावों और रसोंको प्राप्त होता हुआ वहाँ सुखसे रहने लगा ॥४२॥

कदाचित् वह देव स्वर्गमें उत्तमोत्तम स्त्रियोंके बीच बैठा था कि उसने अचानक ही अपनी पूर्वभवकी स्त्री वनमालाको अवधिज्ञानका विषय बनाया अर्थात् अवधिज्ञानके द्वारा उसका विचार किया सो ठीक ही है क्योंकि परिचित—अनुभूत स्नेह बड़ी कठिनाईसे छूटता है ॥४३॥ विचार करते ही उसे सुमुख राजाके द्वारा किया हुआ पराभव स्मृत हो गया। तदनन्तर एक बार निमीलित कर उसने अवधिज्ञानरूपी नेत्रको पुनः खोला तो विद्याधर और विद्याधरीका वह युगल सामने दिखने लगा ॥४४॥ वह विचार करने लगा कि देखो जिस दुष्ट सुमुखने पूर्वभवमें प्रभुतावश तिरस्कार कर हमारी स्त्रीका हरण किया था वह इस भवमें भी उसी स्त्रीके साथ परम रतिको प्राप्त हुआ दिखाई दे रहा है ॥४५॥ यदि विषम अपकार करनेवाले शत्रुका दूना अपकार

नहीं किया तो समर्थ होनेपर भी निरुद्यम चित्तके धारक प्रभुकी निरर्थक प्रभुतासे क्या लाभ है ? ॥४६॥ ऐसा विचारकर क्रोधसे जिसका चित्त कलुषित हो रहा था, तथा बदला लेनेका जिसने दृढ़ निश्चय कर लिया था ऐसा वह सूर्यके समान देदीप्यमान देव पूर्व वैरको बुद्धिमें रख शीघ्र ही स्वर्गसे पृथिवीपर उतरा ॥४७॥ उस समय राजा सुमुखका जीव आर्य नामका विद्याधर, अपनी विद्याधरीके साथ हरिवर्ष क्षेत्रमें इच्छानुसार क्रीड़ा करता हुआ इन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था सो उस देवने उसे प्राप्त किया ॥४८॥ नव यौवनसे जिसका शरीर भरा हुआ था ऐसे उस विद्याधर दम्पतीको देखकर देवने अपनी स्वाभाविक अखण्ड मायासे उसे खण्डितविद्य कर दिया अर्थात् उसकी विद्याएँ हर लीं ॥४९॥ और क्रुद्ध होकर उससे कहा कि अरे ! पर-स्त्रीको हरनेवाले प्रमुख सुमुख ! क्या तुझे इस समय अपने वीरक वैरीका स्मरण है और परजन्मसे शीलव्रतको खण्डित करनेवाली दुष्ट वनमाला ! तुझे भी वीरककी याद है ? ॥५०॥ मैं तप कर देव हुआ हूँ और तुम दोनों मुनिदानके फलसे विद्याधर हुए हो। तुम दोनोंने पूर्वभवमें मुझे दुःख दिया था इसलिए मैं भी तुम्हारी विद्याएँ नष्ट कर तुम्हें दुःख देता हूँ ॥५१॥ इस प्रकार कहकर वह देव, जिस प्रकार पक्षियोंको गरुड़ उठा ले जाता है उसी प्रकार आश्चर्यसे चकित चित्त एवं भयसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाले दोनों—विद्याधर और विद्याधरीको उठाकर दक्षिण भरत क्षेत्रकी ओर आकाशमें उड़ गया ॥५२॥॥ उस समय चम्पापुरीका राजा चन्द्रकीर्ति मर चुका था इसलिए वह राजासे रहित थी। वह देव आर्य विद्याधरको यहाँ ले आया और उसे चम्पापुरीका अनेक राजाओंके द्वारा नमस्कृत राजा बनाकर स्वर्ग चला गया ॥५३॥ देव द्वारा जिनकी विद्याएँ खण्डित कर दी गयी थीं ऐसे वे दोनों विद्याधर दम्पती, पंख कटे पक्षियोंके समान आकाशमें चलनेको असमर्थ हो गये इसलिए उसकी इच्छा छोड़ पृथिवीमें ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥५४॥ यह वृत्तान्त नब्बे धनुष ऊँचे शरीर और एक लाख पूर्वकी स्थितिको धारण करनेवाले दशवें शीतलनाथ भगवान्‌के तीर्थमें हुआ था। उस समय उनका तीर्थ कुछ अधिक सौ सागर कम एक करोड़ सागर प्रमाण चल रहा था ॥५५॥ राजा आर्यने अपने भुजदण्डसे समस्त राजाओंको वश कर नम्रीभूत एवं आज्ञाकारी बनाया और अखण्डित प्रेमवाली मनोरमाके साथ चिरकाल तक विषय-सुखका उपभोग किया फिर भी तृप्त नहीं हुआ ॥५६॥ तदनन्तर उन दोनोंके हरि नामका पुत्र हुआ जो इन्द्रके समान प्रसिद्ध राजा हुआ। राजा आर्य और रानी मनोरमाने चिरकाल तक पुत्रकी विशाल लक्ष्मीका अनुभव किया तत्पश्चात् दोनों अपने-अपने कर्मोंके अनुसार परलोकको प्राप्त हुए ॥५७॥ यही राजा हरि, परम यशस्वी हरिवंशकी उत्पत्तिका प्रथम कारण था। जगत्‌में इसीके नामसे हरिवंश इस नामकी प्रसिद्धि हुई ॥५८॥ राजा हरिके महागिरि नामका पुत्र हुआ। महागिरिके उत्तम नीतिका पालक हिमगिरि पुत्र हुआ। हिमगिरिके वसुगिरि और वसुगिरिके गिरि नामका पुत्र हुआ। ये सभी यथायोग्य स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त हुए ॥५९॥ तदनन्तर हरिवंशके तिलकस्वरूप इन्द्रके समान सैकड़ों राजा हुए जो क्रमसे विशाल राज्य और तपका भार धारण कर कुछ तो मोक्ष गये और कुछ स्वर्ग गये ॥६०॥ इस प्रकार क्रमसे बहुत-से राजाओंके होनेपर उसी हरिवंशमें मगध देशका स्वामी राजा सुमित्र हुआ। वह कुशल-मंगलका स्थान तथा कुशाग्रपुर नगरका अधिपति था। उसका पराक्रम शास्त्रोंके विशिष्ट ज्ञानसे विभूषित था। वह अपनी जिनभक्त प्रिया पद्मावतीके साथ सुखका उपभोग करता हुआ चिरकाल तक पृथिवीका शासन करता रहा ॥६१–६२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्यरचित हरिवंश पुराणमें हरिवंशकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१५॥

□

सर्ग- १६

अथानन्तर श्रीशीतलनाथ भगवान्‌के पश्चात् जब कालक्रमसे नौ तीर्थंकर भरत क्षेत्रमें जगत्‌के जीवोंके हितार्थ धर्म तीर्थकी प्रवृत्ति कर मोक्ष चले गये और बीसवें तीर्थंकर स्वर्गसे अवतार लेनेके सन्मुख हुए तब इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर प्रतिदिन राजा सुमित्रके घरको रत्नोंकी उत्कृष्ट धारासे भरने लगा। कदाचित् कोमल शय्यापर शयन करनेवाली रानी पद्मावतीने रात्रिके अन्तिम समय १ गज, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ पुष्पमाला, ६ चन्द्रमा, ७ बालसूर्य, ८ मत्स्य, ९ कलश, १० कमलसरोवर, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ देवविमान, १४ नागेन्द्रभवन, १५ रत्नराशि और १६ अग्नि ये सोलह स्वप्न देखे ॥१--३॥ उपमारहित एवं दिव्य प्रभावको धारण करनेवाली निन्यानबे दिक्कुमारी देवियोंके द्वारा सेवित जिनमाता पद्मावती जब जागकर फूलोंकी शय्यापर बैठी तब ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो आकाशमें ताराओंसे घिरी हुई चन्द्रमाकी लेखा ही हो ॥४॥ तदनन्तर जिसके नेत्र, मुख, हाथ और पैर फूले हुए कमलके समान थे, जो अनुरागसे युक्त थी, हर्षसे सहित थी और हाथमें सफेद कमल धारण कर रही थी ऐसी रानी पद्मावती प्रातःकालके समय ऊँचे सिंहासनपर विराजमान राजा सुमित्रके पास गयी सो ऐसी जान पड़ती थी मानो अनेक कमलोंसे सुशोभित, लालिमायुक्त स्थल-कमलिनी ही उदयाचलपर स्थित सुमित्र—सूर्यके पास जा रही हो ॥५॥ जो नाना प्रकारके वस्त्ररूपी जलसे युक्त थी, अत्यधिक रुन-झुन करनेवाले अतिशय सुन्दर नूपुरोंकी झनकाररूपी पक्षियोंकी कल-कल ध्वनिसे मनोहर थी, मछलियोंके समान नेत्रोंसे सहित थी और त्रिवलिरूपी तरंगोंसे सुशोभित थी ऐसी वह स्त्रीरूपी नदी राजा सुमित्ररूपी समुद्रके पास गयी यह उचित ही था ॥६॥ उस समय मणिमय आभूषणोंको धारण करनेवाली रानी पद्मावती चलती-फिरती कल्पलताके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार कल्पलता गुच्छोंके भारसे नम्रीभूत होती है उसी प्रकार उसकी अंगयष्टि भी स्थूल स्तनरूपी गुच्छोंसे नम्रीभूत थी, जिस प्रकार कल्पलता लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी लाल-लाल हथेलियोंसे युक्त थी और जिस प्रकार कल्पलता कोमल शाखाओंसे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी कोमल भुजाओंसे युक्त थी। इस प्रकार रानी पद्मावतीरूपी कल्पलताने राजा सुमित्ररूपी कल्पवृक्षको नमस्कार किया ॥७॥ पास ही में उत्तम आसनपर बैठी रानी पद्मावतीने जब राजासे स्वप्नावलीका फल पूछा तब उन्होंने हर्षित होते हुए कहा कि हम दोनों शीघ्र ही तीनों जगत्‌के स्वामी जिनेन्द्र भगवान्‌के माता-पिता होंगे ॥८॥ इस प्रकार राजारूपी सूर्यकी वचन किरणोंसे स्पर्शको प्राप्त हुई रानी पद्मावतीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमांच निकल आये और वह फूली हुई कमलिनीके समान सुशोभित होने लगी। वह पहले जिस स्त्रीपर्यायको निकृष्ट समझती थी उसे ही अब तीर्थंकरकी माता होनेके कारण श्रेष्ठ समझने लगी ॥९॥ जिन्हें हजारों देवोंके समूह दूरसे ही नमस्कार करते थे ऐसे भगवान् मुनिसुव्रतने सहस्रार नामक उत्कृष्ट स्वर्गसे अवतीर्ण होकर माता पद्मावतीके विशुद्ध गर्भ-गृहमें नौ माह साढ़े आठ दिन निवास किया ॥१०॥ उस समय माता पद्मावती, वर्षा और शरदृऋतुके सन्धिकालसे युक्त आकाशके समान जान

पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार वर्षा और शरद्के सन्धिकालका आकाश कुछ काले और कुछ सफेद पयोधरों—मेघोंसे युक्त होता है उसी प्रकार पद्मावती भी नीली चूचुकसे युक्त सफेद पयोधरों—स्तनोंसे युक्त थी। जिस प्रकार वर्षा और शरद्के सन्धिकालका आकाश वज्रसमूह—वज्रके समूहसे गर्भित होनेके कारण देदीप्यमान रहता है उसी प्रकार पद्मावती भी वज्रवृषभ संहननके धारक भगवान्‌के गर्भमें स्थित होनेसे देदीप्यमान हो रही थी और जिस प्रकार वर्षा तथा शरद्के सन्धि-कालका आकाश विद्युत्प्रभाभरणबृंहितभा—बिजलीकी प्रभाको धारण करनेसे कान्तियुक्त होता है उसी प्रकार माता पद्मावती भी विद्युत्प्रभाभरणबृंहितभा—बिजलीके समान देदीप्यमान आभूषणोंसे बढ़ी हुई कान्तिसे युक्त थी ॥११॥

तदनन्तर पाप (पक्षमें कलंक) से रहित रानी पद्मावतीरूप आकाशने प्रसूतिके योग्य समय आनेपर इन्द्रमह उत्सवके दिन माघ कृष्ण द्वादशीको शुभ तिथिमें जबकि श्रवण नक्षत्र था बिना किसी श्रमके, मनुष्योंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले जिनेन्द्ररूपी पूणचन्द्रको उत्पन्न किया ॥१२॥ जिस प्रकार इन्द्रनीलमणिसे खानकी भूमि सुशोभित होती है उसी प्रकार शुभ लक्षणोंसे युक्त एवं लाली सहित नीलकण्ठ—मयूरकी कान्तिको धारण करनेवाले मुनिसुव्रत भगवान्‌से हर्षित पद्मावती सुशोभित हो रही थी ॥१३॥ उस समय तीनों जगत्के इन्द्रोंके आसन और मुकुट कम्पायमान हो गये थे जिससे तत्काल ही अवधिज्ञानका प्रयोग कर उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मका समाचार जान लिया था और शेष देवोंने अत्यन्त आश्चर्य तथा जोरके साथ होनेवाली घण्टाध्वनि, सिंहध्वनि, पटहध्वनि और शंखध्वनिसे जिनेन्द्र-जन्मका निश्चय कर लिया था। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌का जन्म जानकर समस्त इन्द्र और देव जन्मोत्सवके लिए चले ॥१४॥ सुगन्धित जल, मन्द वायु और पुष्पोंकी वर्षासे जिन्होंने समस्त जगत्को भर दिया था तथा जिन्होंने उत्तमोत्तम देदीप्यमान आभूषणोंसे सुशोभित वेष धारण किया था ऐसे इन्द्र आदि देवोंने सब ओरसे शीघ्र आकर विशाल कुशाग्रपुरकी प्रदक्षिणाएँ दीं ॥१५॥ तत्पश्चात् समस्त सुर-असुर देवोंने जिनेन्द्र भगवान् और उनके माता-पिताको नमस्कार किया, देव-कन्याओंने जातकर्म किया और उसके बाद समस्त देव जिनेन्द्र भगवान्‌को ऐरावत हाथीपर बैठाकर बड़े वैभवके साथ सुमेरु पर्वतपर ले गये। वहाँ प्रथम ही उन्होंने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाएँ दीं फिर उसके ऊर्ध्वभागपर बनी पाण्डुक शिलाके ऊपर स्थित सिंहासनपर जिनेन्द्र भगवान्‌को विराजमान किया। वहाँ क्षीर सागरके उत्तम जलसे महाविभूतिके साथ उनका जन्माभिषेक किया, नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति की, मुनिसुव्रत नाम रखा। तदनन्तर नीति-निपुण देवोंने भगवान्‌को ला माताकी शुभ गोदमें विराजमान कर आनन्द नाटक किया। तत्पश्चात् इन्द्रादि देव, त्रिभुवनको आनन्दित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान् और उनके माता-पिताको नमस्कार कर यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१६-१८॥ जो स्वयं विशाल नेत्रोंसे युक्त थे, तीन ज्ञानरूपी सहज नेत्रोंको धारण करनेवाले थे, देवकुमार जिनकी निरन्तर सेवा करते थे और समय-समयके अनुरूप कुबेर जिनके योग-क्षेमका ध्यान रखता था—सब सुख-सामग्री समर्पित करता था ऐसे भगवान् मुनिसुव्रत शरीर और गुणों-की वृद्धिको प्राप्त होने लगे। भावार्थ—जैसे-जैसे उनका शरीर बढ़ता जाता था वैसे-वैसे ही उनके गुण बढ़ते जाते थे ॥१९॥ जिस प्रकार कुलाचलोंसे उत्पन्न, आदि, मध्य और अन्तमें समान रूपसे बहनेवाली नदियाँ लवण समुद्रको प्राप्त कर वरती हैं उसी प्रकार उत्तम कुलरूपी पर्वतोंसे उत्पन्न, बालक, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओंमें निरन्तर अभ्युदयको धारण करनेवाली सुन्दर स्त्रियोंने सौन्दर्यके धारक युवा मुनिसुव्रतनाथको प्राप्त कर विवाहपूर्वक वरा था ॥२०॥

तदनन्तर जो राज्य-सिंहासनपर आरूढ थे, हरिवंशरूपी आकाशके मानो सूर्य थे, प्रजारूपी

कमलिनीका हित करनेके लिए सूर्यस्वरूप थे, राजा, महाराजा और देव जिनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे तथा जो अखण्ड आज्ञाके धारक थे ऐसे राजा मुनिसुव्रतनाथने चिरकाल तक विषय-सुखका उपभोग किया ॥२१॥ अथानन्तर किसी समय शरद्-ऋतु आयी सो वह ऐसी जान पड़ती थी मानो वर्षारूपी स्त्रीके चले जानेपर एक दूसरी अपनी ही स्त्री आयी हो अर्थात् वह शरद्ऋतु स्त्रीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्री कमलके समान मुखसे युक्त होती है उसी प्रकार वह शरद्ऋतु भी कमलरूपी मुखसे सहित थी, जिस प्रकार स्त्री लाल-लाल अधरोष्ठसे युक्त होती है उसी प्रकार वह शरद्ऋतु भी बन्धूकके लाल-लाल फूलरूपी अधरोष्ठसे युक्त थी, जिस प्रकार स्त्री हाथमें चामर लिये रहती है उसी प्रकार वह शरद्ऋतु भी काशके फूलरूपी स्वच्छ चामर हाथमें लिये थी और जिस प्रकार स्त्री उज्ज्वल वस्त्रोंसे युक्त होती है उसी प्रकार वह शरद् भी उज्ज्वल मेघरूपी वस्त्रोंसे युक्त थी ॥२२॥ जिसने शीघ्र ही अपना शब्द बन्द कर दिया था ऐसी धूमिल मेघमाला, सफेद-सफेद गायोंके समूहसे युक्त अहीरोंकी बस्ती के जोरदार शब्द सुनकर ही मानो अन्तर्हित हो गयी थी और मेघोंके आवरणसे रहित दिशाओंमें सूर्य चिरकालके बाद पाद—पाँवों (पक्षमें किरणों) के फैलानेका सुख प्राप्त कर सका था ॥२३॥ जिनके तटरूपी नितम्बसे जलरूपी चित्र-विचित्र वस्त्र नीचे खिसक गये थे, जो भँवररूपी नाभिसे सुन्दर थीं, मीनरूपी चंचल नेत्रोंसे युक्त थीं और फेनावलीरूपी चूड़ियोंसे युक्त तरंगरूपी चंचल भुजाओंसे सहित थीं ऐसी नदीरूपी स्त्रियाँ क्रीड़ाओंके समय इनका हृदय हरने लगीं ॥२४॥ ऊर्मियां ही जिनकी भौंहें थीं, मछलियां ही जिनके चंचल कटाक्ष थे, जो मदोन्मत भौरों और कलहंसोंके शब्दसे मनोहर थीं और फूले हुए कमलोंका मकरन्द सम्बन्धी पराग ही जिनका अंगराग था ऐसी सरसी-रूपी स्त्रियाँ क्रीड़ाके समय इनके रागको उत्पन्न कर रही थीं ॥२५॥

फलके भारसे अतिशय झुके हुए सुगन्धित धानके पौधे और धानके खेतोंमें उत्पन्न हुई ऊँची उठी विकसित उत्पलोंकी श्रेणियाँ—दोनों ही सौभाग्य सम्बन्धी हर्षके वशीभूत हो अंगसे-अंग मिलाकर मानो एक दूसरेका मुख ही सूँघ रही थीं ॥२६॥ जिनके शरीरपर विकसित कदम्ब-पुष्पोंकी परागका अंगराज लगा था तथा जो कदम्ब मधुकी धाराओं और धूलिका स्मरण करते हुए दुःखी हो रहे थे ऐसे भ्रमरोंके समूह अब कदम्ब-पुष्पोंका अभाव हो जानेसे मदोन्मत्त गजराजके मद-जैसी गन्धसे युक्त सप्तपर्ण वृक्षोंके लम्बे-चौड़े वनोंमें प्रीति करने लगे ॥२७॥ ऐसी शरद्ऋतुके समय भगवान् मुनिसुव्रतरूपी राजहंस—श्रेष्ठ राजा (पक्षमें राजहंस), लज्जा और भय ही जिनके सुन्दर आभूषण थे तथा जिन्होंने अपनी लीलासे रतिकी शोभाको दूर कर दिया था ऐसी राजहंसियों—श्रेष्ठ रानियों (पक्षमें राजहंसिनियों) को देखते हुए भगवान् मुनिसुव्रतनाथ कैलास पर्वतके समान ऊँचे महलपर विराजमान थे ॥२८॥ शरद्-ऋतुके समस्त धान्योंकी शोभासे युक्त दिशाओंको देखते-देखते उन्होंने एक मेघको देखा। वह मेघ चन्द्रमाके समान सफेद था, अत्यधिक शोभासे युक्त था और आकाशरूपी समुद्रमें क्रीड़ा करनेकी अभिलाषासे अवतीर्ण भ्रमणप्रेमी, गजराज ऐरावतके समान जान पड़ता था ॥२९॥ जिसके ऊपरसे समस्त जलरूपी अपना उत्तरीय वस्त्र नीचे खिसक गया था, जो अतिशय ऊँचा, सफेद एवं विस्तारसे युक्त था, आकाशका आभूषण था, और दिशारूपी स्त्रीके अतिशय स्थूल स्तनके समान जान पड़ता था ऐसे उस मेघको देखकर भगवान् आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥ कुछ ही समयके पश्चात् अत्यन्त प्रचण्ड वायुके वेगजन्य आघातसे उस मेघके समस्त अवयव नष्ट हो गये और वह ज्वालाओंके समीप रखे हुए नवनीतके पिण्डके समान शीघ्र ही विलीन हो गया, यह देख जगत्के स्वामी भगवान् मुनिसुव्रतनाथ इस प्रकार विचार करने लगे ॥३१॥

अरे ! यह शरदृऋतुका मेघ इतनी जल्दी कैसे विलीन हो गया ? जान पड़ता है आयु, शरीर और वपुकी क्षणभंगुरताको भुला देनेवाले मनुष्यको व्यापक उपदेश देनेके लिए ही मानो यह शीघ्र विलीन हो गया है ॥३२॥ अपने-अपने परिणामोंके अनुसार संचित, अल्प प्रमाण परमाणुओंका राशिस्वरूप यह आयुरूप मेघ निःसार है इसीलिए तो मृत्युरूपी प्रचण्ड वायुके वेगका आघात लगते ही शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥३३॥ वज्ररूपी सन्धियोंके बन्धनसे युक्त यह प्राणियोंका उत्तम रचनासे सुशोभित नूतन एवं सुन्दर शरीररूपी मेघ, मृत्युरूपी पवनके प्रबल आघातसे क्षत-विक्षत हो असमर्थ होता हुआ विफल हो जाता है ॥३४॥ सौभाग्य, रूप और नवयौवन ही जिसका आभूषण है तथा जो पृथिवीके समस्त मनुष्योंके चित्त और नेत्रोंके लिए अमृतकी वर्षा करता है ऐसे इस शरीररूपी मेघकी छाया, वृद्धावस्थारूपी तीव्र आंधीसे सूर्यको आच्छादित करनेवाली हो जाती है—नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥३५॥ शौर्य और प्रभावके द्वारा सागरान्त पृथिवीको अच्छी तरह वश करनेवाले बड़े-बड़े राजाओंके द्वारा जिनमें भूमि-भागोंकी चिर रक्षा की गयी है ऐसे उत्तम राज्यके भोगरूपी पर्वतोंके शिखर भी कालरूपी प्रचण्ड वज्रके आघातसे चूर-चूर हो जाते हैं ॥३६॥ नेत्र और मनरूप होती हुई नेत्र और मनके समान प्यारी स्त्री तथा प्राणोंके समान सुख-दुःखके साथी मित्र और पुत्र इस संसारमें अदृष्टरूपी वायुसे प्रेरित हो सूखे पत्तेके समान नष्ट होते रहते हैं। मनुष्यकी तो बात ही क्या है देव भी इस संसारमें प्रियजनोंके वियोगको प्राप्त होता है ॥३७॥ अहो ! यह प्राणी, अन्य प्राणियोंके शरीर आदिको क्षणभंगुर देखता हुआ भी स्वयं मृत्युके भयसे रहित है तथा इसकी शास्त्ररूपी दृष्टि मोहरूपी अन्धकारसे आच्छादित हो गयी है इसलिए यह इष्ट मार्गको छोड़कर विषयरूपी आमिषके गर्तमें पड़ रहा है ॥३८॥ जिसका प्रत्येक अंग कामरूपी मत्त हाथीसे संगत है ऐसा यह मनुष्य अपने अवयवोंसे प्रिय स्त्रियोंके शरीरका स्पर्श करता हुआ उनके स्पर्शजन्य सुखसे निमीलित नेत्र हो मत्त-मातंगके समान विषय बन्धको प्राप्त होता है इसलिए इस स्पर्शजन्य सुखके लिए धिक्कार है ॥३९॥ जिसकी विवेक दृष्टि नष्ट हो गयी है ऐसा यह मनुष्य जिह्वा इन्द्रियके वशीभूत हो इच्छापूर्वक छह प्रकारके रसोंसे युक्त नाना प्रकारके इष्ट आहारको ग्रहण करता हुआ वंशीके काँटेपर लगे मांसके लोभी मीनके समान बन्धको प्राप्त होता है ॥४०॥ जिस प्रकार निर्बुद्धि भ्रमर विषपुष्पकी गन्धको सूँघकर दुष्पाकसे युक्त मरणको प्राप्त होता है उसी प्रकार जंघाबलके कारण ही मानो तृप्तिके मार्गको उल्लंघन करनेवाला यह मनुष्य घ्राणेन्द्रियको अच्छे लगनेवाले सुगन्धित पदार्थोंकी सुगन्धको सूँघकर अन्धा होता हुआ दुष्परिणामसे युक्त पाप बन्धको प्राप्त होता है ॥४१॥ जिस प्रकार दीप-शिखापर पड़ा पतंग उग्र सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार रूपका लोभी यह प्राणी, चित्तको द्रवीभूत करनेमें दक्ष कटाक्ष और मन्द-मन्द मुसकुराहटसे युक्त मुखसे सुशोभित स्त्रियोंके शरीरपर दृष्टि डालता हुआ भयंकर सन्तापको प्राप्त होता है ॥४२॥ अपनी इष्ट स्त्रियोंके शब्दायमान नूपुर तथा मेखला आदि नाना प्रकारके आभूषणोंके शब्दों, प्रियभाषणों और मधुर संगीतोंसे जिसकी बुद्धि हरी गयी है ऐसा यह मनुष्य अधीर होता हुआ श्रोत्रेन्द्रियके द्वारा मृगके समान मृत्युको प्राप्त होता है ॥४३॥ अल्प शक्तिके धारक क्षुद्र मनुष्योंका समूह विषय-भोगजन्य पापरूपी कीचड़में फँसकर जो क्लेश उठाता है वह आश्चर्य नहीं है किन्तु वज्रमय शरीरके धारक श्रेष्ठ मनुष्योंका समुदाय भी जो उस पापपंकमें अतिशय निमग्न हो रहा है यह अत्यधिक आश्चर्य-की बात है ॥४४॥ जो जीव अनेकों बार अत्यन्त दीर्घ काल तक स्वर्गके सुखरूपी सागरको पीकर भी तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ उसे भूलोक सम्बन्धी अल्प सुखरूपी तृणकी चंचल जलबिन्दु कुछ दिनोंमें कैसे सन्तुष्ट कर सकती है ? ॥४५॥

जिस प्रकार ईन्धनकी बहुत बड़ी राशिसे अग्निको तृप्ति नहीं होती और सदा गिरनेवाली हजारों नदियोंसे समुद्रको सन्तोष नहीं होता उसी प्रकार सेवन किये हुए संसारके संचित काम-भोगोंसे जीवको तृप्ति नहीं होती ॥४६॥ निश्चयसे विषयरूपी ईन्धनकी बहुत बड़ी राशि, भोगाभिलाषारूपी विषम अग्निकी ज्वालाओंकी वृद्धिका कारण है और इन्द्रियविजयी मनुष्यकी जो उन विषयोंसे व्यावृत्ति है वह स्थिर जलधाराके समान उस विषमाग्निकी शान्तिका कारण है ॥४७॥ इसलिए मैं सारहीन विषयसुखको छोड़कर शीघ्र ही हितरूप मोक्ष-मार्गमें प्रवृत्ति करता हूँ और सबसे पहले अपना उत्कृष्ट प्रयोजन सिद्ध कर पश्चात् परहितके लिए यथार्थ तीर्थकी प्रवृत्ति करूंगा ॥४८॥ इस प्रकार मति, श्रुत और अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंसे युक्त स्वयम्भू भगवान् जब स्वयं प्रतिबुद्ध हो गये तब सर्वार्थसिद्धि तकके समस्त इन्द्रोंके आसन शीघ्र ही कम्पायमान हो गये ॥४९॥ उसी समय सुन्दर कुण्डल और हारोंसे सुशोभित, निश्चल मनोवृत्ति और श्वेत दीप्तिके धारक सारस्वत आदि लौकान्तिक देव आ गये और हाथ जोड़ मस्तकसे लगा पुष्पांजलियां बिखेरते हुए नमस्कार कर जिनेन्द्र भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥५०॥

हे जिनेन्द्र चन्द्र ! हे सम्यग्ज्ञानरूपी किरणोंसे मोहरूपी अन्धकारके समूहको नष्ट करने-वाले ! आप वृद्धिको प्राप्त हों, समृद्धिमान् हों, जयवन्त रहें, चिरकाल तक जीवित रहें, आप बन्ध रहित हैं, भव्य जीवरूपी कुमुदिनियोंके उत्तम बन्धु हैं और हितकारी बीसवें धर्मतीर्थके प्रवर्तक हैं ॥५१॥ हे त्रिलोकीनाथ ! आप उस धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करें जिसमें संसारके तीव्र दुःखरूपी अग्निसे सन्तप्त प्राणी स्नान कर समस्त मोहरूपी मलको छोड़ दें और शीघ्र ही आनन्ददायी उत्तम शिवालयको प्राप्त हो जावें ॥५२॥ भगवान् , चारित्र मोहकर्मके परमोपशम (उत्कृष्ट क्षयोपशम) से स्वयं ही प्रतिबोधको प्राप्त हो गये थे इसलिए उन्हें उक्त प्रकारसे सम्बोधते हुए लौकान्तिक देवोंने अन्य कुछ नहीं कहा सो ठीक ही है क्योंकि योग्य मनुष्य अपने नियोगकी पूर्तिमें कभी पुनरुक्त दोषको प्राप्त नहीं होते ॥५३॥ उसी समय नाना विमानोंके समूहसे आकाशको आच्छादित करते हुए सौधर्मेंद्र आदि चारों निकायके देव आ पहुँचे। आकर उन्होंने सुगन्धित जलसे भगवान्‌का अभिषेक किया और आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले उत्तमोत्तम आभूषण आदिसे उन्हें अलंकृत किया ॥५४॥ भगवान् मुनिसुव्रतनाथने अपनी प्रभावती स्त्रीके पुत्र सुव्रतका राज्यपदपर अभिषेक किया और हरिवंशरूपी आकाशमें चन्द्रमाके समान सुशोभित सुव्रतने भी सफेद छत्र, सफेद चामर तथा सिंहासनको अलंकृत किया ॥५५॥ तदनन्तर पहले जिसे भूमिपर राजाओंने उठाया था और उसके बाद जिसे देवलोग आकाशमें उठा ले गये थे ऐसी अतिशय सुन्दर विचित्र पालकीपर आरूढ़ होकर भगवान् वनमें गये तथा वहाँ कार्तिक शुक्ल सप्तमीके दिन वेलाका नियम लेकर दीक्षा लेनेके लिए उद्यत हुए ॥५६॥ उस समय एक हजार राजाओंके साथ भगवान्‌ने समस्त जगत् त्रयके समक्ष दीक्षा धारण की। उन्होंने अपने शिरके केश उखाड़कर फेंक दिये और इन्द्रने उन केशोंको पिटारेमें रखकर विधिपूर्वक क्षीरसमुद्रमें क्षेप दिया ॥५७॥ इस प्रकार देव, भगवान्‌का निष्क्रमणकल्याणक तथा उसकी पूजा कर यथास्थान चले गये और भगवान् भी चार ज्ञानों तथा एक हजार अनुगामी राजाओंसे उस तरह सुशोभित होने लगे जिस तरह कि एक हजार किरणोंसे सूर्य सुशोभित होता है ॥५८॥ वेलाका उपवास धारण करनेवाले भगवान् जब आगामी दिन, आहारकी विधि प्रकट करनेके लिए कुशाग्रपुरीमें अवतीर्ण हुए तब वृषभदत्त नामसे प्रसिद्ध पुरुषने उन्हें विधिपूर्वक खीरका आहार दिया ॥५९॥ उस समय मर्यादाके जाननेवाले भगवान् मुनिसुव्रत-रूपी सूर्यने अपने तीर्थमें निर्दोष चारित्रके धारक मुनियोंके योग्य आहारकी वह विधि प्रवृत्त की जो स्वाधीन थी, बाधासे रहित थी, खड़े होकर जिसमें भोजन करना पड़ता था, जिसमें पाणिपात्रमें

भोजन होता था और दानपति जिसमें विधिपूर्वक भोजन प्रदान करता था ॥६०॥ आश्चर्यकी बात थी कि उस समय शुद्धिसे सहित वृषभदत्तने मुनिराजके हाथमें जो खीर दी थी उससे बाकी वची खीरको हजारोंकी संख्यामें अन्य मुनियोंने खाया तथा घरके अन्य लोगोंने भी बार-बार ग्रहण किया फिर भी वह समाप्तिको प्राप्त नहीं हुई ॥६१॥ तदनन्तर विशाल शब्द करते हुए देव दुन्दुभि बजने लगे, धन्य-धन्यके शब्दने समस्त आकाशको व्याप्त कर दिया, सुगन्धित वायु बहने लगी, आश्चर्यकारी फूलोंकी वर्षा होने लगी और आकाशसे बड़ी मोटी रत्नोंकी धारा पड़ने लगी ॥६२॥ दूसरोंके लिए अतिशय दुर्लभ इस पंचाश्चर्यको आकाशमें खड़े देवोंने चिरकाल तक किया। तदनन्तर पुण्यराशिका संचय करनेवाले दानपतिकी पूजा कर वे देव लोग यथास्थान चले गये और भगवान् भी विहारके योग्य स्थानमें विहार कर गये ॥६३॥ तत्पश्चात् तेरह महीनेका छद्मस्थ काल बिताकर भगवान्ने ध्यानरूपी अग्निके द्वारा घातिया कर्मरूपी ईन्धनकी विपुल राशिको दग्ध कर केवलज्ञानकी प्राप्तिसे मगसिर मासकी शुक्ल पंचमी तिथिको पवित्र किया ॥६४॥ अब केवलज्ञानरूपी एक ही विशुद्ध लोचनसे भगवान् समस्त पदार्थोंको एक साथ प्रत्यक्ष देखने लगे सो ठीक ही है क्योंकि जब निरावरण सूर्यका उदय होता है तब वह प्रकाशित करने योग्य पदार्थोंके विषयमें न तो क्रमकी अपेक्षा करता है और न दूसरेकी सहायताकी ही अपेक्षा करता है ॥६५॥ उस समय समस्त अहमिन्द्रोंने अपने-अपने आसनोंसे सात-सात डग आगे चलकर तथा हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनेन्द्र भगवान्को परोक्ष नमस्कार किया और जिनके चित्तमें विशेष हर्ष प्रकट हो रहा था ऐसे शेष समस्त इन्द्र तथा देव सब ओरसे वहाँ आये ॥६६॥ जिनके चम्पक नामक चैत्य वृक्ष प्रकट हुआ था, जो अष्ट प्रातिहार्यरूपी वैभवसे अतिशय सुन्दर थे, और जो आश्चर्यकारी अचिन्त्य एवं अन्तातीत आर्हन्त्य पदको प्राप्त थे ऐसे देवाधिदेव मुनिसुव्रतनाथकी, तीनों लोकों-के स्वामी तथा राजाओंने भक्तिपूर्वक पूजा की ॥६७॥

तदनन्तर जब बारह गण बारह सभाओंमें यथास्थान बैठ गये तब विशाख नामक गणधरने विनयपूर्वक अनुयोग द्वारसे द्वादशांगका स्वरूप पूछा उसके उत्तरमें भगवान्ने धर्मका निरूपण कर पृथिवीपर तीर्थ प्रकट किया ॥६८॥ इन्द्रादि देव भगवान्के चतुर्थ कल्याणककी पूजा कर नमस्कार करते हुए यथास्थान चले गये और भगवान् भी अनेक प्राणियोंके लिए धर्मामृतकी वर्षा करते हुए अनेक देशोंमें विहार करने लगे ॥६९॥ भगवान् मुनिसुव्रतनाथके सम्पूर्ण चौदह पूर्वोंको जाननेवाले अट्ठाईस गणधर थे, और तीस हजार मुनि थे। भगवान्का यह संघ नाना गुणोंसे सात प्रकारका था ॥७०॥ उस संघमें पाँच सौ मुनिराज पूर्वधारी थे, इक्कीस हजार शिक्षार्थी थे, अठारह सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, बाईस सौ विक्रियाऋद्धिके धारक थे, पन्द्रह सौ विपुल-मति मनःपर्यय ज्ञानके धारक थे, बैर को दूर करनेवाले बारह सौ प्रसिद्ध वादी थे, पचास हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंको धारण करनेवाले श्रावक थे, और सम्यग्दर्शनसे पवित्र हृदयको धारण करनेवाली तीन लाख श्राविकाएँ थीं। इन सभासद रूपी नक्षत्रोंसे घिरे हुए भगवान्‌रूपी चन्द्रमा अतिशय सुशोभित हो रहे थे ॥७१-७३॥ भगवान्की पूर्ण आयु तीस हजार वर्षकी थी, उसमें साढ़े सात हजार वर्षका कुमारकाल था, पन्द्रह हजार वर्ष तक उन्होंने राज्यका भोग किया और शेष साढ़े सात हजार वर्ष तक संयमी होकर विहार किया ॥७४॥ महामुनियोंके अधिपति मुनिसुव्रत भगवान् आयुके अन्त समयमें हर्षको उत्पन्न करनेवाले वन-खण्डोंसे सुशोभित सम्मेदाचलपर आरूढ़ होकर कर्मोंके बन्धसे रहित हुए और बन्धका नाश करनेवाले एक हजार मुनियोंके साथ वहींसे मोक्ष गये ॥७५॥ मोक्ष जानेके एक माह पूर्व भगवान्ने विहार आदि बन्द कर योगनिरोध कर लिया था तथा माघ शुक्ला त्रयोदशीके

दिन अपराह्ण कालमें पुष्य नक्षत्रका उत्तम योग रहते हुए पद्मासनसे मोक्ष प्राप्त किया था। मुक्त होनेपर इन्द्रने निर्वाणकल्याणककी पूजा की थी ॥७६॥ भगवान् मुनिसुव्रतनाथका धर्मतीर्थ पृथिवीपर छह लाख वर्ष तक अखण्ड रूपसे चलता रहा। उनके तीर्थमें विद्याओंका परिज्ञान होनेसे मुनियोंका पूर्ण प्रभाव था, और देवोंका निरन्तर आगमन होते रहनेसे लोगोंका हर्ष बढ़ता रहता था ॥७७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि संसारमें जो भव्य प्राणी बीसवें तीर्थंकरके पंचकल्याणक-विभूतिसे युक्त इस चरितका चिन्तवन करता है, भक्तिसे इसे सुनता है, पढ़ता है, और इसका स्मरण करता है वह शीघ्र ही मोक्षके सुखको प्राप्त होता है ॥७८॥ जिनसेनाचार्य कहते हैं कि इस तरह वसन्ततिलका छन्दसे निर्मित (पक्षमें वसन्तऋतुके श्रेष्ठ नाना पुष्पोंसे निर्मित) पुष्पोंकी माला समर्पित कर जिनके चरित्रकी स्तुति की गयी है वे संसारको जीतनेवाले धीर-वीर मुनिसुव्रत जिनेन्द्र विघ्नोंको नष्ट कर हमारे लिए समाधि (चित्तकी स्थिरता) और बोधि (रत्नत्रयकी प्राप्ति) करावें ॥७९॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें मुनिसुव्रतनाथ भगवान्‌के पंचकल्याणकोंका वर्णन करनेवाला सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१६॥

□

सर्ग- १७

अथानन्तर भगवान् मुनिसुव्रतनाथके पुत्र सुव्रत हरिवंशके स्वामी हुए। उन्होंने समस्त पृथिवीको वश कर लिया था, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य इन छह अन्तरंग शत्रुओं-को जीत लिया था, तथा वे धर्म अर्थ काम रूप त्रिवर्गके मार्ग-प्रवर्तक थे ॥१॥ उनके दक्ष नामका अतिशय दक्ष—चतुर पुत्र था। वे उसे अपने पदपर नियुक्त कर अपने ही पिताके समीप दीक्षित हो गये और तपोबलसे मोक्ष चले गये ॥२॥ राजा दक्षने इला नामक रानीमें ऐलेय नामका पुत्र उत्पन्न किया और उसके बाद जिस प्रकार समुद्रने लक्ष्मीको उत्पन्न किया था उसी प्रकार मनोहरी नामकी पुत्रीको उत्पन्न किया ॥३॥ जिस प्रकार चन्द्रमाके साथ-साथ कलारूपी गुणसे युक्त उसकी कान्ति बढ़ती जाती है उसी प्रकार कुमार ऐलेयके साथ-साथ कलारूपी गुणसे युक्त नेत्रोंको हरण करनेवाली कुमारी मनोहरी दिनों-दिन बढ़ने लगी ॥४॥ जब वह यौवनवती हुई तब उसकी कमर पतली हो गयी और वह स्थूल स्तनोंके भार तथा विस्तृत नितम्ब स्थलसे अतिशय सुशोभित होने लगी ॥५॥ धीर-वीर मनुष्योंके मनको भेदन करनेवाले उसके सौन्दर्यरूपी अस्त्रके स्वाधीन रहते हुए कामदेवने अपने पुष्पमयी बाणोंका गर्व छोड़ दिया था ॥६॥ उसके सौन्दर्यरूपी शस्त्रको छोड़कर कामदेवने राजा दक्षके भी मनको भेद दिया फिर अन्य पुरुषोंकी तो बात ही क्या कही जाये ? ॥७॥

तदनन्तर कन्याके द्वारा जिसका चित्त हरा गया था ऐसे दक्ष प्रजापतिने एक दिन किसी छलसे नम्रीभूत प्रजाको अपने घर बुलाकर उससे पूछा कि हे सज्जनो ! आप सब व्यवहारके ज्ञाता हैं। मैं आप लोगोंसे एक बात पूछता हूँ सो आप सब जगत्की स्थितिका पूर्वापरविरोध रहित विचारकर उत्तर दीजिए ॥८-९॥ बात यह है कि यदि हाथी, घोड़ा, स्त्री आदि कोई वस्तु संसारमें अमूल्य हो और प्रजाके योग्य न हो तो राजा उसका स्वामी हो सकता है या नहीं ? ॥१०॥ प्रजाजनोंमें कितने ही लोगोंने चिरकाल तक आत्मामें विचारकर कहा कि हे देव ! जो वस्तु प्रजाके लिए अयोग्य है वह राजाके लिए हितकारी है ॥११॥ जिस प्रकार समुद्र हजारों नदियों और उत्तम रत्नोंकी खान है उसी प्रकार राजा भी इस लोकमें अनर्घ्य वस्तुओंकी खान है ॥१२॥ इसलिए समस्त पृथिवीतल और उत्तमोत्तम खानोंमें उत्पन्न हुआ जो भी रत्न आपके चित्तमें है—जिसे आप प्राप्त करना चाहते हैं उसे हाथमें कीजिए ॥१३॥ इस प्रकार विपरीत बुद्धिके धारक राजा दक्षने प्रजाके वचन सुन प्रकट किया कि जैसो आप लोगोंकी अनुमति है वैसा ही कार्य करूँगा—यह कहकर उसने प्रजाके लोगोंको विदा किया ॥१४॥

तदनन्तर उसने पुत्री मनोहरीका कर ग्रहण स्वयं ही कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि कामरूपी पिशाचसे गृहीत मनुष्यकी मर्यादा क्या है ? और क्रम क्या है ? भावार्थ—कामी मनुष्य सब मर्यादाओं और क्रमोंको छोड़ देता है ॥१५॥ राजा दक्षकी रानी इला देवी, पतिके इस कुकृत्यसे बहुत ही रुष्ट हुई इसलिए उसने पुत्रको पितासे फोड़ लिया—अलग कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि स्त्री आदि तभी तक है जब तक स्वामी मर्यादामें रहता है—मर्यादाका पालन करता

है ।।१६।। बड़े-बड़े सामन्तोंसे घिरी इला देवी अपने ऐलेय पुत्रको लेकर दुर्गम स्थानमें चली गयी और वहीं उसने निवास करनेका निश्चय किया ।।१७।। उसने स्वर्गपुरीके समान एक नगर बसाया जो बढ़ती हुई पृथिवीपर स्थित होनेके कारण इलावर्धन नामसे प्रसिद्ध था ।।१८।। ऐलेयको उसने उसका राजा बनाया सो प्रजासे सहित, वीर्य, धैर्य और नीतिका आधार तथा हरिवंश का तिलक-स्वरूप राजा ऐलेय वहाँ अत्यधिक सुशोभित होने लगा ।।१९।। राजा होनेपर अंग देशमें निवास करनेवाले ऐलेयने तामलिप्ति नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर नगर बसाया ।।२०।। जब ऐलेय नाना देशको जीतनेकी इच्छा करता हुआ नर्मदा नदीके तटपर आया तो उसने पृथिवीपर प्रसिद्ध माहिष्मती नामकी नगरी बसायी ।।२१।। उस नगरीमें रहकर राजा ऐलेयने चिरकाल तक नम्रीभूत राजाओंसे युक्त राज्य किया। तदनन्तर वह कुणिम नामक पुत्रके लिए राज्य सौंपकर तपके लिए चला गया ।।२२।। विजयके अभिलाषी एवं शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले कुणिमने विदर्भ देशमें वरदा नदीके किनारे कुण्डिन नामका सुन्दर नगर बसाया ।।२३।। कुछ समय बाद कुणिमको जीवन क्षण-भंगुर जान पड़ा इसलिए वह अपना वैभव पुलोम नामक पुत्रके लिए सौंपकर स्वयं तपोवनको चला गया ।।२४।। राजा पुलोमने भी पुलोमपुर नामका नगर बसाया। अन्तमें वह पौलोम और चरम नामक पुत्रोंके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपके लिए चला गया ।।२५।। पौलोम और चरमका प्रभाव समस्त जगत्में फैल रहा था तथा वे दोनों अखण्डित मण्डल—अखण्ड राष्ट्रके धारक थे इसलिए विजयकी अभिलाषा रखते हुए वे दोनों निरन्तर सूर्य और चन्द्रमाको जीतते थे। सूर्य और चन्द्रमाका प्रभाव भी समस्त जगत्में फैला रहता है और वे अखण्ड मण्डल—अखण्ड बिम्बके धारक होते हैं ।।२६।। उन दोनोंने मिलकर रेवा नदीके तटपर इन्द्रपुर नामका नगर बसाया और चरमने जयन्ती तथा वनवास्य नामकी दो नगरियाँ बसायीं ।।२७।। पौलोमके महीदत्त और चरमके संजय नामका नीतिवेत्ता पुत्र था। अन्तमें पौलोम और चरम दोनों ही तप करने लगे ।।२८।। महीदत्तने कल्पपुर नामका नगर बसाया और अरिष्टनेमि तथा मत्स्य नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ।।२९।। प्रतापी मत्स्य अपनी चतुरंग सेनासे भद्रपुर और हास्तिनपुरको जीतकर बड़ी प्रसन्नतासे हस्तिनापुरमें रहने लगा ।।३०।। उसके क्रम-क्रमसे अयोधनको आदि लेकर इन्द्रके समान पराक्रमके धारक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। अन्तमें वह ज्येष्ठ पुत्रके लिए राज्य सौंपकर दीक्षित हो गया ।।३१।। राजा अयोधनके मूल, मूलके शाल और शाल के सूर्य नामका पुत्र हुआ। सूर्यने शुभ्रपुर नामका नगर बसाया था ।।३२।। सूर्यके अमर नामका पुत्र हुआ और उसने वज्र नामका नगर बसाया। अमरके देवेन्द्रके समान पराक्रमी देवदत्त नामका पुत्र हुआ ।।३३।। देवदत्त मिथिला-नाथके हरिषेण, हरिषेणके नभसेन, नभसेनके शंख, शंखके भद्र और भद्रके शत्रुओंकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाला अभिचन्द्र नामका पुत्र हुआ ।।३४–३५।। अभिचन्द्रने विन्ध्याचलके ऊपर चेदिराष्ट्रकी स्थापना की तथा शुक्तिमती नदीके किनारे शुक्तिमती नामकी नगरी बसायी ।।३६।। अभिचन्द्रकी उग्रवंशमें उत्पन्न वसुमती नामकी रानीसे वसु नामका पुत्र हुआ। वह वसु चन्द्रकान्त महामणिके समान आर्द्रहृदय था ।।३७।। उसी नगरीमें वेदार्थका वेत्ता एक क्षीरकदम्ब नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम स्वस्तिमती था और उन दोनोंके पर्वत नामका पुत्र था ।।३८।। बुद्धिमान् गुरु क्षीरकदम्बने वसु, पर्वत और नारद इन तीन शिष्योंको गूढार्थ सहित समस्त शास्त्र पढ़ाये ।।३९।। एक बार क्षीरकदम्बक वनमें उक्त तीनों पुत्रोंको आरण्यक वेद पढ़ा रहा था कि उसने

आकाशगामी किन्हीं चारण ऋद्धिधारी मुनिके निम्नांकित वचन सुने ।।४०।। वे कह रहे थे कि वेदाध्ययनमें लगे हुए इन चार मनुष्योंके बीचमें पापके कारण दो तो अधोगतिको जावेंगे और दो पुण्यके कारण ऊर्ध्वगति प्राप्त करेंगे ।।४१।। जो अवधिज्ञानरूपी नेत्रके धारक थे, दयालु थे और संसारकी सब स्थिति जानते थे ऐसे वे मुनिराज साथके दूसरे मुनिसे इस प्रकार कहकर कहीं चले गये ।।४२।। इधर मुनिराजके उक्त वचन सुनकर क्षीरकदम्बकका हृदय शंकित हो उठा। जब दिन ढल गया तो उसने शिष्योंको तो घर भेज दिया पर स्वयं अन्यत्र चला गया ।।४३।। पतिको शिष्योंके साथ न देख स्वस्तिमतिने शंकित हो पूछा कि अरे शिष्यो! उपाध्याय कहाँ गये हैं? बताओ ।।४४।। शिष्योंने कहा कि उन्होंने हम लोगोंको यह कहकर भेजा था कि मैं अभी आता हूँ। हे माँ! वे मार्गमें पीछे आते ही होंगे, व्यग्र न होओ ।।४५।। शिष्योंके उक्त वचन सुन स्वस्तिमती दिन-भर तो चुप बैठी रही परन्तु जब वह रात्रिको भी घर नहीं आया तो उसके शोककी सीमा नहीं रही। वह पतिका अभिप्राय जानती थी इसलिए जान पड़ता है ब्राह्मणने दीक्षा ले ली है, यह विचारकर वह चिरकाल तक रोती रही ।।४६-४७।। प्रातःकाल होनेपर पर्वत और नारद उसे खोजनेके लिए गये। वे कितने ही दिन भटकते रहनेसे थक गये। अन्तमें उन्होंने देखा कि पिता क्षीरकदम्बक वनके अन्तमें गुरुके पास निर्ग्रन्थ मुद्रामें बैठकर पढ़ रहे हैं। पिताको उस प्रकार बैठा देखकर पर्वतका धैर्य छूट गया। उसने दूरसे ही लौटकर माताके लिए सब समाचार सुनाया। पर्वतके मुखसे पतिकी दीक्षाका समाचार जानकर ब्राह्मणी स्वस्तिमती बहुत दुःखी हुई। पर्वतने भी माताके साथ दुःख मनाया। अन्तमें धीरे-धीरे शोक दूर कर दोनों पहलेके समान सुखसे रहने लगे ।।४८-५०।।

पर्वत तो दूरसे चला आया था परन्तु नारद विनयी था इसलिए उसने गुरुके पास जाकर प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया, उनसे वार्तालाप कर अणुव्रत धारण किये और उसके बाद वह घर वापस आया ।।५१।। अतिशय निपुण नारदने आकर शोकसे सन्तप्त पर्वतकी माताको आश्वासन दिया, नमस्कार किया और उसके बाद अपने घरकी ओर प्रस्थान किया ।।५२।। तदनन्तर वसुके पिता राजा अभिचन्द्र भी संसारके सुखसे उदासीन हो गये इसलिए अपना विस्तृत राज्य वसुके लिए सौंपकर तपोवनको चले गये ।।५३।। नवयौवनसे मण्डित, नीतिका वेत्ता वसु इन्द्रके समान जान पड़ता था। उसने समस्त पृथिवीको स्त्रीके समान वशीभूत कर लिया था ।।५४।। राजा वसु सभामें आकाशस्फटिकके ऊपर स्थित सिंहासनपर बैठता था इसलिए अन्य राजा उसे आकाशमें ही स्थित मानते थे ।।५५।। राजा वसु सदा आकाशस्फटिकपर चलता था और सदा सत्यका ही पोषण करता था इसलिए पृथिवीपर उसका यही यश फैल रहा था कि वह धर्मकी महिमासे आकाशमे चलता है ।।५६।। उसकी एक स्त्री इक्ष्वाकुवंशकी और दूसरी कुरुवंशकी थी। उन दोनोंसे उसके क्रमसे १ बृहद्वसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ अर्क, ५ महावसु, ६ विश्वावसु, ७ रवि, ८ सूर्य, ९ सुवसु और १० बृहद्ध्वज ये दश पुत्र हुए। ये सभी पुत्र वसुके ही समान अतिशय विजिगीषु—विजयाभिलाषी—पराक्रमी थे ।।५७-५९।। इन्द्रियोंके विषयोंके समान परस्परकी प्रीतिसे युक्त इन दश पुत्रोंसे सहित राजा वसु अत्यधिक सुखका अनुभव कर रहा था ।।६०।।

अथानन्तर एक दिन बहुतसे छत्रधारी शिष्यों-से घिरा नारद, गुरुपुत्रको गुरुके समान मानता हुआ पर्वतसे मिलनेके लिए आया ।।६१।। पर्वतने नारदका अभिवादन किया और नारदने पर्वतका प्रत्यभिवादन किया। तदनन्तर गुरुपत्नीको नमस्कार कर नारद गुरुजीकी चर्चा करता हुआ बैठ गया ।।६२।। उस समय पर्वत सब ओरसे छात्रोंसे घिरा वेद वाक्यकी व्याख्या कर रहा था सो नारदके सम्मुख भी उसी तरह गर्वसे युक्त हो व्याख्या करने लगा ।।६३।। वह कह

रहा था कि 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वेद वाक्यमें जो अज शब्द आया है वह निःसन्देह पशु अर्थका ही वाचक माना गया है ॥६४॥ इसलिए पद वाक्य और पुराणके अर्थके वास्तविक जाननेवाले एवं स्वर्गके इच्छुक जो द्विज हैं उन्हें बकरासे ही यज्ञ करना चाहिए ॥६५॥ युक्तिबल और आगम बलरूपी प्रकाशसे जिसका अज्ञानरूपी अन्धकारका पटल नष्ट हो गया था ऐसे नारदने अज्ञानी पर्वतके उक्त अर्थपर आपत्ति की ॥६६॥ नारदने पर्वतको सम्बोधते हुए कहा कि हे गुरुपुत्र ! तुम इस प्रकारकी निन्दनीय व्याख्या क्यों कर रहे हो ? हे मेरे सहाध्यायी ! यह सम्प्रदाय उन्हें कहाँसे प्राप्त हुआ है ? ॥६७॥ जो निरन्तर साथ-ही-साथ रहे हैं तथा जिन्होंने कभी गुरुकी शुश्रूषाका त्याग नहीं किया ऐसे एक ही उपाध्यायके शिष्योंमें सम्प्रदाय भेद कैसे हो सकता है ? ॥६८॥ यहाँ अज शब्दका जैसा अर्थ गुरुजीने बताया था वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं है ? गुरुजीने तो कहा था जिसमें अंकुर उत्पन्न होनेकी शक्ति नहीं है ऐसा पुराना धान्य अज कहलाता है यही सनातन अर्थ है ॥६९॥ दुःखसे छूटने योग्य हठरूपी पिशाचसे जिसकी बुद्धि ग्रस्त थी ऐसे पर्वतने नारदके इस प्रकार कहनेपर भी अपना हठ नहीं छोड़ा प्रत्युत नारदके वचनोंका तिरस्कार कर उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि हे नारद ! अधिक कहनेसे क्या ? यदि इस विषयमें पराजित हो जाऊँ तो अपनी जीभ कटा लूँ ॥७०-७१॥ पश्चात् नारदने कहा कि हे पर्वत ! खोटा पक्ष लेकर, खोटे पंखोंसे युक्त पक्षीके समान दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाओंमें स्वयं क्यों पड़ रहे हो ? इसके उत्तरमें पर्वतने भी कहा कि जाओ बहुत कहनेसे क्या ? कल हम दोनोंका राजा वसुकी सभामें शास्त्रार्थ हो जावे ॥७२-७३॥ वितण्डावाद बढ़ते देख नारद यह कहकर अपने घर चला गया कि पर्वत ! मैं तुम्हें देखने आया था सो देख लिया, तुम भ्रष्ट हो गये। नारदके चले जानेपर पर्वतने भी दुःखी होकर यह वृत्तान्त अपनी मातासे कहा ॥७४॥ पर्वतकी बात सुनकर उसकी माताका हृदय बहुत दुःखी हुआ। 'हाय मैं मरी' यह कहती हुई उसने पर्वतकी निन्दा की, उसके मुखसे बार-बार यही निकल रहा था कि तेरा कहना झूठ है ॥७५॥ हे पुत्र ! परमार्थका प्ररूपक होनेसे नारदका कहना सत्य है और विपरीत अर्थका आश्रय लेनेसे तेरा कहना मिथ्या है ॥७६॥ समस्त शास्त्रोंके पूर्वापर सन्दर्भके ज्ञानसे जिनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल थी ऐसे तेरे पिताने जो कहा था हे पुत्र ! वही नारद कह रहा है ॥७७॥ इस प्रकार पर्वतसे कहकर वह प्रातःकाल होते ही राजा वसुके घर गयी। राजा वसुने उसे बड़े आदर-से देखा और उससे आनेका कारण पूछा ॥७८॥ स्वस्तिमतीने वसुके लिए सब वृत्तान्त सुनाकर पहले पढ़ते समय गुरुगृहमें उसके हाथमें धरोहररूपी रखी हुई गुरुदक्षिणाका स्मरण दिलाते हुए याचना की कि हे पुत्र ! यद्यपि तू सब तत्त्व और अतत्त्वको जानता है तथापि तुझे पर्वतके ही वचनका समर्थन करना चाहिए और नारदके वचनको दूषित ठहराना चाहिए ॥७९-८०॥ स्वस्तिमतीने चूँकि वसुको गुरुदक्षिणाविषयक सत्यका स्मरण कराया था इसलिए उसने उसके वचन स्वीकृत कर लिये और वह भी कृतकृत्यके समान निश्चिन्त हो घर वापस गयी ॥८१॥

तदनन्तर जब प्रातःकालके समय सभाका अवसर आया तब राजा वसु सिंहासनपर आरूढ़ हुआ और जिस प्रकार देवोंके समूह इन्द्रकी सेवा करते हैं उसी प्रकार क्षत्रियोंके समूह उसकी सेवा करने लगे ॥८२॥ उसी समय सर्व शास्त्रोंके विशेषज्ञ प्रश्नकर्ताओंसे घिरे हुए पर्वत और नारदने राजसभामें प्रवेश किया ॥८३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और आश्रमवासी भी आये तथा अन्य साधारण मनुष्य भी विशेष आमन्त्रण न होनेपर भी सहज स्वभाववश प्रश्न करनेके लिए सभामें आ बैठे ॥८४॥ उस समय राजसभामें कितने ही ब्राह्मण मनुष्योंके कानोंको सुख देनेवाले सामवेद गा रहे थे और कितने ही वेदोंका स्पष्ट एवं मधुर उच्चारण कर रहे थे ॥८५॥ कितने ही ओंकार ध्वनिके साथ यजुर्वेदका पाठ कर रहे थे और कितने ही पद तथा क्रमसे

युक्त अनेक मन्त्रोंकी आवृत्ति कर रहे थे ॥८६॥ कितने ही ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेदोंको लिये हुए उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंके स्वरूपका उच्चारण कर रहे थे ॥८७॥ जो ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदको प्रारम्भ कर जोर-जोरसे पाठ कर रहे थे तथा जिन्होंने दिशाओंके समूहको बहिरा कर दिया था ऐसे ब्राह्मणोंसे सभाका आँगन खचा-खच भर गया ॥८८॥ अन्तरीक्ष सिंहासनपर स्थित राजा वसुको आशीर्वाद देकर नारद और पर्वत अपने-अपने सहायकोंके साथ यथायोग्य स्थानोंपर बैठ गये ॥८९॥ जो डांड़ीरूपी अंकुरोंसे सहित थे तथा कमण्डलुरूपी बड़े-बड़े फल धारण कर रहे थे ऐसे वल्कल और जटाओंके भारसे युक्त अनेक तापसरूपी वृक्ष वहाँ विद्यमान थे ॥९०॥ उस समय जो पण्डित सभामें यथास्थान बैठे थे उनमें कितने ही सभारूपी सागरमें क्षोभ उत्पन्न होनेपर उसे रोकनेके लिए सेतुबन्धके समान थे, कितने ही पक्षपात न हो सके इसके लिए तुलादण्डके समान थे, कितने ही कुमार्गमें चलनेवाले वादीरूपी हाथियोंको वश करनेके लिए उत्तम अंकुशोंके समान थे और कितने ही श्रेष्ठतत्त्वकी खोज करनेके लिए कसौटी पत्थरके समान थे। जब सब विद्वान् यथास्थान यथायोग्य आसनोंपर बैठ गये तब जो ज्ञान और अवस्थामें वृद्ध थे ऐसे कितने ही लोगोंने राजा वसुसे इस प्रकार निवेदन किया ॥९१–९३॥

हे राजन्! ये नारद और पर्वत विद्वान् किसी एक वस्तुमें विसंवाद होनेसे आपके पास आये हैं क्योंकि आप न्यायमार्गके वेत्ता हैं ॥९४॥ यह वैदिक अर्थका विचार इस समय पृथिवी-तलपर आपके सिवाय अन्य लोगोंका विषय नहीं है क्योंकि उन सबका सम्प्रदाय छिन्न-भिन्न हो चुका है ॥९५॥ इसलिए आपकी अध्यक्षतामें इन सब विद्वानोंके आगे ये दोनों निश्चय कर न्यायपूर्ण जय और पराजयको प्राप्त करें ॥९६॥ न्याय द्वारा इस वादके समाप्त होनेपर वेदानुसारी मनुष्योंकी प्रवृत्ति सन्देहरहित एवं सब लोगोंका उपकार करनेवाली हो जायेगी ॥९७॥ इस प्रकार वृद्धजनोंके कहनेपर राजा वसुने पर्वतके लिए पूर्व पक्ष दिलवाया अर्थात् पूर्वपक्ष रखनेका उसे अवसर दिया और अपने साथी सदस्योंके कारण गर्वसे भरे पर्वतने पूर्व पक्ष ग्रहण किया ॥९८॥ पूर्व पक्ष रखते हुए उसने कहा कि 'स्वर्गके इच्छुक मनुष्योंको अजों द्वारा यज्ञकी विधि करनी चाहिए' यह एक श्रुति है इसमें जो अज शब्द है उसका अर्थ चार पावोंवाले जन्तु विशेष—बकरा है ॥९९॥ अज शब्द न केवल वेदमें ही पशुवाचक है किन्तु लोकमें भी स्त्रियों और बालकोंसे लेकर वृद्धों तक पशुवाचक ही प्रसिद्ध है ॥१००॥ यह मनुष्य अजके बालकके समान गन्ध वाला है, और 'यह अजा - बकरीका दूध है' इत्यादि स्थलोंमें अज शब्दकी जिस अर्थमें प्रसिद्धि है वह देवोंके द्वारा भी दूर नहीं की जा सकती ॥१०१॥ सिद्ध शब्द और उसके अर्थका जो सम्बन्ध पहलेसे निश्चित चला आ रहा है यदि उसमें बाधा डाली जावेगी तो व्यवहारका ही लोप हो जावेगा क्योंकि यह जगत् अन्ध उलूकोंसे सहित है—निर्विचार मनुष्योंसे भरा हुआ है ॥१०२॥ शब्द योग्य अर्थमें अवांछित रूपसे प्रवृत्त होता है और ऐसा होनेपर ही शास्त्रीय अथवा लौकिक व्यवहार चलता है ॥१०३॥ जिस प्रकार 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' स्वर्गका इच्छुक मनुष्य अग्निहोत्र यज्ञ करे, इस श्रुतिमें अग्नि आदि शब्दोंका प्रसिद्ध ही अर्थ लिया जाता है उसी प्रकार 'अजैर्यष्टव्यं स्वर्गकामैः' स्वर्गके इच्छुक मनुष्योंको अजोंसे होम करना चाहिए इस श्रुतिमें भी अजका पशु अर्थ ही स्पष्ट है और यागादि शब्दोंका अर्थ तो पशुघात निश्चित ही है ॥१०४–१०५॥ इसलिए 'अजैर्यष्टव्यम्' इत्यादि वाक्यों द्वारा निःसन्देह, जिसमें अजके बालकका घात होता है ऐसा अनुष्ठान करना चाहिए ॥१०६॥ यहाँ यह आशंका नहीं करनी चाहिए कि घात करते समय पशुको दुःख होता होगा क्योंकि मन्त्रके प्रभावसे उसकी सुखसे मृत्यु होती है उसे दुःख तो नाम मात्रका भी नहीं होता ॥१०७॥ दीक्षाके अन्तमें मन्त्रोंका उच्चारण होते ही पशुको सुखमय स्थान साक्षात्

दिखाई देने लगता है सो ठीक ही है क्योंकि मणि, मन्त्र और ओषधियोंका प्रभाव अचिन्त्य होता है ॥१०८॥ जब कि आत्मा अत्यन्त सूक्ष्मताको प्राप्त है तब यहाँ घात किसका होता है ? यह आत्मा तो अग्नि, विष तथा अस्त्र आदिके द्वारा भी घात करने योग्य नहीं है फिर मन्त्र पाठोंके द्वारा तो इसका घात होगा ही किस तरह ? ॥१०९॥ याज्ञिक लोग यज्ञमें पशुका घातकर उसके चक्षुको सूर्यके पास, क्षेत्रको दिशाओंके पास, प्राणोंको वायुके पास, खूनको जलके पास और शरीर-को पृथिवीके पास भेज देते हैं। इस तरह याज्ञिक उसे शान्ति ही पहुँचाते हैं न कि कष्ट। मन्त्र द्वारा होम करने मात्रसे ही पशु सीधा स्वर्ग भेज दिया जाता है और वहाँ यज्ञ करानेवाले आदिके समान वह कल्पकाल तक बहुत भारी सुख भोगता रहता है ॥११०-१११॥ अभिप्रायपूर्वक किया हुआ पुण्यबन्ध ही स्वर्ग प्राप्तिका कारण है और बलपूर्वक होमे गये पशुके वह सम्भव नहीं है इसलिए उसे स्वर्गकी प्राप्ति होना असम्भव है, यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि जिस प्रकार बच्चेको उसको उसकी इच्छाके विरुद्ध जबर्दस्ती दिये हुए घृतादिकसे उसकी वृद्धि देखी जाती उसी प्रकार यज्ञमें जबर्दस्ती होमे जानेवाले पशुके भी स्वर्गकी प्राप्ति देखी जाती है ॥११२॥ इस प्रकार वह पर्वत अपना पूर्व पक्ष स्थापित कर चुप हो रहा तदनन्तर बुद्धिमान् नारद उसका निराकरण करनेके लिए इस तरह बोला ॥११३॥

उसने कहा कि हे सज्जनो! सावधान होकर मेरे वचन सुनिए मैं अब पर्वतके सब वचनोंके सौ टुकड़े करता हूँ ॥११४॥ 'अजैर्यष्टव्यम्' इत्यादि वाक्यमें पर्वतने जो कहा है वह झूठ है। क्योंकि अजका अर्थ पशु है यह इसकी स्वयंकी कल्पना है ॥११५॥ वेदमें शब्दार्थकी व्यवस्था अपने अभिप्रायसे नहीं होती किन्तु वह वेदाध्ययनके समान आप्तसे उपदेशकी अपेक्षा रखती है ॥११६॥ कहनेका तात्पर्य यह है कि गुरुओंकी पूर्व परम्परासे शब्दोंके अर्थका निश्चय करना चाहिए। यदि शब्दार्थका निश्चय अन्यथा होता है तो अध्ययन भी अन्यथा हो जायगा ॥११७॥ यदि यह कहा जाये कि अध्ययन दूसरा है और अर्थज्ञान उससे भिन्न हो सकता है तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि उभयत्र न्याय समान होने या एकके विषयमें मनमानी कैसे हो सकती है ? भावार्थ—यदि अध्ययन गुरु-परम्पराकी अपेक्षा रखता है तो अर्थज्ञान भी गुरु-परम्पराकी अपेक्षा रखेगा यह न्यायसिद्ध बात है ॥११८॥ यदि यह कहा जाये कि प्रज्ञाशाली मनुष्य शब्दका अर्थ तो स्वयं जान लेता है पर शब्दको नहीं जान पाता तो यह दुस्तर शाप यहाँ किसके लिए किससे प्राप्त हुआ था सो बताओ। भावार्थ—यदि बुद्धिमान् मनुष्य अपनी इच्छासे शब्दके अर्थकी कल्पना कर लेता है तो उसे शब्द भी बना लेना चाहिए इसमें द्विविधाकी क्या बात है ? ॥११९॥ गुरुने यह सम्प्रदाय एक पर्वतके लिए ही बनाया हो यह भी सम्भव नहीं है क्योंकि हम वसु, नारद और पर्वत ये तीन योग्य शिष्य थे। भावार्थ —तीन शिष्योंमें-से एक शिष्यको गुरु दूसरा अर्थ बतलावें और शेषको दूसरा अर्थ यह सम्भव नहीं दिखता ॥१२०॥ लोकमें गोको आदि लेकर ऐसे बहुत शब्द हैं जिनका समान श्रवण होता है—समान उच्चारण होता है परन्तु विषय-भेदसे उनका प्रयोग पृथक्-पृथक् होता है। जैसे गो शब्द—पशु, किरण, मृग, इन्द्रिय, दिशा, वज्र, घोड़ा, वचन और पृथिवी अर्थमें प्रसिद्ध है परन्तु सब अर्थोंमें उसका पृथक्-पृथक् ही प्रयोग होता है। 'चित्रगु' इस शब्दमें गोका किरण अर्थ कोई नहीं करता और 'अशीतगु' इस शब्दमें गो शब्दका अर्थ सास्नादिमान् पशु कोई नहीं मानता किन्तु प्रकरणके अनुसार 'चित्रगु' शब्दमें गोका अर्थ गाय और 'अशीतगु' शब्दमें किरण ही माना जाता है ॥१२१-१२३॥ शब्दोंके अर्थमें जो प्रवृत्ति है वह या तो रूढ़िसे होती है या क्रियाके आधीन होती है परन्तु जिनके हृदयमें गुरुका उपदेश चिरकाल तक स्थिर नहीं रहता वे गुरु-प्रतिपादित अर्थको भूल जाते हैं ॥१२४॥ इसलिए

'अजैर्यष्टव्यम्' इस वेद-वाक्यमें अज शब्दका अर्थ रूढ़िगत अर्थसे दूर 'न जायन्ते इति अजाः' (जो उत्पन्न न हो सकें वे अज हैं) इस व्युत्पत्तिसे क्रिया सम्मत 'तीन वर्षका धान्य' लिया गया है ॥१२५॥ विद्वान् लोग, लोक और शास्त्र दोनोंमें रूढ़ि शब्दके ऐश्वर्यको जानते हैं अतः 'अजगन्धोऽयं पुरुषः' इत्यादि स्थलोंमें अज शब्दका बकरा अर्थमें प्रयोग निषिद्ध नहीं है ॥१२६॥ पर्वत-ने जो पहले यह दोष दिया था कि यदि शब्दोंका स्वभावसिद्ध अर्थ न किया जायेगा तो व्यवहारका ही लोप हो जायेगा उसका हमारे ऊपर प्रसंग ही नहीं आता क्योंकि शब्दोंका अपने-अपने योग्य स्थलोंपर व्यवहारकी सिद्धिके लिए ही उपयोग किया जाता है ॥१२७॥ इसलिए पृथिवी आदि सामग्रीके रहते हुए भी जिसमें अंकुरादि रूप पर्याय प्रकट न हो सके ऐसा तीन वर्षका पुराना धान अज कहलता है। यह तो अज शब्दका अर्थ है और ऐसे धान्यसे यज्ञ करना चाहिए यह 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वाक्यका अर्थ है ॥१२८॥ यज धातुका अर्थ देव-पूजा है इसलिए द्विजोंको पूर्वोक्त धानसे ही पूजा करनी चाहिए क्योंकि नैवेद्य आदिसे की हुई पूजा ही स्वर्ग रूप फलको देनेवाली होती है ॥१२९॥ हिताभिलाषी मनुष्य जिन्होंने युगके आदिमें असि, मषि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन छह कर्मोंकी प्रवृत्ति चलायी थी, जो पुराण पुरुष हैं, उत्कृष्ट हैं, रक्षक हैं, इन्द्ररूप हैं, इन्द्रके द्वारा पूज्य हैं, वेदमें स्वयम्भू नामसे प्रसिद्ध हैं, मोक्ष मार्गके उपदेशक हैं, संसार-सागरके शोषक हैं, अनन्त ज्ञान-सुख आदि गुणोंसे युक्त ईश नामसे प्रसिद्ध हैं, महेश्वर हैं, ब्रह्मा हैं, विष्णु हैं, ईशान हैं, सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, अनामय–रोगरहित हैं और सूर्यके समान वर्णवाले हैं ऐसे भगवान् वृषभदेवकी ही पूजा करते हैं ॥१३०-१३२॥ उसी पूजासे पुरुषोंको स्वर्ग सुख प्राप्त होता है, उसीसे मोक्षका अविनाशी सुख मिलता है, उसीसे कीर्ति, उसीसे कान्ति, उसीसे दीप्ति और उसीसे धृतिकी प्राप्ति होती है ॥१३३॥ साक्षात् पशुकी बात तो दूर रही पशुरूपसे कल्पित चूनके पिण्डसे भी पूजा नहीं करनी चाहिए क्योंकि अशुभ संकल्पसे पाप होता है और शुभ संकल्पसे पुण्य होता है ॥१३४॥ जो नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव निक्षेपके भेदसे चार प्रकारका पशु कहा गया है उसकी हिंसाका कभी मनसे भी विचार नहीं करना चाहिए ॥१३५॥ यह जो कहा है कि मन्त्र द्वारा होनेवाली मृत्युसे दुःख नहीं होता है वह मिथ्या है क्योंकि यदि दुःख नहीं होता है तो जिस प्रकार पहले स्वस्थ अवस्थामें मृत्यु नहीं हुई थी उसी प्रकार अब भी मृत्यु नहीं होनी चाहिए ॥१३६॥ यदि पैर बांधे बिना और नाक मूँदे बिना अपनेआप पशु मर जावे तब तो मन्त्रसे मरना सत्य कहा जाये परन्तु यह असम्भव बात है ॥१३७॥ मन्त्रके प्रभावसे मरनेवाले पशुको सुखासिका प्राप्त होती है यह भी एकान्त नहीं है क्योंकि जो पशु मारा जाता है वह ग्रहसे पीड़ितकी तरह जोर-जोरसे चिल्लाता है इसलिए उसका दुःख स्पष्ट दिखाई देता है ॥१३८॥ यह जो कहा है कि आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे अवध्य है—मारनेमें नहीं आता है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि जब आत्मा स्थूल शरीरमें स्थित होता है तब स्थूल भी तो होता है ॥१३९॥ यह आत्मा शरीररूपी आधारके अनुसार दीपकके प्रकाशके समान सूक्ष्म और स्थूलरूप होता हुआ संकोच तथा विस्तार-को प्राप्त होता रहता है ॥१४०॥ यदि अनन्त शरीरोंका अनुभव करनेवाला संसारी जीव इस प्रकार छोटा-बड़ा न माना जावे और एकान्तसे सूक्ष्म हो माना जावे तो वह सुख-दुःखको किस तरह प्राप्तकर सकेगा ? ॥१४१॥ इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध है कि जीव शरीर प्रमाण है और मन्त्र-तन्त्र तथा अस्त्र आदिसे शरीरका घात होनेपर इसे नियमसे दुःख होता है ॥१४२॥ जब यह जीव तीव्र दुःखसे मरने लगता है तब चक्षु आदि इन्द्रियोंसे स्वयं ही वियुक्त हो जाता है इस-लिए उनका वियोग करानेवाला और दूसरा कौन है ? । भावार्थ—जब जीव स्वयं ही चक्षु आदि इन्द्रियोंसे वियुक्त होता है तब यह कहना कि 'याजक लोग उनके चक्षु आदिको सूर्य आदिके पास

भेज देते हैं' मिथ्या है ॥१४३॥ प्राणियोंका घात करनेवालेको स्वर्ग कैसे हो सकता है ? जिससे कि याजक आदिको याज्य (पशु आदिके) स्वर्ग जानेमें दृष्टान्त माना जा सके। भावार्थ—पर्वतने कहा था कि मन्त्र द्वारा होम करते ही पशु स्वर्ग भेज दिया जाता है और वहाँ वह याजकादिके समान कल्प काल तक अत्यधिक सुख भोगता रहता है सो प्राणियोंका घात करनेवाले याजक आदिको स्वर्ग कैसे मिल सकता है ? उन्हें तो इस पापके कारण नरक मिलना चाहिए अतः जब याजक आदि स्वर्ग नहीं जाते तब उन्हें पशुके स्वर्ग जानेमें दृष्टान्त कैसे बनाया जा सकता है ? ॥१४४॥

धर्म सहित कार्य ही पशुको सुख प्राप्तिमें सहायक हो सकता है अधर्म सहित कार्य नहीं क्योंकि बच्चेके लिए माताके द्वारा दिया हुआ अपथ्य पदार्थ सुख प्राप्तिका कारण नहीं होता। भावार्थ—पर्वतने कहा था कि जिस प्रकार न चाहनेपर भी बच्चेके लिए घी आदि दिया जाता है तो वह उसकी वृद्धिका कारण होता है, उसी प्रकार पशुके न चाहनेपर भी उसे यज्ञमें होमा जाता है तो वह उसके लिए स्वर्गप्राप्तिका कारण होता है..। पर्वतका यह कहना ठीक नहीं क्योंकि धर्मयुक्त कार्य ही पशुके लिए सुखप्राप्तिमें सहायक हो सकता है अधर्मयुक्त नहीं। जिस प्रकार माताके द्वारा दिये हुए घृत, दुग्ध आदि हितकारी पदार्थ ही बच्चेके लिए सुखप्राप्तिमें सहायक होते हैं विषादिक अपथ्य पदार्थ नहीं उसी प्रकार पशुको जबर्दस्ती होम देने मात्रसे उसे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं हो सकती किन्तु उसके धर्मयुक्त कार्यसे ही हो सकती है ॥१४५॥

इस प्रकार सभारूपी वर्षाकालमें अपने तीक्ष्ण वचन रूपी वज्रके अग्रभागसे पर्वतके मिथ्या पक्षरूपी पर्वत—पहाड़के भद्दे किनारेको तोड़कर जब नारदरूपी मेघ चुप हो रहा तब सभामें बैठे हुए धर्मके परीक्षक लोगोंने एवं साधारण मनुष्योंने शिर हिला-हिलाकर तथा अपनी-अपनी अँगुलियाँ चटकाकर नारदके लिए बार-बार धन्यवाद दिया ॥१४६–१४७॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता शिष्टजनोंने अन्तरिक्षचारी राजा वसुसे पूछा कि हे राजन्! आपने गुरुके द्वारा कहा हुआ जो सत्य अर्थ सुना हो वह कहिए ॥१४८॥ यद्यपि राजा वसु दृढ़-बुद्धि था और गुरुके वचनोंका उसे अच्छी तरह स्मरण था तथापि मोहवश सत्यके विषयमें अविवेकी हो वह निम्न प्रकार वचन कहने लगा ॥१४९॥ कि हे सभाजनो! यद्यपि नारदने युक्ति-युक्त कहा है तथापि पर्वतने जो कहा है वह उपाध्यायके द्वारा कहा हुआ कहा है ॥१५०॥ इतना कहते ही वसुका स्फटिकमणिमय आसन पृथिवीमें धँस गया और वह पातालमें जा गिरा सो ठीक ही है क्योंकि पापसे पतन होता ही है ॥१५१॥ जिसका शरीर पातालमें स्थित था ऐसा वसु मरकर सातवीं पृथिवी गया और वहाँ महारौरव नामक नरकमें नारकी हुआ ॥१५२॥ हिंसानन्द और मृषानन्द रौद्र ध्यानसे कलुषित हो वसु भयंकर नरकमें गया सो ठीक ही है क्योंकि रौद्रध्यान दुःखदायक होता ही है ॥१५३॥ सब लोगोंके समक्ष जब वसु पातालमें चला गया तब सब ओर आकुलतासे भरा हा-हा धिक्-धिक् शब्द गूँजने लगा ॥१५४॥ जिसे तत्काल ही असत्य बोलनेका फल मिल गया था ऐसे राजा वसुकी सब लोगोंने निन्दा की और दुष्ट पर्वतका तिरस्कार कर उसे नगरसे बाहर निकाल दिया ॥१५५॥ तत्त्ववादी, गम्भीर एवं वादियोंको परास्त करने-वाले नारदको लोगोंने ब्रह्म रथपर सवार किया तथा उसका सम्मान कर सब यथास्थान चले गये ॥१५६॥ इधर तिरस्कार पाकर पर्वत भी अनेक देशोंमें परिभ्रमण करता रहा अन्तमें उसने द्वेष-पूर्ण दुष्ट महाकाल नामक असुरको देखा ॥१५७॥ पूर्व भवमें जिसका तिरस्कार हुआ था ऐसे महाकाल असुरके लिए अपने परभवका समाचार सुनाकर पर्वत उसके साथ मिल गया और दुर्बुद्धिके कारण हिंसापूर्ण शास्त्रकी रचना कर, लोकमें ठगिया बन हिंसापूर्ण यज्ञका प्रदर्शन करता हुआ

प्राणिहिंसामें तत्पर मूर्खजनोंको प्रसन्न करने लगा ।।१५८–१५९।। अन्तमें पापोपदेशके कारण पाप-रूपी शापके वशीभूत होनेसे पर्वत मरा और मरकर वसुकी सेवा करनेके लिए ही मानो नरक गया ।।१६०।। मन्त्रियोंने वसुके आठ पुत्रोंको क्रमसे एक दूसरेके बाद उसकी गद्दीपर बैठाया परन्तु वे भी थोड़े ही दिनोंमें मृत्युको प्राप्त हो गये ।।१६१।। तदनन्तर जो दो पुत्र शेष बचे उनमें मृत्युके भयसे भयभीत हो सुवसु तो भागकर नागपुरमें रहने लगा और बृहद्ध्वज मथुरामें जा बसा ।।१६२।।

बड़े खेदकी बात है कि एक ओर तो वसु सत्यजनित प्रसिद्धिको पाकर अन्तमें पापके कारण नरक गया और अभिमानके वशीभूत हुआ पर्वत भी उसके पीछे पापपूर्ण नरकको प्राप्त तथा दूसरी ओर सम्यग्दृष्टि दिवाकर नामक विद्याधर मित्रको पाकर एवं पर्वतके मिथ्या मतका खण्डन कर नारद कृत-कृत्य होता हुआ स्वर्ग गया ।।१६३।। जीवोंपर दया करना धर्म है, निरन्तर हिंसाका त्याग करना दया है और अपने प्राण जानेपर भी उस ओर लगे हुए मन, वचन, कायके द्वारा वधसे दूर रहना हिंसा त्याग है। जिनेन्द्र भगवान्ने हिंसा त्यागको ही धर्म कहा है। आदर-पूर्वक आचरण किया हुआ यह धर्म, स्वर्ग और मोक्षकी मोहरूपी अर्गलाको भेदकर विद्वज्जनोंको अतिशय विस्तृत सुखमें पहुँचा देता है ।।१६४।।

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें राजा वसुके चरितमें नारद और पर्वतके विवादका वर्णन करनेवाला सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।१७।।

□

सर्ग- १८

अथानन्तर—राजा वसुका जो बृहद्ध्वज नामका पुत्र मथुरामें रहने लगा था उसके सुबाहु नामका विनयवान् पुत्र हुआ। राजा बृहद्ध्वज सुबाहुके लिए राज्यलक्ष्मी सौंप आप तपरूपी लक्ष्मीको प्राप्त हो गया। यथाक्रमसे सुबाहुके दीर्घबाहु, दीर्घबाहुके वज्रबाहु, वज्रबाहुके लब्धाभिमान, लब्धाभिमानके भानु, भानुके यवु, यवुके सुभानु और सुभानुके भीम पुत्र हुआ। इस प्रकार इन्हें आदि लेकर भगवान् मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमें सैकड़ों-हजारों राजा उत्पन्न हुए और सबने अपने-अपने पुत्रोंपर राज्य-भार सौंपकर तप धारण किया ॥१-४॥ भगवान् मुनिसुव्रतके बाद नमिनाथ हुए। इनकी आयु पन्द्रह हजार वर्षकी थी तथा इनका तीर्थ पाँच लाख वर्ष तक प्रचलित रहा। इन्हींके तीर्थमें हरिवंशरूपी उदयाचलपर सूर्यके समान यदु नामका राजा हुआ। यही यदु राजा, यादवोंकी उत्पत्तिका कारण था तथा अपने प्रतापसे समस्त पृथ्वीपर फैला हुआ था ॥५-६॥ राजा यदुके नरपति नामका पुत्र हुआ। उसपर पृथिवीका भार सौंप राजा यदु तपकर स्वर्ग गया ॥७॥ राजा नरपतिके शूर और सुवीर नामक दो पुत्र हुए सो नरपति उन्हें राज्य-सिंहासनपर बैठाकर तप करने लगा ॥८॥ अत्यन्त कुशल शूरने छोटे भाई सुवीरको मथुराके राज्यपर अधिष्ठित किया और स्वयं कुशद्य देशमें एक उत्तम शौर्यपुर नामका नगर बसाया ॥९॥ शूरसे अन्धकवृष्णिको आदि लेकर अनेक शूरवीर उत्पन्न हुए, और मथुराके स्वामी सुवीरसे भोजकवृष्णिको आदि लेकर अनेक वीर पुत्र उत्पन्न हुए ॥१०॥ यथायोग्य अपने-अपने बड़े पुत्रोंपर पृथिवीका भार सौंपकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए शूर और सुवीर दोनों ही सुप्रतिष्ठ मुनिराजके पास दीक्षित हो गये ॥११॥ अन्धकवृष्णिकी सुभद्रा नामक उत्तम स्त्री थी उससे उनके दश पुत्र हुए जो देवोंके समान कान्तिवाले थे तथा स्वर्गसे च्युत होकर आये थे ॥१२॥ उनके नाम इस प्रकार थे—१ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमितसागर, ४ हिमवान्, ५ विजय, ६ अचल, ७ धारण, ८ पूरण, ९ अभिचन्द्र और १० वसुदेव। ये सभी पुत्र योग्य दशाके धारक, महाभाग्यशाली और सार्थक नामोंसे युक्त थे ॥१३-१४॥ उक्त पुत्रोंके सिवाय कुन्ती और मद्री नामकी दो कन्याएँ भी थीं जो अतिशय मान्य थीं, स्त्रियोंके गुणरूपी आभूषणोंसे सहित थीं, लक्ष्मी और सरस्वतीके समान जान पड़ती थीं और समुद्रविजयादि दश भाइयोंकी बहनें थीं ॥१५॥

राजा भोजकवृष्णिकी जो पद्मावती नामकी पत्नी थी उसने उग्रसेन, महासेन तथा देवसेन नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१६॥ राजा वसुका जो सुवसु नामका पुत्र, कुंजरावर्तपुर (नागपुर) में रहने लगा था उसके बृहद्रथ नामका पुत्र हुआ और वह मागधेशपुरमें रहने लगा ॥१७॥ बृहद्रथके दृढरथ नामका पुत्र हुआ। दृढरथके नरवर, नरवरके दृढरथ, दृढरथके सुखरथ, सुखरथके कुलको दीप्त करनेवाला दीपन, दीपनके सागरसेन, सागरसेनके सुमित्र, सुमित्रके वप्रथु, वप्रथुके विन्दुसार, विन्दुसारके देवगर्भ और देवगर्भके शतधनु नामका वीर पुत्र हुआ। यह शतधनु धनुर्धारियोंमें सबसे श्रेष्ठ था ॥१८-२०॥ तदनन्तर क्रमसे लाखों राजाओंके व्यतीत हो जानेपर उसी वंशमें निहतशत्रु नामका राजा हुआ। उसके शतपति और शतपतिके बृहद्रथ नामका पुत्र हुआ। यह राजगृह नगरका स्वामी था। बृहद्रथके पृथिवीको वश करनेवाला जरासन्ध नामका

पुत्र हुआ ॥२१-२२॥ वह विभूतिमें रावणके समान था, तीन खण्ड भरतका स्वामी था और देवोंके समान प्रतापी प्रतिनारायणोंमें नौवाँ नारायण था ॥२३॥ अनेक स्त्रियोंके बीच उसकी कालिन्द-सेना नामकी पट्टरानी थी जो पट्टरानियोंके समस्त गुणोंसे सहित थी। राजा जरासन्धके कालयवन आदि अनेक नीतिज्ञ पुत्र थे ॥२४॥ चक्रवर्ती जरासन्धके अपराजित आदि अनेक भाई थे जो हरिवंशरूपी महावृक्षकी शाखापर लगे हुए फलोंके समान जान पड़ते थे ॥२५॥ राजा जरासन्ध अपनी अद्वितीय माताका अद्वितीय वीर पुत्र था। वह राजसिंह, राजगृह नगरमें स्थिर रहकर ही दक्षिण श्रेणीमें रहनेवाले समस्त विद्याधर राजाओंके समूहपर शासन करता था। उत्तरापथ और दक्षिणापथके समस्त राजा, पूर्व-पश्चिम समुद्रोंके तट तथा मध्यके समस्त देश उसके वशमें थे। समस्त भूमिगोचरी और समस्त विद्याधर उसकी आज्ञाको शेखरके समान शिरपर धारण करते थे ॥२६-२८॥ वह चक्रवर्तीकी लक्ष्मीका स्वामी था तथा इन्द्रकी शोभाको धारण करता था। कदाचित् शौर्यपुरके उद्यानमें गन्धमादन नामक पर्वतपर रात्रिके समय सुप्रतिष्ठ नामक मुनिराज प्रतिमा योग लेकर विराजमान थे। पूर्व वैरके कारण सुदर्शन नामक यक्षने उन मुनिराजपर अग्नि-वर्षा, प्रचण्ड वायु तथा मेघ वृष्टि आदि अनेक कठिन उपसर्ग किये परन्तु उन सबको घातिया कर्मोंका क्षय करनेवाले उक्त मुनिराजने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ॥२९-३१॥ उनकी वन्दनाके लिए सौधर्म आदि इन्द्रोंके समूह, चारों निकायके देवोंके साथ वहाँ आये और सबने भक्तिपूर्वक पूजा कर केवली भगवान्‌को नमस्कार किया ॥३२॥ शौर्यपुरका राजा अन्धकवृष्णि भी अपने पुत्रों-स्त्रियों तथा सेनाओंके साथ आया और भक्तिपूर्वक सुप्रतिष्ठ केवलीकी पूजा-वन्दना कर अपने स्थानपर बैठ गया ॥३३॥ जब जगत्‌के जीव धर्मोपदेश सुननेके लिए कान देकर तथा हाथ जोड़कर सावधानीके साथ बैठ गये तब सुप्रतिष्ठ मुनिराजने इस प्रकार उपदेश देना प्रारम्भ किया ॥३४॥

उन्होंने कहा कि तीनों लोकोंमें त्रिवर्गकी प्राप्ति धर्मसे ही कही गयी है इसलिए उसकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको सदा धर्मका संग्रह करना चाहिए ॥३५॥ शुभ वृत्तिसे युक्त मन, वचन, कायके द्वारा किया हुआ धर्म, प्राणीको सुखके आधारभूत स्थान—स्वर्ग अथवा मोक्षमें पहुँचा देता है ॥३६॥ धर्म उत्कृष्ट मंगलस्वरूप है तथा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे सहित अहिंसा, संयम और तप उस धर्मके लक्षण बतलाये गये हैं ॥३७॥ इस संसारमें धर्म सब पदार्थोंसे उत्तम है, यह धेनुओंमें कामधेनु है तथा उत्कृष्ट सुखकी खान है ॥३८॥ जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक आदिसे उत्पन्न दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त शरणार्थी जनोंके लिए लोकमें धर्म ही उत्तम शरण है ॥३९॥ मनुष्यों और देवोंमें पाये जानेवाले समस्त अभ्युदय सम्बन्धी सुख और मोक्ष सम्बन्धी सुखका कारण धर्म ही माना गया है ॥४०॥ जो स्वर्गावतरणादिके समय पंचकल्याणक पूजाओंके पात्र थे ऐसे इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान् नमिनाथने इस युगमें अपने समयवर्ती जीवोंके लिए जो धर्म कहा था वह इस प्रकार है ॥४१-४२॥ उन्होंने मुनियोंके लिए १ अहिंसा, २ सत्य भाषण, ३ अचौर्य, ४ ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह ये पांच महाव्रत, १ मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति और ३ काय-गुप्ति ये तीन गुप्तियाँ, १ ईर्या, २ भाषा, ३ एषणा, ४ आदान निक्षेपण और ५ प्रतिष्ठापन ये पांच समितियाँ और विद्यमान समस्त सावद्य योगका त्याग—यह धर्म बतलाया है ॥४३-४४॥ तथा गृहस्थोंके लिए पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह बारह प्रकारका धर्म कहा है ॥४५॥ हिंसादि पापोंका एक देश छोड़ना अणुव्रत कहा गया है, दिशा देश और अनर्थदण्डोंसे विरत होनेको गुणव्रत कहते हैं और तीनों सन्ध्याओंमें सामायिक करना, प्रोपधोपवास करना, अतिथिपूजन करना और आयुके अन्तमें सल्लेखना धारण करना इसे शिक्षाव्रत कहते हैं ॥४६-४७॥ मद्य-त्याग, मांस-त्याग, मधु-त्याग, द्यूत-त्याग, क्षीरिफल-त्याग, वेश्या-त्याग तथा अन्यवधू-त्याग आदि नियम कहलाते हैं ॥४८॥ 'तत्त्व यही है' इस प्रकार ज्ञान और श्रद्धान होना सो सम्यग्ज्ञान

और सम्यग्दर्शन है। शंका, आकांक्षा, जुगुप्सा तथा अन्य मतकी प्रशंसा और स्तुतिका छोड़ना, उपगूहन, मार्गसे भ्रष्ट होनेवालोंका स्थितीकरण करना, वात्सल्य और प्रभावना ये सब सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेके हेतु है ॥४९-५०॥

गृहस्थ धर्म साक्षात् तो स्वर्गादिक अभ्युदयका कारण है और परम्परासे मोक्षका कारण है परन्तु मुनि धर्म मोक्षका साक्षात् कारण है ॥५१॥ वह मुनिधर्म मनुष्य शरीरमें ही प्राप्त होता है अन्य जन्ममें नहीं और मनुष्य-जन्म संकटपूर्ण संसारमें बड़े दुःखसे प्राप्त होता है ॥५२॥ ये प्राणी कर्मोदयके वशीभूत हो स्थावर तथा त्रसकायोंमें अथवा नरकादि चतुर्गतियोंमें क्लेश भोगते हुए भ्रमण करते रहते हैं ॥५३॥ मात्र स्पर्शन इन्द्रियको धारण करनेवाला एकेन्द्रिय जीव पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिके शरीरमें दीर्घकाल तक भ्रमण करता रहा है ॥५४॥ कर्मकलंकसे कलंकित ऐसे अनन्त जीव हैं जिन्होंने आज तक त्रसपर्याय नहीं प्राप्त की और आगे भी उसी निगोद पर्यायमें निवास करते रहेंगे ॥५५॥ ये प्राणी चौरासी लाख कुयोनियों तथा अनेक कुलकोटियोंमें निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं ॥५६॥ वे कुयोनियाँ नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें प्रत्येकको सात-सात लाख होती हैं ॥५७॥ वनस्पतिकायिकोंकी दश लाख, विकलेन्द्रियोंकी छह लाख, मनुष्योंकी चौदह लाख, तिर्यंच, नारकी और देवोंकी प्रत्येककी चार-चार लाख होती हैं ॥५८॥ पृथिवीकायिक जीवोंको बाईस लाख, जलकायिक और वायुकायिकको प्रत्येककी सात-सात लाख, अग्निकायिककी तीन लाख, वनस्पतिकायिककी अट्ठाईस लाख, दो इन्द्रियोंको सात लाख, तीन इन्द्रियोंकी आठ लाख, चौइन्द्रियोंकी नौ लाख, जलचरोंकी साढ़े बारह लाख, पक्षियोंकी बारह लाख, चौपायोंकी दश लाख, छातीसे सरकनेवालोंकी नौ लाख, मनुष्योंकी चौदह लाख, नारकियोंकी पचीस लाख और देवोंकी छब्बीस लाख कुलकोटियाँ हैं। संक्षेपसे ये सब कुलकोटियाँ साढ़े निन्यानबे लाख हैं॥५९-६३॥ खर पृथिवीकी बाईस हजार वर्ष, कोमल पृथिवीकी बारह हजार वर्ष, जलकायिक जीवोंको सात हजार वर्ष, वायुकायिक जीवोंको तीन हजार वर्ष, तेजस्कायिक जीवोंकी तीन दिन-रात, वनस्पतिकायिक जीवोंकी दश हजार वर्ष, दो इन्द्रिय जीवोंकी बारह वर्ष, तीन इन्द्रिय जीवोंको उनचास दिन, चार इन्द्रिय जीवोंको छह माह, पक्षियोंकी बहत्तर हजार वर्ष, सांपोंकी बयालीस हजार वर्ष, छातीसे सरकनेवालोंकी नौ पूर्वांग, मनुष्यों और मत्स्योंकी एक करोड़ वर्ष पूर्वकी उत्कृष्ट आयु है ॥६४-६९॥ पृथिवीकायिक जीव मसूरके आकार हैं, जलकायिक तृणके अग्र भागपर रखी बूँदके समान हैं, तैजस्कायिक जीव खड़ी सूइयोंके सदृश हैं, वायुकायिक जीव पताकाके समान हैं, वनस्पतिकायिक जीव अनेक आकारके धारक हैं। विकलेन्द्रिय तथा नारकी जीव हुण्डक संस्थानसे युक्त हैं ॥७०-७१॥ मनुष्य और तिर्यंच छहों संस्थानके धारक कहे गये हैं और देव केवल समचतुरस्र संस्थानसे युक्त बतलाये गये हैं ॥७२॥ सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवका शरीर अंगुलके असंख्यातवें भाग है और वह उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें जघन्य अवगाहनारूप होता है ॥७३॥ सूक्ष्म और स्थूल भेदोंको धारण करनेवाले एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तकका शरीर यदि छोटेसे छोटा होगा तो अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होगा इससे छोटा नहीं ॥७४॥ कमल प्रमाणकी अपेक्षा एक हजार योजन तथा एक कोश विस्तारवाला है। समस्त एकेन्द्रिय जीवोंमें देहका उत्कृष्ट प्रमाण यही माना गया है ॥७५॥ दोइन्द्रिय जीवोंमें सबसे बड़ी अवगाहना शंखकी है और वह बारह योजन प्रमाण है। तीन इन्द्रियोंमें सबसे बड़ा कानखजूरा है और वह तीन कोश प्रमाण है। चौइन्द्रियोंमें सबसे बड़ा भ्रमर है और वह एक योजन—चार कोश प्रमाण है तथा पंचेन्द्रियोंमें सबसे बड़ा स्वयम्भूरमण समुद्रका राघव मच्छ है और वह एक

हजार योजन प्रमाण है। पंचेन्द्रियोंमें सूक्ष्म अवगाहना सिक्थक मच्छकी है ॥७६–७७॥ सम्मूर्च्छन-जन्मसे उत्पन्न अपर्याप्तक जलचर, थलचर और नभचर तिर्यंचोंकी जघन्य अवगाहना एक वितस्ति प्रमाण है ॥७८॥ गर्भजोंमें अपर्याप्तक जलचर, स्थलचर, सम्मूर्च्छनोंमें पर्याप्तक जलचर, नभश्चर तथा गर्भजोंमें पर्याप्तक, अपर्याप्तक दोनों प्रकारके नभश्चर, तिर्यंच, उत्कृष्ट रूपसे पृथक्त्व धनुष प्रमाण शरीरकी अवगाहना धारण करते हैं ॥७९-८०॥ गर्भजन्मसे उत्पन्न पर्याप्तक जलचर जीव पाँच सौ योजन विस्तारवाले हैं। जिन मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु तीन पल्यकी है उनकी अवगाहना तीन कोश प्रमाण है ॥८१॥ नारकी उत्कृष्टतासे पाँच सौ धनुष ऊँचे हैं और देव पचीस धनुष प्रमाण है। इनकी आयु पहलेके समान है ॥८२॥

आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनके भेदसे पर्याप्तियाँ छह कही गयी हैं ॥८३॥ स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां कही गयी हैं। उनमें स्थावर जीवोंके केवल स्पर्शन इन्द्रिय और त्रसजीवोंके यथाक्रमसे सभी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं ॥८४॥ भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रियके भेदसे इन्द्रियां दो प्रकारकी हैं। इनमें भावेन्द्रियाँ लब्धि और उपयोग रूप हैं तथा द्रव्येन्द्रियां निर्वृति और उपकरणरूप मानी गयी हैं ॥८५॥ स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकारवाली है, रसना खुरपोके समान है, घ्राण अतिमुक्तक—तिल पुष्पका अनुकरण करती है, चक्षु मसूरका अनुसरण करती है और कर्ण इन्द्रिय यवकी नलीके समान है। इस प्रकार द्रव्येन्द्रियोंका आकार कहा ॥८६–८७॥ एकेन्द्रिय जीवकी स्पर्शन इन्द्रियका उत्कृष्ट विषय चार सौ धनुष है। उसके आगे असैनी पंचेन्द्रिय तक दूना-दूना होता जाता है ॥८८॥ इस प्रकार द्वीन्द्रियके स्पर्शनका विषय आठ सौ धनुष. त्रीन्द्रियके सोलह सौ धनुष, चतुरिन्द्रियके बत्तीस सौ धनुष और असैनी पंचेन्द्रियके चौसठ सौ धनुष है। रसना इन्द्रियका विषय द्वीन्द्रिय जीवके चौंसठ धनुष, त्रीन्द्रियके एक सौ अट्ठाईस धनुष, चतुरिन्द्रियके दो सौ छप्पन धनुष, और असैनी पंचेन्द्रियके पाँच सौ धनुष है। घ्राण इन्द्रियका विषय त्रीन्द्रिय जीवके सौ धनुष, चतुरिन्द्रियके दो सौ धनुष और असैनी पंचेन्द्रियके चार सौ धनुष प्रमाण है ॥८९॥ चतुरिन्द्रिय जीव अपनी चक्षुरिन्द्रियके द्वारा उनतीस सौ चौवन योजन तक देखता है ॥९०॥ और असैनी पंचेन्द्रियके चक्षुका विषय उनसठ सौ आठ योजन है। एवं असैनी पंचेन्द्रियके श्रोत्रका विषय एक योजन है ॥९१॥ सैनी पंचेन्द्रिय जीव नौ योजन दूर स्थित स्पर्श, रस और गन्धको यथायोग्य ग्रहण कर सकता है और बारह योजन दूर तकके शब्दको सुन सकता है ॥९२॥ सैनी पंचेन्द्रिय जीव अपने चक्षुके द्वारा सैंतालीस हजार दो सौ त्रेशठ योजनकी दूरीपर स्थित पदार्थको देख सकता है ॥९३॥ इस प्रकार यह असार संसार अनेक विकल्पोंसे भरा हुआ है। इसमें मोक्षका साधक होनेसे मनुष्य पर्याय ही सार है परन्तु वह अत्यन्त दुर्लभ है ॥९४॥ दुष्कर्मोंका उपशम होनेसे यदि किसी तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई है तो बुद्धिमान् मनुष्यको संसारसे विरक्त होकर मुक्ति प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिए ॥९५॥

अथानन्तर इसी बीचमें केवली भगवान्‌को नमस्कार कर अन्धकवृष्णिने अपने पूर्वभव पूछे और सर्वज्ञ सुप्रतिष्ठ केवली उसके पूर्वभवोंका वर्णन इस प्रकार करने लगे ॥९६॥ जब भगवान् वृषभदेवका महाप्रभावशाली तीर्थ चल रहा था तब अयोध्या नगरीमें राजा रत्नवीर्य राज्य करता था। उसके निष्कण्टक राज्यमें एक सुरेन्द्रदत्त नामका सेठ रहता था जो बत्तीस करोड़ दीनारोंका धनी था, जैनधर्मका परम श्रद्धालु था और रुद्रदत्त ब्राह्मण उसका मित्र था ॥९७–९८॥ कदाचित् सुरेन्द्रदत्त सेठ बारह वर्ष तक अष्टमी, चतुर्दशी, आष्टाह्निक पर्व तथा चौमासोंमें जिन-पूजाके लिए उपयुक्त धन, रुद्रदत्तको देकर व्यापारके लिए बाहर चला गया ॥९९॥ ब्राह्मण रुद्रदत्त बड़ा दुष्ट था। उसने जुआ तथा वेश्या व्यसनमें पड़कर वह धन शीघ्र ही नष्ट कर दिया। जब धन

नष्ट हो गया तब चोरी करने लगा। चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और जब छूटा तब उल्कामुख नामक वनमें जाकर रहने लगा ॥१००॥ वहाँ वह भीलोंके साथ मिलकर लोगोंको लूटने लगा और अपने दुष्कर्मसे लोगोंके लिए व्याधिस्वरूप हो गया। अन्तमें श्रेणिक नामक सेनापतिके हाथसे मरकर रौरव नामक सातवें नरक गया ॥१०१॥ देवद्रव्यके हड़पनेसे वह तैंतीस सागर तक नरकके भयंकर दुःख भोगकर वहाँसे निकला और संसारमें भ्रमण करता रहा ॥१०२॥ कदाचित् पाप कर्मका उपशम होनेसे वह हस्तिनागपुरमें कापिष्ठलायन नामक ब्राह्मणकी अनुमति नामक स्त्रीसे गौतम नामक ब्राह्मण-पुत्र हुआ। वह महादरिद्र था, उत्पन्न होते ही उसके माता-पिता मर गये थे तथा भीख माँगता हुआ वह इधर-उधर घूमता-फिरता था। एक बार उसने समुद्रदत्त नामक मुनिराजको आहार करते देखा। आहारके बाद वह उनके पीछे लग गया तथा आश्रममें पहुँचनेपर उनसे बोला कि मैं भूखा मरता हूँ आप मुझे अपने समान बना लीजिए ॥१०३-१०५॥ मुनिराजने उसे भव्य प्राणी जानकर दीक्षा दे दी और उसने भी दीक्षा लेकर एक हजार वर्षकी कठिन तपस्यासे विघ्नकारक पापोंका उपशम कर दिया ॥१०६॥ तपस्याके प्रभावसे उक्त गौतम मुनि, बीजबुद्धि तथा रसऋद्धिसे युक्त हो गये और अक्षीणमहानस एवं पदानुसारिणी ऋद्धि भी उन्होंने प्राप्त कर ली ॥१०७॥ गुरु समुद्रदत्त मुनि, अच्छी तरह आराधनाओंकी आराधना कर छठे ग्रैवेयकके सुविशाल नामक विमानमें अहमिन्द्र हुए और शिष्य गौतम मुनिने पचास हजार वर्ष तप किया ॥१०८॥ अन्तमें विशाल बुद्धिके धारक गौतम मुनि भी अट्ठाईस सागरकी सम्भावनीय आयु प्राप्तकर उसी सुविशाल विमानमें उत्पन्न हुए ॥१०९॥ अहमिन्द्रके सुख भोगनेके बाद वहाँसे चलकर गौतमका जीव तो तू अन्धकवृष्णि हुआ है और तेरा गुरु मुनि समुद्रदत्तका जीव मैं सुप्रतिष्ठ हुआ हूँ ॥११०॥

तदनन्तर दुःखी होते हुए राजा अन्धकवृष्णिने अपने दशों पुत्रोंके पूर्व भव पूछे सो केवली भगवान् इस प्रकार कहने लगे ॥१११॥ उन्होंने कहा कि किसी समय सद्भद्रिलपुर नगरमें राजा मेघरथ रहता था, उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था और उन दोनोंके दृढ़रथ नामका पुत्र था ॥११२॥ उसी नगरमें राजाकी तुलना करनेवाला धनदत्त नामका सेठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम नन्दयशा था। नन्दयशासे उसके सुदर्शना और सुज्येष्ठा नामकी दो कन्याएँ तथा धनपाल, जिनपाल, देवपाल अर्हद्दास, जिनदास, अर्हद्दत्त, जिनदत्त, प्रियमित्र और धर्मरुचि ये नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥११३-११५॥ कदाचित् राजा मेघरथने सुमन्दर गुरुके पास दीक्षा ले ली। यह देख सेठ धनदत्त भी अपने नौ ही पुत्रोंके साथ दीक्षित हो गया ॥११६॥ और सुदर्शना नामक आर्यिकाके पास सुभद्रा सेठानी तथा उसकी सुदर्शना और सुज्येष्ठा नामक दोनों पुत्रियोंने साथ-ही-साथ दीक्षा धारण कर ली ॥११७॥ कदाचित् धनदत्त सेठ, सुमन्दर गुरु और मेघरथ राजा—तीनों ही मुनि बनारस आये और वहाँ केवलज्ञान उत्पन्न कर पृथिवीपर विहार करने लगे ॥११८॥ पूजनीय धनदत्त, सुमन्दर गुरु और मेघरथ मुनि क्रमसे सात वर्ष, पाँच वर्ष और बारह वर्ष तक पृथिवीपर विहार कर अन्तमें राजगृह नगरसे सिद्धशिलापर आरूढ़ हुए—मोक्ष पधारे ॥११९॥ उस समय सेठ धनदत्तकी स्त्री नन्दयशा गर्भवती थी इसलिए दीक्षा नहीं ले सकी थी परन्तु जब उसके धनमित्र नामका पुत्र हो गया और वह योग्य बन गया तब वह भी उसे छोड़ तप करने लगी ॥१२०॥

एक दिन सेठ धनदत्तके पुत्र धनपाल आदि नौके-नौ मुनिराज प्रायोपगमन संन्यास लेकर सिद्धशिलापर विराजमान थे। मुनियोंकी माता आर्यिका नन्दयशाने उन्हें देख वन्दना की और स्नेहसे मोहित हो निदान किया कि मैं अग्रिम भवमें भी इनकी माता बनूँ ॥१२१॥ मुनियोंकी बहन सुदर्शना और सुज्येष्ठा नामक आर्यिकाओंने भी स्नेहरूपी गर्तमें मोहित हो निदान किया कि ये अग्रिम भवमें भी हमारे भाई हों। सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहके लिए क्या कठिन है? ॥१२२॥ अन्तमें

समाधि धारण कर माता, पुत्र ओर पुत्रियाँ—सबके-सब अच्युत स्वर्गमें देव हुए। तदनन्तर बाईस सागर तक उत्कृष्ट सुख भोगकर वहाँसे चले और पृथिवीपर आकर हे राजन् ! तुम्हारी स्त्री, पुत्रियाँ तथा पुत्र हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि परिणामोंके अनुसार नाना प्रकारकी गति होती ही है ।। भावार्थ—नन्दयशाका जीव तो तुम्हारी रानी सुभद्रा हुआ है, सुदर्शना और सुज्येष्ठाके जीव क्रमसे कुन्ती और माद्री हुए हैं तथा धनपाल आदिके जीव वसुदेवके सिवाय नौ पुत्र हुए हैं ।।१२३-१२४।।

तदनन्तर भगवान् सुप्रतिष्ठ केवली, ध्यानमें तत्पर एवं कान खड़े कर बैठे हुए मनुष्य और देवोंकी उस सभामें वसुदेवके भवान्तर कहने लगे—।।१२५।। जिस प्रकार समुद्रकी लहरोंमें तैरती हुई कील जुएके छिद्रको बड़ी कठिनाईसे प्राप्त कर सकती है उसी प्रकार संसार-सागरकी दुःखरूपी लहरोंमें डूबता और उबरता हुआ यह प्राणी मनुष्य भवको बड़ी कठिनाईसे प्राप्त कर पाता है ।।१२६।। इसी पद्धतिसे वसुदेवका जीव मागध देशके शालिग्राम नामक नगरमें रहनेवाले अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण और ब्राह्मणीके यहाँ ऐसा पुत्र हुआ जिसे थोड़ा भी सुख प्राप्त नहीं था ।।१२७।। जब वह गर्भमें था तब पिता मर गया । और उत्पन्न होते ही माता मर गयी इसलिए मौसीने इसका पालन-पोषण किया परन्तु वह लगभग आठ वर्षका ही हो पाया था कि उसकी मौसी भी शोकके कारण प्राणरहित हो गयी ।।१२८।। अब वह राजगृह नगरमें मामाके घर रहने लगा । वहाँ 'यह हमारे पतिका भानजा है' यह सोचकर बुआने उसका पालन-पोषण किया ।।१२९।। इसका शरीर मलसे ग्रस्त था, शरीरसे छागके बच्चेके समान तीव्र गन्ध आती थी, केश रूखे तथा बिखरे हुए थे, वह मैले-कुचैले वस्त्र पहने रहता था और उसकी आँखें स्वभावसे ही पीली थीं ।।१३०।। इतनेपर भी वह अपने मामा दमरककी पुत्रियोंके साथ विवाह करना चाहता था । परन्तु विवाह करना तो दूर रहा घृणा करनेवाली उन पुत्रियोंने उसे घरसे निकाल दिया जिससे वह बहुत दुःखी हुआ ।।१३१।। अन्तमें वह दुर्भाग्यरूपी अग्निकी शिखाओंसे झुलसकर ठूँठके समान मलिन हो गया और पतंगकी तरह कूदकर मरनेकी इच्छासे वैभार गिरिपर गया परन्तु मुनियोंने उसे रोक लिया ।।१३२।। तदनन्तर धर्म-अधर्मका फल सुनकर उसने अपने-आपकी बहुत निन्दा की और शान्त हो संख्य नामक मुनिराजके चरण मूलमें दीक्षा धारण कर ली ।।१३३।। गुरुके सम्यक् उपदेशसे आशारूपी पाशको नष्ट कर वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका धारक हो गया और अन्य मनुष्योंके लिए दुश्चर तप तपने लगा ।।१३४।। उसका नन्दिषेण नाम था, वह तपके प्रभावसे उत्पन्न ऋद्धियोंसे युक्त हो गया, ग्यारह अंगका धारी एवं समस्त परीषहोंको सहनेवाला उत्तम साधु हो गया ।।१३५।। शास्त्रोंमें जो-जो उपवास दूसरोंके लिए अत्यन्त कठिन थे वे सब उस धैर्यशाली साधुके लिए सरल हो गये ।।१३६।। आचार्य, ग्लान, शैक्ष्य आदिके भेदसे जिसके दश भेद बताये गये हैं उस वैयावृत्य तपको वह विशेष रूपसे करता था ।।१३७।। वह मुनि बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंसे युक्त था इसलिए वैयावृत्यमें उपयोग आनेवाली जिस औषधि आदिका वह विचार करता था वह शीघ्र ही उसके हाथमें आ जाती थी ।।१३८।। इस प्रकार मुनि नन्दिषेणको तप करते हुए जब कई हजार वर्ष बीत गये तब एक दिन इन्द्रने देवोंकी सभामें उसके वैयावृत्य तपकी प्रशंसा की ।।१३९।। इस समय जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें जो साधुओंकी वैयावृत्य करता है वह नन्दिषेण मुनि सबसे उत्कृष्ट है ।।१४०।। क्योंकि रोगसे पीड़ित मुनि जिस पथ्यकी इच्छा करता है उसे क्षमाको धारण करनेवाला नन्दिषेण मुनि शीघ्र ही पूर्ण कर देता है ।।१४१।। गृहस्थकी तो बात ही क्या प्रासुक द्रव्यके द्वारा वैयावृत्य करनेमें तत्पर रहनेवाले मुनिको भी उससे बन्ध नहीं होता किन्तु निर्जरा ही होती है ।।१४२।। इस संसारमें शरीर ही प्राणियोंका सबसे पहला धर्मका साधन है

इसलिए यथाशक्ति उसकी रक्षा करनी चाहिए। यह आगमका विधान है ॥१४३॥ मन्द शक्ति अथवा बीमार आदि जितने भी सम्यग्दृष्टि हैं, सम्यग्दृष्टि मनुष्यको उन सबको वैयावृत्य द्वारा निरन्तर सेवा करनी चाहिए॥१४४॥ जो प्रतिकार करनेमें समर्थ होकर भी रोगसे दुःखी सम्यग्दृष्टि-की उपेक्षा करता है वह पापी है तथा सम्यग्दर्शनका घात करनेवाला है ॥१४५॥ जिसका धन अथवा शरीर सहधर्मी जनोंके उपयोगमें नहीं आता उसका वह धन अथवा शरीर किस कामका ? वह तो केवल कर्मबन्धका ही कारण है ॥१४६॥ जिसका जो धन अथवा जो शरीर सहधर्मी जनोंके उपयोगमें आता है यथार्थमें वही धन अथवा वही शरीर उसका है ॥१४७॥ जो समर्थ होकर भी आपत्तिके समय सम्यग्दृष्टिकी उपेक्षा करता है उस कठोर हृदय वालेके जिनशासनकी क्या भक्ति है ? कुछ भी नहीं है ॥१४८॥ जो सम्यग्दर्शनकी शुद्धतासे शुद्ध सहधर्मीकी भक्ति नहीं करता है वह झूठ-मूठका विनयी बना फिरता है उसके सम्यग्दर्शनकी शुद्धि क्या है ! ॥१४९॥ यदि बोधिकी प्राप्तिमें निमित्तभूत दर्शनविशुद्धिमें बाधा पहुँचायी जाती है तो फिर इस संसारके संकटमें पुनः बोधिकी प्राप्ति दुर्लभ ही समझनी चाहिए ॥१५०॥ यदि बोधिकी प्राप्ति नहीं होती है तो मुक्तिका साधनभूत चारित्र कैसे हो सकता है ? और जब चारित्र नहीं है तब मुक्तिके अभिलाषी मनुष्यको मुक्ति कैसे मिल सकती है ? ॥१५१॥ मुक्तिके अभावमें अनन्त एवं अविनाशी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? सुखके अभावमें स्वास्थ्य कैसे मिल सकता है ? और स्वास्थ्यके अभावमें यह जीव कृत्य-कृत्य कैसे हो सकता है ? ॥१५२॥ इसलिए आत्महित चाहनेवाला चाहे मुनि हो चाहे गृहस्थ, उसे सब प्रकारसे अपनी शक्तिके अनुसार वैयावृत्य करनेमें उद्यत रहना चाहिए ॥१५३॥ जो मनुष्य वैयावृत्य करता है वह अपने तथा दूसरेके शरीर, दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं उत्तम तप आदि सभी गुणोंको स्थिर करता है ॥१५४॥ जिन-शासनकी रीतिको जाननेवाला जो विद्वान् परका उपकार करता हुआ स्वयं प्रत्युपकारकी अपेक्षासे रहित होता है वह शीघ्र ही स्वपर आत्माका मोक्ष प्राप्त करता है ॥१५५॥ जो जिनशासनके अर्थकी उत्कट भावना करता हुआ वैयावृत्य करनेमें प्रवृत्त रहता है उसे देव भी रोकनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर क्षुद्र जीवोंकी तो बात ही क्या है ॥१५६॥ यह नन्दिषेण मुनि ऐसे ही उत्तम मुनि हैं इस प्रकार सौधर्मेन्द्र द्वारा स्तुति किये जानेपर सब देवोंने उनकी प्रशंसा की और परोक्ष नमस्कार किया ॥१५७॥ उन्हीं देवोंमें एक देव, मुनिके धैर्यकी परीक्षाके लिए मुनिका रूप रख नन्दिषेण मुनिराजके पास पहुँचा और इस प्रकार कहने लगा ॥१५८॥ हे वैयावृत्यमें महान् आनन्द धारण करनेवाले नन्दिषेण मुनि ! मेरा शरीर व्याधिसे पीड़ित हो रहा है इसलिए मुझे कुछ ओषधि दीजिए॥१५९॥ उसके इस प्रकार कहनेपर नन्दिषेण मुनिने अपनी अखण्ड अनुकम्पासे कहा कि हे साधो ! मैं ओषधि देता हूँ परन्तु यह बताओ कि तुम्हारी किस भोजनमें रुचि है ? ॥१६०॥ मुनि रूपधारी देवने कहा—पूर्वदेशके धानका शुभ एवं सुगन्धित भात, पंचाल देशकी मूँगकी स्वादिष्ट दाल, पश्चिम देशकी गायोंका तपाया हुआ घी, कलिंग देशकी गायोंका मधुर दूध और नाना प्रकारके व्यंजन यदि मिल जावें तो अच्छा हो क्योंकि मेरी श्रद्धा इन्हीं चीजोंमें अधिक है। इस प्रकार कहनेपर 'मैं अभी लाता हूँ' यह कहकर नन्दिषेण मुनि बड़ी श्रद्धाके साथ उक्त आहार लेनेके लिए चल दिये ॥१६१-१६३॥ विरुद्ध देशकी वस्तुओंकी चाह होनेपर भी उनके मनमें कुछ भी खेद उत्पन्न नहीं हुआ और गोचरी वेलामें जाकर तथा उक्त सब आहार लाकर उन्होंने शीघ्र ही उस कृत्रिम मुनिको दे दिया ॥१६४॥ कृत्रिम मुनिने उस आहार पानीको ग्रहण किया परन्तु रात्रिमें शरीरके अन्तर्गत मलसे उसका समस्त शरीर मलिन हो गया और नन्दिषेण मुनिने बिना किसी ग्लानिके उसे अपने हाथोंसे धोया ॥१६५॥ तदनन्तर जिनका उत्साह भग्न नहीं हुआ था, तथा जो बराबर वैयावृत्य कर रहे थे ऐसे प्रशंसनीय नन्दिषेण मुनि-को देखकर दिव्य रूपको धारण करनेवाले देवने कहा कि हे ऋषे ! देवोंकी सभामें इन्द्रने आपकी

जिस प्रकार स्तुति की थी मैं देख रहा हूँ कि आप उसी तरह वैयावृत्य करनेमें उद्यत हैं ॥१६६-१६७॥ अहो ! आपकी ऋद्धि, आपका धैर्य, आपकी ग्लानि जीतनेकी क्षमता और संशयरहित आपका शासन वात्सल्य सभी आश्चर्यकारी हैं, आप उत्तम मुनिराज हैं ॥१६८॥ यदि तप करते समय अन्य बुद्धिमान् मनुष्योंकी भी इसी प्रकार त्रिकालमें वैयावृत्य करनेकी बुद्धि हो जावे तो उसे उनकी शासन भक्ति समझना चाहिए ॥१६९॥ इस प्रकार वह देव, मुनिराजको स्तुति कर तथा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर जिन-शासनकी प्रभावना करता हुआ स्वर्गको चला गया ॥१७०॥ अत्यन्त धीर बुद्धिको धारण करनेवाले नन्दिषेण मुनिने तपश्चरण द्वारा पैंतीस हजार वर्ष बिताकर अन्तिम समय छह माहका प्रायोपगमन संन्यास ले लिया ॥१७१॥ उन्होंने शरीर और आहारका त्याग कर दिया, वे अपने शरीरकी वैयावृत्ति न स्वयं करते थे न दूसरेसे कराते थे किन्तु इतना होनेपर भी मोहकी तीव्रतासे उन्होंने 'मैं अग्रिम भवमें लक्ष्मीमान् तथा सौभाग्यवान् होऊँ' इस निदानसे अपनी आत्माको बद्ध कर लिया ॥१७२॥ यदि वे मुनि उस समय यह निन्दित निदान नहीं करते तो अपनी सामर्थ्यसे अवश्य ही तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करते ॥१७३॥ तदनन्तर वह आराधनाओंकी आराधना कर महाशुक्र स्वर्गमें इन्द्र तुल्य देव हुआ और वहाँ साढ़े सोलह सागर तक सुखसे विद्यमान रहा ॥१७४॥ हे राजन् ! वही पुत्र देवोंके सुख भोगकर अन्तमें वहाँसे च्युत हो तेरी सुभद्रा रानीसे यह पृथिवीका अधिपति वसुदेव नामका पुत्र हुआ है ॥१७५॥ इस प्रकार अन्धकवृष्णि, उसकी सुभद्रारानी तथा समुद्रविजय आदि पुत्र सुप्रतिष्ठ केवलीसे अपने-अपने पूर्वभव सुनकर धर्म और संवेगको प्राप्त हुए। इनके सिवाय जो वहाँ मनुष्य तथा देव थे वे भी धर्म और संवेगको प्राप्त हुए। इनके सिवाय जो वहाँ मनुष्य तथा देव थे वे भी धर्म और संवेगको प्राप्त हुए ॥१७६॥ सुप्रतिष्ठ स्वामीको नमस्कार कर देवलोग अपने-अपने स्थानपर चले गये। तदनन्तर संसारका अन्त करनेवाले राजा अन्धकवृष्णिने समुद्रविजयका अभिषेक कर उसे राज्य-सिंहासनपर बैठाया और वसुदेवको समुद्रविजयके लिए सौंपकर सुप्रतिष्ठ केवलीके पादमूलमें दीक्षा धारण कर ली ॥१७७-१७८॥ उधर भोजकवृष्णिने भी मथुराके समग्र राज्यपर उग्रसेनको बैठाकर निर्ग्रन्थ व्रत धारण कर लिया—मुनि दीक्षा ले ली ॥१७९॥ राजा समुद्रविजयने अपनी प्रियरानी शिवादेवीको पट्ट बाँधकर समस्त स्त्रियोंमें मुख्यता प्राप्त करा दी। तदनन्तर जिस प्रकार जिनेन्द्ररूपी सूर्य, अष्ट प्रातिहार्य रूप अभ्युदयसे प्रभावको बढ़ाते हुए भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रसन्न करते हैं उसी प्रकार राज्य मर्यादाकी रक्षा करनेवाले राजा समुद्रविजय भी अपनी अनुपम विभूतिसे प्रतापको बढ़ाते हुए अपने बन्धुरूपी कमलोंको प्रसन्न करने लगे ॥१८०॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि, पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें समुद्रविजयके लिए राज्य प्राप्तिका वर्णन करनेवाला अठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१८॥

सर्ग- १६

अथानन्तर गौतम गणधरने कहा कि हे श्रेणिक ! अब वसुदेवकी पृथिवी तथा विजयार्ध सम्बन्धी चेष्टाओंका वर्णन करता हूँ सो सुन ॥१॥ राजा समुद्रविजयने अपने आठ छोटे भाइयोंके नवयौवन आनेपर उनका राजपुत्रियोंके साथ विवाह करा दिया ॥२॥ अक्षोभ्यने धृतिको, स्तिमितसागरने उत्कृष्ट प्रभाको धारण करनेवाली स्वयंप्रभाको, हिमवानने सुनीताको, विजयने सिताको, अचलने प्रियालापाको, युवा तथा धीर वीर धारणने प्रभावतीको, पूरणने कालिंगीको, और अभिचन्द्रने सुप्रभाको विवाहा। ये आठों स्त्रियां अक्षोभ्य आदि कुमारोंकी आठ महादेवियाँ थीं तथा अनेकों स्त्रियोंमें प्रधान मानी गयी थीं ॥३-५॥ जो कला तथा अनेक गुणोंमें चतुर थे, अपनी-अपनी स्त्रियोंसे सहित थे और पारस्परिक प्रेमसे आपसमें बँधे हुए थे ऐसे उन सब भाइयों-में परस्पर बेजोड़ प्रेम था ।।६।। उस समय लक्ष्मीसे सेवित वसुदेव, देव कुमारके समान जान पड़ते थे और बालक्रीड़ासे युक्त हो शौर्यपुरी नगरीमें यथेच्छ क्रीड़ा करते थे ॥७॥ रूप, लावण्य, सौभाग्य, भाग्य और चतुराईसे सागर तथा कामदेवके समान सुन्दर वसुदेव जनताके चित्तको हरण करते थे ॥८॥ अतिशय उदार वसुदेव क्रम-क्रमसे चार लोकपालोंका मनोहर वेष रखकर पूर्व आदि दिशाओंमें निकलते थे ॥९॥ जिनका शरीर सूर्यके समान देदीप्यमान था तथा मुख कमल चन्द्रमा-के समान सौम्य था ऐसे वसुदेव जब उस शौर्यपुरमें बाहर निकलते थे तब स्त्रियोंमें बड़ी आकुलता उत्पन्न हो जाती थी ॥१०॥ जिस प्रकार पूर्णचन्द्रका उदय होनेपर समुद्रकी वेलामें संघट्ट मच जाता है उसी प्रकार वसुदेवको देखनेकी इच्छासे नगरकी स्त्रियोंमें संघट्ट मच जाता था—उनकी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती थी ॥११॥ उनके बाहर निकलते ही देखनेके लिए इच्छुक स्त्रियां अपने प्रारब्ध कार्योंको छोड़कर पृथिवीपर तो गलियोंको रोक लेती थीं और ऊपर महलोंके झरोखोंको आच्छादित कर लेती थीं ॥१२॥ वसुदेवके सौभाग्यसे जिसका चित्त हरा गया था ऐसा समस्त नगर उस समय भीतर-बाहर उद्भ्रान्त हो गया था तथा जहां-तहाँ एक वसुदेवकी ही कथा सुनाई देती थी ॥१३॥ तदनन्तर किसी समय जिनके हृदय मात्सर्यसे परिपूर्ण थे ऐसे वृद्ध-जन राजा समुद्रविजयके पास जाकर तथा नमस्कार कर एकान्तमें इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥१४॥

उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! जिस प्रकार बालकके वचन चाहे युक्त हों चाहे अयुक्त, उन्हें पिता सुनता ही है उसी प्रकार आप हम लोगोंको अभय देकर हमारे वचन सुनिए। हमारे वे वचन भले ही युक्त हों अथवा अयुक्त हों ॥१५॥ हे नाथ ! आप मनुष्योंकी रक्षा करते हैं इसलिए नृप हैं, पृथिवीकी रक्षा करते हैं इसलिए भूप हैं और प्रजाको अनुरंजित करते हैं इसलिए आप ही राजा हैं ॥१६॥ जिस प्रकार पहले आपके पिताके राज्य-कालमें प्रजा सानन्द तथा क्षुद्र उपद्रवोंसे रहित थी उसी प्रकार इस समय आपके राज्य-कालमें भी प्रजा सानन्द तथा क्षुद्र उपद्रवोंसे रहित है ॥१७॥ यहाँकी उपजाऊ भूमि वर्षाके प्रतिबन्धसे रहित शालि, व्रीहि आदि सब प्रकारके उत्तमोत्तम धान्योंके समूहसे प्रतिवर्ष सफलताको धारण करती है ॥१८॥ हे प्रभो ! जिस प्रकार खेती सफल रहती है उसी प्रकार वाणिज्य भी सफल रहता है। आपका राज्य व्यापारियोंके क्रय-विक्रयकी

अधिकतासे अत्यधिक सम्पन्न हो रहा है ॥१९॥ घटके समान बड़े-बड़े स्तनोंको धारण करनेवाली एवं हरे-भरे तृणोंसे सन्तुष्ट बहुत-सी गायें, भैंसे और उत्तम जातिकी धेनुएँ निरन्तर घड़े भर-भरकर दूध देती हैं ॥२०॥ घरके उपयोगके लिए साधारण रीतिसे तैयार किया हुआ थोड़ा-सा अन्न भी, दानके समय धर्मात्माओंके भोजनमें आनेसे सायंकालतक भी समाप्त नहीं होता ॥२१॥ हे नाथ ! साठ संवत्सरी रूप जो वस्तु है उसमें स्वभाववश ही अन्यथा परिणमन होता रहता है परन्तु आपके प्रभावसे हमलोगोंका तो दुन्दुभि नामक काल ही चिरकालसे स्थिर है । भावार्थ— ज्योतिष-शास्त्रके अनुसार साठ संवत्सर होते हैं जो क्रमसे परिवर्तित होते रहते हैं, उनमें हानि-लाभ सभी कुछ होते हैं । परन्तु उन संवत्सरोंमें एक दुन्दुभि नामका संवत्सर भी होता है जिसमें प्रजाका समय आनन्दसे बीतता है । प्रजाके लोग राजा समुद्रविजयसे कह रहे हैं कि यद्यपि संवत्सर परिवर्तनशील हैं परन्तु हमारे लिए आपके प्रभावसे दुन्दुभि नामक संवत्सर ही चिरस्थायी होकर आया है ॥२२॥ हे राजन् ! इस प्रकार सुखके रहते हुए थोड़ा-सा दुःख भी है परन्तु जिस प्रकार अपना पेट फाड़कर नहीं दिखाया जा सकता उसी प्रकार वह थोड़ा-सा दुःख भी नहीं प्रकट किया जा सकता ॥२३॥

इस प्रकार सुनकर राजा समुद्रविजयने नगरके वृद्धजनोंसे कहा कि यदि आप लोग हमारा हित चाहते हैं तो निर्भय होकर वह दुःख कहिए ॥२४॥ क्योंकि हृदयमें रहनेवाली छोटी-सी मानसिक व्यथा भी शारीरिक व्यथाके ही समान, प्राण-रक्षाका कारण जो अन्न है उसे भी छुड़ा देती है इसमें संशय नहीं है । भावार्थ—मानसिक पीड़ाके कारण मनुष्य खाना-पीना भी छोड़ देता है ॥२५॥ इस प्रकार समुद्रविजयके कहनेपर प्रजाके लोग विश्वस्त हो कहने लगे । उन्होंने कहा कि हे राजन् ! हमारी विज्ञप्ति, विज्ञप्ति नहीं किन्तु दुर्विज्ञप्ति है परन्तु प्रजाके हितके लिए उसे अवश्य सुनिए ॥२६॥ वसुदेवकुमार प्रतिदिन नगरसे बाहर निकलते हैं जिससे नगरकी स्त्रियाँ उनका रूप देखकर पागल-सी हो जाती हैं और अपने शरीरकी सुध-बुध भूल जाती हैं ॥२७॥ कुमारके बाहर निकलने और भीतर प्रवेश करनेके समय स्त्रियाँ इन्द्रियोंसे रहित जैसी हो जाती हैं इसलिए वे न अन्य किसीको देखती हैं और न अन्य कुछ सुनती ही हैं ॥२८॥ स्त्रियोंके अपने करने योग्य दूसरे काम तो दूर रहें परन्तु रागान्ध होकर वे छोटे-छोटे बच्चोंके लिए स्तन देना—दूध पिलाना भी भूल जाती हैं ॥२९॥ हे राजन् ! यद्यपि कुमार वसुदेव, अत्यन्त सुन्दर, धीर-वीर, स्वभावसे स्वच्छ हृदयके धारक, सर्वप्रकारसे विशुद्ध आत्मासे युक्त और शीलके शिरोमणि हैं ॥३०॥ यह समस्त पृथिवीतलपर किसे नहीं विदित है ? फिर भी हम क्या करें ? नगरवासियोंका चित्त उद्भ्रान्त हो रहा है ॥३१॥ हे स्वामिन् ! हम लोगोंने अपनी मनोव्यथा कही अब यहाँ जो कुछ करना उचित हो तथा जिससे नगर और कुमार दोनोंका परिणाम अच्छा हो वह आप ही कहिए ॥३२॥ राजा समुद्रविजयने नगरवासियोंकी बात सुनकर चिरकाल तक अपने-आपमें उसका विचार किया, उसके बाद सबको आश्वासन देकर विदा किया और आश्वासन पाकर नगरवासी यथास्थान चले गये ॥३३॥ उसी समय भाई वसुदेवने चिरकाल तक भ्रमण करनेके बाद आकर राजा समुद्रविजयको प्रणाम किया । समुद्रविजयने उनका आलिंगन कर गोदमें बैठाया और स्नेहसे मस्तक सूँघते हुए कहा कि कुमार ! तुम चिरकाल तक वनके मध्यमें भ्रमण करनेसे अत्यन्त थक गये हो । देखो, तुम्हारा वर्ण फीका पड़ गया है और तुम भूख-प्याससे पीड़ित जान पड़ते हो । इतनी देर तुमने किस लिए की ? वायु तथा घामसे तुम मुरझा गये हो, तुम्हारे शिरका सेहरा भी कान्तिहीन हो गया है, तुम घूमनेके ऐसे शौकीन हो कि शरीरके खेदकी परवाह न कर घूमते रहते हो ? अब आजसे स्नान तथा भोजनके समयका उल्लंघन नहीं करना तथा आजसे अन्तःपुरके भीतर जो बगीचा है उसीमें क्रीड़ा करना ॥३४–३७॥ इस प्रकार राजा समुद्रविजय भक्तिसे

भरे हुए छोटे भाई वसुदेवको समझाकर तथा हाथ पकड़कर सात कक्षाओंसे घिरे हुए शिवादेवीके महलमें प्रविष्ट हुए ॥३८॥ वहाँ वसुदेवके साथ ही उन्होंने स्नान किया, भोजन किया तथा 'वे वहीं रहे' इस बातकी स्वयं ऐसी व्यवस्था कर दी कि जिसका वसुदेवको कुछ भी संकेत मालूम नहीं हुआ। यह सब कर राजा समुद्रविजय सुखी हुए—निश्चिन्त हो गये ॥३९॥ और कुमार वसुदेव भी शिवादेवीके बगीचोंमें नाट्य-संगीत आदि विनोदोंसे क्रीड़ा करते हुए सदा रहने लगे ॥४०॥

अथानन्तर एक दिन अन्तःपुरकी एक कुब्जादासी शिवादेवीके लिए विलेपन लिये जा रही थी सो कुमारने उसे तंग कर छीन लिया। इससे रुष्ट होकर कुब्जाने कहा कि कुमार! ऐसी ही चेष्टाओंसे तुम इस प्रकार बन्धनागारको प्राप्त हो—कैद किये गये हो ॥४१-४२॥ कुब्जाकी बात सुनकर शंकायुक्त हो वसुदेवने उससे पूछा कि कुब्जे! तूने यह क्या कहा?—तेरे कहनेका क्या तात्पर्य है? तब उसने राजाकी जो सलाह थी वह ज्योंकी-त्यों कुमारको बता दी ॥४३॥ तदनन्तर 'हमारे प्रति धोखा किया गया' यह जानकर कुमार राजासे विमुख हो गये। वे चतुर तो थे ही इसलिए छलपूर्वक घरसे तथा नगरसे बाहर निकल गये ॥४४॥ वे मन्त्रसिद्धिका बहाना बना एक नौकरको साथ लेकर रात्रिके समय श्मशानमें गये। वहाँ नौकरको एक स्थानपर बैठाकर तथा 'जब मैं पुकारूँ उत्तर देना' ऐसा संकेतकर कुछ दूर अकेले गये। वहाँ एक मुर्दाको अपने आभूषणोंसे अलंकृत कर तथा उसे एक चितापर रखकर उन्होंने कहा कि पिताके समान पूज्य राजा और चुगली करनेवाले नगरवासी सन्तुष्ट होकर चिरकाल तक सुखसे जीवित रहें; मैं अग्निमें प्रविष्ट हो रहा हूँ। इस प्रकार जोरसे कहकर तथा 'दौड़कर अग्निमें प्रवेश किया है' यह दिखाकर अन्तर्हित हो दूर चले गये। इस घटनाके बाद वह नौकर भी नगरमें वापस आ गया ॥४५-४८॥ नौकर द्वारा वसुदेवका वृत्तान्त कहे जानेपर राजा समुद्रविजय उसी समय नगरवासी, अन्तःपुर, भाई तथा अन्य यदुवंशियोंके साथ श्मशान गये। उस समय सबके मुखसे रोनेकी ध्वनि निकल रही थी। जब प्रातःकाल राखमें कुमारके आभूषण देखे तब 'कुमार निश्चित ही मर गये हैं' यह जानकर सब रोने लगे। राजा समुद्रविजय पश्चात्तापसे पीड़ित हो बहुत दुःखी हुए। उन्होंने मरणोत्तर कालकी सब क्रियाएँ कीं, अपने-आपकी बहुत निन्दा की और हम भाईसे वंचित हुए हैं इस खेदसे उनका उद्यम कुछ मन्द पड़ गया ॥४९-५१॥

इधर धीर-वीर वसुदेव निःशंक हो पश्चिम दिशाकी ओर चल पड़े और एक ब्राह्मणका वेष रखकर बहुत योजन दूर निकल गये ॥५२॥ चलते-चलते वे देवोंके नगरके समान सुन्दर विजयखेट नामक नगरमें पहुँचे। वहाँ क्षत्रियवंशमें उत्पन्न सुग्रीव नामका एक गन्धर्वाचार्य रहता था। वह गन्धर्वाचार्य संगीत विद्याके इच्छुक मनुष्योंका बड़ा उपकारी था तथा वसुदेवका रूप देखकर उनका वशीभूत जैसा हो गया ॥५३-५४॥ उस गन्धर्वाचार्यकी, रूपमें अपनी शानी न रखनेवाली चन्द्रमुखी सोमा और विजयसेना नामकी दो उत्तम पुत्रियां थीं। ये पुत्रियां सौन्दर्यकी परम सीमाको प्राप्त हुई-सी जान पड़ती थीं ॥५५॥ ये कन्याएँ गन्धर्व आदि कलाओंकी परम सीमाको प्राप्त थीं इसलिए उनके पिता सुग्रीवने अभिमानवश ऐसा विचार कर लिया था कि जो गन्धर्व-विद्यामें इन दोनोंको जीतेगा वही इनका भर्ता होगा ॥५६॥ लक्ष्यलक्षणके योगसे अन्यत्र जिन-जिन विषयोंमें उन दोनों कन्याओंकी जीत हुई थी उन्हीं-उन्हीं विषयोंमें सभाके बीच वसुदेवने उन कन्याओंको पराजित कर दिया ॥५७॥ तदनन्तर सुग्रीवने सन्तुष्ट होकर अपनी दोनों कन्याएँ वसुदेवके लिए दे दीं। वसुदेव उन्हें विवाह कर महलकी उत्तम भूमियोंमें आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करने लगे ॥५८॥ शूरवीरता ही जिनकी सहायक थी ऐसे वसुदेव, विजयसेना नामक स्त्रीमें अक्रूर नामक पुत्र उत्पन्न कर अज्ञात रूपसे बाहर निकल गये ॥५९॥ मार्गके अनुसार भ्रमण करते हुए

उन्होंने एक बहुत बड़ी अटवीमें प्रवेश किया और वहाँ हंस, सारस तथा कमलोंसे सुशोभित एक सुन्दर सरोवर देखा ॥६०॥ जलावर्त नामके उस महासरोवरमें प्रवेश कर वसुदेवने ठण्डा पानी पिया तथा चिरकाल तक स्नान किया ॥६१॥ तदनन्तर अतिशय उन्नत शरीरके धारक वसुदेवने वहाँ जलको इस तरह बजाया कि जिससे मृदंगके समान शब्द निकलता था। उस शब्दको सुनकर वहाँ सोया हुआ एक बड़ा हाथी उठकर खड़ा हो गया ॥६२॥ मारनेके लिए आनेवाले उस हाथीको छलकर अतिशय चतुर वसुदेव उसके दाँतोंके अग्रभागपर झूला-सा झूलते हुए क्रीड़ा करने लगे॥६३॥ तदनन्तर जो चन्द्रमाके समान जलके कणोंसे सुशोभित था, ऐसे निश्चल खड़े हुए उस हाथीको वश कर जितेन्द्रिय वसुदेव हाथसे उसका आस्फालन करते हुए उसपर सवार हो गये ॥६४॥ उस समय एकाकी वसुदेव स्वयं आश्चर्यसे चकित हो तथा हाथ ऊपरको उठा शिर हिलाते हुए मनमें इस प्रकार विचार करने लगे कि मेरा यह कार्य अरण्यरोदन जैसा हुआ ॥६५॥ यदि यह हस्तिक्रीड़ा शौर्यपुरमें हुई होती तो लोग धन्यवादसे मुखर हो जाते अथवा यह संसार धन्यवादकी ध्वनिसे गूँज उठता ॥६६॥ वसुदेव इस प्रकार विचार कर रहे थे कि उसी समय सौम्यरूपके धारक दो धीर-वीर विद्याधरकुमार हाथीके मस्तकसे उन्हें हर ले गये ॥६७॥ और विजयार्ध पर्वतके कुंजरावर्त नगरमें ले जाकर उसके सर्वकामिक नामक बाह्य उपवनमें छोड़ दिया ॥६८॥ वहाँ जब वसुदेव अशोक वृक्षके नीचे शोक और क्लेशसे रहित सुखसे बैठ गये तब उन दोनों विद्याधर कुमारोंने नमस्कार कर कहा ॥६९॥ कि हे स्वामिन् ! तुम अशनिवेग नामक विद्याधर राजाकी आज्ञासे यहाँ लाये गये हो। उसे तुम अपना श्वसुर समझो ॥७०॥ मैं अर्चिमाली नामका कुमार हूँ और यह दूसरा वायुवेग है। इस तरह वसुदेवसे कहकर उनमें-से एक तो नगरकी ओर चला गया और एक रक्षा करता हुआ वहीं खड़ा रहा ॥७१॥ 'हे स्वामिन् ! आप भाग्यसे बढ़ रहे हैं। हाथीको मर्दन करनेवाला, धीर-वीर, शूरवीर, सुन्दर, विनीत और नवयौवनसे सुशोभित वह कुमार यहाँ लाया जा चुका है' इस प्रकार नमस्कार कर जब उसने राजासे कहा तो राजा आनन्द-से विभोर हो गया। उसने मात्र वस्त्र शेष रखकर शरीरपरके सब आभूषण उसे पुरस्कारमें दे दिये ॥७२–७३॥ तदनन्तर जिसका शरीर अलंकृत था और नगरके नर-नारी जिसे बड़ी उत्सुकतासे देख रहे थे ऐसे वसुदेवको राजाने मंगलाचार पूर्वक नगरमें प्रविष्ट कराया ॥७४॥ वहाँ उत्तम तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त और करणका उदय होनेपर वसुदेवने राजा अशनिवेगकी यौवनवती श्यामा नामक कन्याको विवाहा ॥७५॥ जो कलाओं और गुणोंमें अत्यन्त चतुर थी ऐसी उस कन्याके साथ वसुदेव इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगे। अधिक क्या कहें उस समय वसुदेव उसके अतिशय देदीप्यमान मुखरूपी कमलके भ्रमर हो गये ॥७६॥ एक दिन उसने सत्रह तारवाली वीणा बजायी जिससे वसुदेव बहुत ही प्रसन्न हुए। और प्रसन्न होकर बोले कि प्रिये ! तुम शीघ्र ही वर माँगो ॥७७॥ इसके उत्तरमें उसने नमस्कारकर वसुदेवसे यह उत्तम वर माँगा कि हे स्वामिन् ! चाहे दिन हो चाहे रात्रि, आप मेरे बिना अकेले न रहें यही उत्तम वर मुझे दीजिए॥७८॥ हे प्रिय ! मेरे इस वरदानके माँगनेका कारण भी सुनिए ? वह कारण यही है कि मेरा शत्रु अंगारक अवसर पाकर तुम्हें हर ले जा सकता है यह भय मुझे लगा हुआ है ॥७९॥ इसका स्पष्ट विवरण इस प्रकार है—

विजयार्ध पर्वतकी इस दक्षिण श्रेणीपर, किन्नर देव जिसके सद्‌गुणोंकी प्रशंसा करते हैं तथा जो विजयार्ध पर्वतके मुकुटके समान जान पड़ता है ऐसा किन्नरोद्‌गीत नामका नगर है ॥८०॥ उस नगरमें विद्याधरोंपर पूर्ण शासन चलानेवाला अर्चिमाली नामका राजा था। उसकी प्रभावती स्त्री है और उसके ज्वलनवेग तथा अशनिवेग नामके दो पुत्र हैं ॥८१॥ राजा अर्चिमाली, बड़े पुत्रके लिए राज्य तथा प्रज्ञप्ति विद्या और छोटे पुत्रके लिए युवराज पद देकर अरिन्दम गुरुके

पास दीक्षित हो गया ॥८२॥ हे नाथ ! आगे चलकर राजा ज्वलनवेगकी विमला रानीके अंगारक नामका पुत्र हुआ और युवराज अशनिवेगकी सुप्रभा स्त्रीसे मैं श्यामा नामकी पुत्री हुई ॥८३॥ तत्पश्चात् राजा ज्वलनवेगने भी मेरे पिता अशनिवेगके लिए राज्य और अपने पुत्रके लिए प्रज्ञप्ति विद्या देकर कल्याणदायिनी जिनदीक्षा ग्रहण कर ली ॥८४॥ युवराज अंगारक प्रकृतिका बड़ा दुष्ट तथा गर्वीला है इसलिए उस पापीने हमारे पिताको शीघ्र ही देशसे निकालकर राज्य छीन लिया है ॥८५॥ हे नरकुंजर ! अब मेरे पिता राज्यसे भ्रष्ट हो इसी कुंजरावर्त नगरमें रहते हैं और पिंजड़ेमें स्थित पक्षीके समान निरन्तर चिन्तासे दुःखी रहते हैं ॥८६॥ किसी एक दिन मेरे पिता कैलास पर्वतपर गये थे वहाँ पर्वतपर आये हुए एक चारण ऋद्धिधारी मुनिराजके दर्शन कर पिताने उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर मुनिराजको त्रैलोक्यदर्शी जानकर पिताने पूछा कि हे भगवन् ! आप तो अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे मेरे राज्यको अवश्य ही देख रहे हैं। हे नाथ ! कृपा कर कहिए मुझे पुनः राज्य प्राप्त होगा या नहीं ? ॥८७-८८॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने अतिशय निर्मल अवधिज्ञानरूपी दिव्य नेत्रको खोलकर कहा कि जो तुम्हारी श्यामा नामकी कन्या है उसके पतिके द्वारा तुम्हें पुनः राज्यकी प्राप्ति होगी ॥८९॥ पिताने इसके उत्तरमें पुनः पूछा कि हे नाथ ! श्यामा कन्याका पति कौन होगा ? यह स्पष्ट किस तरह जाना जावेगा ? तब मुनिराजने कहा कि जलावर्त नामक सरोवरमें जो मदोन्मत्त हाथीके मदका मर्दन करेगा वही तुम्हारी श्यामा कन्याका पति होगा यही उसकी पर्याप्त पहचान है। मुनिराजके आदेशसे उसी समयसे पिताने जलावर्त नामक सरोवरपर आपकी स्थितिका अन्वेषण करनेके लिए दो विद्याधर नियुक्त कर दिये ॥९०-९१॥ और उसके फलस्वरूप शीघ्र ही आपकी प्राप्ति हो गयी है। हे नाथ ! आप मेरे मनरूपी रथके सारथि हैं—उसे आगे बढ़ानेवाले हैं। यथार्थमें मुनिराजके वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥९२॥ अंगारकको इस वृत्तान्तका निश्चित ही पता चल गया होगा क्योंकि वह हम लोगोंसे सदा द्वेष रखता है और हम लोगोंको नष्ट करनेके लिए सदा धूमिल अग्निके समान उद्यत रहता है ॥९३॥ वह महाविद्याके बलसे उद्धत है और आप विद्यामें कुशल नहीं हैं। यद्यपि मैं विद्यासे युक्त होनेके कारण आपकी रक्षा करनेमें समर्थ हूँ तो भी यदि कदाचित् आप मेरे बिना रहेंगे तो वह आपको हर ले जा सकता है। हे नाथ ! इसी भयके कारण मैंने आपसे वर माँगा है कि आप चाहे दिन हो चाहे रात, कभी मेरे बिना न रहें ॥९४॥ श्यामाके उक्त वचन सुनकर वसुदेवने कहा कि ऐसा ही हो इसमें क्या दोष है। यह कहकर मन्द-मन्द हँसते हुए वसुदेवने मुसकराती हुई प्रियाका गाढ़ आलिंगन किया ॥९५॥ वहाँ रहकर वसुदेवने ईर्ष्या रहित हो विद्याधर लोक सम्बन्धी सुन्दर गन्धर्व विद्याको विशेषताके साथ सीखा ॥९६॥

तदनन्तर उन दोनोंका समय सदा सावधानीके साथ बीत रहा था। एक दिन रात्रिके समय चिरकाल तक सम्भोग क्रीड़ासे खिन्न होकर दोनों सोये हुए थे ॥९७॥ कि अंगारकने स्वच्छन्दतासे आकर उनके आलिंगन सम्बन्धी बन्धनको अलग कर दिया और जिस प्रकार गरुड़ साँपको ले उडता है उसी प्रकार वह श्यामाकी शय्यासे राजा वसुदेवको ले उड़ा ॥९८॥ अपने आपको हरा हुआ जानकर वसुदेवने आकाशमें उस विद्याधरसे कहा कि अरे पापी ! तू कौन मुझे हरे लिये जा रहा है छोड़-छोड़ ॥९९॥ यद्यपि वसुदेवने उसे जान लिया था कि यह श्यामाके द्वारा बताये हुए आकारको धारण करनेवाला शत्रु अंगारक है फिर भी आकाशसे नीचे गिरनेकी आशंकासे उन्होंने उसे मुट्ठियोंकी मारसे मारा नहीं ॥१००॥ इतनेमें ही सहसा जागकर तथा तलवार और ढाल हाथमें ले वीरांगना श्यामाने बड़े वेगसे जाकर उसे रोका ॥१०१ श्यामाने ललकारते हुए कहा कि ठहर, ठहर, अरे दुराचारी, निर्दय ! चोर विद्याधर ! तू मेरे जीवित रहते हुए मेरे प्राणनाथको कैसे हर सकता है ? ॥१०२॥ तू राज्यपर बैठकर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। सदा हमारे दुःखका ध्यान

रखता है ! तू आज मुझे चिरकाल बाद दिखा है, कहाँ जाता है ? तू अभी मारा जाता है ॥१०३॥ यह कहकर श्यामाने उसका मार्ग रोक लिया और तलवार उभारकर वह उसके आगे खड़ी हो गयी। तदनन्तर राक्षसके समान् रूक्ष वचनोंका प्रयोग करनेवाला शत्रु अपनी रक्षा करता हुआ श्यामासे बोला ॥१०४॥ अरी नीच श्यामा ! संसारमें स्त्रीका मारना निन्दित समझा जाता है इसलिए तू सामनेसे हट जा। तू मेरी बहन भी है अतः तुझे मारनेके लिए मेरा हाथ कैसे उठे ? ॥१०५॥ अथवा कार्यके इच्छुक मनुष्योंके लिए क्या स्त्री ? क्या बहन ? क्या भाई ? उन्हें तो जो वैरी अपना घात करे उसका अवश्य ही घात करना चाहिए इसमें कुछ भी अपयश नहीं है ॥१०६॥ क्या पुरुषोंको मारनेवाली सिंही और व्याघ्री नहीं मारी जाती ? इसलिए न्यायका विचार करना व्यर्थ है। यदि तुझमें पौरुष है तो मार ॥१०७॥

तदनन्तर जिसने विद्यारूपी शाखाके बलसे उठकर अंगारकका मार्ग रोग रखा था ऐसी श्यामाको अंगारोंके समूहके समान उग्र अंगारक, तलवारकी धार और पत्थरोंकी चोटसे मारने लगा ॥१०८॥ प्रत्येक चोटके समय तलवार और ढालकी करारी टक्कर होती थी। कुछ समय बाद श्यामाने तलवारसे निकले हुए तिलंगोंके द्वारा अंगारकके शरीरको आच्छादित कर दिया ॥१०९॥ श्यामा और अंगारकके इस माया युद्धको देखकर कुमार वसुदेवने भी शत्रुके हृदय-पर अपनी मुट्ठियोंसे इतना दृढ़ प्रहार किया कि उसे प्राणोंका सन्देह उत्पन्न कर दिया ॥११०॥ अन्तमें दुःखी होकर अंगारकने कुमारको छोड़ दिया। नीचे गिरनेके भयसे कुमार कुछ खिन्न हुए परन्तु श्यामाके द्वारा नियुक्त श्यामलछाया नामकी दासी उन्हें बीचमें ही सँभालकर अपने नगर ले जाने लगी। उस समय यह आकाशवाणी हुई कि कुमारको इसी ग्राममें लाभ होनेवाला है इसलिए इस समय यहीं छोड़ दो। आकाशवाणीके अनुसार श्यामलछाया कुमारको अपनी पर्णलघ्वी नामक विद्याके लिए सौंपकर अपने घर चली गयी और कुमार उस पर्णलघ्वी विद्याके द्वारा पत्तेके समान लघु शरीर होकर धीरे-धीरे पृथिवीकी ओर आये ॥१११-११३॥ तदनन्तर कुमार वसुदेव, चम्पा-नगरीके बाह्योद्यानमें कमलोंसे ढँका हुआ जो कमल सरोवर था उसमें गिरे। तालाबसे निकलकर वे तटपर आये ॥११४॥ सरोवरके तटपर मानस्तम्भ आदिसे युक्त श्रीवासुपूज्य भगवान्‌का मन्दिर था। वसुदेवने पास जाकर प्रदक्षिणा दी, वन्दना की और उसके बाद दीपिकाओंके प्रकाशसे प्रकाशित उसी मन्दिरमें वह बस गये ॥११५॥ प्रातःकाल भगवान्‌की पूजाके लिए एक ब्राह्मण आया तो वसुदेवने उससे पूछा कि यह कौन देश है ? तथा कौन नगरी है ? इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि यह अंगदेश है और यह तीन लोकमें प्रसिद्ध चम्पा नगरी है। इसे क्या तुम नहीं जानते ? अरे महाविद्वन् ! क्या तुम यहाँ आकाशसे पड़े हो ? ॥११६-११७॥ इसके उत्तरमें वसुदेवने कहा कि हे ब्राह्मण ! आपने बिलकुल ठीक जाना। क्या आप ज्योतिष जानते हैं ? आपका ज्ञान संवादी—यथार्थज्ञान है। अहा ! जिनशासन अन्यथा नहीं हो सकता ॥११८॥ रूपके लोभसे दो यक्ष कुमारियाँ मुझे हरकर ले गयी थीं; उनका आपसमें झगड़ा होने लगा और मैं छूटकर आकाशसे पृथिवीपर गिरा हूँ ॥११९॥ यह उत्तर देकर विशाल नेत्रोंके धारक वसुदेवने ब्राह्मणका वेष रख गन्धर्वनगरीके समान उस चम्पापुरीमें प्रवेश किया ॥१२०॥ वहाँ उन्होंने जहाँ-तहाँ वीणा हाथमें लिये मनुष्योंको देखकर एक ब्राह्मणसे पूछा कि ये लोग इधर-उधर क्यों घूम रहे हैं ? ॥१२१॥

ब्राह्मणने कहा कि इस नगरीमें कुबेरके समान वैभववाला एक चारुदत्त नामका सेठ रहता है। उसकी गन्धर्वसेना नामकी पुत्री है। वह पुत्री सौन्दर्यके गर्वसे युक्त है, गन्धर्वशास्त्रमें अत्यन्त निपुण है तथा उसने यह नियम किया है कि जो मुझे गन्धर्वशास्त्र-संगीतशास्त्रमें जीतेगा वह मेरा पति होगा ॥१२२-१२३॥ लोभसे प्रेरित, वीणा बजानेमें निपुण, तथा नाना देशोंसे आये हुए ये

लोग उसी कन्याके लिए यहाँ इकट्ठे मिले हैं ॥१२४॥ रूप-लावण्य और सौभाग्यके सागरमें तैरनेवाली इस मृगनेत्री मनोहर कन्याने समस्त संसारको व्यामोहित कर रखा है ॥१२५॥ यहाँ जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य रहता है वह कन्याका अर्थी, यशका अर्थी, वीणा बजानेमें निपुण और विजयका अभिलाषी है ॥१२६॥ यहाँ एक-एक महीनेमें कलाके जानकार मनुष्योंकी सभा जुड़ती है जिससे सदा जयपताकाको हरनेवाली यही कन्यारूपी सरस्वती रहती है—सदा इसीकी जीत होती है ॥१२७॥ पिछले दिन ही यहाँ गुणी मनुष्योंकी सभा जुड़ी थी अब एक माह बाद फिरसे होगी ॥१२८॥ यह सुन वसुदेवने उस ब्राह्मणसे पूछा कि इस नगरीमें संगीतका प्रसिद्ध विद्वान् कौन है ? यह कहो ? इसके उत्तरमें ब्राह्मणने कहा कि इस समय सुग्रीव संगीतका सबसे अधिक प्रसिद्ध विद्वान् है ॥१२९॥

तदनन्तर वसुदेव घरके लोगोंकी तरह सुग्रीवके पास चले गये और उसे नमस्कार कर बोले कि मैं गौतम गोत्री हूँ तथा आपकी शिष्यता करना चाहता हूँ ॥१३०॥ यह परम सुन्दर तथा भोला-भाला है यह मानकर सुग्रीवने दयापूर्वक उन्हें स्वीकार कर लिया—अपना शिष्य बना लिया। और वे अपनी उलटी-सीधी वीणासे सबको हँसाते हुए वहाँ रहने लगे ॥१३१॥ दिन आनेपर पहलेकी भाँति फिरसे विद्वानोंकी सभा हुई; वसुदेव भी उस सभामें प्रविष्ट होकर विशाल जन-समूहको देखने लगे ॥१३२॥ वह सभा बाजा सुननेकी कलासे युक्त तथा बहुत भारी कोलाहल करनेवाले अन्य कौतूहली मनुष्योंसे क्षोभको प्राप्त हो रही थी ॥१३३॥ तदनन्तर जिस प्रकार वर्षाऋतुमें बिजली आकाशके मध्यमें प्रवेश करती है उसी प्रकार निर्मल कान्तिकी धारक एवं उत्तमोत्तम आभूषणोंसे अलंकृत कन्याने सभाके मध्यमें प्रवेश किया ॥१३४॥ मूर्तिमती गन्धर्व विद्याके समान कन्या गन्धर्वसेनाके द्वारा जब क्रम-क्रमसे वीणा बजानेमें निपुण बहुत-से विद्वान् जीत लिये गये तब वसुदेव भी उत्तम आसनपर आसीन हुए। उस समय वसुदेवको अनेक वीणाएँ दी गयीं पर उन सबका दोषयुक्त बता दिया ॥१३५-१३६॥ अन्तमें गन्धर्वसेनाने अपनी सुघोषा नामकी सत्तरह तारोंवाली वीणा उन्हें दी। उसे बजाकर वे प्रसन्न होते हुए बोले कि यह वीणा बहुत अच्छी है, बहुत अच्छी है, हे चतुरे ! यह वीणा निर्दोष है। हे गन्धर्वसेने ! कह तुझे कौन-सी गेय वस्तु पसन्द है ? तू गेय वस्तुओंमें पण्डित है अतः मुझे आदेश दे मैं इन विद्वानोंके आगे कोमल-कान्त वीणा बजाता हूँ ॥१३७-१३९॥ इसके उत्तरमें गन्धर्वसेनाने कहा कि बलिको बाँधनेवाले विष्णुकुमार मुनिने जब अपनी तीन डगोंका कर्तव्य दिखाया था तब हाहा, तुम्बुरु तथा नारदने जो गेय वस्तु गायी थी यदि आप वाद्य विद्याके जानकार हैं तो वही वस्तु आज बजाइए क्योंकि पुराणसे सम्बन्ध रखनेवाली गेय वस्तु ही प्रशंसनीय होती है ॥१४०-१४१॥ गन्धर्वसेनाका आदेश पाकर वसुदेव संगीत विद्याका निम्नप्रकार वर्णन करने लगे—

१. तत, २ अवनद्ध, ३ घन और ४ सुषिरके भेदसे बाजे चार प्रकारके हैं। ये सभी बाजे यथायोग्य अपने-अपने लक्षणोंसे युक्त हैं ॥१४२॥ जो तारसे बजते हैं ऐसे वीणा आदि तत कहलाते हैं। जो चमड़ेसे मढ़े जाते हैं ऐसे मृदंग आदि अवनद्ध कहलाते हैं। काँसेके झांझ, मजीरा आदि घन कहलाते हैं और बाँसुरी आदिको सुषिर कहते हैं ॥१४३॥ इनमें तत नामका वादित्र कर्ण-इन्द्रियको तृप्त करनेवाला होनेसे प्रायः प्राणियोंके लिए अधिक प्रीति उपजानेवाला है तथा गन्धर्व शरीरके साथ सम्बद्ध होनेसे गान्धर्व नामसे प्रसिद्ध है ॥१४४॥ गान्धर्वकी उत्पत्तिमें वीणा, वंश और गान ये तीन कारण हैं तथा स्वरगत, तालगत और पदगतके भेदसे वह तीन प्रकारका माना गया है ॥१४५॥ वैण और शारीरके भेदसे स्वर दो प्रकारके माने गये हैं और उनके भेद तथा लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं ॥१४६॥ श्रुति, वृत्ति, स्वर, ग्राम, वर्ण, अलंकार, मूर्च्छना, धातु और साधारण आदि वैण स्वर माने गये हैं और जाति, वर्ण, स्वर, ग्राम, स्थान,

साधारण क्रिया और अलंकार विधि ये शारीर स्वरके भेद कहे हैं ॥१४७-१४८॥ जाति, तद्धित, छन्द, सन्धि, स्वर, विभक्ति, सुबन्त, तिङन्त, उपसर्ग तथा वर्ण आदि पदगत गान्धर्वको विधि हैं और आवाप, निष्काम, विक्षेप, प्रवेशन, शम्याताल, परावर्त, सन्निपात, सवस्तुक मात्रा, अविदार्य, अंग, लय, गति, प्रकरण, यति, दो प्रकारकी गीति, मार्ग, अवयव, पादभाग और सपाणि। ये तालगत गान्धर्वके बाईस[2] प्रकार हैं। इस प्रकार गान्धर्व (तत) वाद्यका जितना विस्तार है वसुदेवने उस सबका प्रयोग किया अर्थात् तदनुसार वीणा बजायी ॥१४९-१५२॥ दूसरी तरहसे स्वर १ षड्ज, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ मध्यम, ५ पंचम, ६ धैवत और ७ निषादके भेदसे सात प्रकारके हैं।[3] इन स्वरोंके प्रयोग करनेके वादी[4], संवादी[5], विवादी और अनुवादी ये चार प्रकार हैं सो वसुदेवने इन चारों प्रकारोंका यथाक्रमसे प्रयोग किया ॥१५३-१५४॥ मध्यम ग्राममें पंचम और ऋषभ स्वरका तथा षड्ज ग्राममें षड्ज तथा पंचम स्वरका संवाद होता है ॥१५५॥ षड्ज[6] ग्रामके षड्ज स्वरमें चार, ऋषभमें तीन, गान्धारमें दो, मध्यममें चार, पंचममें चार, धैवतमें दो और निषादमें तीन श्रुतियां होती हैं[7] ॥१५६-१५७॥ मध्यम ग्रामके मध्यम स्वरमें चार, गान्धारमें दो, ऋषभमें तीन, षड्जमें चार, निषादमें दो, धैवतमें तीन, पंचममें तीन श्रुतियां[8] होती हैं ॥१५८-१५९॥ इस प्रकार षड्ज और मध्यम—दोनों ग्रामोंमें प्रत्येककी बाईस-बाईस श्रुतियां होती हैं एवं उक्त दोनों ग्रामोंकी मिलकर चौदह मूर्च्छनाएँ कही गयी हैं॥१६०॥ इनमें पहली उत्तरभद्रा, दूसरी रजनी, तीसरी उत्तरायता, चौथी शुद्धषड्जा, पाँचवीं मत्सरीकृता, छठी अश्वक्रान्ता और सातवीं आभिरुद्गता ये सात षड्ज ग्रामकी मूर्च्छनाएँ हैं[1] ॥१६१-१६२॥ और पहली सौवीरी, दूसरी हरिणाश्वा, तीसरी कलोपनता, चौथी शुद्धमध्यमा, पाँचवीं मार्गवी, छठी पौरवी और सातवीं रिष्यका (हृष्यका) ये सात मूर्च्छनाएँ[2] मध्यम ग्राममें विद्वज्जनोंके द्वारा जानने योग्य हैं ॥१६३-१६४॥ षड्ज स्वरमें उत्तरमन्द्रा, ऋषभमें आभिरुद्गता, गान्धारमें अश्वक्रान्ता, मध्यममें मत्सरीकृता, पंचममें शुद्ध षड्जा, धैवतमें उत्तरायता और निषादमें रजनी मूर्च्छना होती है। ये मूर्च्छनाएँ षड्जग्राम सम्बन्धिनी हैं ॥१६५-१६६॥ अब मध्यम[3] ग्राम सम्बन्धिनी मूर्च्छनाएँ कहते हैं। मध्यम ग्रामके मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत और पंचम स्वरमें क्रमसे सौवीरीको आदि लेकर हृष्यका तक सात मूर्च्छनाएँ[4] होती हैं अर्थात् मध्यममें सौवीरी, गान्धारमें हरिणाश्वा, ऋषभमें कलोपनता, षड्जमें शुद्धमध्यमा, निषादमें मार्गवी, धैवतमें पौरवी और पंचममें हृष्यका मूर्च्छना होती है। इस प्रकार दोनों ग्रामोंकी ये चौदह मूर्च्छनाएँ हैं[1] ॥१६७-१६८॥ इन चौदह मूर्च्छनाओंके षाडव, औडव, साधारण-कृत और काकलीके भेदसे चार-चार स्वर होते हैं। इस तरह इनके छप्पन स्वर हो जाते हैं। जिसकी उत्पत्ति छह स्वरोसे होती है उसे षाडव और जिसकी पाँच स्वरोंसे उत्पत्ति होती है उसे औडव कहते हैं[1] ॥१६९॥ षड्ज मध्यम इन दोनों ग्रामोंकी मूर्च्छनाएँ अनन्तर स्वरसे भी संयुक्त होती हैं तथा इनका यथायोग्य मेल होनेपर एक मूर्च्छना दो रूप हो जाती है इसकी सिद्धि भी बतायी गयी है[3] ॥१७०॥ तान चौरासी प्रकारकी हैं इनमें पाँच स्वरोंसे उत्पन्न होनेवाली पैंतीश और छह स्वरोंसे उत्पन्न होनेवाली उनचास[1] हैं ॥१७१॥ अन्तर स्वरका संयोग सदा आरोही अवस्थामें ही करना चाहिए अवरोही अवस्थामें थोड़ा या बहुत किसी भी रूपमें कभी भी नहीं करना चाहिए ॥१७२॥ क्योंकि यदि अवरोही अवस्थामें थोड़ा या बहुत अन्तर स्वरका संयोग किया जाता है तो उस समय अन्तर स्वर जातिके राग और श्रुति दोनोंको समाप्त कर देता है[2] ॥१७३॥ अब दोनों ग्रामोंकी जातियोंका वर्णन करते हैं, उनमें षड्ज ग्रामसे सम्बन्ध रखनेवाली १ षाड्जी, २ आर्षभी, ३ धैवती, ४ निषादजा, ५ सुषड्जा, ६ उदीच्यवा, ७ षड्जकैशिकी और ८ षड्जमध्या ये आठ जातियाँ हैं एवं नीचे लिखी दश जातियां मध्यमग्रामके आश्रित हैं—१ गान्धारी, २ मध्यमा,

३ गान्धारोदीच्यवा, ४ पंचमी, ५ रक्तगान्धारी, ६ रक्तपंचमी, ७ मध्यमोदीच्यवा, ८ नन्दयन्ती, ९ कर्मारवी, १० आन्ध्री, ११ कैशिकी। दोनों ग्रामोंकी मिलाकर अठारह जातियां होती हैं[3] ॥१७४-१७७॥ इन जातियोंमें मध्यमा, षड्जमध्या और पंचमी ये तीन जातियां साधारण स्वरगत[4] हैं ॥१७८॥ ये जातियाँ शुद्ध और विकृतके भेदसे दो प्रकारकी कही गयी हैं। जो परस्परमें मिलकर उत्पन्न नहीं हुई हैं तथा पृथक्-पृथक् लक्षणोंसे युक्त हैं वे शुद्ध कहलाती हैं और जो समान लक्षणोंसे युक्त हैं वे विकृत कहलाती हैं। विकृत जातियाँ दोनों ग्रामोंकी जातियोंसे मिलकर बनती हैं तथा दोनोंके स्वरोंसे आप्लुत रहती हैं। इन जातियोंमें चार जातियां सात स्वरवाली, चार जातियाँ छह स्वरवाली और शेष दश जातियाँ पाँच स्वरवाली कही गयी हैं। मध्यमोदीच्यवा, षड्जकैशिकी, कर्मारवी और गान्धारपंचमी ये चार जातियां सात स्वरवाली हैं। षड्जा, आन्ध्री, नन्दयन्ती और गान्धारोदीच्यवा ये चार जातियां छह स्वरवाली हैं और शेष दश जातियाँ पाँच स्वरवाली हैं। नैषादी, आर्षभी, धैवती, षड्जमध्यमा और षड्जोदीच्यवती ये पांच जातियां षड्जग्रामके आश्रित हैं और गान्धारी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, पचमी तथा कैशिकी ये पांच मध्यमग्रामके आश्रित हैं। इन जातियोंमें जो पांच स्वरवाली (ओडव) और छह स्वरवाली (षाडव) जातियाँ कही गयी हैं वे कदाचित् क्रमसे षाडव (छह स्वरवाली) और ओडव (पांच स्वरवाली) हो जाती हैं। षड्जग्राममें सात स्वरवाली षड्जकैशिकी जाति होती है और गानके योगसे छह स्वरवाली भी होती है। मध्यमग्राममें सात स्वरवाली कर्मारवी, गान्धारपंचमी और मध्यमोदीच्यवा होती हैं और छह स्वरवाली गान्धारोदीच्यवा, आन्ध्री एवं नन्दयन्ती जातियाँ होती हैं। इस तरह विद्वानोंके द्वारा ये दोनों ग्रामोंकी जातियां जानने योग्य हैं ॥१७९-१८९॥ जहाँ छह स्वर होते हैं वहाँ षड्जमध्यम स्वर उसका सप्तांश नहीं होता और संवादीका लोप हो जानेसे वहाँ गान्धारस्वर विशेषताको प्राप्त नहीं होता ॥१९०॥ गान्धारी, रक्तगान्धारी, कैशिकी और षड्जामें पंच स्वर नहीं होता तथा षाडवको गान्धारीका हृदय जानना चाहिए ॥१९१॥ षाडवमें धैवत स्वर नहीं रहता क्योंकि वहाँ षड्जोदीच्यवा जातिका वियोग हो जाता है। एवं ये सात जातियां संवादीका अभाव होनेसे छह स्वरोंसे वर्जित रहती हैं ॥१९२॥ इनमें-से रक्तगान्धारी जातिमें षड्ज, मध्यम और पंचमस्वर सप्तमस्वर रूप हो जाते हैं तथा इनमें औडवित नहीं रहता ॥१९३॥ षड्ज, मध्यम, गान्धार, निषाद और ऋषभ ये पाँच अंश पंचमी जातिमें रहते हैं और कैशिकीमें धैवतके साथ छह रहते हैं। ये बारहों जातियाँ पंचस्वरमें सदा वर्जनीय मानी गयी हैं। किन्तु इनमें जो औडवितसे रहित हैं उनका स्वरके आश्रय निरन्तर प्रयोग करना चाहिए ॥१९४-१९५॥ जातियोंमें समस्त स्वरोंका नाश किया जा सकता है परन्तु मध्यमस्वरका नाश कभी नहीं करना चाहिए ॥१९६॥ क्योंकि मध्यम स्वरका कभी नाश नहीं होता इसलिए वह समस्त स्वरोंमें प्रधान स्वर माना गया है। साथ ही यह मध्यमस्वर गान्धर्व कल्पके समस्त भेदोंमें भी स्वीकृत किया गया है ॥१९७॥ १ तार, २ मन्द्र, ३ न्यास आदि (४ उपन्यास, ५ ग्रह, ६ अंश) ७ अल्पत्व, ८ बहुत्व, ९ षाडव और १० औडवित ये जातियोंके नाम हैं ॥१९८॥ इस प्रकार विद्वानों द्वारा ये दश जातियाँ जानने योग्य हैं। उन जातियोंका जिस रसमें जितना प्रयोग होता है उसका कथन किया जाता है ॥१९९॥ राग जिसमें रहता है, राग जिससे प्रवृत्त होता है, जो मन्द्र अथवा तारमन्द्र रूपसे अधिक उपलब्ध होता है, जो ग्रह उपन्यास, विन्यास, संन्यास और न्यासरूपसे अधिक उपलब्ध होता है, तथा जो अनुवृत्ति पाई जाती है वह दश प्रकारका अंश कहलाता है ॥२००-२०१॥ संचार, अंश, बलस्थान, दुर्बल स्वरोंका अल्पता और नाना प्रकारका अन्तर मार्ग ये जातियोंको प्रकट करनेवाले हैं ॥२०२॥ मन्द्रमें अंश नहीं होता परन्तु न्यासमें दो अंश होते हैं। गान्धार ग्रह तथा न्यासमें आर्षभ अंश देखा जाता

है ॥२०३॥ समस्त जातियोंमें जिस प्रकार अंश स्वीकार किया गया है उसी प्रकार ग्रह भी माना गया है। जिस ग्रहके प्रवृत्त होनेपर जो अंश होता है वह अंश उसी ग्रहसे विकल्पित माना जाता है ॥२०४॥ समस्त द्वैग्रामिकी जातियोंके सदा त्रेशठ अंश जानना चाहिए और जातियोंका संग्रह छह स्वरोंमें माना गया है ॥२०५॥ मध्यमोदीच्यवा, नन्दयन्ती और गान्धार पंचमीमें पंचम अंश तथा पंचम ही ग्रह रहता है ॥२०६॥ धैवतीमें धैवत और ऋषभ ये दो अंश तथा दो ग्रह और पंचमीमें पंचम तथा ऋषभ दो अंश और दो ग्रह जानना चाहिए ॥२०७॥ गान्धारोदोच्यवामें षड्ज और मध्यम ये दो अंश तथा ग्रह हैं। आर्षभीमें धैवत, ऋषभ और निषाद ये तीन अंश और ग्रह हैं। नैषादिनीमें षाडव, गान्धार और ऋषभ ये तीन अंश और ग्रह हैं। इसी प्रकार षड्ज कैशिकीमें षड्ज, गान्धार और मध्यम ये तीन अंश तथा ग्रह हैं ॥२०८-२०९॥ तीनों जातियोंके ग्रह और न्यास कहे जा चुके हैं। गान्धार, ऋषभ, निषाद और पंचम ये चार ग्रहके आदि अंश हैं तथा षड्ज, ऋषभ, मध्यम और पंचम ये अन्त्य अंश कहे गये हैं ॥२१०-२११॥ मध्यमा जातिमें गान्धार और धैवत ये दो ग्रह एवं अंश हैं। निषाद, षड्ज, गान्धार, मध्यम और पंचम ये रक्तगान्धारीके ग्रह और अंश हैं। कैशिकीमें ऋषभ योगके साथ समस्त ग्रहोंसे युक्त समस्त स्वर हैं। इसमें षड्ज और मध्यम ये दो ग्रह और अंश हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी जातियोंमें त्रेसठ ग्रह तथा इतने ही अंश जानना चाहिए ॥२१२-२१४॥ समस्त जातियोंमें अंशोंके ही समान ग्रह जानना चाहिए। समस्त जातियोंके गुण त्रिजातीय होते हैं ॥२१५॥ इनमें एकसे लेकर बढ़ते-बढ़ते छहगुने स्वर हो जाते हैं और वे एक स्वर, दो स्वर, तीन स्वर, चार स्वर, पाँच स्वर, छह स्वर और सात स्वर—इस क्रमसे होते हैं। इन जातियोंमें ग्रह और अंश कल्पना पहले कही जा चुकी है ॥२१६-२१७॥ षड्जमें निषाद और ऋषभको छोड़कर शेष पाँच स्वर होते हैं और वहाँ गान्धार तथा पंचम उपन्यास होते हैं। षष्ठ स्वर न्यास होता है एवं ऋषभ तथा सप्तम स्वरका लोप होता है। इसमें प्रयोक्ताओंको गान्धारकी बहुलता करनी चाहिए ॥२१८-२१९॥ आर्षभीमें निषाद और धैवत ये दो अंश तथा ये ही दो उपन्यास होते हैं और आर्षभ न्यास होता है ॥२२०॥ धैवतीमें धैवत और आर्षभन्यास तथा धैवत, ऋषभ और पंचम ये उपन्यास होते हैं ॥२२१॥ इसमें षड्ज और पंचमको छोड़कर पाँच स्वरोंका प्रयोग किया जाता है तथा पंचमको छोड़कर शेष षाडव कहा जाता है ॥२२२॥ पूर्वोक्त पंचस्वर्य और षाडव आरोहणीय और लंघनीय दोनों प्रकारके हैं। इसी प्रकार निषाद, ऋषभ और बलवान् गान्धार भी आरोहणीय तथा लघनीय दोनों प्रकारके हैं ॥२२३॥ निषाद, निषादका अंश, गान्धार और ऋषभ इस प्रकार ये उपन्यास हैं परन्तु सप्तम स्वर न्यास ही होता है ॥२२४॥ धैवती जातिमें भी षाडव और औडवितका प्रयोग करना चाहिए। ये दोनों ही पूर्वकी भाँति लंघनीय तथा आरोहणीय होते हैं ॥२२५॥ षड्ज कैशिकीके गान्धार और पंचम ये ग्रहांश हैं तथा षड्ज, पंचम और मध्यम ये उपन्यास हैं ॥२२६॥ यहांपर गान्धार चाहे हीन स्वरवाला हो चाहे अधिक स्वरवाला हो न्यास होता है साथ ही इसके यहाँ धैवत तथा ऋषभ स्वरमें दुर्बलताका प्रयोग करना चाहिए ॥२२७॥ षड्ज, मध्यम, निषाद और धैवत ये षड्जोदीच्यवाके अंश हैं, मध्यम न्यास हैं और धैवत तथा षड्ज उपन्यास हैं। यहाँ छन्दके अनुसार परस्परके अंशोंमें व्यतिक्रम भी हो जाता है ॥२२८-२२९॥ जहाँ पंचम और ऋषभको छोड़कर शेष पाँच स्वर होते हैं वहाँ षड्ज, ऋषभ और गान्धार बलवान् होते हैं ॥२३०॥ षड्ज और मध्यम सबके उपन्यास हैं तथा षड्ज और सप्तम सबके न्यास हैं ॥२३१॥ पंचस्वर्य गान्धार और सप्तम स्वरसे युक्त होता है तथा षाडवको सप्तम स्वरसे युक्त अवश्य करना चाहिए ॥२३२॥ इन समस्त स्वरोंका संचार इच्छानुसार किया जाता है। ये सात जातियाँ षड्ज ग्रामके आश्रय रहती

हैं ॥२३३॥ गान्धारी जातिमें धैवत और ऋषभको छोड़कर शेष पाँच ही अंश रहते हैं। षड्ज और पंचम उपन्यास होते हैं ॥२३४॥ इसमें षाडव और ऋषभसे उत्पन्न गान्धार न्यास होता है तथा धैवत और ऋषभसे रहित औडवित होता है ॥२३५॥ यहाँ ऋषभ और धैवत नियमसे लंघनीय माने गये हैं और जब लंघन होता है तो ऋषभसे धैवतकी ओर ही होता है। इस प्रकार गान्धारी जातिके स्वर न्यास और अंशोंके संचारका वर्णन किया ॥२३६॥ रक्तगान्धारीका लक्षण इसी—गान्धारीके समान होता है। विशेषता यह है कि इसमें धैवत और पंचम स्वर बलवान् होते हैं ॥२३७॥ यहाँ धैवत और पंचमके बिना गान्धार और षड्जका संचार होता है, तथा मध्य सहित मध्यम उपन्यास होता है ॥२३८॥ गान्धारोदीच्यवामें षड्ज, मध्यम और सप्तम अंश जानना चाहिए। इसमें ऋषभके बिना छह स्वर होते हैं ॥२३९॥ इसमें अन्तरमार्ग, न्यास और अपन्यास करना चाहिए तथा उनमें गान्धारोदीच्यवाकी सब विधि स्मरणमें रखना चाहिए ॥२४०॥ मध्यमामें गान्धार और सप्तमको छोड़कर षड्ज, ऋषभ, मध्यम, पंचम और धैवत ये पाँच अंश होते हैं। इसमें एक मध्यम ही अपन्यास तथा न्यास रहता है ॥२४१॥ यहाँ गान्धार और सप्तमसे रहित पंचस्वर्य किया जाता है और कभी प्रयोगवश गान्धारको छोड़कर षट्स्वर्य भी किया जाता है ॥२४२॥ इसमें प्रयोक्ताओंको षड्ज और मध्यम स्वरकी बहुलता करनी चाहिए तथा गान्धार स्वरका लंघन निरन्तर करना चाहिए—उसे छोड़ते रहना चाहिए ॥२४३॥ मध्यमोदीच्यवामें एक ही मध्यम अंश होता है और शेष विधि जो मध्यमामें होती है वह इसमें करनी चाहिए ॥२४४॥ पंचमी जातिमें ऋषभ और पंचम ये दो अंश होते हैं तथा ये ही दो अपन्यास होते हैं परन्तु न्यास एक पंचम ही होता है ॥२४५॥ मध्यमाकी जो विधि बता आये हैं वह तथा षाडव और औडवित इसमें भी जानना चाहिए तथा इसमें षड्ज गान्धार और पंचम स्वरको दुर्बल करना चाहिए ॥२४६॥ यहाँ पंचम और ऋषभ स्वरका संचार करना चाहिए तथा पंचम स्वरके साथ गान्धार स्वरका भी संचार किया जा सकता है ॥२४७॥ गान्धार पंचमीका एक पंचम अंश ही कहा गया है तथा पंचम और ऋषभ ये दो उसके अपन्यास कहे गये हैं ॥२४८॥ इसमें गान्धार न्यास होता है और वह अपने पूर्व स्वरको लिये हुए होता है। पंचमी और गान्धारी जातिका परस्पर संचार भी किया जाता है ॥२४९॥ आन्ध्री जातिके ऋषभ, पंचम, गान्धार और निषाद ये चार अंश हैं तथा ये ही चार अपन्यास हैं ॥२५०॥ गान्धार न्यास है, तथा षड्जसे रहित षाडव–षड्स्वर्य है। यहाँ गान्धार और ऋषभ स्वरका परस्पर संचार होता है ॥२५१॥ कभी-कभी न्यासकी गतिके अनुसार षष्ठ और सप्तम स्वरका भी संचार होता है। इसमें षड्ज स्वरका लंघन और औडवित नहीं होता ॥२५२॥ जो न्यास, अंश तथा अपन्यास आन्ध्री जातिके हैं वे ही नन्दयन्तीके भी हैं। इसमें गान्धार, मध्यम और पंचम स्वर नित्य रहते हैं ॥२५३॥ इसमें षड्ज स्वर लंघनीय नहीं हैं और न आन्ध्रीके समान इसमें संचार ही होता है। इसमें ऋषभ स्वरका लंघन होता है और वह मन्द्रगतिके समय होता है ॥२५४॥ तार ग्रहमें भी निरन्तर उसीके अनुरूप न्यास करना चाहिए। कर्मारवी जातिमें ऋषभ, पंचम, धैवत और निषाद ये चार अंश कहे गये हैं तथा ये ही चार अपन्यास बतलाये गये हैं। इसमें पंचम न्यास होता है और वह हीनस्वर्य होता है ॥२५५–२५६॥ यहाँ गान्धार स्वरका विशेष रूपसे सर्वत्र गमन होता है। षड्जा सहित कैशिकीमें ऋषभको छोड़कर शेष सभी अंश और अपन्यास माने गये हैं। गान्धार और सप्तममें दो न्यास हैं परन्तु धैवत और निषाद अंशमें एक पंचम ही न्यास होता है ॥२५७–२५८॥ कभी-कभी इसमें ऋषभ भी न्यास हो जाता है। इसमें षाडव ऋषभसे रहित होता है तथा धैवत ऋषभके बिना प्रयुक्त होता है। यहाँ औडवित नहीं करना चाहिए, अन्तिम और पंचम स्वरको बलवान् करना चाहिए तथा ऋषभको दुर्बल करना चाहिए और उसीका विशेष रूपसे लंघन

करना चाहिए ॥२५९-२६०॥ इसमें षड्ज और मध्यमका संचार किया जाता है। इस प्रकार स्वरोंमें संचार करनेवाली जातियाँ कहीं। विद्वान् इनका रसके अनुसार प्रयोग करें ॥२६१॥

इस प्रकार गन्धर्व शास्त्रके विस्तारके साथ जब वसुदेवने यथायोग्य उत्तम गाना गाया तब सभी श्रोता आश्चर्यको प्राप्त हो गये ॥२६२॥ लोग कहने लगे कि यह क्या तुम्बुरु है? या नारद है? या गन्धर्व है? अथवा किन्नर है क्योंकि ऐसी वीणा बजाना किसी दूसरेको कहाँ आ सकती है? ॥२६३॥ बलिको बाँधते समय नारद आदिने विष्णुकुमार मुनिका जिस रूपसे स्तवन किया था वसुदेवने वीणा बजाकर वही गाया जिसे सुनकर गन्धर्वसेना आश्चर्यसे चकित एवं निरुत्तर हो गयी ॥२६४॥ इस प्रकार जब सभामें विजयपताका वसुदेवने ग्रहण की तब चारों ओरसे 'साधु-साधु' 'ठीक-ठीक'का जोरदार शब्द गूँज उठा ॥२६५॥ स्वाभाविक अनुरागसे भरी गन्धर्वसेनाने सभामें ही वसुदेवके गलेमें माला डालकर उनका वरण किया ॥२६६॥ उस समय गन्धर्व-कन्यासे वृत गन्धर्वके समान गन्धर्वसेनासे वृत वसुदेवने समस्त जगत्को हर्षित कर दिया ॥२६७॥ तदनन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! कन्याके पिता चारुदत्तने सन्तुष्ट होकर दोनोंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया ॥२६८॥ उपाध्याय सुग्रीव और यशोग्रीव भी अपनी-अपनी कन्याएँ वसुदेवके लिए प्रदान कर सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२६९॥ अनेक कलाओं और गुणोंमें चतुर उन सुन्दर स्त्रियोंके साथ वसुदेव वहाँ चिरकाल तक क्रीड़ा करते रहे ॥२७०॥ लोभसे भरा वैरी विद्याधर छिद्र पा जिसे हरकर आकाशमें बहुत दूर ले गया और वहाँसे अशरण अवस्थामें जिसे कमल वनमें नीचे छोड़ा ऐसे पुरुषको भी जो शीघ्र ही उत्कृष्ट लाभोंसे युक्त करता है हे भव्यजनो! तुम जिन-कथित मार्गमें उस एक धर्मरूप बन्धुको प्राप्त करनेका प्रयत्न करो ॥२७१॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें गान्धर्वसेना कन्याका वर्णन करनेवाला उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१९॥

□

सर्ग- २०

अथानन्तर विशाल लक्ष्मीके धारक राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे विभो! विष्णु कुमार मुनिने बलिको क्यों बांधा था? ॥१॥ इसके उत्तरमें गौतम गणपतिने कहा कि हे श्रेणिक! तू सम्यग्दर्शनको शुद्ध करनेवाली विष्णुकुमार मुनिकी मनोहारिणी कथा सुन, मैं तेरे लिए कहता हूँ ॥२॥

किसी समय उज्जयिनी नगरमें श्रीधर्मा नामका प्रसिद्ध राजा रहता था। उसकी श्रीमती नामकी पटरानी थी। वह श्रीमती वास्तवमें श्रीमती—उत्तम शोभासे सम्पन्न और महा गुणवती थी ॥३॥ राजा श्रीधर्माके बलि, बृहस्पति, नमुचि और प्रह्लाद ये चार मन्त्री थे। ये सभी मन्त्री मन्त्र मार्गके जानकार थे ॥४॥ किसी समय श्रुतके पारगामी तथा सात सौ मुनियोंसे सहित महा-मुनि अकम्पन आकर उज्जयिनीके बाह्य उपवनमें विराजमान हुए ॥५॥ उन महामुनिकी वन्दनाके लिए नगरवासी लोग सागरकी तरह उमड़ पड़े। महलपर खड़े हुए राजाने नगरवासियोंको देख मन्त्रियोंसे पूछा कि ये लोग असमयकी यात्रा द्वारा कहाँ जा रहे हैं? तब बलिने उत्तर दिया कि हे राजन्! ये लोग अज्ञानी दिगम्बर मुनियोंकी वन्दनाके लिए जा रहे हैं ॥६–७॥ तदनन्तर राजा श्रीधर्माने भी वहाँ जानेकी इच्छा प्रकट की। यद्यपि मन्त्रियोंने उसे बहुत रोका तथापि वह जबर्दस्ती चल ही पड़ा। अन्तमें विवश हो मन्त्री भी राजाके साथ गये और मुनियोंके दर्शन कर कुछ विवाद करने लगे ॥८–९॥ उस समय गुरुकी आज्ञासे सब मुनि संघ मौन लेकर बैठा था इसलिए ये चारों मन्त्री विवश होकर लौट आये। लौटकर आते समय उन्होंने सामने एक मुनिको देखकर राजाके समक्ष छेड़ा। सब मन्त्री मिथ्यामार्गमें मोहित तो थे ही इसलिए श्रुतसागर नामक उक्त मुनिराजने उन्हें जीत लिया ॥१०॥ उसी दिन रात्रिके समय उक्त मुनिराज प्रतिमा योगसे विराजमान थे कि सब मन्त्री उन्हें मारनेके लिए गये परन्तु देवने उन्हें कीलित कर दिया। यह देख राजाने उन्हें अपने देशसे निकाल दिया ॥११॥

उस समय हस्तिनापुरमें महापद्म नामक चक्रवर्ती रहता था। उसकी आठ कन्याएँ थीं और आठ विद्याधर उन्हें हरकर ले गये थे। शुद्ध शीलको धारण करनेवाली वे कन्याएँ जब वापस लायी गयीं तो उन्होंने संसारसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली। उधर संसारसे विरक्त हो वे आठ विद्याधर भी तप करने लगे ॥१२–१३॥ इस घटनासे चरमशरीरी महापद्म चक्रवर्ती भी संसारसे विरक्त हो गया जिससे उसने लक्ष्मीमती रानीसे उत्पन्न पद्म नामक बड़े पुत्रको राज्य देकर छोटे पुत्र विष्णु कुमारके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥१४॥ जिस प्रकार सागर नदियों-का भाण्डार होता है उसी प्रकार रत्नत्रयके धारी एवं तप तपनेवाले विष्णुकुमार मुनि अनेक ऋद्धियोंके भाण्डार हो गये ॥१५॥ देशकालकी अवस्थाको जाननेवाले बलि आदि मन्त्री नये राज्य-पर आरूढ़ राजा पद्मकी सेवा करने लगे ॥१६॥ उस समय राजा पद्म, बलि मन्त्रीके उपदेशसे किलेमें स्थित सिंहबल राजाको पकड़नेमें सफल हो गया इसलिए उसने बलिसे कहा कि वर माँगकर इष्ट वस्तुको ग्रहण करो ॥१७॥ बलि बड़ा चतुर था इसलिए उसने प्रणाम कर उक्त वरको राजा पद्मके हाथमें धरोहर रख दिया अर्थात् 'अभी आवश्यकता नहीं है जब आवश्यकता होगी

तब माँग लूँगा' यह कहकर अपना वर धरोहर रूप रख दिया। तदनन्तर वलि आदि चार मन्त्रियोंका सन्तोषपूर्वक समय व्यतीत होने लगा ॥१८॥

अथानन्तर किसी समय धीरे-धीरे विहार करते हुए अकम्पनाचार्य, अनेक मुनियोंके साथ हस्तिनापुर आये और चार माहके लिए वर्षायोग धारण कर नगरके बाहर विराजमान हो गये ॥१९॥ तदनन्तर शंकारूपी विषको प्राप्त हुए बलि आदि मन्त्री भयभीत हो गये और अहंकार के साथ उन्हें दूर करनेका उपाय सोचने लगे ॥२०॥ वलिने राजा पद्मके पास आकर कहा कि राजन्! आपने मुझे जो वर दिया था उसके फलस्वरूप सात दिनका राज्य मुझे दिया जाये ॥२१॥ 'सँभाल, तेरे लिए सात दिनका राज्य दिया' यह कहकर राजा पद्म अदृश्यके समान रहने लगा। और बलिने राज्य सिंहासनपर आरूढ़ होकर उन अकम्पनाचार्य आदि मुनियोंपर उपद्रव करवाया ॥२२॥ उसने चारों ओरसे मुनियोंको घेरकर उनके समीप पत्तोंका धुआँ कराया तथा जूठन व कुल्हड़ आदि फिंकवाये ॥२३॥ अकम्पनाचार्य सहित सब मुनि 'यदि उपसर्ग दूर होगा तो आहार-विहार करेंगे अन्यथा नहीं' इस प्रकार सावधिक संन्यास धारण कर उपसर्ग सहते हुए कायोत्सर्गसे खड़े हो गये ॥२४॥ उस समय विष्णुकुमार मुनिके अवधिज्ञानी गुरु मिथिला नगरीमें थे। वे अवधिज्ञानसे विचार कर तथा दयासे युक्त हो कहने लगे कि हा! आज अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियोंपर अभूतपूर्व दारुण उपसर्ग हो रहा है ॥२५-२६॥ उस समय उनके पास पुष्पदन्त नामका क्षुल्लक बैठा था। गुरुके मुखसे उक्त दयार्द्र वचन सुन उसने बड़े सम्भ्रमके साथ पूछा कि हे नाथ! वह उपसर्ग कहाँ हो रहा है? इसके उत्तरमें गुरुने स्पष्ट कहा कि हस्तिनापुरमें॥२७॥ क्षुल्लकने पुनः कहा कि हे नाथ! यह उपसर्ग किससे दूर हो सकता है? इसके उत्तरमें गुरुने कहा कि जिसे विक्रिया ऋद्धिकी सामर्थ्य प्राप्त है तथा जो इन्द्रको भी धौंस दिखानेमें समर्थ है ऐसे विष्णुकुमार मुनिसे यह उपसर्ग दूर हो सकता है ॥२८॥ क्षुल्लक पुष्पदन्तने उसी समय जाकर विष्णुकुमार मुनिसे यह समाचार कहा और उन्होंने 'विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई है या नहीं?' इसकी परीक्षा की ॥२९॥ उन्होंने परीक्षाके लिए सामने खड़ी पर्वतकी दीवालके आगे अपनी भुजा फैलायी सो वह भुजा, पर्वतकी उस दीवालको भेदन कर बिना किसी रुकावटके दूर तक इस तरह आगे बढ़ती गयी जिस तरह मानो पानीमें ही बढ़ी जा रही हो ॥३०॥

तदनन्तर जिन्हें ऋद्धिकी प्राप्तिका निश्चय हो गया था, जो जिनशासनके स्नेही थे और नम्र मनुष्योंके लिए अत्यन्त प्रिय थे ऐसे विष्णुकुमार मुनि उसी समय विनयावनत राजा पद्मके पास जाकर उससे बोले कि हे पद्मराज! राज्य पाते ही तुमने यह क्या कार्य प्रारम्भ कर रखा? ऐसा कार्य तो रघुवंशियोंमें पृथिवीपर कभी हुआ ही नहीं ॥३१-३२॥ यदि कोई दुष्टजन तपस्वी-जनोंपर उपसर्ग करता है तो राजाको उसे दूर करना चाहिए। फिर राजासे ही इस उपसर्गकी प्रवृत्ति क्यों हो रही है? ॥३३॥ हे राजन्! जलती हुई अग्नि कितनी ही महान् क्यों न हो अन्तमें जलके द्वारा शान्त कर दी जाती है फिर यदि जलसे ही अग्नि उठने लगे तो अन्य किस पदार्थसे उसकी शान्ति हो सकती है? ॥३४॥ निश्चयसे ऐश्वर्य, आज्ञारूप फलसे सहित है अर्थात् ऐश्वर्यका फल आज्ञा है और आज्ञा दुराचारियोंका दमन करना है, यदि ईश्वर—राजा इस क्रियामें शून्य है—दुष्टोंका दमन करनेमें समर्थ नहीं है तो फिर ऐसे ईश्वरको स्थाणु—ठूँठ भी कहा है अर्थात् वह नाममात्रका ईश्वर है ॥३५॥ इसलिए पशुतुल्य बलिको इस दुष्कार्यसे शीघ्र ही दूर करो। मित्र और शत्रुओंपर समान भाव रखनेवाले मुनियोंपर इसका यह द्वेष क्या है? ॥३६॥ शीतल स्वभावके धारक साधुको सन्ताप पहुँचाना शान्तिके लिए नहीं है क्योंकि जिस प्रकार अधिक तपाया हुआ पानी विकृत होकर जला ही देता है उसी प्रकार अधिक दुःखी किया हुआ साधु विकृत होकर जला ही देता है—शाप आदिसे नष्ट ही कर देता है ॥३७॥

जो धीर-वीर हैं, जिनकी सामर्थ्य छिपी हुई है और जिन्होंने अपने शरीरको अच्छी तरह वश कर लिया है ऐसे साधु भी कदाचित् अग्निके समान दाहक हो जाते है ॥३८॥ इसलिए हे राजन् ! जबतक तुम्हारे ऊपर कोई बड़ा अनिष्ट नही आता है तबतक तुम बलिके इस कुकृत्यके प्रति की जानेवाली अपनी उपेक्षाको दूर करो। स्वयं अपने तथा आश्रित रहनेवाले अन्य जनोंके प्रति उपेक्षा न करो ॥३९॥

तदनन्तर राजा पद्मने नम्रीभूत होकर कहा कि हे नाथ ! मैंने बलिके लिए सात दिनका राज्य दे रखा है इसलिए इस विषयमें मेरा अधिकार नहीं है ॥४०॥ हे भगवन् ! आप स्वयं ही जाकर उसपर शासन करें। आपके अखण्ड चातुर्यसे बलि अवश्य ही आपकी बात स्वीकृत करेगा। राजा पद्मके ऐसा कहनेपर विष्णुकुमार मुनि बलिके पास गये ॥४१॥ और बोले कि हे भले आदमी ! आधे दिनके लिए अधर्मको बढ़ानेवाला यह निन्दित कार्य क्यों कर रहा है ? ॥४२॥ अरे ! एक तपरूप कार्यमें ही लीन रहनेवाले उन मुनियोंने तेरा क्या अनिष्ट कर दिया जिससे तूने उच्च होकर भी नीचकी तरह उनपर यह कुकृत्य किया ॥४३॥ अपने कर्मबन्धसे भीरु होनेके कारण तपस्वी मन, वचन, कायसे कभी दूसरेका अनिष्ट नहीं करते ॥४४॥ इसलिए इस तरह शान्त मुनियोंके विषयमें तुम्हारी यह दुश्चेष्टा उचित नहीं है। यदि शान्ति चाहते हो तो शीघ्र ही इस प्रमादजन्य उपसर्गका संकोच करो ॥४५॥ तदनन्तर बलिने कहा कि यदि ये मेरे राज्यसे चले जाते है तो उपसर्ग दूर हो सकता है अन्यथा उपसर्ग ज्योंका-त्यों बना रहेगा ॥४६॥ इसके उत्तरमें विष्णुकुमार मुनिने कहा कि ये सब आत्मध्यानमें लीन हैं इसलिए यहाँसे एक डग भी नहीं जा सकते। ये अपने शरीरका त्याग भले ही कर देंगे पर व्यवस्थाका उल्लंघन नहीं कर सकते ॥४७॥ उन मुनियोंके ठहरनेके लिए मुझे तीन डग भूमि देना स्वीकृत करो। अपने आपको अत्यन्त कठोर मत करो। मैंने कभी किसीसे याचना नहीं की फिर भी इन मुनियोंके ठहरनेके निमित्त तुमसे तीन डग भूमिकी याचना करता हूँ अतः मेरी बात स्वीकृत करो ॥४८॥ विष्णुकुमार मुनिकी बात स्वीकृत करते हुए बलिने कहा कि यदि ये उस सीमाके बाहर एक डगका भी उल्लंघन करेंगे तो दण्डनीय होंगे इसमें मेरा अपराध नहीं है ॥४९॥ क्योंकि लोकमें मनुष्य तभी आपत्तिसे युक्त होता है जब वह अपने वचनसे च्युत हो जाता है। अपने वचनका पालन करनेवाला मनुष्य लोकमें कभी आपत्तियुक्त नहीं होता ॥५०॥

तदनन्तर जो कपट-व्यवहार करनेमे तत्पर था, शिक्षाके अयोग्य था, कुटिल था और दुष्ट साँपके समान दुष्ट स्वभावका धारक था ऐसे उस बलिको वश करनेके लिए विष्णुकुमार मुनि उद्यत हुए ॥५१॥ 'अरे पापी ! देख, मैं तीन डग भूमिको नापता हूँ' यह कहते हुए उन्होंने अपने शरीरको इतना बड़ा बना लिया कि वह ज्योतिष्पटलको छूने लगा ॥५२॥ उन्होंने एक डग मेरुपर रखी दूसरी मानुषोत्तरपर और तीसरी अवकाश न मिलनेसे आकाशमें ही घूमती रही ॥५३॥ उस समय विष्णुके प्रभावसे तीनों लोकोंमें क्षोभ मच गया। किम्पुरुष आदि देव 'क्या है ? क्या है ?' यह शब्द करने लगे ॥५४॥

वीणा-बाँसुरी आदि बजानेवाले कोमल गीतोंके गायक गन्धर्वदेव अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उन मुनिराजके समीप मनोहर गीत गाने लगे ॥५५॥ लाल-लाल तलुएसे सहित एवं आकाशमें स्वच्छन्दतासे घूमता हुआ उनका पैर अत्यधिक सुशोभित हो रहा था और उसके नख संगीतके लिए इकट्ठी हुईं किन्नरादि देवोंकी स्त्रियोंको अपना-अपना मुख-कमल देखनेके लिए दर्पणके समान जान पड़ते थे ॥५६॥ 'हे विष्णो ! हे प्रभो ! मनके क्षोभको दूर करो, दूर करो, आपके तपके प्रभावसे आज तीनों लोक चल-विचल हो उठे हैं' इस प्रकार मधुर गीतोंके साथ

वीणा बजानेवाले देवों, धीर-वीर विद्याधरों तथा सिद्धान्त शास्त्रकी गाथाओंको गानेवाले एवं बहुत ऊँचे आकाशमें विचरण करनेवाले चारण ऋद्धिधारी मुनियोंने जब उन्हें शान्त किया तब वे धीरे-धीरे अपनी विक्रियाको संकोच कर उस तरह स्वभावस्थ हो गये—जिस तरह कि उत्पातके शान्त होनेपर सूर्य स्वभावस्थ हो जाता है—अपने मूल रूपमें आ जाता है ॥५७-५९॥ उस समय देवोंने शीघ्र ही मुनियोंका उपसर्ग दूर कर दुष्ट वलिको बाँध लिया और उसे दण्डित कर देशसे दूर कर दिया ॥६०॥ उस समय किन्नरदेव तीन वीणाएँ लाये थे उनमें घोषा नामकी वीणा तो उत्तर-श्रेणीमें रहनेवाले विद्याधरोंको दी। महाघोषा सिद्धकूटवासियोंको और सुघोषा दक्षिणतटवासी विद्याधरोंको दी ॥६१॥ इस प्रकार उपसर्ग दूर करनेसे जिनशासनके प्रति वत्सलता प्रकट करते हुए विष्णुकुमार मुनिने सीधे गुरुके पास जाकर प्रायश्चित्त द्वारा विक्रियाको शल्य छोड़ी ॥६२॥ स्वामी विष्णुकुमार, घोर तपश्चरण कर तथा घातिया कर्मोंका क्षय कर केवली हुए और विहार कर अन्तमें मोक्षको प्राप्त हुए ॥६३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य विष्णुकुमार मुनिके इस पापापहारी चरितको भक्तिपूर्वक सुनता है वह सम्यग्दर्शनकी शुद्धिको प्राप्त होता है ॥६४॥ साधु चाहे तो अतिशय विशाल मन्दराचलोंको भी स्वेच्छानुसार भयसे अपने स्थानसे विचलित कर सकता है, हथेलियोंके व्यापारसे सूर्य और चन्द्रमाको भी आकाशसे नीचे गिरा सकता है, उपद्रवोंसे युक्त लहराते हुए समुद्रोंको भी बिखेर सकता है और जो मुक्तिका पात्र नहीं है उसे भी मुक्ति प्राप्त करा सकता है, सो ठीक ही है क्योंकि जिनशासन प्रणीत तपोलक्ष्मीके धारक योगियोंके लिए क्या कठिन है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥६५॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें विष्णुकुमारका वर्णन करनेवाला बीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२०॥

□

सर्ग- २१

अथानन्तर जिन्हें उत्तमोत्तम गोष्ठियोंके सुखका स्वाद था, जो स्वयं उदार चरितके धारक थे और उदारचरितके धारक मनुष्योंके लिए अत्यन्त प्रिय थे ऐसे यदुवंशशिरोमणि वसुदेव, किसी तरह विद्याधरोंके कुलमें उत्पन्न गान्धर्वसेनाको एवं राजाओंको विभूतिको तिरस्कृत करनेवाले चारुदत्तको देखकर उनसे पूछने लगे कि—हे पूज्य ! जो अपनी तुलना नहीं रखतीं तथा जो आपके भाग्य और पुरुषार्थ दोनोंको सूचित करनेवाली है ऐसी ये सम्पदाएँ आपने किस तरह प्राप्त कीं ? कहिए कि यह प्रशंसनीय विद्याधरी, धन-धान्यसे परिपूर्ण आपके भवनमें निवास करती हुई मेरे कानोंमें अमृतकी वर्षा क्यों कर रही है ? ॥१–४॥ वसुदेवके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर चारुदत्त बहुत ही प्रसन्न हुआ और आदरके साथ कहने लगा कि हे धीर! तुमने यह ठीक पूछा है। अच्छा, ध्यानसे सुनो मैं तुम्हारे लिए अपना वृत्तान्त कहता हूँ ॥५॥

इसी चम्पापुरीमें अतिशय धनाढ्य भानुदत्त नामक वैश्यशिरोमणि रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था ॥६॥ सम्यग्दर्शनकी विशुद्धताके साथ नाना अणुव्रतोंको धारण करनेवाले सुखरूपी सागरमें निमग्न एवं पूर्ण यौवनसे सुशोभित उन दोनोंका समय सुखपूर्वक बीत रहा था ॥७॥ तदनन्तर किसी समय जब कि उन दोनोंके चित्त और नेत्रोंके लिए अमृत बरसानेवाला एवं गृहस्थोका साक्षात् फलस्वरूप, भाग्यशाली पुत्रका मुख कमल विलम्ब कर रहा था अर्थात् उन दोनोंके जब पुत्र उत्पन्न होनेमें विलम्ब दीखा तब वे दोनों मन्दिरमें पूजा कर रहे थे उसी समय चारणऋद्धिधारी मुनिके दर्शन कर उन्होंने उनसे पुत्रोत्पत्तिकी बात पूछी ॥८–९॥ पूछते ही उन मुनिराजने दोनों दम्पतियोंपर दया कर कहा कि तुम्हारे शीघ्र ही उत्तम पुत्रकी उत्पत्ति होगी ॥१०॥ और कुछ ही समय बाद उन दोनों दम्पतियोंके आनन्दको बढ़ानेवाला मैं पुत्र हुआ। मेरा चारुदत्त नाम रखा गया तथा मेरे जन्मका बड़ा उत्सव मनाया गया ॥११॥ अणुव्रतोंकी दीक्षाके साथ-साथ जिसे समस्त कलाएँ ग्रहण करायी गयी थीं ऐसा वह बालकरूपी चन्द्रमा परिवाररूपी समुद्रकी वृद्धि करने लगा। भावार्थ—वह बालक ज्यों-ज्यों कलाओंको ग्रहण करता जाता था त्यों-त्यों बन्धुजनोंका हर्षरूपी सागर वृद्धिगत होता जाता था ॥१२॥ उस समय वराह, गोमुख, हरिसिंह, तमोऽन्तक और मरुभूति ये पांच मेरे मित्र थे जो मुझे अतिशय प्रिय थे ॥१३॥ एक बार उन मित्रोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ मैं रत्नमालिनी नदी गया। वहाँ मैंने किनारेपर किसी दम्पतीका एक ऐसा स्थान देखा जिसपर पहुँचनेके लिए पैरोंके चिह्न नहीं उछले थे ॥१४॥ हम लोगोंको विद्याधर दम्पतीकी आशंका हुई इसलिए कुछ और आगे गये। वहां जाकर हम लोगोंने हरे-भरे कदली गृहमें उस विद्याधर दम्पतीकी रति-शय्या देखी ॥१५॥ रति सम्बन्धी कार्यसे जिसके फूल और पल्लव मुरझा रहे थे ऐसी उस रतिशय्यासे कुछ दूर आगे चलनेपर एक बड़ा सघन वन दिखा ॥१६॥ वहाँ एक वृक्षपर लोहकी कीलोंसे कीलित एक विद्याधर दिखाई दिया। उस विद्याधरके लाल-लाल नेत्र समीपमें पड़ी हुई ढाल और तलवारके अग्रभागमें व्यग्र थे अर्थात् वह बार-बार उन्हींकी ओर देख रहा था ॥१७॥ उसके इस संकेतसे मैंने ढालके नीचे छिपी हुई चालन, उत्कीलन और उन्मूलव्रणरोह नामक तीन दिव्य ओषधियां उठा लीं। और चालन नामक

ओषधिसे मैंने उस विद्याधरको चलाया, उत्कीलन नामक ओषधिसे उसे कीलरहित किया तथा उन्मूलनव्रणरोह नामक ओषधिसे कील निकालनेका घाव भर दिया ॥१८॥ ज्यों ही वह विद्याधर कीलरहित एवं घावरहित हुआ त्यों ही ढाल और तलवार लेकर चुपचाप आकाशमें उड़ा और उत्तर दिशाकी ओर दौड़ा ॥१९॥ जिस ओरसे रोनेका शब्द आ रहा था वह उसी ओर दौड़ता गया और शत्रुके द्वारा हरी हुई अपनी प्रियाको छुड़ा लाया। प्रियाको लाकर वह वहीं आया और बड़े आदरके साथ मुझसे बोला कि हे भद्र ! जिस प्रकार आज मुझ मरते हुएके लिए आपने प्राण दिये हैं उसी प्रकार आज्ञा दीजिए। कहिए मैं आपका क्या प्रत्युपकार करूँ ? ॥२०-२१॥

विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक शिवमन्दिर नामका नगर है। उसमें महेन्द्रविक्रम नामका सरल राजा है। उसी महेन्द्रविक्रम राजाका मैं अतिशय प्यारा अमितगति नामका पुत्र हूँ। धूमसिंह और गौरमुण्ड नामके दो विद्याधर मेरे मित्र हैं ॥२२-२३॥ किसी समय उन दोनों मित्रोंके साथ मैं ह्रीमन्त नामक पर्वतपर आया। वहाँ एक हिरण्यरोम नामका तापस रहता था। उसकी पूर्ण यौवनवती एवं शिरीषके फूलके समान सुकुमार सुकुमारिका नामकी सुन्दर कन्या थी। वह मेरे देखनेमें आयी और देखते ही साथ उसने मेरा मन हर लिया ॥२४-२५॥ मैं वहाँसे चला तो आया परन्तु उसकी प्राप्तिकी उत्कण्ठारूप शल्य मेरे मनमें बहुत गहरी लग गयी। अन्तमें पिताने मेरे लिए उस कन्याकी याचना की और शीघ्र ही दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह हो गया ॥२६॥ चूँकि मुझे दिखा कि मेरा मित्र धूमसिंह भी इस सुकुमारिकाको पानेकी अभिलाषा रखता है इसलिए मैं सदा प्रमादरहित होकर इसके साथ विहार करता हूँ ॥२७॥ परन्तु आज मैं इसके साथ रमण कर रहा था कि वह धूमसिंह मुझे कीलित कर इस सुकुमारिकाको हर ले गया। आपने मुझे छुड़ाया और मैं इसे शत्रुसे छुड़ा लाया हूँ ॥२८॥ इसलिए आज इस जनको (मुझे) इच्छित कार्यमें लगाइए। क्योंकि आप मेरे प्राणदाता हैं इसलिए अवस्थामें ज्येष्ठ होनेपर भी मैं आपकी सेवा करूँगा ॥२९॥ यद्यपि आपने मेरी शल्य निकालकर मुझे जीवित किया है तथापि यथार्थमें मेरी शल्य तभी निकलेगी जब मैं आपका प्रत्युपकार कर लूँगा ॥३०॥

इस प्रकार स्त्रीसहित मधुर वचन बोलनेवाले उस विद्याधरसे मैंने कहा कि जब आप मेरे प्रति इस तरह शुभ भाव दिखला रहे हैं तब मेरा सब काम हो चुका। कहिए शुद्ध अभिप्रायको दिखाते हुए आपने मेरा क्या नहीं किया है ? मनुष्योंको जो शुभ भावको दिखाना है वही तो उनका उपकार है ॥३१-३२॥ हे निष्पाप ! निश्चयसे मैं आज पुण्यवान् और पूज्य हुआ हूँ क्योंकि-संसारमें अन्य सामान्य मनुष्योंके लिए दुर्लभ आपका दर्शन मुझे सुलभ हुआ है ॥३३॥ मनुष्योंकी अवस्थाओंका पलटना सर्वसाधारण बात है इसलिए मैं शत्रुके द्वारा कीलित हुआ। यह सोचकर आप खिन्नचित्त न हों ॥३४॥ हे तात ! यदि आपकी मेरे प्रति उपकार करनेकी भावना ही है तो आप मुझे सदा अपना पुत्र समझिए; इस प्रकार मेरे कहनेपर उसने कहा कि बहुत ठीक है। तदनन्तर वह मेरा नाम और गोत्र पूछकर स्त्री सहित आकाशमें उड़ गया ॥३५-३६॥ और हम लोग उसी विद्याधरकी कथा करते हुए चम्पा नगरीमें प्रविष्ट हुए सो ठीक ही है क्योंकि देखी-सुनी और अनुभवमें आयी नूतन वस्तु ही मनुष्योंको सुखदायक होती है ॥३७॥

तरुण होनेपर मैंने अपने मामा सर्वार्थकी सुमित्रा स्त्रीसे उत्पन्न मित्रवती नामक कन्याके साथ विवाह किया ॥३८॥ क्योंकि मुझे शास्त्रका व्यसन अधिक था इसलिए अपनी स्त्रीके विषयमें मेरी कुछ भी रुचि नहीं थी सो ठीक ही है क्योंकि शास्त्रका व्यसन अन्य व्यसनोंका बाधक है ॥३९॥ मेरा एक रुद्रदत्त नामका काका था जो अनेक व्यसनोंमें आसक्त था तथा कामीजनोंके समस्त व्यवहारको जाननेवाला था। मेरी माताने उसे मेरे साथ लगा दिया ॥४०॥ इसी चम्पा

नगरीमें एक कलिंगसेना नामकी वेश्या थी जो समस्त वेश्याओंकी शिरोमणि थी और उसकी वसन्तसेना नामकी पुत्री थी जो शोभामें वसन्तकी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥४१॥ वह वसन्तसेना नृत्य-गीत आदि कलाओं सम्बन्धी कौशलसे सुशोभित थी, सौन्दर्यकी परम सीमा थी और यौवनकी नूतन उन्नति थी ॥४२॥ किसी एक दिन वसन्तसेनाका नृत्य प्रारम्भ होनेवाला था। उसके लिए मैं भी रुद्रदत्तके साथ साहित्यिक जनोंसे भरे हुए नृत्य-मण्डपमें बैठा था ॥४३॥ वह सूचीनृत्य करना चाहती थी। उसके लिए उसने सुइयोंके अग्रभागपर अंजलि भरकर जाति पुष्पोंकी बोंड़ियाँ बिखेर दीं और गायनके प्रभावसे जब सब बोंड़ियाँ खिल गयीं तो सभामें बैठे हुए कितने ही लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। मैं जानता था कि पुष्पोंके खिलनेसे कौन-सा राग होता है, इसलिए मैंने उसे मालाकार रागका संकेत कर दिया। सूची-नृत्यके बाद उसने अंगुष्ठ नृत्य किया तो सभाके विद्वान् उसकी प्रशंसा करने लगे। परन्तु मैंने नखमण्डलको शुद्ध करनेवाले नापित रागका संकेत कर दिया। तदनन्तर उसने गौ और मक्षिकाकी कुक्षिका अभिनय किया तो अन्य लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। परन्तु मैंने गोपाल रागका संकेत कर दिया। इस प्रकार रस और भावके विवेकको प्रकट करनेवाली उस वसन्तसेनाने प्रसन्न हो अपनी अंगुलियाँ चटकाती हुई मेरी बहुत प्रशंशा की। तदनन्तर अनुरागसे भरी हुई उक्त वेश्याने सब लोगोंके देखते-देखते मेरे सामने सुन्दर नृत्य किया ॥४४-४९॥ नृत्य समाप्त कर वह अपने घर गयी और तीव्र उत्कण्ठासे आतुर हो अपनी मातासे कहने लगी कि हे माता! इस जन्ममें मेरा चारुदत्तके सिवाय किसी दूसरेके साथ समागमका संकल्प नहीं है इसलिए मुझे शीघ्र ही चारुदत्तके साथ मिलानेके योग्य हो ॥५०-५१॥ माताने पुत्रीका अभिप्राय जानकर चारुदत्तके साथ मिलानेके लिए दान-सम्मान आदिसे सन्तुष्ट कर रुद्रदत्तको नियुक्त किया अर्थात् इस कार्यका भार उसने रुद्रदत्तके लिए सौंप दिया ॥५२॥ किसी दिन मैं रुद्रदत्तके साथ मार्गमें जा रहा था कि उसने उपाय कर मेरे आगे और पीछे दो-दो हाथियोंको लड़ा दिया और सुरक्षा पानेके लिए मुझे उस वेश्याके घर प्रविष्ट करा दिया ॥५३॥ कलिंगसेना वेश्याको इस बातका पहलेसे ही संकेत कर दिया गया। इसलिए उसने स्वागत तथा आसन आदिके द्वारा हम दोनोंका सत्कार किया ॥५४॥ तदनन्तर कलिंगसेना और रुद्रदत्तका जुआ प्रारम्भ हुआ सो कलिंगसेनाने जुआमें रुद्रदत्तका दुपट्टा तक जीत लिया। तब मैं रुद्रदत्तको हटाकर कलिंगसेनाके साथ जुआ खेलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५५॥ मुझे उद्यत देख वसन्तसेनासे भी नहीं रहा गया। इसलिए वह चतुरा अपनी माताको अलग कर मेरे साथ जुआ खेलने लगी ॥५६॥ मैं जुआ खेलनेमें चिरकाल आसक्त रहा। इसी बीच मुझे जोरकी प्यास लगी तो उसने बुद्धिको मोहित करनेवाले योगसे सुवासित ठण्डा पानी मुझे पिलाया ॥५७॥ अतिशय विश्वासके कारण जब उसपर मेरा अनुराग बढ़ गया तब उसकी माताने मुझे उसका हाथ पकड़ा दिया ॥५८॥ मैं उसमें इतना आसक्त हुआ कि उसके घर बारह वर्ष तक रहा। इस बीचमें मैंने अपने माता-पिता तथा प्रिय स्त्री मित्रवतीको भी भुला दिया। फिर अन्य कार्योंकी तो कथा ही क्या थी? ॥५९॥ वृद्धजनोंकी सेवासे पहले जो मेरे गुण वृद्धिको प्राप्त हुए थे वे तरुणीकी सेवासे उत्पन्न हुए दोषोंसे उस तरह आच्छादित हो गये जिस तरह कि दुर्जनोंसे सज्जन आच्छादित हो जाते हैं ॥६०॥ हमारे पिता सोलह करोड़ दीनारके धनी थे। सो जब सब धन क्रम-क्रमसे कलिंगसेनाके घर आ गया और अन्तमें मित्रवतीके आभूषण भी आने लगे तब यह देख मन्त्र करनेमें निपुण कलिंगसेना एक दिन एकान्तमें वसन्तसेनासे बोली कि बेटी! मैं हितकी बात कहती हूँ सो मेरे वचन कानमें धर ॥६१-६२॥ जो मनुष्य गुरुजनोंके वचनामृतरूप मन्त्रका सदा अभ्यास करता है अनर्थरूपी ग्रह सदा उससे दूर रहते हैं, कभी उसके पास नहीं आते ॥६३॥ तू हम लोगोंकी इस जघन्य वृत्तिको जानती ही है कि धनवान् मनुष्य ही हमारा प्रिय है। जिसका धन

खींच लिया है ऐसा मनुष्य ईखके छिलकेके समान छोड़ने योग्य होता है ॥६४॥ आज चारुदत्तकी भार्याने अपने शरीरका आभूषण उतारकर भेजा था सो उसे देख मैंने दयावश वापस कर दिया है ॥६५॥ इसलिए अब सारहीन (निर्धन) चारुदत्तका साथ छोड़ और नयी ईखके समान किसी दूसरे सारवान् (सधन) मनुष्यका उपभोग कर ॥६६॥

कलिंगसेनाकी बात सुनकर वसन्तसेनाको इतना तीव्र दुःख हुआ मानो उसके कानमें कीला ही ठोक दिया हो। उसने मातासे कहा कि हे मातः! तूने यह क्या कहा ? ॥६७॥ कुमारकालसे जिसे स्वीकार किया तथा चिरकाल तक जिसके साथ वास किया उस चारुदत्तको छोड़कर मुझे कुबेरसे भी क्या प्रयोजन है ? फिर दूसरे धनाढ्य मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥६८॥ अधिक क्या कहूँ चारुदत्तके साथ वियोग करानेवाले इन प्राणोंसे भी मुझे प्रयोजन नहीं है। हे मातः! यदि मेरा जीवन प्रिय है तो अब पुनः ऐसे वचन नहीं कह ॥६९॥ अरे! उसके घरसे आये हुए करोड़ों दीनारोंसे तेरा घर भर गया फिर भी तुझे उसके छोड़नेकी इच्छा हुई सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियाँ अकृतज्ञ होती हैं ॥७०॥ हे मातः! जो कलाओंका पारगामी है, अत्यन्त रूपवान् है, समीचीन धर्मको जाननेवाला है एवं अतिशय त्यागी—उदार है, उस चारुदत्तका त्याग मैं कैसे कर सकती हूँ ? ॥७१॥ इस प्रकार वसन्तसेनाको मुझमें अत्यन्त आसक्त जान कलिंगसेना उस समय तो कुछ नहीं कह सकी, उसकी हांमें हाँ मिलाती रही परन्तु मनमें हम दोनोंको वियुक्त करनेका उपाय सोचती रही ॥७२॥ हम दोनों आसनपर बैठते समय, शय्यापर सोते समय, स्नान करते समय और भोजन करते समय साथ-साथ रहते थे इसलिए उसे वियुक्त करनेका अवसर नहीं मिलता था। एक दिन उसने किसी योग (तन्त्र) द्वारा हम दोनोंको निद्रामें निमग्न कर रात्रिके समय मुझे घरसे बाहर कर दिया ॥७३॥ निद्रा दूर होनेपर मैं घर गया। मेरे पिता मुनिदीक्षा ले चुके थे इसलिए मेरी माता और स्त्री बहुत दुःखी थीं। वे बिलख-बिलखकर रोने लगीं उन्हे देख मैं भी बहुत दुःखी हुआ ॥७४॥ तदनन्तर माता और स्त्रीको धैर्य बँधाकर तथा स्त्रीके आभूषण हाथमें ले व्यापारके निमित्त मैं अपने मामाके साथ उशीरावर्त देश आया ॥७५॥ वहाँ कपास खरीदकर बेचनेके लिए मैं ताम्रलिप्त नगरकी ओर जा रहा था कि भाग्य और समयकी प्रतिकूलताके कारण वह कपास दावानलसे बीचमें ही जल गया ॥७६॥ मैंने मामाको वहीं छोड़ा और घोड़ापर सवार हो मैं पूर्व दिशाकी ओर चला परन्तु घोड़ा बीचमें ही मर गया इसलिए पैदल चलकर थका-मांदा प्रियंगुनगर पहुँचा ॥७७॥ उस समय प्रियंगुनगरमें मेरे पिताका मित्र सुरेन्द्रदत्त नामका सेठ रहता था। उसने मुझे देखकर बड़े सुखसे रखा और कुछ दिन तक मैंने वहाँ विश्राम किया ॥७८॥ वहाँसे मैं समुद्रयात्राके लिए गया सो छह बार मेरा जहाज फट गया। अन्तमें जिस किसी तरह मैं आठ करोड़का स्वामी होकर लौट रहा था कि फिर भी जहाज फट गया और सारा धन समुद्रमें डूब गया ॥७९॥ भाग्यवश एक तख्ता पाकर बड़े कष्टसे मैंने समुद्रको पार किया। समुद्र पारकर मैं राजपुर नगर आया और वहाँ एक संन्यासीको मैंने देखा ॥८०॥ मैं थका हुआ था इसलिए शान्तवेषको धारण करनेवाले उस संन्यासीने मुझे विश्राम कराया। तदनन्तर रसका लोभ देकर एवं विश्वास दिलाकर वह मुझे एक सघन अटवीमें ले गया ॥८१॥ मैं भोला-भाला था इसलिए उस संन्यासीने एक तूमड़ी देकर मुझे रस्सीके सहारे नीचे उतारा जिससे मैं रसकी तृष्णासे एक भयंकर कुएँमें जा घुसा ॥८२॥ पृथिवीके तलमें पहुँचकर रस्सीपर अपना दृढ़ आसन जमाये हुए जब मैं रस भरने लगा तब वहाँ स्थित किसी पुरुषने मुझे रोका ॥८३॥ उसने कहा कि हे भद्र! यदि तू जीवित रहना चाहता है तो इस भयंकर रसका स्पर्श मत कर। यदि किसी तरह इसका स्पर्श हो जाता है तो क्षयरोगकी तरह यह जीवित नहीं छोड़ता ॥८४॥ तदनन्तर आश्चर्यचकित हो मैंने उससे शीघ्र ही इस प्रकार पूछा कि महाशय! तुम

कौन हो ? और किसने तुम्हें यहां डाल दिया है ? मेरे यह कहनेपर वह बोला कि मैं उज्जयिनीका एक वणिक् हूँ। मेरा जहाज फट गया था इसलिए एक अपात्र साधुने रस लेकर मुझे रसरूपी राक्षसके वक्षःस्थलपर गिरा दिया है ॥८५-८६॥ रसके उपभोगसे मेरी चमड़ी तथा हड्डी ही शेष रह गयी है। हे भद्र ! मेरा तो यहाँसे निकलना तभी होगा जब मैं मर जाऊँगा जीवित रहते मेरा निकलना नहीं हो सकता ॥८७॥ उस मनुष्यने मुझसे भी पूछा कि तुम कौन हो ? तब मैंने कहा कि मैं चारुदत्त नामका वणिक् हूँ और जो तुम्हारा शत्रु था उसी संन्यासीने मुझे यहां गिराया है ॥८८॥ 'यह प्रियवादी है' इसलिए बगलेके समान मायाचारी दुष्ट मनुष्यका विश्वास कर उसके पीछे-पीछे चलनेवाला मूढ़ मनुष्य यदि नीचे-नीचे गिरता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥८९॥ अन्तमें मैंने तूमड़ीमें रस भरकर तथा रस्सीमें बाँधकर उसे चलाया। जिस रस्सीमें रसकी तूमड़ी बँधी थी उस रस्सीको तो उस संन्यासीने खींच लिया और जिसके सहारे मुझे ऊपर चढ़ना था उसे काट दिया। इस प्रकार अपने मनोरथको सिद्ध कर वह दुष्ट वहाँसे चला गया ॥९०॥ जब मैं किनारे-पर जा पड़ा तब उस सज्जन पुरुषने दयायुक्त हो मेरे लिए निकलनेका मार्ग बतलाया ॥९१॥ उसने कहा कि हे सत्पुरुष ! रस पीनेके लिए यहाँ एक गोह आवेगी सो तुम सरककर यदि शीघ्र ही उसकी पूँछ पकड़ लोगे तो निश्चय ही बाहर निकल जाओगे ॥९२॥ वह उस पुरुषका अन्तिम समय था इसलिए इस प्रकार निकलनेका मार्ग बतलानेवाले उस पुरुषके लिए मैंने सम्यग्दर्शन-पूर्वक विस्तारके साथ धर्मका उपदेश दिया और पंच नमस्कार मन्त्र भी सुनाया ॥९३॥ दूसरे दिन रस पीकर जब गोह जाने लगी तब मैंने दोनों हाथोंसे शीघ्र ही उसकी पूँछ पकड़ ली और वह मुझे बाहर खींच लायी ॥९४॥ किनारोंकी रगड़से मेरा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था इसलिए उस गोहने जब मुझे बाहर छोड़ा तब मैं अत्यन्त मूच्छित हो गया। सचेत होनेपर मैंने विचार किया कि मेरा पुनर्जन्म ही हुआ है ॥९५॥ धीरे-धीरे उठकर मैं आगे चला तो वनके बीचमें यमराजके समान भयंकर भैंसाने मेरा पीछा किया। अवसर देख मैं एक गुहामें घुस गया ॥९६॥ उस गुफामें एक अजगर सो रहा था। मेरा पैर पड़नेपर वह जाग उठा और सामने दौड़ते हुए उस भयंकर भैंसेको उसने अपने मुखसे पकड़ लिया ॥९७॥ भैंसा और अजगर दोनों ही अत्यन्त उद्धत थे इसलिए जबतक उन दोनोंमें युद्ध हुआ तबतक मैं उसकी पीठपर चढ़कर बड़ी शीघ्रतासे बाहर निकल आया ॥९८॥ उस महावनसे निकलकर मैं समीपवर्ती एक गाँवमें पहुँचा तो काकतालीय-न्यायसे (अचानक) मैंने वहाँ अपने काका रुद्रदत्तको देखा ॥९९॥ मैं कई दिनका भूखा-प्यासा था इसलिए रुद्रदत्तने मेरी भूख-प्यासकी बाधा दूर कर मुझसे कहा कि चारुदत्त ! खेद मत करो मेरे वचन सुनो ॥१००॥ हम दोनों सुवर्णद्वीप चलकर तथा बहुत भारी धन कमाकर चम्पापुरी वापस आवेंगे जिससे अपने कुलकी रक्षा होगी ॥१०१॥

तदनन्तर रुद्रदत्तके साथ एक सलाह हो जानेपर दोनों वहां से चले और ऐरावती नदीको उतरकर तथा गिरिकूट नामक पर्वत और वेत्रवनको उल्लंघकर टंकण देशमें जा पहुँचे। वहाँ मार्ग अत्यन्त विषम था इसलिए चलनेमें चतुर दो बकरा खरीदकर तथा उनपर सवार हो धीरे-धीरे आगे गये ॥१०२-१०३॥ तदनन्तर समभूमिको उल्लंघकर रुद्रदत्तने बड़े आदर के साथ मुझसे कहा कि चारुदत्त ! अब आगे मार्ग नहीं है इसलिए इन बकरोंको मारकर तथा इनकी भस्त्रा (भाथड़ी) बनाकर उनमें हम दोनों बैठ जावें। तीक्ष्ण चोंचोंवाले भारुण्ड पक्षी मांसके लोभसे हम दोनोंको उठाकर सुवर्णद्वीपमें डाल देंगे ॥१०४-१०५॥ रुद्रदत्त बड़ो दुष्ट प्रकृतिका था इसलिए मेरे रोकनेपर भी उसने अपना बकरा मार डाला और विनयसे च्युत हो मेरे बकराका भी अन्त कर दिया ॥१०६॥ मेरा बकरा जबतक मारा नहीं गया तबतक मैंने पहले उसके मारनेका पूर्ण प्रतिकार किया— रुद्रदत्तको मारनेसे रोका परन्तु जब मारा ही जाने लगा तब मैंने उसे पंचनमस्कार मन्त्र ग्रहण

करा दिया ॥१०७॥ रुद्रदत्त ने मृत बकरोंकी भाथड़ियां बनायीं और एकके भीतर छुरी देकर मुझे बैठा दिया तथा दूसरीमें वह स्वयं हाथमें छुरी लेकर बैठ गया ॥१०८॥ तदनन्तर भारुण्ड पक्षी पैनी चोंचोंसे दबाकर दोनों भस्त्राओंको आकाशमें ले गये। मेरी भाथड़ी एक काना भारुण्ड पक्षी ले गया था इसलिए उसने दूसरी जगह ले जाकर पृथिवीपर गिरा दी ॥१०९॥ मैं वेगसे उस भाथड़ीको चीरकर जब बाहर निकला तो मैंने रत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान स्वर्गके समान एक विस्तृत द्वीप देखा ॥११०॥ उस द्वीपकी सुन्दर दिशाओंको देखते हुए मैंने पर्वतके अग्रभागपर एक जिनमन्दिर देखा जो हवासे उड़ती हुई पताकाओंसे ऐसा जान पड़ता था मानो नृत्य ही कर रहा हो ॥१११॥ उसी जिनमन्दिरके समीप मैंने आतापन योगसे स्थित एक चारण ऋद्धिधारी मुनिराजको देखा। उन मुनिराजको देखकर मुझे ऐसा उत्तम सुख प्राप्त हुआ जैसा कि पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था ॥११२॥

तदनन्तर पर्वतपर चढ़कर मैंने जिनमन्दिरकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं और श्री जिनेन्द्र भगवान्‌की कृत्रिम प्रतिमाओंकी वन्दना की ॥११३॥ प्रतिमाओंकी वन्दनाके बाद मैंने ध्यानमें लीन मुनिराजकी भी मुनिभक्तिके कारण वन्दना की। जब मुनिराजका नियम समाप्त हुआ तब वे मेरे लिए आशीर्वाद देकर वहीं बैठ गये और मुझसे कहने लगे कि चारुदत्त! कुशल तो हो? यहां स्वप्नकी तरह तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? तुम एक साधारण पुरुषकी तरह हो तथा कोई तुम्हारा सहायक भी नहीं दिखाई देता ॥११४–११५॥ 'हे नाथ! आपके प्रसादसे कुशल है' यह कहकर मैंने उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर आश्चर्यसे चकित होते हुए मैंने उन उत्तम मुनिराजसे पूछा कि हे नाथ! आपको मेरी पहचान कैसे हुई? हे माननीयोंके माननीय! मैं तो आपके इस पवित्र दर्शनको अपूर्व ही मानता हूँ ॥११६–११७॥ इस प्रकार पूछनेपर मुनिराजने कहा कि मैं वही अमितगति नामका विद्याधर हूँ जिसे चम्पापुरीमें उस समय शत्रुने कील दिया था और तुमने जिसे छुड़ाया था ॥११८॥ उस घटनाने मेरे हृदयमें सम्यग्दर्शनका भाव भर दिया था। कुछ समय बाद हमारे पिताने विशाल राज्यपर मुझे बैठाकर हिरण्यकुम्भ नामक गुरुके पास दीक्षा ले ली ॥११९॥ मेरी विजयसेना और मनोरमा नामकी दो स्त्रियां थीं उनमें पहली विजयसेनाके गान्धर्वसेना नामकी पुत्री हुई और दूसरी मनोरमाके सिंहयश नामका बड़ा और वाराहग्रीव नामका छोटा इस प्रकार दो पुत्र हुए। ये दोनों ही पुत्र विनय आदि गुणोंकी खान थे ॥१२०–१२१॥ एक दिन मैंने क्रमसे बड़े पुत्रको राज्यपर और छोटे पुत्रको युवराज पदपर आरूढ़ कर अपने पितारूप गुरुके समीप ही दीक्षा धारण कर ली ॥१२२॥ हे चारुदत्त! यह समुद्रसे घिरा हुआ कुम्भकण्टक नामका द्वीप है और यह कर्कोटक नामका पर्वत है यहाँ तुम कैसे आये? ॥१२३॥ मुनिराजके ऐसा कहनेपर मैंने आदिसे लेकर अन्त तक सुख-दुःखसे मिली हुई अपनी समस्त कथा जिस-किसी तरह उनके लिए कह सुनायी ॥१२४॥ उसी समय मुनिराजके दोनों उत्तम विद्याधर पुत्रोंने आकाशसे नीचे उतरकर उन वन्दनीय मुनिराजकी वन्दना की—उन्हें नमस्कार किया ॥१२५॥ मुनिराजने दोनों पुत्रोंको सम्बोधते हुए कहा कि हे कुमारो! जिसका पहले मैंने कथन किया था यह वही तुम्हारा भाई चारुदत्त है। मुनिराजके ऐसा कहनेपर दोनों विद्याधर मेरा आलिंगन कर प्रिय वचन कहते हुए समीप ही बैठ गये ॥१२६॥ उसी समय दो देव विमानके अग्रभागसे उतरकर पहले मुझे और बादमें मुनिराजको नमस्कार कर मेरे आगे बैठ गये ॥१२७॥ विद्याधरोंने उस समय इस अक्रमका कारण पूछा कि हे देवो! तुम दोनोंने मुनिराजको छोड़कर श्रावकको पहले नमस्कार क्यों किया? ॥१२८॥ देवोंने इसका कारण कहा कि इस चारुदत्तने हम दोनोंको जिनधर्मका उपदेश दिया है इसलिए यह हमारा साक्षात् गुरु है यह समझिए ॥१२९॥ यह कैसे? इस प्रकार कहनेपर जो पहले बकराका जीव था वह देव बोला कि हे विद्याधरो! सुनिए, मैं अपनी कथा स्पष्ट

कहता हूँ ॥१३०॥

किसी समय बनारसमें पुराणोंके अर्थ, वेद तथा व्याकरणके रहस्यको जाननेवाला एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था उसकी ब्राह्मणीका नाम सोमिला था ॥१३१॥ उन दोनोंके भद्रा और सुलसा नामकी दो यौवनवती पुत्रियाँ थीं। जो वेद, व्याकरण आदि शास्त्रोंकी परम पार-गामिनी थीं ॥१३२॥ उन दोनों पुत्रियोंने कुमारी अवस्थामे ही वैराग्यवश परिव्राजककी दीक्षा ले ली और दोनों शास्त्रार्थमें अनेक वादियोंको जीतकर पृथिवीमें परम प्रसिद्धिको प्राप्त हुईं ॥१३३॥ किसी समय पृथिवीपर घूमता हुआ याज्ञवल्क्य नामका परिव्राजक उन्हें जीतनेकी इच्छासे बनारस आया ॥१३४॥ शास्त्रार्थके समय अहंकारसे भरी सुलसाने सभाके बीच यह प्रतिज्ञा की कि जो मुझे शास्त्रार्थमें जीतेगा मैं उसीकी सेविका (स्त्री) बन जाऊँगी ॥१३५॥ शास्त्रार्थ शुरू होनेपर सुलसाने न्याय विद्याके जानकार विद्वानोंके आगे पूर्व पक्ष रखा परन्तु याज्ञवल्क्यने उसे दूषित कर अपना पक्ष स्थापित कर दिया ॥१३६॥ सुलसा शास्त्रार्थमें हार गयी इसलिए उसने याज्ञवल्क्यको वर लिया—अपना पति बना लिया। याज्ञवल्क्य विषयरूपी मांसका बड़ा लोभी था तथा सुलसाको भी कामेच्छा जागृत हो उठी इसलिए दोनों मनमानी क्रीड़ा करने लगे ॥१३७॥ सुलसा और याज्ञवल्क्यने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया परन्तु वे इतने निर्दयी निकले कि उस सद्योजात पुत्रको पीपलके वृक्षके नीचे रखकर कहीं चले गये ॥१३८॥ वह पुत्र पीपलके नीचे चित्त पड़ा था तथा मुखमें पड़े हुए पीपलके फलको खा रहा था। सुलसाकी बड़ी बहन भद्रा उसे इस दशामें देख उठा लायी और उसका पिप्पलाद नाम रखकर उसका पोषण करने लगी ॥१३९॥ समय पाकर पिप्पलाद समस्त शास्त्रोंका पारगामी हो गया। एक दिन उसने भद्रासे पूछा कि मातः! मेरे पिताका क्या नाम है? वे जीवित हैं या नहीं? ॥१४०॥ भद्राने कहा कि बेटा! याज्ञवल्क्य तेरा पिता है। उसने मेरी छोटी बहन सुलसाको शास्त्रार्थमें जीत लिया था वही तेरी माता है ॥१४१॥ हे बेटा! जब तू पैदा ही हुआ था तथा कोई तेरा रक्षक नहीं था तब तुझे एक वृक्षके नीचे छोड़कर वे दोनों दयाहीन पापी चले गये थे और आज तक जीवित हैं ॥१४२॥ मैंने दूसरी स्त्रीके स्तन पिला-पिलाकर तुझे बड़े क्लेशसे बड़ा किया है। हे पुत्र! तूने पहले ऐसा ही कर्म किया होगा यह ठीक है परन्तु कहना पड़ेगा कि तेरे माता-पिता बड़े कामी निकले ॥१४३॥ उस समय कानोंमें दाह उत्पन्न करनेवाले भद्राके पूर्वोक्त वचन सुनकर विद्वान् पिप्पलादको बड़ा क्रोध आया और उसकी बात सुनकर उसके कान खड़े हो गये ॥१४४॥ पता चलाकर वह अपने पिता याज्ञवल्क्यके पास गया और रोषपूर्वक उसे शास्त्रार्थमें जीतकर झूठ-मूठकी विनय दिखाता हुआ माता-पिताकी सेवा करने लगा ॥१४५॥ पिप्पलाद माता-पिताके प्रति क्रोधसे भरा था इस-लिए उसने मातृ-पितृ सेवा नामका एक यज्ञ स्वयं चलाया और उसे कराकर दोनोंको मृत्युके अधीन कर दिया ॥१४६॥ मैं उसी पिप्पलादका वाग्वलि नामका शिष्य था। उससे शास्त्र पढ़कर मैं जड़—विवेकहीन हो गया था और उसीके मतका समर्थन कर घोर वेदनाओंसे भरे नरकमें उत्पन्न हुआ ॥१४७॥ नरकसे निकलकर मैं छह बार बकराका बच्चा हुआ और छहों बार यज्ञ विद्याके जाननेवाले लोगोंने मुझे पर्वत द्वारा दिखाये हुए यज्ञमें होम दिया ॥१४८॥ सातवीं बार भी मैं प्राणिघातसे उत्पन्न हुए अपने पापोंसे प्रेरित हो टंकणक देशमें बकरा ही हुआ ॥१४९॥ उस समय दयालु चारुदत्तने मुझे पापरहित जैनधर्म दिखलाया तथा मरणकालमें पंच नमस्कार मन्त्र दिया ॥१५०॥ जिनधर्मके प्रभावसे मैं सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुआ हूँ। इस प्रकार चारुदत्त मेरा साक्षात् गुरु है और इसीलिए मैंने उसे पहले नमस्कार किया है ॥१५१॥ यह कहकर जब वह देव चुप हो गया तब दूसरा देव बोला कि मुनिए चारुदत्त जिस तरह मेरा धर्मोपदेशक है वह मैं कहता हूँ ॥१५२॥

मैं पहले वणिक् था। एक परिव्राजकने मुझे रसकूपमें गिरा दिया। पीछे चलकर उसी परिव्राजकने चारुदत्तको भी उसी रसकूपमें गिरा दिया। मेरी दशा मरणासन्न थी इसलिए चारुदत्तने यहाँ दयायुक्त होकर मुझे समीचीन धर्मका उपदेश दिया ॥१५३॥ चारुदत्तके द्वारा बताये हुए उस समीचीन धर्मको ग्रहण कर मैं मरा और मरकर सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुआ। इस तरह चारुदत्त मेरा साक्षात् गुरु है और इसीलिए मैंने उसे पहले नमस्कार किया है ॥१५४॥ जो पापरूपी कुएँमें डूबे हुए मनुष्योंके लिए धर्मरूपी हाथका सहारा देता है तथा संसार-सागरसे पार करनेवाला है उस मनुष्यके समान संसारमें मनुष्योंके बीच दूसरा कौन है ? ॥१५५॥ एक अक्षर, आधे पद अथवा एक पदको भी देनेवाले गुरुको जो भूल जाता है वह भी जब पापी है तब धर्मोपदेशके दाताको भूल जानेवाले मनुष्यका तो कहना ही क्या है ? ॥१५६॥ जिसका पहले उपकार किया गया है ऐसे उपकार्य मनुष्यकी कृतकृत्यता प्रत्युपकारसे ही होती है अन्य प्रकारसे नहीं, ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं ॥१५७॥ प्रत्युपकारकी शक्तिका अभाव होनेपर जो अहंकार-रहित होता हुआ अपने उपकारीके प्रति अपना शुभ अभिप्राय नहीं दिखलाता है वह कुलीन कैसे हो सकता है ? भावार्थ—प्रथम पक्ष तो यही है कि अपना उपकार करनेवाले मनुष्यका अवसर आनेपर प्रत्युपकार किया जावे। यदि कदाचित् प्रत्युपकार करनेकी सामर्थ्य न हो तो उपकर्ताके प्रति नम्रताका भाव अवश्य ही दिखलाना उचित है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर उन दोनों देवोंने उस समय मुनिराज तथा विद्याधरोंके समीप देव-देवियों तथा विमान आदिके द्वारा अपनी बड़ी भारी ऋद्धि दिखलाकर अग्निमें शुद्ध किये हुए वस्त्र, आभूषण, माला, विलेपन आदिसे मेरा बहुत सत्कार किया तथा उत्तमोत्तम आभूषणोंसे विभूषित कर मुझसे कहा कि हे स्वामिन् ! जो भी कार्य करने योग्य हो उसके लिए आप आज्ञा दीजिए। क्या आज शीघ्र ही आपको बहुत भारी धन-सम्पदाके साथ चम्पापुरी भेज दिया जाये ? ॥१५९–१६१॥ इसके उत्तरमें मैंने कहा कि इस समय आप अपने-अपने स्थानपर जाइए। जब मैं आपका स्मरण करूँ तब पुनः आइए ॥१६२॥ देवोंने 'जो आज्ञा' यह कहकर मुझे तथा मुनिराजको हाथ जोड़कर नमस्कार किया एवं मुझसे तथा मुनिराजसे पूछकर वे अपने स्वर्ग चले गये ॥१६३॥ देवोंके चले जानेपर मैंने भी मुनिराज को नमस्कार किया और विद्याधरोंके साथ विमानपर बैठकर उनके शिवमन्दिर नगरमें प्रवेश किया ॥१६४॥ शिवमन्दिर नगर स्वर्गके समान जान पड़ता था। मैं उसमें सुखसे रहने लगा। अनेक विद्याधर मेरी सेवा करते थे। वहाँ रहते हुए मुझे ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरे ही जन्मको प्राप्त हुआ हूँ। वहाँ प्रत्येक मनुष्यसे मेरा यश सुनाई पड़ता था ॥१६५॥

एक दिन वे दोनों कुमार अपनी माताके साथ मेरे पास आये तथा मेरे लिए कुमारी गान्धर्वसेनाको दिखाकर मेरे साथ इस प्रकार सलाह करने लगे ॥१६६॥ उन्होंने कहा कि हे चारुदत्त ! सुनो, एक समय लक्ष्मीसे सुशोभित राजा अमितगतिने अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा था कि आपके दिव्यज्ञानमें हमारी पुत्री गान्धर्वसेनाका स्वामी कौन दिखाई देता है ? ॥१६७॥ मुनिराजने कहा था कि चारुदत्तके घर गान्धर्व विद्याका पण्डित यदुवंशी राजा आवेगा वही इस कन्याको गन्धर्वविद्यामें जीतेगा तथा वही इसका पति होगा ॥१६८॥ मुनिराजके वचन सुनकर राजाने उस समय इस कार्यका निश्चय कर लिया था। यद्यपि राजा अमितगति इस समय दीक्षा लेकर मुनि हो गये हैं तथापि उस समय उन्होंने इसका पूर्ण भार आपके ही ऊपर रखनेका निश्चय किया था इसलिए हम लोगोंको आप ही प्रमाणभूत हैं ॥१६९॥ इसके उत्तरमें भाग्यवश प्राप्त हुए इस भाईके कार्यको मैंने स्वीकृत कर लिया। तदनन्तर धाय आदि परिवारके साथ यह कन्या मेरे लिए सौंप दी गयी ॥१७०॥ नाना रत्न तथा सुवर्णादि सम्पदासे युक्त कन्याके दोनों भाई विद्या-उतर गया हो, पर्वतके अलंघ्य तटपर भी विचरण करने लगा हो और दूसरे द्वीपमें भी जा पहुँचा

का कार्य करनेके लिए उद्यत दोनों मित्र देवोंका मैंने स्मरण किया और स्मरणके बाद ही वे दोनों देव निधियाँ हाथमें लिये हुए मेरे पास आ पहुँचे ॥१७२॥ वे देव, गान्धर्वसेनाके साथ मुझे सुन्दर हंस विमानमें बैठाकर आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली सम्पदा सहित चम्पानगरी ले आये। यहाँ आकर अक्षय निधियोंके द्वारा उन्होंने मेरी सब व्यवस्था की। तदनन्तर नमस्कार कर देव स्वर्ग चले गये और दोनों विद्याधर अपने स्थानपर गये ॥१७३–१७४॥ मैं मामा, माता, पत्नी तथा अन्य बन्धुवर्ग-से बड़े आदरसे मिला, सबको बड़ा सन्तोष हुआ और मैं भी बहुत सुखी हुआ ॥१७५॥ 'वसन्तसेना वेश्या, अपनी मांके घरसे आकर सासकी सेवा करती रही है तथा अणुव्रतोंसे विभूषित हो गयी है' यह सुनकर मैंने बड़ी प्रसन्नतासे उसे स्वीकृत कर लिया—अपना बना लिया ॥१७६॥ मैंने दीन तथा अनाथ मनुष्योंको सन्तुष्ट करनेवाला किमिच्छक दान दिया और समस्त कुटुम्बी जनोंके लिए भी उनकी इच्छानुसार वस्तुएँ दीं ॥१७७॥ इस प्रकार हे यादव! विद्याधर कुमारीका मेरे साथ जो सम्बन्ध है तथा इस विभवकी जो मुझे प्राप्ति हुई है वह सब मैंने आपसे कहा है ॥१७८॥

हे यदुनन्दन! जिनके लिए यह कन्या रखी गयी थी इस भाग्यशालिनी कन्याने उन्हीं—तुमको प्राप्त किया है इसलिए कहना पड़ता है कि आपने मुझे कृतकृत्य किया है ॥१७९॥ तपस्वियोंने बताया है कि मेरा मोक्ष निकट है और तप धारण करनेसे इस भवके बाद मुझे स्वर्ग प्राप्त होगा इसलिए अब मैं निश्चिन्त होकर तपके लिए ही यत्न करूँगा ॥१८०॥ इस प्रकार वसुदेव, गान्धर्व-सेनाका आदिसे लेकर अन्त तक सम्बन्ध तथा चारुदत्तका उत्साह सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुए और चारुदत्तकी इस तरह स्तुति करने लगे कि अहो! आपकी चेष्टा अत्यधिक उदारतासे सहित है, अहो! आपका असाधारण पुण्यबल भी प्रशंसनीय है। बिना भाग्यबलके ऐसा पौरुष होना कठिन है और बिना भाग्यबलके साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है देव तथा विद्याधर भी ऐसे विभवको प्राप्त नहीं हो सकते ॥१८१–१८३॥

इस प्रकार चारुदत्तका वृत्तान्त सुनकर वसुदेवने उसके लिए गान्धर्वसेना आदिकी प्राप्ति-पर्यन्त अपना भी समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥१८४॥

इस प्रकार आपसमें एक दूसरेके स्वरूपको जाननेवाले रूप तथा विज्ञानके सागर और त्रिवर्गके अनुभवसे प्रसन्न चारुदत्त आदि सुखसे रहने लगे ॥१८५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! धर्मात्मा मनुष्य भले ही अत्यन्त निर्धन हो गया हो, समुद्रमें भी गिर गया हो, कुएँमें भी उतर गया हो, पर्वतके अलंघ्य तटपर भी विचरण करने लगा हो और दूसरे द्वीपमें भी जा पहुँचा हो तो भी पाप नष्ट हो जानेसे सम्पूर्ण लक्ष्मीको प्राप्त होता है इसलिए हे विद्वज्जनो! जिनेन्द्रदेवके द्वारा प्रतिपादित धर्मरूपी चिन्तामणि रत्नका संचय करो ॥१८६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें चारुदत्तके चरित्रका वर्णन करनेवाला इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२१॥

□

सर्ग- २२

अथानन्तर कुमार वसुदेव चम्पापुरीमें गान्धर्वसेनाके साथ क्रीड़ा करते हुए रहते थे कि उसी समय फाल्गुन मासकी अष्टाह्निकाओंका महोत्सव आ पहुँचा ॥१॥ वन्दनाके प्रेमी एवं हृदयमें आनन्दको धारण करनेवाले देव नन्दीश्वर द्वीपको तथा विद्याधर सुमेरु पर्वत आदि स्थानोंपर जाने लगे ।।२।। भगवान् वासुपूज्यके गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण इन पांच कल्याणकोंके होनेसे पूज्य एवं देदीप्यमान गृहसे सुशोभित चम्पापुरीमें भी देव और विद्याधर आये ॥३॥ उस समय श्री जिनेन्द्र भगवान्की पूजाका उत्सव करनेके लिए भूमिगोचरी और विद्याधर राजा अपनी स्त्री तथा पुत्र आदिके साथ सर्व ओरसे वहाँ आये थे ॥४॥ चम्पापुरीके रहनेवाले सब लोग भी राजाको साथ ले श्री वासुपूज्य स्वामीकी प्रतिमाको पूजनेके लिए नगरसे बाहर गये ॥५॥ उस समय नाना प्रकारके आभूषणोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ नगरसे बाहर जा रही थीं । उनमें कितनी ही हाथी-पर बैठकर तथा कितनी ही घोड़े एवं बैल आदिपर बैठकर जा रही थीं ॥६॥ कुमार वसुदेव भी गान्धर्वसेनाके साथ घोड़ोंके रथपर आरूढ़ हो श्रीजिनेन्द्र देवकी पूजा करनेके लिए सामग्री साथ लेकर नगरीसे बाहर निकले ॥७॥ अनेक योद्धाओंके मध्यमें जाते हुए कुमार वसुदेवने वहाँ जिनमन्दिरके आगे मातंगकन्याके वेषमें नृत्य करती हुई एक कन्याको देखा ॥८॥ वह कन्या नील कमल दलके समान श्याम थी, गोल एवं उठे हुए स्तनोंसे युक्त थी तथा बिजलीके समान चमकते हुए आभूषणोंसे सहित थी इसलिए हरी-भरी, ऊँचे मेघोंसे युक्त एवं चमकती हुई बिजली-से युक्त वर्षा ऋतुकी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥९॥ अथवा उसके ओठ बन्धूकके पुष्पके समान लाल थे, उसके हाथ-पैर उत्तम कमलके समान थे और नेत्र सफेद कमलके समान थे, इसलिए वह साक्षात् मूर्तिमती शरद् ऋतुकी लक्ष्मीके समान दिखाई देती थी ॥१०॥ अथवा वह रूपवती कन्या जिनेन्द्र भगवान्की भक्तिसे स्वयं नृत्य करती हुई श्री, धृति, बुद्धि, लक्ष्मी एवं सरस्वती देवीके समान जान पड़ती थी ॥११॥ नृत्यकी रंगभूमिमें गानेवाले अपने परिकरके साथ स्थित थे। मृदंग, पणव, दर्दुर, झाँझ, विपंची और वीणा बजानेवाले वादक तथा उत्तम नृत्य करनेवाले कुनुप उत्तम, मध्यम और जघन्य प्रकृतिके साथ युक्त थे। इनमें जो अच्छेसे-अच्छे प्रयोग दिखलानेवाले थे वे यथास्थान अलातचक्रके समान—व्यवधानरहित गायन-वादन और नर्तनके प्रयोग दिखला रहे थे ॥१२-१४॥ इस प्रकार रस, अभिनय और भावोंको प्रकट करने-वाली उस नर्तकीको प्रिया गान्धर्वसेनाके साथ रथपर बैठे हुए कुमार वसुदेवने देखा ॥१५॥ देखते ही उस नर्तकीने कुमारको और कुमारने उस नर्तकीको अपने-अपने रूप तथा विज्ञानरूपी पाशसे शीघ्र ही बाँध लिया। उस समय वे दोनों ही आपसमें बन्धव्य और बन्धक दशाको प्राप्त हुए थे अर्थात् एक-दूसरेको अनुरागरूपी पाशमें बांध रहे थे ॥१६॥ यह देख गान्धर्वसेनाने अपने नेत्र ईर्ष्यासे संकुचित कर लिये सो ठीक ही है क्योंकि विरोधीका सन्निधान नेत्र संकोचका कारण होता ही है ॥१७॥ 'यहाँ अधिक ठहरना हानिकर एवं भयको उत्पन्न करनेवाला है' ऐसा मानती हुई गान्धर्वसेनाने सारथीसे कहा कि हे सारथे! तुम इस स्थानसे शीघ्र ही रथ ले चलो क्योंकि

शक्कर भी अधिक खानेसे दूसरा रस नहीं देती ॥१८–१९॥ गान्धर्वसेनाके ऐसा कहनेपर सारथीने रथको वेगसे बढ़ाया और सब जिनमन्दिर जा पहुँचे। वहाँ रथको खड़ा कर वसुदेव और गान्धर्वसेनाने मन्दिरमें प्रवेश किया, तीन प्रदक्षिणाएँ दीं और दूध, इक्षुरसकी धारा, घी, दही तथा जल आदिके द्वारा मनुष्य, सुर एवं असुरोंके द्वारा पूजित जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाका अभिषेक किया ॥२०–२१॥ दोनों ही पूजाकी विधिमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने हरिचन्दनकी गन्ध, धानके सुगन्धित एवं अखण्ड चावल, नाना प्रकारके उत्तमोत्तम पुष्प, कालागुरु, चन्दनसे निर्मित उत्तम धूप, देदीप्यमान शिखाओंसे युक्त दीपक और निर्दोष नैवेद्यसे जिन-प्रतिमाकी पूजा की ॥२२–२३॥ पूजाके बाद वे सामायिकके लिए उद्यत हुए सो प्रथम ही दोनों पैर बराबर कर जिनप्रतिमाके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तदनन्तर ईर्यापथ दण्डकका मन्द स्वर से उच्चारण कर कायोत्सर्ग करने लगे। कायोत्सर्गके द्वारा उन्होंने ईर्यापथ शुद्धि की। तत्पश्चात् जिनेन्द्र प्रदर्शित मार्गमें अतिशय निपुणता रखनेवाले दोनों, नमस्कार करनेके लिए जमीनपर पड़ गये, फिर उठकर खड़े हुए। पंच नमस्कार मन्त्रके पाठसे अपने-आपको उन्होंने पवित्र किया, अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवलिप्रज्ञप्त धर्म ये चार ही संसारमें उत्तम पदार्थ हैं, चार ही मंगल हैं और इन चारोंकी शरणमें हम जाते हैं इस प्रकार उच्चारण किया। 'अढ़ाई द्वीपके एक सौ सत्तर धर्मक्षेत्रोंमें जो तीर्थंकर आदि पहले थे, वर्तमानमें हैं और आगे होंगे उन सबके लिए हमारा नमस्कार हो' यह कहकर उन्होंने निम्नांकित नियम ग्रहण किया कि हम जबतक सामायिक करते हैं तबतकके लिए समस्त सावद्य योग और शरीरका त्याग करते हैं—यह नियम लेकर उन्होंने शरीरसे ममत्व छोड़ दिया और शत्रु-मित्र, सुख-दुःख, जीवन-मरण तथा लाभ-अलाभमें मेरे समता भाव हो ऐसा मनमें विचार किया। तदनन्तर सात श्वासोच्छ्वास प्रमाण खड़े रहकर उन्होंने शिरोनति की और उसके बाद चौबीस तीर्थंकरोंके सुन्दर स्तोत्रका उच्चारण किया ॥२४–३०॥ चौबीस तीर्थंकरोंका स्तोत्र इस प्रकार था—

हे ऋषभदेव ! तुम्हें नमस्कार हो, हे अजितनाथ ! तुम्हें नमस्कार हो, हे शम्भवनाथ ! तुम्हें निरन्तर नमस्कार हो, हे अभिनन्दन नाथ ! तुम्हें नमस्कार हो ॥३१॥ हे सुमतिनाथ ! तुम्हें नमस्कार हो, हे पद्मप्रभ ! तुम्हें नमस्कार हो, हे जगत्के स्वामी सुपार्श्वनाथ ! तुम्हें नमस्कार हो, हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! तुम्हें नमस्कार हो ॥३२॥ हे पुष्पदन्त ! तुम्हें नमस्कार हो, हे शीतलनाथ ! आप रक्षा करनेवाले हैं अतः आपको नमस्कार हो, हे श्रेयांसनाथ ! आप अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीके स्वामी हैं तथा आश्रित प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥३३॥ जिनका चम्पापुरीमें यह अचल महोत्सव मनाया जा रहा है तथा जो तीनों जगत्में पूज्य हैं ऐसे वासुपूज्य भगवान्के लिए नमस्कार हो ॥३४॥ हे विमलनाथ ! आपको नमस्कार हो, हे अनन्तनाथ ! आपको नमस्कार हो, हे धर्मजिनेन्द्र ! आपको नमस्कार हो, हे शान्तिके करनेवाले शान्तिनाथ ! आपको नमस्कार हो ॥३५॥ हे कुन्थुनाथ ! आपको नमस्कार हो, हे अरनाथ ! आपको नमस्कार हो, हे मल्लिनाथ ! आप शल्योंको नष्ट करनेके लिए मल्लके समान हैं अतः आपको नमस्कार हो, हे मुनिसुव्रतनाथ ! आपको नमस्कार हो ॥३६॥ जिन्हें तीन लोकके स्वामी सदा नमस्कार करते हैं और इस समय भरत क्षेत्रमें जिनका तीर्थ चल रहा है उन नमिनाथ भगवान्के लिए नमस्कार हो ॥३७॥ जो आगे तीर्थंकर होनेवाले हैं तथा जो हरिवंशरूपी महान् आकाशमें चन्द्रमाके समान सुशोभित होंगे उन अरिष्टनेमिको नमस्कार हो ॥३८॥ श्रीपार्श्वजिनेन्द्रके लिए नमस्कार हो, श्रीवर्धमान स्वामीको नमस्कार हो, समस्त तीर्थकरोंके गणधरोंको नमस्कार हो, श्रीअरहन्त भगवान्के त्रिलोकवर्ती कृत्रिम अकृत्रिम मन्दिरों तथा प्रतिबिम्बोंके लिए नमस्कार हो ॥३९–४०॥ इस प्रकार स्तवन कर भक्तिके कारण जिनके शरीरमें रोमांच उठ रहे थे ऐसे कुमार

वसुदेव तथा गान्धर्वसेनाने मस्तक, घुटने तथा हाथोंसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए प्रणाम किया ॥४१॥ तदनन्तर पहलेके समान खड़े होकर कायोत्सर्ग किया और पुण्यवर्धक पंच नमस्कार मन्त्रका उच्चारण किया ॥४२॥ पंच नमस्कार मन्त्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि अरहन्तोंको सदा नमस्कार हो, समस्त सिद्धोंको नमस्कार हो, और समस्त पृथिवीमें जो आचार्य, उपाध्याय तथा साधु हैं उन सबके लिए नमस्कार हो ॥४३॥ अन्तमें जिन-मन्दिरकी प्रदक्षिणा देकर सुन्दर शरीरके धारक दोनों दम्पति रथपर सवार हो बड़े वैभवके साथ चम्पापुरीमें प्रविष्ट हुए ॥४४॥ नृत्य-कारिणीको देखते समय कुमार वसुदेवके नेत्रोंमें जो विकार हुआ था वह गान्धर्वसेनाकी दृष्टिमें आ गया था इसलिए वह उनसे मान करने लगी थी परन्तु कुमारने प्रणाम कर उसे वश कर लिया॥४५॥ सो ठीक ही है क्योंकि सपत्नीके देखनेमें आसक्ति होनेसे पतिके सापराध होनेपर भी हाथ जोड़कर किया हुआ नमस्कार स्त्रियोंके मानको दूर कर देता है ॥४६॥

अथानन्तर किसी समय कुमार वसुदेव महलके एकान्त स्थानमें अच्छी तरह बैठे थे कि उस नृत्य करनेवाली कन्याके द्वारा भेजी हुई एक वृद्धा विद्याधरी उनके पास आयी। वह वृद्धा त्रिपुण्डाकार तिलकसे सुशोभित थी, कुमार वसुदेवके चित्तको हरनेवाली थी, और मूर्तिमती वार्धक्य विद्याके समान जान पड़ती थी। उसने आते ही कुमारको आशीर्वाद दिया और सामनेके आसनपर बैठकर कुमारसे इस प्रकार कहना शुरू किया ॥४७–४८॥ हे वीर! यद्यपि आपके हृदयमें शुद्ध दर्पणतलके समान पुराणोंका विस्तार प्रतिभासित हो रहा है तथापि मैं विद्याधरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली एक बात आपसे कहती हूँ और यह उचित भी है क्योंकि ओषधियोंका नाथ—चन्द्रमा अपनी किरणोंसे जिसका स्पर्श कर चुकता है क्या सामान्य ओषधि उसका स्पर्श नहीं कर सकती? अर्थात् अवश्य कर सकती है? भावार्थ—बड़े पुरुष जिस वस्तुको जानते हैं उसे छोटे पुरुष भी जान सकते हैं ॥४९–५०॥ जिस समय जगत्‌को आजीविकाका उपाय बतलाने वाले, युगके आदिपुरुष भगवान् वृषभदेव भरतेश्वरके लिए राज्य देकर दीक्षित हुए थे उस समय उनके साथ उग्रवंशीय, भोजवंशीय आदि चार हजार क्षत्रिय राजा भी तपमें स्थित हुए थे परन्तु पीछे चलकर वे परीषहोंसे भ्रष्ट हो गये। उन भ्रष्ट राजाओंमें नमि और विनमि ये दो भाई भी थे। ये दोनों राज्यकी इच्छा रखते थे इसलिए भगवान्‌के चरणोंमें लगकर वहीं बैठ गये ॥५१–५३॥ उसी समय रक्षा करनेमें निपुण जिन-भक्त धरणेन्द्रने अनेक धरणों—देवविशेषों और दिति तथा अदिति नामक अपनी देवियोंके साथ आकर नमि, विनमिको आश्वासन दिया और अपनी देवियोंसे उस महात्माने वहीं जिनेन्द्र भगवान्‌के समीप उन दोनोंके लिए विद्याकोश—विद्याका भाण्डार दिलाया ॥५४–५५॥ अदिति देवीने उन्हें विद्याओंके आठ निकाय दिये तथा गान्धर्वसेनक नामका विद्याकोश बतलाया ॥५६॥ विद्याओंके आठ निकाय इस प्रकार थे—१ मनु, २ मानव, ३ कौशिक, ४ गौरिक, ५ गान्धार, ६ भूमितुण्ड, ७ मूलवीर्यक और ८ शंकुक। ये निकाय आर्य, आदित्य, गन्धर्व तथा व्योमचर भी कहलाते हैं ॥५७–५८॥ धरणेन्द्रकी दूसरी देवी दितिने भी उन्हें १ मातंग, २ पाण्डुक, ३ काल, ४ स्वपाक, ५ पर्वत, ६ वंशालय, ७ पांशुमूल और ८ वृक्षमूल ये आठ निकाय दिये। ये निकाय दैत्य, पन्नग और मातंग नामसे कहे जाते हैं ॥५९–६०॥ इन सोलह निकायोंकी नीचे लिखी विद्याएँ कही गयी हैं जो समस्त विद्याओंमें प्रधानताको प्राप्त कर स्थित हैं ॥६१॥ प्रज्ञप्ति, रोहिणी, अंगारिणी, महागौरी, गौरी, सर्वविद्याप्रकर्षिणी, महाश्वेता, मायूरी, हारी, निर्वज्ञशाड्वला, तिरस्कारिणी, छायासंक्रामिणी, कूष्माण्ड गणमाता, सर्वविद्या-विराजिता, आर्य कूष्माण्डदेवी, अच्युता, आर्यवती, गान्धारी, निर्वृति, दण्डाध्यक्षगण, दण्डभूत-सहस्रक, भद्रकाली, महाकाली, काली और कालमुखी—इन्हें आदि लेकर विद्याधर राजाओंकी अनेक विद्याएँ कही गयी हैं ॥६२–६६॥ इनके सिवाय एकपर्वा, द्विपर्वा, त्रिपर्वा, दशपर्वा, शतपर्वा,

सहस्रपर्वा, लक्षपर्वा, उत्पातिनी, त्रिपातिनी, धारिणी, अन्तर्विचारिणी, जलगति और अग्निगति ये विद्याएँ समस्त निकायोंमें नाना प्रकारकी शक्तियोंसे सहित हैं, नाना पर्वतोंपर निवास करनेवाली हैं एवं नाना ओषधियोंकी जानकार हैं ॥६७-६९॥ सर्वार्थसिद्धा, सिद्धार्था, जयन्ती, मंगला, जया, प्रहारसंक्रामिणी, अशय्याराधिनी, विशल्यकारिणी, व्रणसंरोहिणी, सवर्णकारिणी और मृतसंजीवनी—ये सभी विद्याएँ परम कल्याणरूप हैं, सभी मन्त्रोंसे परिष्कृत हैं, सभी विद्याबलसे युक्त हैं, सभी लोगोंका हित करनेवाली हैं। ये ऊपर कही हुई समस्त विद्याएँ तथा दिव्य ओषधियाँ धरणेन्द्रने नमि और विनमिको दीं ॥७०-७३॥ धरणेन्द्रके द्वारा दिये हुए विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें नमि रहता था और उत्तर श्रेणीमें विनमि निवास करता था ॥७४॥ नाना देशवासियोंसे सहित एवं मित्र तथा बन्धुजनोंसे परिचित दोनों वीर विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंमें सुखसे निवास करने लगे ॥७५॥ इन दोनोंने सब लोगोंको अनेक ओषधियाँ तथा विद्याएँ दी थीं इसलिए वे विद्याधर उन्हीं विद्या-निकायोंके नामसे प्रसिद्ध हो गये ॥७६॥ जैसे गौरी विद्यासे गौरिक, मनुसे मनु, गान्धारीसे गान्धार, मानवीसे मानव, कौशिकीसे कौशिक, भूमितुण्डकसे भूमितुण्ड, मूलवीर्यसे मूलवीर्यक, शंकुकसे शंकुक, पाण्डुकीसे पाण्डुकेय, कालकसे काल, श्वपाकसे श्वपाकज, मातंगीसे मातंग, पर्वतसे पार्वतेय, वंशालयसे वंशालय गण, पांशुमूलसे पांशुमूलिक और वृक्षमूलसे वार्क्षमूल—इस प्रकार विद्यानिकायोंसे सिद्ध होनेवाले विद्याधरोंका क्रमसे उल्लेख किया ॥ ७७-८३ ॥ विद्याधरोंकी कुल नगरियाँ एक सौ दश दश हैं, उनमें उत्तर भागमें साठ हैं और दक्षिण भागमें पचास हैं ॥८४॥ १ आदित्यनगर, २ गगनवल्लभ, ३ चमरचम्पा, ४ गगनमण्डल, ५ विजय, ६ वैजयन्त, ७ शत्रुंजय, ८ अरिंजय, ९ पद्माल, १० केतुमाल, ११ रुद्राश्व, १२ धनंजय, १३ वस्वौक, १४ सारनिवह, १५ जयन्त, १६ अपराजित, १७ वराह, १८ हास्तिन, १९ सिंह, २० सौकर, २१ हस्तिनायक, २२ पाण्डुक, २३ कौशिक, २४ वीर, २५ गौरिक, २६ मानव, २७ मनु, २८ चम्पा, २९ कांचन, ३० ऐशान, ३१ मणिव्रज, ३२ जयावह, ३३ नैमिष, ३४ हास्तिविजय, ३५ खण्डिका, ३६ मणिकांचन, ३७ अशोक, ३८ वेणु, ३९ आनन्द, ४० नन्दन, ४१ श्रीनिकेतन, ४२ अग्निज्वाल, ४३ महाज्वाल, ४४ माल्य, ४५ पुरु, ४६ नन्दिनी, ४७ विद्युत्प्रभ, ४८ महेन्द्र, ४९ विमल, ५० गन्धमादन, ५१ महापुर, ५२ पुष्पमाल, ५३ मेघमाल, ५४ शशिप्रभ, ५५ चूडामणि, ५६ पुष्पचूड़, ५७ हंसगर्भ, ५८ वलाहक, ५९ वंशालय, और ६० सौमनस—ये साठ नगरियाँ विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें हैं ॥८५-९२॥ और १ रथनूपुर, २ आनन्द, ३ चक्रवाल, ४ अरिंजय, ५ मण्डित, ६ बहुकेतु, ७ शकटामुख, ८ गन्धसमृद्ध, ९ शिवमन्दिर, १० वैजयन्त, ११ रथपुर, १२ श्रीपुर, १३ रत्नसंचय, १४ आषाढ़, १५ मानस, १६ सूर्यपुर, १७ स्वर्णनाभ, १८ शतह्लद, १९ अंगावर्त, २० जलावर्त, २१ आवर्तपुर, २२ बृहद्गृह, २३ शंखवज्र, २४ नाभान्त, २५ मेघकूट, २६ मणिप्रभ, २७ कुंजरावर्त, २८ असितपर्वत, २९ सिन्धुकक्ष, ३० महाकक्ष, ३१ सुकक्ष, ३२ चन्द्रपर्वत, ३३ श्रीकूट, ३४ गौरिकूट, ३५ लक्ष्मीकूट, ३६ धराधर, ३७ कालकेशपुर, ३८ रम्यपुर, ३९ हिमपुर, ४० किन्नरोद्गीतनगर, ४१ नभस्तिलक, ४२ मगधासारनलका, ४३ पांशुमूल, ४४ दिव्यौषध, ४५ अर्कमूल, ४६ उदयपर्वत, ४७ अमृतधार, ४८ मातंगपुर, ४९ भूमिकुण्डलकूट तथा ५० जम्बूशंकुपुर ये पचास नगरियाँ विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीमें हैं। ये सभी नगरियाँ शोभामें स्वर्गके तुल्य जान पड़ती हैं ॥९३-१०१॥ उन नगरियोंमें विद्याधर निकायोंके नामसे युक्त तथा भगवान् वृषभदेव, धरणेन्द्र और उसकी दिति-अदिति देवियोंकी प्रतिमाओंसे सहित अनेक स्तम्भ खड़े किये गये हैं ॥१०२॥

तदनन्तर राजा विनमिके संजय, अरिंजय, शत्रुंजय, धनंजय, मणिचूल, हरिश्मश्रु, मेघानीक, प्रभंजन, चूडामणि, शतानीक, सहस्रानीक, सर्वंजय, वज्रबाहु, महाबाहु और अरिंदम आदि अनेक

पुत्र हुए। ये सभी पुत्र विनय एवं नीतिज्ञानसे सहित थे, नाना विद्याओंसे प्रकाशमान थे और उत्तरश्रेणीके उत्तम आभूषणस्वरूप थे। पुत्रोंके सिवाय भद्रा और सुभद्रा नामकी दो कन्याएँ भी हुईं। इनमें सुभद्रा भरत चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंमें एक स्त्रीरत्न थी ॥१०३–१०६॥ इस प्रकार नमिके भी रवि, सोम, पुरुहूत, अंशुमान्, हरि, जय, पुलस्त्य, विजय, मातंग तथा वासव आदि अत्यधिक कान्तिके धारक अनेक पुत्र हुए और कनकपुंजश्री तथा कनकमंजरी नामकी दो कन्याएँ हुईं ॥१०७–१०८॥ आगे चलकर परम विवेकी नमि और विनमि, पुत्रोंके ऊपर विद्याधरोका ऐश्वर्य रखकर संसारसे विरक्त हो गये और दोनोंने जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥१०९॥ राजा विनमिके पुत्रोंमें जो मातंग नामका पुत्र था उसके बहुत-से पुत्र-पौत्र तथा प्रपौत्र आदि हुए और वे अपनी-अपनी साधनाके अनुसार स्वर्ग तथा मोक्ष गये ॥११०॥ इस तरह बहुत दिनके बाद इक्कीसवें तीर्थंकरके तीर्थ-में असितपर्वत नामक नगरमें मातंग वंशमें एक प्रहसित नामका राजा हुआ। वह बड़ा प्रतापी था और मातंग वंशरूपी आकाशका मानो सूर्य था। उसीकी मैं हिरण्यवती नामकी स्त्री हूँ और विद्यासे मैंने वृद्ध स्त्रीका रूप धारण किया है ॥१११-११२॥ सिंहदंष्ट्र नामका मेरा पुत्र है और नीलांजना उसकी स्त्री है। उन दोनोंकी नील कमलके समान नीली आभासे युक्त नीलयशा नामकी एक पुत्री है। मुझे बोलनेका अभ्यास है इसलिए मैंने उद्यम कर कुल, शील, कला तथा अनेक गुणोंके द्वारा उज्ज्वल यशको धारण करनेवाली उस कन्याके वंशका वर्णन किया है ॥११३-११४॥ हे हरिवंशरूपी आकाश-के चन्द्र ! वह चन्द्रमुखी कन्या आष्टाह्निक पर्वके समय श्रीवासुपूज्य भगवान्के पूजा-महोत्सवमें इस चम्पापुरीमें आयी थी और मन्दिरके आगे जब नृत्य कर रही थी तब उसने आपको देखा था ॥११५॥ हे कुमार ! इस कन्याके लिए उस समय आपका दर्शन जैसा सुखका कारण हुआ था वैसा ही आज विरहकालमें दुःखका कारण हो रहा है ॥११६॥ न वह स्नान करती है, न खाती है, न बोलती है और न कुछ चेष्टा ही करती है। कामके बाणरूपी शल्योंसे छिदी हुई वह कन्या जीवित है यही बड़े आश्चर्यकी बात है ॥११७॥ उसकी इस दशामें माता-पिताको लेकर हमारा समस्त कुल व्याकुल हो रहा है तथा वह यह भी नहीं जानता है कि क्या करूँ ? ॥११८॥ जब मैंने उसके हृदयका हाल जाननेके लिए कुल-विद्यासे पूछा तो उसने यह प्रकट किया कि हाथीके द्वारा नष्ट की हुई कमलिनीके समान इसका हृदय किसी युवा पुरुषके द्वारा दूषित किया गया है ॥११९॥ तदनन्तर मैंने निश्चय कर लिया कि मत्त-मतंगजके समान चलनेवाली कन्याके हृदयकी पीड़ा आपकी ही इच्छासे है। भावार्थ—उसके हृदयकी पीड़ा आपके ही कारण है ॥१२०॥ हे यादव ! मैं आपको वहाँ ले जानेके लिए आयी हूँ, निमित्तज्ञानीने भी वह आपको ही बतलायी है अतः आप चलें और उसे स्वीकार करें ॥१२१॥ कुमार वसुदेव अपने चित्तको चुरानेवाली नीलंयशाकी वह अवस्था सुन जानेके लिए यद्यपि उत्कण्ठित हो गये तथापि उस समय उन्होंने चम्पापुरीसे बाहर जाना ठीक नहीं समझा ॥१२२॥ और यही उत्तर दिया कि हे अम्ब ! मैं आऊँगा तुम तबतक जाकर उस कृशोदरी बिम्बोष्ठीको मेरा समाचार सुनाकर सान्त्वना देओ ॥१२३॥ कुमारने इस प्रकारकी आज्ञा देकर जिसे छोड़ा था ऐसी वृद्धा स्त्रीने 'तथास्तु' कहकर उन्हें आशीर्वाद दिया और मनोरथरूपी रथपर आरूढ़ हो जाकर कन्याको सान्त्वना दी ॥१२४॥

तदनन्तर किसी समय वसुदेव, मेघों द्वारा छोड़े हुए नूतन जलसे स्नान कर कान्ता गान्धर्व सेनाके साथ उसके स्तनोंका गाढ़ालिंगन करते हुए शयन कर रहे थे ॥१२५॥ कि एक भयंकर आकारवाली वेताल-कन्याने आकर उनका हाथ खींचा। वे जाग तो गये पर यह नहीं समझ सके कि इस समय क्या करना चाहिए फिर भी दृढ़ मुट्ठियोंवाली भुजासे उन्होंने उसे खूब पीटा ॥१२६॥ इतना होनेपर भी दुष्ट मनुष्यकी आकृतिको धारण करनेवाली वह कन्या उन्हें मजबूत पकड़कर रात्रिके समय गलीके मार्गसे श्मशान ले गयी ॥१२७॥ हृदयकी चेष्टाओंको जाननेवाले कुमारने वहाँ

भ्रमरीके समान काली-काली मातंगियोंमें युक्त एक मातंगीको देखा। उस मातंगीने हँसकर कुमार-से कहा कि आइए आपके लिए स्वागत है। यह कहकर वेताल विद्याओंसे उसने इनका अभिषेक कराया और उसके बाद वह हँसती हुई अन्तर्हित हो गयी ॥१२८–१२९॥ तदनन्तर उसने असली रूपमें प्रकट होकर कहा कि कुमार, मुझे मातंगी मत समझो, मैं हिरण्यवती हूँ। मैंने कार्य सिद्ध करनेके लिए मातंग विद्याके प्रभावसे यह वेष रखा था ॥१३०॥ यह कहकर उसने पासमें बैठी नीलंयशाकी ओर संकेत कर कहा कि देखो यह वही बाला नीलंयशा है जो हृदयको चुरानेवाले आपको न पाकर मुरझा गयी है। यह बाला आपको अपने बाहुपाशसे बाँधना चाहती है—आपका आलिंगन करना चाहती है ॥१३१॥ कुमारसे इतना कहकर हिरण्यवतीने पासमें बैठी हुई नीलंयशासे भी कहा कि यही तेरा वह स्वामी है अपने हाथसे इसके हस्तपल्लवका स्पर्श कर ॥१३२॥ इस प्रकार हिरण्यवतीकी आज्ञा पाकर कुमारी नीलंयशाने कुमार वसुदेवके फैलाये हुए हाथको अपने हाथसे पकड़ लिया। उस समय एक दूसरेके स्पर्शसे दोनोंके शरीरसे पसीना छूट रहा था ॥१३३॥ उन दोनोंका प्रेमरूपी वृक्ष शरीरके स्पर्शजन्य सुखरूपी जलसे सींचा गया था इसलिए वह रोमांचके बहाने कठोर अंकुरोंको प्रकट कर रहा था ॥१३४॥ वे दोनों ही स्नेहसे आर्द्रचित्त थे इसलिए उनका प्रथम पाणिग्रहण उसी समय हो गया था और व्यावहारिक पाणि-ग्रहण पीछे होगा ॥१३५॥ तदनन्तर हर्षसे भरा विद्याधरियोंका समस्त समूह शीघ्र ही कुमार वसुदेवके साथ आकाशमें उड़कर उत्तर दिशाकी ओर चल दिया ॥१३६॥ आभूषण तथा औषधियोंकी प्रभासे अन्धकारकी सन्ततिको नष्ट करता हुआ वह विद्याधरियोंका समूह आकाशमें बिजलियोंके समूहके समान सुशोभित हो रहा था ॥१३७॥ उस समय जिस प्रकार कुमार वसुदेवने हाथके स्पर्श मात्रसे नीलंयशाके मुखको प्रभासे उज्ज्वल कर दिया था उसी प्रकार सूर्यने भी अपनी किरणोंके स्पर्श मात्रसे पूर्व दिशारूपी स्त्रीके मुखकी प्रभासे उज्ज्वल कर दिया था ॥१३८॥ उस समय पूर्व दिशाके अग्रभागमें आधा उदित हुआ लाल-लाल सूर्य ऐसा जान पड़ता था मानो दिवसरूपी युवाके द्वारा आधा डँसा हुआ पूर्व दिशारूपी स्त्रीका लाल अधर ही हो ॥१३९॥ थोड़ी देर बाद जब सूर्यमण्डल पूर्ण उदित हो गया तब ऐसा जान पड़ने लगा मानो पूर्व दिशारूपी स्त्रीके मुखमण्डलको अलंकृत करनेवाला सुवर्णमय कानोंका कुण्डल ही हो ॥१४०॥ कुमार वसुदेवके समान संसारको प्रकाशित करनेवाले सूर्यने जब शीघ्र ही आकाश और पृथिवीको स्पष्ट कर दिया तथा उनकी ओर शीघ्र ही दृष्टिका प्रसार होने लगा ॥१४१॥ तब हिरण्यवतीने वसुदेवसे कहा कि हे कुमार! नीचे पृथिवीपर महावनके वृक्षोंसे घिरे हुए जिस उन्नत पर्वतको देख रहे हो उस शोभासम्पन्न पर्वतको लोग ह्रीमन्त गिरि कहते हैं। यह पर्वत लज्जासे युक्त मनुष्यको भी तपरूपी लक्ष्मीसे युक्त कर देता है ॥१४२–१४३॥ यहाँ अशनिवेगकी पुत्री श्यामाने युद्धमें जिसकी विद्या खण्डित कर दी थी ऐसा अंगारक नामका विद्याधर विद्या सिद्ध करनेके लिए स्थित है। आपके दर्शनसे इसे शीघ्र विद्या सिद्ध हो जावेगी इसलिए यदि इसका उपकार करनेकी आपकी इच्छा है तो इसे अपना दर्शन दें ॥१४४–१४५॥ हिरण्यवतीके इस प्रकार कहनेपर प्रियतमा श्यामाके कुशल समाचार जानकर कुमार बहुत सन्तुष्ट हुए और कहने लगे कि अंगारक तो हमारा शत्रु है इसको देखनेसे क्या लाभ है? ॥१४६॥ इस पर्वतपर की हुई समयको बितानेवाली व्यर्थकी क्रीड़ाओंसे मुझे क्या प्रयोजन है? यदि तुम्हें रहना इष्ट है तो रहो मैं तो जाता हूँ और श्वसुरके नगरको देखता हूँ ॥१४७॥ कुमारके ऐसा कहनेपर हिरण्यवतीने 'एवमस्तु' कहा अर्थात् जैसा आप चाहते हैं वैसा ही करती हूँ। यह कह उसने असितपर्वत नगर ले जाकर उन्हें नगरके बाहर एक सुन्दर उद्यानमें ठहरा दिया तथा रक्षाके लिए विद्याधरियोंको नियुक्त कर दिया ॥१४८॥ कुमारी नीलंयशा प्रसन्नचित्त हो अपने नगरमें प्रविष्ट हुई और कुमारके समागमकी

आकांक्षा तथा उन्हींकी कथा करती हुई रहने लगी ॥१४९॥ तदनन्तर बड़े वैभवके साथ जिन्हें स्नान कराया गया था तथा उत्तमोत्तम आभूषण पहनाये गये थे ऐसे वीर कुमार वसुदेवको रथपर बैठाकर विद्याधरोंने स्वर्ग तुल्य नगरमें प्रविष्ट कराया ॥१५०॥ वहाँ कुमारका मनोहर रूप देख-देखकर जिसके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे ऐसे नीलंयशाके पिता सिंहदंष्ट्रा तथा सन्तोषसे युक्त अन्तः-पुरको आदि लेकर समस्त लोगोंने बड़े विभवके साथ श्रीमान् वसुदेवको देखा ॥१५१॥ तदनन्तर जो पुण्यसे परिपूर्ण थे और जिनका रूप चरम सीमाको प्राप्त था ऐसे कुमार वसुदेव और नीलंयशाका पाणिग्रहण मंगल किसी पवित्र दिन विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ ॥१५२॥ तत्पश्चात् जिस प्रकार कामदेव अपनी स्त्री रतिके साथ इच्छानुसार भोगोंका सेवन करता है उसी प्रकार कुमार वसुदेव असितपर्वत नगरमें नीलंयशाके साथ इच्छानुसार भोगोंका सेवन करने लगे ॥१५३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि चूँकि वहाँकी स्त्रियाँ अपने गुणोंसे नीलंयशाके यशको मलिन नहीं कर सकी थीं और न विद्याधर ही पराक्रमी वसुदेवके यशको कलंकित कर सके थे इसलिए वहाँ प्रेम-पूर्वक रहनेवाले वसुदेव और नीलंयशाको जो सुख उपलब्ध था उसका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करनेके लिए जिन प्रवचनका ज्ञाता श्रुतकेवली ही समर्थ हो सकता है ॥१५४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें नीलंयशाके लामका वर्णन करनेवाला बाईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२२॥

□

अथानन्तर—किसी समय महलके ऊपर बैठे हुए कुमारने लोगोंका बहुत भारी कोलाहल सुनकर पासमें बैठी प्रतीहारीसे पूछा कि ये समस्त लोग किस कारण कोलाहल कर रहे हैं? कुमारके इस प्रकार कहनेपर अतीत वृत्तान्तको जाननेवाली प्रतीहारीने कहा कि हे देव! सुनिए, इस पर्वतपर एक शकटामुख नामका नगर है उसका स्वामी विद्याधरोंका अधिपति नीलवान् नामका विद्याधर है ॥१-३॥ राजा नीलवान्के नील नामका पुत्र और नीलाजना नामकी माननीय पुत्री इस प्रकार दो सन्तान हैं। एक बार नील और नीलांजनाके बीच यह बात हुई कि यदि मेरे पुत्र हो और तुम्हारे पुत्री हो तो परस्पर गोत्रकी प्रीति बनाये रखनेके लिए दोनोंका विवादरहित विवाह होगा ॥४-५॥ नीलांजनाको तुम्हारे श्वसुर सिंहदंष्ट्रने विवाहा था और उससे यह नीलयशा नामकी पुत्री हुई थी ॥६॥ कुमार नीलका भी विवाह हुआ और उनके नीलकण्ठ नामका पुत्र हुआ। पूर्व वार्ताके अनुसार नीलने अपने पुत्र नीलकण्ठके लिए सिंहदंष्ट्रसे नीलयशाकी याचना की ॥७॥ परन्तु सिंहदंष्ट्रने अमोघवादी बृहस्पति नामक मुनिराजके कथनानुसार यह कन्या आपके लिए दी है। आप अर्धचक्रवर्तीके यशस्वी पिता हैं ॥८॥ आज दुष्ट प्रकृतिके धारक पिता-पुत्र—नील और नीलकण्ठने सभाके बीच सिंहदंष्ट्रके साथ विवाद ठाना था परन्तु तुम्हारे श्वसुर—सिंहदंष्ट्रने उन दोनोंको न्याय मार्गसे जीत लिया इसलिए विद्याधरोंने बहुत भारी कलकल शब्द किया है ॥९-१०॥ इस प्रकार प्रतीहारीके वचन सुनकर कुमार वसुदेव मुसकराये और नीलयशाके साथ पहलेकी तरह रहने लगे ॥११॥

तदनन्तर वर्षा ऋतु आयी, सो कुमार वसुदेवने स्त्रीके समान उसका अनुभव किया क्योंकि जिस प्रकार स्त्री घनकृताश्लेषा—गाढ़ आलिंगनसे युक्त होती है उसी प्रकार वर्षा ऋतु भी घनकृताश्लेषा—मेघकृत आलिंगनसे युक्त थी। जिस प्रकार स्त्री विषय-प्रिया—विषयोंसे प्रिय होती है उसी प्रकार वर्षा ऋतु भी विषय-प्रिया—देशोंके लिए प्रिय थी। और जिस प्रकार स्त्री शुक्लापाङ्गस्वनैर्हृद्या—सफेद-सफेद कटाक्षों और मधुर वाणीसे मनोहर होती है उसी प्रकार वर्षाऋतु भी शुक्लापाङ्गस्वनैर्हृद्या—मयूरोंकी वाणीसे मनोहर थी ॥१२॥ वर्षाके बाद, जो बाणोंकी मूठको हाथमें धारण कर रहा था तथा गुंजार करते हुए भ्रमररूपी डोरीसे युक्त उत्तम बाणासन जातिके वृक्षरूपी बाणासन—धनुषकी शोभासे युक्त था ऐसे अहंकारी सुभटके समान शरद् ऋतु आयी ॥१३॥ उस समय मनके समान तीव्र वेगको धारण करनेवाले विद्याधर अपनी-अपनी विद्याओं और ओषधियोंकी सिद्धिके लिए मनके वेगको नियन्त्रित कर बाहर निकले ॥१४॥ उस समय इच्छानुसार कामभोग करनेवाले एवं विद्याके द्वारा अत्यन्त आलिंगित दोनों दम्पती—कुमार वसुदेव और नीलयशा भी ह्रीमन्त पर्वतकी ओर गये। उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो परस्परमें गाढ़ आलिङ्गनको प्राप्त एवं इच्छानुसार वर्षा करते हुए बिजली और मेघ ही पर्वतकी ओर जा रहे हों ॥१५॥ उस पर्वतका मध्य भाग वैरिरहित सपत्नीक तपस्वियोंकी स्त्रियोंको धारण करता था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो निरन्तर अतिशय कठिन असिधाराव्रतका ही आचरण कर रहा हो ॥१६॥ वह पर्वत जगह-जगह मधुपानके मदसे उन्मत्त पक्षियों और भ्रमरोंके शब्दसे युक्त था इसलिए ऐसा

जान पड़ता था मानो कामीजनोंको वेधनेवाले कामदेवके बाण और प्रत्यंचाके शब्दोंसे ही युक्त हो ॥१७॥ उत्कट सुगन्धिसे युक्त सप्तपर्णवन जिसकी शोभा बढ़ा रहा था, जो स्वयं सुन्दर था तथा वायुसे जिसके वृक्ष हिल रहे थे ऐसे ह्रीमन्त पर्वतपर उतरकर वे दोनों उसकी प्रशंसा करने लगे। चिरकाल तक इधर-उधर भ्रमण कर शोभाको देखते हुए वे तृप्त ही नहीं होते थे अतः कामाकुलित होकर दोनोंने पर्वतके सुन्दर शिखरोंपर बार-बार रमण किया था ॥१८-१९॥ उन्होंने पुष्प और पत्तोंसे निर्मित शय्यापर अत्यधिक सम्भोग किया था फिर भी वह उस समय उनके खेदके लिए नहीं हुआ था ॥२०॥ जो रतिक्रीड़ासे उत्पन्न पसीनासे सुशोभित थे तथा जिनके नेत्रोंके कोण लाल-लाल हो रहे थे ऐसे वे दोनों चिरकाल बाद कदली गृहसे बाहर निकले ॥२१॥ बाहर निकलते ही उन्होंने एक ऐसा मयूर देखा जो केका वाणी छोड़ रहा था, चित्र-विचित्र शरीरसे युक्त था, शिखण्डोंसे सहित था और जिसके नेत्र अत्यन्त मत्त थे ॥२२॥ शोभासे चित्तको हरण करनेवाले उस मयूरको देखकर जो अत्यन्त उत्कण्ठित थी तथा कौतुकवश जो उसे पकड़ लेना चाहती थी ऐसी नीलयशा-को कन्धेपर बैठाकर वह मयूर आकाशमें ले गया ॥२३॥ यथार्थमें वह मयूर नहीं था किन्तु मयूरका शरीर धारण करनेवाला नील नीलकण्ठ था। उसके द्वारा स्त्रीके हरे जानेपर वसुदेव विह्वल होकर वनमें घूमते रहे ॥२४॥ वह क्रम क्रमसे इच्छित गोपोंकी एक बस्तीमें गये वहाँ गोपोंकी स्त्रियोंने उनकी भूख-प्यासकी बाधा तथा परिश्रमको दूर किया। उस बस्तीमें रातभर रहकर वे प्रातःकाल दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये ॥२५॥ वहाँ धूलिकुट्टिम तथा प्राकारसे वेष्टित गिरितट नामक नगरको देखकर वसुदेवने हर्षित हो उसमें प्रवेश किया। उस समय वह नगर विशिष्ट जनसमूहसे व्याप्त था तथा वेद-पाठकी ध्वनिसे उसकी समस्त दिशाएँ शब्दायमान हो रही थीं। वहाँ कौतुकसे भरे वसुदेवने किसी मनुष्यसे इस प्रकार पूछा ॥२६-२७॥ क्या यहाँ ब्राह्मणोंके लिए किसीने महादान किया है? जिससे वेदोंको जाननेवाले पृथिवीके समस्त ब्राह्मण यहाँ आकर इकट्ठे हुए हैं ॥२८॥ उस मनुष्यने कहा कि यहाँ एक वसुदेव नामक ब्राह्मण रहता है। उसके एक सोमश्री नामकी कन्या है जो चन्द्रमाके समान सुन्दर और अनेक कला तथा वेद-शास्त्रमें निपुण है ॥२९॥ ज्योतिषीने कहा है कि जो इसे वेदोंके विचारमें जीत लेगा वही इसका पति होगा इसीलिए यह वेदोंको जाननेवाली प्रजा इकट्ठी हुई है ॥३०॥ स्थूल नितम्ब और स्तनोंके भारसे पीड़ित, कमरकी पतली यह अतिशय सुन्दरी कन्या, भार धारण करनेमें समर्थ किस भाग्यशालीके ऊपर गिरती है यह हम नहीं जानते ॥३१॥ यह सुनकर जिस प्रकार शब्दमात्रसे कानोंको हरनेवाली हंसी राजहंसके मनको उत्कण्ठित कर देती है उस प्रकार चर्चामात्रसे कानोंको हरनेवाली उस कन्याने वसुदेवके मनको उत्कण्ठित कर दिया ॥३२॥

तदनन्तर कुमारने ब्रह्मदत्त नामक उपाध्यायके पास जाकर तथा उसे अपना गोत्र बताकर प्रार्थना की कि आप हमें वेद पढ़ा दीजिए ॥३३॥ इसके उत्तरमें ब्रह्मदत्तने कहा कि यहाँ तुम धर्मको प्रकट करनेवाले आर्ष वेदोंको पढ़ना चाहते हो, या अनार्ष वेदोंको? ॥३४॥ यह सुन कुमारने फिर पूछा कि दो वेद कैसे? कुमारके इस तरह पूछनेपर अत्यन्त प्रसन्न चित्त एवं यथार्थवादी उपाध्याय पुनः इस प्रकार कहने लगा कि युगके आदिमें कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेपर जिन्होंने शरणागत प्रजाको असि-मषि आदि छह कार्योंका उपदेश दिया था तथा अपने पूर्वज्ञानके आधारपर उनमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंका विभाग किया था ॥३५-३६॥ जिन्होंने राजा बनकर हिमाचल और विन्ध्याचल रूप स्तनोंसे युक्त, विजयार्धरूपी हारसे सुशोभित और सागर रूपी मेखलासे अलंकृत पृथिवीरूपी स्त्रीका उपभोग किया था ॥३७॥ जिन्होंने अन्तमें विरक्त हो श्रेष्ठ राज्यपर भरतादिक सौ पुत्रोंको आसीन कर चार हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण की थी ॥३८॥ जो स्वयं प्रतिबुद्ध थे, धीर-वीर थे, परीषहोंके जेता थे और जिन्होंने चार ज्ञानके धारक होकर एक हजार वर्ष तक

कठिन तप किया था ॥३९॥ जिन्होंने उत्पन्न हुए केवलज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा समस्त पदार्थोंको जान लिया था तथा धर्मरूप तीर्थके द्वारा जिन्होंने धर्मक्षेत्रको दुष्टोंसे रहित कर दिया था ॥४०॥ जिन्होंने स्वर्ग और मोक्षसुखकी प्राप्तिके लिए गृहस्थ और मुनियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले दो धर्माश्रम दिखलाये थे ॥४१॥ जिन्होंने मुनिधर्मका वर्णन करनेके लिए द्वादशांगरूप वेदोंका निर्माण किया था तथा उन्हीं वेदोंके अन्तर्गत (उपासकाध्ययनांग) गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंके धारक एवं अनेक नियमोंका पालन करनेवाले गृहस्थोंके भी आचारका वर्णन किया था। उन्हीं भगवान् वृषभदेवके द्वारा उस समय जो वेद दिखाये गये थे वे आर्ष वेद कहलाते हैं ॥४२-४३॥ युग-के आदिमें भरत चक्रवर्तीने जिसका सम्मान किया था ऐसा समस्त ब्राह्मणोंका समूह उन्हीं आर्ष वेदोंका अध्ययन कर उन्हींमें बतायी हुई विधिसे धर्म-यज्ञ करता था ॥४४॥ अब जिनमें इस युगके ब्राह्मणोंका तात्पर्य है उन अनार्ष वेदोंकी उत्पत्ति कही जाती है ॥४५॥

धारण-युग्म नगरमें एक राजा रहता था जिसे युद्ध-भूमिमें अयोध्य होनेके कारण योधा लोग अयोधन कहते थे ॥४६॥ सूर्यवंशको अलंकृत करनेवाले राजा अयोधनकी महारानीका नाम दिति था। यह दिति चन्द्रवंशकी लड़की थी तथा चन्द्रवंशी राजा तृणविन्दुकी छोटी बहन थी ॥४७॥ महारानी दितिने कदाचित् स्त्रियोंके गुणोंकी पिटारीस्वरूप सुलसा नामकी कन्याको जन्म दिया। जब वह यौवनवती हुई तब पिताने उसका स्वयंवर करवाया ॥४८॥ और पृथिवीके यशस्वी राजाओंको बुलवाया जिससे विशाल यशके धारक, स्वयंवरके अभिलाषी एवं आदरसे युक्त सगर आदि राजा वहाँ आ पहुँचे ॥४९॥

एक दिन राजा सगरकी मन्दोदरी नामकी प्रतीहारी रानी दितिके घर गयी थी, वहाँ उसने एकान्तमें दितिके यह वचन सुने कि बेटी सुलसा ! तू मुझसे बहुत स्नेह करती है क्योंकि पुत्रीका माताके ऊपर जो स्नेह होता है वह दूधके अनुसार प्रकट होता है, इसलिए तू मेरी बात सुन ॥५०–५१॥ मेरे बड़े भाई राजा तृणविन्दुकी सर्वयशा देवीसे उत्पन्न हुआ मधुपिंगल नामका पुत्र है जो अपनी शोभासे समस्त राजाओंका तिरस्कार कर स्थित है—सबसे अधिक सुन्दर एवं प्रतापी है ॥५२॥ मैंने पहले ही उसके लिए तेरे देनेका मनमें संकल्प कर लिया था। इसलिए तू स्वयंवरमें मेरा ही मनोरथ पूर्ण कर ॥५३॥ इस प्रकार कहकर माता दिति आँसू छोड़ने लगी। माताको रोती देख कन्या सुलसाने कहा कि हे माता ! तू रो मत। मैं राजाओंके सामने जो तुझे इष्ट है वही करूँगी—तेरे कहे अनुसार मधुपिंगलको ही वरूँगी ॥५४॥ मन्दोदरीने यह सब सुना और जाकर कन्याकी प्राप्तिके लिए उत्कण्ठित राजा सगरके लिए एकान्तमें कह सुनाया ॥५५॥

तदनन्तर राजा सगरने शीघ्र ही अपने विश्वभूति नामक पुरोहितसे एकान्तमें मनुष्योंके लक्षणोंको बतानेवाला एक शास्त्र बनवाया ॥५६॥ और उसे धूमसे धूसरित कर तथा लोहेकी सन्दूक-में भरवाकर स्वयंवरकी भूमिमें गड़वा दिया। जब स्वयंवरका दिन आया तब सगरने स्वयंवरकी भूमिको खुदवाकर लोहेका वह सन्दूक निकलवाया और उससे उक्त शास्त्र निकालकर राजाओंके आगे दिखाया ॥५७॥ स्वयंवरमें जो राजा आये थे, वे मनुष्योंके लक्षण सुनना चाहते थे। इसलिए उन सबके आगे पुरोहितने जोर-जोरसे उस शास्त्रको बाँचना शुरू किया ॥५८॥ उसमें लिखा था कि राजाके पैर मछली, शंख तथा अंकुश आदिके चिह्नोंसे युक्त होते हैं, कमलके भीतरी भागके समान उनका मध्य भाग होता है, एड़ियोंकी उत्तम शोभासे वे सहित होते हैं, उनकी अँगुलियोंके पौरा एक दूसरेसे सटे रहते हैं, उनके नख चिकने एवं लाल होते हैं, उनकी गाँठें छिपी रहती हैं, वे नसोंसे रहित होती हैं, कुछ-कुछ उष्ण होते हैं, कछुएके समान उठे होते हैं और पसीनासे युक्त रहते हैं ॥५९–६०॥ पापी मनुष्यके पैर सूपाके आकार, फैले हुए, नसोंसे व्याप्त, टेढ़े, रूखे नखोंसे-युक्त, सूखे एवं विरल अँगुलियोंवाले होते हैं ॥६१॥ जो पैर छिद्र सहित एवं कषैले रंगके होते हैं वे

वंशका नाश करनेवाले माने गये हैं। हिंसक मनुष्यके पैर जली हुई मिट्टीके समान और क्रोधी मनुष्यके पैर पीले रंगके जानना चाहिए ॥६२॥ जिनकी पिण्डलियाँ थोड़े एवं अत्यन्त सूक्ष्म रोमोंसे युक्त और ऊपर-ऊपर गोल होती जाती हैं, जिनके घुटने अच्छे हैं और जाँघें गोल हैं वे शुभ हैं—अच्छे पुरुष हैं और जिनकी पिण्डलियाँ, घुटने तथा जाँघें सूखी हैं वे निन्दनीय हैं ॥६३॥ राजाओंके एक रोम-कूपमें एक रोम होता है, विद्वानोंके एक रोम-कूपमें दो रोम होते हैं और मूर्ख तथा निर्धन मनुष्योंके एक रोम-कूपमें तीनको आदि लेकर अनेक रोम होते हैं। रोमोंके समान ही केशोंका भी फल समझना चाहिए ॥६४॥ बच्चेका लिंग यदि छोटा, दाहिनी ओर कुछ टेढ़ा और मोटी गाँठसे युक्त है तो शुभ है और इससे विपरीत अशुभ है ॥६५॥ जिन मनुष्योंके वृषण (अण्डकोष) अत्यन्त छोटे होते हैं वे शीघ्र मर जाते हैं, जिनके विषम-एक छोटे एक बड़े होते हैं वे स्त्रियोंपर अपना बल रखते हैं—स्त्रियोंको वश करनेवाले होते हैं, जिनके एक बराबर होते हैं वे राजा होते हैं और जिनके नीचेकी ओर लटकते रहते हैं वे दीर्घजीवी होते हैं ॥६६॥ पेशाब करते समय जिनका मूत्र शब्दसहित निकलता है वे सुखी होते हैं और जिनका मूत्र शब्दरहित निकलता है वे दुखी होते हैं। पेशाब करते समय जिनके मूत्रकी पहली और दूसरी धारा दाहिनी ओर पड़ती है वे लक्ष्मीके स्वामी होते हैं और जिनकी धारा इसके विपरीत पड़ती है वे निर्धन होते हैं ॥६७॥ जिस पुरुषका नितम्ब स्थूल होता है वह दरिद्र होता है, जिसका पुष्ट होता है वह सुखी होता है और जिसका मण्डूकके समान ऊँचा उठा होता है वह व्याघ्रसे मृत्युको प्राप्त होता है ॥६८॥ जिसकी कमर सिंहकी कमरके समान पतली होती है वह राजा होता है और जिसकी कमर वानर अथवा ऊँटकी कमरके समान होती है वह धनी होता है। जिसका पेट न छोटा न बड़ा किन्तु समान होता है वह सुखी होता है और जिसका पेट घड़ा अथवा मटकाके समान हो वह दुखी होता है ॥६९॥ जिनकी पसलियाँ भरी हुई हों वे सुखी होते हैं और जिनकी पसलियाँ नीची तथा टेढ़ी हों वे भोगरहित होते हैं। जिनकी कूँख नीची हो वे भोगरहित होते हैं, जिनकी कूँख सम हों वे भोगी होते हैं, जिनकी कूँख उठी हुई हों वे राजा होते हैं और जिनकी कूँख विषम हों वे निर्धन होते हैं। जिसकी उदर सर्पके समान लम्बा हो वे दरिद्र तथा बहुत भोजन करनेवाले होते हैं ॥७०-७१॥ जिनकी नाभि चौड़ी, ऊँची, गहरी और गोल होती है वह सुखी होता है और जिसकी नाभि छोटी तथा कुछ-कुछ दीखनेवाली होती है वह क्लेशका पात्र होता है ॥७२॥ यदि मध्य भागकी रेखाएँ विषम हैं, तो वे शूलकी बाधा तथा दरिद्रताको उत्पन्न करती हैं और वही रेखा यदि बायीं और दाहिनी ओर आवर्तो—भँवरोंसे युक्त हैं तो उत्तम बुद्धिको करती हैं ॥७३॥ कमलकी कर्णिकाके समान नाभि मनुष्यको राजा बना देती है और जिसका ऊपर, नीचे तथा आजू-बाजूका भाग विस्तृत हो ऐसी नाभि मनुष्यको धनवान् गोमान् और दीर्घजीवी करती है ॥७४॥ जिसके एक वलि होती है वह शास्त्रार्थी होता है, जिसके दो वलि होती हैं वह निरन्तर स्त्रीका प्रेमी होता है, जिसके तीन वलि होती हैं वह आचार्य होता है और जिसके चार वलि होती हैं वह बहुत सन्तानवाला होता है और जिसके एक भी वलि नहीं होती वह राजा होता है ॥७५॥ जिन मनुष्योंकी वलि सीधी होती हैं वे स्वदार-सन्तोषी होते हैं और जिनकी वलि विषम होती हैं वे अगम्यगामी एवं पापी होते हैं ॥७६॥ जिन मनुष्योंके पसवाड़े पुष्ट, कोमल एवं दाहिनी ओर आवर्ताकार रोमोंसे सहित होते हैं वे राजा होते हैं और जिनके इनसे विपरीत होते हैं वे दूसरोंके आज्ञाकारी किंकर होते हैं ॥७७॥ जिन मनुष्योंके स्तनोंके अग्रभाग छोटे और स्थूल हों वे उत्तम भाग्यशाली होते हैं और जिनके दीर्घ अथवा विषम होते हैं वे निर्धन होते हैं ॥७८॥ राजाओंका हृदय पुष्ट, चौड़ा, ऊँचा और कम्पनसे रहित होता है तथा पुण्यहीन मनुष्योंका हृदय इससे विपरीत तीक्ष्ण रोमोंसे व्याप्त होता है ॥७९॥ जिनके वक्षःस्थल सम हों वे सम्पत्ति-

शाली होते है, जिनके स्थूल हों वे शूर-वीर किन्तु निर्धन होते हैं और जिनके कृश तथा विषम हों वे निर्धन एवं शस्त्रसे मरनेवाले होते हैं ॥८०॥ जो मनुष्य स्थूल घुटनेसे सहित होता है वह धनाढ्य होता है, जिसका घुटना ऊँचा उठा होता है वह भोगी होता है, जिसका गहरा तथा हड्डियोंसे बद्ध रहता है वह निर्धन होता है और जिसका विषम होता है वह विषम ही रहता है ॥८१॥ धनाढ्य मनुष्योंकी बगलें निरन्तर पसीनासे रहित, पुष्ट, ऊँची, सुगन्धित और समान रोमोंसे व्याप्त रहती हैं ॥८२॥ निर्धन मनुष्यको गरदन चपटी, सूखी एवं नसोंसे व्याप्त रहती है। इसके विपरीत शंखके समान गरदनवाला मनुष्य राजा होता है और भैंसेके समान गरदनवाला मनुष्य शूर-वीर होता है ॥८३॥ जो पीठ रोमरहित एवं सीधी हो वह शुभ मानी गयी है तथा जो रोमोंसे व्याप्त और अत्यन्त झुकी हुई हो वह अच्छी नहीं मानी गयी है ॥८४॥ निर्धन मनुष्यके कन्धे छोटे, अपुष्ट, नीचेकी ओर झुके हुए और रोमोंसे व्याप्त होते हैं तथा पराक्रमी और धनवान् मनुष्योंके कन्धे सटे हुए एवं पुष्ट होते हैं ॥८५॥ राजाओंके हाथ स्थूल, गोल, लम्बे और हाथीकी सूँड़के समान होते हैं परन्तु निर्धन मनुष्योंके हाथ छोटे और रोमोंसे युक्त रहते हैं ॥८६॥ दीर्घायु मनुष्योंकी अंगुलियाँ लम्बी तथा अत्यन्त कोमल होती हैं, भाग्यशाली मनुष्योंकी वलिरहित और बुद्धिमान् मनुष्योंकी छोटी-छोटी होती हैं ॥८७॥ निर्धन मनुष्योंके हाथ स्थूल रहते हैं, सेवकोंके हाथ चिपटे होते हैं, वानरोंके समान हाथवाले मनुष्य धनाढ्य होते है और व्याघ्रके समान हाथवाले मनुष्य शूर-वीर होते हैं ॥८८॥ जिनकी कलाइयाँ अत्यन्त गूढ़ एवं सुश्लिष्ट सन्धियोंसे युक्त होती हैं वे राजा होते हैं और जिनकी कलाइयाँ ढीली तथा शब्दोंसे सहित हैं वे दरिद्रतासे युक्त होते है ॥८९॥ जिनकी हथेलियाँ गहरी—भीतरको दबी हुई हों वे नपुंसक तथा पिताके धनसे रहित होते हैं, जिनकी हथेलियाँ भरी हुई तथा गहरी हों वे धनाढ्य होते हैं और जिनकी हथेलियाँ ऊपरको उठी हुई हों वे दानी होते हैं ॥९०॥ जिनकी हथेलियाँ लाखके समान लाल हों वे धनाढ्य होते हैं, जिनकी विषम होती हैं वे दरिद्र तथा विषम होते हैं, जिनकी पीली हों वे अगम्यगामी होते हैं और जिनकी रूक्ष होती हैं वे सौन्दर्यसे रहित कुरूप होते हैं ॥९१॥ जिनके नख तुषके समान हों वे नपुंसक, जिनके फटे हों वे निर्धन, जिनके कुछ-कुछ लाल हों वे सेनापति और जिनके भद्दे हों वे तर्क-वितर्क करनेवाले होते हैं ॥९२॥ जिनके अँगूठेपर यवका चिह्न हो वे धनाढ्य होते हैं, जिनके अँगूठेके मूलमें यवका चिह्न हो वे अधिक पुत्रवाले होते हैं, जिनके अँगूठेमें गहरी तथा चिकनी रेखाएँ होती हैं वे धनाढ्य होते हैं और जिनके इससे विपरीत रेखाएँ हैं वे निर्धन होते हैं ॥९३॥ जिनकी अँगुलियाँ अत्यन्त सघन होती हैं वे धन-सम्पन्न होते हैं और जिनकी अँगुलियाँ विषम होती हैं वे निर्धन होते हैं। जिनकी कलाईसे लेकर हाथ तक तीन रेखाएँ होती हैं वे राजा होते हैं ॥९४॥ प्रदेशिनी अँगुली तक लम्बी रेखा दीर्घायुका चिह्न है अर्थात् जिसकी रेखा कनिष्ठासे लेकर प्रदेशिनी तक लम्बी चली जाती है वह दीर्घायु होता है और जिसकी रेखाएँ कटी तथा छोटी होती हैं वह अल्प आयुका धारक होता है ॥९५॥ तलवार, शक्ति, गदा, भाला, चक्र और तोमर आदि रेखाएँ हाथमें हों तो वे स्पष्ट कहती हैं कि यह व्यक्ति सेनापति होगा ॥९६॥ जिनकी दाढ़ी पतली और लम्बी होती है वे दरिद्र होते हैं तथा जिनकी पुष्ट होती है वे धनी होते हैं। जिनके ओठ बिना फटे, सीधे और बिम्बीफलके समान लाल होते हैं वे राजा होते हैं ॥९७॥ जिनकी डाढ़ें तीक्ष्ण, सम और स्निग्ध होती हैं, दाँत सफेद और सघन रहते हैं एवं जीभ लाल, लम्बी और कोमल होती है वे भोगी होते हैं ॥९८॥ जिनका मुख भरा हुआ, सौम्य, सम और कुटिलता रहित होता है वे राजा होते हैं। जिनका मुख बहुत बड़ा होता है वे अभागे होते हैं और जिनका मुख गोलाकार होता है वे मूर्ख होते हैं ॥९९॥ सन्तान-रहित मनुष्योंका मुख स्त्रीके समान तथा नीचा होता है। कंजूस मनुष्योंका मुख छोटा और निर्धन मनुष्योंका मुख लम्बा होता है ॥१००॥ जिनके कान कोलाके

समान हों वे राजा होते हैं, जिनके कानोंपर रोम होते हैं वे दीर्घायु होते हैं, जिनकी नाक सीधी समान पुटवाली एवं छोटे छिद्रोंसे युक्त होती है वे भोगी होते हैं ॥१०१॥ जिनको एक छींक आवे वे धनाढ्य, जिनको दो-तीन छींकें एक साथ आवें वे विद्वान् तथा जिनको लगातार अनेक खुली छींकें आवें दीर्घायु होते हैं ॥१०२॥ जिनके नेत्र अन्तमें लाल और कमलपत्रके समान हों वे लक्ष्मीमान् और जिनके गजेन्द्र एवं बैलके समान हों वे राजा होते हैं ॥१०३॥ जो मनुष्य पिंगलवर्णके नेत्रोंसे युक्त हैं वे अमांगलिक और पापी हैं उनके साथ न कभी बात करना चाहिए और न उनकी ओर खासकर देखना चाहिए ॥१०४॥ जिनके नेत्र मार्जारके नेत्रोंके समान रहते हैं वे सदा मानसिक, वाचनिक और कायिक पापोंसे युक्त होते हैं तथा दुर्जन, अभागे, क्रूर और पापी माने गये हैं ॥१०५॥ समस्त लक्षणोंके गुण और दोषका विचार करते समय चक्षुके लक्षणका पूर्ण विचार करना चाहिए क्योंकि फलकी सिद्धिके लिए यही पर्याप्त कारण है ॥१०६॥ विद्वान्‌को चाहिए कि वह मनुष्यके मान, उन्मान, देह, चाल-ढाल, वंश, उत्तमवर्ण और प्रकृतिको देखकर फलका प्रतिपादन करे ॥१०७॥

इस प्रकार पुस्तक बाँचे जानेपर मधुपिंगलको यह आशंका हो गयी कि हमारे नेत्रमें दोष है इसीलिए वह सभासे निकलकर चला गया ॥१०८॥ यद्यपि मधुपिंगल नवयौवनसे युक्त था तथापि सुलसाको छोड़कर दीक्षित हो गया और मुनिचर्याको धारण कर अनेक देशोंमें विहार करने लगा ॥१०९॥ इधर राजा सगर बड़ा चतुर था इसलिए वह कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली सुलसाको स्वयंवरमें स्वयं प्राप्त कर सुखका उपभोग करने लगा ॥११०॥ आचार्य कहते हैं कि ऐसी प्रवृत्ति तत्काल तो चतुराई कही जाती है परन्तु वह सदा छिपी नहीं रहती इसलिए इसका करनेवाला प्राणी आगामी कालमें अवश्य ही दुष्परिणामको प्राप्त होता है — उसका खोटा फल भोगता है ॥१११॥

तदनन्तर एक दिन मध्याह्नके समय पारणाके लिए किसी नगरमें आये हुए दिगम्बर मुद्राधारी मधुपिंगलको एक सामुद्रिकशास्त्रीने देखा ॥११२॥ वह पैरसे लेकर मस्तक तक मुनिराजके समस्त अवयवोंको देखकर बहुत भारी आश्चर्यमें पड़ गया और शिर हिलाता हुआ कहने लगा कि इन मुनिके शरीरमें तिल बराबर भी ऐसा अवयव नहीं दिखाई देता जो सामुद्रिक शास्त्रकी शुद्ध दृष्टिसे दूषित किया जा सके अर्थात् जिसमें सामुद्रिक-शास्त्रके अनुसार दोष बताया जा सके ॥११३-११४॥ इनके शरीरमें जो उत्तमोत्तम अन्य लक्षणोंका समूह है वह तो एक ओर रहे एक नेत्रोंकी पीलाई ही इनके राज्य तथा सौभाग्यको सूचित कर रही है ॥११५॥ क्योंकि ऐसे लक्षणोंसे युक्त होनेपर भी जब यह नयी जवानीमें भिक्षाके लिए इधर-उधर भ्रमण कर रहा है तब ऐसे सामुद्रिक शास्त्रको धिक्कार हो ॥११६॥ यदि दुर्दैव इसे पीड़ित ही करना चाहता है तो फिर निर्दोष लक्षणोंके समूहसे इसे युक्त क्यों किया ? ॥११७॥ अथवा यह भी हो सकता है कि जो मनुष्य सुखकी इच्छा रखते हैं वे दुःखसे भयभीत होनेके कारण फलोंसे लदी किन्तु खोटा फल देनेवाली विष लताके समान प्राप्त हुई लक्ष्मीको छूते भी नहीं ॥११८॥ यथार्थमें यह मुनि शुभ लक्षणोंसे पूर्ण और शुद्ध कुलका है तथा मोक्षकी इच्छासे तप कर रहा है इसलिए इसका दीक्षा द्वारा सन्तोष धारण करना युक्त ही है ॥११९॥

सामुद्रिकके उक्त वचन सुनकर किसी मनुष्यने उससे कहा कि क्या आपने इसके सामुद्रिक शास्त्रकी बात सुनी नहीं ? वह तो समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध है ॥१२०॥ सुलसाके स्वयंवरमें इकट्ठे हुए दुष्ट राजाओंने 'यह नेत्रके लक्षणोंसे हीन है' यह कहकर इसे सभामें दूषित ठहराया था ॥१२१॥ उस समय कहा गया था कि जिस प्रकार पीठ पीछे दूसरेकी बुराई करनेवाला चुगल और अपनी प्रशंसा स्वयं करनेवाला मनुष्य निन्दित है उसी प्रकार यह पिंगल भी निन्दित है—

दोषयुक्त है ॥१२२॥ यह मधुपिंगल भोला-भाला था तथा दूसरोंको प्रमाण मानता था इसलिए शुभ नेत्रोंका धारक होनेपर भी अपने आपको अशुभ लक्षणवाला मान बैठा और लज्जित हो तप करने लगा ॥१२३॥ ठीक ही है जो मनुष्य प्रमाद, आलस्य और अहंकारके कारण स्वयं शास्त्रोंको नहीं देखते हैं वे देखे-अनदेखे पदार्थोंके विषयमें धूर्तोंके द्वारा ठगे जाते हैं ॥१२४॥ मधुपिंगलके चले जानेपर कन्याने स्वयंवरमें राजा सगरको वर लिया जिससे वह क्षत्रियोंके समूहसे घिरा भोगोंमें आसक्त है ॥१२५॥

यह सुनकर मधुपिंगलको बहुत भारी क्रोध उत्पन्न हुआ और उसी समय मरकर वह व्यन्तर देवोंमें महाकाल नामका नीच देव हुआ ॥१२६॥ आचार्य कहते हैं कि अहो ! कषायरूपी कषैले शरबतकी बड़ी विषमता है क्योंकि वह सम्यग्दर्शनरूपी औषधिके शरबतको अत्यन्त दूषित कर देता है। भावार्थ—जिस प्रकार कषैला रस पीनेसे उसके पूर्व पिया हुआ मीठा रस दूषित हो जाता है उसी प्रकार क्रोधादि कषायोंकी तीव्रतासे सम्यग्दर्शनरूप औषधिका रस दूषित हो जाता है—सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥१२७॥ राजा सगरने उपाय भिड़ाकर सुलसाका अपहरण किया था इसका ध्यान आते ही महाकाल, हृदयमें क्रोधरूपी अग्निसे अत्यन्त जलने लगा ॥१२८॥ उसका हृदय स्त्रीके वैररूपी विषसे जलकर तीव्र दाह उत्पन्न कर रहा था इसलिए वह शान्तिरूपी जलसे उसकी दाहको शान्त करनेके लिए समर्थ नहीं हो सका ॥१२९॥ वह विचार करने लगा कि जिससे शत्रुको दीर्घ संसारमें दुःखोंकी परम्परा प्राप्त होती रहे मैं उसी उपायको करता हूँ ॥१३०॥ आचार्य कहते हैं कि यह प्राणी अपने अपकारी मनुष्यका उन उपायोंसे अपकार करनेकी—बदला लेनेकी चेष्टा करता है कि जिनसे वह मूर्ख स्वयं नीचेकी ओर जाता है—अधोगतिको प्राप्त होता है ॥१३१॥ इस प्रकार राजा सगरके ऊपर क्रोधसे देदीप्यमान होता हुआ महाकाल पृथिवीपर आया और आते ही उसने शास्त्रार्थमें नारदके द्वारा जीते हुए पर्वतको देखा ॥१३२॥ महाकालने शाण्डिल्यका रूप धारण कर पर्वतको विश्वास दिलाते हुए उससे कहा कि हे पर्वत ! तुम इस बातका खेद मत करो कि मैं शास्त्रार्थमें हार गया हूँ ॥१३३॥ ध्रौव्य नामक गुरुके मैं शाण्डिल्य, तुम्हारे पिता क्षीरकदम्बक, वैन्य, उदंच और प्रावृत ये पांच शिष्य थे ॥१३४॥ तुम क्षीरकदम्बकके पुत्र हो इसलिए जो तुम्हारा पराभव है वह मेरा पराभव है और इसीलिए मैं उसे दूर करनेके लिए उद्यत हूँ ॥१३५॥ तुम मेरी सहायता पाकर अपने क्षेत्रको निष्कण्टक करो, क्योंकि वायुसे प्रज्वलित भयंकर अग्निको क्या कार्य कठिन है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥१३६॥ इस प्रकार दुर्बुद्धिके धारक महाकालने पर्वतसे कहकर तथा उसे आगे कर राजाओं सहित समस्त भरत क्षेत्रको सैकड़ों बीमारियोंसे व्याकुल कर दिया ॥१३७॥ उन बीमारियोंको नष्ट करनेके लिए पर्वत शान्तिकर्म करता था जिससे लोग विश्वास कर उसकी शरणमें आने लगे ॥१३८॥ राजा सगर भी अनेक राजाओंके साथ आदरपूर्वक उसके पास आया और बताये हुए होम तथा मन्त्र-विधानसे नीरोग हो गया ॥१३९॥ दुष्ट महाकाल देव हिंसाकी प्रेरणा देनेके लिए स्वयं बनाये हुए अनार्ष वेद ब्राह्मणोंको पढ़ाता था और उन्हें शीघ्र अपने वश कर लेता था ॥१४०॥ उसने यज्ञके फलकी इच्छा रखनेवाले एवं साक्षात् विश्वास करनेवाले क्षत्रिय आदि जनोंको अश्वमेध, अजमेध तथा गोमेध यज्ञ बतलाये ॥१४१॥ जिसमें सैकड़ों-हजारों राजा होमे जाते थे ऐसा राजसूय यज्ञ भी उस राजाओंके वैरी महाकालने दिखलाया था ॥१४२॥ यद्यपि प्राग्दिवाकर देव नामका विद्याधर नारदके साथ आकर महाकालके इस पाप कार्यमें विघ्न करनेके लिए उद्यत था तथापि देवकी मायाने उसके इस कार्यमें विघ्न डाल दिया ॥१४३॥ सो ठीक ही है क्योंकि अणिमादि गुणोंसे उत्कृष्ट नीच देव जब अपनी विक्रिया दिखानेमें तत्पर है तब मनुष्य विद्याबलसे समृद्ध होनेपर भी क्या कर सकता है ? ॥१४४॥ इस प्रकार निज और

परका अहित करनेवाले उस दुष्ट देवने आज्ञापालन करनेमें उद्यत ब्राह्मण आदिके द्वारा बहुत जीवोंका घात कराकर उन्हें यज्ञमें होम दिया। यही नहीं उस निर्दयने राजा सगर और सुलसाको भी यज्ञमें होम दिया और इस प्रकार हिंसानन्द नामक रौद्र ध्यानको प्राप्त होता हुआ अपने स्थान-पर चला गया ॥१४५-१४६॥ क्रोधसे युक्त महाकाल देवने उन अनार्ष वेदोंको चलाया और पर्वत आदिने समस्त पृथिवीपर उनका विस्तार किया ॥१४७॥ नारदका एक सम्यग्दृष्टि पुत्र था। उसे प्रागदिवाकर देव नामक विद्याधरने विद्याओंसे सहित अपनी परम कल्याणी पुत्री प्रदान की थी ॥१४८॥ उसी वंशमें वसुदेव ब्राह्मणकी क्षत्रिया स्त्रीसे यह सोमश्री नामकी उत्तम कन्या उत्पन्न हुई है ॥१४९॥ करालब्रह्मदत्त नामक अवधिज्ञानी मुनिराजने कहा था कि जो इसे वेदोंमें जीतेगा उसी महापुरुषकी यह स्त्री होगी ॥१५०॥

यह सुनकर श्रीमान् कुमार वसुदेवने उस समय समस्त वेदोंका अध्ययन किया और सोमश्रीको जीतकर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह किया ॥१५१॥ जिस प्रकार नववधूका कुमार वसुदेवमें दृढ़ प्रेम था उसी प्रकार कुमार वसुदेवका भी नववधूमें दृढ़ प्रेम था। इसलिए उनके सुखका क्या वर्णन किया जाये ? ॥१५२॥ कुमार वसुदेवने एकान्त स्थानमें अपने वक्षःस्थलसे उसके स्थूल स्तनोंका पीडन किया, केश खींचते हुए चुम्बन किया, नखक्षत करते हुए नितम्बका आस्फालन किया और अधरको डँसा परन्तु कामातुर सोमश्रीने उस प्रकारकी बाधाको कुछ भी नहीं जाना ॥१५३॥ जो अपने सौन्दर्य तथा गुणरूपी सम्पदाके द्वारा विद्याधरोंसे भी श्रेष्ठ थे, जो विद्याधरियोंके साथ भ्रमण करते थे, जो रतिक्रियामें अत्यन्त कुशल एवं युवा थे और जो सुबुद्धि-रूपी सुन्दर स्त्रीके सखा थे, ऐसे कुमार वसुदेवने गिरितट नामक नगरमें स्वतन्त्र एवं जिनभक्त रमणी सोमश्रीके साथ अत्यधिक क्रीडा की ॥१५४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें सोमश्रीके लाभका वर्णन करनेवाला तेईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२३॥

सर्ग- २४

अथानन्तर एक समय कुमार वसुदेव, इन्द्रशर्मा ब्राह्मणके उपदेशसे गिरितट नगरके उद्यान-में रातको विद्या सिद्ध कर रहे थे कि कुछ धूर्तोंने उन्हें देख लिया ॥१॥ वे उन्हें पिछली रात्रिमें पालकीपर बैठाकर कहीं दूर ले गये। वसुदेव वहाँसे चलकर तिलवस्तु नामक नगर पहुँचे ॥२॥ और वहाँ नगरके बाहर जो चैत्यालय था उसके उद्यानमें रात्रिके समय सो गये, वहाँ राक्षसके समान एक मनुष्यभक्षी पुरुषने आकर उन्हें जगाया ॥३॥ वह कहने लगा कि अरे मनुष्य ! जाग-जाग, तू यहाँ कौन सो रहा है ? भूखसे पीड़ित बाघके समान मेरे मुखमें तू स्वयं आकर पड़ा है ॥४॥ शूर-वीर वसुदेव उस भयंकर शब्दसे जाग उठे। जब मनुष्यभक्षी पुरुष अपनी भुजासे वसुदेवको मारनेके लिए उद्यत हुआ तब उन्होंने भी अपनी भुजाओंसे उसे कसकर पिटाई लगायी ॥५॥ तदनन्तर प्रबल शक्तिको धारण करनेवाले उन दोनोंके बीच पृथिवीको कँपा देनेवाला युद्ध हुआ। उनका वह युद्ध मुट्ठियोंके प्रबल प्रहारसे उत्पन्न घोर शब्दसे भयंकर था ॥६॥ वसुदेव बहुत बलवान् थे इसलिए उन्होंने बहुत देर तक युद्ध करनेके बाद उस दानवाकार मनुष्यको मल्लयुद्धमें मारकर प्राण-रहित कर दिया ॥७॥ जब प्रातःकाल हुआ तब नगरवासी लोग, उत्तम पौरुषके धारी एवं नरभोजी मनुष्यको नष्ट करनेवाले वसुदेवको रथपर बैठाकर नगरमें ले गये और उन्होंने वहाँ उनका बहुत सम्मान किया ॥८॥ कुमार वसुदेव उस नगरमें रूप और सौन्दर्यको धारण करनेवाली कुल और शीलसे सुशोभित पांच सौ कन्याएँ प्राप्त कर वहाँ रहने लगे ॥९॥ मनुष्योंके मांसको खानेवाला यह दुष्ट मनुष्य यहाँ कहाँसे आया था ? इस प्रकार वसुदेवके पूछनेपर वहाँके वृद्धजनोंने इस प्रकार कहा ॥१०॥

कलिंग देशके कांचनपुर नामक नगरमें शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला एक जितशत्रु नामका राजा था ॥११॥ अपने देशमे उस राजाकी आज्ञाका कोई भी उल्लंघन नहीं करता था। वह नीतिपूर्वक देशका पालन करता था, उसकी इच्छा जीव-हिंसासे दूर रहना थी तथा समस्त राज्यमें उसने अभयकी घोषणा करा रखी थी ॥१२॥ उसका एक सौदास नामका पुत्र था। वह मांस खानेका बड़ा लम्पट था इसलिए उसने पितासे मयूरका मांस खानेकी आज्ञा प्राप्त कर ली थी ॥१३॥ प्रतिदिन रसोइया उसे मयूरका मांस तैयार कर देता था और वह उसे महलके भीतर छिपकर खाया करता था ॥१४॥ किसी एक दिन तैयार मांसको बिल्ली उठा ले गयी जिससे मांस-की तलाशमें रसोइया नगरके बाहर गया। वहाँ उसने एक मरा हुआ बालक देखा जिसे वह छिपाकर ले आया और अच्छी तरह तैयार कर उसे सौदासके लिए दे दिया। सौदासने उस मांसको बड़ी प्रसन्नतासे खाया और आदरपूर्वक उस रसोइयासे पूछा कि यह मांस किसका है ? ॥१५-१६॥ वह कहने लगा कि हे भद्र ! मैंने पहले बहुत-से मांस खाये हैं पर वे इस मांसके रसके सौवें भागका भी स्पर्श नहीं करते ॥१७॥ हे भले आदमी ! जो बात सत्य और हितकारी हो वह कहो। यह सच है कि तुम्हें मुझसे कुछ भी भय नहीं है। इस प्रकार कहनेपर नीतिसे युक्त रसोइयाने अपनी सब चेष्टा सौदासके लिए बतला दी ॥१८॥ रसोइयाकी बात सुनकर सौदासने उसकी बहुत प्रशंसा की और कहा कि मैं तुम्हारे ऊपर बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम प्रतिदिन मेरे लिए

मनुष्यका ही मांस लाया करो ॥१९॥

तदनन्तर पिताके मरनेपर सौदास राज्य-सिंहासनपर आरूढ़ हुआ और उसका रसोइया किसी उपायसे प्रतिदिन बच्चोंको मारने लगा ॥२०॥ 'प्रतिदिन एक-एक बच्चेकी हानि होती जा रही है' यह देख नगरवासी लोगोंमें खलबली मच गयी। उन्होंने परीक्षा कर सौदासको शिशु-भक्षक पाया। और उसे शीघ्र ही देशसे बाहर खदेड़ दिया ॥२१॥ अब वह अवसर देख व्याघ्रको तरह रात्रिमें झपाटा मारकर मनुष्योंको ले जाता है और दिन-भर जंगलमें रहता है सो ठीक ही है क्योंकि व्यसनमें पड़ा मनुष्य क्या नहीं करता है ? ॥२२॥ हे कुमार ! लोगोंको भयभीत करनेवाला यह वही सौदास था। यह हम लोगोंके लिए असाध्य था परन्तु असाधारण शक्तिको धारण करनेवाले आपने उसे आज यमलोक पहुँचा दिया ॥२३॥ इस प्रकार नगरके वयोवृद्ध लोगोंने सौदासकी कुचेष्टाओंका वर्णन कर वस्त्र, माला तथा आभूषण आदिसे वसुदेवका खूब सत्कार किया ॥२४॥

तदनन्तर वहांसे चलकर कुमार वसुदेवने अचलग्रामके सेठकी वनमाला नामक पुत्रीको प्राप्त किया—उसके साथ विवाह किया और वहांसे वनमालाके साथ चलकर वे वेदसामपुर पहुँचे ॥२५॥ वीर वसुदेवने वेदसामपुरके राजा कपिलमुनिको युद्धमें जीतकर उसकी कपिला नामक पुत्रीके साथ विधि-पूर्वक विवाह किया ॥२६॥ वहाँ कपिलाके भाई अंशुमान नामक सालेके साथ वसुदेव परम प्रीतिको प्राप्त हुए जिससे वहाँ रहकर उन्होंने कपिलाके कपिल नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥२७॥ एक दिन जिस नीलकण्ठने पहले नीलयशाका अपहरण किया था वह गन्धहस्तीका रूप धरकर वेदसामपुरमें आया। उसे बन्धनमें डालनेके लिए जब वसुदेव उसपर आरूढ़ हुए तो उन्हें वह हरकर आकाशमें ले गया। यह देख वसुदेवने उसे मुट्ठियोंके दृढ़ प्रहारसे खूब पीटा जिससे शोकवश वह गन्धहस्तीका रूप छोड़कर नीलकण्ठ हो गया ॥२८॥ वसुदेव धीरे-धीरे तालाबके जलमें गिरे और बिना किसी आकुलताके अटवीसे निकलकर शालगुहा नामक नगरीमें पहुँच गये ॥२९॥ वहाँ धनुर्वेदके उपदेशसे उन्होंने पद्मावती नामकी कन्या प्राप्त की। वहाँसे चलकर जयपुर गये और वहाँके राजाको जीतकर उसकी कन्या भी प्राप्त की ॥३०॥ वहाँसे चलकर वे अपने साले अंशुमान्‌के साथ भद्रिलपुर नामक श्रेष्ठ नगर गये। वहाँ उस समय पौण्ड्र नामका राजा राज्य करता था। उसकी चारुहासिनी नामकी एक कन्या थी, वह कन्या दिव्य ओषधिके प्रभावसे सदा युवाका वेष धारण करती थी। वसुदेवको इसका पता लग गया इसलिए उन्होंने उस अतिशय सुन्दरी कन्याके साथ विवाह कर लिया ॥३१–३२॥ तथा कुछ समय बाद उस कन्यामें उन्होंने लक्ष्मीका पात्र एक पौण्ड्र नामका पुत्र उत्पन्न किया। एक दिन वसुदेव रात्रिके समय शयन कर रहे थे कि उनका वैरी अंगारक उन्हें हंसका रूप धरकर हर ले गया ॥३३॥ जब उससे छूटे तो धीरे-धीरे आकाशसे गंगा नदीमें गिरे। उसे पार कर जब किनारेपर आये तो सवेरा होते ही उन्होंने इलावर्धन नामका नगर देखा ॥३४॥ वहाँ वे एक दुकानमें सेठके द्वारा दिये हुए उत्तम आसनपर बैठ गये। उनके बैठते ही क्षणमात्रमें वह दुकान धनसे भर गयी ॥३५॥ इसको सेठ, वसुदेवका ही प्रभाव जानकर उन्हें अपने घर ले गया तथा वहाँ ले जाकर उसने भाग्यशाली तरुण वसुदेवके लिए अपनी रत्नवती कन्या प्रदान की ॥३६॥ वसुदेव रत्नवतीके साथ निरन्तराय दिव्य भोगोंको भोगते हुए वहीं रहने लगे। तदनन्तर वे एक समय इन्द्रध्वज विधान देखनेके लिए महापुर नगर गये ॥३७॥ वहाँ उन्होंने नगरके बाहर बहुत-से बड़े-बड़े महल देखकर किसी मनुष्यसे पूछा कि ये महल किसने किस लिए बनवाये हैं ? ॥३८॥ मनुष्यने कहा कि राजा सोमदत्तने अपनी कन्याके स्वयंवरमें आनेवाले राजाओंके ठहरनेके लिए ये नाना प्रकारके महल बनवाये थे ॥३९॥ परन्तु कन्या, किसी कारण स्वयंवरको विधिसे विरक्त हो गयी इसलिए स्वयंवर नहीं हो

पाया और सब लोग विदा कर दिये गये ॥४०॥ यह सुनकर कुमार वसुदेव, उस कन्याके मनकी गतिका विचार करते हुए इन्द्रध्वज विधान देखनेके लिए ज्यों ही बैठे त्यों ही रक्षकोंके साथ राजाकी स्त्रियाँ सहसा वहाँ आ पहुँचीं। कुछ समय बाद वे स्त्रियाँ इन्द्रध्वज विधानको नमस्कार कर अपने घरकी ओर चलीं ॥४१-४२॥ उसी समय बन्धनका खम्भा तोड़कर एक मदोन्मत्त हाथी साक्षात् मृत्यु (यम) की तरह मनुष्योंको मारता हुआ वहाँ आ पहुँचा ॥४३॥ उस समय जो लोग मारे जा रहे थे तथा जो मार्गमें यह सब देखते हुए चिल्ला रहे थे उनका बहुत भारी कलकल शब्द दशों दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥४४॥ वह मदोन्मत्त हाथी बड़े वेगसे उन स्त्रियोंके वाहनोंके समीप आया जिससे भयभीत हो एक कन्या वाहनसे नीचे पृथिवीपर गिर पड़ी ॥४५॥ यह देख कुमार वसुदेवने उस हाथीको मदरहित कर भयसे घबड़ायी हुई उस कन्याकी रक्षा की और सब लोगोंके देखते-देखते वे उस हाथीके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥४६॥ तदनन्तर जब हाथी थक गया तो उसे छोड़ उन्होंने भयसे मूच्छित कन्याको सान्त्वना दी। कन्याने उठकर सुन्दर रूपके धारक वसुदेवको देखा। देखते ही वह गरम और लम्बी साँस भरने लगी, उसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये तथा लज्जासे नम्रीभूत होकर उसने स्पर्शजन्य सुखको देनेवाला कुमारका हाथ पकड़ लिया ॥४७-४८॥

तदनन्तर वसुदेव यथास्थान चले गये और वृद्धा धाय, तथा कुलकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ उस कन्याको लेकर अन्तःपुर चली गयीं ॥४९॥ तत्पश्चात् एक दिन कुमार वसुदेव कुबेरदत्त सेठके घर आभूषण आदि धारण कर बैठे थे कि इतनेमें राजाकी आज्ञासे उनकी द्वारपालिनी आकर कहने लगी कि हे देव ! यह समाचार आपको अच्छी तरह विदित ही है कि यहांका राजा सोमदत्त है और उसकी रानी पूर्णचन्द्र नामसे प्रसिद्ध है ॥५०-५१॥ इन दोनोंके भूरिश्रवा नामका पुत्र और सोमश्री नामकी कन्या है। कन्या सोमश्रीके स्वयंवरके लिए राजाने अनेक राजाओंको बुलाया था ॥५२॥ परन्तु सोमश्री रात्रिके समय महलके ऊपर बैठी थी वहाँ देवोंका आगमन देख वह जाति स्मरणसे युक्त हो गयी और अपने पूर्व पतिके प्रेमको प्रकट करती हुई मूच्छित हो गयी ॥५३॥ जब वह सचेत हुई तो उठकर अपने देव पतिका ध्यान करने लगी और स्नान, भोजन आदिकी इच्छा छोड़ मौन लेकर बैठ गयी ॥५४॥ एकान्तमें मैंने उससे पूछा तो उसने बड़ी कठिनाई-से मुझे बताया कि पूर्वजन्ममें मैंने देवके साथ क्रीड़ा की थी, उसने यह भी बताया कि जब मैं देवी थी और वह देव मुझसे पहले ही वहाँसे च्युत हो गया तब केवली भगवान्के सत्य कथनसे मुझे मालूम हुआ था कि वह देव हरिवंशमें उत्पन्न हुआ है तथा हाथीके भयको नष्ट करनेवाले उस पतिके साथ मेरा पुनः समागम होगा। इस समय केवली भगवान्का कथन ज्योंका-त्यों मिल गया है अर्थात् जैसा उन्होंने बताया था वैसा ही हुआ है इसलिए वह आपके समागमकी इच्छा करती है ॥५५-५७॥ मेरे कथनसे सब समाचार जानकर राजाने मुझे आपके पास भेजा है इसलिए हे सौम्य ! मेरी यही प्रार्थना है कि आप सोमश्रीके साथ विवाह मंगलको प्राप्त हों ॥५८॥

इस प्रकार पूर्व भवका सम्बन्ध बतलानेपर वसुदेव बहुत ही सन्तुष्ट हुए और उन्होंने राजा सोमदत्तकी पुत्री सोमश्रीके साथ जो कि उनकी पूर्वभवकी प्रिय स्त्री थी विवाह कर लिया ॥५९॥ तदनन्तर जब अपने मुख कमलकी सुगन्धि और मकरन्दका उपयोग करनेवाले सोमश्री और वसुदेवका काल सुखसे व्यतीत हो रहा था तब एक दिन रात्रिके समय पतिके भुजपंजरमें शयन करनेवाली लक्ष्मीके समान सुन्दर सोमश्रीको कोई विद्याधर वैरी हर ले गया ॥६०-६१॥ जब वसुदेव जागे तब पत्नीको न देख बहुत व्याकुल हुए और 'हे सोमश्री ! तू कहाँ गयी ? जल्दी आओ, आओ' इस प्रकार उसे पुकारने लगे ॥६२॥ जिस विद्याधरने सोमश्रीका हरण किया था उसकी बहनने वसुदेवके पास आकर सोमश्रीका रूप धारण कर लिया और उनके पुकारते ही कहा कि 'मैं यह तो हूँ' इस प्रकार उत्तर देकर पासमें खड़ी हुई तथा सोमश्रीका रूप धारण

करनेवाली विद्याधरकी बहनको वसुदेवने देखा ॥६३॥ उसे देखकर कुमारने पूछा कि हे प्रिये ! बाहर किस लिए गयी थीं ? इसके उत्तरमें उसने स्वयं सोमश्रीके समान कहा कि गरमी शान्त करनेके लिए गयी थी ॥६४॥ इस प्रकार वसुदेवके रूपसे वशीभूत हुई शत्रुकी बहन रूप बदलकर तथा अपना कन्याभाव छोड़कर उनके साथ क्रीड़ा करने लगी ॥६५॥ वह प्रतिदिन भोग भोगनेके बाद पति जब सो जाते थे तब सोती थी और उनके पहले ही जागकर जंघा तथा पैर आदिका मर्दन करने लगती थी ॥६६॥

अथानन्तर किसी दिन वसुदेव उससे पहले जाग गये और रात्रिके समय सोमश्रीका रूप छोड़कर सोती हुई उस स्त्रीको उन्होंने असली रूपमें देख लिया ॥६७॥ यह देख धीर-वीर वसुदेव आश्चर्यमें पड़ गये। उसी समय वह स्त्री भी सहसा जाग उठी। वसुदेवने उससे पूछा कि अहो ! तू सोमश्रीके समान कौन है ? ॥६८॥ इसके उत्तरमें उसने प्रणाम कर कहा कि हे सौम्य ! दक्षिण श्रेणीमें एक स्वर्णाभ नामका नगर है। इसका स्वामी मनोवेग नामका विद्याधर है ॥६९॥ मनोवेगकी अंगारवती नामकी अत्यन्त सुन्दर पत्नी है। उसके मानसवेग नामका पुत्र और वेगवती नामकी मैं पुत्री हूँ ॥७०॥ हमारे पिता मानसवेगको राज्य देकर तपस्यासे पापका उपशम करनेके लिए तपोवनमें चले गये ॥७१॥ हे आर्य ! हमारा भाई मानसवेग, सोमश्रीको हरकर अपने श्रेष्ठ नगरको ले गया जहाँ वह शीलकी मर्यादाका अवलम्बन लेकर विद्यमान है ॥७२॥ मानसवेगने उसे प्रसन्न करनेके लिए मुझे नियुक्त किया था पर मैं इस कार्यमें समर्थ नहीं हो सकी अतः आपकी प्रियाके सत्त्व और शील गुणसे वशीभूत हो उसकी सखी बन गयी ॥७३॥ उस समय शीघ्रतासे अपना समाचार देनेके लिए उसने मुझे आपके पास भेजा था पर मैं आपकी स्त्री बन गयी सो ठीक ही है क्योंकि चित्तवृत्तियाँ नाना प्रकारकी होती हैं ॥७४॥ इस प्रकार वेगवतीने कुमारको सब समाचार बताकर उनकी आज्ञानुसार सोमश्रीके पिता तथा भाई आदिको भी उसके हरण आदिके सब समाचार क्रमसे सुनाये ॥७५॥ जिन्हें सुनकर वे सब खेदखिन्न हुए। इधर वेगवती भी अपने असली रूपमें रहकर चिरकाल तक पतिके साथ क्रीड़ा करती रही ॥७६॥

अथानन्तर जब भोगी वसुदेव वेगवतीके साथ सुखसे क्रीड़ा करते हुए समय व्यतीत कर रहे थे तब वसन्तका महीना आ पहुँचा और भ्रमर मधु पी-पीकर उन्मत्त होने लगे ॥७७॥ कदाचित् वसुदेव सम्भोगसे खिन्न हुई वेगवतीके साथ सो रहे थे कि रात्रिके समय मानसवेग विद्याधर उन्हें शीघ्र ही हर ले गया। जागनेपर उन्होंने मुट्ठियोंके दृढ़ प्रहारसे उसे इतना पीटा कि उसने भयसे विह्वल हो उन्हें गंगाके जलमें छोड़ दिया ॥७८-७९॥ उस समय गंगाके जलमें बैठकर एक विद्याधर विद्या सिद्ध कर रहा था सो वसुदेव आकाशसे उसके कन्धेपर गिरे और उनके गिरते ही उस विद्याधरकी विद्या सिद्ध हो गयी ॥८०॥ विद्या सिद्ध होनेपर वह विद्याधर तो वसुदेवको प्रणाम कर चला गया और एक विद्याधर कन्या उन्हें विजयार्ध पर्वतपर ले गयी ॥८१॥ उनके वहाँ पहुँचते ही आकाश विद्याधरोंसे व्याप्त हो गया। वे विद्याधर उस समय पाँच रंगके फूलोंकी वर्षा कर रहे थे तथा सामने आ-आकर प्रणाम करते थे ॥८२॥ तदनन्तर उन विद्याधरोंने सूर्यके समान देदीप्यमान रथपर बैठाकर वसुदेवको नगरमें प्रवेश कराया। उस समय तुरही और शंखोंके शब्दसे दशों दिशाएँ भर गयी थीं ॥८३॥ वहाँ कामदेवके समान सुन्दर शरीरके धारक वसुदेवने, दधिमुख आदि विद्याधरोंके द्वारा प्रदत्त मदनवेगा नामक कन्याके साथ हर्षपूर्वक विवाह किया ॥८४॥ और वहीं रहकर कामके वेगसे उत्पन्न भावको धारण करते हुए वसुदेवने पीनस्तनी मदनवेगाके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा की ॥८५॥

कदाचित् कुमार वसुदेव, जिनधर्मके प्रसादसे मदनवेगाके साथ कामजनित सुखका उपभोग कर रहे थे कि रतिकालमें मदनवेगाने उन्हें अत्यन्त आनन्द दिया इसलिए प्रसन्न होकर उन्होंने

मदनवेगासे कहा कि 'प्रिये ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ जो वर माँगना हो माँगो।' इस प्रकार वह वर पाकर मदनवेगाने उनसे यही वर माँगा कि हमारे पिता बन्धनमें पड़े है सो उन्हे छुड़ा दीजिए ॥८६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें मदनवेगाके लाभका वर्णन करनेवाला चौबीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२४॥

□

सर्ग- २५

अथानन्तर किसी दिन मदनवेगाका भाई दधिमुख अपने पिताको बन्धनसे छुड़ानेकी इच्छा करता हुआ कुमार वसुदेवके पास आकर निम्नांकित सन्दर्भ कहने लगा ॥१॥ उसने कहा कि हे देव ! सुनिए, नमिके वंशमें असंख्यात राजाओंके हो जानेसे अरिंजयपुरका स्वामी राजा मेघनाद हुअ ॥२॥ उसके एक पद्मश्री नामकी कन्या थी। उस कन्याके विषयमें निमित्तज्ञानियोंने बताया था कि यह चक्रवर्तीकी स्त्री-रत्न होगी ॥३॥ उसीके समयमें नभस्तिलक नगरका राजा वज्रपाणि भी हुआ। उसने रूपवती पद्मश्री कन्याकी पहले अनेक बार याचना की परन्तु जब वह उसे नहीं प्राप्त कर सका तो उस दुष्ट विद्याधरने रुष्ट होकर युद्ध ठान दिया। मेघनाद प्रबल शक्तिका धारक था इसलिए वज्रपाणि उसे युद्धमें जीत नहीं सका फलस्वरूप वह कार्यमें असफल हो अपने नगरको वापस लौट गया ॥४–५॥ उसी समय किन्हीं मुनिराजको केवलज्ञानरूपी लोचनकी प्राप्ति हुई सो उनकी पूजाके अर्थ अनेक मनुष्य, देव और धरणेन्द्रोंकी सभा जुटी। उस सभामें केवली भगवान्‌की पूजा कर मेघनादने उनसे पूछा कि हे प्रभो ! इस भरत क्षेत्रमें मेरी पुत्रीका भर्ता कौन होगा ? इस प्रकार पूछनेपर केवलज्ञानी मुनिराजने उसके योग्य वर और उसके कुलका निरूपण किया ॥६–७॥

उन्होंने कहा कि हस्तिनापुर नगरमें कौरववंशमें उत्पन्न हुआ कार्तवीर्य नामका एक राजा था जो पराक्रमसे बहुत ही उद्दण्ड था ॥८॥ उसने कामधेनुके लोभसे जमदग्नि नामक तपस्वीको मार डाला था। जमदग्निका लड़का परशुराम था वह भी बड़ा बलवान् था अतः उसने क्रोधवश पिताका घात करनेवाले कार्तवीर्यको मार डाला ॥९॥ इतनेसे ही उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ अतः उसने क्रुद्ध होकर युद्धमें स्त्री-पुत्रों सहित और भी अनेक क्षत्रियोंको मार डाला। इस तरह जब वह अनेक क्षत्रियोंको मार रहा था तब राजा कार्तवीर्यकी गर्भवती तारा नामकी पत्नी भयभीत हो गुप्त रूपसे निकलकर कौशिक ऋषिके आश्रममें जा पहुँची ॥१०–११॥ वहाँ भय सहित निवास करती हुई तारा रानीने एक पुत्र उत्पन्न किया जो क्षत्रियोंके त्रासको नष्ट करनेवाला आठवाँ चक्रवर्ती होगा ॥१२॥ क्योंकि वह पुत्र भूमिगृह—तलघरमें उत्पन्न हुआ था इसलिए 'सुभौम' इस नामसे पुकारा जाने लगा। इस समय वह बालक कौशिक ऋषिके रमणीय आश्रममें गुप्त रूपसे बढ़ रहा है ॥१३॥ वही कुछ ही दिनोंमें परशुरामको मारनेवाला बलशाली चक्रवर्ती होगा और वही तुम्हारी कन्याका पति होगा ॥१४॥ परशुराम यमराजके समान क्रूर है वह सात बार क्षत्रियोंका अन्त कर इस समय ब्राह्मणोंके हितमें अपना मन लगा रहा है ॥१५॥ इस तरह जिसने प्रतापरूपी अग्निसे समस्त दिशाओंको व्याप्त कर दिया है तथा मनोवांछित दान देकर जिसने याचकोंकी आशाएँ पूर्ण कर दी हैं ऐसा परशुराम इस समय एकछत्र पृथिवीपर निरन्तर वृद्धिको प्राप्त हो रहा है ॥१६॥

इधर तपस्वीके आश्रममें निवास करनेवाला सुभौम जैसे-जैसे बढ़ने लगा उधर परशुरामके घर वैसे-वैसे ही सैकड़ों उत्पात होने लगे ॥१७॥ उत्पातोंसे आशंकित एवं आश्चर्यचकित हो उसने निमित्तज्ञानीसे पूछा कि ये उत्पात मेरे किस अनिष्टको कह रहे हैं ? ॥१८॥ निमित्तज्ञानीने कहा

कि आपका शत्रु कहीं छिपकर वृद्धिको प्राप्त हो रहा है। वह कैसे जाना जा सकता है ? इस प्रकार परशुरामके पूछनेपर निमित्तज्ञानीने पुनः कहा कि ॥१९॥ तुम्हारे द्वारा मारे हुए क्षत्रियोंकी डाढ़ें जिसके भोजन करते समय खीर रूपमें परिणत हो जावें वही तुम्हारा उद्दण्ड शत्रु है ॥२०॥ यह सुनकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ शत्रुको जाननेकी इच्छा करते हुए परशुरामने शीघ्र ही एक विशाल दानशाला बनवायी ॥२१॥ और दानशालाके मध्यमें डाढ़ोंसे भरा बरतन रखकर उसके अध्यक्षको सब वृत्तान्त समझा दिया जिससे वह यत्नपूर्वक वहाँ सदा अवस्थित रहता है ॥२२॥ यह सब समाचार सुन राजा मेघनाद केवलीकी वन्दना कर शीघ्र ही हस्तिनापुर गया और वहाँ उसने कुमार सुभौमको देखा ॥२३॥ उस समय सुभौम कुमार शस्त्र और शास्त्ररूपी सागरके अन्तिम तटपर विद्यमान था, अधिक शोभासे युक्त था, सब ओर उसका देदीप्यमान प्रताप फैल रहा था, और वह उदित होते हुए सूर्यके समान जान पड़ता था ॥२४॥ जिस प्रकार ईन्धनको नष्ट करनेके लिए वायु अग्निको प्रेरित कर देती है उसी प्रकार पूर्ववृत्तान्त सुनानेवाले राजा मेघनादने उसे शत्रुरूपी ईन्धनको जलानेके लिए धीरेसे प्रेरित कर दिया ॥२५॥ वह उसी समय घरसे निकल राजा मेघनादके साथ शत्रुके घर जा पहुँचा और भूखा बन दर्भका आसन ले परशुरामकी दानशालामें भोजनार्थ जा बैठा ॥२६॥ ब्राह्मणके अग्रासनपर बैठे हुए कुमार सुभौमके आगे डाढ़ोंका पात्र रखा गया और उसके प्रभावसे समस्त डाढ़ें खीर रूपमें परिणत हो गयीं ॥२७॥ तदनन्तर अध्यक्षके आदमियोंने शीघ्र ही जाकर परशुरामके लिए इसकी सूचना दी और परशुराम उसे मारनेकी इच्छासे फरसा हाथमें लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा ॥२८॥ जिस समय सुभौम थालीमें आनन्दसे खीरका भोजन कर रहा था उसी समय परशुरामने उसे मारना चाहा। परन्तु सुभौमके पुण्य प्रभावसे वह थाली चक्रके रूपमें परिवर्तित हो गयी और उसीसे उसने शीघ्र ही परशुरामको मार डाला ॥२९॥ सुभौम अष्टम चक्रवर्तीके रूपमें प्रकट हुआ। चौदह रत्न, नौ निधियाँ और मुकुट-बद्ध बत्तीस हजार राजा उसकी सेवा करने लगे ॥३०॥ स्त्रीरत्नके लाभसे सन्तुष्ट हुए चक्रवर्ती सुभौमने मेघनादको विद्याधरोंका राजा बना दिया जिससे शक्तिसम्पन्न हो उसने वज्रपाणिको मार डाला ॥३१॥ तदनन्तर शठके प्रति शठता दिखानेवाले सुभौम चक्रवर्तीने भी क्रोधयुक्त हो चक्ररत्नसे इक्कीस बार पृथिवीको ब्राह्मण-रहित किया ॥३२॥ चक्रवर्ती सुभौम साठ हजार वर्ष तक जीवित रहा परन्तु तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ इसलिए आयुके अन्तमें मरकर सातवें नरक गया ॥३३॥ राजा मेघनादकी सन्ततिमें आगे चलकर छठा राजा बलि हुआ। बलि विद्याबलसे उद्दण्ड था, और तीन खण्डका स्वामी प्रतिनारायण था ॥३४॥ उसी समय नन्द और पुण्डरीक नामक बलभद्र तथा नारायण विद्यमान थे और अतिशय बलके धारक इन्हीं दोनोंके द्वारा युद्धमें बलि मारा गया ॥३५॥ बलिके वंशमें सहस्रग्रीव, पंचशतग्रीव और द्विशतग्रीवको आदि लेकर जब बहुत-से विद्याधर राजा हो चुके तब हे यादव! विद्युद्वेग नामका राजा उत्पन्न हुआ। वह विद्युद्वेग हमारा पिता है तथा आपका श्वसुर है ॥३६-३७॥ एक दिन राजा विद्युद्वेगने अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा कि हे भगवन्! हमारी इस मदनवेगा पुत्रीका पति कौन होगा ? ॥३८॥ मुनिराजने कहा कि रात्रिके समय गंगामें स्थित होकर विद्या सिद्ध करनेवाले तुम्हारे चण्डवेग नामक पुत्रके कन्धेपर जो गिरेगा उसीकी यह स्त्री होगी ॥३९॥ यह निश्चय करके पिताने अपने चण्डवेग नामक पुत्रको तेज वेगसे युक्त गंगा नदीमें विद्या सिद्ध करनेके कार्यमें नियुक्त किया ॥४०॥ नभस्तिलक नगरका राजा त्रिशिखर नामका दुष्ट विद्याधर, अपने सूर्यक नामक पुत्रके लिए इस कन्याकी कई बार याचना कर चुका था पर इसे प्राप्त नहीं कर सका ॥४१॥ इसलिए सदा वैर रखता था। एक दिन युद्धमें अवसर पाकर उसने हमारे पिताको बाँधकर कारागृहमें डाल दिया ॥४२॥ इस समय प्रबल पराक्रमको धारण करनेवाले आप हम सबको प्राप्त हुए हैं इसलिए शत्रुके द्वारा बन्धनको प्राप्त

अपने श्वसुरको शीघ्र ही बन्धनसे मुक्त करो ॥४३॥ सुभौम चक्रवर्तीने प्रसन्न होकर हमारे पूर्वजोंके लिए जो विद्यास्त्र दिये थे हे स्वामिन् ! शत्रुका घात करनेकी इच्छासे उन्हें ग्रहण कीजिए ॥४४॥

इस प्रकार दधिमुखके कहे वचन सुनकर प्रतापी वसुदेवने श्वसुरको छुड़ानेके लिए मनमें विचार किया ॥४५॥ तदनन्तर चण्डवेगने युवा वसुदेवके लिए देव जिनकी सदा सेवा करते थे ऐसे बहुत-से विद्यास्त्र विधिपूर्वक प्रदान किये ॥४६॥ उनमें-से कुछ विद्यास्त्रोंके नाम ये हैं—ब्रह्मशिर, लोकोत्सादन, आग्नेय, वारुण, माहेन्द्र, वैष्णव, यमदण्ड, ऐशान, स्तम्भन, मोहन, वायव्य, जृम्भण, बन्धन, मोक्षण, विशल्यकरण, व्रणसंरोहण, सर्वास्त्रच्छादन, छेदन और हरण ॥४७-४९॥ इस प्रकार इन्हें आदि लेकर चलाने और संकोचनेको विधि सहित अन्य अनेक विद्यास्त्र चण्डवेगने कुमार वसुदेवके लिए दिये और उन्होंने आदरके साथ उन्हें ग्रहण किया ॥५०॥ उस समय बलकी अधिकतासे युद्धकी इच्छा रखता हुआ दुष्ट त्रिशिखर, स्वयं ही सेनाओंके साथ शीघ्र चण्डवेगके नगरके समीप आ पहुँचा ॥५१॥ 'जिसे जाकर बांधना था वह स्वयं ही पास आ गया' यह विचार-कर सन्तुष्ट होते हुए वसुदेव, अपने सालों आदिकी सेनाके साथ बाहर निकले ॥५२॥ विद्याधरोंके झुण्डके बीच वह वसुदेव कल्पवासी देवोंके समूहके बीच इन्द्रके समान सुशोभित हो रहे थे ॥५३॥ और आकाशमें खड़े मातंग जातिके विद्याधरोंके बीच त्रिशिखर क्रूर असुरोंके बीचमें स्थित चमरेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥५४॥ दोनों ही सेनाओंके बड़े-बड़े विमानों, मदोन्मत्त हाथियों और वायुके समान वेगशाली घोड़ोंसे आकाश आच्छादित हो गया ॥५५॥ शस्त्र-समूहकी किरणोंसे जिन्होंने सूर्यकी किरणोंको आच्छादित कर दिया था तथा जो तुरही आदि वादित्रोंके शब्दसे अपना सन्तोष प्रकट कर रहीं थीं ऐसी दोनों सेनाओंकी आकाशमें मुठभेड़ हुई ॥५६॥ कानों तक खींचे हुए धनुष-मण्डलोंसे छूटे बाणोंसे मनुष्योंके बाह्य हृदय तो खण्डित हुए थे परन्तु अन्तर्मन हृदय नहीं ॥५७॥ युद्धमें चक्रोंकी तीक्ष्ण धाराओंसे तेजस्वी मनुष्योंके शिर तो कटे थे परन्तु चन्द्रमा और शंखके समान उज्ज्वल यश नहीं ॥५८॥ युद्धमें तलवारकी धारके पड़नेसे मूर्च्छित हुआ योद्धा तो गिरा था, परन्तु अनेक युद्धोंमें वृद्धिको प्राप्त हुआ प्रताप नहीं ॥५९॥ मुद्गरकी भयंकर चोटसे अभिमानीका नेत्र तो घूमने लगा था परन्तु शत्रुकी विजयरूपी उत्कृष्ट ग्रासको खानेवाला मन नहीं ॥६०॥ युद्धस्थलमें धीरता और शूरतासे विशेषताको प्राप्त हुई हाथी, घोड़ा, रथ और पयादोंकी—चतुरंगिणी सेना, अपनी-अपनी इच्छानुसार यथायोग्य रीतिसे युद्ध कर रही थी ॥६१॥ जो योद्धा पहले साधारण शस्त्रोंसे युद्धका महोत्सव मनाया करते थे वे भी उस समय युद्धजन्य परिश्रमसे रहित हो चिरकाल तक अधिक युद्ध करते रहे ॥६२॥ सौपंक, अंगार, वैगारि तथा नीलकण्ठ आदि शत्रुपक्षके जो प्रमुख शूरवीर थे वेगशाली चण्डवेगने सामना कर उन सबको जीत लिया ॥६३॥ तदनन्तर जो वेगशाली घोड़ोंके रथपर आरूढ़ थे, नाना शस्त्र और अस्त्रोंसे भयंकर थे, तथा जिनके आगे रथ हांकनेके लिए दधिमुख विद्यमान था ऐसे वसुदेवके सामने त्रिशिखर आया ॥६४॥ परस्परकी बाण वर्षासे जिन्होंने दिशाओंके अन्त तथा आकाशको व्याप्त कर रखा था ऐसे उन दोनोंका पहले तो साधारण शस्त्रोंसे महायुद्ध हुआ किन्तु पीछे धनुर्धारी वसुदेवने शीघ्र ही आग्नेय अस्त्र छोड़ा जिसकी भयंकर ज्वालाओंसे शत्रुकी सेना तत्काल जलने लगी ॥६५-६६॥ उधर शत्रुने वारुणास्त्रके द्वारा आग्नेयास्त्रको बुझाकर मोहन नामक महा अस्त्रसे वसुदेवकी सेनाको विमोहित कर दिया ॥६७॥ इधर वसुदेवने चित्तप्रसादन नामक अस्त्रसे मोहनास्त्र-को दूर हटा दिया और आकाशमें वायव्य अस्त्र चलाकर वारुणास्त्रको नष्ट कर दिया ॥६८॥ इस प्रकार अपने प्रतिद्वन्द्वी शस्त्रसे शत्रुके शस्त्रको शीघ्रातिशीघ्र नष्ट कर वसुदेवने माहेन्द्रास्त्रके द्वारा शत्रुको काट डाला ॥६९॥ जिस प्रकार सूर्यके अस्त होनेपर किरणोंके समूह दिशाएं छोड़कर नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार देदीप्यमान त्रिशिखिरके अस्तमित होते ही शेष विद्याधर दिशाएँ

(अथवा अभिलाषाएँ) छोड़कर नम्र हो गये—भाग गये ॥७०॥ तदनन्तर अपने पक्षके समस्त विद्याधरोंसे घिरे हुए वसुदेव, कारागृहसे श्वसुरको छुड़ाकर अपने नगर वापस गये ॥७१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनधर्मके प्रसादसे एक प्रतापी मनुष्य, अनेक विद्याधरोंके समूहसे दुर्जेय समस्त शत्रुओंको शीघ्र ही जीतकर बहुत-से मनुष्योंकी आश्रयताको प्राप्त हो जाता है—उनके द्वारा सेवनीय हो जाता है अतः सदा जिनधर्मकी उपासना करनी चाहिए ॥७२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें मदनवेगाके लाभ और त्रिशिखिरके वधका वर्णन करनेवाला पचीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२५॥

□

सर्ग- २६

अथानन्तर कुमार वसुदेवसे मदनवेगामें कामदेवके समान सुन्दर अनावृष्टि नामका नीतिज्ञ और बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१॥ एक दिन अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ विद्याधर सिद्धकूट जिनालयकी वन्दना करनेके लिए गये सो कुमार वसुदेव भी मदनवेगाके साथ वहां पहुँचे ॥२॥ नाना प्रकारके वेषोंको धारण करनेवाले विद्याधर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा कर तथा प्रतिमा-गृहोंकी वन्दना कर यथायोग्य स्तम्भोंका आश्रय ले बैठ गये ॥३॥ शोभासम्पन्न विद्युद्वेग भी भगवान्‌की पूजा कर अपने निकायके लोगोंके साथ गौरी विद्याओंके स्तम्भका सहारा ले बैठ गया ॥४॥ तदनन्तर वसुदेवने मदनवेगासे विद्याधर निकायोंका परिचय पूछा सो वह यथायोग्य इस प्रकार उनका वर्णन करने लगी ॥५॥

उसने कहा कि हे नाथ ! जो ये हाथमें कमल लिये तथा कमलोंकी माला धारण किये हमारे खम्भाके आश्रय बैठे हैं वे गौरिक नामके विद्याधर हैं ॥६॥ ये लाल मालाएँ धारण किये तथा लाल कम्बलके वस्त्रोंको पहने हुए गान्धार खम्भाका आश्रय ले गान्धार जातिके विद्याधर बैठे हैं ॥७॥ ये जो नाना वर्णोंसे युक्त एवं सुवर्णके समान पीले वस्त्रोंको धारण कर मानव स्तम्भके सहारे बैठे हैं वे मानवपुत्रक विद्याधर हैं ॥८॥ जो कुछ-कुछ लाल वस्त्रोंसे युक्त एवं मणियोंके देदीप्यमान आभूषणोंसे सुसज्जित हो मानस्तम्भके सहारे बैठे हैं वे मनुपुत्रक विद्याधर हैं ॥९॥ नाना प्रकारकी ओषधियां जिनके हाथमें हैं तथा जो नाना प्रकारके आभूषण और मालाएँ पहनकर ओषधि स्तम्भ-के सहारे बैठे हैं वे मूलवीर्य विद्याधर हैं ॥१०॥ सब ऋतुओंके फूलोंकी सुगन्धिसे युक्त स्वर्णमय आभरण और मालाओंको धारण कर जो भूमिमण्डक स्तम्भके समीप बैठे हैं वे अन्तर्भूमिचर विद्याधर हैं ॥११॥ हे प्रभो ! जो चित्र-विचित्र कुण्डल पहने तथा सर्पाकार बाजू-बन्दोंसे सुशोभित हो शंकु स्तम्भके समीप बैठे हैं वे शंकुक नामक विद्याधर हैं ॥१२॥ जिनके मुकुटोंपर सेहरा बँधा हुआ है तथा जिनके मणिमय कुण्डल देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे ये कौशिक स्तम्भके आश्रय कौशिक जातिके विद्याधर बैठे हैं ॥१३॥ हे स्वामिन् ! अभी मैंने संक्षेपसे आर्य विद्याधरोंका वर्णन किया है अब आपके लिए मातंग विद्याधरोंके भी निकाय कहती हूँ सो सुनिए ॥१४॥

जो नील मेघोंके समूहके समान श्याम वर्ण हैं तथा नीले वस्त्र और नीली मालाएँ पहने हैं वे मातंग स्तम्भके समीप बैठे मातंग नामके विद्याधर हैं ॥१५॥ जो श्मशानकी हड्डियोंसे निर्मित आभूषणोंको धारण कर भस्मसे धूलि-धूसर हैं वे श्मशान स्तम्भके आश्रय बैठे हुए श्मशाननिलय नामक विद्याधर हैं ॥१६॥ जो ये नीलमणि एवं वैडूर्यमणिके समान वस्त्रोंको धारण किये हुए हैं तथा पाण्डुर स्तम्भके समीप आकर बैठे हैं वे पाण्डुक नामक विद्याधर हैं ॥१७॥ जो ये काले मृग-चर्मको धारण किये तथा काले चमड़ेसे निर्मित वस्त्र और मालाओंको पहने हुए कालस्तम्भके पास आकर बैठे हैं वे कालश्वपाकी विद्याधर हैं ॥१८॥ जो पीले-पीले केशोंसे युक्त हैं, तपाये हुए स्वर्णके आभूषण पहने हैं और श्वपाकी विद्याओंके स्तम्भके सहारे बैठे हैं वे श्वपाकी विद्याधर हैं ॥१९॥ जो वृक्षोंके पत्तोंके समान हरे रंगके वस्त्रोंसे आच्छादित हैं तथा नाना प्रकारके मुकुट और मालाओंको

अथानन्तर एक दिन कुमार वसुदेवने किसी कारणवश मदनवेगासे 'आओ वेगवति !' यह कह दिया जिससे रुष्ट होकर वह घरके भीतर चली गयी ॥२५॥ उसी समय त्रिशिखर विद्याधरकी विधवा पत्नी शूर्पणखी, मदनवेगाका रूप धरकर तथा अपनी प्रभासे महलोंको एकदम प्रज्वलित कर छलसे वसुदेवको हर ले गयी ॥२६॥ वह उन्हें आकाशमें ले जाकर छोड़ना ही चाहती थी कि उसे नीचे आकाशमें अकस्मात् आता हुआ कुमारका वैरी मानसवेग विद्याधर दिखा। आकाशसे छोड़कर कुमारको मार दिया जाये इस कार्यमें मानसवेगको नियुक्त कर सूर्पणखी यथेष्ट स्थानपर चली गयी और कुमार घासकी गंजीपर नीचे गिर गये ॥२७–२८॥ वहाँ मनुष्योंके द्वारा गाये हुए जरासन्धके उज्ज्वल यशको सुनकर कुमारने जान लिया कि यह राजगृह नगर है अतः उन्होंने सन्तुष्ट होकर उस उत्तम नगरमें प्रवेश किया ॥२९॥ राजगृह नगरमें कुमारने जुएमें एक करोड़ स्वर्णकी मुद्राएँ जीतीं और दानशील बनकर सबकी सब यहाँ-वहाँ समस्त लोगोंको बाँट दीं ॥३०॥ निमित्तज्ञानियोंने जरासन्धको बतलाया था कि जो जुएमें एक करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ जीतकर बाँट देगा वह तुम्हें मारनेवाले पुत्रको उत्पन्न करेगा। निमित्तज्ञानियोंके आदेशानुसार वहाँ उस समय ऐसे व्यक्तिकी खोज हो रही थी ॥३१॥ जरासन्धके अधिकारियोंने वसुदेवको देखकर पकड़ लिया और 'तत्काल मर जाये' इस भावनासे उन्हें एक चमड़ेकी भाथड़ीमें बन्द कर पहाड़की चोटीसे नीचे छोड़ दिया ॥३२॥ वसुदेव नीचे गिर ही रहे थे कि अकस्मात् वेगवतीने वेगसे आकर जोरसे उन्हें पकड़ लिया। जब वेगवती उन्हें पकड़कर कहीं ले जाने लगी तब वे मनमें ऐसा विचार करने लगे कि देखो ! जिस प्रकार पहले भारुण्ड पक्षी चारुदत्तको हर ले गये थे उसी प्रकार जान पड़ता है मुझे भी भारुण्ड पक्षी हरकर लिये जा रहे हैं, न जानें अब क्या दुःख होता है ? ॥३३–३४॥ ये बन्धुजनोंके सम्बन्ध दुरन्त—दुःखदायक हैं, भोग सम्पदाएँ दुरन्त हैं, और कान्तिपूर्ण शरीर भी दुरन्त है फिर भी मूर्ख प्राणी इन्हें स्वन्त – सुखदायक समझता है ॥३५॥ वह जीव अकेला ही पुण्य और पाप करता है, अकेला ही सुख और दुःख भोगता है, और अकेला ही पैदा होता तथा मरता है फिर भी आत्मीयजनोंके संग्रह करनेमें तत्पर रहता है ॥३६॥ वे ही धीर, वीर मनुष्य सुखी हैं और वे ही आत्महितमें लगे हुए हैं जो भोगोंसे सम्बन्ध छोड़कर मोक्षमार्गमें स्थित हैं ॥३७॥ हमारे कर्म बड़े वजनदार हैं इसलिए हम भोग तृष्णारूपी तरंगोंमें डूब रहे हैं तथा सुख-दुखकी प्राप्तिमें ही बार-बार परिभ्रमण करते-फिरते हैं ॥३८॥

तदनन्तर इस प्रकार चिन्तन करते हुए वीर वसुदेवको वेगवतीने पर्वतके तटपर उतारा और भाथड़ीसे खींचकर बाहर निकाला ॥३९॥ पतिको देख वेगवती विरहसे आकुल हो रोने लगी और वसुदेवने भी उसका आलिंगन कर उसे स्वपरके शरीरके लिए सुख देनेवाली माना ॥४०॥ तदनन्तर वसुदेवके द्वारा पूछी प्रिया वेगवतीने पतिके हरे जानेपर अपने घर जो सुख-दुख उठाया था वह सब उनके लिए कह सुनाया ॥४१॥ उसने कहा कि मैंने आपको विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंमें खोजा, अनेक वन और नगरोंमें देखा तथा समस्त भरत क्षेत्रमें चिरकाल तक भ्रमण किया परन्तु आपको प्राप्त न कर सकी ॥४२॥ बहुत घूमने-फिरनेके बाद मैंने मदनवेगाके पास आपको देखा। सो देखकर यह विचार किया कि यहाँ रहते हुए भले ही आपके साथ वियोग रहे पर आपके दर्शन तो पाती रहूँगी। इसी विचारसे मैंने वहाँ अलक्षित रूपसे रहनेकी इच्छा की परन्तु त्रिशिखरकी भार्या शूर्पणखी मदनवेगाका रूप धरकर आपके पास आयी और मारनेकी इच्छासे हरकर आपको आकाशमें ले गयी ॥४३–४४॥ उधर उस पर्वतकी चोटीसे आप नीचे गिराये जा रहे थे कि मैंने बीचमें ही लपककर आपको पकड़ लिया। इस समय आप पंचनद तीर्थ और ह्रीमन्त नामक पर्वतपर विराजमान हैं ॥४५॥ इस प्रकार चन्द्रमुखी वेगवतीसे सब समाचार जानकर वसुदेव, नदियोंके गम्भीर शब्दसे सुन्दर ह्रीमन्त पर्वतकी अधित्यकाओंपर क्रीड़ा करने

लगे ॥४६॥ एक दिन कुमार वसुदेव अपनी इच्छानुसार वहाँ घूम रहे थे कि उन्होंने नागपाशसे बँधी हुई वनकी हस्तिनीके समान, नागपाशसे मजबूत बँधी हुई एक भाग्यशालिनी सुन्दर कन्याको देखा ॥४७॥ उसे देखते ही कुमारका हृदय दयासे आर्द्र हो गया इसलिए उन्होंने जिस प्रकार मुनि संसारके प्राणियोंको पापरूपी पाशसे मुक्त कर देते हैं उसी प्रकार मुखकी फैलती हुई कान्तिसे युक्त उस बन्धनबद्ध कन्याको बन्धनसे मुक्त कर दिया ॥४८॥ बन्धनसे छूटते ही उस कन्याने अतर्कित बन्धु—वसुदेवको नमस्कार किया और कहा कि हे नाथ ! आपके प्रसादसे मेरी विद्या सिद्ध हो गयी है ॥४९॥ सुनिए, मैं दक्षिण श्रेणीपर स्थित गगनवल्लभ नगरकी रहनेवाली राज-कन्या हूँ, मेरा नाम बालचन्द्रा है और मैं विद्युद्दंष्ट्रके वंशमें उत्पन्न हुई हूँ ॥५०॥ मैं नदीमें बैठकर महाविद्या सिद्ध कर रही थी कि एक शत्रु विद्याधरने मुझे नागपाशसे बाँध दिया और हे प्रभो ! आपने मुझे उस बन्धनसे मुक्त किया है ॥५१॥ हमारे वंशमें पहले भी एक केतुमती नामकी कन्या हो गयी है। उसे मेरे ही समान पुण्डरीक नामक अर्धचक्रीने अचानक आकर बन्धनसे मुक्त किया था और वह जिस प्रकार उसी अर्धचक्रीकी निर्विरोध पत्नी हो गयी थी उसी प्रकार मैं भी आपकी पत्नी अवश्य होनेवाली हूँ। यह आप निश्चित समझ लीजिए ॥५२-५३॥ हे नाथ ! आप विद्याधरोंके लिए अतिशय दुर्लभ इस विद्याको ग्रहण कीजिए। कन्याके इस प्रकार कहनेपर कुमार वसुदेवने कहा कि वह विद्या मेरी इच्छासे वेगवतीके लिए देने योग्य है ॥५४॥ कुमारकी आज्ञा पाकर उसने 'तथास्तु' कह वेगवतीके लिए वह विद्या दे दी और तदनन्तर आकाशमें उड़कर वह गगनवल्लभ नगरको चली गयी ॥५५॥ कुमारी बालचन्द्रा, वेगवतीके लिए विद्यारूपी दान देकर शीघ्र ही निःशल्य हो गयी सो ठीक ही है क्योंकि जिनधर्मकी उपासना करनेवाली विद्याधरियाँ अपने मनोरथको शीघ्र ही सिद्ध कर लेती हैं ॥५६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें बालचन्द्राके दर्शनका वर्णन करनेवाला छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२६॥

□

सर्ग- २७

अथानन्तर इसी बीचमें निश्चिन्ततासे बैठे हुए राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे मुनिनाथ ! विद्युद्दंष्ट्र कौन था ? और उसका आचरण कैसा था ? ॥१॥ इस प्रकार पूछनेपर गौतम स्वामी कहने लगे कि नमिके वंशमें गगनवल्लभ नामक नगरमें एक विद्युद्दंष्ट्र नामका विद्याधर हो गया है जो दोनों श्रेणियोंका स्वामी था तथा अद्भुत पराक्रमसे युक्त था ॥२॥ एक समय वह पश्चिम विदेह क्षेत्रसे संजयन्त नामक मुनिराजको अपने यहाँ उठा लाया और उनपर उसने घोर उपसर्ग कराया ॥३॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कौतुकवश फिर पूछा कि हे नाथ ! विद्युद्दंष्ट्रने संजयन्त मुनिराजपर किस कारण उपसर्ग कराया था ? इसके उत्तरमें गणधर भगवान् संजयन्त मुनिका पापनाशक पुराण इस प्रकार कहने लगे ॥४॥

हे राजन् ! इसी जम्बू द्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें एक गन्धमालिनी नामका देश है। उसमें वीतशोका नामकी नगरी है। उस नगरीमें किसी समय वैजयन्त नामका राजा राज्य करता था ॥५॥ उसकी सर्वश्री नामकी रानी थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो शरीरको धारण करनेवाली साक्षात् लक्ष्मी हो। इन दोनोंके संजयन्त और जयन्त नामके दो उत्तम पुत्र थे ॥६॥ किसी एक समय विहार करते हुए स्वयम्भू तीर्थंकर वहाँ आये। उनसे धर्म श्रवण कर पिता और दोनों पुत्र—तीनोंने दीक्षा धारण कर ली ॥७॥ अपने पिहितास्रव नामक आचार्यके साथ वे तीनों मुनि विहार करते थे। कदाचित् घातिया कर्मोंको नष्ट करनेवाले वैजयन्त मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥८॥ केवलज्ञानके उत्सवमें जब चारों निकायके देव मुनिराज वैजयन्तकी वन्दना कर रहे थे तब धरणेन्द्रको देख जयन्त मुनिने धरणेन्द्र होनेका निदान किया और उसके फलस्वरूप वे मरकर धरणेन्द्र हो भी गये ॥९॥ किसी समय जयन्तके बड़े भाई संजयन्त मुनिराज अपनी वीतशोका नामक सुन्दर नगरीके भीमदर्शन—भयंकर श्मशानमें सात दिनका प्रतिमा योग लेकर विराजमान थे ॥१०॥ उसी समय विद्युद्दंष्ट्र, भद्रशाल वनमें अपनी स्त्रियोंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर अपने नगरकी ओर लौट रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि संजयन्त मुनिराजपर पड़ी ॥११॥ पूर्व वैरके कारण कुपित हो वह उन्हें उठा लाया और भरत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वतके दक्षिण भागके समीप वरुण नामक पर्वतपर उन्हें ले गया ॥१२॥ हरिद्वती, चण्डवेगा, गजवती, कुसुमवती और सुवर्णवती इन पाँच नदियोंका जहाँ समागम हुआ है वहाँ सायंकालके समय उन्हें रखकर चला गया और प्रातःकाल उसने विद्याधरोंको यह कहकर क्षुभित कर दिया कि आज रात्रिको मैंने स्वप्नमें एक महाकाय राक्षस देखा है। वह राक्षस हम लोगोंका क्षय करनेवाला होगा। इसलिए हे विद्याधरो ! चलो उसे शीघ्र ही मार डालें ॥१३–१५॥ इस प्रकार विद्याधरोंको प्रेरित कर उसने नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले विद्याधरोंके साथ उन्हें मार डाला। मुनिराज संजयन्त भी अन्तिम समय केवलज्ञान प्राप्त कर श्री शीतलनाथ भगवान्के शान्तिदायक तीर्थमें निर्वाणको प्राप्त हुए ॥१६॥ तदनन्तर उनके शरीरकी पूजाके लिए जयन्तका जीव—धरणेन्द्र आया सो विद्युद्दंष्ट्रकी इस करतूतसे वह बहुत ही रुष्ट हुआ। वह विद्युद्दंष्ट्रकी समस्त विद्याओंको हरकर उसे मारनेके लिए उद्यत हुआ ही था कि उसी समय आदित्याभ दिवाकर

देव नामक लान्तवेन्द्रने वहाँ आकर 'हे धरणेन्द्र ! हे फणीन्द्र ! व्यर्थ ही जीव हिंसा न करो' इन शब्दों द्वारा उसे हिंसासे रोक दिया ॥१७-१८॥ तुम, मैं, यह विद्याधरोंका राजा विद्युद्दंष्ट्र और संजयन्त इस प्रकार हम सब वैर बांधकर संसारमें जिस तरह भटकते रहे हैं वह मैं कहता हूँ सो सुनो ॥१९॥

इसी भरत क्षेत्रमें एक शकट नामका देश है। उसके सिंहपुर नगरमें किसी समय सिंहसेन नामका राजा राज्य करता था ॥२०॥ सिंहसेनकी कला और गुणरूपी आभूषणोंसे सुशोभित रामदत्ता नामकी स्त्री थी तथा निपुणमति नामकी एक धाय थी जो निपुण मनुष्योंमें भी अतिशय निपुण थी ॥२१॥ राजाका एक श्रीभूति नामका पुरोहित था जो अपनेको सत्यवादी प्रकट करता था तथा लोकमें अलुब्ध-निर्लोभ है इस तरह प्रसिद्ध था। उसकी ब्राह्मणीका नाम श्रीदत्ता था ॥२२॥ वह श्रीभूति नगरकी समस्त दिशाओंमें भाण्डशालाएँ—धरोहर रखनेके स्थान बनवाकर व्यापारी वर्गका बहुत विश्वासपात्र बन गया था ॥२३॥ उसी समय पद्मखण्ड नामक नगरमें एक सुमित्रदत्त नामक वणिक् रहता था। वह किसी समय अपने पांच रत्न श्रीभूति पुरोहितके पास रखकर तृष्णावश जहाज द्वारा कहीं गया था ॥२४॥ भाग्यवश उसका जहाज फट गया। लौटकर उसने पुरोहितसे अपने रत्न माँगे परन्तु प्राप्त नहीं कर सका। राजद्वारमें उसने प्रार्थना की परन्तु पुरोहितको प्रमाण माननेवाले राज-कर्मचारियोंने उसे तिरस्कृत कर भगा दिया ॥२५॥ अन्तमें बदलेकी आशासे जिसका चित्त जल रहा था ऐसा सुमित्रदत्त वणिक् राजमहलके समीप एक ऊँचे वृक्षपर चढ़कर प्रतिदिन यह कहता हुआ रोने लगा कि महाराज सिंहसेन, दयावती रानी रामदत्ता तथा अन्य सज्जन पुरुष दयायुक्त हो मेरी प्रार्थना सुनें। मैंने अमुक मास और पक्षके अमुक दिन श्रीभूति पुरोहितको सत्यवादितासे प्रभावित होकर उसके हाथमें इस-इस प्रकारके पांच रत्न रखे थे परन्तु इस समय वह अत्यन्त लुब्ध होकर मेरे वह रत्न देना नहीं चाहता है। इस प्रकार प्रतिदिन प्रातःकालके समय रोकर वह यथास्थान चला जाता था ॥२६-२९॥ इस प्रकार उसे रोते-रोते जब बहुत महीने बीत गये तब एक दिन प्रिया रामदत्ताने रात्रिके समय राजासे कहा कि हे राजन्! यह बड़ा अन्याय है। लोकमें बलवान् और दुर्बल सभी होते हैं तो क्या बलवानोंके हाथसे दुर्बल मनुष्य जीवित नहीं रह सकते? ॥३०-३१॥ इस बेचारे दुर्बलके रत्न अतिशय बलवान् पुरोहितने हड़प लिये हैं। इसलिए हे प्रभो! यदि इसपर आपको दया आती है तो इसके रत्न दिलाये जावें ॥३२॥ राजाने कहा कि हे प्रिये! समुद्रमें इसका जहाज फट गया था, इसलिए यह निर्लज्ज धन नष्ट हो जानेके कारण अतिशय दुःखी हो पिशाचसे आक्रान्त हो गया है और उसी दशामें कुछ बकता रहता है ॥३३॥ इस प्रकार राजाका उत्तर पाकर रामदत्ताने कहा कि हे राजन्! यह धनरूपी पिशाचसे आक्रान्त नहीं है क्योंकि यह प्रतिदिन एक ही बात कहता है अतः इसकी परीक्षा की जाये ॥३४॥ यह सुनकर राजाने प्रातःकाल एकान्तमें पुरोहितसे पूछा परन्तु वह द्रोही सर्वथा मेंट गया सो ठीक ही है क्योंकि लोभी मनुष्यके सत्यता कैसे हो सकती है? ॥३५॥ तदनन्तर राजा जुआके छलसे ही पुरोहितकी परीक्षा करनेके लिए उद्यत हुआ। रानी रामदत्ताने जुआ खेलनेके पूर्व ही किसी बहाने पुरोहितसे पूछ लिया था कि आज आपने रात्रिमें क्या भोजन किया था? ॥३६॥ रानी रामदत्ताकी आज्ञा पाकर निपुणमति धायने जाकर पुरोहितकी स्त्रीसे रत्न माँगे और पहचानके लिए रात्रिके भोजनकी बात बतायी परन्तु पुरोहितकी स्त्रीने रत्न नहीं दिये ॥३७॥ अबकी बार जुआमें जीता हुआ जनेऊ ले जाकर निपुणमतिने पुरोहितकी स्त्रीसे रत्न मांगे परन्तु फिर भी वह उन्हें प्राप्त नहीं कर सकी सो ठीक ही है क्योंकि उसके लिए पतिकी आज्ञा ही वैसी थी ॥३८॥ तीसरी बार पतिके नामसे चिह्नित अँगूठी देखकर पुरोहितकी स्त्रीने वे रत्न दे दिये। उसी समय रानी

रामदत्ताको आज्ञानुसार जुआ बन्द कर दिया गया ॥३९॥ यद्यपि राजाने वणिक्के उन रत्नोंको दूसरेके रत्नोंके साथ मिलाकर दिया था तथापि वणिक्ने अपने ही रत्न पहचानकर उठा लिये और इस सचाईके कारण राजासे सम्मानको भी प्राप्त किया ॥४०॥ दूसरेका धन हरण करनेमें प्रीतिका अनुभव करनेवाले पुरोहितका सब धन छीन लिया गया, उसे गोबर खिलाया गया और मल्लोंके मुक्कोंसे पिटवाया गया जिससे वह मर गया ॥४१॥ चूँकि वह धनके आर्तध्यानसे कलुषित चित्त होकर मरा था इसलिए राजाके भाण्डार गृहमें अगन्धन नामका साँप हुआ और अपनी दुष्टताके कारण राजासे सदा द्रोह रखने लगा ॥४२॥ श्रीभूति पुरोहितके स्थानपर धम्मिल्ल नामक दूसरा ब्राह्मण रखा गया परन्तु वह भी मिथ्यादृष्टि था और प्रायः नहीं कहे कार्यको करनेके लिए उद्यत रहता था ॥४३॥ सुमित्रदत्त वणिक् रत्न लेकर अपने पद्मखण्डपुर नगरको चला गया। यद्यपि वह जैन था—जैन धर्मके स्वरूपको समझता था तथापि 'मैं रानी रामदत्ताका पुत्र होऊँ' ऐसा उसने निदान बाँध लिया और इसी इच्छासे वह खूब दान करने लगा ॥४४॥ वणिक्की स्त्री सुमित्रदत्तिका जो सदा उससे विरोध रखती थी मरकर एक पर्वतपर व्याघ्री हुई। एक दिन सुमित्रदत्त किन्हीं मुनिराजकी वन्दनाके लिए उसी पर्वतपर गया था सो उस व्याघ्रीने उसे खा लिया ॥४५॥ मरकर वह रामदत्ताका पुत्र हुआ। यद्यपि वह अपने पुण्य बलसे इन्द्र हो सकता था तथापि निदानके द्वारा इन्द्रत्वकी उपेक्षा कर राजपुत्र ही हुआ। उसका सिंहचन्द्र नाम रखा गया तथा वह रामदत्ता-के स्नेह-बन्धनसे युक्त था—उसे अतिशय प्यारा था ॥४६॥ सिंहचन्द्रके, इन्द्रके समान आभावाला पूर्णचन्द्र नामका एक छोटा भाई भी हुआ। ये दोनों भाई पृथिवीपर सूर्य-चन्द्रमाके समान प्रसिद्ध थे ॥४७॥ एक समय राजा सिंहसेन कार्यवश भाण्डागारमें प्रविष्ट हुए सो वहाँ पूर्व वैरके कारण पुरोहितके जीव अगन्धन नामक दुष्ट साँपने उन्हें काट खाया ॥४८॥ उसी नगरमें एक गारुडिक विद्या (सर्प उतारनेकी विद्या) का अच्छा जानकार गरुडदण्ड रहता था। उसने मन्त्रों द्वारा अगन्धनको आदि लेकर समस्त सर्पोंको बुलाकर उनसे कहा कि तुम लोगोंमें जो एक अपराधी सर्प है वही यहाँ ठहरे, बाकी सब यथास्थान चले जावें। गरुडदण्डके ऐसा कहनेपर राजाको काटनेवाला अगन्धन सर्प रह गया। बाकी सब चले गये ॥४९–५०॥ गरुडदण्डने उसे ललकारते हुए कहा कि अरे दुष्ट ! अपने द्वारा छोड़े हुए विषको शीघ्र ही खींच और यदि खींचनेकी इच्छा नहीं है तो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर ॥५१॥ गरुडदण्डके इस प्रकार कहनेपर उस अगन्धन सर्पने क्रोधके कारण विष तो नहीं खींचा पर जलती हुई अग्निमें प्रवेश कर मरण स्वीकार कर लिया और मरकर वह चमरी मृग हुआ ॥५२॥ विषके वेगसे मरकर राजा सल्लकी वनमें हाथी हुआ और जिसे श्रीभूतिके स्थानपर रखा गया था वह धम्मिल्ल मरकर उसी वनमें वानर हुआ सो ठीक ही है क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवोंकी और गति हो ही क्या सकती है ॥५३॥ रामदत्ताके सिंहचन्द्र और पूर्णचन्द्र नामक दोनों नीतिज्ञ एवं सामर्थ्यवान् पुत्र क्रमसे राजा और युवराज बनकर समुद्रान्त पृथिवीका पालन करने लगे ॥५४॥

पोदनपुर नगरमें जो राजा पूर्णचन्द्र और रानी हिरण्यवती थी वे रानी रामदत्ताके माता-पिता थे और वे दोनों ही जिनशासनकी भावनासे युक्त थे ॥५५॥ एक बार रामदत्ताके पिता पूर्णचन्द्रने राहुभद्र मुनिके समीप दीक्षा ले अवधिज्ञान प्राप्त किया और माता हिरण्यवतीने दत्तवती आर्यिकाके समीप दीक्षा ले आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥५६॥ कदाचित् रामदत्ता की माता हिरण्यवती आर्यिकाने अवधिज्ञानी पूर्णचन्द्र मुनिसे रामदत्ताका सब समाचार सुना और जाकर उसे सम्बोधित किया—समझाया ॥५७॥ माताके मुखसे उपदेश श्रवण कर रामदत्ता संसारसे भयभीत हो उठी जिससे उसने उसी समय दीक्षा ले ली। हिरण्यवतीने रामदत्ताके पुत्र सिंहचन्द्रको भी समझाया जिससे उसने भी राहुभद्र गुरुके समीप दीक्षा ले ली ॥५८॥ सिंहचन्द्रके बाद प्रतापके

द्वारा शत्रुओंको नम्रीभूत करनेवाला युवराज पूर्णचन्द्र राज्य-सिंहासनपर आरूढ़ हुआ परन्तु वह सम्यग्दर्शन और व्रतसे रहित होनेके कारण भोगोंमें आसक्त हो गया ।।५९।। एक बार आर्यिका रामदत्ताने अवधिज्ञानी एवं चारण ऋद्धिके धारक सिंहचन्द्र मुनिको नमस्कार कर उनसे अपना, अपनी माताका तथा अपने पुत्रोंका पूर्वभव पूछा ।।६०।।

इसके उत्तरमें मुनिराज कहने लगे कि इसी भरतक्षेत्रके कोसल देशमें एक वर्धकि नामका ग्राम था और उसमें मृगायण नामका एक ब्राह्मण रहता था ।।६१।। ब्राह्मणकी ब्राह्मणीका नाम मधुरा था जो न केवल नामसे ही मधुरा थी किन्तु स्वभावसे भी मधुरा थी। उन दोनोंके एक वारुणी नामकी पुत्री थी जो तरुण मनुष्योंके लिए वारुणी–मदिराके समान मद उत्पन्न करनेवाली थी ।।६२।। मृगायण मरकर साकेत नगरमें राजा अतिबल और उसकी रानी श्रीमतीके तुम्हारी माँ हिरण्यवती हुआ है ।।६३।। उसकी मधुरा ब्राह्मणी तू रामदत्ता हुई है, वारुणीका जीव तेरा छोटा पुत्र पूर्णचन्द्र हुआ है, और वणिक् सुमित्रदत्तका जीव मैं तेरा सिंहचन्द्र नामका पुत्र हुआ हूँ ।।६४।। पिता सिंहसेनको श्रीभूतिके जीव अगन्धन सर्पने डँस लिया था इसलिए मरकर वे हाथी हुए थे। मैंने उन्हें हाथीकी पर्यायमें श्रावकका धर्म धारण कराया था ।।६५।। श्रीभूति पुरोहितका जीव साँप हुआ था फिर चमरी मृग हुआ। तदनन्तर चमरमृगके लिए आतुर होता हुआ मरकर रूखे पंखोंको धारण करनेवाला दुष्ट कुक्कुट सर्प हुआ ।।६६।। पिताका जीव जो हाथी हुआ था वह उपवासका व्रत लेकर शिथिल पड़ा हुआ था और उसका सब मद सूख गया था उसी दशामें पुरोहितके जीव कुक्कुट सर्पने उसे डँस लिया जिससे वह अच्छे परिणामोंसे मरकर सहस्रार स्वर्ग गया ।।६७।। वह वहाँ श्रीप्रभ नामक विमानमें लक्ष्मीको धारण करनेवाला श्रीधर नामका देव हुआ है और इस समय धर्मके प्रभावसे भोगोंसे युक्त हो अप्सराओंके साथ रमण कर रहा है ।।६८।। धम्मिल्लका जीव जो मर्कट हुआ था उसने हाथीका घात करनेवाले कुक्कुट सर्पको क्रोधवश मार डाला जिससे वह मरकर बालुकाप्रभा नामक तीसरे नरकमें गया ।।६९।। किसी शृगालदत्त नामक भीलने उस हाथीके दाँत, हड्डी और मोती इकट्ठे कर धनमित्र सेठके लिए दिये और धनमित्रने राजा पूर्णचन्द्रके लिए समर्पित किये ।।७०।। राजा पूर्णचन्द्र उन्हें पाकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने दाँतोंकी हड्डियोंसे सिंहासन बनवाया है और मोतियोंसे बड़ा हार तैयार करवाया है। इस समय वह उसी सिंहासनपर बैठता है और उसी हारको धारण करता है ।।७१।। अहो ! मोही प्राणियोंकी संसारकी विचित्रता तो देखो कि जहाँ अन्य प्राणियोंके अंगके समान पिताके अंग भी भोगके साधन हो जाते हैं ।।७२।। मुनिराज सिंहचन्द्रके वचन सुनकर आर्यिका रामदत्ताने जाकर प्रमादमें डूबे पूर्णचन्द्रको वह सब बताकर अच्छी तरह समझाया ।।७३।। जिससे वह दान, पूजा, तप, शील और सम्यक्त्वका अच्छी तरह पालन कर उसी सहस्रार स्वर्गके वैडूर्यप्रभ नामक विमानमें देव हुआ ।।७४।। रामदत्ता भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे स्त्री पर्यायको छोड़कर उसी सहस्रार स्वर्गके प्रभंकर नामक विमानमें सूर्यप्रभ नामका देव हुई ।।७५।। और सिंहचन्द्र मुनि भी अच्छी तरह चार आराधनाओंकी आराधना कर प्रीतिकर नामक ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए ।।७६।। रामदत्ताका जीव जो सूर्यप्रभ देव हुआ था वहाँ उसका सम्यग्दर्शन छूट गया था इसलिए आयु पूर्ण होनेपर वहाँसे च्युत हो वह विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीपर जो धरणीतिलक नामका नगर है उसके राजा अतिबलकी सुलक्षणा नामक महादेवीके श्रीधरा नामकी पुत्री हुआ ।।७७–७८।। श्रीधरा, अलका नगरीके स्वामी राजा सुदर्शनको दी गयी और उसके पूर्णचन्द्रका जीव जो वैडूर्यप्रभ विमानका स्वामी था वहाँसे चयकर यशोधरा नामकी पुत्री हुआ ।।७९।। यशोधरा, उत्तर श्रेणीपर स्थित प्रभाकरपुरके स्वामी राजा सूर्यावर्तके लिए दी गयी और उसके राजा सिंहसेनका जीव जो श्रीधर देव हुआ था वह वहाँसे चयकर रश्मिवेग नामका पुत्र हुआ ।।८०।। तदनन्तर जब राजा सूर्यावर्त

मोक्षकी अभिलाषासे उस रश्मिवेग पुत्रके लिए राज्य देकर मुनिचन्द्र गुरुके समीप तप करने लगा तब श्रीधरा और यशोधराने भी सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हो गुणवती आर्यिकाके पास दीक्षा ले ली ॥८१-८२॥ एक समय रश्मिवेग वन्दना करनेकी इच्छासे सिद्धकूट गया था कि वहां हरिचन्द्र मुनिसे धर्म श्रवण कर मुनि हो गया ॥८३॥ एक दिन महामुनि रश्मिवेग, कांचन नामक गुहामें स्वाध्याय करते हुए विराजमान थे कि श्रीधरा और यशोधरा नामकी आर्यिकाएँ उनकी वन्दनाके लिए वहां गयीं ॥८४॥ श्रीभूति पुरोहितका जीव जो बालुकाप्रभा पृथिवीमें नारकी हुआ था वह चिरकालके बाद वहाँसे निकलकर तथा संसारमें परिभ्रमण कर उसी गुहामें अजगर हुआ था ॥८५॥ उपसर्ग आया देख मुनि रश्मिवेग कायोत्सर्गमें स्थित हो गये और दोनों आर्यिकाओंने भी सावधिक संन्यास ले लिया। विशाल उदरका धारक वह अजगर उन तीनोंको निगल गया ॥८६॥ रश्मिवेग मरकर कापिष्ठ स्वर्गमें उत्तम बुद्धिके धारक अर्कप्रभ देव हुए और दोनों आर्यिकाएँ भी उसी स्वर्गके रुचक विमानमें देव हुई ॥८७॥ जिसका हृदय रौद्रध्यानसे दूषित था ऐसा महाशत्रु अजगर पापरूपी पंकसे कलंकित हो मरकर पंकप्रभा नामक चौथी पृथिवीमें उत्पन्न हुआ ॥८८॥ सिंहचन्द्रका जीव जो प्रीतिंकर विमानका स्वामी था वह वहांसे च्युत हो चक्रपुर नामक नगरके राजा अपराजित और रानी सुन्दरीके चक्रायुध नामका पुत्र हुआ। चक्रायुधकी स्त्री चित्रमाला थी और उसके मुनि रश्मिवेगका जीव (रानी रामदत्ताका पति राजा सिंहसेनका जीव) अर्कप्रभ देव कापिष्ठ स्वर्गसे च्युत हो वज्रायुध नामका पुत्र हुआ ॥८९-९०॥ श्रीधरा आर्यिकाका जीव जो कापिष्ठ स्वर्गमें देव हुआ था, वहाँसे च्युत हो पृथिवीतिलक नगरमें राजा प्रियंकर और अतिवेगा रानीके रत्नमाला नामकी पुत्री हुआ ॥९१॥ रत्नमाला वज्रायुधके लिए दी गयी और उसके आर्यिका यशोधराका जीव जो कापिष्ठ स्वर्गमें देव हुआ था वहाँसे च्युत हो पूर्व पुण्यके उदयसे रत्नायुध नामका पुत्र हुआ ॥९२॥ चक्रायुध, वज्रायुध पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर पिहितास्रव मुनिके पादमूलमें तप करने लगा और अन्तमें निर्वाणको प्राप्त हुआ ॥९३॥ राजा वज्रायुधने भी राज्यका भार रत्नायुध पुत्रके लिए सौंपकर तप धारण कर लिया। परन्तु रत्नायुध राज्यके मदसे उन्मत्त हो मिथ्यादृष्टि हो गया ॥९४॥ राजा रत्नायुधका एक मेघनिनाद नामका मुख्य हस्ती था। एक समय वह जलावगाहनके लिए गया था परन्तु बीचमें मुनिराजका दर्शन होनेसे उसे जाति स्मरण हो गया जिससे उसने पानी नहीं पिया ॥९५॥ राजा रत्नायुध मेघनिनादके इस कार्यको नहीं समझ सका इसलिए उसने वज्रदत्त नामक मुनिराजसे इसका कारण पूछा। उत्तरमें मुनिराज कहने लगे ॥९६॥

इसी भरत क्षेत्रके चित्रकारपुरमें एक प्रीतिभद्र नामका राजा रहता था। उसकी सुन्दरी नामकी स्त्री थी और दोनोंके प्रीतिंकर नामका पुत्र था ॥९७॥ राजा प्रीतिभद्रका एक चित्रबुद्धि नामका मन्त्री था। मन्त्रीकी स्त्रीका नाम कमला था और दोनोंके विचित्रमति नामका नीतिवेत्ता पुत्र था ॥९८॥ राजपुत्र प्रीतिंकर और मन्त्रिपुत्र विचित्रमति दोनोंने एक बार श्रुतसागर मुनिसे तपका फल सुना और दोनों ही युवावस्थामें उनके चरणोंके समीप रहकर तप करने लगे ॥९९॥ जो देखनेमें बहुत सुन्दर थे और नाना प्रकारका तपश्चरण ही जिनका धन था ऐसे वे दोनों मुनि एक समय सिद्ध क्षेत्रोंके दर्शन करते हुए साकेत नगर पहुँचे ॥१००॥ साकेतनगरमें एक बुद्धिसेना नामकी वेश्या बहुत सुन्दरी थी। उसे देखकर मन्त्रिपुत्र विचित्रमति कर्मोदयके कारण मुनिपदसे भ्रष्ट हो गया और उसने निर्लज्ज हो मुनिपद छोड़ दिया ॥१०१॥ विचित्रमति, मुनिपदसे भ्रष्ट हो राजा गन्धमित्रका रसोइया बन गया। वह मांस बनानेमें अत्यन्त निपुण था। इसलिए अपनी कलासे राजाको प्रसन्न कर उसने वरस्वरूप वह वेश्या प्राप्त कर ली ॥१०२॥ जिसकी आत्मा समस्त पापोंसे अविरत थी—जिसे किसी भी पापके करनेमें संकोच नहीं था तथा जो मांस

खानेका प्रेमी हो चुका था ऐसा विचित्रमति उस वेश्याके साथ इच्छानुसार भोग भोगकर मरा और मरकर सातवें नरक गया ॥१०३॥ वहांसे निकलकर इस असार संसारमें भटकता रहा। अब किसी पाप विशेषके कारण आपका हिंसाशील मदोन्मत्त हाथी हुआ है ॥१०४॥ मुनिराजके दर्शनका योग पाकर यह जाति-स्मरणको प्राप्त हुआ है और इसीलिए संसारमें मन्दरुचि हो अपने कार्यकी निन्दा करता हुआ शान्त हो गया है ॥१०५॥ वज्रदत्त मुनिराजके उक्त वचन सुनकर वह मेघनिनाद हाथी और राजा रत्नायुध दोनों ही मिथ्यात्वरूपी कलंकको छोड़ श्रावक-के व्रतसे युक्त हो गये ॥१०६॥ श्रीभूति पुरोहितका जीव, जो अजगर पर्यायसे पंकप्रभा पृथिवीमें गया था वह वहांसे निकलकर मंगी और दारुण नामक भील-भीलनीके नाम और कार्य दोनोंसे ही अतिदारुण पुत्र हुआ। भावार्थ—उस पुत्रका नाम अतिदारुण था और उसका काम भी अति दारुण—अत्यन्त कठोर था ॥१०७॥ एक दिन राजा सिंहसेनके जीव वज्रायुध महामुनि प्रियंगुखण्ड नामक वनमें ध्यानारूढ़ थे कि उस अतिदारुण भीलने उन्हें मार डाला। महामुनि मरकर सर्वार्थसिद्धि गये और वह अतिदारुण भील मरकर महातमःप्रभा नामक सातवीं पृथिवीमें गया जहां मुनिवधसे उत्पन्न घोर दुःख उसे भोगना पड़ा ॥१०८–१०९॥ रत्नमाला, मर-कर श्रावक धर्मके प्रभावसे अच्युत स्वर्गमें देव हुई तथा रत्नायुध भी उसी स्वर्गमें उत्तम देव हुआ ॥११०॥ धातकीखण्ड द्वीपमें पूर्व मेरुके पश्चिम विदेहमें एक गन्धिला नामका देश है। उसकी अयोध्या नगरीमें राजा अर्हद्दास राज्य करते थे। उनकी सुव्रता और जिनदत्ता नामकी दो रानियां थीं। रत्नमाला और रत्नायुधके जीव जो अच्युत स्वर्गमें देव हुए थे वहांसे च्युत हो उन्हीं दोनों रानियोंके क्रमसे वीतभय नामक बलभद्र और विभीषण नामक नारायण हुए ॥१११–११२॥ इनमें विभीषण तो आयुका अन्त होनेपर रत्नप्रभा नामक पहली पृथिवीमें उत्पन्न हुआ और वीतभय अनिवृत्ति मुनिके समीप तप कर आदित्याभ नामका लान्तवेन्द्र हुआ। वह लान्तवेन्द्र मैं ही हूँ। मैंने रत्नप्रभा पृथिवीमें जाकर विभीषणके जीव नारकीको अच्छी तरह समझाया ॥११३–११४॥ तदनन्तर इसी जम्बू द्वीपके विदेह क्षेत्रमें जो गन्धमालिनी नामका देश है उसमें विद्याधरोंके मनोहर-मनोहर निवासोंसे युक्त एक अतिशय सुन्दर विजयार्ध पर्वत है। उसी विजयार्धपर श्रीधर्म राजा और श्रीदत्ता नामकी रानी रहती थी। विभीषणका जीव नारकी, नरकसे निकलकर इन्हीं दोनोंके श्रीदाम नामका पुत्र हुआ। यह श्रीदाम मुझे एक बार सुमेरु पर्वतपर मिला तो वहाँ भी मैंने उसे समझाया ॥११५–११६॥ जिससे अनन्तमति गुरुका शिष्य बनकर वह ब्रह्मलोक स्वर्गमें चन्द्राभ विमानका स्वामी देव हुआ है ॥११७॥ श्रीभूतिका जीव जो पहले भील था सातवीं पृथिवीसे निकलकर सर्प हुआ। फिर रत्नप्रभा नामक पहली पृथिवीमें गया, वहांसे निकलकर तिर्यंचोंमें भ्रमण कर दुःख भोगता रहा ॥११८॥

तदनन्तर भूतरमण नामक अटवीमें ऐरावती नदीके किनारे खमाली नामक तापसकी कनककेशी स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न हुआ ॥११९॥ वह मृगके समान था तथा मृगशृंग उसका नाम था। एक बार वह पंचाग्नि तप तप रहा था कि उसकी दृष्टि स्वेच्छासे आकाशमें विचरण करते हुए चन्द्राभ नामक विद्याधरपर पड़ी। विद्याधरको देखकर उसने विद्याधर होनेका निदान किया और उसके फलस्वरूप वह राजा वज्रदंष्ट्रकी विद्युत्प्रभा रानीके गर्भसे, जिसका उद्यम विद्याओंसे प्रकाशमान है ऐसा यह विद्युद्दंष्ट्र नामका पुत्र हुआ है ॥१२०–१२१॥ वज्रायुधका जीव सर्वार्थ-सिद्धिसे च्युत होकर संजयन्त हुआ है और ब्रह्मलोकसे च्यकर जयन्तका जीव तू धरणेन्द्र हुआ है ॥१२२॥ देखो वैरकी महिमा, राजा सिंहसेनने श्रीभूति पुरोहितका एक जन्ममें अपकार किया था पर उसी अपकारसे वैर बांधकर श्रीभूतिके जीवने अनेक जन्मोंमें सिंहसेनका वध किया ॥१२३॥ तीव्र वैरसे क्रोधके वशीभूत हो श्रीभूतिके जीवने सिंहसेनका अनेक बार घात किया अवश्य पर

उससे उसे क्या लाभ हुआ ? प्रत्युत उसका यह कार्य अपने ही सुखको नष्ट करनेवाला हुआ ।।१२४।। सिंहसेनका जीव तो जब हाथी था तभी जैनधर्म प्राप्तकर वैर रहित हो गया था और उसके फलस्वरूप पांचवें भवमें संजयन्त पर्यायसे मोक्ष चला गया है पर तू नागेन्द्र होकर भी वैरको धारण कर संसारमें परिभ्रमण कर रहा है ।।१२५।। हे धरणेन्द्र ! इस प्रकार वैर-भावको घोर संसारका वर्धक जानकर तू छोड़ दे और सबका मूल जो मिथ्यादर्शन है उसका भी शीघ्र त्याग कर दे ।।१२६।। इस प्रकार आदित्याभ देवके द्वारा प्रबोधको प्राप्त हुए धरणेन्द्रने सब वैर-भाव छोड़कर संसारसागरसे पार करानेवाला सम्यग्दर्शन धारण कर लिया ।।१२७।।

तदनन्तर विद्याओंके खण्डित हो जानेसे जो पंख कटे पक्षियोंके समान खेद-खिन्न हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंसे धरणेन्द्रने कहा कि हे समस्त विद्याधरो ! तुम सब शीघ्र ही इस पर्वतपर संजयन्त स्वामीकी पाँच सौ धनुष ऊँची प्रतिमा स्थापित करो। उसी प्रतिमाके पादमूलमें उनकी सेवा करते हुए तुम लोगोंको बहुत समय बाद बड़े कष्टसे विद्याएँ सिद्ध होंगी अन्य प्रकारसे नहीं ।।१२८-१३०।। आजसे विद्युद्दंष्ट्रके वंशमें केवल स्त्रियोंको ही प्रज्ञप्ति, रोहिणी और गौरी नामकी विद्याएँ सिद्ध हो सकेंगी पुरुषोंको नहीं ।।१३१।। इस प्रकार धरणेन्द्रकी आज्ञाको विद्याधरोंने नमस्कारपूर्वक स्वीकार किया तथा यथायोग्य विधिसे अपनी विद्याएँ पुनः प्राप्त कीं। यह सब होनेके बाद देव यथास्थान चले गये ।।१३२।। विद्याधरोंने धरणेन्द्रकी आज्ञानुसार उस पर्वतपर नाना उपकरणोंसे युक्त एवं सुवर्ण और रत्नोंसे निर्मित संजयन्त स्वामीकी प्रतिमा स्थापित करायी ।।१३३।। विद्याओंके हरे जानेसे लज्जित हो नीचा मस्तक किये हुए विद्याधर चूँकि उस पर्वतपर बैठे थे इसलिए लोग उस पर्वतको ह्रीमन्त कहने लगे ।।१३४।। मथुरामें विशाल लक्ष्मीका धारक रत्नवीर्य नामका राजा रहता था। उसकी मेघमाला नामकी स्त्री थी, आदित्याभ नामका लान्तवेन्द्र उन्हीं दोनोंके मेरु नामका पुत्र हुआ ।।१३५।। उसी राजा रत्नवीर्यकी दूसरी स्त्री अमित-प्रभा थी, उसके धरणेन्द्रका जीव चन्द्रमाके समान सुन्दर मन्दर नामका पुत्र हुआ ।।१३६।।

तदनन्तर युवा होनेपर दोनोंने इच्छानुसार कामभोगोंका उपभोग किया और उसके बाद दोनों ही, श्री श्रेयान्सनाथ जिनेन्द्रके शिष्य हो गये—दीक्षा लेकर मुनि हो गये ।।१३७।। उनमें मेरु पर्वतके समान निष्कम्प मेरु मुनिराज केवलज्ञानरूपी सम्पत्तिको प्राप्त कर मोक्ष चले गये और मन्दरगिरिकी उपमाको धारण करनेवाले मन्दर मुनिराज श्रेयान्सनाथ भगवान्के गणधर हो गये ।।१३८।। गौतम स्वामी कहते हैं कि इस पृथिवीपर जो भव्य जीव तीर्थंकर पद प्राप्त करना चाहते हैं वे तीनों लोकोंमें अतिशय प्रसिद्ध संजयन्त स्वामीके इस चरितका उत्कट भक्ति-भावसे आदर करें तथा उसीका अच्छी तरह स्मरण करें ।।१३९।।

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें संजयन्त पुराणका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।२७।।

□

सर्ग- २८

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब तुम वेगवतीसे रहित तथा पुण्य और पुरुषार्थके समागमको प्राप्त वसुदेवका आगेका चरित सुनो ॥१॥ एक दिन बिना किसी थकावटके अटवीमें भ्रमण करते हुए वीर वसुदेवने तपस्वियोंके आश्रममें प्रवेश किया और वहाँ विकथा करते हुए तापसोंको देखा ॥२॥ कुमारने उनसे कहा—अये तापसो ! आप लोग इस तरह राज-कथा और युद्ध-कथामें आसक्त क्यों हैं ? क्योंकि तापस वे कहलाते हैं जो तपसे युक्त हों और तप वह कहलाता है जिसमें वचन संयम आदिका पालन किया जाय अर्थात् वचनोंको वशमें किया जाय ॥३॥ इस प्रकार कहनेपर विशिष्ट आगन्तुकसे स्नेह रखनेवाले उन तपस्वियोंने कहा कि हमलोग अभी नवीन ही दीक्षित हुए हैं। इसलिए मुनियोंकी वृत्तिको जानते नहीं हैं ॥४॥ इसी श्रावस्ती नगरीमें विस्तृत यशसे समुद्रको पार करनेवाला एवं अखण्ड पौरुषका धारक एक एणीपुत्र नामका राजा है ॥५॥ उसकी लोकमें अद्वितीय सुन्दरी प्रियंगुसुन्दरी नामकी कन्या है। उसके स्वयंवरके लिए एणीपुत्रने हम सब राजाओंको बुलाया था ॥६॥ परन्तु किसी कारणवश, जिस प्रकार वनकी हस्तिनी वनके हस्तीके सिवाय किसी दूसरे हस्तीको नहीं वरती है उसी प्रकार उस शोभासम्पन्न कन्याने किसीको नहीं वरा ॥७॥ तदनन्तर जो कन्याके लोभसे युक्त थे, परन्तु उसके प्राप्त न होनेसे मन-ही-मन लज्जित हो रहे थे, ऐसे बहुतसे राजा मिलकर कन्याके पिताके साथ शीघ्र ही युद्ध करनेको तैयार हो गये ॥८॥ परन्तु जिस प्रकार एक ही सूर्य हजारों नेत्रोंको अकेला ही संकोचित कर देता है उसी प्रकार उस अकेले एणीपुत्रने हजारों राजाओंको शीघ्र ही क्षुभित कर संकोचित कर दिया ॥९॥ उत्कट अभिमानसे भरे कितने ही राजाओंने जो पराजयको स्वीकृत करनेमें समर्थ नहीं थे, युद्धके मैदानमें जाकर शीघ्र ही प्राण त्याग दिये ॥१०॥ जिस प्रकार सूर्यसे डरकर अन्धकारके समूह सघन वनमें जा घुसते हैं उसी प्रकार हम सब भी घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे युक्त युद्धसे डरकर इस सघन वनमें आ घुसे हैं ॥११॥ भो महाशय ! हम लोग धर्मका कुछ भी तत्त्व नहीं जानते। इसलिए आप हम लोगोंको धर्मका उपदेश दीजिए। आपके मधुर वचनोंसे पता चलता है कि आपने धर्मका तत्त्व अच्छी तरह देखा है ॥१२॥ इस प्रकार उन सबके पूछनेपर वसुदेवने उन्हें श्रावक और मुनिके भेदसे दोनों प्रकारका धर्म बतलाया जिससे वे मुनि और श्रावक-के भेदको अच्छी तरह जानकर यथार्थ साधु अवस्थाको प्राप्त हुए ॥१३॥

तदनन्तर प्रियंगुसुन्दरीके लाभके लोभसे प्रेरित हो कुमार वसुदेवने वस्तुओंके विस्तारसे प्रसिद्ध उस श्रावस्ती नगरीमें प्रवेश किया ॥१४॥ वहाँ उन्होंने बाह्य उद्यानमें कामदेवके मन्दिरके आगे निर्मित तीन पाँवका एक बड़ा भारी सुवर्णमय भैंसा देखा ॥१५॥ उसे देखकर उन्होंने एक ब्राह्मणसे पूछा कि हे महानुभाव ! यहाँ यह रत्नमयी तीन पाँवोंका भैंसा किसलिए बनाया गया है ? इसका कुछ कारण अवश्य होना चाहिए ॥१६॥ ब्राह्मणने कहा कि इस नगरमें पहले शत्रुओंको जीतनेवाला एक इक्ष्वाकुवंशीय जितशत्रु नामका उत्तम राजा था और उसका मृगध्वज नामक पुत्र था ॥१७॥ इसी नगरमें एक कामदत्त नामका सेठ रहता था। वह एक समय गोशाला देखनेके गया तो वहाँ एक दीन-हीन छोटा-सा भैंसा उसके चरणोंपर आ गिरा ॥१८॥ उसका यह आश्चर्य-

...क कार्य देख सेठने गोशालाके अधिकारी पिण्डार नामक गोपालसे इसका कारण पूछा ॥१९॥ गोपालने कहा जिस दिन यह उत्पन्न हुआ था उसी दिनसे इसपर मुझे बहुत दया उत्पन्न हुई थी इसलिए मैंने वनमें विराजमान मुनिराजके दर्शनकर नमस्कार पूर्वक उनसे इसके विषयमें पूछा था ॥२०॥ कि हे मुनिनाथ ! इसके ऊपर मेरे हृदयमें बहुत भारी दया क्यों उत्पन्न हुई है ? इसके उत्तरमें ज्ञानी मुनिराजने कहा था कि हे गोपाल ! सुन, मैं इसका कारण कहता हूँ ॥२१॥ यह वेचारा इसी एक भैंसके पाँच बार उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होते ही तू ने इसे मार डाला ॥२२॥ अब छठवीं बार भी उसी भैंसके उत्पन्न हुआ है, अबकी बार इसे जाति स्मरण हुआ है इसलिए भयभीत हो सहसा उठकर तेरे पैरोंपर आ गिरा था। छोटे बच्चोंका संरक्षण भी तो तेरे ही आधीन था ॥२३॥

मुनिराजके उक्त वचन सुनकर मैंने यहाँ पुत्रवत् इसका पालन किया है। अब जीवित रहनेकी इच्छासे यह यहाँ आपके चरणोंमें भी गिरा है ॥२४॥ गोपालके वचन सुनकर वह सेठ दयापूर्वक उस भैंसके बच्चेको अपने साथ नगर ले गया और राज-कर्मचारियोंसे उसे अभय दिलाकर उसका भद्रक नाम रख दिया। भद्रक दिन-प्रति-दिन बड़ा होने लगा ॥२५॥ किसी समय राजपुत्र मृगध्वजने अन्य भवसम्बन्धी वैरके संस्कारसे चक्रके द्वारा उस भैंसेका एक पाँव काट डाला ॥२६॥ राजाको जब इस बातका पता चला तो उसने क्रोधमें आकर मृगध्वजको मारनेका आदेश दे दिया। मन्त्री बुद्धिमान् था इसलिए उसने मृगध्वजको मारा तो नहीं किन्तु किसी छलसे वनमें ले जाकर उसे मुनि दीक्षा दिला दी ॥२७॥ भद्रक शुभ परिणामोंसे अठारहवें दिन मर गया और बाईसवें दिन निर्मल ध्यानके प्रभावसे मृगध्वज मुनि केवलज्ञानी हो गये ॥२८॥ चारों निकायके देव तथा मनुष्योंने आकर मृगध्वज केवलीकी पूजा की। तदनन्तर पिता जित-शत्रुने मृगध्वज केवलीसे मृगध्वज तथा भैंसेके वैरका सम्बन्ध पूछा ॥२९॥ तदनन्तर कथाके सुननेसे जिनके चित्त तथा हृदय प्रसन्न हो रहे थे ऐसे देव, दानव और मानवोंसे घिरे मृगध्वज मुनि इस प्रकार कहने लगे ॥३०॥

किसी समय अलका नगरीमें प्रथम नारायण त्रिपिष्टका प्रतिशत्रु—प्रतिनारायण, अश्वग्रीव नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंका राजा रहता था ॥३१॥ उसका हरिश्मश्रु नामका एक मन्त्री था जिसने तर्कशास्त्र रूपी महासागरको पार कर लिया था और सिंहकी मूँछके समान जिसका स्पर्श करना कठिन था ॥३२॥ हरिश्मश्रु एकान्तवादी नास्तिक तथा सिर्फ प्रत्यक्षको प्रमाण माननेवाला था इसलिए जो वस्तु प्रत्यक्ष नहीं दिखती थी उसे वह 'है ही नहीं' ऐसा मानता था ॥३३॥ उसका कहना था कि जिस प्रकार आटा आदिमें मद शक्ति पहले नहीं थी किन्तु विभिन्न वस्तुओंका संयोग होनेपर नवीन ही उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथिवी आदि चार भूतोंके समूह स्वरूप इस शरीरमें जो पहले बिलकुल ही नहीं थी ऐसी नवीन ही चैतन्य शक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥३४॥ इसी चैतन्य शक्तिमें 'यह आत्मा है' ऐसा लोगोंका व्यवहार विरुद्ध नहीं होता अर्थात् उस चैतन्य शक्तिको लोग आत्मा कहते रहें इसमें कोई विरोधकी बात नहीं है। यथार्थमें पृथिव्यादि भूतोंसे अतिरिक्त कोई संसारी आत्मा नहीं है क्योंकि उसकी उपलब्धि नहीं होती ॥३५॥ पुण्य-पापका कर्ता, सुख-दुःखका भोक्ता और परलोकमें जानेवाला जो अज्ञानी जनोंने मान रखा है वह नहीं है क्योंकि वह दिखाई नहीं पड़ता ॥३६॥ भोगोंके अधिष्ठाता-आत्माके रहनेका आधार, तथा नरक देव और तिर्यंचोंके भेदसे युक्त जिस परलोककी कल्पना अज्ञानी जनोंने कर रखी है वह नहीं है ॥३७॥ विशिष्ट ज्ञानवान् मनुष्योंको ही जिसकी प्राप्ति शक्य एवं सुनिश्चित की गयी है ऐसा मोक्ष मानना भी निष्प्रमाण है क्योंकि जब मुक्त होनेवाला आत्मा ही नहीं है तब मोक्षका मानना उचित कैसे हो सकता है ? ॥३८॥ जो भूतोंके संयोगसे उत्पन्न होता है और भूतोंके वियोगसे नष्ट हो

जाता है ऐसे सुखके उपभोक्ता चेतनके लिए संयम धारण करना भोगोंको नष्ट करना है ॥३९॥ इस प्रकार जो एकान्त मत रूपी कुतर्कोंसे रँगा हुआ था, आगम तथा अनुमान प्रमाणके द्वारा ज्ञेय जीवादि पदार्थोंसे सदा पराङ्मुख रहता था, परलोक सम्बन्धी कथाओंसे रहित दुष्ट कथाओंमें ही जिसका मन मूढ रहता था और जो धर्मकी निन्दा करता रहता था ऐसा वह क्षुद्र मन्त्री निरन्तर काम भोगोंमें ही आसक्त रहता था ॥४०–४१॥ नास्तिक, परलोकके अपलापी, तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंको दोष लगानेवाले और खोटी चेष्टासे युक्त हरिश्मश्रु मन्त्रीके संसर्गसे अश्वग्रीव भी नास्तिक बन गया जिससे वह भी धर्मसे विमुख एवं भवों द्वारा पिशाचादिसे निरन्तर आक्रान्त हुएके समान रहने लगा ॥४२-४३॥ तदनन्तर किसी समय युद्धमें अश्वग्रीवको त्रिपिष्ट नारायणने और हरिश्मश्रुको विजय बलभद्रने मार गिराया जिससे वे दोनों ही मरकर तमस्तमः नामक सातवें नरक गये ॥४४॥ हे राजन् ! चिर काल तक अनेक योनियोंमें भ्रमण कर अश्वग्रीवका जीव तो मैं मृगध्वज हुआ हूँ और हरिश्मश्रुका जीव इस समय भद्रक नामका भैंसा हुआ है ॥४५॥ पूर्व क्रोधके संस्कारसे मैंने ही उस भैंसेको मारा था और अकामनिर्जराके प्रभावसे वह लोहित नामका असुर हुआ है ॥४६॥ वह लोहितासुर इस समय वन्दनाकी भक्तिसे यहाँ आया है और देवोंकी विभूतिसे युक्त हो मित्र भावसे यहीं बैठा है ॥४७॥ हे महाराज ! यह क्रोधका संस्कार प्राणीको अन्धा बना देनेमें समर्थ है इसलिए जो मोक्षकी इच्छा रखते हैं वे इसे रोककर शान्त हों ॥४८॥ मृगध्वज केवलीके मुखसे यह वृत्तान्त सुन जितशत्रुको आदि लेकर कितने ही राजाओंने दीक्षा ले ली। महिषासुर शान्त हो गया और सभाके लोग लोलुपता छोड़, शल्य रहित हो सुशोभित होने लगे ॥४९॥ तदनन्तर देव-दानव और केवलीको नमस्कार कर यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर चले गये और केवली मृगध्वज सिद्ध स्थानपर जा विराजे ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो भव्य जीव इस महिषासुर और मृगध्वजके वृत्तान्तको सदा अपने शुद्ध हृदयमें धारण करता है वह जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा इष्ट पदार्थोंको विषय करनेवाली दर्शनविशुद्धि — सम्यग्दर्शनकी निर्मलताको प्राप्त होता है ॥५१॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें मृगध्वज और महिषके चरितका वर्णन करनेवाला अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२८॥

▫

सर्ग- २६

अथानन्तर सेठ कामदत्तने, जहाँ लोगोंका आना-जाना अधिक था ऐसे स्थानपर नगरमें जिनमन्दिरके आगे मृगध्वज केवलीकी प्रतिमा और महिषकी मूर्ति स्थापित की ॥१॥ सेठने इसी मन्दिरमें समस्त प्रजाके कौतुकके लिए कामदेव और रतिकी भी मूर्ति बनवायी ॥२॥ कामदेव और रतिको देखनेके कौतूहलसे जगत्‌के लोग जिन-मन्दिरमें आते हैं और वहाँ स्थापित दोनों प्रतिमाओंको देखकर मृगध्वज केवली और महिषका वृत्तान्त सुनते हैं जिससे अनेकों पुरुष प्रति-दिन जिनधर्मको प्राप्त होते हैं ॥३-४॥ यह जिनमन्दिर कामदेवके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध और कौतुकवश आये हुए लोगोंको जिनधर्मकी प्राप्तिका कारण है ॥५॥ उसी कामदत्त सेठके वंशमें अनेक लोगोंके उत्पन्न हो चुकनेके बाद इस समय एक कामदेव नामका सेठ उत्पन्न हुआ है ॥६॥ उसकी रूप और यौवनसे पूर्ण, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा बन्धुजनोंको आनन्दित करनेवाली बन्धुमती नामकी एक कन्या है ॥७॥ पिताके पूछनेपर निमित्तज्ञानीने बताया था कि जो मनुष्य कामदेवके मन्दिरका दरवाजा खोलकर कामदेवकी पूजा करेगा वही इसका पति होगा ॥८॥

ब्राह्मणके इस प्रकारके वचन सुन वसुदेव कामदेवके मन्दिरके द्वारपर पहुँचे और बत्तीस अर्गलाओंसे दुर्गम उस द्वारको खोलकर शीघ्र ही भीतर जा पहुँचे ॥९॥ भीतर जाकर वसुदेवने प्रथम तो जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमाओंकी पूजा की और उसके बाद रति सहित कामदेवकी पूजा की। उसी समय कामदेव सेठ प्रतिमाओंकी पूजाके लिए मन्दिरमें आया था सो उसने वसुदेवको देखा ॥१०॥ तदनन्तर निमित्तज्ञानीके आदेशकी सचाईसे जिसकी आत्मा प्रसन्न हो रही थी ऐसे कामदेव सेठने सुन्दर ओठोंसे सुशोभित अपनी बन्धुमती कन्या वसुदेवके लिए प्रदान कर दी ॥११॥ उसी समय नगरीमें चारों ओर यह समाचार फैल गया कि वरके अभिलाषी सेठ कामदेवके लिए कामदेवने, मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला एवं कामदेवके समान आभावाला कोई अद्भुत जामाता दिया है। इस समाचारसे प्रेरित होकर राजाने, उसके अन्तःपुरकी स्त्रियोंने, तथा नगरवासी लोगोंने इच्छानुसार वसुदेवको देखा ॥१२-१३॥ राजपुत्री प्रियंगुसुन्दरीने भी उन्हें किसी तरह देख लिया और देखकर वह उनपर इतनी अनुरक्त हो गयी कि पानीसे विरक्त हो गयी अर्थात् भोजन पानीसे भी उसे अरुचि हो गयी ॥१४॥ प्रियंगुसुन्दरीने अपनी सखी बन्धुमतीको एकान्तमें बुलाकर उससे पूछा कि हे सखी ! तुम पतिको बहुत प्यारी हो, कहो इनकी चतुराई कैसी है ? ॥१५॥ भोलीभाली बन्धुमतीने चतुर वसुदेवकी चेष्टाओंका प्रियंगुसुन्दरीके लिए इस ढंगसे वर्णन किया कि वह एकदम स्वसंवेद्य सुखसे युक्त मोहको प्राप्त हो गयी ॥१६॥ निदान प्रियंगुसुन्दरीने अभिमान छोड़कर द्वारपाल-को यह संदेश देकर वसुदेवके पास भेजा कि या तो हमारे साथ समागम करो या शीघ्र ही हत्या स्वीकृत करो ॥१७॥ 'यह दोनों ही काम अनुचित है' यह विचारकर वसुदेव चिन्तामें पड़ गये। अन्तमें वे चतुर तो थे ही इसलिए किसी बहाने उन्होंने कुछ समय तक ठहरनेका समाचार कहला भेजा ॥१८॥ वसुदेवमें जिसकी बुद्धि लग रही थी ऐसी प्रियंगुसुन्दरीको उनकी प्राप्तिकी आशा हो गयी और इसी आशासे वह रात्रिके समय शय्यापर अपने मनोरथको पूर्ण हुआ ही मानने लगी ॥१९॥

एक दिन रात्रिके समय कुमार वसुदेव बन्धुमतीका गाढ़ आलिंगन कर सो रहे थे कि एक

ज्वलनप्रभा नामकी दिव्य नागकन्याने आकर उन्हें जगा दिया ॥२०॥ कुमार जाग गये और शरीर तथा आभूषणोंकी कान्तिसे जिसने समस्त दिशाओंको प्रकाशित कर दिया था तथा जिसके शिरपर नागका चिह्न था ऐसी उस स्त्रीको देखकर वे विचार करने लगे कि यह कौन स्त्री यहाँ आयी है? ॥२१॥ उसी समय प्रिय वार्तालाप करनेमें निपुण नागकन्याने धीर, वीर कुमारको बुलाया और बड़ी विनयके साथ नीतिपूर्वक अशोकवाटिकामें ले जाकर कहा कि हे धीर! निश्चिन्त होकर मेरे आनेका कारण सुनिए। वह कारण कि जिससे तुम्हारे कान अमृत रसके समान तृप्त हो जावेंगे ॥२२-२३॥

हे धीर वीर कुमार! चन्दनवन नामक नगरमें, अमोघ शक्तिका धारक एवं शत्रुमण्डलको वश करनेवाला अमोघदर्शन नामका राजा था ॥२४॥ उसकी चारुमति नामकी स्त्री थी और दोनोंके नीति तथा पुरुषार्थसे युक्त नवयौवनसे सुशोभित चारुचन्द्र नामका पुत्र था ॥२५॥ उसी नगरमें कला और गुणोंके समूहसे सहित एक रंगसेना नामकी वेश्या थी और उसकी कामपताका नामकी पुत्री थी जो सचमुच ही कामकी पताकाके समान जान पड़ती थी ॥२६॥ एक बार धर्म-अधर्मके विवेकसे रहित राजा अमोघदर्शनने यज्ञदीक्षाके लिए प्रवेश किया। उसी समय जटाओंको धारण करनेवाले कौशिक आदि ऋषि भी आये ॥२७॥ उस यज्ञोत्सवमें राजाकी आज्ञासे कामपताकाने नृत्य किया। ऐसा नृत्य, कि मनुष्योंके हृदयको हरण करती हुई उसने स्पष्ट कर दिया कि मैं यथार्थमें कामकी पताका ही हूँ ॥२८॥ उस नृत्यको देखकर शास्त्रोंकी निपुणतासे युक्त तथा वृक्षोंके मूल पत्र और फलोंको खानेवाला कौशिक ऋषि भी क्षोभको प्राप्त हो गया तब अन्य-की तो कथा ही क्या थी? ॥२९॥ यज्ञ कार्य समाप्त होनेपर राजपुत्र चारुचन्द्रने उस कन्या—कामपताकाको स्वीकृत कर लिया। उसी समय कौशिक ऋषिके शिष्य कुछ तापस राजाको भक्त जान कन्याकी याचना करनेके लिए वहाँ आये ॥३०॥ जब उन्होंने कौशिक ऋषिके लिए कामपताकाकी याचना की तब राजाने कहा कि वह कन्या तो राजकुमारने विवाह ली है। आपलोग जावें। राजाके इस प्रकार कहनेपर वे तापस चले गये ॥३१॥ कन्याके न मिलनेसे कौशिककी आत्मामें बड़ा संक्लेश उत्पन्न हुआ। वह राजाके पास गया और 'हे राजन्! तूने मुझे कन्या नहीं दी है इसलिए मैं सर्प बनकर भी तुझे मारूँगा' इस प्रकार आक्रोशपूर्ण वचन कहकर चला आया ॥३२॥ राजा, कौशिकके आक्रोशपूर्ण वचन सुनकर डर गया इसलिए पुत्रका राज्याभिषेककर अव्यक्त गर्भवाली रानी चारुमतिके साथ तापस हो गया ॥३३॥ कुछ समय बाद तापसी चारुमतिने तपस्वियोंके आश्रमको सुशोभित करनेवाली, एवं अनुपम शोभासे सुशोभित ऋषिदत्ता नामकी कन्याको जन्म दिया ॥३४॥ कन्या ऋषिदत्ताने एक बार चारण ऋद्धिधारी मुनिराजके समीप अणुव्रत धारण किये। धीरे-धीरे उस कन्याने तरुण पुरुषोंके मन और नेत्रोंको बाँधनेवाला नवयौवन प्राप्त किया ॥३५॥ एक समय शान्तायुधका पुत्र, लक्ष्मीसे सुशोभित एवं शीलायुध नामसे प्रसिद्ध श्रावस्तीका राजा तपस्वियोंके उस आश्रममें पहुँचा ॥३६॥ उसे देख अकेली ऋषिदत्ता कन्याने रुचिवर्धक उत्तम आहार देकर उसका अतिथि सत्कार किया। कन्या ऋषिदत्ता सुन्दरी तो थी ही उसपर वल्कलोंके कारण उसके स्तनोंकी शोभा और भी अधिक मनोहारिणी हो गयी थी ॥३७॥ फल यह हुआ कि अनुपम रूपको धारण करनेवाले उन दोनोंके प्रेमने विश्वासकी अधिकतामें चिरकालसे पाली हुई अपनी-अपनी मर्यादा तोड़ दी ॥३८॥ कामपाशसे बँधा युवा शीलायुध निःशंक होकर एकान्तमें ऋषिदत्ताके पास चला गया और शंकारहित एवं वशीभूत ऋषिदत्ताके साथ उसने इच्छानुसार क्रीड़ा की ॥३९॥ तदनन्तर भयसे युक्त हो तापसी ऋषिदत्ताने राजासे कहा कि हे आर्यपुत्र! मैं ऋतुमती हूँ यदि गर्भवती हो गयी तो मुझे क्या करना होगा सो बताओ। इस प्रकार व्याकुल चित्तसे युक्त ऋषिदत्ताके पूछनेपर शीलायुधने कहा कि हे प्रिये! व्याकुल

मत होओ ! सुनो, मैं शत्रुओंको नष्ट करनेवाला, इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हुआ श्रावस्तीका राजा शीलायुध हूँ। पुत्रके साथ-साथ तुम मुझे अवश्य ही दर्शन देना अर्थात् पुत्र प्रसवके बाद श्रावस्ती आ जाना ।।४०-४२।। इस प्रकार आश्वासन देकर तथा एकान्तमें आलिंगन कर विरहसे उत्कण्ठित होता हुआ वह जानेके लिए उद्यत ही था कि इतनेमें उसकी सेना तपस्वियोंके आश्रममें आ पहुँची ।।४३।। सेनाको देख राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसके साथ नगरीको लौट आया। तदनन्तर राजाके चले जानेपर लोकव्यवहारको जाननेवाली ऋषिदत्ताने लज्जा छोड़कर माता-पिताके लिए यह वृत्तान्त सुना दिया और कह दिया कि मैं निर्लज्ज राजा शीलायुधकी एकान्तमें पत्नी बन चुकी हूँ और गर्भवती हो गयी हूँ ।।४४-४५।। तदनन्तर नव मास व्यतीत होनेपर ऋषिदत्ताने सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया जो बिलकुल पिताके अनुरूप था और ऐसा जान पड़ता था मानो पिताके द्वारा ही प्रकट किया गया हो। प्रसूतिके समय ऋषिदत्ताको क्लेश अधिक हुआ था इसलिए वह प्रसूतिके बाद ही मर गयी और सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ज्वलनप्रभवल्लभा नामकी नागकुमारी उत्पन्न हुई। वही मैं हूँ, मुझे देव पर्यायके कारण भवप्रत्यय अवधिज्ञान भी प्रकट हुआ है ।।४६-४७।। इसलिए उससे पूर्वभवकी सब बात जानकर दया और स्नेहके वशीभूत हो मैं पिता और पुत्रके तपोवनमें गयी। वहाँ शोकसन्तप्त माता-पिताको आश्वासन देकर मैंने अपने उस पुत्रको मृगीका रूप रख दूध पिला-पिलाकर बड़ा किया। तदनन्तर कौशिक ऋषिका जीव निदानके कारण सर्प हुआ था सो उसने पूर्व वैरके कारण हमारे पिताको डस लिया परन्तु मैंने अमोघमन्त्रसे उन्हें जीवन प्राप्त करा दिया—अच्छा कर दिया। मेरे पिता यद्यपि जो छूट न सके ऐसे क्रोधसे दूषित थे तथापि धर्मोपदेश देकर मैंने उन्हें धर्म ग्रहण करा दिया जिससे वे मरकर उत्तम गतिको प्राप्त हुए। तत्पश्चात् तापसीका वेष धारणकर और उस पुत्र-को लेकर मैं राजा शीलायुधके पास गयी ।।४८-५१।। राजा शीलायुध बड़ी विभूतिसे युक्त तथा परम नीतिज्ञ था उसे देखकर मैंने कहा कि हे राजेन्द्र ! यह राजाओंके लक्षणोंसे युक्त आपका पुत्र है ।।५२।। यह आपकी मृत स्त्री द्वारा छोड़ा गया है और एणीपुत्र इसका नाम है। इसे आप ग्रहण कीजिए। मेरे इस प्रकार कहनेपर राजा शीलायुधने कहा कि मैं तो पुत्रहीन हूँ। मेरे पुत्र कहाँसे आया ? ।।५३।। हे तापसि ! ठीक-ठीक बता यह पुत्र तुझे कैसे प्राप्त हुआ है ? राजाके इस प्रकार पूछनेपर मैंने अभिज्ञान–परिचायक घटनाओंके साथ-साथ वह सब वृत्तान्त कह दिया ।।५४।। और यह भी कह दिया कि मैं मरकर देवी हुई हूँ। मेरे इस कथनपर विश्वास कर राजा शीलायुधने वह पुत्र ले लिया। पुत्र धीरे-धीरे बढ़ने लगा और मैं मोहयुक्त पुत्रस्नेहके कारण उसकी निरन्तर रक्षा करने लगी। राजा शीलायुधकी जो इच्छा होती थी उसकी मैं तत्काल पूर्ति कर देती थी। कदाचित् परम विवेकी राजा शीलायुध, उस एणीपुत्रको अपने राज्यपर पदारूढ़ कर दीक्षा ले मुनि हो गया और मरकर स्वर्गलोकको प्राप्त हुआ। पश्चात् राजा एणीपुत्रके प्रियंगु-पुष्पके समान श्यामवर्ण, अतिशय रूपवती, प्रियंगुसुन्दरी नामकी पुत्री हुई। राजा एणीपुत्रने उसका स्वयंवर किया परन्तु कामभोगसे विरक्त उस धैर्यशालिनीने पृथिवीतलके समस्त राज-कुमारोंका निराकरण कर दिया अर्थात् किसीके साथ विवाह करना स्वीकृत नहीं किया। तदनन्तर जिस दिनसे उसने राजमहलमे बन्धुमतीके साथ आपको देखा है उसी दिनसे वह कामके बाणोंसे अत्यन्त सशल्य शरीरको धारण कर रही है इसलिए हे वीर ! मेरे कहनेसे तू उसके साथ समागम कर ।।५५-६०।। वह कन्या अदत्ता है किसीके द्वारा दी नहीं गयी है—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि मैंने तेरे लिए वह कन्या दी है। इस राजकुलके करने योग्य कार्योंमें मैं प्रमाण-भूत हूँ अर्थात् समस्त कार्य मेरी ही सम्मतिसे होते हैं ।।६१।। इसलिए मैंने तुझे यह कन्या दी मानो इसके पिता और भाइयोंने ही दी है। अतः कामदेवके मन्दिरमें तुम दोनोंका समागम

हो और इसके लिए कलकी रातका संकेत निश्चित किया गया है। हे देव ! देवताओंका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता इसलिए आप मुझसे वर माँगकर इस संसारमें जो कुछ भी आपको इष्ट हो वह प्राप्त करो। नागकुमारीके इस प्रकार कहनेपर वसुदेवने विनयपूर्ण वचनों द्वारा उससे कहा कि हे अमोघ मुस्कानको धारण करनेवाली देवि ! मैं यही वर चाहता हूँ कि जब मैं आपका स्मरण करूँ तब आप मेरा ध्यान रखें। वसुदेवके इस प्रकार कहनेपर उसने 'एवमस्तु' कहा ॥६२-६५॥ उक्त वरदान देकर देवी अन्तर्हित हो गयी और वसुदेव अपने निवास स्थानपर आ गये। तदनन्तर देवीसे कहे अनुसार कुमार वसुदेव एकान्त पाकर कामदेवके मन्दिरमें प्रियंगुसुन्दरीके पास गये। कुमारको देख प्रियंगुसुन्दरीका मुख-कमल खिल उठा और गन्धर्व विवाहसे उन्होंने उसे स्वीकृत किया ॥६६-६७॥ उस समय वसुदेवरूपी सूर्यके द्वारा रमणको प्राप्त हुई प्रियंगुसुन्दरी कमलिनीके समान सुशोभित हो रही थी। इस प्रकार प्रियंगुसुन्दरीके घरमें वसुदेवके बहुत दिन निकल गये ॥६८॥ तदनन्तर परस्परके प्रेमसे बँधे हुए इस दम्पतिका यह समागम रहस्यपूर्ण रीतिसे देवीने कराया है—यह जानकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसने लोकमें प्रकट करनेके लिए उस अनुरूप दम्पतीका विवाह करा दिया। विवाहके पश्चात् सुन्दर वसुदेव सब लोगोंकी जानकारीमें रूप और यौवनके द्वारा मनको हरण करनेवाली सुन्दरी प्रियंगुसुन्दरीके साथ, इन्द्राणीके साथ इन्द्रके समान रमण करने लगे ॥६९-७१॥ इस प्रकार जिनकी गुणरूपी सम्पदाएँ प्रसिद्ध थीं तथा जो गुण और कलाओंके समूहसे लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी बन्धुमती तथा राजपुत्री प्रियंगुसुन्दरी एकान्त पूर्ण रतिगृहमें क्रमसे जिनकी सेवा करती थीं तथा जो नगरवासियोंके द्वारा अत्यन्त सम्मानको प्राप्त थे ऐसे कुमार वसुदेवने जिन-मन्दिरोंसे सुशोभित इस श्रावस्ती नगरीमें चिरकाल तक निवास किया ॥७२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें बन्धुमती और प्रियंगुसुन्दरीके लाभका वर्णन करनेवाला उनतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥२९॥

□

सर्ग- ३०

अथानन्तर कार्तिककी पूर्णिमाके दिन चिरकाल तक क्रीड़ा करनेसे अतिशय खिन्न कुमार वसुदेव प्रियंगुसुन्दरीमें प्रगाढ़ भुजबन्धनसे बँधे सुखकी नींद सो रहे थे कि किसी कारण जाग पड़े। जागते ही उन्होंने सामने खड़ी द्वितीय लक्ष्मीके समान अतिशय रूपवती एक कन्या देखी ॥१-२॥ कुमारने उससे पूछा कि हे कमललोचने ! यहाँ तुम कौन हो ? उत्तरमें कन्याने कहा कि हे कुमार ! थोड़ी देर बाद मेरा सब वृत्तान्त जान लोगे। अभी मेरे साथ आइए—इस प्रकार कुमारको बुलाकर वह कन्या बाहर चली गयी ॥३॥ कुमार भी प्रियाका आलिंगन दूरकर उसके पीछे-पीछे चल दिये। बाहर जाकर वह सुन्दर महलके फर्सपर बैठ गयी और अपने आनेका कारण इस प्रकार कहने लगी ॥४॥

हे आर्यपुत्र ! हे श्रीमन् ! अपना मन स्थिरकर अप्राप्य वस्तुकी प्राप्तिमें कारणभूत मेरे वचन सुनिए ॥५॥ इस विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके गान्धार देशमें एक गन्धसमृद्ध नामका नगर है उसका स्वामी राजा गन्धार है ॥६॥ उसकी पृथिवी नामकी स्त्री है जो उसे पृथिवीके ही समान प्यारी है। मैं उन दोनोंकी साक्षात् लक्ष्मीके समान कान्तिमती प्रभावती नामकी पुत्री हूँ ॥७॥ मैं एक दिन मानसवेगके स्वर्णनाभ नामक उत्तम नगरको गयी थी। वहाँ मैंने मानसवेगकी माता अंगारवतीको जानकर उससे उसकी पुत्री वेगवतीका वृत्तान्त पूछा ॥८॥ वेगवतीकी सखियोंने मुझे उसका समाचार बताया और साथ ही यह भी बताया कि जिस प्रकार चन्द्रमाके साथ चित्रा नक्षत्रका संगम होता है उसी तरह आपके साथ उसका संगम हुआ है ॥९॥ उसी नगरमें शुद्ध शील ही जिसका आभूषण है तथा आपका नाम ग्रहण करना ही जिसका आहार है ऐसी सोमश्री भी रहती है ॥१०॥ जिसकी अलकावलीके छोर आपके वियोगजन्य महा दुःखसे सफेद-सफेद दिखनेवाले गालोंपर लटक रहे हैं ऐसी आपकी उस सोमश्री प्रियाने मुझे सन्देश लेकर आपके पास भेजा है ॥११॥ उसने कहलाया है कि हे आर्यपुत्र ! यद्यपि मैं शत्रुकी अनुनय-विनयके द्वारा अलंघनीय शीलरूपी प्राकारके अन्दर सुरक्षित हूँ तथापि इस तरह मुझे यहाँ कितनी देर तक रहना होगा ? ॥१२॥ पुत्रको डांटनेवाली शत्रुकी माता ही मेरी रक्षा कर रही है इसीलिए अबतक जीवित हूँ। हे प्राणनाथ ! इस शत्रुसे आप मुझे शीघ्र छुड़ाइए ॥१३॥ निरन्तर वियोग सहते-सहते कदाचित् मेरी यहींपर मृत्यु न हो जावे इसलिए हे वीर ! कठोर बुद्धि होकर मेरी उपेक्षा न कीजिए ॥१४॥ इस तरह जिसके नेत्र सदा आँसुओंसे युक्त रहते हैं ऐसी सोमश्री द्वारा भेजा हुआ सन्देश सुनाकर मैं कृत-कृत्य हुई हूँ। अब जो कुछ करना हो वह आपपर निर्भर है आप उसके पति हैं ॥१५॥ आप यह नहीं सोचिए कि वह पर्वतका स्थान मेरे लिए अगम्य है क्योंकि आपकी इच्छा होते ही मैं निमेष मात्रमें आपको वहां ले चलूँगी ॥१६॥ बुद्धिमान् वसुदेवने अनेक परिचायक चिह्नोंके साथ श्रवण करने योग्य बातको सुनकर उससे कहा कि हे सौम्यवदने ! तुम मुझे शीघ्र ही सोमश्रीके घर पहुँचा दो ॥१७॥ कुमारकी अनुमति पाते ही विद्याके प्रभावसे सम्पन्न प्रभावती उन्हें लेकर आकाशमें उस तरह जा उड़ी जिस तरह मानो बिजली ही कौंध उठी हो ॥१८॥ परस्परके अंग-स्पर्शसे जिन्हें रोमांच निकल आये थे ऐसे वे दोनों, आकाशको उल्लंघकर

शीघ्र ही स्वर्णनाभपुर नामक उत्तम नगरमें जा पहुँचे ॥१९॥ तदनन्तर जिसका कटिसूत्र और वस्त्र कुछ-कुछ नीचेकी ओर खिसक गया था ऐसी प्रभावतीने गुप्त रीतिसे वसुदेवको सोमश्रीके घर जा उतारा। वहां पहुँचते ही कुमारने सोमश्रीको देखा ॥२०॥ उस समय विरहके कारण सोमश्रीकी बुरी हालत थी। चारों ओर लटकते हुए बालोंसे उसके विरहपाण्डु मुखकी शोभा मलिन हो गयी थी इसलिए समीपमें भ्रमण करते हुए भौरोंसे मलिन-कमलसे युक्त कमलिनीके समान जान पड़ती थी ॥२१॥ वह पतिका दर्शन होनेकी अवधि तक बाँधे हुए वेणी बन्धनसे युक्त थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो पतले पुलसे युक्त नदी ही हो। उसका अधरोष्ठ ताम्बूलकी लालिमासे रहित होनेके कारण कुछ-कुछ मटमैला हो गया था इसलिए वह कुछ कुम्हलाये हुए पल्लवको धारण करनेवाली म्लान लताके समान जान पड़ती थी ॥२२-२३॥ पतिको आया देख जो उठकर खड़ी हो गयी थी तथा जो स्थूल एवं पाण्डुवर्ण पयोधरों—स्तनोंको धारण करनेके कारण स्थूल धवल पयोधरों—मेघोंको धारण करनेवाली शरद् ऋतुकी शोभाके समान जान पड़ती थी ऐसी सोमश्रीको देखकर कुमार वसुदेव बहुत ही सन्तुष्ट हुए ॥२४॥ जिनके शरीर रोमांचोंसे कर्कश हो रहे थे ऐसे दोनोंने परस्पर गाढ़ आलिंगन किया, उस समय आलिंगनको प्राप्त हुए दोनों ऐसे जान पड़ते थे मानो पुनः विरह न हो जाये इस भयसे एकरूपताको ही प्राप्त हो गये थे ॥२५॥ अच्छी तरह कार्य सिद्ध करनेवाली प्राणतुल्य प्रभावती सखीका आलिंगन कर सोमश्रीने मनोहर वचनों द्वारा उसका अभिनन्दन किया—मीठे-मीठे वचन कहकर उसे प्रसन्न किया ॥२६॥ वसुदेवके आनेका रहस्य प्रकट न हो जाये इस विचारसे प्रभावती वसुदेवको अपना रूप तथा अपना नाम देकर दोनों दम्पतीसे पूछकर एवं उनसे विदा लेकर अपने स्थानपर चली गयी। भावार्थ—प्रभावतीने अपनी विद्याके प्रभावसे वसुदेवको प्रभावती बना दिया ॥२७॥ इस प्रकार परिवर्तित रूपको धारण करनेवाले कुमार वसुदेवने मानसवेगके घर सोमश्रीके साथ कितने ही दिन निवास किया ॥२८॥

एक दिन सोमश्री पहले जाग गयी और पति—वसुदेवको अपने स्वाभाविक वेषमें देख शत्रुके भयसे किसी विपत्तिकी आशंका करती हुई रोने लगी ॥२९॥ इतनेमें कुमार भी जाग गये और उसे रोता देख पूछने लगे कि हे प्रिये! किस लिए रोती हो? सोमश्रीने उत्तर दिया कि आपका रूप परिवर्तित नहीं देख रही हूँ यही मेरे रोनेका कारण है ॥३०॥ कुमारने कहा कि डरो मत, विद्याओंका यह स्वभाव है कि वे सोते हुए मनुष्योंके शरीरको छोड़कर पृथक् हो जाती हैं और जागनेपर पुनः आ जाती हैं ॥३१॥ इस प्रकार कहकर तथा पहलेके ही समान रूप बदलकर कुमार वसुदेव प्रिया सोमश्रीके साथ वहाँ रहने लगे ॥३२॥

तदनन्तर एक दिन मानसवेगने किसी तरह कुमार वसुदेवको देख लिया जिससे 'कुमार वसुदेव हमारी स्त्री सोमश्रीके साथ रूप बदलकर रहता है' यह शिकायत लेकर वह पत्नीके साथ वैजयन्ती नगरीके राजा बलसिंहके पास गया ॥३३॥ राजा बलसिंह न्यायपरायण पुरुष था इसलिए जब उसने इस शिकायतकी छानबीन की तो मानसवेग हार गया। हार जानेसे मानसवेग बहुत ही लज्जित हुआ और वसुदेवके साथ युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥३४॥ यह देख कितने ही विद्याधर वसुदेवका पक्ष लेकर खड़े हो गये। तदनन्तर वसुदेव और मानसवेगका युद्ध हुआ ॥३५॥ वेगवतीकी माताने जमाई वसुदेवके लिए एक दिव्य धनुष तथा दिव्य बाणोंसे भरे हुए दो तरकस दे दिये और प्रभावतीने युद्धका समाचार जानकर शीघ्र ही प्रज्ञप्ति नामकी विद्या दे दी। उसके प्रभावसे कुमारने मानसवेगको युद्धमें शीघ्र ही बाँध लिया ॥३६-३७॥ तदनन्तर मानसवेगकी माताने कुमारसे पुत्र भिक्षा माँगी जिससे दयायुक्त हो कुमारने उसे सोमश्रीके पास ले जाकर छोड़ दिया ॥३८॥ इस घटनासे मानसवेग कुमारका गहरा बन्धु हो गया और विमान द्वारा सोमश्री सहित वसुदेवको उनके अभीष्ट स्थान महापुर नगर तक पहुँचाने गया ॥३९॥ वहाँ

पहुँचनेपर वसुदेवका सोमश्रीके बन्धुओंके साथ समागम हो गया और मानसवेग भी उनका आज्ञाकारी हो अपने स्थानपर वापस चला गया ॥४०॥ तदनन्तर मुनी एवं अनुभवी बातोंके प्रश्नोत्तर करना ही जिनका काम शेष था और जिनके चित्त कामरसके आधीन थे ऐसे उन दोनों दम्पतियोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा ॥४१॥

अथानन्तर एक समय कुमारका शत्रु राजा त्रिशिखरका पुत्र सूर्पक अश्वका रूप रखकर कुमारको हर ले गया और आकाशसे उसने नीचे गिरा दिया जिससे वे गंगा नदीमें जा गिरे॥४२॥ गंगा नदीको पारकर कुमार वसुदेव तापसोंके एक आश्रममें पहुँचे। वहाँ उन्होंने मनुष्योंको हड्डियोंका सेहरा धारण करनेवाली एक पागल स्त्रीको देखकर किसी तापससे पूछा कि यह सुन्दरी युवती किसकी स्त्री है जो मदोन्मादके वश हो पागल हस्तिनीके समान इधर-उधर घूम रही है ॥४३-४४॥ तापसने कहा कि यह राजा जरासन्धकी पुत्री केतुमती है और राजा जितशत्रुको विवाही गयी है ॥४५॥ इस बेचारीको एक मन्त्रवादी परिव्राजकने अपने वश कर लिया था वह मर गया इसलिए उसकी हड्डियोंके समूहकी माला बनाकर यह पृथिवीपर घूमती रहती है ॥४६॥ यह सुनकर वसुदेवको दया उमड़ पड़ी और उन्होंने महामन्त्रोंके प्रभावसे शीघ्र ही केतुमतीके पिशाच-का निग्रह कर दिया ॥४७॥ वहाँ वसुदेवकी खोजमें जरासन्धके आदमी पहलेसे ही नियुक्त थे इसलिए यद्यपि कुमार उपकारी थे तथापि वे उन्हें घेरकर राजगृह नगर ले गये ॥४८॥ उनको ले जानेवाले लोगोंसे वसुदेवने पूछा कि हे राजपुरुषो ! बताओ तो सही मैंने राजाका कौन-सा अपराध किया है जिससे मैं इस तरह क्रोधपूर्वक ले जाया जा रहा हूँ ॥४९॥ इस प्रकार कहनेपर राजपुरुष बोले कि जो राजपुत्रीके पिशाचको दूर करेगा वह राजाको घात करनेवाले शत्रुका पिता होगा ॥५०॥ इस प्रकार कहकर नीच मनुष्योंसे घिरे वसुदेव वधस्थान पर ले जाये गये परन्तु वध होनेके पहले ही कोई विद्याधर उन्हें झपटकर आकाशमें ले गया ॥५१॥ उस विद्याधरने कुमारको सम्बोधते हुए कहा कि हे वीर ! तुम मुझे प्रभावतीका पितामह जानो, भगीरथ मेरा नाम है और तुम्हारे मनोरथको पूर्ण करनेवाला हूँ ॥५२॥ हे नीतिज्ञ ! मैं तुम्हें प्रभावतीके पास लिये जाता हूँ—इस प्रकार मधुर वचन कहता हुआ वह विद्याधर उन्हें विजयार्ध पर्वतपर ले गया ॥५३॥ वहाँ पर्वतके मस्तकपर एक गन्धसमृद्ध नामक नगर था। उसमें अनेक विद्याधरोंसे घिरे हुए वसुदेवका उसने बड़े वैभवके साथ प्रवेश कराया ॥५४॥ तदनन्तर प्रशस्त तिथि और नक्षत्रके योगमें प्रभावतीके पिता तथा बन्धुजनोंने हर्षसे युक्त वसुदेव और प्रभावतीका विवाहोत्सव किया ॥५५॥ वसुदेव और प्रभावतीके हृदय कामके आवेशसे पहले ही एक दूसरेके वशीभूत थे। अतः अब वर-वधू बनकर दोनों भोगरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥५६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि पापी मनुष्य प्रियजनोंके साथ संयोगसे प्राप्त हुए अन्य मनुष्यको सदा प्रियजनोंसे वियुक्त करता है तथापि पूर्वभवमें जिनधर्मको धारण करनेवाला मनुष्य पूर्वकी अपेक्षा सैकड़ों बार अतिशय प्रियजनोंके साथ संयोगको प्राप्त होता है ॥५७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें प्रभावतीके लाभका वर्णन करनेवाला तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३०॥

□

सर्ग- ३१

अथानन्तर—किसी समय कुमार वसुदेव प्रभावतीके साथ महलमें सो रहे थे कि उसी समय उनका वैरी सूर्पक उन्हें हरकर आकाशमें ले गया ॥ कुछ देर बाद जब उनकी नींद खुली तो मुक्कोंके प्रहारसे उन्होंने शत्रुको पीटना शुरू किया। मुक्कोंकी मारसे घबड़ाकर सूर्पकने उन्हें आकाशसे छोड़ दिया जिससे वे शरीरको सुख पहुँचानेवाले गोदावरीके कुण्डमें गिरे ॥१-२॥ वहाँसे निकलकर वे कुण्डपुर ग्राममें पहुँचे। वहाँका राजा पद्मरथ था। उसकी कला-कौशलसे सुशोभित एक सुन्दरी कन्या थी। उस कन्याकी प्रतिज्ञा थी कि जो मुझे माला गूंथनेमें पराजित करेगा उसीके साथ मैं विवाह करूँगी। कुमार वसुदेवने उसे माला गूँथनेका कौशल दिखाकर प्राप्त किया—उसके साथ विवाह किया ॥३॥ एक दिन कुमारका शत्रु नीलकण्ठ वहाँसे भी उन्हें हरकर ले गया तथा आकाशमें ले जाकर उसने छोड़ दिया। भाग्यवश कुमार चम्पानगरीके तालाबमें गिरे। वहाँसे निकलकर उन्होंने चम्पापुरीमें प्रवेश किया तथा वहाँके मन्त्रीकी पुत्रीके साथ विवाह किया ॥४॥ एक दिन कुमार चम्पानगरीमें जलक्रीड़ा कर रहे थे कि वैरी सूर्पक फिर हर ले गया। अबकी बार उससे छूटकर अनेक मनोरथोंको धारण करनेवाले कुमार भागीरथी नदीमें गिरे ॥५॥ वहाँसे निकलकर वे अटवीमें घूमने लगे। वहाँ म्लेच्छोंके राजाने उन्हें देखा जिससे वे म्लेच्छराजकी जरा नामक कन्याको विवाहकर वहीं रहने लगे ॥६॥ उन्नत पराक्रम-को धारण करनेवाले वसुदेवने उस कन्यामें जरत्कुमार नामका पुत्र उत्पन्न किया। उसी समय कुमारने अवन्तिसुन्दरी और शूरसेना नामकी उत्तम कन्याको भी प्राप्त किया ॥७॥ तदनन्तर पुरुषको खोजनेवाली जीवद्यशा नामकी कन्याको एवं अनेक कन्याओंको विवाह कर कुमार वसुदेव अरिष्टपुर नामक नगर आये ॥८॥ उस समय वहाँ युद्धमें शत्रुओंको रोकनेवाला धीर-वीर रुधिर नामका राजा था। उसकी मित्रा नामकी महारानी थी जो कान्तिरूपी सम्पदासे देवीके समान जान पड़ती थी ॥९॥ उन दोनोंके नीतिका वेत्ता, रण-निपुण, महापराक्रमी एवं शस्त्र और शास्त्रका अभ्यास करनेवाला हिरण्य नामका ज्येष्ठ पुत्र था ॥१०॥ और कलाओंकी पार-गामिनी, रूप तथा यौवनके अभ्युदयको धारण करनेवाली, रोहिणी नामकी पुत्री थी। वह पुत्री सचमुच ही रोहिणी ताराके समान कीर्तिमती थी ॥११॥ रोहिणीके स्वयंवरमें जरासन्धको आगे कर समुद्रविजय आदि समस्त राजा आये ॥१२॥ शोभित शरीरको धारण करनेवाले राजा लोग स्वयंवर मण्डपमें नाना प्रकारके मणिमयी खम्भोंसे सुशोभित मंचोंपर यथाक्रमसे बैठ गये ॥१३॥ भाइयोंकी पहचानमें न आ सके ऐसे वेषको धारण करनेवाले कुमार वसुदेव भी स्वयंवरमें गये और पणव नामक बाजा बजानेवालोंके पास जाकर बैठ गये। उस समय कुमार अपने हाथमें पणव नामक बाजा लिये हुए थे और उसके बजानेवालोंमें सबसे अग्रणी जान पड़ते थे ॥१४॥

तदनन्तर सौभाग्यकी भूमि और रोहिणी-ताराके समान अतिशय रूपवती रोहिणी कन्याने स्वयंवरके भीतर प्रवेश किया ॥१५॥ उस समय समस्त राजाओंने मुड़-मुड़कर, आकुलतासे युक्त नेत्रों द्वारा एक साथ उसका अवलोकन किया। उस समय उसकी ओर देखनेवाले राजा ऐसे जान पड़ते थे मानो नेत्ररूपी कमलोंसे उसकी पूजा हो कर रहे हों ॥१६॥ जिन राजाओं-

को पहले उसका रूप सुनकर परम प्रीति उत्पन्न हुई थी अब उसका रूप देखकर उन राजाओंकी वह परम प्रीति और भी अधिक महत्त्वको प्राप्त हो गयो ॥१७॥ सो ठीक ही है क्योंकि जो अनुरागरूपी अग्नि श्रवणरूपी रूईकी सन्ततिमें लगकर धीरे-धीरे सुलग रही थी वह यदि दर्शन-रूपी ईंधनको पाकर एकदम प्रज्वलित हो उठे तो उसकी वृद्धिका क्या कहना है ? ॥१८॥ तदनन्तर जब शंख और तुरही आदि वादित्रोंका शब्द शान्त हुआ तब पवित्र वचन बोलनेवाली धाय, अलंकारोंको धारण करनेवाली माननीय कन्याको राजाओंके सम्मुख ले जाकर कहने लगी ॥१९॥ कि हे पुत्रि ! जिसका यह चन्द्र-मण्डलके समान सफेद छत्र, तीन खण्डोंकी विजयसे प्राप्त यशरूपी धनके समान सुशोभित हो रहा है और समस्त भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजा जिसके आज्ञाकारी हैं ऐसा यह वसुधाका स्वामी राजा जरासन्ध बैठा है ॥२०–२१॥ हे रोहिणी ! तुझे पानेके लोभसे रोहिणीका समागम छोड़कर पृथिवीपर आये हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ता है ऐसे इस राजा जरासन्धको तू स्वीकृत कर ॥२२॥ सत्त्वगुणको धारण करनेवाली धायने जब देखा कि इसका अनुराग जरासन्धमें नहीं है तब उसने आगे बढ़कर कहा कि ये जरासन्धके पुत्र हैं। इनमें-से जो तुझे पसन्द हो उसे वर ॥२३॥ उनमें भी जब अनुराग नहीं देखा तब चित्तको जाननेवाली धायने आगे बढ़कर कहा कि हे बेटी ! यह आगे मथुराके स्वामी राजा उग्रसेन बैठे हैं यदि तेरी रुचि हो तो इसकी ओर देख ॥२४॥ तदनन्तर विवेकवती धायने आगे बढ़कर कहा कि सौर्यपुरके स्वामी समुद्रविजय आदिको देख, यदि तेरी रुचि हो तो इनमें-से किसी एकके गलेमें माला डाल ॥२५॥ धाय-के इस प्रकार कहनेपर कन्याके चित्तने उन सबके ऊपर गुरुके समान गौरव धारण किया अर्थात् उन्हें गुरु समझकर प्रणाम किया। तदनन्तर धायने कन्याके लिए राजा पाण्डुको दिखाया और उसके बाद विदुरको भी दिखलाया ॥२६॥ जब उसे इनमेंसे किसीपर भी कन्याका अनुराग नहीं दिखा तब उसने यशकी घोषणा करनेवाले दमघोष, अतिशय पराक्रमी दन्तवक्त्र, शत्रुओंके लिए शल्यके समान दुःख देनेवाले शल्य, सार्थक नामको धारण करनेवाले शत्रुंजय, चन्द्रमाके समान सुन्दर चन्द्राभ, अतिशय मुख्य कालमुख, कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले पौण्ड्र, मात्सर्य-से रहित मत्स्य, विजय प्राप्त करनेमें लीन संजय, राजाओंमें उत्तम सोमदत्त, भाइयों सहित सोमदत्तका आज्ञाकारी पुत्र भूरिश्रवा, अंशुमान् नामक पुत्रसे सहित तथा अतिशय विशाल नेत्रोंको धारण करनेवाला राजा कपिल, राजा पद्मरथ, सोम—चन्द्रमाके समान सौम्य राजा सोमक, इन्द्रके समान आभाको धारण करनेवाला देवक और लक्ष्मीरूपी वधूसे सेवित श्रीदेव राजाको दिखाया तथा इन सब राजाओंको दिखाकर उनके वंश और स्थान आदिका भी वर्णन किया ॥२७–३१॥ तदनन्तर न्यायको जाननेवाली धायने कन्याके लिए और भी अनेक राजाओंका परिचय देते हुए कहा कि हे बाले ! मुख्य इतने ही हैं। इस तरह चुपचाप क्यों खड़ी है ? इनमेंसे जो भी तेरे हृदयमें स्थित हो—जिसे तू चाहती हो उसके कण्ठमें माला डाल दे। ये सभी राजा तेरे सौभाग्यरूपी गुणसे आकर्षित होकर इधर तेरे समीप स्थित हैं इनमें जो तुम्हारे चित्तको हरण करनेवाला हो उसके सौभाग्यको प्रकाशित कर। हे मुग्धे ! तेरे लिए योग्य भर्ताकी प्राप्तिकी चिन्तासे तेरे माता-पिताकी निद्रा नष्ट हो गयी है सो योग्य वरको स्वीकार कर उन्हें सुखी बना ॥३२–३४॥धायके इस प्रकार कहनेपर कन्याने उत्तर दिया कि हे मातः ! आपने ठीक कहा है किन्तु आपके द्वारा दिखाये हुए इन राजाओंमें-से किसीपर मेरा मन अनुरक्त नहीं हो रहा है ॥३५॥ देखनेके बाद ही जिसके ऊपर हृदयमें स्नेह प्रकट हो जाता है उसे वरनेके लिए वचन पुनरुक्त होता है तथा आन्तरिक स्नेहके प्रकट होनेपर ही स्त्री-पुरुष दोनोंमें सन्तोषका अनुभव होता है ॥३६॥ इन राजाओंपर मुझे न राग है, न द्वेष है, न मोह है और न शून्यता है। अहो ! मुनिके समान मेरी इन सबपर किसी कारणसे उपेक्षा हो गयी है ॥३७॥ यदि विधाताने इन सबसे बढ़कर कोई दूसरा

वर मेरे लिए बनाना चाहा है तो जगत्‌का गुरु विधाता ही आज उस वरको दिखलावे ॥३८॥ इतना कहनेके बाद ही कन्याने, कर्ण मार्गसे भीतर जाकर चित्तको खींचनेवाली पणवकी मधुर ध्वनि सुनी ॥३९॥ वह ध्वनि मानो स्पष्ट रूपसे यही कह रही थी कि हे सुन्दरि! तुम्हारे मनको हरण करनेवाला राजहंस इधर बैठा है, अतः इस ओर देखो ॥४०॥ तदनन्तर ज्योंही कन्याने मुड़कर उस ओर देखा, त्यों ही उसे राजलक्षणोंसे युक्त कुबेरके समान वसुदेव दिखे ॥४१॥ उसी क्षण कामदेवने परस्पर दृष्टि सम्मिश्रणरूप तीक्ष्ण बाणोंकी सम्पदासे दोनोंका मन जर्जरित कर दिया ॥४२॥ तदनन्तर जो आभूषणोंके शब्दसे अतिशय मनोहर जान पड़ती थी और स्तनचक्रके भारसे नीचेकी ओर झुक रही थी ऐसी रोहिणीने पास जाकर वसुदेवके गलेमें माला डाल दी ॥४३॥ मंचपर आसीन वसुदेवके समीप बैठी हुई रोहिणी, चन्द्रमाके समीप स्थित रोहिणी ताराके समान मनोहर जान पड़ती थी ॥४४॥ नवीन समागमसे उत्पन्न भयके कारण जिसका शरीर कुछ-कुछ कांप रहा था ऐसी रोहिणीने अपने शरीरके स्पर्शसे वसुदेवके शरीरको सुख उत्पन्न कराया ॥४५॥ उस स्वयंवरको देखकर कितने ही राजा यह कहने लगे कि अहो! जिस प्रकार रत्न और सुवर्णका संयोग होता है उसी प्रकार यह दोनों योग्य वरवधूका संयोग हुआ है ॥४६॥ अहो! इस कन्याकी चतुराई देखो कि जिसने छिपे कुलसे युक्त लक्ष्मी-सम्पन्न एवं प्रधान पुरुषरूप इस किसी अनिवर्चनीय राजाको वरा है ॥४७॥ मात्सर्यसे पीड़ित अन्य राजा लोग यह कह रहे थे कि देखो पणववादकको वर बनाती हुई कन्याने यह बड़ा अन्याय किया है ॥४८॥ राजाओंको इस पराभवकी उपेक्षा करना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होनेसे तो पृथिवी-तलपर सदा अतिप्रसंग होने लगेगा—कुल मर्यादाकी सब व्यवस्था ही भंग हो जायेगी ॥४९॥ कुलीन मनुष्योंकी इस सभामें इस अकुलीन मनुष्यका असर ही क्या था? अथवा यह कुलीन है और अपना कुल बताना चाहता है तो बतावे ॥५०॥ यदि यह ऐसा नहीं करता है—अपना कुल नहीं बतलाता है तो यह कोई नीच कुलमें उत्पन्न हुआ है अतः इसे यहांसे हटा दिया जाये और यह कन्या किसी राजपुत्रको दे दी जाये ॥५१॥

तदनन्तर धीर-वीर वसुदेवने क्षोभको प्राप्त हुए राजाओंसे कहा कि अहंकारसे भरे क्षत्रिय तथा सज्जन पुरुष हमारे वचन सुनें ॥५२॥ स्वयंवरमें आयी हुई कन्या अपनी इच्छाके अनुरूप कुलीन अथवा अकुलीन वरको वरती है। स्वयंवरमें कुलीन अथवा अकुलीनका कोई क्रम नहीं है ॥५३॥ इसलिए कन्याके पिता, भाई अथवा स्वयंवरकी विधिको जाननेवाले किसी अन्य महाशयको इस विषयमें अशान्ति करना योग्य नहीं है ॥५४॥ कोई महाकुलमें उत्पन्न होकर भी दुर्भग—स्त्रीके लिए अप्रिय होता है और कोई नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी सुभग—स्त्रीके लिए प्रिय होता है। यही कारण है कि इस विषयमें कुल और सौभाग्यका कोई प्रतिबन्ध नहीं है ॥५५॥ इसलिए यदि इस कन्याने मुझ अपरिचितका सौभाग्य प्रकट किया है तो इस विषयमें आप लोगोंको कुछ नहीं कहना चाहिए ॥५६॥ इतनेपर भी यदि कोई पराक्रमके गर्वसे यहाँ शान्त नहीं होता है तो मैं कान तक खींचकर छोड़े हुए बाणोंसे उसे शान्त कर दूँगा ॥५७॥ वसुदेवके उक्त वचन सुनकर राजा जरासन्ध शीघ्र ही कुपित हो उठा। उसने राजाओंसे कहा कि इस उद्दण्डको तथा पुत्र सहित राजा रुधिरको पकड़ लो ॥५८॥ दुष्ट स्वभावके राजा पहले ही से कुपित थे फिर चक्रवर्तीका आदेश पाकर तो दूने कुपित हो गये। तदनन्तर वे दुष्ट राजा तैयार होकर युद्धके लिए उद्यत हो गये ॥५९॥ वहाँ जो सज्जन प्रकृतिके राजा थे वे पापसे निःस्पृह हो अपनी-अपनी सेना लेकर अलग खड़े हो गये ॥६०॥ जो क्षत्रिय रुधिरके पक्षके थे वे क्रोधसे रक्तके समान लाल-लाल नेत्र करते हुए, शत्रुको घायल करनेकी इच्छासे शीघ्र ही तैयार होकर वहाँ पहुँचे ॥६१॥ राजा रुधिरका पुत्र स्वर्णनाभ रोहिणीको अपने रथपर चढ़ाकर खड़ा हो

गया और समस्त सेनासे युक्त राजा रुधिर उत्कृष्ट वर—वसुदेवको अपने रथपर सवार कर खड़ा हो गया ॥६२॥ रुधिरने मीठे-मीठे शब्दों द्वारा अपने योद्धाओंको सम्बोधते हुए कहा कि हे महारथियो! तुम लोग युद्धमें अपने अनुरूप ही कार्य करो—जैसा तुम लोगोंका नाम है वैसा ही कार्य करो ॥६३॥ वसुदेवने अपने श्वसुर—राजा रुधिरसे कहा कि हे पूज्य! आप मुझे अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसे भरा हुआ रथ शीघ्र ही दीजिए ॥६४॥ जिससे मैं इन क्षत्रियोंको शीघ्र ही पलायमान कर दूँ। ये लोग युद्धमें जिसके कुलका पता नहीं ऐसे मेरे बाणोंको सहन करें ॥६५॥ वसुदेवके इस प्रकार कहनेपर राजा रुधिर बहुत सन्तुष्ट हुआ। वह पुरुषोंके अन्तरको समझनेवाला जो था। तदनन्तर उसने मजबूत अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त एवं वेगशाली घोड़ोंसे जुता हुआ महारथ बुलाया ॥६६॥ उसी समय शूर, वीर, उत्तम रथपर स्थित तथा दिव्य अस्त्रोंसे देदीप्यमान दधिमुख नामका विद्याधर मनोरथके समान कुमार वसुदेवके पास आ पहुँचा ॥६७॥ और नम्र होकर बोला कि आप शीघ्र ही मेरे रथपर चढ़ जाइए। युद्धमें मैं आपका सारथी रहूँगा। आप इच्छानुसार शत्रुओंके समूहको नष्ट कीजिए ॥६८॥ उसके वचन सुनकर वसुदेव बहुत सन्तुष्ट हुए और धनुष हाथमें ले तथा कवच धारण कर नाना प्रकारके बाणोंके समूहसे भरे हुए उसके रथपर चढ़ गये ॥६९॥ जिसमें दो हजार रथ थे, छह हजार मदोन्मत्त हाथी थे; चौदह हजार घोड़े थे और एक लाख पैदल सैनिक थे। ऐसी राजा रुधिरकी विशाल सेना, शत्रु सेनाके नाशका दृढ़ निश्चय कर शीघ्र ही कुमार वसुदेवके समीप आ गयी ॥७०–७१॥ उस बलशाली चतुरंग सेनाके साथ वसुदेव शीघ्र ही, जिसका अन्त नहीं दिखाई देता था ऐसे शत्रुकी सेनारूपी समुद्रके सम्मुख गये ॥७२॥

तदनन्तर समुद्रके समान शब्द करनेवाली एवं शंख, तुरही आदिके शब्दोंसे भयंकर दोनों चतुरंग सेनाओंमें मुठभेड़ शुरू हुई ॥७३॥ हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सैनिक यथायोग्य रीतिसे हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सैनिकोंके सामने जाकर रणक्षेत्रमें युद्ध करने लगे ॥७४॥ आकाश-विवरको आच्छादित करनेवाले सघन बाणोंके समूहसे उस समय युद्धमें सूर्य भी दिखाई नहीं देता था फिर अन्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या थी? ॥७५॥ तलवार, चक्र और गदाके प्रहारसे निकलती हुई खूनकी धाराओंसे जहाँ अन्धकार फैल रहा था ऐसे उस रणक्षेत्रमें सूर्यका भी पादसंचार—किरणोंका संचार रुक गया था। पक्षमें अतिशय तेजस्वी मनुष्यका पैदल आना-जाना रुक गया था ॥७६॥ वहाँ सब ओर पर्वतोंके समान बड़े-बड़े हाथी गिर रहे थे तथा मनुष्य, घोड़े और रथ जीर्ण-शीर्ण होकर धराशायी हो रहे थे। इन सबसे वहाँ बहुत भारी शब्द हो रहा था ॥७७॥ तदनन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो खेद-खिन्न हो गया था ऐसी अपनी सेनाके अग्रभागको सहारा देनेके लिए वसुदेव और स्वर्णनाभ दोनों ही उद्यत हुए ॥७८॥ दृष्टिको अपहरण करनेवाले प्रयोगसे जिन्हें कोई देख नहीं पाता था ऐसे ये दोनों ही जहाँ-तहाँ बाणोंके द्वारा शत्रु-पक्षके योद्धाओंको आच्छादित करने लगे ॥७९॥ उस महायुद्धमें न ऐसा हाथी था, न रथ था, न घोड़ा था और न मनुष्य ही था जो तीक्ष्ण बाणोंको छोड़नेवाले उन दोनोंके द्वारा जर्जरित न किया गया हो ॥८०॥ कुमार वसुदेव शत्रुके द्वारा चलाये हुए बाणोंकी वर्षाको तो वायव्य अस्त्रसे तितर-बितर कर देते थे और अपने माहेन्द्र बाणसे शत्रुओंके धनुष तकको तोड़ देते थे ॥८१॥ उन्होंने बाणोंके प्रहारसे शत्रुओंके चन्द्रमाके समान सफेद छत्र, उज्ज्वल यश तथा अतिशय उन्नत माननीय शिरके बालोंको नीचे गिरा दिया ॥८२॥ इधर वीरोंको भय उत्पन्न करनेवाले शूरवीर वसुदेव इस प्रकार भयंकर युद्ध कर रहे थे और उधर वीर स्वर्णनाभने युद्धक्षेत्रमें पौण्ड्र राजाको अपने सामने किया ॥८३॥ जिस प्रकार सिंहके दो बच्चोंका भयंकर युद्ध होता है उसी प्रकार अतिशय महान् रथपर बैठे हुए उन दोनों कुमारोंमें भी बाणों द्वारा भयंकर युद्ध होने लगा ॥८४॥ स्वर्णनाभने देखते-देखते तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुकी ध्वजा, छत्र, सारथि और रथके घोड़ोंको

शीघ्र ही नीचे गिरा दिया ॥८५॥ तदनन्तर राजा पौण्ड्रने भी अत्यन्त कुपित हो वज्रदण्डके समान तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुकी नकल करते हुए उसकी ध्वजा, छत्र, सारथि और घोड़ोंको धराशायी कर दिया ॥८६॥ तत्पश्चात् स्वर्णनाभने भी बाणोंके समूहसे शत्रुके कवच, पताका, छत्र, रथ, सारथि, और घोड़ोंको काट डाला ॥८७॥ यह देख पौण्ड्रने भी तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा स्वर्णनाभ को शीघ्र ही रथ-रहित कर तत्काल ही उसके प्राणोंको हरण करनेवाला बाण ज्योंही धनुषपर चढ़ाया त्योंही वसुदेवने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसके धनुषको काट डाला और शीघ्रताके साथ स्वर्णनाभको अपने स्थिर रथपर चढ़ा लिया ॥८८-८९॥ तदनन्तर लगातार बाण वर्षा करनेवाले वसुदेवने जब पौण्ड्रको आच्छादित कर लिया तब बहुत-से शत्रु एक होकर—मिलकर वसुदेवपर बाणोके समूहकी वर्षा करने लगे ॥९०॥ परन्तु फिर भी वसुदेव अपने बाणोंसे शत्रुके बाणोंका निवारण कर तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुपर प्रहार करते रहे। उस समय कुमारकी कुशलतासे प्रसन्न होकर शत्रु भी उन्हें पद-पदपर साधु-साधु—बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहकर धन्यवाद दे रहे थे ॥९१॥

अथानन्तर जो वहाँ न्याय-नीतिके जाननेवाले सज्जन राजा थे उन्होंने कहा कि हम लोगोंको यह युद्ध नहीं देखना चाहिए क्योंकि यह एकका अनेकके साथ हो रहा है—एकके ऊपर अनेक व्यक्ति प्रहार कर रहे हैं इसलिए यह अन्यायपूर्ण युद्ध है ॥९२॥ तदनन्तर धर्म-युद्ध देखनेकी इच्छासे जरासन्धने कहा कि अच्छा, कन्याके लिए इसके साथ एक-एक राजा युद्ध करे ॥९३॥ तत्पश्चात् जरासन्धका आदेश पाकर राजा शत्रुंजय कुमार वसुदेवके साथ युद्ध करनेके लिए उठा और शेष राजा मत्सररहित हो युद्ध देखने लगे ॥९४॥ कुमारने शत्रुंजयके द्वारा चलाये हुए बाणों-को दूर फेंककर उसके रथ और कवचको तोड़ डाला तथा उसे मूर्च्छित कर छोड़ दिया ॥९५॥ तदनन्तर मदसे उद्धत राजा दत्तवक्त्र युद्ध करने लगा परन्तु कुमारने उसका भी रथ तोड़ डाला और उसके पौरुषको निःसार कर उसे भगा दिया ॥९६॥ तदनन्तर जो यमराजके समान उद्धत था ऐसा कालमुख युद्धके लिए सामने आया सो अतिशय बलवान् वसुदेवने उसे भी प्राण-शेष कर छोड़ दिया ॥९७॥ अब रथपर सवार हो तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ता हुआ शल्य सामने आया सो वसुदेवने उसे भी अतिशय भयंकर जृम्भण नामक अस्त्रसे बाँध लिया ॥९८॥

तदनन्तर जरासन्धने समुद्रविजयसे कहा कि हे राजन्! तुम अस्त्र-विद्यामें अत्यन्त निपुण हो इसलिए शीघ्र ही युद्धमें इसका गर्व हरण करो ॥९९॥ यद्यपि समुद्रविजय न्याय-नीतिके वेत्ता थे—युद्ध नहीं करना चाहते थे तथापि राजा जरासन्धकी आज्ञासे उठे सो ठीक ही है क्योंकि युद्धके विषयमें न्यायके वेत्ता मनुष्य भी प्रायः अपने स्वामीका ही अनुसरण करते हैं ॥१००॥ तत्पश्चात् समुद्रविजयकी आज्ञा पाकर सारथिके द्वारा चलाया हुआ रथ, ऐसा रथ कि जिसपर बहुत ऊँची ध्वजा और छत्र लगा हुआ था, वसुदेवके रथकी ओर दौड़ा ॥१०१॥ वसुदेवने दूरसे ही बड़े भाईके रथको देखकर अपने सारथिसे कहा कि इन्हें तुम मेरे बड़े भाई समुद्रविजय जानो ॥१०२॥ हे दधिमुख! ये हमारे पितातुल्य हैं अतः तुम्हें इनके आगे रथ धीरे-धीरे ले जाना चाहिए। मुझे रणभूमिमें इनके साथ इनकी रक्षाका ध्यान रखते हुए ही युद्ध करना चाहिए॥१०३॥ सारथि—दधिमुखने, वसुदेवकी आज्ञानुसार ही रथ चलाया जिससे वह प्रेरित होनेपर भी समुद्रविजयसे अधिष्ठित रथकी ओर धीरे-धीरे ही चला ॥१०४॥ युद्धके मैदानमें आनेपर राजा समुद्रविजयने अपने सारथिसे कहा कि हे भद्र! इस योद्धाको देखकर मेरा मन स्नेहयुक्त क्यों हो रहा है? ॥१०५॥ दाहिनी आँख तथा भुजा भी फड़क रही है जो बन्धुके समागमको सूचित करनेवाली है परन्तु युद्धके मैदानमें जब कि शत्रु सामने खड़ा है इस शकुनकी संगति कैसे बैठ सकती है तुम्हीं कहो ॥१०६॥ उत्तम शकुनोंमें विसंवाद—विरोधका कभी अनुभव नहीं किया और देश तथा कालके विरुद्ध होनेसे निमित्तोंका संवाद भी संगत नहीं जान पड़ता ॥१०७॥ समुद्रविजय-

के इस प्रकार कहनेपर सारथिने कहा कि हे स्वामिन् ! अभी आप शत्रुके सामने खड़े हैं जब इसे आप जीत लेंगे तब अवश्य ही बन्धु-समागम होगा ॥१०८॥ हे राजन् ! यह शत्रु दूसरोंके द्वारा अजेय है अतः इसके जीत लेनेपर आप राजाओंके समक्ष राजाधिराज जरासन्धसे अवश्य ही विशिष्ट सम्मानको प्राप्त करेंगे ॥१०९॥

समुद्रविजयने सारथिके वचनोंकी प्रशंसा कर धनुष उठाया और तरकशसे बाण निकालकर धनुष हाथमें ले बाण निकालकर खड़े हुए कुमार वसुदेवसे कहा कि हे धीर ! युद्धमें तुम्हारे धनुषका जैसा कौशल देखा है अब मेरे आगे वैसा ही उसका समारोप करो—उसी प्रकारकी कुशलता दिखाते रहो तो जानें ॥११०-१११॥ हे शूरवीरताके पर्वत ! तुम्हारा अतिशय उन्नत यह मानरूपी शिखर अभी तक अनाच्छादित है सो मैं बाणरूपी मेघोंसे अभी आच्छादित करता हूँ, मैं समुद्रविजय हूँ ॥११२॥ कुमारने आवाज बदलकर कहा कि हे राजेन्द्र ! हम लोगोंको बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? युद्धमें ही हम दोनोंकी प्रकटता हो जायेगी—जो जैसा होगा वह वैसा सामने आ जावेगा ॥११३॥ यदि आप समुद्रविजय हैं तो मैं संग्रामविजय हूँ। यदि आपको प्रतीति न हो तो शीघ्र ही धनुषपर बाण रखकर छोड़िए ॥११४॥ वसुदेवके इस प्रकार कहनेपर जिनकी मध्यस्थता छूट गयी थी तथा जो वैशाख आसनसे खड़े थे ऐसे राजा समुद्रविजयने डोरीपर बाण रखकर तथा खींचकर क्रोधवश जोरसे मारा ॥११५॥ उधर वैशाख आसनसे सुशोभित वसुदेवने शीघ्र ही बदलेमें चलाये हुए बाणसे समुद्रविजयके उस बाणको दूरसे ही काट डाला ॥११६॥ इस प्रकार राजा समुद्रविजयने युद्धमें जितने बाण छोड़े उन सबको बदलेमें छोड़े हुए बाणोंके द्वारा वसुदेवने बहुत शीघ्र दूरसे ही निराकृत कर दिया ॥११७॥ तदनन्तर जो अस्त्र-विद्यामें निपुण थे और राजा लोग 'साधु-साधु' शब्द कहकर जिनकी स्तुति कर रहे थे ऐसे उन दोनोंने वायव्य तथा वारुण आदि अस्त्रोंसे चिरकाल तक युद्ध किया ॥११८॥ योद्धा, सारथि और घोड़ोंको लक्ष्य कर बड़े भाई जिन बाणोंको छोड़ते थे छोटे भाई उन्हें अपने बाणोंसे उस तरह छेद डालते थे जिस तरह कि गरुड़ सर्पोंको छेद डालता है ॥११९॥ तदनन्तर युवा वसुदेवने भाईके द्वारा चलाये हुए एक-एक बाणके तीन-तीन टुकड़े कर अपने अस्त्रोंसे उनके रथ, सारथि और घोड़ोंको छेद डाला ॥१२०॥ वसुदेवके अस्त्र-कौशलको देखकर राजा लोग उनकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। उस समय कितने ही राजा अपना शिर हिला रहे थे, कोई अंगुलियां चटका रहे थे और कोई मुखसे साधु-साधु शब्दका उच्चारण कर रहे थे। ॥१२१॥ बड़े भाईको इस बातका पता नहीं था कि इसके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है इसलिए उन्होंने क्रोधमें आकर वसुदेवपर हजारों अस्त्रोंसे युक्त दिव्य रौद्रास्त्र छोड़ा परन्तु कुमार वसुदेवने भी शीघ्र ही अस्त्रोंको आच्छादित करनेवाला ब्रह्मशिर नामक अस्त्र छोड़कर बड़े भाईके द्वारा छोड़े हुए उस रौद्रास्त्रको बीचमें ही काट डाला ॥१२२-१२३॥ वसुदेवका संग्राममें शस्त्र चलानेका कौशल परम प्रशंसनीय था क्योंकि उन्होंने नाना प्रकारके शस्त्रोंको तो काट दिया था परन्तु अपने बड़े भाईको सुरक्षित रखा था ॥१२४॥

इस प्रकार रणक्रीड़ा करते-करते जिनका हृदय स्नेहसे भर गया था ऐसे वसुदेवने बड़े भाईके पास अपने नामसे चिह्नित बाण भेजा। उनका वह बाण मन्दगतिसे गमन करता हुआ बड़े भाईके पास पहुँचा ॥१२५॥ राजा समुद्रविजयने उस अनुकूल बाणको लेकर उसमें लिखा हुआ यह समाचार पढ़ा कि 'हे महाराज ! जो अज्ञात रूपसे निकल गया था वही मैं आपका छोटा भाई वसुदेव हूँ। सौ वर्ष बीत जानेके बाद वह आज आत्मीय जनोंके समीप आया है। हे आर्य ! वह आपके चरणोंमें प्रणाम करता है ॥१२६-१२७॥ तदनन्तर भ्रातृ-स्नेहकी प्रबलतासे समुद्रविजयने अपने हाथका धनुष दूर फेंक दिया और वे शीघ्र ही रथसे उतरकर छोटे भाईके पास जा पहुँचे ॥१२८॥

इधर वसुदेव भी शीघ्र ही रथसे उतरकर दूरसे ही उनके चरणोंमें गिर गये। समुद्रविजयने दोनों भुजाओंसे उठाकर उनका आलिंगन किया ॥१२९॥ दोनों भाई एक दूसरेका आलिंगन कर रोने लगे और उनके नेत्रोंसे आँसू टप-टप गिरने लगे। उसी समय अक्षुभ्य आदि शेष भाई भी आ गये और सब गले लगकर रोने लगे ॥१३०॥ उस समय युद्धभूमिमें वसुदेवके जितने श्वसुर, साले तथा अन्य बन्धुजन थे वे सब उनसे लिपटकर रोने लगे ॥१३१॥ जरासन्ध आदि राजा, भाइयोंके इस समागमको देखकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए। रोहिणीके भाई, पिता तथा अन्य सम्बन्धी जन उसकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥१३२॥

तदनन्तर सायंकालके समय सब राजा लोग अपने-अपने शिविरोंमें गये और वसुदेवकी ही कथामें आसक्त हो दिन तथा रात्रियाँ व्यतीत करने लगे ॥१३३॥ तत्पश्चात् शुभ तिथिमें जब कि चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रपर था वसुदेवने रोहिणीको विधिपूर्वक विवाहा ॥१३४॥ जरासन्ध तथा समुद्रविजय आदि राजा उस विवाहोत्सवको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और एक वर्ष तक वहीं राजा रुधिरके यहाँ रहे आये ॥१३५॥ युद्धमें जिसने सहायता की थी तथा वसुदेवने जिसका अच्छा सम्मान किया था ऐसा दधिमुख वसुदेवसे आज्ञा लेकर प्रसन्न होता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥१३६॥ कामासक्त वसुदेव नवीन स्त्रीके सुन्दर मुख कमलके भौंरे बन गये थे इसलिए उन्होंने पहले भोगी हुई स्त्रीरूपी लताओंका स्मरण भी नहीं किया ॥१३७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो शूरवीरताके पर्वत वसुदेव यद्यपि रणांगणमें अकेले ही थे केवल भुजाएँ ही उनकी सहायक थीं और अद्भुत पराक्रमके धारक, अतिशय लोभी पृथिवीतलके समस्त राजाओंने एक साथ मिलकर उन्हें पराजित करना चाहा था तथापि वे उन्हें पराजित नहीं कर सके सो यह अच्छी तरह तपे हुए जिनेन्द्रकथित तपका ही प्रभाव समझना चाहिए ॥१३८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें रोहिणीका स्वयंवर और भाइयोंके समागमका वर्णन करनेवाला इकतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३१॥

□

सर्ग- ३२

अथानन्तर किसी समय वह रोहिणी अपने भर्ता—वसुदेवके साथ विचित्र शय्यापर शयन कर रही थी कि उसने शुभको सूचित करनेवाले चार स्वप्न देखे ॥१॥ पहले स्वप्नमें उसने गम्भीर गर्जन करता हुआ चन्द्रमाके समान सफेद विशाल हाथी देखा। दूसरे स्वप्नमें पर्वतके समान ऊँचो एवं बड़ी-बड़ी लहरोंसे युक्त अत्यधिक शब्द करनेवाला समुद्र देखा। तीसरे स्वप्नमें पूर्ण चन्द्रमाको देखकर चन्द्रमुखी रोहिणीका मनोरथ पूर्ण हो गया और चौथे स्वप्नमें उसने मुखमें प्रवेश करता हुआ कुन्दके समान सफेद सिंह देखा ॥२–३॥ प्रातःकालके समय जागनेपर जिसके नेत्र खिले हुए कमलके समान सुशोभित थे ऐसी रोहिणीने वे स्वप्न पतिके लिए बतलाये और पतिने उनका यह फल बताया कि हे प्रिये ! तुम्हारे शीघ्र ही ऐसा पुत्र होगा जो धीर, वीर, अलंघ्य, चन्द्रमाके समान कान्तिवाला, अद्वितीय वीर, पृथिवीका स्वामी और जनताका प्यारा होगा ॥४–५॥ इस प्रकार पतिके द्वारा बताये हुए स्वप्नोंका शुभ फल सुनकर सुन्दरी रोहिणी हर्षित हो उठी तथा चन्द्रमाकी शोभा धारण करने लगी ॥६॥ उसी समय महासामानिक देव महाशुक्र स्वर्गसे च्युत होकर रोहिणीके गर्भमें उस तरह स्थित हो गया जिस तरह कि पृथिवीके गर्भमें उत्तम मणि स्थित होता है ॥७॥

तदनन्तर जिसके समस्त दोहला पूर्ण किये गये थे ऐसी रोहिणीने सुखसे नौ माह पूर्ण होनेपर शुभ नक्षत्रोंमें चन्द्रमाके समान सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया ॥८॥ जो जरासन्ध आदि राजा एक वर्षसे राजा रुधिरके यहाँ रह रहे थे उस पुत्रका जन्मोत्सव देखकर प्रसन्न होते हुए अपने-अपने स्थानपर गये। जाते समय राजा रुधिरने उन सबका खूब सत्कार किया ॥९॥ वह बालक अत्यन्त सुन्दर था इसलिए पृथिवीतलपर अपना 'राम' नाम प्रसिद्ध कर माता-पिता और बन्धु-जनोंकी प्रीतिको बढ़ाता हुआ दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा ॥१०॥

तदनन्तर एक समय कुमार वसुदेवके हितमें उद्यत समुद्रविजय आदि सभी भाई राजा रुधिरके घर श्रीमण्डपमें बैठे थे कि एक दिव्य विद्याधरी आकाशसे उतरकर वहाँ आयी और सबको अभिनन्दनकर सुखदायक आसनपर बैठ गयी। कुछ समय बाद उसने वसुदेवको लक्ष्य कर कहा कि हे देव ! आपकी पत्नी वेगवती तथा हमारी पुत्री बालचन्द्रा आपके चरणोंमें गिरकर आपका प्रिय दर्शन करना चाहती हैं ॥११–१३॥ कुमारी बालचन्द्राके प्राण एक आपमें ही अटक रहे हैं इसलिए शीघ्र जाकर उसे विवाहो और उसका चित्त सन्तुष्ट करो ॥१४॥ विद्याधरीके वचन सुनकर कुमार वसुदेवने अपनी दृष्टि बड़े भाई समुद्रविजयपर डाली और अभिप्रायको जाननेवाले बड़े भाईने भी 'जल्दी जाओ' कहकर उन्हें छोड़ दिया—विद्याधरीके साथ जानेकी अनुमति दे दी ॥१५॥ तदनन्तर विद्याधरी वसुदेवको लेकर गगनवल्लभपुर गयी और समुद्रविजय आदि राजा शौर्यपुर चले गये ॥१६॥ वसुदेवने गगनवल्लभ नगरमें अपनी प्रिया वेगवतीसे मिलकर पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली बालचन्द्राको विवाहा ॥१७॥ और विवाहके बाद वे नयी वधू बालचन्द्रा तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाली वेगवतीके साथ क्रीड़ा करते हुए कुछ दिन तक वहीं सुखसे रहे आये ॥१८॥ कुछ दिन बाद कुमार वसुदेवने उन दोनों स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही शौर्यपुर लौटनेकी इच्छा

प्रकट की जिससे एणीपुत्रकी पूर्व भवकी माँ वनवती देवीने रत्नोंसे देदीप्यमान एक विमान रचकर उन्हें दे दिया ॥१९॥ यह देख बालचन्द्राके पिता कांचनदंष्ट्र तथा वेगवतीके बड़े भाई मानसवेगने समस्त परिवारके साथ बालचन्द्रा और वेगवतीको कुमारके लिए सौंप दिया ॥२०॥ कुमार, दोनों स्त्रियोंको साथ ले इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा अरिजयपुर नगर गये और वहाँ जाकर विद्युद्वेगसे मिले ॥२१॥ वहाँसे प्रिया मदनवेगा और अनावृष्णि नामक उसके पुत्रको लेकर वे शीघ्र ही उसी विमानसे आकाशमें उड़ गये ॥२२॥ तदनन्तर शीघ्र ही लक्ष्मीसे समृद्ध गन्धसमृद्ध नामक नगरमें जाकर वे गान्धार राजाकी पुत्री प्रभावतीसे मिले ॥२३॥ तत्पश्चात् परिवार सहित उसे विमानमें बैठाकर महान् हर्षको प्राप्त होते हुए वे असितपर्वत नामक नगरमें पहुँचे ॥२४॥ वहाँ राजा सिंहदंष्ट्रकी पुत्री प्रिया नीलंयशासे मिले और वियोगके बाद मिली हुई उस नीलंयशाके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करने लगे ॥२५॥ तत्पश्चात् उसे साथ ले किन्नरोद्गीत नामक नगर पहुँचे और वहाँ नील कमलकी कलिकाओंके समान श्यामवर्ण श्यामा नामक स्त्रीको उन्होंने अच्छी तरह मनाया—प्रसन्न किया ॥२६॥ तदनन्तर श्यामाको लेकर श्रावस्ती पहुँचे। वहाँसे प्रियंगुसुन्दरी और बन्धुमतीको साथ ले महापुर गये। महापुरसे प्रिया सोमश्रीको लेकर इलावर्धनपुर पहुँचे। वहाँसे माननीय रत्नावतीको लेकर भद्रिलपुर गये। वहाँसे चारुहासिनीको साथ लेकर तथा उसके पुत्र पौण्ड्रको वहीं बसाकर जयपुर गये। वहाँसे अश्वसेनाको साथ ले शालगुह नगर पहुँचे। वहाँसे पद्मावतीको लेकर वेदसामपुर गये ॥२७–३०॥ वहाँ अपने कपिल नामक पुत्रका राज्याभिषेक कर कपिलाको साथ ले अचलग्राम आये ॥३१॥ वहाँसे मित्रश्रीको लेकर तिलवस्तु नगर गये वहाँ पाँच सौ कन्याओंको ग्रहणकर गिरितट नगर पहुँचे ॥३२॥ वहाँसे सोमश्रीको साथ ले चम्पापुरी पहुँचे। वहाँसे मन्त्रीकी पुत्री और गन्धर्वसेनाको साथ ले विजयखेट नगर गये। वहाँ अक्रूरदृष्टि नामक पुत्रसे मिल कर तथा विजयसेनाको साथ लेकर कुलपुर पहुँचे ॥३३–३४॥ वहाँसे पद्मश्री, अवन्तिसुन्दरी, पुत्र सहित सूरसेना, जरा, जीवद्यशा तथा अपनी अन्य स्त्रियोंको साथ ले हर्षित होते हुए शीघ्रगामी विमानसे वापस आये ॥३५–३६॥ जो सुन्दर संगीतसे युक्त, तथा सूर्यके विमानके समान देदीप्यमान था ऐसा उनका वह विमान शीघ्र ही शौर्यपुर आ पहुँचा ॥३७॥

तदनन्तर वनवती देवीने स्वयं ही पहलेसे आकर वसुदेवके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे राजा समुद्रविजयको वृद्धिगत किया—वसुदेवके आगमनका समाचार सुनाकर प्रसन्न किया ॥३८॥ तत्पश्चात् राजा समुद्रविजय, प्रजाजनोंसे नगरकी शोभा कराकर बड़े हर्षसे आदरसे युक्त बन्धुजनोंके साथ कुमार वसुदेवको लेनेके लिए उनके सम्मुख गये ॥३९॥ वसुदेवने अपनी समस्त स्त्रियों सहित विमानसे उतरकर बड़े भाइयों तथा अन्य गुरुजनोंको प्रणाम किया तथा अन्य लोगोंने प्रेमपूर्वक वसुदेवको प्रणाम किया ॥४०॥ जिनके नेत्रोंमें हर्षके अश्रु भर रहे थे ऐसी शिवा आदि महारानियोंने स्त्रियों सहित नमस्कार करते हुए वसुदेवका आलिंगन कर आकाशकी ओर मुँह कर बार-बार यही आशीर्वाद दिया कि अब पुनः वियोग न हो ॥४१॥ कुमारने आगत जनताका यथायोग्य सम्मान किया और जनताने भी उनके प्रति आदरका भाव प्रकट किया। तदनन्तर जिनका उदय, बन्धुरूपी सागरके लिए हितकारी था ऐसे रोहिणीश—कुमार वसुदेव (पक्षमें चन्द्रमा) शौर्यपुरमें रहते हुए क्रीड़ा करने लगे ॥४२॥ सदा हित करनेमें उद्यत रहनेवाली वनवती देवी समुद्रविजय और वसुदेवको देखकर बहुत प्रसन्न हुई और अन्तमें उनसे पूछकर अपने स्थानको चली गयी ॥४३॥ जो शूर वीरतासे बलिष्ठ थे, जिन्होंने राजाओंके समूहको जीत लिया था, जो उदार एवं सुन्दर चरित्रसे युक्त थे, विद्याधरियोंके स्वामी थे, देवतुल्य थे, और महान् वैभवको प्राप्त थे ऐसे वसुदेवको देखकर उस समय शौर्यपुरके लोग अत्यन्त सन्तुष्ट हो यही कहते थे कि यह पूर्वोपार्जित जैनधर्मकी ही महिमा है ॥४४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें समस्त भाइयों और स्त्रियोंके समागमको वर्णन करनेवाला बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३२॥

विद्याधर काण्ड समाप्त

□

सर्ग- ३३

अथानन्तर राजा वसुदेव, श्रेष्ठ राजपुत्रों द्वारा प्रार्थित होनेपर उन्हें शस्त्र विद्याका उपदेश देते हुए सूर्यपुरमें रहने लगे ॥१॥ किसी दिन कुमार वसुदेव, धनुर्विद्यामें प्रवीण अपने कंस आदि शिष्योंके साथ, राजा जरासन्धको देखनेकी इच्छासे राजगृह नगर गये ॥२॥ उस समय वह राजगृह नगर बाहरसे आये हुए अनेक राजाओंके समूहसे शोभित था। उसी समय वहाँ सावधान होकर श्रवण करनेवाले लोगोंके लिए राजा जरासन्धकी ओरसे निम्नांकित घोषणा दी गयी थी जिसे वसुदेवने भी सुना ॥३॥ घोषणामें कहा गया था कि "सिंहपुरका स्वामी राजा सिंहरथ बड़ा उद्दण्ड है, वह वास्तविक सिंहोंके रथपर सवारी करता है और उत्कट पराक्रमका धारक है। जो मनुष्य उसे जीवित पकड़कर हमारे सामने दिखावेगा वही पुरुष संसारमें शूर और अतिशय शूरवीर समझा जावेगा ॥४–५॥ शत्रुके यशरूपी सागरको पीनेवाले उस पुरुषको सम्मानरूपी धन तो समर्पित किया ही जावेगा उसके बाद यह अन्य जन दुर्लभ आनुषंगिक फल भी प्राप्त होगा ॥६॥ गुणोंके कारण जिसका यश दिशाओंके अन्तमें विश्राम कर रहा है तथा जो अद्वितीय सुन्दरी है ऐसी अपनी जीवद्यशा नामकी पुत्री भी मैं उसे इच्छित देशके साथ दूँगा" ॥७॥

उस हृदयहारी घोषणाको सुनकर वीर-रसमें पगे हुए धीर-वीर वसुदेवने कंससे पताका ग्रहण करवायी। भावार्थ—वसुदेवने प्रेरित कर कंससे, सिंहरथको पकड़नेकी प्रतिज्ञास्वरूप पताका उठवायी ॥८॥ तदनन्तर वसुदेव, कंसको साथ ले विद्यानिर्मित सिंहोंके रथपर सवार हो सिंहपुर गये। जब सिंहरथ, सिंहोंके रथपर बैठकर युद्धके लिए वसुदेवके सामने आया तब उन्होंने बाणोंके द्वारा उसके सिंहोंकी रास काट डाली जिससे उसके सिंह भाग गये ॥९॥ उसी समय कंसने गुरुकी आज्ञासे उछलकर शत्रुको बाँध लिया। कंसकी चतुराई देख वसुदेवने उससे कहा कि वर माँग। कंसने उत्तर दिया कि हे आर्य ! अभी वर आपके ही घर रहने दीजिए। वसुदेवने शत्रुको ले जाकर जरासन्धको दिखा दिया ॥१०–११॥ शत्रुको सामने देख जरासन्ध सन्तुष्ट हुआ और वसुदेवसे बोला कि तुम पुत्री जीवद्यशाके साथ विवाह करो। इसके उत्तरमें वसुदेवने कह दिया कि शत्रुको कंसने पकड़ा है मैंने नहीं ॥१२॥ राजा जरासन्धने जब कंससे उसकी जाति पूछी तब उसने कहा कि हे राजन् ! मेरी माता मंजोदरी कौशाम्बीमें रहती है और मदिरा बनानेका काम करती है ॥१३॥ तदनन्तर कंसके वचन सुनकर राजा इस प्रकार विचार करने लगा कि इसकी आकृति कहती है कि यह मदिरा बनानेवालीका पुत्र नहीं है ॥१४॥ तत्पश्चात् राजा जरासन्धने अपने आदमी भेजकर शीघ्र ही कौशाम्बीसे मंजोदरीको बुलाया और मंजोदरी मंजूषा तथा नामकी मुद्रिका लेकर वहाँ आ पहुँची ॥१५॥ राजाने उससे पूर्वापर कारण पूछा तो वह कहने लगी कि हे प्रभो ! मैंने यमुनाके प्रवाहमें इसे मंजूषाके साथ पाया था ॥१६॥ हे राजन्, इस शिशु-को देखकर मुझे दया आ गयी अतः पीछे चलकर हजारों उपालम्भोंका पात्र बनकर भी मैंने इसका पालन-पोषण किया ॥१७॥ यह बालक स्वभावसे ही उग्रमुख है—कठोर शब्द बकनेवाला है। यद्यपि यह पुण्यवान् है तो भी अभागा जान पड़ता है। यह बच्चोंके साथ खेलता था तो उनके शिरमें थप्पड़ लगाये बिना नहीं खेलता था। मदिरा खरीदनेके लिए घरपर वेश्याओंकी लड़कियाँ आती थीं तो हाथसे उनकी चोटियाँ खींचकर तथा उन्हें तंग करके ही छोड़ता था ॥१८–१९॥ इसकी इस दुष्प्रवृत्तिसे मेरे पास लोगोंके उलाहने आने लगे जिनसे डरकर मैंने इसे निकाल दिया। यह शस्त्र विद्या सीखना चाहता था इसलिए किसीका शिष्य बन गया ॥२०॥ यह कांसकी मंजूषा ही इसकी माता है मैं नहीं हूँ अतः इसके गुण अथवा दोषोंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। लीजिए यह मंजूषा है—यह कहकर उसने साथ लायी हुई मंजूषा राजाको दिखा दी। जब मंजूषा खोली गयी तो उसमें उसके नामकी मुद्रिका दिखी। राजा जरासन्ध उसे लेकर बाँचने लगा ॥२१–२२॥ उसमें लिखा था कि यह राजा उग्रसेन और रानी पद्मावतीका

पुत्र है। जब यह गर्भमें स्थित था तभीसे अत्यन्त उग्र था। इसकी उग्रतासे भयभीत होकर ही इसे छोड़ा गया है, यह जीवित रहे तथा इसके अपने कर्म ही इसकी रक्षा करें ॥२३॥ मुद्रिकाको बाँचकर राजा जरासन्ध समझ गया कि यह हमारा भानजा है अतः उसने हर्षित होकर उसे गुणरूपी सम्पदासे सम्पन्न अपनी जीवद्यशा पुत्री दे दी ॥२४॥ पिताने मुझे उत्पन्न होते ही नदीमें छोड़ दिया था। यह जानकर कंसको बड़ा क्रोध आया इसलिए उसने जरासन्धसे मथुराका राज्य माँगा और जरासन्धने दे भी दिया। उसे पाकर सब प्रकारकी सेनासे युक्त कंस जीवद्यशाके साथ मथुरा गया। वह निर्दय तो था ही इसलिए वहाँ जाकर उसने पिता उग्रसेनके साथ युद्ध ठान दिया तथा युद्धमें उन्हें जीतकर शीघ्र ही बाँध लिया ॥२५-२६॥ तत्पश्चात् जो प्रकृतिका अत्यन्त उग्र था और जिसकी आशाएँ अत्यन्त क्षुद्र थीं ऐसे उस कंसने अपने पिता राजा उग्रसेनका इधर-उधर जाना बन्द कर उन्हें नगरके मुख्य द्वारके ऊपर कैद कर दिया ॥२७॥

वसुदेवके उपकारका आभारी होनेसे कंस उनका प्रत्युपकार तो करना चाहता था पर यह नहीं निर्णय कर पाता था कि मैं इनका क्या प्रत्युपकार करूँ। वह सदा अपने-आपको वसुदेवका किंकर समझता था ॥२८॥ एक दिन वह प्रार्थनापूर्वक बड़ी भक्तिसे गुरु वसुदेवको मथुरा ले आया और वहाँ लाकर उसने उन्हें गुरु-दक्षिणास्वरूप अपनी देवकी नामक बहन प्रदान कर दी ॥२९॥ तदनन्तर वसुदेव, कंसके आग्रहसे, सुन्दर कान्तिकी धारक एवं मधुर वचन बोलनेवाली देवकीके साथ क्रीड़ा करते हुए मथुरामें ही रहने लगे ॥३०॥ शत्रुओंको सन्तप्त करनेवाला एवं जरासन्धको अतिशय प्रिय कंस, शूरसेन नामक विशाल देशकी राजधानी मथुराका शासन करने लगा ॥३१॥

एक दिन कंसके बड़े भाई अतिमुक्तक मुनि आहारके समय राजमन्दिर आये सो कंसकी स्त्री जीवद्यशा नमस्कार कर विभ्रम दिखाती हुई उनके सामने खड़ी हो गयी और हँसती हुई क्रीड़ा भावसे कहने लगी कि यह आपकी बहन देवकीका आनन्द वस्त्र है इसे देखिए ॥३२-३३॥ संसारकी स्थितिको जाननेवाले मुनिराज, उस निर्मर्याद चित्तकी धारक एवं राज्यवैभवसे मत्त जीवद्यशाको रोकनेके लिए अपनी वचनगुप्ति तोड़कर बोले कि अहो! तू हँसी कर रही है परन्तु यह तेरी बड़ी मूर्खता है। तू दुःखदायक शोकके स्थानमें भी आनन्द प्राप्त कर रही है ॥३४-३५॥ तू वह निश्चित समझ, कि इस देवकीके गर्भसे जो पुत्र होगा वह तेरे पति और पिताको मारनेवाला होगा। यह ऐसी ही होनहार है—इसे कोई टाल नहीं सकता ॥३६॥

यह सुनते ही जीवद्यशा भयभीत हो उठी, उसके नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे। वह उसी समय मुनिराजको छोड़ पतिके पास गयी और 'मुनिके वचन सत्य ही निकलते हैं' यह विश्वास जमाकर उसने सब समाचार कह सुनाया ॥३७॥ स्त्रीके मुखसे यह समाचार सुनकर कंसको भी शंका हो गयी। वह तीक्ष्ण बुद्धिका धारक तो था ही इसलिए शीघ्र ही उपाय सोचकर सत्यवादी वसुदेवके पास गया और चरणोंमें नम्रीभूत होकर वर माँगने लगा ॥३८॥ उसने कहा कि हे स्वामिन्! मेरा जो वर आपके पास धरोहर है उसे दे दीजिए और वह वर यही चाहता हूँ कि 'प्रसूतिके समय देवकीका निवास मेरे ही घरमें रहा करे' ॥३९॥ वसुदेवको इस वृत्तान्तका कुछ भी ज्ञान नहीं था इसलिए उन्होंने निर्बुद्धि होकर कंसके लिए वह वर दे दिया। भाईके घर बहनको कोई आपत्ति आ सकती है यह शंका भी तो नहीं की जा सकती? ॥४०॥ पीछे जब उन्हें इस वृत्तान्तका पता चला तो उनका हृदय पश्चात्तापसे बहुत दुःखी हुआ। वे उसी समय आम्रवनके मध्यमें स्थित चारण ऋद्धिधारी अतिमुक्तक मुनिराजके पास गये और देवकीके साथ प्रणाम कर समीपमें बैठ गये। मुनिराजने दोनोंको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर वसुदेवने उनसे अपने हृदयमें स्थित निम्नांकित प्रश्न पूछा ॥४१-४२॥

हे भगवन्! कंसने अन्य जन्ममें ऐसा कौन-सा कर्म किया कि जिससे वह दुर्बुद्धि अपने

पिताका ही शत्रु हुआ। इसी प्रकार हे नाथ! मेरा पुत्र इस पापी कंसका विघात करनेवाला कैसे होगा?—यह मैं जानना चाहता हूँ सो कृपा कर कहिए ॥४३॥ अतिमुक्तक मुनिराज देदीप्यमान अवधिज्ञानरूपी नेत्रके धारक थे और अवधिज्ञानरूपी दिव्य नेत्रके धारक पुरुषोंकी वाणी चूँकि संशयको नष्ट करनेवाली होती है इसलिए कुमार वसुदेवके पूछनेपर मुनिराज कहने लगे ॥४४॥

हे देवोंके प्रिय! राजन्! सुन, तेरा प्रश्न सब लोगोंके लिए प्रिय है इसलिए मैं तेरे प्रश्नके अनुसार तेरी जिज्ञासित वस्तुको कहता हूँ ॥४५॥ इसी मथुरा नगरीमें जब राजा उग्रसेन राज्य करता था तब पहले पंचाग्नि तप तपनेवाला एक वशिष्ठ नामक तापस रहता था ॥४६॥ वह अज्ञानी यमुना नदीके किनारे तप तपता था, एक पांवसे खड़ा रहता था, ऊपरकी ओर भुजा उठाये रहता था और बड़ी-बड़ी जटाओंको धारण करता था ॥४७॥ वहांपर लोगोंकी पनिहारिनें पानीके लिए आती थीं। एक दिन जिनदास सेठकी प्रियंगुलतिका नामकी पनिहारिन भी वहाँ आयो। हितकी बुद्धि रखनेवाली अन्य पनिहारिनोंने प्रियंगुलतिकासे कहा कि हे प्रियंगुलतिके! तू शीघ्र ही इस साधुको नमस्कार कर। उत्तरमें प्रियंगुलतिकाने कहा कि इसके ऊपर मेरी भक्ति बिलकुल नहीं है। मैं क्या करूँ? ॥४८-४९॥ तदनन्तर अन्य पनिहारिनोंने प्रियंगुलतिकाको जबरदस्ती उस साधुके चरणोंमें नमा दिया। प्रियंगुलतिकाने रुष्ट होकर कहा कि अहो! तुम लोगों-ने मुझे धीवरके चरणोंमें गिरा दिया। प्रियंगुलतिकाके उक्त वचन सुनते ही मूर्ख साधु कुपित हो उठा ॥५०-५१॥ वह सीधा राजा उग्रसेनके पास गया और कहने लगा कि हे प्रभो! जिनदत्त सेठने मुझे बिना कारण ही गाली दी है ॥५२॥ राजाने जिनदत्त सेठको बुलाकर पूछा तो उसने कहा कि नाथ! मैंने तो इसे देखा भी नहीं है फिर गाली तो दूर रही है। इसके उत्तरमें साधुने कहा कि इसकी दासीने गाली दी है। राजाने दासीको बुलाकर क्रोध दिखाते हुए पूछा कि अरी पापिन! तू इस साधुको नमस्कार क्यों नहीं करती? उलटी निन्दा करती है? ॥५३-५४॥

दासीने कहा कि प्रभो! यह साधु नहीं है यह तो मूर्ख धीवर है। इसकी जटाओंमें कहीं भी शुद्धता नहीं दिखाई देती ॥५५॥ साधुकी जटाएँ शोधी गयीं तो उनसे बहुत-सी छोटी-छोटी मछलियाँ निकल पड़ीं। इससे साधु बहुत लज्जित हुआ और यह 'असत्यवादी है' यह कहकर लोगोंने उसकी बहुत हँसी उड़ायी ॥५६॥ जब राजाने उसकी परीक्षा ली तो वह क्रोध कर अपना अज्ञान प्रकट करता हुआ मथुरासे बाहर चला गया ॥५७॥ और बनारस जाकर वहाँ रहनेका उसने निश्चय कर लिया। अब वह बनारसके बाहर जाकर गंगाके किनारे तप करने लगा ॥५८॥ किसी एक दिन वहाँ अपने पाँच सौ शिष्योंके साथ वीरभद्र मुनिराज आये। उनके संघके एक नवदीक्षित मुनिने वशिष्ठकी तपस्या देख, 'अहा! यह घोर तपस्वी वशिष्ठ है' इस प्रकार उसकी प्रशंसा की। 'अरे अज्ञानीका तप कैसा?' यह कहते हुए आचार्यने उस नवदीक्षित मुनिको प्रशंसा करनेसे रोका ॥५९-६०॥ वशिष्ठने पूछा कि 'मैं अज्ञानी कैसे हूँ?' इसके उत्तरमें आचार्यने कहा कि तुम छह कायके जीवोंको पीड़ा पहुँचाते हो इसलिए अज्ञानी हो ॥६१॥ पंचाग्नि तपमें अग्निका संसर्ग अवश्य रहता है और उस अग्निके द्वारा पंचेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय जीव अवश्य जलते हैं ॥६२॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पाँच स्थावरों तथा अन्य त्रस प्राणियोंका विघात होनेसे अज्ञानी जीवके प्राणिसंयम कैसे हो सकता है ॥६३॥ इसी प्रकार जो विरक्त होकर भी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रको माननेवाला है उसके सम्यग्ज्ञानपूर्वक होनेवाला इन्द्रिय संयम भी कैसे हो सकता है? ॥६४॥ जो केवल कायक्लेश तपको प्राप्त है, मानसे भरा हुआ है और समीचीन संयमसे रहित है उसकी तपस्या मुक्तिके लिए कैसे हो सकती है? ॥६५॥ एक जैन मार्ग ही सन्मार्ग है, उसीमें संयम, तप, दर्शन, चारित्र और

समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला ज्ञान प्राप्त हो सकता है ॥६६॥ हे तापस ! तुम जानते हो तुम्हारा पिता मरकर सांप हुआ है और ज्वालाओं तथा धूमकी पंक्तिसे व्याप्त इसी इंधनमें जल रहा है ॥६७॥ आचार्यके इस प्रकार कहनेपर तापसने कुल्हाड़ासे उस काष्ठको चीरकर देखा तो उसके अन्दर सांप जलता हुआ छटपटा रहा था ॥६८॥ तदनन्तर आचार्यने फिर कहा कि तेरे पिताका नाम ब्रह्मा था और वह तेरे ही समान तापसके धर्मका पालन करता था। उसीसे उसकी यह कुगति हुई है। आचार्यके मुखसे यह सब जानकर वशिष्ठ तापसको जान पड़ा कि मैं अज्ञानी हूँ और जैनधर्म सम्यग्ज्ञानसे परिपूर्ण है। अतः उसने उन्हीं वीरभद्र गुरुके पास जैन दीक्षा धारण कर ली ॥६९-७०॥ उनके साथ अनेक मुनि तपस्या करते थे परन्तु लाभान्तराय कर्मके उदयसे उन सबमें एक वशिष्ठ मुनि ही भिक्षाके लाभसे वर्जित रह जाते थे अर्थात् उन्हें भिक्षाकी प्राप्ति बहुत कम होती थी ॥७१॥ तदनन्तर वीरभद्र गुरुने सेवाके निमित्त और आगमका विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वशिष्ठ मुनिको यत्नपूर्वक शिवगुप्त यतिको सौंप दिया ॥७२॥ छह महीने तक तप करनेके बाद शिवगुप्त यतिने वशिष्ठ मुनिको वीरदत्त नामक मुनिराजके लिए सौंप दिया। वीरदत्त मुनिने भी छह माह अपने पास रखकर उन्हें सुमति नामक मुनिके लिए सौंप दिया और सुमति मुनिने भी छह माह तक उनका अच्छी तरह पालन किया ॥७३॥ तदनन्तर अनेक गुरुओंके पास रहनेसे जो मुनि-धर्मकी विधिको अच्छी तरह जानने लगे थे और परीषह सहन करनेका जिन्हें अच्छा अभ्यास हो गया था ऐसे वशिष्ठ मुनि पृथिवीपर प्रसिद्ध एकविहारी हो गये—अकेले ही विचरण करने लगे ॥७४॥

अथानन्तर महातपस्वी वशिष्ठ मुनि कदाचित् विहार करते हुए मथुरा आये सो राजा तथा प्रजाने बड़ी प्रतिष्ठाके साथ उनकी पूजा की ॥७५॥ एक समय वे बड़ी प्रसन्नतासे पर्वतके मस्तकपर आतापन योग धारण कर विराजमान थे कि उनके तपसे वशीभूत हुई सात देवियाँ पास आकर कहने लगीं कि हम लोग आपका क्या कार्य करें ? ॥७६॥ तपोधन वशिष्ठ मुनिने यह कहकर उन देवियोंको वापस कर दिया कि मेरा कोई काम नहीं है। अन्तमें उनके आधीन हुई वे वन-देवियाँ चली गयीं ॥७७॥ आहारकी इच्छासे रहित वशिष्ठ मुनि एक मासके उपवासका नियम लेकर तपस्या कर रहे थे, इसलिए समस्त प्रजा पारणाओंके समय उन्हें आहार देना चाहती थी ॥७८॥ परन्तु राजा उग्रसेनने किसी समय नगरवासियोंसे यह याचना की कि मासोपवासी मुनिराजके लिए पारणाओंके समय मैं ही आहार दूँगा और इसी भावनासे उसने मथुरामें रहनेवाले सब दाताओंको आहार देनेसे रोक दिया ॥७९॥ मुनिराज एक-एक मास बाद तीन बार पारणाओंके लिए आये परन्तु तीनों बार राजा प्रमादी बन आहार देना भूल गया। पहली पारणाके समय जरासन्धका दूत आया था सो उसकी व्यवस्थामें निमग्न हो आहार देना भूल गया। दूसरी पारणाके समय आग लग गयी सो उसकी व्यवस्थामें संलग्न होनेसे प्रमादी हो गया और तीसरी पारणाके समय नगरमें हाथीने क्षोभ मचा दिया इसलिए उसके व्यासंगसे प्रमादी हो आहार देना भूल गया ॥८०॥ मुनि आहारके लिए समस्त मथुरा नगरीमें घूमे परन्तु कहीं आहार प्राप्त नहीं हुआ। अन्तमें श्रमसे पीड़ित हो नगरके द्वारमें विश्राम करने लगे ॥८१॥ उन्हें देख किसी नगरवासीने कहा कि हाय बड़े खेदकी बात राजाने कर रक्खी है—इन मुनिराजके लिए वह स्वयं आहार देता नहीं है तथा दूसरोंको मना कर रखा है ॥८२॥ यह सुनकर मुनिराजको क्रोध आ गया। उन्होंने उसी समय पहले आयी हुई देवियोंका स्मरण किया। स्मरण करते ही देवियाँ आ गयीं। उन्हें देख मुनिने कहा कि 'आप लोग अन्य जन्ममें मेरा काम करें।' मुनिकी आज्ञा स्वीकृत कर देवियाँ वापस चली गयीं और मुनि वनको ओर प्रस्थान कर गये॥८३॥ राजा उग्रसेनका अपमान करनेके लिए वशिष्ठ मुनिने यह उग्र निदान बांध लिया कि मैं उग्रसेनका पुत्र होकर इसका बदला

लूँ। निदानके कारण वे मुनि पदसे भ्रष्ट हो मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ गये और उसी समय मरकर राजा उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके उदरमें निवास करने लगे ॥८४॥ जब कंसका जीव पद्मावतीके गर्भमें था तब पद्मावतीका शरीर एकदम दुर्बल हो गया। एक दिन राजाने उससे एकान्तमें पूछा कि कान्ते ! तुम्हारा दोहला क्या है ? जिसके कारण तुम सूखकर काँटा हुई जा रही हो ॥८५॥ पद्मावतीने कहा कि हे नाथ ! गर्भके दोषसे मुझे जो दोहला हुआ है वह न तो कहने योग्य है और न विचार करने योग्य है। रानीके इस प्रकार कहनेपर राजाने कहा कि वह दोहला तुम्हें अवश्य कहना चाहिए ॥८६॥ राजाका हठ देख उसने दुःखसे गद्गद वाणी द्वारा कहा कि हे नाथ ! मेरी इच्छा है कि मैं आपका पेट फाड़कर आपका रुधिर पीऊँ ॥८७॥ तदनन्तर मन्त्रियोंके उपायसे उसका दोहला पूर्ण किया गया। नौमाह बाद रानी पद्मावतीने ऐसा पुत्र उत्पन्न किया जिसका मुख भौंहोंसे अत्यन्त कुटिल था ॥८८॥ चूँकि वह बालक गर्भसे ही अत्यन्त रौद्र था इसलिए रानी पद्मावतीने भयसे उसे कांसकी मंजूषामें बन्द कर एकान्तमें यमुनाके प्रवाहमें छुड़वा दिया ॥८९॥ वह मंजूषा बहती-बहती कौशाम्बी नगरी पहुँची। वहाँ एक कलारिनने उसे पाकर पुत्रका कंस नाम रखा तथा उसका पालन-पोषण किया। हे राजन् ! इसके आगेका सब समाचार तुम्हें विदित हो है ॥९०॥ निदानके दोषसे दूषित होकर इसने पिताका निग्रह किया है। आगे चलकर तुम्हारा पुत्र उसे मारेगा और उसके पिता राजा उग्रसेनको भी बन्धनसे छुड़ावेगा ॥९१॥ हे राजन् ! कंसने अपने पिताको बन्धनमें क्यों डाला इसका कारण बतलानेवाला कंसका वृत्तान्त कहा। अब तेरे पुत्रोंका वृत्तान्त कहता हूँ सो मनको स्थिर कर सुन ॥९२॥

देवकीका सातवाँ पुत्र शंख, चक्र, गदा तथा खड्गको धारण करनेवाला होगा और वह कंस आदि शत्रुओंको मारकर समस्त पृथिवीका पालन करेगा ॥९३॥ शेष छहों पुत्र चरम-शरीरी होंगे। उनकी अपमृत्यु नहीं हो सकेगी, अतः चिन्तारूपी व्याधिका त्याग करो ॥९४॥ मैं रामभद्र (बलदेव) सहित उन सबके पूर्वभव तुम्हें कहता हूँ सो अपनी स्त्रीके साथ श्रवण करो। अवश्य ही उन सबके पूर्वभव तेरे चित्तको प्रीति करनेवाले होंगे ॥९५॥

जब राजा शूरसेन मथुरापुरीकी रक्षा करते थे तब यहाँ बारह करोड़ मुद्राओंका अधिपति भानु नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥९६॥ उन दोनोंके सुभानु, भानुकीर्ति, भानुषेण, शूर, सूरदेव, शूरदत्त और शूरसेन ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये सातों भाई अत्यन्त सुन्दर तथा स्वभावसे ही एक दूसरेके अनुगामी थे ॥९७–९८॥ उन सातों पुत्रोंकी क्रमसे कालिन्दी, तिलका, कान्ता, श्रीकान्ता, सुन्दरी, द्युति और चन्द्रकान्ता ये सात स्त्रियाँ थीं जो उच्च कुलोंकी कन्याएँ थीं ॥९९॥ कदाचित् भानु सेठने अभयनन्दी गुरुके समीप और उसकी स्त्री यमुनाने जिनदत्ता आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली ॥१००॥ सातों भाइयोंने जुआ और वेश्या व्यसनमें फँसकर पिताका सब धन नष्ट कर दिया। जब उनके पास कुछ भी नहीं रहा तब सब भाई चोरी करनेके लिए उज्जयिनी नगरी गये ॥१०१॥ उज्जयिनीके बाहर एक महाकाल नामका वन है। वहाँ सन्ततिकी रक्षाके लिए छोटे भाईको रखकर शेष छहों भाई निःशंक हो रात्रिके समय नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥१०२॥ उस समय उज्जयिनीका राजा वृषभध्वज था। उसकी स्त्रीका नाम कमला था। राजा वृषभध्वजका दृढ़मुष्टि नामका एक उत्तम योद्धा था। उसकी स्त्रीका नाम वप्रश्री था। उन दोनोंको वज्रमुष्टि नामका पुत्र था। युवा होनेपर जब वह कामसे पीड़ित हुआ तब उसने राजा विमलचन्द्रसे उनकी विमला रानीसे उत्पन्न मंगी नामक पुत्री उसके लिए दिलवा दी ॥१०३–१०४॥ मंगी वज्रमुष्टिके लिए बहुत प्यारी थी। वह वीणाकी तरह सदा उसीके साथ रहती थी और शुश्रूषा-सेवासे युक्त हो सासके अनुकूल आचरण नहीं करती थी अर्थात् सासकी कभी सेवा नहीं करती थी। इसलिए उसकी सास मन ही मन बहुत कलुषित रहती थी और निरन्तर उसके नाशका

उपाय सोचती रहती थी। एक दिन वह छलसे उसके मारनेका उपाय सोचती हुई बैठी थी कि इतनेमें वसन्तोत्सवका समय आ गया और उसका पुत्र वज्रमुष्टि प्रमदवनमें क्रीड़ा करनेके लिए राजाके साथ पहले चला गया तथा मंगीसे कह गया कि हे मंगि! तू शीघ्र ही मेरे पीछे आ जाना ॥१०५-१०७॥ इधर सासने मंगीको वसन्तोत्सवमें नहीं जाने दिया। उस दुर्बुद्धिने एक घड़ेमें धूपिन जातिका जहरीला सांप पहलेसे बुला रखा था। अवसर देख उसने मंगीसे कहा कि तू वसन्तोत्सवमें नहीं जा सकी है इसलिए दुःखी न हो। मैंने तेरे लिए पहलेसे ही सुन्दर माला बुला रखी है। जा उस घड़ेमें-से निकालकर पहिन ले। भोली-भाली मंगीने मालाके लोभसे घड़ेमें ज्योंही हाथ डाला त्योंही उस धूपिन सर्पने उसे डँस लिया ॥१०८॥ मंगी विषके वेगसे तुरन्त ही मूच्छित हो गयी और सासने उसे अपने भृत्यों द्वारा उस महाकाल नामक श्मशानमें जो यमराजके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला था छुड़वा दिया ॥१०९॥

वज्रमुष्टि जब रात्रिको घर आया और सब वृत्तान्त उसे मालूम हुआ तो वह बड़े स्नेहसे अपनी प्रिया मंगीको ढूँढ़नेके लिए महाकाल श्मशानमें जा घुसा ॥११०॥ उस समय उसके हाथमें एक चमकती हुई तलवार थी। उसीके बलपर वह निःशंक होकर श्मशानमें घुसा जा रहा था। आगे चलकर उसने उस श्मशानमें रात्रि-भरके लिए प्रतिमा योग लेकर विराजमान वरधर्म नामक मुनिराजको देखा ॥१११॥ उसने तीन प्रदक्षिणाएँ देकर मुनिराजको नमस्कार किया और कहा कि हे मुनिराज! यदि मैं मंगीको प्राप्त कर सका तो एक हजार कमलोंसे आपके चरणोंकी पूजा करूँगा ॥११२॥ इस प्रकार कहकर वह ज्योंही आगे बढ़ा त्योंही उसे उसकी स्त्री मंगी मिल गयी। वह उसे मुनिराजके पास ले आया और उनके चरणोंके स्पर्शसे उसने उसे विष रहित कर लिया ॥११३॥ तदनन्तर 'जबतक मैं न आ जाऊँ तबतक तुम मुनिराजके चरणोंके समीप बैठना' इस प्रकार मंगीसे कहकर वज्रमुष्टि कमल लानेकी इच्छासे सुदर्शन नामक सरोवरकी ओर चला गया ॥११४॥ पास ही छिपा हुआ शूरसेन मंगीके प्रति वज्रमुष्टिका महान् स्नेह देख चुका था इसलिए उसने उसके मनका भाव जाननेकी इच्छासे उसे अपना रूप दिखाया। वह सुन्दर तो था ही ॥११५॥ वह अपने अभिप्रायको छिपाकर उसके साथ मीठी-मीठी बातचीत और गुप्त सलाह करने लगा। मंगी उसे देखते ही कामसे विह्वल हो गयी ॥११६॥ उसी विह्वल दशामें उसने शूरसेनके पास जाकर कहा कि हे देव! आप कृपा कर मुझे स्वीकृत कीजिए। मंगीकी प्रार्थना सुनकर शूरसेनने कहा कि जबतक तुम्हारा पति जीवित है तबतक मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ? हे प्रिये! मैं इस शक्तिशाली सुभटसे अवश्य ही डरता हूँ। इसके उत्तरमें अनुरागसे भरी मंगीने कहा कि हे नाथ! आप इसका भय नहीं कीजिए। मैं इसे तो तलवारसे अभी मार डालती हूँ। शूरसेनने उत्तर दिया कि यदि ऐसा है तो मुझे स्वीकार है। इस प्रकार कहकर वह उसका वह कार्य देखनेकी इच्छासे वहीं छिपकर खड़ा हो गया ॥११७-११९॥

तदनन्तर वज्रमुष्टिने आकर मुनिराजके चरणोंकी पूजा की और पूजा करनेके बाद ज्योंही वह नमस्कार करने लगा त्योंही मंगीने उसके शिरपर तलवार छोड़ना चाही, परन्तु शूरसेनने शीघ्र ही आकर तलवार छीन ली ॥१२०॥ शूरसेनको यह दृश्य देखकर संसारसे वैराग्य हो आया, इसलिए वह अपने-आपको प्रकट किये बिना ही वहाँसे चला गया। मंगी उसके स्पर्शसे शंकित हो गयी, इसलिए अपना दोष छिपानेके लिए वह माया बताती हुई पृथिवी तलपर गिर पड़ी। वज्रमुष्टिको मंगीके इस दुष्कृत्यका पता नहीं चल पाया। इसलिए वह उससे पूछता है कि प्रिये! क्या यहाँ तुम्हें किसीने डरा दिया है? यहाँ भयका तो कुछ भी कारण दिखाई नहीं देता। इस प्रकार भयसे पीड़ित मंगीको सचेत कर वज्रमुष्टिने मुनिराजको नमस्कार किया और तदुपरान्त वह स्त्रीको साथ ले घर चला गया ॥१२१-१२३॥

तदनन्तर शूरसेनके जो छह भाई चोरी करनेके लिए गये थे उन्होंने चोरीसे प्राप्त हुए धनके बराबर हिस्से कर शूरसेनसे कहा कि अपना हिस्सा उठा लो ॥१२४॥ शूरसेनने हिस्सा लेनेके प्रति अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा कि लोग स्त्रियोंके पीछे ही नाना प्रकारके अनर्थ करते हैं और स्त्रियां वज्रमुष्टिकी स्त्रीके समान होती हैं ॥१२५॥ इस वृत्तान्तको देख-सुनकर छह छोटे भाइयोंने विरक्त होकर उसी समय वरधर्म गुरुके समीप दीक्षा ले ली और बड़ा भाई स्त्रियोंके पास धन ले गया ॥१२६॥ जब उन भाइयोंकी सातों स्त्रियोंने यह वृत्तान्त सुना तो उन्होंने भी विरक्त हो दीक्षा ले ली। अन्तमें बड़े भाई सुभानुकी वुद्धि भी ठिकाने आ गयी इसलिए उसने भी उन्हीं वरधर्म गुरुके पास दीक्षा ली ॥१२७॥

अथानन्तर किसी समय अपने गुरुके साथ विहार करते हुए वे सातों मुनि उज्जयिनी आये। उनके दर्शन कर वज्रमुष्टिने उनसे दीक्षा लेनेका कारण पूछा। उत्तरमें उन्होंने वज्रमुष्टि और मंगीका सब वृत्तान्त कह सुनाया जिसे सुन वज्रमुष्टिको बहुत खेद हुआ तथा उसी समय उसने दीक्षा ले ली ॥१२८॥ उसी समय आर्यिका जिनदत्ताके साथ विहार करती हुई पूर्वोक्त सात आर्यिकाएँ भी उज्जयिनी आयीं। मंगीने उनसे दीक्षाका कारण पूछा। उन्होंने जो उत्तर दिया उसे सुनकर मंगीको अपना पिछला सब वृत्तान्त स्मृत हो गया इसलिए उसने भी दृढ़ व्रत धारण कर दीक्षा ले ली ॥१२९॥ तदनन्तर घोर तपके भारको धारण करनेवाले सातों मुनिराज आयुके अन्तमें समाधिमरण कर सौधर्म स्वर्गमें एक सागरकी आयुवाले त्रायस्त्रिंश जातिके उत्तम देव हुए ॥१३०॥ धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें जो विजयार्ध पर्वत है उसकी दक्षिण श्रेणीमें एक नित्यालोक नामका नगर है ॥१३१॥ उसमें किसी समय राजा चित्रचूल राज्य करता था उसकी स्त्रीका नाम मनोहरी था। बड़े भाई सुभानुका जीव उन्हीं दोनोंके चित्रांगद नामका पुत्र हुआ और शेष छह भाइयोंके जीव भी उन्हींके क्रम-क्रमसे तीन युगलोंके रूपमें गरुडकान्त, सेनकान्त, गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल और हिमचूल नामके छह पुत्र हुए। ये सभी आकाशमें आनन्दसे विचरण करते थे तथा अत्यन्त उत्कृष्ट थे ॥१३२-१३३॥ चित्रचूलके ये सभी पुत्र अत्यन्त सुन्दर थे, अनेक विद्याओंके प्राप्त करनेमें उद्यत थे और मनुष्योंके मस्तकपर चूडामणिके समान स्थित थे ॥१३४॥ उसी समय मेघपुर नगरमें सर्वश्री नामका स्त्रीका स्वामी धनंजय नामका राजा राज्य करता था। राजा धनंजय और रानी सर्वश्रीके एक धनश्री नामकी अत्यन्त रूपवती कन्या थी ॥१३५॥ धनश्रीका किसी समय स्वयंवर किया गया, स्वयंवरमें समस्त विद्याधरोंके पुत्र गये परन्तु कन्याने उनमें अपने पिताके भानजे हरिवाहनको वरा ॥१३६॥ 'जब इसे अपने सम्बन्धीके साथ ही विवाह करना था तो स्वयंवरके बहाने छलपूर्वक हम लोगोंको क्यों बुलाया'—यह कहते हुए अन्य विद्याधर कन्याके पितापर क्रुद्ध हो गये ॥१३७॥ तदनन्तर उस कन्याकी इच्छा रखते हुए वे विद्याधर परस्पर एक-दूसरेका वध करने लगे। राजा चित्रचूलके पुत्र भी स्वयंवरमें गये थे। इस निन्दनीय क्षत्रिय-वधको देखकर वे विचार करने लगे कि अहो! ये इन्द्रियोंके विषम विषय ही पापके कारण हैं। इस प्रकार इन्द्रियोंके विषयोंकी निन्दा कर भूतानन्द जिनराजके समीप दीक्षित हो गये ॥१३८-१३९॥ सातों मुनिराज अन्तमें समाधि धारण कर माहेन्द्र स्वर्गमें सात सागरकी आयुके धारक सामानिक जातिके देव हुए और वहांकी विभूतिसे चिरकाल तक सुख भोगते रहे ॥१४०॥

तदनन्तर वहांसे च्युत होकर बड़े भाईका जीव इसी भरतक्षेत्रके हस्तिनापुर नगरमें किसी सेठकी बन्धुमती स्त्रीसे शंख नामका पुत्र हुआ ॥१४१॥ शेष छह भाइयोंके जीव इसी नगरके राजा गंगदेवकी नन्दयशा रानीसे तीन युगलके रूपमें गंग, गंगदत्त, गंगरक्षित, नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण नामके छह सुन्दर पुत्र हुए ॥१४२-१४३॥ रानी नन्दयशाके गर्भमें जब सातवां

पुत्र आया तब उसके अत्यन्त दुर्भाग्यका उदय आ गया। उससे दुखी होकर उससे उत्पन्न होनेपर उस पुत्रको छोड़ दिया, निदान, रेवती नामक धायने पालन-पोषण कर उसे बड़ा किया ॥१४४॥ रानी नन्दयशाके इस त्याज्य पुत्रका नाम निर्नामक था। यह निर्नामक, श्रेष्ठिपुत्र शंखको बड़ा प्रिय था। एक दिन शंख, निर्नामकको साथ लेकर नागरिक मनुष्योंसे भरे हुए मनोहर उद्यानमें गया ॥१४५॥ वहाँ राजा गंगदेवके छहों पुत्र एक साथ भोजन कर रहे थे। उन्हें देख शंख ने कहा कि यह निर्नामक भी तो तुम्हारा छोटा भाई है, इसे भोजन करनेके लिए क्यों नहीं बुलाते ?॥१४६॥ शंखकी बात सुन राजपुत्रोंने निर्नामकको बुला लिया और वह भाइयोंके साथ भोजन करनेके लिए बैठ गया। उसी समय उसकी माता रानी नन्दयशा कहींसे आ गयी और उसने क्रोधसे आग-बबूला हो उसे लात मार दी ॥१४७॥ इस घटनासे शंखको बड़ा दुःख हुआ। वह कहने लगा कि मेरे निमित्तसे ही निर्नामकको यह दुःख उठाना पड़ा है अतः मुझे धिक्कार है। अन्तमें वह दुखी होता हुआ निर्नामकको लेकर राजा आदिके साथ वनमें गया ॥१४८॥ वहाँ एकान्तमें द्रुमषेण नामक मुनिराजको देखकर शंखने उनसे निर्नामकके पूर्वभव पूछे। मुनिराज अवधिज्ञानी थे अतः उसके भवान्तर इस प्रकार कहने लगे ॥१४९॥

गिरिनगर नामक नगरमें राजा चित्ररथ रहता था, उसकी कनकमालिनी नामकी गुणवती एवं सुन्दरी स्त्री थी ॥१५०॥ राजा चित्ररथ मांस खानेका बड़ा प्रेमी था, उसका एक अमृत-रसायन नामका रसोइया था जो मांस पकाना बहुत अच्छा जानता था। उसकी कलासे प्रसन्न होकर राजाने उसे दश ग्रामोंका स्वामी बना दिया था ॥१५१॥ एक दिन राजाने सुधर्म नामक मुनिराजसे मांस खानेके दोष सुने जिससे प्रभावित होकर उसने राज्य-लक्ष्मीको मेघरथ नामक पुत्रके लिए सौंप दी और स्वयं मोक्ष प्राप्त करनेको इच्छासे तीन सौ राजाओंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥१५२॥ नवीन राजा मेघरथ श्रावक बन गया इसलिए उसने मांस पकानेवाले रसोइया-को अपमानित कर केवल एक ग्रामका स्वामी कर दिया ॥१५३॥ इस घटनासे रसोइया बड़ा कुपित हुआ। उसने सोचा कि मेरे अपमानका कारण मांसका निषेध करनेवाले ये मुनि ही हैं इस-लिए उसने कड़वी तूमड़ीका विषमय आहार देकर मुनिको प्राण रहित कर दिया ॥१५४॥ मुनिराजका समाधिमरण ऊर्जयन्तगिरिपर हुआ था। प्रबल आत्मध्यानके प्रभावसे वे मरकर अपराजित नामक अनुत्तर विमानमें बत्तीस सागरकी आयुके धारक अहमिन्द्र हुए ॥१५५॥ रसोइया मरकर तीसरी बालुकाप्रभा पृथिवीमें गया और वहाँ तीन सागर तक नरकके तीव्र दुःख भोगता रहा ॥१५६॥ वहाँसे निकलकर तिर्यंच गतिरूपी महाअटवीमें भ्रमण करता रहा। एक बार वह मलय देशके अन्तर्गत पलाश नामक ग्राममें रहनेवाले यक्षदत्त और यक्षिला नामक दम्पतीके यक्षलिक नामका पुत्र हुआ। यह यक्षलिक स्वभावसे ही मूर्ख था। और यक्षस्व नामक बड़े भाईसे छोटा था ॥१५७-१५८॥ एक बार दुष्ट यक्षलिक गाड़ीपर बैठा कहीं जा रहा था। सामने मार्गमें एक अन्धी सर्पिणी पड़ी थी। बड़े भाईके रोकनेपर अनिष्टकारी यक्षलिकने उसपर गाड़ी चढ़ा दी जिससे उसका फण कट गया। तीव्र दुःखसे वह मरणोन्मुख हो गयी। उसी समय अकामनिर्जराके कारण उसने मनुष्यगतिका बन्ध कर लिया ॥१५९-१६०॥ तदनन्तर सर्पिणी मरकर श्वेताम्बिका पुरीमें वहाँके राजा वासवकी स्त्री वसुन्धराके गर्भमें नन्दयशा नामकी पुत्री हुई ॥१६१॥ और यक्षलिक निर्नामक हुआ, इस यक्षलिकने रसोइयाकी पर्यायमें मुनिराजको मारा था तथा सर्पिणीके साथ अत्यन्त निर्दयताका व्यवहार किया था इसलिए माता नन्दयशाके साथ विद्वेषको प्राप्त हुआ है ॥१६२॥ यह सुनकर राजा गंगदेव संसारसे भयभीत हो गया और अपने देवनन्द नामक पुत्रको राज्यलक्ष्मी सौंपकर दो सौ राजाओंके साथ उन्हीं मुनिके समीप उसने दीक्षा धारण कर ली ॥१६३॥ समस्त राजपुत्रों और श्रेष्ठिपुत्र शंखने

भी दीक्षा ले ली तथा सब, संसारचक्रसे निवृत्त होनेके लिए निर्मल तप करने लगे ।।१६४।। रानी नन्दयशाने रेवती धाय और बन्धुमती सेठानीके साथ सुव्रता नामक आर्यिकाके समीप उत्तम व्रतोंके समूहसे सुशोभित दीक्षा धारण कर ली ।।१६५।। निर्नामकने मुनि होकर सिंहनिष्क्रीडित नामक कठिन तप किया था और यह निदान बांध लिया कि मैं जन्मान्तरमें नारायण होऊँ ।।१६६।। रेवती धाय मनुष्य पर्याय प्राप्त कर भद्रिलसा नगरमें सुदृष्टि नामक सेठकी अलका नामकी स्त्री हुई है ।।१६७।। गंग आदि छह पुत्रोंके जीव युगलिया रूपसे देवकीके गर्भमें क्रम-क्रमसे उत्पन्न होंगे और वे पराक्रमके महासागर—अत्यन्त पराक्रमी होंगे ।।१६८।। इन्द्रका आज्ञाकारी हारी नामका देव उन पुत्रोंको उत्पन्न होते ही धायके जीव अलकाके पास पहुँचा देगा, वहीं वे यौवनको प्राप्त करेंगे ।।१६९।। उन पुत्रोंमें बड़ा पुत्र नृपदत्त, दूसरा देवपाल, तीसरा अनीकदत्त, चौथा अनीकपालक, पाँचवाँ शत्रुघ्न और छठा जितशत्रु नामसे प्रसिद्ध होगा। तुम्हारे ये सभी पुत्र रूपसे अत्यन्त सदृश होंगे अर्थात् समान रूपके धारक होंगे ।।१७०–१७१।। ये सभी कुमार हरिवंशके चन्द्रमा, तीन जगत्के गुरु श्री नेमिनाथ भगवान्की शिष्यताको प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे ।।१७२।। निर्नामकका जीव देवकीके गर्भमें आकर सातवाँ पुत्र होगा। वह अत्यन्त वीर होगा तथा इस भरत क्षेत्रमें नौवाँ नारायण होगा ।।१७३।। जिनमतकी लक्ष्मीकी प्रशंसा करनेवाले कालज्ञ वसुदेव, मुनिराजके मुखसे कंसके भवान्तर तथा पुण्यके उदयसे प्राप्त हुए उसके अभ्युदयको सुनकर उसके साथ उपेक्षापूर्ण मित्रताको प्राप्त हुए अर्थात् उन्होंने मित्रता तो पूर्ववत् बनाये रखी परन्तु उसमें उपेक्षाका भाव आ गया। वे अपने आठों पुत्र तथा प्रिया देवकीके पूर्वभव एवं वर्तमान भव सम्बन्धी चरितको सुनकर अत्यधिक हर्षको प्राप्त हुए ।।१७४।।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कंसका उपाख्यान तथा बलदेव, वासुदेव और देवकीके अन्य पुत्रोंके गूढ़ चरितका वर्णन करनेवाला तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।३३।।

सर्ग- ३४

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! 'तीर्थंकर भगवान् अपने वंशमें उत्पन्न होनेवाले हैं' यह सुनकर कुमार वसुदेव बहुत ही हर्षित हुए और उन्होंने उसी समय अतिमुक्तक मुनिराजको नमस्कार कर इस प्रकार पूछा कि 'हे नाथ ! हरिवंशके तिलकस्वरूप जिनेन्द्र भगवान् किस प्रकार होंगे ? मैं उनका चरित सुनना चाहता हूँ ।' कुमार वसुदेवके इस प्रकार कहनेपर अतिमुक्तक मुनिराज कहने लगे ॥१-२॥

इसी जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें शीतोदा नदीके दक्षिण तटपर सुपद्मा नामका देश है। उसमें सिंहपुर नामका नगर है। और उसमें किसी समय राजा अर्हद्दास रहता था जो अत्यन्त योग्य था ॥३॥ जिनेन्द्र भगवान्की महापूजा करनेवाली जिनदत्ता उसकी स्त्री थी। एक बार उसने लक्ष्मी, हाथी, सिंह, सूर्य और चन्द्रमा ये पांच शुभ स्वप्न देखनेके बाद उत्तम पुत्र प्राप्त किया॥४॥ चूंकि वह पुत्र दूसरोंके द्वारा कभी पराजित नहीं होता था इसलिए माता-पिताने उसका 'अपराजित' नाम रखा। अपराजित आकाश और पृथिवी दोनोंमें ही अत्यन्त प्रसिद्ध था ॥५॥ यौवन काल आनेपर अपराजितने चक्रवर्तीकी पवित्र गुणोंकी मालासे सहित, प्रीतिमती नामकी माननीय कन्याके साथ विवाह किया ॥६॥ इसके सिवाय जो परस्पर एक दूसरेकी शोभाका उल्लंघन कर रही थीं, माननीय थीं एवं गुणरूपी आभूषणोंसे सुशोभित थीं ऐसी सौभाग्यशालिनी एक हजार कन्याएँ उसे और भी क्रीड़ा कराती थीं ॥७॥ किसी एक दिन राजा अर्हद्दास, मनोहर नामक वनमें देवोंके द्वारा वन्दनीय विमलवाहन भगवान्की वन्दना करनेके लिए अपने पुत्र सहित गया ॥८॥ उपदेशसे प्रभावित होकर राजा अर्हद्दासने पाँच सौ राजाओंके साथ उन्हीं भगवान्के समीप दीक्षा ली। पिताके दीक्षा लेनेके बाद युवराज अपराजितने राज्य एवं निर्मल सम्यग्दर्शन धारण किया ॥९॥ एक दिन अपराजितने सुना कि गन्धमादन पर्वतपर जिनेन्द्र विमलवाहन और पिता अर्हद्दासको मोक्ष प्राप्त हो गया है। यह सुनकर उसने तीन दिनका उपवासकर निर्वाण भक्ति की ॥१०॥ एक बार राज अपराजित, कुबेरके द्वारा समर्पित जिन-प्रतिमा एवं चैत्यालयमें विराजमान अर्हत्प्रतिमाकी पूजा कर उपवासका नियम ले मन्दिरमें बैठा हुआ अपनी स्त्रियोंके लिए धर्मोपदेश कर रहा था ॥११॥ कि उसी समय दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज आकाशसे नीचे उतरे। जब दोनों मुनिराज पृथ्वीतलपर सुखसे विराजमान हो गये तब राजा अपराजितने हाथ जोड़ नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा—॥१२॥

हे नाथ ! वैसे तो जैनधर्मके साधुओंको देखकर मुझे अकृत्रिम—स्वाभाविक आनन्द होता ही है परन्तु आप दोनोंके दर्शन कर आज अपूर्व ही आनन्द हो रहा है तथा मेरा स्वाभाविक स्नेह उमड़ पड़ा है सो इसका कारण क्या है ? ॥१३॥ उन मुनियोंमें जो बड़े मुनि थे वे अपनी वाणीसे अमृत झराते हुएके समान बोले कि हे राजन् ! पूर्वभवका सम्बन्ध ही स्नेहकी अधिकताको प्रकट करनेवाला है। मैं पूर्वभवका सम्बन्ध कहता हूँ सो सुनो—॥१४॥

पश्चिम पुष्करार्धके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें जो रूप्याचल है उसकी उत्तर श्रेणीमें एक गण्यपुर नामका नगर है ॥१५॥ उस नगरका स्वामी सूर्याभ था जो सचमुच ही सूर्याभ—सूर्यके

समान आभावाला था और धारिणी उसकी स्त्री थी जो दूसरी धारिणी—पृथिवीके समान जान पड़ती थी और आर्य तथा अत्यन्त सुन्दरी थी ॥१६॥ उन दोनोंके चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नामके तीन पुत्र थे। जो अतिशय वेगशाली, स्नेहवान् और उत्तम पराक्रमसे युक्त थे ॥१७॥ उसी समय अरिंजयपुरमें राजा अरिंजय रहता था उसकी अजितसेना नामकी स्त्री थी और उससे उसके प्रीतिमती नामकी उत्तम कन्या उत्पन्न हुई थी ॥१८॥ प्रीतिमतीको अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं, वह अत्यन्त प्रसिद्ध थी और स्त्री पर्यायकी सदा निन्दा करती रहती थी। एक दिन उसने अपने पितासे कहा कि हे पिताजी! मुझे एक इच्छित वर दीजिए ॥१९॥ पिता कन्याके भावको जानता था इसलिए उसने कहा कि तपके सिवाय और जो कुछ वर तुझे इष्ट हो सो मांग ले। पिताका उत्तर सुनकर प्रीतिमतीने कहा कि हे पिताजी! यदि तप करनेका वर आप नहीं देते हैं तो यह वर मुझे अवश्य दीजिए कि गतियुद्धमें जीतनेवालेके लिए हो मैं दी जाऊँ ॥२०-२१॥ 'तथास्तु' कहकर पिताने कन्याका वर स्वीकृत कर लिया और गति-युद्धमें जीतनेकी इच्छासे अपनी कन्याका स्वयंवर रचकर उसमें विद्याधरोंको आमन्त्रित किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर जब सब विद्याधर आ गये तब कन्याके पिताने सबको लक्ष्य बनाते हुए कहा कि आप लोगोंमें जो भी समर्थ हो वह मेरी पुत्रीके लिए गतियुद्धका अवसर देवे ॥ २३ ॥ गतियुद्धका रूप यह है कि वर और कन्या जो भी, मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तथा श्री जिनेन्द्र देवकी पूजा कर सबसे पहले वापस आ जावेगा उसी एककी जीत समझी जावेगी ॥२४॥ इस प्रकार अत्यन्त वेगसे गमन करनेवाले जिस वीरके द्वारा गतियुद्धमें यह कन्या जीती जावेगी मेरे मनोरथको पूर्ण करनेवाले उसी वीरके द्वारा यह कन्या विवाहने योग्य है ॥ २५ ॥ यह सुनकर अन्य विद्याधर उसे अधिक विद्यावती जान चुप-चाप बैठे रहे परन्तु विद्याके वेगसे उद्यत धारिणीके पुत्र चिन्तागति, मनोमति और चपलगति गतियुद्ध करनेके लिए उठकर खड़े हो गये ॥ २६ ॥ तदनन्तर मनके साथ-साथ परिकर बाँधकर जब सब तैयार हो गये तब मध्यस्थताको प्राप्त हुए लोगोंने हाथ हिलाकर उन्हें छोड़ा ॥ २७ ॥ अहंकारसे वे चारों व्यक्ति अपने वेगसे वायुके वेगको रोकते हुए, मेरुको लक्ष्य कर आकाशमें दौड़े और आधे मार्ग तक तो साथ-साथ दौड़ते रहे परन्तु उसके बाद कन्याने उन्हें पीछे छोड़ दिया और वह मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तथा भद्रशालवनमें विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी पूजा कर पहले वापस लौट आयी ॥२८-२९ ॥ वेगके श्रमसे उत्पन्न पसीनाके कणोंसे जो मोतियोंके समान सुशोभित हो रही थी ऐसी कन्याने आकर पिताके लिए नमस्कार किया एवं पूजाके शेषाक्षत भेंट किये। पुत्रीको विजयसे पिताको अधिक हर्ष हुआ ॥ ३० ॥

तदनन्तर गतियुद्धमें जिसे विजय प्राप्त हुई थी और इस लोक सम्बन्धी भोगोंकी इच्छा जिसकी छूट चुकी थी ऐसी कन्या प्रीतिमतीके लिए पिताने तप धारण करनेकी अनुमति दे दी जिससे उसने व्रतोंके समूहसे सुशोभित हो निर्वृत्ति नामक आर्यिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥३१॥ गतियुद्धमें प्रीतिमतीके द्वारा पराजित चिन्तागति आदि तीनों भाइयोंने भी दमवर मुनिराजके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥३२॥ आयुके अन्तमें तीनों भाई माहेन्द्र स्वर्गके अन्तिम पटलमें सात सागरकी आयु प्राप्त कर सामानिक जातिके देव हुए और वहांके दिव्य सुखका उपभोग करने लगे ॥३३॥ तदनन्तर हे राजन्! पुष्कलावती देशके विजयार्ध की उत्तर श्रेणीमें जो गगनवल्लभ नामका नगर है उसमें राजा गगनचन्द्र रहते हैं और उनकी स्त्रीका नाम गगनसुन्दरी है। मध्यम तथा छोटे भाईके जीव माहेन्द्र स्वर्गसे च्युत होकर उनके क्रमसे हम अमितवेग और अमिततेज नामक पुत्र हुए हैं ॥३४-३५॥ पुण्डरीकिणी नगरीमें स्वयं-प्रभ जिनेन्द्रके समीप दीक्षा लेकर उनसे हमने अपने पूर्व भव ...। हे राजन्! हमें स्वयंप्रभ

जिनेन्द्रने बताया कि तुम्हारे बड़े भाई चिन्तागतिका जीव माहेन्द्र स्वर्गसे पूर्व ही च्युत होकर यहाँ अपराजित राजा हुआ है सो उसे देखनेके लिए हम दोनों आये हैं ॥३६–३७॥ हे अपराजित ! तुम इससे पाँचवें भवमें भरतक्षेत्रके हरिवंश नामक महावंशमें अरिष्टनेमि नामक तीर्थंकर होओगे ॥३८॥ इस समय तुम्हारी आयु एक माहकी शेष रह गयी है इसलिए आत्महित करो। यह कहकर तथा राजा अपराजितसे पूछकर दोनों मुनिराज विहार कर गये ॥ ३९ ॥ चारण-ऋद्धिधारी मुनिराजके श्रवण करने योग्य वचन सुनकर राजा अपराजित हर्षित होता हुआ भी चिरकाल तक इस बातकी चिन्ता करता रहा कि अहो ! मेरा तप करनेका समय व्यर्थ ही निकल गया ॥ ४० ॥ वह आठ दिन तक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करता रहा और अन्तमें प्रीतिंकर नामक पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर शरीरादिसे निःस्पृह हो गया ॥४१॥ तत्पश्चात् प्रायोपगमन संन्याससे सुशोभित बाईस दिन रात तक चारों आराधनाओंकी आराधना कर वह अच्युत स्वर्गमें बाईस सागरकी आयुका धारक इन्द्र पदको प्राप्त हुआ ॥ ४२ ॥ वहाँसे चयकर नागपुरमें श्रीचन्द्र और श्रीमतीके सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ। वह सुप्रतिष्ठ जिनेन्द्रमतकी भावनासे युक्त था ॥ ४३ ॥ राजा श्रीचन्द्ररूपी चन्द्रमा, सुप्रतिष्ठ पुत्रको राज्यसिंहासनपर प्रतिष्ठित कर सुमन्दिर नामक गुरुके पास दीक्षा ले मोक्ष चले गये ॥ ४४ ॥ एक दिन राजा सुप्रतिष्ठने मासोपवासी यशोधर मुनिराजके लिए दान देकर रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य प्राप्त किये ॥४५॥

कदाचित् राजा सुप्रतिष्ठ कार्तिककी पूर्णिमाकी रात्रिमें अपनी आठ सौ स्त्रियोंसे वेष्टित हो महलकी छतपर बैठा था। उसी समय आकाशसे उल्कापात हुआ। उसे देख वह राज्यलक्ष्मी-को उल्काके समान ही क्षणभंगुर समझने लगा। इसलिए अपनी सुनन्दा रानीके पुत्र सुदृष्टिके लिए राज्यलक्ष्मी देकर उसने सुमन्दिर नामक महागुरुके समीप दीक्षा ले ली ॥ ४६–४७॥ राजा सुप्रतिष्ठके साथ, सूर्यके समान तेजस्वी चार हजार राजाओंने भी उग्र तप धारण किया था ॥४८॥ मुनिराज सुप्रतिष्ठने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यकी वृद्धिसे युक्त हो आलस्य छोड़ गूढार्थ-सहित ग्यारह अंग और चौदह पूर्वोंका अध्ययन किया तथा सर्वतोभद्रको आदि लेकर सिंह-निष्क्रीडितपर्यन्तके विशिष्ट तपोंसे अपने शरीरको विभूषित किया ॥४९–५०॥ हे यादव ! श्रवण मात्रसे भी पापोंको नष्ट करनेवाली, उन उपवासोंकी महाविधि, मैं तेरे लिए कहता हूँ सो तू क्षण-भरके लिए मन स्थिर कर सुन ॥५१॥

सर्वतोभद्र—पांच भंगका एक चौकोर प्रस्तार बनावे और एकसे लेकर पांच तकके अंक उसमें इस तरह भरे कि सब ओरसे गिननेपर पन्द्रह-पन्द्रह उपवासोंकी संख्या निकल आवे। इन पन्द्रह उपवासोंमें पाँच भंगोंका गुणा करनेसे उपवासोंकी संख्या पचहत्तर और पांच पारणाओंमें पांच भंगोंका गुणा करनेसे पारणाओंकी संख्या पचीस निकलती है। यह सर्वतोभद्र नामका उपवास है तथा इसकी विधि यह है कि एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा और पांच उपवास एक पारणा। इसी प्रकार आगेके भंगोंमें भी समझना चाहिए। यह सर्वतोभद्र व्रत सौ दिनमें होता है और निर्वाण तथा स्वर्गादिककी प्राप्तिरूप समस्त कल्याणोंको प्रदान करता है ॥५२–५५॥

वसन्तभद्र—एक सीधी रेखामें पाँचसे लेकर नौ तक अंक लिखे। उन सबका जोड़ पैंतीस होता है। इस प्रकार वसन्तभद्र व्रतमें ३५ उपवास होते हैं। उनका क्रम यह है कि पांच उपवास एक पारणा, छह उपवास एक पारणा, सात उपवास एक पारणा, आठ उपवास एक पारणा और नौ उपवास एक पारणा। इस व्रतमें उपवासोंके ३५ और पारणाओंके ५ इस तरह चालीस दिन लगते हैं ॥५६॥

सर्वतोभद्रयन्त्रम्

उपवास	१	२	३	४	५
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	४	५	१	२	३
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	२	३	४	५	१
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	५	१	२	३	४
पारणा	१	१	१	१	१
उपवास	३	४	५	१	२
पारणा	१	१	१	१	१

वसन्तभद्रयन्त्रम्

उपवास	५	६	७	८	९
पारणा	१	१	१	१	१

महासर्वतोभद्र—सात भंगोंवाला एक चौकोर प्रस्तार बनावे। उसमें एकसे लेकर सात तकके अंक इस रीतिसे लिखे कि सब ओरसे संख्याका जोड़ अट्ठाईस-अट्ठाईस आवे। एक-एक भंगमें अट्ठाईस-अट्ठाईस उपवास और सात-सात पारणाएँ होती हैं। सातों भंगोंको मिलाकर एक सौ छियानवे उपवास और उनचास पारणाएँ होती हैं। इसके उपवास और पारणाओंकी विधि पहलेके समान जानना चाहिए। यह महासर्वतोभद्र नामका व्रत कहलाता है तथा सब प्रकारके कल्याणोंका करनेवाला है। इसमें दो सौ पैंतालीस दिन लगते हैं ॥५७-५८॥

त्रिलोकसारविधि—जिसमें नीचेसे पांचसे लेकर एक तक, फिर दोसे लेकर चार तक और उसके बाद तीनसे लेकर एकतक बिन्दु रखो जावें वह त्रिलोकसार विधि है। इसका प्रस्तार तीन लोकके आकार बनाना चाहिए। इसमें तीस धारणाएँ अर्थात् तीस उपवास और ग्यारह पारणाएँ होती हैं। उनका क्रम यह है पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा और एक उपवास एक पारणा। इस विधिमें इकतालीस दिन लगते हैं। इस विधिका फल कोष्ठबीज आदि ऋद्धियाँ तथा तीन लोकके शिखरपर तीन लोकका सारभूत मोक्ष सुखका प्राप्त होना है ॥५९-६१॥

महासर्वतोभद्रयन्त्रम्

उपवास	१	२	३	४	५	६	७
पारणा	१	१	१	१	१	१	१
उपवास	३	४	५	६	७	१	२
पारणा	१	१	१	१	१	१	१
उपवास	५	६	७	१	२	३	४
पारणा	१	१	१	१	१	१	१
उपवास	७	१	२	३	४	५	६
पारणा	१	१	१	१	१	१	१
उपवास	२	३	४	५	६	७	१
पारणा	१	१	१	१	१	१	१
उपवास	४	५	६	७	१	२	३
पारणा	१	१	१	१	१	१	१
उपवास	६	७	१	२	३	४	५
पारणा	१	१	१	१	१	१	१

त्रिलोकसारविधियन्त्रम्

o
o o
o o o
o o o o
o o o
o o
o
o o
o o o
o o o o
o o o o o

वज्रमध्यविधि—जिसमें आदि और अन्तमें पांच-पांच तथा बीचमें घटते-घटते एक बिन्दु

रह जाये वह वज्रमध्यविधि है। इसमें जितनी बिन्दुएँ हैं उतने उपवास और जितने स्थान हैं उतनी पारणाएँ जानना चाहिए। इनका क्रम इस प्रकार है—पांच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा और पांच उपवास एक पारणा। इस व्रतमें उनतीस उपवास और नौ पारणाएँ होती हैं तथा अड़तीस दिनमें समाप्त होता है। इन्द्र, चक्रवर्ती और गणधरका पद, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि और मोक्षका प्राप्त होना इस वज्रमध्यविधिका फल है ॥६२–६३॥

मृदंगमध्यविधि—जिसमें दोसे लेकर पाँच तक और चारसे लेकर दो तक बिन्दुएँ रखी जावें वह मृदंगाकार प्रस्तारसे युक्त मृदंगमध्यविधि है। इसमें जितनी बिन्दुएँ हैं उतने उपवास और जितने स्थान हैं उतनी पारणाएँ जानना चाहिए। इनका क्रम यह है—दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा। इस प्रकार इस व्रतमें तेईस उपवास और सात पारणाएँ होती हैं तथा तीस दिनमें समाप्त होता है। क्षीरस्रावित्व, अक्षीणमहानस आदि ऋद्धियाँ, अवधिज्ञान और अन्तमें मोक्ष प्राप्त होना इस व्रतका फल है ॥६४-६५॥
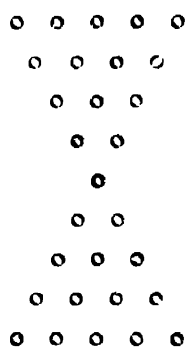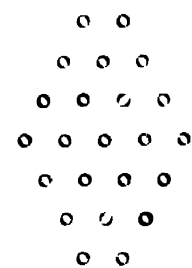
मुरजमध्यविधि—जिसमें पाँचसे लेकर दो तक, दोसे लेकर पाँच तक बिन्दुएँ हों वह मुरजमध्यविधि कहलाती है। इसमें जितनी बिन्दुएँ हों उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ समझनी चाहिए। इनका क्रम यह है कि पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा और पाँच उपवास एक पारणा है। इस प्रकार इसमें अट्ठाईस उपवास और आठ पारणाएँ हैं तथा छत्तीस दिनमें समाप्त होता है। इसका फल मृदंग-मध्यविधिके समान है ॥६६॥

एकावलीविधि—जिसमें चौबीस उपवास और चौबीस पारणा हों वह एकावलीविधि है। इसमें एक उपवास तथा एक पारणाके क्रमसे चौबीस उपवास और चौबीस पारणाएँ होती हैं। यह व्रत अड़तालीस दिनमें समाप्त होता है तथा अखण्ड सुखकी प्राप्ति होना इसका फल है ॥६७॥

मुरजमध्यविधियन्त्रम्—

o o o o o
o o o o
o o o
o o
o o
o o o
o o o o
o o o o o
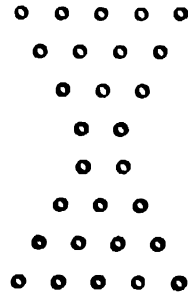
एकावलीयन्त्रम्—

१ १
१ १

द्विकावलीविधि—जिसमें अड़तालीस वेला और अड़तालीस पारणाएँ हों वह द्विकावली-विधि कही गयी है। यह दोनों लोकोंमें सुखको देनेवाली है। इसमें एक वेलाके बाद एक पारणा होती है। यह व्रत छयानबे दिनमें पूर्ण होता है ॥६८॥

३ द्विकावलीयन्त्रम्—

२ २
१ १
२ २
१ १

मुक्तावली विधि—जिसमें एकसे लेकर पाँच तक और चारसे लेकर एक तक बिन्दुएँ हों वह मुक्तावली विधि है। यह मोतियोंकी मालाके समान प्रसिद्ध है। इसमें जितनी बिन्दुएँ हैं उतने उपवास और जितने स्थान हैं उतनी पारणाएँ होती हैं। इस प्रकार इस व्रतमें पचीस उपवास और नौ पारणाएँ होती हैं। उनका क्रम यह है—एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, और एक उपवास एक पारणा। यह व्रत चौंतीस दिनमें पूर्ण होता है। इसका साक्षात् फल यह है कि इस व्रतको करते ही मनुष्य समस्त लोगोंका अलंकारस्वरूप श्रेष्ठ हो जाता है और अन्तमें सिद्धालयकी प्राप्तिस्वरूप आत्यन्तिक फलकी प्राप्ति होती है ॥६९-७०॥

रत्नावली विधि—जिसमें एकसे लेकर पाँच तक और पाँचसे लेकर एक तक बिन्दुएँ हों वह रत्नावली विधि है। इसका फल रत्नावलीके समान अनेक गुणोंकी प्राप्ति होना है। इसमें जितनी बिन्दुएँ हों उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ जानना चाहिए। उनका क्रम यह है—एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा और एक उपवास एक पारणा। इस प्रकार इसमें तीस उपवास और दस पारणाएँ होती हैं। यह व्रत चालीस दिनमें पूर्ण होता है ॥७१॥

मुक्तावलीविधियन्त्रम्—

रत्नावलीविधियन्त्रम्—

रत्नमुक्तावलीविधि—एक ऐसा प्रस्तार बनाया जावे जिसमें रूप अर्थात् एक-एकका अन्तर देते हुए एकसे लेकर पन्द्रह तकके अंक लिखे जावें। उसके आगे एक-एकका अन्तर देकर सोलह लिखे जावें और उसके आगे एक-एकका अन्तर देते हुए एक-एक कम कर अन्तमें एक आ जावे वहाँ तक लिखे। इसमें प्रारम्भमें प्रथम अंकसे दूसरा अंक लिखते समय बीचमें और अन्तमें दोसे प्रथम अंक लिखते समय बीचमें पुनरुक्त होनेके कारण एकका अन्तर नहीं देवे। इस व्रतमें सब अंकोंका जोड़ करनेपर दो सौ चौरासी उपवास और उनसठ पारणाएँ होती हैं। उस उपवासमें तीन सौ तैंतालीस दिन लगते हैं। इसका फल रत्नत्रयकी प्राप्ति है। इसकी विधि यह है कि एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, एक उपवास एक पारणा आदि ॥७२–७३॥

कनकावलीविधि—जिसमें एकका अंक, दो का अंक, नौ बार तीनका अंक, फिर एकसे लेकर सोलह तकके अंक, फिर चौंतीस बार तीनके अंक, सोलहसे लेकर एक तकके अंक, नौ बार तीनके अंक तथा दो और एकका अंक लिखा जावे अर्थात् इस क्रमसे चार सौ चौंतीस उपवास और अठासी पारणाएँ की जावें वह कनकावली व्रत है। लौकान्तिक देव पदकी प्राप्ति होना अथवा संसारका अन्तकर मोक्ष प्राप्त करना इस व्रतका फल है। इसका क्रम यह है कि एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा आदि। इस व्रतके उपवासोंकी गणना निकालनेकी दूसरी विधि यह है कि एकसे लेकर सोलह तक दो बार संख्या लिखे और उसे आपसमें

रत्नमुक्तावलीयन्त्रम्—

१ १
१ २ १ ३ १ ४ १ ५ १ ६ १ ७ १ ८ १ ९ १ १० १ ११ १ १२ १ १३ १ १४ १ १५ १ १६
१ १
१ १५ १ १४ १ १३ १ १२ १ ११ १ १० १ ९ १ ८ १ ७ १ ६ १ ५ १ ४ १ ३ १ २ १

कनकावलीयन्त्रम्—

१ १
१ २ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ ३ ३
१ १
३ ३
१ १
३ ३ ३ १६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ २ १

जोड़ देनेपर जितनी संख्या हो उसमें चौकनके तिगुने एक सौ बासठ और मिला दें। ऐसा करनेसे

चार सौ चौंतीस उपवास निकल आते हैं और अठासी स्थान होनेसे अठासी पारणाएँ होती हैं। इस कनकावली विधिमें एक वर्ष पाँच मास और बारह दिन लगते हैं ॥७४–७५॥

दूसरे प्रकारकी रत्नावलीविधि—जिसमें रत्नोंके हारके समान एक प्रस्तार बनाकर बायीं ओर पहले बेलाका सूचक दो बिन्दुओंका एक द्विक लिखे, फिर दो बेलाओंके सूचक दो द्विक लिखे, फिर तीन बेलाओंके सूचक तीन द्विक लिखे, फिर चार बेलाओंके सूचक चार द्विक लिखे। इसके आगे एक उपवासकी सूचक एक बिन्दु लिखे, उसके बाद दो उपवासोंकी सूचक दो बिन्दुएँ बराबरीपर लिखे। तदनन्तर इसके आगे इसी प्रकार तीन आदि उपवासोंकी सूचक सोलह तक बिन्दुएँ रखे। फिर वे बायीं ओरसे दाहिनी ओर गोलाकार बढ़ते हुए बत्तीस बेलाओंके बत्तीस द्विक लिखे और उनके नीचे चार बेलाओंके सूचक चार द्विक लिखे। तीस द्विकके ऊपर सोलह आदि उपवासोंके सूचक सोलहसे लेकर एक तक बराबरीपर सोलह पन्द्रह आदि बिन्दुएँ रखे। और उसके आगे आठ बेलाओंके सूचक आठ द्विक, तीन बेलाओंके सूचक तीन द्विक, दो बेलाओंके सूचक दो द्विक तथा एक बेलाका सूचक एक द्विक लिखे। इस व्रतमें छप्पन द्विकके द्विगुणित एक सौ बारह तथा दोनों ओरकी षोडशियोंके दो सौ बहत्तर इस प्रकार सब मिलाकर तीन सौ चौरासी उपवास और अठासी स्थानोंके अठासी भुक्तिकाल होते हैं। यह व्रत एक वर्ष तीन माह और बाईस दिनमें पूरा होता है तथा रत्नत्रयरूपी तेजको बढ़ानेवाला है अर्थात् इस व्रतके फलस्वरूप रत्नत्रयमें निर्मलता आती है। इसकी विधि इस प्रकार है—एक बेला एक पारणा, एक बेला एक पारणा, इस क्रमसे दश बेला दश पारणा, फिर एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा इस क्रमसे सोलह उपवास तक बढ़ाना चाहिए। फिर एक बेला एक पारणा इस क्रमसे तीस बेला तीस पारणा, फिर षोडशीके सोलह उपवास एक पारणा, पन्द्रह उपवास एक पारणा, इस क्रमसे एक उपवास एक

पारणा तक आना चाहिए । फिर एक बेला एक उपवासके क्रमसे बारह बेला और बारह पारणाएँ तत्पश्चात् नीचेके चार बेला और चार पारणाएँ करनी चाहिए ॥७६–७७॥

द्वितीयरत्नावलीयन्त्रम्—

सिंहनिष्क्रीडित विधि—सिंहनिष्क्रीडित व्रत जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारका है, उनमें हीन अर्थात् जघन्य सिंहनिष्क्रीडित व्रतका क्रम इस प्रकार है । एक ऐसा प्रस्तार बनावे जिसमें एकसे लेकर पांच तकके अंक दो दो वार आ जावें तथा वे पहलेके अंकोंमें दो-दो
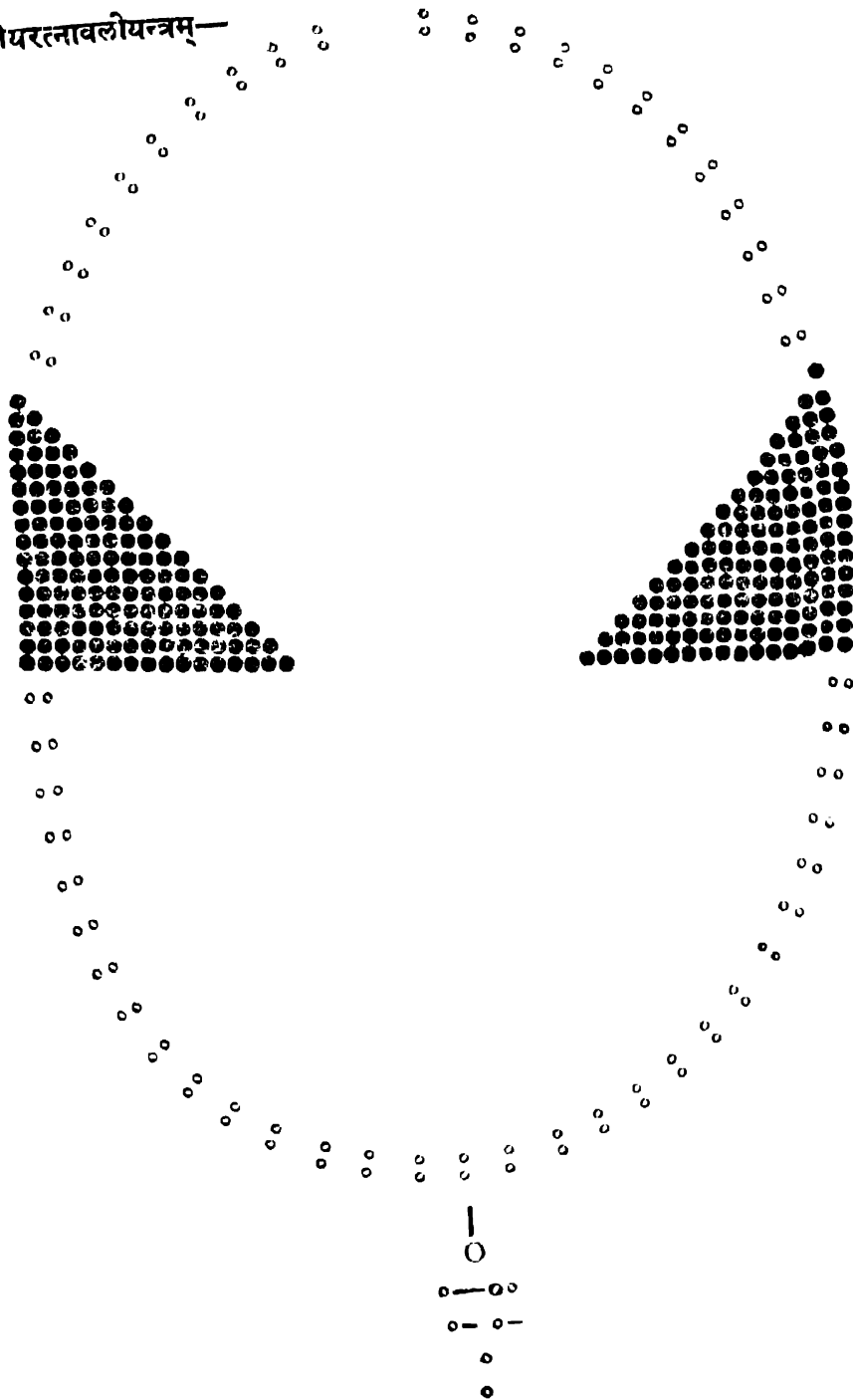
अंकोंकी सहायतासे एक-एक बढ़ता और घटता जाय इस रीतिसे लिखे जावें। पुनः पाँचसे लेकर एक तकके अंक भी दो-दो बार पूर्वोक्त क्रमसे लिखे जावें। समस्त अंकोंका जोड़ करनेपर जितनी संख्या हो उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ जानना चाहिए। इस व्रतके प्रस्तारका आकार यह है—

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	२	१	३	२	४	३	५	४	५	५	४	५	३	४	२	३	१	२	१

इसमें पहले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करना चाहिए। फिर दोमें-से एक उपवासका अंक घट जानेसे एक उपवास एक पारणा, दोमें एक उपवासका अंक बढ़ जानेसे तीन उपवास एक पारणा, तीनमें एक उपवासका अंक घट जानेसे दो उपवास एक पारणा, तीनमें एक उपवासका अंक बढ़ जानेसे चार उपवास एक पारणा, चारमें-से एक उपवासका अंक घट जानेसे तीन उपवास एक पारणा, चारमे एक उपवासका अंक बढ़ जानेसे पांच उपवास एक पारणा, पांचमें-से एक उपवासका अंक कमा देनेपर चार उपवास एक पारणा, चारमें एक उपवासका अंक बढ़ा देनेपर पांच उपवास एक पारणा होती है। यहाँपर अन्तमें पाँचका अंक आ जानेसे पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है। आगे उलटी संख्यासे पहले पाँच उपवास एक पारणा करनी चाहिए। पश्चात् पांचमें से एक उपवासका अंक कमा देनेपर चार उपवास एक पारणा, चारमें एक उपवासका अंक बढ़ा देनेपर पांच उपवास एक पारणा, चारमें-से एक उपवासका अंक घटा देनेपर तीन उपवास एक पारणा, तीनमें एक उपवासका अंक बढ़ा देनेपर चार उपवास एक पारणा, तीनमें से एक उपवासका अंक घटा देनेपर दो उपवास एक पारणा, दोमें एक उपवासका अंक बढ़ा देनेसे तीन उपवास एक पारणा, दोमें से एक उपवासका अंक घटा देनेपर एक उपवास एक पारणा, फिर दो उपवास एक पारणा और एक उपवास एक पारणा करना चाहिए। इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित व्रतमें समस्त अंकोंका जोड़ साठ होता है इसलिए साठ उपवास होते हैं और स्थान बीस हैं इसलिए पारणाएं बीस होती है। यह व्रत अस्सी दिनमें पूर्ण होता है ॥७८॥

मध्यम सिंहनिष्क्रीडित विधि—मध्यम सिंहनिष्क्रीडित व्रतमें एकसे लेकर आठ अंक तकका प्रस्तार बनाना चाहिए और उसके शिखरपर नौ अंक लिखना चाहिए। उसके बाद उलटे क्रमसे एक तकके अंक लिखना चाहिए। यहाँ भी जघन्य निष्क्रीडितके समान दो-दो अंकोंकी अपेक्षा एक-एक उपवासका अंक घटाना-बढ़ाना चाहिए। इस रीतिसे लिखे हुए समस्त अंकोंका जितना जोड़ हो उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ समझनी चाहिए। इस तरह इस व्रतमें एक सौ त्रेपन उपवास और तैंतीस पारणाएँ होती हैं। यह व्रत एक सौ छियासी दिनमें पूर्ण होता है। इसका प्रस्तार इस प्रकार है—॥७९॥

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	८	९

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
८	७	८	६	७	५	६	४	५	३	४	२	३	१	२	१

उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडित विधि—उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडित व्रतमें एकसे लेकर पन्द्रह तकके अंकोंका प्रस्तार बनाना चाहिए और उसके शिखरमें सोलहका अंक लिखना चाहिए। उसके बाद उलटे क्रमसे एक तकके अंक लिखना चाहिए। यहांपर भी जघन्य और मध्यम सिंहनिष्क्रीडितके समान दो-दो अंकोंकी अपेक्षा एक-एक उपवासका अंक घटाना-बढ़ाना चाहिए। इस रीतिसे लिखे हुए समस्त अंकोंका जितना जोड़ हो उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ जाननी चाहिए। इस तरह इस व्रतमें चार सौ छियानबे उपवास और इकसठ पारणाएँ होती हैं। यह व्रत पाँच सौ सत्तावन दिनमें पूर्ण होता है। इसका प्रस्तार इस प्रकार है—॥८०॥

१ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१३ १२ १४ १३ १५ १४ १५ १६ १५ १४ १५ १३ १४ १२ १३

१ १
११ १२ १० ११ ९ १० ८ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ३ २ ३ १ २ १

विशेष—७८, ७९, ८०वें श्लोकोंका एक सीधा-साधा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है विद्वज्जन इसपर विचार करें—

जघन्य सिंहनिष्क्रीडित विधिमें एकसे लेकर पांच तकके अंक दो-दोकी संख्यामें लिखें और उसके बाद उलटे क्रमसे पांचसे एक तकके अंक दो-दोकी संख्यामें लिखें। दोनों ओरके सब अंकोंका जोड़ कर देनेपर साठ उपवास और बीस पारणाएँ होती हैं ॥७८॥

मध्यम सिंहनिष्क्रीडितमें एकसे लेकर आठ तकके अंक दो-दोकी संख्यामें लिखें और उनके ऊपर शिखरस्थानपर नौका अंक लिखे फिर उलटे क्रमसे एक तकके अंक दो-दोकी संख्यामें लिखे। सब अंकोंका जोड़ करनेपर एक सौ त्रेपन उपवास और तैंतीस पारणाएँ आती हैं ॥७९॥

उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडितमें एकसे लेकर पन्द्रह तकके अंक दो-दोकी संख्यामें लिखे और उसके ऊपर शिखरस्थानपर सोलहका अंक लिखे फिर उलटे क्रमसे एक तकके अंक दो-दोकी संख्यामें लिखे सब अंकोंका जोड़ करनेपर चार सौ छियानबे उपवास और इकसठ पारणाएँ होती हैं।

इनके प्रस्तार इस क्रमसे जानना चाहिए—

जघन्य सिंहनिष्क्रीडित—

मध्यम सिंहनिष्क्रीडित—

उत्कृष्टसिंहनिष्क्रीडित—
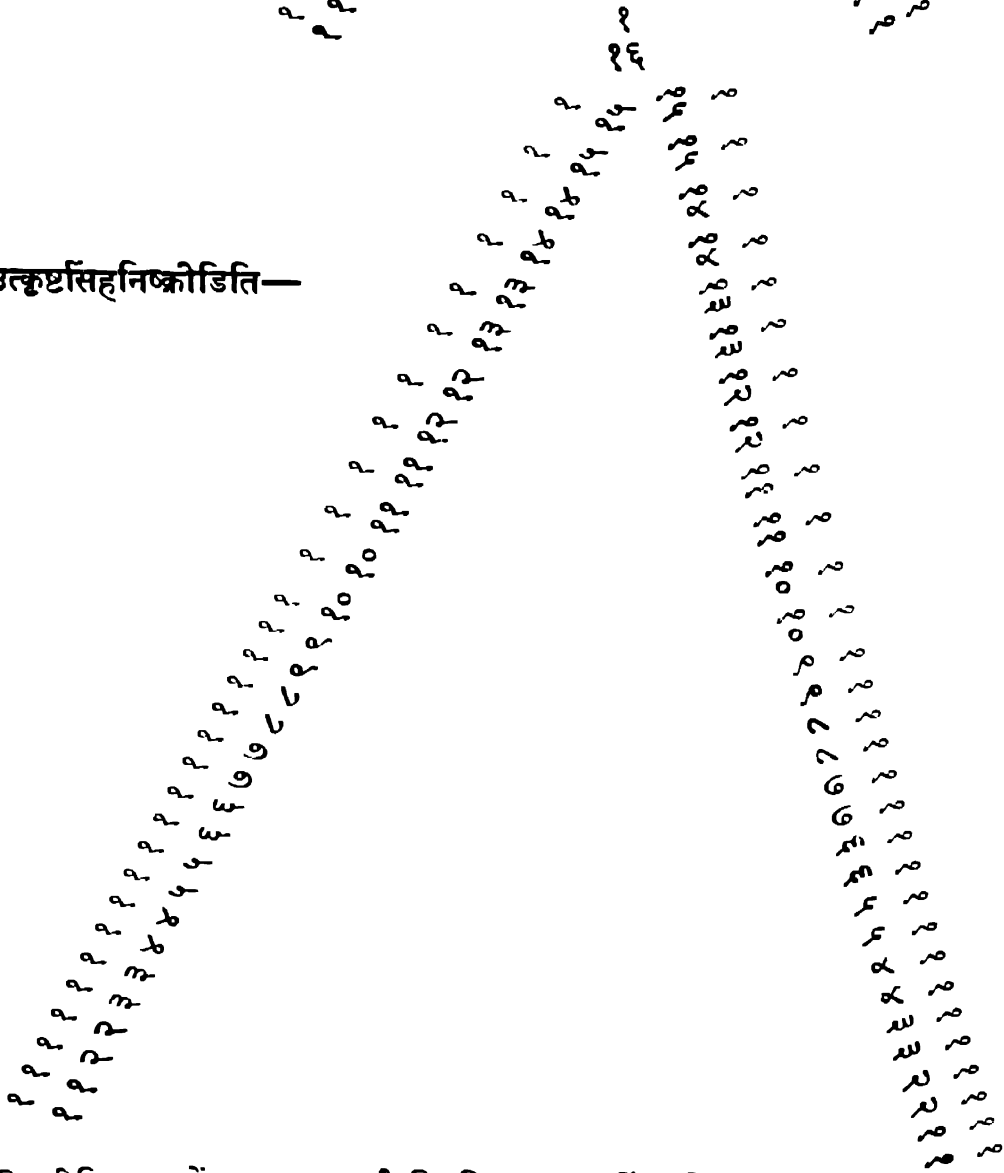
सिंहनिष्क्रीडित व्रतमें कल्पना यह है कि जिस प्रकार सिंह किसी पर्वतपर क्रम-क्रमसे चढ़ता हुआ उसके शिखरपर पहुँचता है और बादमें क्रम-क्रमसे नीचे उतरता है उसी प्रकार मुनिराज क्रम-क्रमसे उपवास करते हुए तपरूपी पर्वतके शिखरपर चढ़ते हैं और उसके बाद क्रम-क्रमसे नीचे उतरते हैं।

ग्रन्थकर्ताने तीनों प्रकारके सिंहनिष्क्रीडित व्रतोंकी संख्या और पारणा गिननेकी एक सरल रीति यह भी बतलायी है कि जघन्यसिंहनिष्क्रीडित व्रतमें एकसे लेकर पाँच तकके अंक लिखकर सबको जोड़ ले फिर उसमें चारका गुणा कर दे। जैसे एकसे लेकर पांच तकके अंकोंका जोड़ पन्द्रह होता है उसमें चारका गुणा करनेपर उपवासोंकी संख्या साठ आती है। मध्यमसिंह-निष्क्रीडित व्रतमें एकसे लेकर आठ तकके अंक लिखकर सबको जोड़ दे फिर उसमें चारका गुणा कर दे और शिखरके नौ अलगसे जोड़ दे। जैसे—एकसे लेकर आठ तकके अंकोंका जोड़ छत्तीस होता है उसमें चारका गुणा करनेपर एक सौ चवालीस आते हैं उसमें शिखरके नौ जोड़ देनेपर उपवासोंकी संख्या एक सौ त्रेपन होती है। उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडितमें एकसे लेकर पन्द्रह तकके अंक लिखकर उनका जो जोड़ हो उसमें चारका गुणा करे फिर शिखरके सोलह अलगसे जोड़ दे। जैसे एकसे पन्द्रह तकके अंकका जोड़ एक सौ बीस होता है। उसमें चारका गुणा करनेपर चार सौ अस्सी होते हैं। उसमें शिखरके सोलह जोड़ देनेपर उपवासोंकी संख्या चार सौ छ्यानबे होती है ॥८१॥ जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडित व्रतोंकी पारणाएँ क्रमसे बीस, तैंतीस और इकसठ होती हैं ॥८२॥ इस व्रतके फलस्वरूप मनुष्य वज्रवृषभनाराच संहननका धारक, अनन्तवीर्यसे सम्पन्न, सिंहके समान निर्भय और अणिमा आदि गुणोंसे युक्त होता हुआ शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है ॥८३॥

नन्दीश्वर व्रतविधि—नन्दीश्वर द्वीपकी एक-एक दिशामें चार-चार दधिमुख हैं इसलिए

नन्दीश्वर व्रतविधि-यन्त्र—
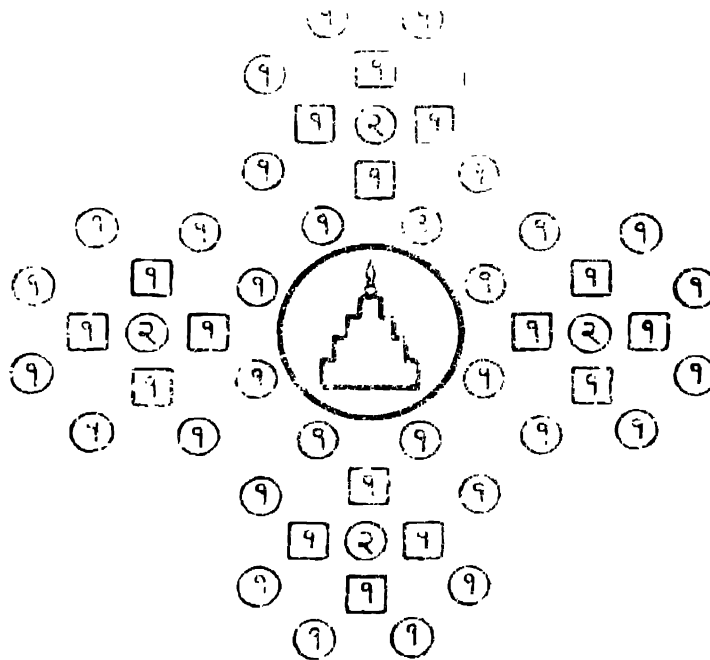
प्रत्येक दधिमुखको लक्ष्य कर मनकी मलिनताको दूर करते हुए चार उपवास करना चाहिए। एक-एक दिशामें आठ-आठ रतिकर हैं इसलिए प्रत्येक रतिकरको लक्ष्य कर आठ उपवास करना चाहिए। एक-एक दिशामें एक-एक अंजनगिरि है इसलिए उसे लक्ष्य कर एक बेला करना चाहिए। इस प्रकार एक दिशाके बारह उपवास एक बेला और तेरह पारणाएँ होती हैं। यह व्रत पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाके क्रमसे चारों दिशाओंमें करना चाहिए। इसमें अड़तालीस उपवास, चार बेला और बावन पारणाएँ हैं। इस तरह यह व्रत एक सौ आठ दिनमें पूर्ण होता है। यह नन्दीश्वर व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ है और जिनेन्द्र तथा चक्रवर्तीके पदको प्राप्त करानेवाला है ॥८४॥

मेरुपंक्तिव्रत विधि—जम्बूद्वीपका एक, धातकीखण्ड पूर्वदिशाका एक, धातकीखण्ड पश्चिम दिशाका एक, पुष्करार्ध पूर्व दिशाका एक और पुष्करार्ध पश्चिम दिशाका एक इस प्रकार कुल पांच मेरु पर्वत हैं। प्रत्येक मेरु पर्वतपर भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक ये चार वन हैं और एक-एक वनमें चार-चार चैत्यालय हैं। मेरुपंक्तिव्रतमें वनोंको लक्ष्य कर बेला और

मेरुपंक्तिव्रत यन्त्र—
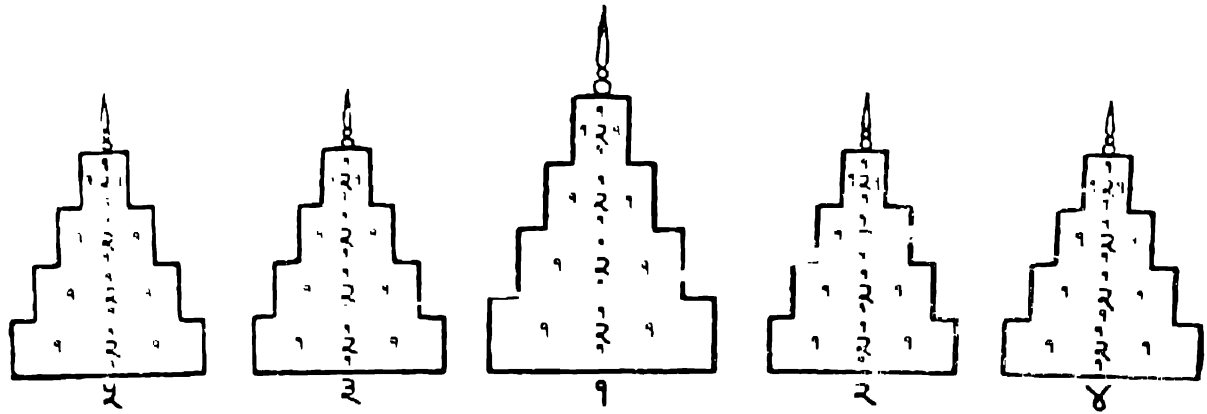
अथवा—

१ १ १ १ १ पा   १ १ १ १ १ पा.   १ १ १ १ १ पा.   १ १ १ १ १ पा.   १ १ १ १ १
० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०
०   ०   ०   ०   ०

१ १ १ १ १ सौ.   १ १ १ १ १ सौ.   १ १ १ १ १ सौ.   १ १ १ १ १ सौ.   १ १ १ १ १
० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०
०   ०   ०   ०   ०

१ १ १ १ १ नं.   १ १ १ १ १ नं.   १ १ १ १ १ नं.   १ १ १ १ १ नं.   १ १ १ १ १
० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०
०   ०   ०   ०   ०

१ १ १ १ १ भ.   १ १ १ १ १ भ.   १ १ १ १ १ भ.   १ १ १ १ १ भ.   १ १ १ १ १
० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०   ० ० ० ० ०
०   ०   ०   ०   ०

चैत्यालयोंको लक्ष्य कर उपवास करने पड़ते हैं। इस प्रकार इस व्रतमें पाँचों मेरु सम्बन्धी अस्सी चैत्यालयोंके अस्सी उपवास और बीस वन सम्बन्धी बीस बेला करने पड़ते हैं तथा सौ स्थानोंकी सौ पारणाएँ होती हैं। इसमें दो सौ बीस दिन लगते हैं। व्रत, जम्बूद्वीपके मेरुसे शुरू होता है। इसमें प्रथम ही भद्रशाल वनके चार चैत्यालयोंके चार उपवास; चार पारणाएँ और वनसम्बन्धी एक बेला, एक पारणा होती है। फिर नन्दन वनके चार चैत्यालयोंके चार उपवास, चार पारणाएँ और वन सम्बन्धी एक बेला एक पारणा होती है। फिर सौमनस वनके चार चैत्यालयोंके चार उपवास चार पारणाएँ और वन सम्बन्धी एक बेला एक पारणा होती है। तदनन्तर पाण्डुक वनके चार चैत्यालयोंके चार उपवास चार पारणाएँ और वन सम्बन्धी एक बेला एक पारणा होती है। इसी क्रमसे धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व और पश्चिम मेरु तथा पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व और पश्चिम मेरु सम्बन्धी उपवास बेला और पारणाएँ जानना चाहिए। यह मेरुपंक्तिव्रत, मेरु पर्वतपर महाभिषेकको प्राप्त कराता है अर्थात् इस व्रतका पालन करनेवाला पुरुष तीर्थंकर होता है ॥८५॥

विमानपंक्ति विधि—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकके भेदसे विमान तीन प्रकारके हैं। इन्द्रक विमान बीचमें है और श्रेणीबद्ध विमान चारों दिशाओंमें श्रेणीरूपसे स्थित हैं। ऋतु

विमानको आदि लेकर इन्द्रक विमानोंकी संख्या त्रेसठ है। विमानपंक्तिव्रतमें इनकी चारों दिशाओंमें श्रेणीबद्ध विमानोंकी अपेक्षा चार उपवास, चार पारणाएँ और इन्द्रककी अपेक्षा एक बेला एक पारणा होती है। इस तरह त्रेसठ इन्द्रक विमानोंकी चार-चार श्रेणियोंकी अपेक्षा चार-चार उपवास होनेसे ये दो सौ बावन उपवास तथा त्रेसठ इन्द्रक सम्बन्धी त्रेसठ बेला होते हैं। त्रेसठ बेलाके बाद एक तेला होता है इस प्रकार उपवास २५२ बेला ६३ और तेला १ सब मिलाकर तीन सौ सोलह स्थान होते हैं अतः इतनी ही पारणाएँ होती हैं। यह व्रत पूर्व, दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाके क्रमसे होता है। चारों दिशाओंके चार उपवासके बाद बेला होता है। इसमें कुल छह सौ सत्तानबे दिन लगते हैं। यह व्रत विमानोंकी ईश्वरता प्राप्त करानेवाला है अर्थात् इस व्रतका करनेवाला मनुष्य विमानोंका स्वामी होता है ॥८६॥

विमानपंक्तियन्त्र—

शातकुम्भ विधि—शातकुम्भ विधि जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारकी है उनमें जघन्य शातकुम्भ विधि इस प्रकार है। एक ऐसा प्रस्तार बनावे जिसमें एकसे लेकर पाँच तकके अक्षर पाँच, चार, तीन, दो, एकके क्रमसे लिखे। तदनन्तर प्रथम अंक अर्थात् पाँच को छोड़कर अवशिष्ट अंकोंको चार, तीन, दो, एकके क्रमसे तीन बार लिखे। सब अंकोंका जितना जोड़ हो उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ जाने। इस विधिमें पैंतालीस उपवास और सत्तरह पारणाएँ हैं, यह बासठ दिनमें पूर्ण होता है। प्रस्तारका आकार इस प्रकार है—

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
५	४	३	२	१	४	३	२	१	४	३	२	१	४	३	२	१

मध्यमशातकुम्भ विधि—एक ऐसा प्रस्तार बनावे जिसमें एकसे लेकर नौ पर्यन्त तकके अंक नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकके क्रमसे लिखे। तदनन्तर प्रथम अंक अर्थात् नौको छोड़कर आठ-सात आदिके क्रमसे अवशिष्ट अंकोंको तीन बार लिखे। सब अंकोंका जितना जोड़ हो उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ जाने। इस व्रतमें एक सौ त्रेपन उपवास और तैंतीस पारणाएँ हैं। यह व्रत एक सौ छियासी दिनमें पूर्ण होता है। इसका प्रस्तार इस प्रकार है—

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
९	८	७	६	५	४	३	२	१	८	७	६	५	४	३	२	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	
८	७	६	५	४	३	२	१	८	७	६	५	४	३	२	१	

उत्कृष्ट शातकुम्भ विधि—एक ऐसा प्रस्तार बनावे जिसमें एकसे लेकर सोलह तकके अंक सोलह पन्द्रह चौदह आदिके क्रमसे एक तक लिखे फिर प्रथम अंकको छोड़कर अवशिष्ट अंकोंका जितना जोड़ हो उतने उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणाएँ जाने। इस व्रतमें चार सौ छियानबे उपवास और इकसठ पारणाएँ है। यह विधि पांच सौ सन्तावन दिनमें पूर्ण होती है। इसका प्रस्तार इस प्रकार है—

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	
३	२	१	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
६	५	४	३	२	१	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
८	७	६	५	४	३	२	१	१५	१४	१३	१२	११
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१			
१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१			

यह विधि सुवर्णमय कलशोंसे अभिषेक सम्बन्धी सुखको देनेवाली है। यह इन तपोंकी विधि कही है परन्तु जो मनुष्य इनके करनेमें असमर्थ हैं वे अपनी शक्तिके अनुसार आत्महितमें प्रवृत्त होते हुए उपवास, बेला तथा तेलाके द्वारा भी उपवासोंकी निश्चित संख्या पूरी कर सकते हैं ॥८७-८९॥

चान्द्रायणविधि—चान्द्रायण व्रत चन्द्रमाकी सुन्दर गतिके अनुसार होता है। इस व्रतका करनेवाला अमावस्याके दिन उपवास करता है फिर प्रतिपदाको एक *कवल—एक ग्रास मात्र आहार लेता है। तदनन्तर द्वितीयादि तिथियोंमें एक-एक ग्रास बढ़ाता हुआ चतुर्दशीको चौदह कवलका आहार करता है। पूर्णिमाके दिन उपवास करता है फिर चन्द्रमाकी कलाओंके अनुसार

कवलचान्द्रायणविधियन्त्र—
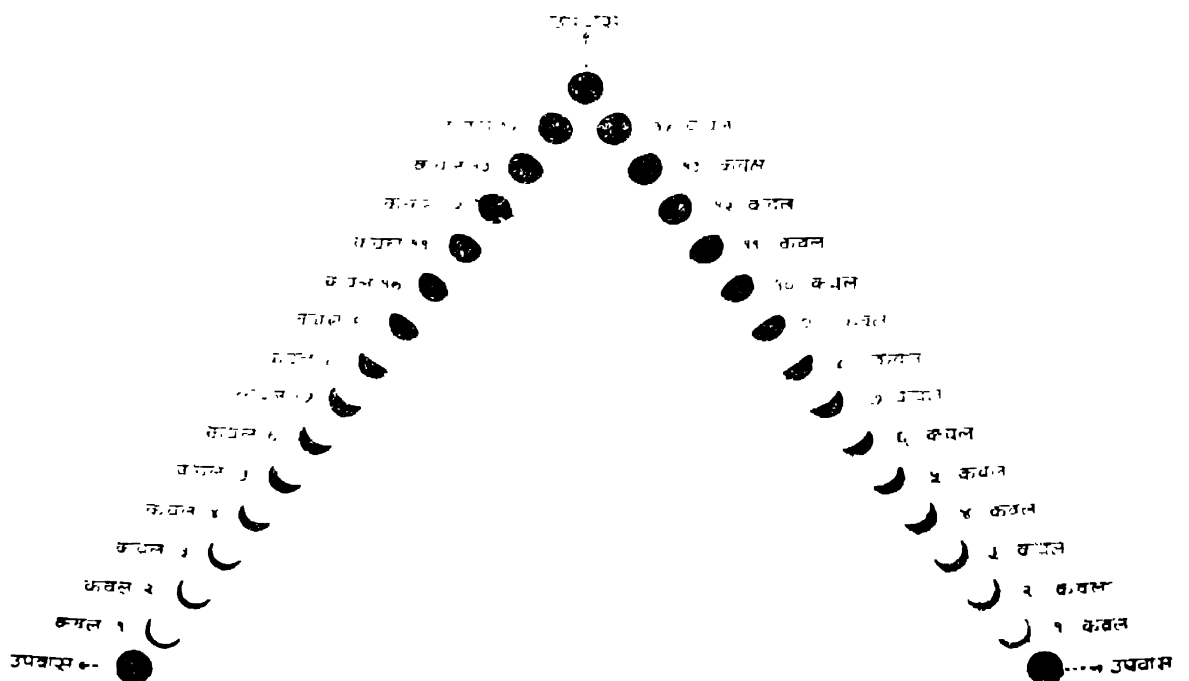
एक-एक कवल घटाता हुआ चौदह, तेरह, बारह आदि कवलोंका आहार लेता है और अन्तमें अमावास्याको पुनः उपवास करता है। यह व्रत इकतीस दिनमें पूर्ण होता है और यशको विस्तृत करनेवाला है अतः इस व्रतको करनेवाला यशको प्राप्त होता है ॥९०॥

सप्तसप्तमतपोविधि—जिसमें पहले दिन उपवास और उसके बाद एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए आठवें दिन सात ग्रासका आहार लिया जाय फिर एक-एक ग्रास घटाते हुए अन्तिम दिन उपवास किया जाय। इसी प्रकारकी क्रिया सात बार की जाय। वह सप्तसप्तमविधि है ॥९१॥

अष्टअष्टम, नवनवमादिविधि—सप्तसप्तमविधिके अनुसार अष्टअष्टम, नवनवम, दश-दशम, एकादशएकादश और द्वादशद्वादशको आदि लेकर द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद् तककी विधि भी इसी प्रकार जानना चाहिए। जितनेवीं विधि प्रारम्भ की जावे उसमें प्रथम दिन उपवास रखकर एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए उतने ग्रास तक आहार लेना चाहिए। फिर एक-एक ग्रास घटाते हुए एक ग्रास तक आवे और अन्तिम दिनका उपवास रखना चाहिए। मनुष्यका स्वाभाविक भोजन बत्तीस ग्रास बतलाया है, अतः यह व्रत भी बत्तीस ग्रास तक ही सीमित रखा गया है ॥९२॥ अथवा सप्तसप्तमविधिका एक दूसरा क्रम यह भी बतलाया गया है कि पहले दिन उपवास न कर क्रमसे एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह और सात कवलका आहार ले जब एक दौर पूर्ण हो जावे तो यही क्रम फिर करे। इस तरह सात बार इस क्रमके कर चुकनेपर यह व्रत पूर्ण होता है ॥९३॥ अष्टअष्टम आदि विधियोंमें भी यही क्रम जानना चाहिए। इनमें क्रमसे एक उपवाससे प्रारम्भ कर एक-एक ग्रास बढ़ाते जाना चाहिए ॥९४॥

आचाम्लवर्धमानविधि—आचाम्लवर्धमान विधिमें पहले दिन उपवास करना चाहिए दूसरे दिन एक बेर बराबर भोजन करना चाहिए, तीसरे दिन दो बेर बराबर, चौथे दिन तीन बेर बराबर इस तरह एक-एक बेर बराबर बढ़ाते हुए ग्यारहवें दिन दस बेर बराबर भोजन करना चाहिए फिर दशको आदि लेकर एक-एक बेर बराबर घटाते हुए दशवें दिन एक बेर बराबर भोजन करना चाहिए और अन्तमें एक उपवास करना चाहिए। इस व्रतके पूर्वार्धके दश दिनोंमें निर्विकृति-नीरस भोजन लेना चाहिए और उत्तरार्द्धके दश दिनोंमें इक्कट्ठाणाके साथ अर्थात् भोजनके लिए बैठनेपर पहली बार जो भोजन परोसा जाये उसे ग्रहण करना चाहिए। दोनों ही अर्धोंमें भोजनका परिमाण ऊपर लिखे अनुसार ही समझना चाहिए। ये आचाम्ल वर्धमान तपकी विधियाँ क्रमसे करनी चाहिए ॥९५-९६॥

श्रुतविधि—श्रुतविधि उपवासमें मतिज्ञानके अट्ठाईस, ग्यारह अंगोंके ग्यारह, परिकर्मके दो, सूत्रके अठासी, प्रथमानुयोग और केवलज्ञानके एक-एक, चौदह पूर्वोंके चौदह, अवधिज्ञानके छह, चूलिकाके पांच और मनःपर्ययज्ञानके दो इस प्रकार एक सौ अट्ठावन उपवास करने पड़ते हैं। एक-एक उपवासके बाद एक-एक पारणा होती है इसलिए यह व्रत तीन सौ सोलह दिनोंमें पूर्ण होता है ॥९७॥

दर्शनशुद्धि विधि—दर्शनविशुद्धि नामक तपकी विधिमें औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक इन तीन सम्यग्दर्शनोंके निःशंकित आदि आठ-आठ अंगोंकी अपेक्षा चौबीस उपवास होते हैं। एक-एक उपवासके बाद एक-एक पारणा होती है। इस तरह यह व्रत अड़तालीस दिनमें समाप्त होता है ॥९८॥

तपःशुद्धि विधि—बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे तपके दो भेद हैं। उनमें बाह्य तपके अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह भेद हैं और आभ्यन्तर तपके प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और कायोत्सर्ग ये छह भेद हैं। इनमें अनशनादि बाह्य तपोंके क्रमसे दो, एक, एक, पांच, एक और एक इस प्रकार ग्यारह

पवित्र उपवास होते हैं और प्रायश्चित्त आदि छह अन्तरंग तपोंके क्रमसे उन्नीस, तीस, दश, पांच, दो और एक इस प्रकार सड़सठ उपवास होते हैं। दोनों भेदोंके मिलाकर अठहत्तर उपवास होते हैं। ये सब उपवास पृथक्-पृथक्* होते हैं अर्थात् एक उपवासके बाद एक पारणा होती है ।.९९।।

चारित्रशुद्धि विधि—पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समितिके भेदसे चारित्रके तेरह भेद हैं। चारित्रशुद्धि विधिमें इन सबकी शुद्धिके लिए पृथक्-पृथक् उपवास करनेकी प्रेरणा दी गयी है। प्रथम ही अहिंसा महाव्रत है सो १ बादर एकेन्द्रियपर्याप्तक, २ बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, ३ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, ४ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, ५ द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, ६ द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, ७ त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, ८ त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक, ९ चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, १० चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक, ११ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, १२ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, १३ असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और १४ असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक। इन चौदह प्रकारके जीवस्थानोंकी हिंसाका त्याग मन-वचन-काययोग तथा कृत कारित अनुमोदना इन नौ कोटियोंसे करना चाहिए। इस अभिप्रायको लेकर प्रथम अहिंसा व्रतके एक सौ छब्बीस उपवास होते हैं और एक-एक उपवासके बाद एक-एक पारणा होनेसे एक सौ छब्बीस ही पारणाएँ होती हैं ।।१००।।

दूसरा सत्य महाव्रत है सो १ भय, २ ईर्ष्या, ३ स्वपक्ष पुष्टि, ४ पैशुन्य, ५ क्रोध, ६ लोभ, ७ आत्मप्रशंसा और ८ परनिन्दा—इन आठ निमित्तोंसे बोले जानेवाले असत्यका पूर्वोक्त नौ कोटियोंसे त्याग करना चाहिए। इस अभिप्रायको लेकर द्वितीय सत्य महाव्रतके बहत्तर उपवास होते हैं तथा उपवासके बाद एक-एक पारणा होनेसे बहत्तर ही पारणाएँ होती हैं ।।१०१।।

तीसरा अचौर्य महाव्रत है सो १ ग्राम, २ अरण्य, ३ खलिहान, ४ एकान्त, ५ अन्यत्र, ६ उपधि, ७ अभुक्तक और ८ पृष्ठ ग्रहण—इन आठ भेदोंसे होनेवाली चोरीका पूर्वोक्त नौ कोटियोंसे त्याग करना चाहिए। इस अभिप्रायको लेकर तृतीय अचौर्य महाव्रतमें बहत्तर उपवास होते हैं तथा प्रत्येक उपवासकी एक-एक पारणा होनेसे बहत्तर ही पारणाएँ होती हैं ।।१०२।।

चौथा ब्रह्मचर्य महाव्रत है सो मनुष्य, देव, अचित्त और तिर्यंच इन चार प्रकारकी स्त्रियोंका प्रथम ही स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों और तदनन्तर पूर्वोक्त नौ कोटियोंसे त्याग करना चाहिए। इस अभिप्रायको लेकर ५ × ४ = २० × ९ = १८० एक सौ अस्सी उपवास होते हैं और इतनी ही पारणाएँ होती हैं ।।१०३।। पाँचवाँ परिग्रह त्याग महाव्रत है। सो चार कषाय, नौ नोकषाय और एक मिथ्यात्व इन चौदह प्रकारके अन्तरंग और दोपाये, (दासी-दास आदि) चौपाये, (हाथी-घोड़ा आदि) खेत, अनाज, वस्त्र, बर्तन, सुवर्णादि धन, यान (सवारी), शयन और आसन—इन दस प्रकारके बाह्य, दोनों मिलाकर चौबीस प्रकारके परिग्रहका नौ कोटियोंसे त्याग करना चाहिए। इस अभिप्रायको लेकर परिग्रहत्याग महाव्रतमें दो सौ सोलह उपवास होते हैं और उतनी ही पारणाएँ होती हैं ।।१०४–१०५।। छठा रात्रिभोजन त्याग महाव्रत यद्यपि तेरह प्रकारके चारित्रोंमें परिगणित नहीं है तथापि गृहस्थके सम्बन्धसे मुनियोंपर भी असर आ सकता है अर्थात् गृहस्थ द्वारा रात्रिमें बनायी हुई वस्तुको मुनि जान-बूझकर ग्रहण करे तो उन्हें रात्रिभोजनका दोष लग सकता है। इस प्रकारके रात्रिभोजनका नौ कोटियोंसे त्याग करना चाहिए तथा अनिच्छा—दूसरेकी जबर्दस्तीसे भी रात्रिमें भोजन नहीं करना चाहिए। इस भावनाको लेकर रात्रिभोजन त्याग व्रत-में दश उपवास होते हैं और दश ही पारणाएँ होती हैं। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीन गुप्तियों तथा ईर्या, आदान, निक्षेपण और प्रतिष्ठापन समिति इन तीन समितियोंमें प्रत्येकके नौ कोटियोंकी अपेक्षा नौ-नौ उपवास होते हैं अर्थात् तीन गुप्तियोंके सत्ताईस उपवास और सत्ताईस पारणाएँ हैं तथा उपरिकथित तीन समितियोंके भी सत्ताईस उपवास और सत्ताईस पारणाएँ जाननी चाहिए ।।१०६।।

भाषा समितिमें १ भाव सत्य, २ उपमा सत्य, ३ व्यवहार सत्य, ४ प्रतीत सत्य, ५ सम्भावना सत्य, ६ जनपद सत्य, ७ संवृत्ति सत्य, ८ नाम सत्य, ९ स्थापना सत्य और १० रूप सत्य इन दश प्रकार सत्य वचनोंका नौ कोटियोंसे पालन करना पड़ता है। इस अभिप्रायको लेकर भाषासमितिमें नब्बे उपवास होते हैं तथा इतनी ही पारणाएँ होती हैं ॥१०७॥

और एषणा समितिमें नौ कोटियोंसे लगनेवाले छियालीस दोषोंको नष्ट करनेके लिए चार सौ चौदह उपवास होते हैं तथा उतनी ही पारणाएँ होती हैं ॥१०८॥ इस प्रकार तेरह प्रकारके चारित्रको शुद्ध रखनेके लिए चारित्र शुद्धि व्रतमें सब मिलाकर एक हजार दो सौ चौंतीस उपवास कहे हैं तथा इतनी ही पारणाएँ कही गयी हैं। इस व्रतमें छह वर्ष दश माह आठ दिन लगते हैं ॥१०९॥

एककल्याण विधि—पहले दिन नीरस आहार लेना; दूसरे दिन, दिनके पिछले भागमें अर्ध आहार लेना, तीसरे दिन एकस्थान—इक्काट्ठाना करना अर्थात् भोजनके लिए बैठनेपर एक बार जो भोजन सामने आवे उसे ही ग्रहण करना, चौथे दिन उपवास करना और पांचवें दिन आचाम्ल—इमलीके साथ केवल भात ग्रहण करना, यह एककल्याणककी विधि है ॥११०॥

पंचकल्याण विधि—जो विधि एककल्याण व्रतमें कही गयी है उसे समता, वन्दना आदि आवश्यक कार्य करते हुए पांच बार करना सो पंचकल्याणक विधि है। यह पंचकल्याणक विधि चौबीस तीर्थंकरोंको लक्ष्य करके करना चाहिए ॥१११॥

शील कल्याणक विधि—चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रतमें जो एक सौ अस्सी उपवास बतलाये हैं उनमें उपवास कर लेनेपर शील कल्याणक विधि-व्रत पूर्ण होता है। एक उपवास एक पारणा, दूसरा उपवास दूसरी पारणा, इस क्रमसे करनेपर इस व्रतमें ३६० दिन लगते हैं।

भावनाविधि—अहिंसादि महाव्रतोंमें प्रत्येक व्रतकी पांच-पाँच भावनाएँ हैं। एकत्रित करनेपर पांच व्रतोंकी पचीस भावनाएँ होती हैं। उन्हें लक्ष्य कर पचीस उपवास करना तथा एक-एक उपवासके बाद एक-एक पारणा करना, यह भावना विधि नामका व्रत है। यह पचास दिनमें पूर्ण होता है ॥११२॥

पंचविंशति कल्याण भावना विधि—पचीस कल्याण भावनाएँ हैं, उन्हें लक्ष्य कर पचीस उपवास करना तथा उपवासके बाद पारणा करना यह पंचविंशति कल्याण भावना व्रत विद्वानोंके द्वारा कहा गया है ॥११३॥ १. सम्यक्त्व भावना, २. विनय भावना, ३. ज्ञान भावना, ४. शील भावना, ५. सत्य भावना, ६. श्रुत भावना, ७. समिति भावना, ८. एकान्त भावना, ९. गुप्तिभावना, १०. ध्यानभावना, ११. शुक्ल ध्यान भावना, १२. संक्लेश निरोध भावना, १३. इच्छा निरोध भावना, १४. संवर भावना, १५. प्रशस्तयोग, १६. संवेग भावना, १७. करुणा भावना, १८. उद्वेग भावना, १९ भोगनिर्वेद भावना, २०. संसारनिर्वेद भावना, २१. भुक्तिवैराग्य भावना, २२. मोक्षभावना, २३. मैत्री भावना, २४. उपेक्षा भावना और २५. प्रमोद भावना, ये पचीस कल्याण भावनाएँ हैं ॥११४–११६॥

दुःखहरण विधि—दुःखहरण विधिमें सर्वप्रथम विद्वानोंको सात भूमियोंकी जघन्य और उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षा चौदह उपवास करना चाहिए ॥११७॥ तदनन्तर तिर्यंचगतिके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंकी द्विविध आयुकी अपेक्षा चार उपवास करना चाहिए। उसके बाद मनुष्यगतिके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंकी द्विविध आयुकी अपेक्षा चार उपवास करना चाहिए। फिर देवगतिमें ऐशान स्वर्ग तकके दो, उसके आगे अच्युत स्वर्ग तकके बाईस, फिर नौ ग्रैवेयकोंके अठारह, नौ अनुदिशोंके दो और पंचानुत्तर विमानोंके दो इस प्रकार सब मिलाकर अड़सठ उपवास करना चाहिए। इस व्रतमें दो उपवासके बाद एक पारणा होती है। इस तरह अड़सठ उपवास और चौंतीस पारणा दोनोंको मिलाकर यह विधि एक सौ दो दिनमें पूर्ण होती है। इस विधिके

करनेसे सब दुःख दूर हो जाते हैं ॥११८-१२०॥

कर्मक्षय विधि—कर्मक्षय विधिमें नाम कर्मकी तेरानबे प्रकृतियोंको आदि लेकर समस्त कर्मोंकी जो एक सौ अड़तालीस उत्तर प्रकृतियां हैं उन्हें लक्ष्य कर एक सौ अड़तालीस उपवास करना चाहिए। इसमें एक उपवासके बाद एक पारणा होती है। इस प्रकार उपवास और पारणा दोनोंको मिलाकर दो सौ छियानबे दिनमें यह व्रत पूर्ण होता है। इस व्रतके प्रभावसे कर्मोंका क्षय होता है ॥१२१॥

जिनेन्द्रगुणसंपत्ति विधि—जिसमें पांच कल्याणकोंके पांच, चौंतीस अतिशयोंके चौंतीस, आठ प्रातिहार्योंके आठ और सोलह कारण भावनाओंके सोलह इस प्रकार त्रेशठ उपवास किये जावें तथा एक-एक उपवासके बाद एक-एक पारणा की जावे उसे जिनेन्द्र गुण सम्पत्ति व्रत कहते हैं। यह व्रत एक सौ छब्बीस दिनमें पूर्ण होता है। इस व्रतके प्रभावसे जिनेन्द्र भगवान्‌के गुणोंकी प्राप्ति होती है अर्थात् इसका आचरण करनेवाला तीर्थंकर होता है ॥१२२॥

दिव्यलक्षण पंक्ति विधि—बत्तीस व्यंजन, चौंसठ कला और एक सौ आठ लक्षण इस प्रकार दो सौ चार लक्षणोंकी अपेक्षा जिसमें दो सौ चार उपवास किये जावें उसे दिव्यलक्षण विधि कहते हैं। इसमें एक उपवासके बाद एक पारणा होती है अतः दोनोंके मिलाकर चार सौ आठ दिनमें यह व्रत पूर्ण होता है। इस व्रतके प्रभावसे यह जीव अत्यन्त महान् होता है तथा उसके अत्यन्त श्रेष्ठ दिव्य लक्षणोंकी पंक्ति प्रकट होती है ॥१२३॥

[1]**धर्मचक्र विधि**—धर्मचक्रमें हजार अराएँ होती हैं। उनमें प्रत्येक अराकी अपेक्षा एक उपवास लिया गया है, इसलिए इस व्रतमें हजार उपवास हैं तथा स्थान भी हजार हैं इसलिए पारणा भी हजार समझनी चाहिए। इस तरह उपवास और पारणा इसमें कुल दो हजार हैं। एक उपवास एक पारणा, पुनः एक उपवास एक पारणा इसी क्रमसे इस व्रतका आचरण करना चाहिए। इस व्रतके आदि और अन्तमें एक-एक वेला करना आवश्यक है। यह व्रत दो हजार चार दिनमें समाप्त होता है और इससे धर्मचक्रकी प्राप्ति होती है।

[2]**परस्पर कल्याण विधि**—पांच कल्याणकोंके पांच उपवास, आठ प्रातिहार्योंके आठ और चौंतीस अतिशयोंके चौंतीस इस प्रकार ये सैंतालीस उपवास हैं। इन सैंतालीसको चौबीस बार गिननेपर जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो इस विधिमें उपवास समझना चाहिए और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिए। सैंतालीसको चौबीस बार गिननेसे ग्यारह सौ अट्ठाईस होते हैं, इसलिए इतने तो उपवास समझना चाहिए और स्थान भी ग्यारह सौ अट्ठाईस हैं इसलिए इतनी ही पारणा जाननी चाहिए। इस प्रकार इस व्रतमें कुल उपवास और पारणा दो हजार दो सौ छप्पन हैं। इसके आचरण करनेकी विधि एक उपवास एक पारणा, पुनः एक उपवास एक पारणा इस प्रकार है। यह व्रत दो हजार दो सौ छप्पन दिनमें समाप्त होता है। इसके प्रारम्भमें एक वेला और अन्तमें एक तेला करना पड़ता है। यह व्रत आचरण करनेवालेका कल्याण करनेवाला है ॥१२४॥ इस प्रकरणमें ऊपर जितनी विधियोंका वर्णन किया गया है उन सबमें सामान्य रूपसे यह दिखा देना आवश्यक है कि जहां उपवासके लिए चतुर्थक शब्द आया है वहां एक उपवास, जहां षष्ठ शब्द आया है वहां दो उपवास और जहाँ अष्टम शब्द आया है वहां तीन उपवास समझना चाहिए। इसी प्रकार दशमको आदि लेकर छह मासपर्यन्तके उपवासोंकी संज्ञा जाननी चाहिए ॥१२५॥ प्रतिपदासे लेकर पञ्चदशी तककी तिथियोंमें उपवास करना चाहिए। ये उपवास अनेक भेदोंको लिये हुए हैं और जैन मार्गमें इन्हें सब प्रकारके सुखोंसे सम्पन्न करनेवाला कहा है ॥१२६॥ प्रतिवर्ष भादों सुदी सप्तमीके दिन उपवास करना चाहिए। यह परिनिर्वाण नामक विधि है तथा अनन्त सुखरूपी फलको देनेवाली है ॥१२७॥ भादों सुदी एकादशीके दिन उपवास करनेसे प्राति-

हार्य **प्रसिद्धि नामकी** विधि होती है तथा यह पल्यों प्रमाणकाल तक सुखरूपी फलको फलती है। हर **एक मासकी** कृष्ण **पक्षकी** एकादशियोंके दिन किये हुए छियासी उपवास अनन्त सुखको उत्पन्न करते हैं ॥१२८॥ मार्गशीर्ष सुदी तृतीयाके दिन उपवास करना अनन्त मोक्ष फलको देनेवाला है तथा इसी मासकी चतुर्थीके दिन वेला करनेसे विमान पंक्ति वैराज्य नामकी विधि होती है और उसके फलस्वरूप विमानोंकी पंक्तिका राज्य प्राप्त होता है ॥१२९॥ इन ऊपर कही हुई विधियोंमें मनुष्योंको यथाशक्ति विधियाँ करनी चाहिए क्योंकि वे साक्षात् और परम्परासे स्वर्ग और मोक्ष सम्बन्धी सुखके कारण हैं १३०॥ इस प्रकार कही हुई विधियोंके कर्ता सुप्रतिष्ठ मुनिराजने उस समय निर्मल सोलह कारण भावनाओंके द्वारा तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध किया ॥१३१॥

जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कथित समीचीन मोक्षमार्गमें निःशंकता आदि आठ गुणोंसे सहित जो श्रद्धा है उसे दर्शनविशुद्धि कहते हैं। यह तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रथम कारण है ॥१३२॥ ज्ञानादि गुणों और उनके धारकोंमें कषायको दूर कर जो महान् आदर करना है वह तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धमें कारणभूत विनयसम्पन्नता नामकी दूसरी भावना है ॥१३३॥ शीलव्रतोंकी रक्षामें मन, वचन और कायकी जो निर्दोष प्रवृत्ति है उसे मार्गमें उद्युक्त पुरुषोंको शुद्ध शीलव्रतेष्वनतीचार नामकी भावना जाननी चाहिए ॥१३४॥ अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलसे युक्त तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष भेदोंसे सहित ज्ञानमें निरन्तर उपयोग रखना सो अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना है ॥१३५॥ जन्म, जरा, मरण तथा रोग आदि शारीरिक और मानसिक दुःखोंके भारसे युक्त संसारसे भयभीत होना सो विषयरूपी तृषाको छेदनेवाली संवेग भावना है ॥१३६॥ जिस दिन आहार ग्रहण किया जाता है उस दिन एवं पर्याय सम्बन्धी दुःखको दूर करनेवाला आहारदान, अभयदान और संसारके दुःखको हरनेवाला ज्ञान महादान शक्तिके अनुसार देना सो त्याग नामकी भावना है ॥१३७॥ शक्तिको नहीं छिपानेवाले एवं विनाशीक, अपवित्र और मृतकके समान शरीरको कार्यमें लगानेवाले पुरुषका मोक्षमार्गके अनुरूप जो उद्यम है वह तप नामकी भावना है ॥१३८॥ भण्डारमें लगी हुई अग्निको उपशान्त करनेके समान आगत विघ्नोंको नष्ट कर साधुजनोंके तपकी रक्षा करना सो साधुसमाधि नामकी भावना है ॥१३९॥ गुणवान् साधुजनोंके क्षुधा, तृषा, व्याधि आदिसे उत्पन्न दुःखको प्रासुक द्रव्योंके द्वारा दूर करनेका प्रत्यक्ष करना सो वैयावृत्य भावना है ॥१४०॥ अर्हन्तमें जो अनुराग है, आचार्यमें जो अनुराग है, बहुश्रुत—अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता उपाध्याय परमेष्ठीमें जो अनुराग है और प्रवचनमें जो विनय है वह क्रमसे अर्हद् भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति और प्रवचन भक्ति नामक चार भावनाएँ हैं ॥१४१॥ सामायिक आदि छह आवश्यक क्रियाओंकी नियत समयमें प्रवृत्ति करना सो आवश्यकापरिहाणि नामक भावना है ॥१४२॥ समस्त सावद्य योगोंका त्याग कर चित्तको एक पदार्थमें स्थिर करना सो सामायिक है। चौबीस तीर्थंकरोंके गुणोंका कथन करना सो स्तुति है ॥१४३॥ जिन प्रवृत्तियोंमें दो आसन, निर्दोष बारह आवर्त और चार शिरोनतियां की जाती हैं उन्हें विद्वज्जन वन्दनीय वन्दना कहते हैं ॥१४४॥ द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावके विषयमें किये हुए प्रमादका मन, वचन, कायकी शुद्धिसे निराकरण करना सो प्रतिक्रमण है ॥१४५॥ आगन्तुक—आगामी दोषोंका निराकरण करना प्रत्याख्यान कहलाता है। और निश्चित समय तक शरीरमें ममताका त्याग करना कायोत्सर्ग है ॥१४६॥ अन्य मतोंके खण्डन करनेमें समर्थ ज्ञान, तपश्चरण एवं जिनेन्द्र भगवान्‌की महामह-पूजाओंसे संसारमें मोक्षमार्गका प्रकाश करना मार्ग प्रभावना है ॥१४७॥ जिस प्रकार गायका अपने बछड़ेमें स्नेह होता है उसी प्रकार उत्सुकतासे युक्त बुद्धिवाले मनुष्यका सहधर्मी भाईमें जो स्नेह है उसे प्रवचनवात्सल्य कहते हैं क्योंकि सहधर्मीसे जो स्नेह है वह प्रवचनसे ही स्नेह है ॥१४८॥ सत्पुरुषोंके द्वारा निरन्तर चिन्तन की हुई उक्त सोलह भावनाएं, पृथक्-पृथक् अथवा समुदाय

रूपसे तीर्थंकर नामकर्मके बन्धको कारण हैं ॥१४९॥

इस प्रकार तीनों लोकोंके आसनोंको कम्पित करनेमें समर्थ तीर्थंकर प्रकृतिनामक महापुण्य प्रकृतिके बन्ध करनेवाल सुप्रतिष्ठ मुनिराजने, एक मासके आहारका त्याग कर दिया तथा विशुद्ध बुद्धिके धारक हो विद्वज्जनोंके द्वारा स्तुत चार प्रकारकी आराधनाओंकी अच्छी तरह आराधना की जिससे बाईस सागरकी स्थितिके धारक हो विशाल सुखसे युक्त जयन्त स्वर्ग (जयन्त नामक अनुत्तर विमान) में उत्पन्न हुए ॥१५०॥ अब जिन्होंने तीन सम्यग् ज्ञानरूपी नेत्रोंसे तीन लोकके पदार्थोंकी स्थितिको देख लिया है ऐसे सुप्रतिष्ठ मुनिराज, जयन्त विमानमें अहमिन्द्रोंके योग्य, संसारके सारभूत अनुपम सुखका उपभोग कर वहाँसे च्युत होंगे और राजा समुद्रविजयकी शिवा देवीसे हरिवंशरूपी पर्वतके तिलकस्वरूप नेमोश्वर नामके कल्याणकारी बाईसवें तीर्थंकर होंगे ॥१५१॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें महोपवास विधिका वर्णन करनेवाला चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३४॥

□

सर्ग- ३५

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार अतिमुक्तक मुनिराजसे भगवान् अरिष्टनेमिका चरित सुनकर वसुदेव बहुत प्रसन्न हुए और भावपूर्वक मुनिराजको नमस्कार कर स्त्री सहित अपने घर चले गये ॥१॥ जिन्हें भोग अत्यन्त इष्ट थे ऐसे दोनों दम्पति इच्छानुसार क्रीड़ामें आसक्त होते हुए मथुरापुरीमें पहलेके समान रहने लगे और मृत्युकी शंकासे शंकित कंस इनकी निरन्तर सेवा-शुश्रूषा करने लगा ॥ २ ॥ तदनन्तर देवकीने कंसके भयका कारण युगल सन्तानरूप गर्भ धारण किया सो ठीक ही है क्योंकि शत्रुओंमें परस्परके मिल जानेसे जो सहाय भाव उत्पन्न होता है, वह शत्रुके लिए महाभयकी प्राप्तिका कारण हो जाता है ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् प्रसूति कालके आनेपर जब देवकीके युगल पुत्र उत्पन्न हुए तब इन्द्रकी आज्ञासे सुनैगम नामका देव उन उत्तम युगल पुत्रोंको उठाकर सुभद्रिल नगरके सेठ सुदृष्टिकी स्त्री अलका (पूर्वभवकी रेवती धायका जीव) के यहां पहुँचा आया। उसी समय अलकाके भी युगालिया पुत्र हुए थे परन्तु भाग्यवश वे उत्पन्न होते ही मर गये थे। नैगम देव उन दोनों मृत पुत्रोंको उठाकर देवकीके प्रसूति गृहमें रख आया और उसके बाद अपने स्वर्ग लोकको चला गया ॥४-५॥ शंकासे युक्त कंसने बहनके प्रसूतिका गृहमें प्रवेश कर उन दोनों मृतक पुत्रोंको देखा और भीलके समान रौद्र-परिणामी हो पैर पकड़कर उन्हें शिलातलपर पछाड़ दिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर देवकीने क्रम-क्रमसे दो युगल और उत्पन्न किये सो देवने उन्हें भी पुत्रोंकी इच्छा रखनेवाली अलका सेठानीके पास भेज दिया। इधर पापी कंसने भी उन निष्प्राण पुत्रोंको पहलेके समान ही शिलापर पछाड़ दिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर अपना पुण्य हो जिनकी रक्षा कर रहा था, जो अलका सेठानीके लिए अत्यन्त प्रिय थे, जिनके नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु ये नाम पहले कहे जा चुके थे, जिनका सुखपूर्वक लालन-पालन हो रहा था, तथा जो अत्यन्त रूपवान् थे ऐसे वसुदेवके छहों पुत्र धीरे-धीरे वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥ ८ ॥ तदनन्तर उन पुत्रोंके वृद्धिगत होनेपर सुदृष्टि सेठको नाना प्रकारकी अपूर्व-अपूर्व वस्तुओंका लाभ होने लगा और उसके वैभवकी वृद्धिने उस समय अन्य राजाओंके वैभवको भी अतिक्रान्त कर दिया ॥ ९ ॥ इधर पतिके कहनेसे जिसने सन्तान-वियोगजन्य दुःखको दूर कर दिया था ऐसी देवकी भी धीरे-धीरे प्रतिपदकी चन्द्रकलाके समान दिनोंदिन पहलेकी ही कान्तिको प्राप्त हो गयी ॥ १० ॥

तदनन्तर एक दिन देवकी, चन्द्रमाके समान सफेद भवनमें प्रातःकालके समान सुन्दर शय्यापर शयन कर रही थी कि उसने रात्रिके अन्तिम प्रहरमें अभ्युदयको सूचित करनेवाले निम्न-लिखित सात यथार्थ स्वप्नमें देखे ॥११॥ पहले स्वप्नमें उसने अन्धकारको नष्ट करनेवाला उगता हुआ सूर्य देखा। दूसरे स्वप्नमें उसीके साथ अत्यन्त सुन्दर पूर्ण चन्द्रमा देखा। तीसरे स्वप्नमें दिग्गज जिसका अभिषेक कर रहे थे ऐसी लक्ष्मी देखी। चौथे स्वप्नमें आकाश तलसे नीचे उतरता हुआ विमान देखा। पाँचवें स्वप्नमें बड़ी-बड़ी ज्वालाओंसे युक्त अग्नि देखी। छठे स्वप्नमें ऊँचे आकाशमें रत्नोंकी किरणोंसे युक्त देवोंकी ध्वजा देखी और सातवें स्वप्नमें अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ एक सिंह देखा। इन स्वप्नोंको देखकर सौम्यवदना देवकी भयसे कांपती हुई

जाग उठी ॥१२-१३॥ अपूर्व एवं उत्तम स्वप्न देखनेसे जिसे विस्मय उत्पन्न हो रहा था, जिसके शरीरमें रोमांच निकल आये थे, और जिसने प्रातःकालके समय शरीरपर मंगलमय अलंकार धारण कर रखे थे ऐसी देवकीने जाकर पतिसे सब स्वप्न कहे और विद्वान् पति—राजा वसुदेवने इस प्रकार उनका फल कहा ॥१४॥

"हे प्रिये ! तुम्हारे शीघ्र ही एक ऐसा पुत्र होगा जो समस्त पृथिवीका स्वामी होगा। तुमने पहले स्वप्नमें सूर्यको देखा है इससे सूचित होता है कि वह अपने प्रतापसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाला होगा। दूसरे स्वप्नमें पूर्ण चन्द्रमा देखा है उसके फलस्वरूप वह सबको प्रिय होगा। तीसरे स्वप्नमें दिग्गजों द्वारा लक्ष्मीका महाभिषेक देखा है इससे जान पड़ता है कि वह अत्यन्त सौभाग्यशाली एवं राज्याभिषेकसे युक्त होगा। चौथे स्वप्नमें आकाशसे नीचे आता हुआ विमान देखा है उससे प्रकट होता है कि वह स्वर्गसे अवतीर्ण होगा। पाँचवें स्वप्नमें देदीप्यमान अग्नि देखी है इसके फलस्वरूप वह अत्यन्त कान्तिसे युक्त होगा। छठे स्वप्नमें रत्नोंकी किरणोंसे युक्त देवोंकी ध्वजा देखी है इसके फलस्वरूप वह स्थिर प्रकृतिका होगा और सातवें स्वप्नमें मुखमें प्रवेश करता हुआ सिंह देखा है इससे जान पड़ता है कि वह निर्भय होगा ॥१५॥

इस प्रकार पतिके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर 'तथास्तु'—ऐसा ही होगा—कहती हुई वह अत्यधिक प्रीतिको प्राप्त हुई। तदनन्तर जिस प्रकार आकाश, सन्तापकी शान्तिके लिए जगत् हितकारी मेघको धारण करता है उसी प्रकार उसने शीघ्र ही जगत्का हित करनेवाला गर्भ धारण किया ॥१६॥ जिसके शारीरिक और मानसिक सुखकी वृद्धि हो रही थी ऐसी देवकीका वह गर्भ ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था त्यों-त्यों पृथिवीपर समस्त मनुष्योंका सौमनस्य बढ़ता जाता था ॥१७॥ परन्तु कंसका क्षोभ उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। फलस्वरूप जिसकी आत्मा अत्यन्त नीच थी, जो गर्भस्थ बालकके गुणोंकी अपेक्षा नहीं रखता था और जो अलक्ष्यरूपसे गर्भके महीनों तथा दिनोंकी गिनती लगाता रहता था ऐसा कंस, प्रसवकी प्रतीक्षा करता हुआ बहनके गर्भकी रक्षा कर रहा था अर्थात् उसपर पूर्ण देख-रेख रखता था ॥१८॥ सब बालक नौ मासमें ही उत्पन्न होते हैं परन्तु कृष्ण श्रवण नक्षत्रमें भाद्रमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको पवित्र करते हुए सातवें ही मासमें अलक्षित रूपसे उत्पन्न हो गये ॥१९॥ जिनका शरीर शंख-चक्र आदि उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त था, जिनके शरीरसे देदीप्यमान महानीलमणिके समान प्रकाश प्रकट हो रहा था और जो प्रकृष्ट कान्तिसे सहित थे ऐसे कृष्णने अपनी कान्तिसे देवकीके प्रसूतिका गृहको प्रकाशमान कर दिया था ॥२०॥ उस समय उस पुरुषोत्तमके प्रभावसे स्नेही बन्धुजनोंके घरोंमें अपने आप अच्छे-अच्छे निमित्त प्रकट हुए और शत्रुओंके घरोंमें भय उत्पन्न करनेवाले निमित्त प्रकट हुए ॥२१॥ उन दिनों सात दिनसे बराबर घनघोर वर्षा हो रही थी फिर भी उत्पन्न होते ही बालक कृष्णको बलदेवने उठा लिया और पिता वसुदेवने उनपर छत्ता तान दिया एवं रात्रिके समय ही दोनों शीघ्र ही घरसे बाहर निकल पड़े ॥२२॥ उस समय समस्त नगरवासी सो रहे थे तथा कंसके सुभट भी गहरी नींदमें निमग्न थे इसलिए कोई भी उन्हें देख नहीं सका। गोपुर द्वारपर आये तो किवाड़ बन्द थे परन्तु श्रीकृष्णके चरणयुगलका स्पर्श होते ही उनमें निकलने योग्य सन्धि हो गयी जिससे सब बाहर निकल आये ॥२३॥

उस समय पानीकी एक बूँद बालककी नाकमें घुस गयी जिससे उसे छींक आ गयी। उस छींकका शब्द बिजली और वायुके शब्दके समान अत्यन्त गम्भीर था। उसी समय ऊपरसे आवाज आयी कि 'तू निर्विघ्न रूपसे चिरकाल तक जीवित रह।' गोपुर द्वारके ऊपर कंसके पिता राजा उग्रसेन रहते थे। उक्त आशीर्वाद उन्हींने दिया था। उनके इस प्रिय आशीर्वादको सुनकर बलदेव तथा वसुदेव बहुत प्रसन्न हुए और उग्रसेनसे कहने लगे कि हे पूज्य ! रहस्यकी रक्षा की जाये।

इस देवकीके पुत्रसे तुम्हारा छुटकारा होगा ॥२४-२५॥ इसके उत्तरमें उग्रसेनने स्वीकृत किया कि 'यह हमारे भाईकी पुत्रीका पुत्र शत्रुसे अज्ञात रहकर वृद्धिको प्राप्त हो।' उस समय उग्रसेनके उक्त वचनकी प्रशंसा कर दोनों शीघ्र ही नगरीसे बाहर निकल गये ॥२६॥ उस समय, जिसके सींग देदीप्यमान थे ऐसा एक बैल आगे-आगे मार्ग दिखाता हुआ बड़े वेगसे जा रहा था। यमुना-का अखण्ड प्रवाह बह रहा था परन्तु श्रीकृष्णके प्रभावसे उसका महाप्रवाह शीघ्र ही खण्डित हो गया ॥२७॥ तदनन्तर नदीको पार कर वे वृन्दावनकी ओर गये। वहाँ गाँवके बाहर खिरकामें अपनी यशोदा स्त्रीके साथ सुनन्द नामका गोप रहता था। वह वंश-परम्परासे चला आया इनका बड़ा विश्वासपात्र व्यक्ति था। बलदेव और वसुदेवने रात्रिमें ही उसे देखा और दोनोंको पुत्र सौंपकर कहा कि देखो भाई ! यह पुत्र विशाल नेत्रोंका धारक है तथा नेत्रोंके लिए कान्तिरूपी महाअमृतको वरसानेवाला है। इसे अपना पुत्र समझकर बढ़ाओ और यह रहस्य किसीको प्रकट न हो सके इस बातका ध्यान रखो ॥२८-२९॥ तदनन्तर उसी समय उत्पन्न हुई यशोदाकी पुत्री-को लेकर दोनों शीघ्र ही वापस आ गये और शत्रुको विश्वास दिलानेके लिए उसे रानी देवकीके लिए देकर गुप्त रूपसे स्थित हो गये ॥३०॥

तदनन्तर बहनकी प्रसूतिका समाचार पाकर निर्दय कंस प्रसूतिका-गृहमें घुस गया। वहाँ निर्दोष कन्याको देखकर यद्यपि इसका क्रोध दूर हो गया था तथापि दीर्घदर्शी होनेके कारण उसने विचार किया कि कदाचित् इसका पति मेरा शत्रु हो सकता है। इस शंकासे आकुलित होकर उसने उस कन्याको स्वयं उठा लिया और हाथसे मसलकर उसकी नाक चपटी कर दी ॥३१-३२॥ इस प्रकार देवकीके मनको सन्ताप करनेवाले कंसने जब देखा कि अब इसके पुत्र होना बन्द हो गया है तब वह सन्तुष्ट हो हृदयकी क्रूरताको छिपाता हुआ कुछ दिनों तक सुखसे निवास करता रहा ॥३३॥ तदनन्तर जिसका जातसंस्कार कर कृष्ण नाम रखा गया था ऐसा व्रजवासी बालक नन्द और यशोदाकी अभूतपूर्व प्रीतिको बढ़ाता हुआ सुखसे बढ़ने लगा ॥३४॥ जब वह बालक चित्त पड़ा हुआ गदा, खड्ग, चक्र, अंकुश, शंख तथा पद्म आदि चिह्नोंकी प्रशस्त रेखाओंसे चिह्नित लाल-लाल हाथ-पैर चलाता था तब गोप और गोपियोंके मनको बरबस खींच लेता था ॥३५॥ नील कमल-जैसी सुन्दर शोभाको धारण करनेवाले उस मनोहर बालकको, पूर्ण स्तनोंको धारण करनेवाली गोपिकाएँ स्तन देनेके बहाने अतृप्त नेत्रोंसे टकटकी लगाकर देखती रहती थीं ॥३६॥

इधर किसी दिन कंसके हितैषी वरुण नामक निमित्तज्ञानीने उससे कहा कि राजन् ! यहाँ कहीं नगर अथवा वनमें तुम्हारा शत्रु बढ़ रहा है उसकी खोज करनी चाहिए ॥३७॥ तदनन्तर शत्रुके नाशकी भावनासे कंसने तीन दिनका उपवास किया सो पूर्व भवमें इसने जिन देवियोंको यह कहकर वापस कर दिया था कि अभी कुछ काम नहीं है अगले भवमें आवश्यकता पड़े तो सहायता करना। वे देवियाँ पूर्व स्वीकृत कार्यको सिद्ध करनेके लिए आकर कंससे कहने लगीं कि ये हम सब तुम्हारे पूर्व भवके तपसे सिद्ध हुई देवियाँ हैं। आपका जो कार्य हो वह कहिए, बलभद्र और नारायणको छोड़कर कंसका कौन-सा शत्रु क्षण-भरमें नष्ट करने योग्य है सो बताओ ॥३८-३९॥ कंसने कहा कि हमारा कोई वैरी कहीं गुप्त रूपसे बढ़ रहा है सो तुम लोग दयासे निरपेक्ष हो शीघ्र ही पता लगाकर उसे मृत्युके मुखमें करो— उसे मार डालो ॥४०॥ इस प्रकार कंसके द्वारा कथित बातको स्वीकृत कर वे देवियाँ चली गयीं। उनमेंसे एक देवी शीघ्र ही उग्र— भयंकर पक्षीका रूप दिखाकर आयी और चोंच द्वारा प्रहार कर बालक कृष्णको मारनेका प्रयत्न करने लगी परन्तु कृष्णने उसकी चोंच पकड़कर इतनी जोरसे दबायी कि वह भयभीत हो प्रचण्ड शब्द करती हुई भाग गई ॥४१॥ दूसरी देवी प्रपूतन भूतका रूप रखकर कुपूतना बन गयी और अपने विष सहित

स्तन उन्हें पिलाने लगी। परन्तु देवताओंसे अधिष्ठित होनेके कारण श्रीकृष्णका मुख अत्यन्त कठोर हो गया था इसलिए उन्होंने स्तनका अग्रभाग इतने जोरसे चूसा कि वह बेचारी चिल्लाने लगी ॥४२॥ बालक कृष्ण कभी तो सोता था, कभी बैठता था, कभी छातीके बल सरकता था, कभी लड़खड़ाते पैर उठाता हुआ चलता था, कभी दौड़ा-दौड़ा फिरता था, कभी मधुर आलाप करता था और कभी मक्खन खाता हुआ दिन-रात व्यतीत करता था ॥४३॥ तीसरी पिशाची शकटका रूप रखकर उनके सामने आयी परन्तु कृष्ण बालक होनेपर भी अत्यन्त निर्भय थे, अंजनगिरिके समान शोभायमान थे और अत्यधिक अभ्युदयको धारण करनेवाले कोई अनिर्वचनीय पुरुष थे इसलिए उन्होंने जोरकी लात मारकर ही उसे नष्ट कर दिया ॥४४॥ किसी दिन उपद्रवकी अधिकताके कारण यशोदाने कृष्णका पैर रस्सीसे मसकर कखलीमें बाँध दिया था उसी दिन शत्रुकी दो देवियाँ जमल और अर्जुन वृक्षका रूप रखकर उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगीं परन्तु कृष्णने उस दशामें भी दोनों देवियोंको गिरा दिया—मार भगाया ॥४५॥ शुभ बाल्यकालके प्रारम्भमें ही सुनन्दगोप और यशोदाने जिसकी अद्भुत शक्ति देखी थी तथा आश्चर्यसे चकित हो जिसकी प्रशंसा की थी ऐसा वह दर्शनीय—मनोहर बालक वनके मध्यमें बढ़ने लगा ॥४६॥ एक दिन छठीं देवी बैलका रूप बनाकर आयी। वह बैल बड़ा अहंकारी था, गोपालोंकी समस्त बस्तीमें जहाँ-तहाँ दिखाई देता था, जोरदार शब्द करता था और सबको डुबोते हुए महासागरके समान जान पड़ता था परन्तु सुन्दर कण्ठके धारक कृष्णने उसकी गरदन मोड़कर उसे नष्ट कर दिया—दूर भगा दिया ॥४७॥ सातवीं देवीने पाषाणमयी तीव्र वर्षासे कृष्णको मारना चाहा परन्तु वे उस वर्षासे रंचमात्र भी व्याकुल नहीं हुए प्रत्युत उन्होंने घबड़ाये हुए गोकुलकी रक्षा करनेके लिए पृथिवीका भार धारण करनेसे विशाल अपनी दोनों भुजाओंसे गोवर्धन पर्वतको बहुत ऊँचा उठा लिया और उसके नीचे सबकी रक्षा की ॥४८॥

जब कृष्णकी इस लोकोत्तर चेष्टाका पता कानों-कान बलदेवको चला तब उन्होंने माता देवकीके सामने इसका वर्णन किया। उसे सुन वह किये हुए उपवासके बहाने पुत्रको देखनेके लिए व्रज—गोकुलकी ओर गयी॥४९॥ वहाँ पर्वतकी शाखापर स्थित, सुन्दर कण्ठके धारक गोपालकोंके मुख गीतसे झंकृत एवं घण्टाओंके जोरदार शब्दोंसे सहित गोधनसे युक्त वनखण्डमें बैठकर यह परम सन्तोषको प्राप्त हुई ॥५०॥ कहीं तो वह वन, कृष्णके रंगके समान स्निग्ध एवं उत्तम कृष्ण वर्णवाली गायोंके समूहसे व्याप्त था और कहीं बलभद्रके समान सफेद वर्णवाली गायोंके समूहसे युक्त था। उसे देख माता देवकी बहुत ही प्रसन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि पुत्रकी समानता प्राप्त करनेवाली वस्तु भी हर्षके लिए होती है ॥५१॥ जो घास और पानीसे सन्तुष्ट थीं, जिनके थनोंसे बछड़े लगे हुए थे, गोपाल लोग जिन्हें दुह रहे थे तथा घड़ोंके समान जिनके बड़े-बड़े स्तन थे ऐसी गोशालाओंमें खड़ीं एक-से बढ़कर एक सुन्दर गायोंको देखकर माता देवकीके रोमांच निकल आये और वह मुखसे सुशोभित होने लगी ॥५२॥ उस समय वहाँ बछड़ोंके साथ गायोंके रँभानेकी ध्वनि फैल रही थी तथा गोपियों द्वारा दही मथे जानेका जोरदार शब्द प्रसरित हो रहा था। उन सबसे देवकीका मन अत्यधिक हरा गया सो ठीक ही है क्योंकि गम्भीर शब्द क्या नहीं हरते हैं ? ॥५३॥ तदनन्तर जो मन ही मन अत्यधिक हर्षित हो रहा था, ऐसे नन्द गोपने यशोदाके साथ आकर, यशसे विशुद्ध, अनेक लोगोंके समूहसे सहित, गौरवशालिनी स्वामिनी देवकीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥५४॥ तत्पश्चात् जो पीले रंगके दो वस्त्र पहने हुए था, वनके मध्यमें मयूर-पिच्छकी कलँगी लगाये हुए था, अखण्ड नील कमलकी माला जिसके शिरपर पड़ी हुई थी, जिसका शंखके समान सुन्दर कण्ठ उत्तम कण्ठीसे विभूषित था, सुवर्णके कर्णाभरणोंसे जिसकी आभा अत्यन्त उज्ज्वल हो रही थी, जिसके ललाटपर दुपहरियाके फूल लटक रहे थे, जिसके

शिरपर ऊँचा मुकुट बँधा हुआ था, जिसकी कलाइयोंमें सुवर्णके देदीप्यमान कड़े सुशोभित थे, जिसके साथ अनेक सुन्दर गोपाल बालक थे एवं जो यश और दयासे सहित था ऐसे पुत्रको लाकर यशोदाने देवकीके चरणोंमें प्रणाम कराया। उत्तम गोपके वेषको धारण करनेवाला वह पुत्र प्रणाम कर पासमें ही बैठ गया। माता देवकी उसका स्पर्श करती हुई चिरकाल तक उसे देखती रही ॥५५-५७॥ देवकीने यशोदासे कहा कि हे यशस्विनि यशोदे ! तू ऐसे पुत्रका निरन्तर दर्शन करती है अतः तेरा वनमें भी रहना प्रशंसनीय है। यदि पृथिवीका राज्य भी मिल जाये पर सन्तान न हो तो वह राज्य अच्छा नहीं लगता ॥५८॥ इसके उत्तरमें गोपी यशोदाने कहा कि हे स्वामिनि ! आपने जैसा कहा है यह वैसा ही सत्य है। मेरे मनके सन्तोषको अत्यधिक रूपसे पुष्ट करनेवाला यह सदाका दास आपके प्रिय अशीर्वादसे चिरंजीव रहे यही प्रार्थना है ॥५९॥

इसी बीचमें पुत्रको देखनेसे देवकी रानीके दोनों स्तन अत्यधिक दूधसे परिपूर्ण हो गये। वह उन झरते हुए स्तनोंको रोकनेमें समर्थ नहीं हो सकी सो ठीक ही है क्योंकि चित्तमें भेद पड़ जानेपर किसी बातका छिपाना नहीं हो सकता ॥६०॥ उस समय स्तनोंसे झरते हुए दूधके बहाने रानी, 'हे पुत्र ! शत्रुके भयसे मैंने तुझे वियुक्त किया है दुष्ट बुद्धिसे नहीं' अपने अन्तरंगकी इस विशुद्धिको दिखाती हुईके समान सुशोभित हो रही थी ॥६१॥ 'कहीं रहस्य न खुल जाये' इससे भयभीत हो बुद्धिमान् बलदेवने उसी समय स्वयं ही दूधके घड़ेसे प्रेमपूर्ण माताका अभिषेक कर दिया—उसके ऊपर दूधसे भरा घड़ा उड़ेल दिया सो ठीक ही है क्योंकि कुशल मनुष्य अवसरके अनुसार कार्य करनेमें कभी नहीं चूकते ॥६२॥ तदनन्तर कृष्णके देखनेसे जिसे सुख प्राप्त हुआ था और जिसके दुग्धाभिषेकका कार्य समाप्त हो चुका था ऐसी साध्वी माता देवकीको लाकर बलदेवने मथुरापुरीमें प्रविष्ट कराया और इसके बाद उन्होंने यह समाचार अपने पिता वसुदेवके लिए भी सुनाया ॥६३॥

कृष्ण अत्यन्त चतुर थे अतः बलदेवने प्रतिदिन जा-जाकर उन्हें शीघ्र ही कलाओं और गुणोंकी शिक्षा दी थी सो ठीक ही है क्योंकि स्थिर रूपसे उपदेश ग्रहण करनेवाले विनयी शिष्यके मिलने पर गुरुओंके उपदेश व्यर्थ ही समय नहीं नष्ट करते अर्थात् शीघ्र ही उसे निपुण बना देते हैं ॥६४॥ कुमारके समान अत्यन्त निर्विकार अथवा अत्यन्त कोमल हृदयको धारण करनेवाले वह कुमार कृष्ण, क्रीड़ाओंके समय अतिशय यौवनके उन्मादसे भरी एवं प्रस्फुटित स्तनोंवाली गोपकन्याओंको उत्तम रासों द्वारा क्रीड़ा कराते थे ॥६५॥ वे रासक्रीड़ाओंके समय गोपबालाओंके लिए अपने हाथकी अंगुलियोंके स्पर्शसे होनेवाला सुख उत्पन्न कराते थे परन्तु स्वयं अत्यन्त निर्विकार रहते थे। जिस प्रकार उत्तम अँगूठीमें जड़ा हुआ श्रेष्ठ मणि स्त्रीके हाथकी अँगुलिका स्पर्श करता हुआ भी निर्विकार रहता है उसी प्रकार महानुभाव कृष्ण भी गोपबालाओंकी हस्तांगुलिका स्पर्श करते हुए भी निर्विकार रहते थे ॥६६॥ क्रीड़ाके समय कुमार कृष्णसे मिलनेपर वृद्धिको सूचित करनेवाला मनुष्योंका अत्यधिक अनुराग जिस प्रकार हृदयमें वृद्धिको प्राप्त होता था उसी प्रकार उनके विरहकालमें विरहसे पीड़ित मनुष्योंका विरहानुराग भी वृद्धिको प्राप्त होता था। भावार्थ—खेलके समय कृष्णको पाकर जिस प्रकार लोगोंको प्रसन्नता होती थी उसी प्रकार उनके अभावमें लोगोंको विरहजन्य सन्ताप भी होता था ॥६७॥

कृष्णकी लोकोत्तर चेष्टाएँ सुन एक दिन कंसको इनके प्रति सन्देह हो गया और वह वैरी जान इन्हें खोजनेके लिए गोकुल आया। कृष्ण अपने सखाओंके साथ उसके समीप आ रहे थे—परन्तु माताने कोई उपाय रच उन्हें आत्मीय जनोंके द्वारा नगरके बाहर व्रजको भेज दिया ॥६८॥ व्रजमें एक ताडवी नामकी पिशाची आयी जो जोर-जोरसे अट्टहास कर रही थी, जिसके नेत्र और मुख दोनों ही अत्यन्त रूक्ष थे, जिसका शरीर अत्यन्त बढ़ा हुआ था और जिसकी शरीरयष्टि

अत्यन्त विकृत थी कृष्णने उसे देखते ही मार भगाया ॥६९॥ व्रजमें एक शाल्मली वृक्षकी लकड़ीका मण्डप तैयार हो रहा था वहाँ उसके ऐसे बड़े-बड़े खम्भोंका समूह पड़ा था जिसे दूसरे लोग उठा नहीं सकते थे परन्तु कृष्णने उन्हें अकेले ही उठाकर ऊपर चढ़ा दिया। यह जान माताने निःशंक हो उन्हें व्रजसे वापस लौटा लिया ॥७०॥ दुष्ट एवं सुखार्थी कंसको जब कृष्ण गोकुलमें नहीं मिले तब वह मथुरा लौट आया। उसी समय उसके यहाँ सिंहवाहिनी नागशय्या, अजितंजय नामका धनुष और पांचजन्य नामका शंख ये तीन अद्भुत पदार्थ प्रकट हुए। कंसके ज्योतिषीने बताया कि 'जो कोई नागशय्यापर चढ़कर धनुषपर डोरी चढ़ा दे और पांचजन्य शंखको फूँक दे वही तुम्हारा शत्रु है', अतः ज्योतिषीके कहे अनुसार कार्य करनेवाले कंसने अपने शत्रुकी तलाश करनेके लिए आत्मीय जनोंके द्वारा नगरमें यह घोषणा करा दी कि 'जो कोई यहाँ आकर सिंहवाहिनी नागशय्यापर चढ़ेगा, अजितंजय धनुषको डोरीसे सहित करेगा और पांचजन्य शंखको मुखसे पूर्ण करेगा—फूँकेगा वह पुरुषोंमें उत्तम तथा सबके पराक्रमको पराजित करनेवाला समझा जावेगा। पुरुषोंके अन्तरको जाननेवाला कंस उसपर बहुत प्रसन्न होगा, अपने आपको उसका मित्र समझेगा तथा उसके लिए अलभ्य इष्ट वस्तु देगा' ॥७१–७३॥

कंसकी यह घोषणा सुन अनेक राजा मथुरा आये और नागशय्यापर चढ़ने आदिकी क्रियाओंमें प्रवृत्ति करने लगे परन्तु सब भयभीत हो लज्जित होते हुए चले गये ॥७४॥ एक दिन कंसकी स्त्री जीवद्यशाका भाई भानु, किसी कार्यवश गोकुल गया। वहाँ कृष्णका अद्भुत पराक्रम देख वह बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें अपने साथ मथुरापुरी ले आया ॥७५॥

यहाँ, जिसके समीपका प्रदेश अत्यन्त सुसज्जित था, जिसका पृष्ठ भाग चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था एवं जिसके ऊपर भयंकर सर्पोंके फण लहलहा रहे थे ऐसी महानाग शय्यापर कृष्ण स्वाभाविक शय्याके समान शीघ्र चढ़ गये ॥७६॥ तदनन्तर उन्होंने साँपोंके द्वारा उगले हुए धूमको बिखेरनेवाले धनुषको प्रत्यंचासे युक्त किया और शब्दोंसे समस्त दिशाओंको भरनेवाले शंखको खेद रहित—अनायास ही पूर्ण कर दिया ॥७७॥ उस समय कृष्णके प्रकट होते हुए लोकोत्तर माहात्म्यको देखकर समस्त लोगोंने घोषणा की कि अहो, क्षुभित समुद्रके समान शब्द करनेवाला यह कोई महान् पुरुष है ॥७८॥ कृष्णका यह पराक्रम देख बड़े भाई बलदेवको दुष्ट कंससे आशंका हो गयी इसलिए उन्होंने महान् आज्ञाकारी कृष्णको, साथ-साथ जानेवाले गुणोंके तीव्र अनुरागी आत्मीय जनोंके साथ व्रजको भेजा। **भावार्थ—**बलदेवने कंससे शंकित हो कृष्णको अकेला नहीं जाने दिया किन्तु 'यह बहुत गुणी है, इसलिए सब लोग इसे भेजने जाओ' यह कहकर अपने पक्षके बहुत-से लोगोंको उनके साथ कर दिया ॥७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो पूर्व जन्ममें प्राप्त हुए जैन धर्मसे उत्कृष्टताको प्राप्त हुआ है उस मनुष्यका मदोन्मत्त शत्रु क्या कर सकता है? भले ही वह गर्भाधानसे पूर्व और जन्मके पहले ही हृदयमें वैरभाव बाँधकर बैठा हो ॥८०॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कृष्णकी बालक्रीड़ाओंका वर्णन करनेवाला पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३५॥

□

सर्ग- ३६

अथानन्तर गूँजते हुए भ्रमररूपी प्रत्यंचासे युक्त बाणासन जातिके वृक्षरूपी धनुषसे सुशोभित, कबूतररूपी शंख और कलहंसरूपी शय्यासे सहित तथा शत्रुरूपी मयूरोंके मद और पंखोंको नष्ट करनेवाली शरद् ऋतु आयी सो ऐसी जान पड़ती थी मानो कृष्णकी नवीन लक्ष्मीकी लीलासे ही सहित हो। **भावार्थ**—जिस प्रकार कृष्णने उज्ज्वल नागशय्यापर आरूढ़ हो शंख बजाया था और धनुष धारण किया था उसी प्रकार वह शरद् ऋतु भी कलहंसरूपी नागशय्या-पर आरूढ़ हो कबूतररूपी शंखको बजा रही थी तथा बाणासन वृक्षरूपी धनुषको धारण कर रही थी ॥१॥ उस समय आकाशमें मेघोंका समूह नष्ट हो गया था तथा चन्द्रमाका प्रकाश फैलने लगा था इसलिए वह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था। इसी प्रकार पृथिवीकी विपुल कीचड़ नष्ट हो गयी थी तथा उसपर काशके फूल-फूल उठे थे इसलिए वह ऐसी जान पड़ती थी मानो कुछ दिन बाद जो अतिशय बलवान् कंसका घात होनेवाला है उससे प्रकट होनेवाले कृष्णके अट्टहास-को ही पहलेसे धारण करने लगी हो ॥२॥ उस समय स्वच्छ नदियोंमें विशाल पुलिनोंकी टक्कर-से फेन निकल रहा था, स्वाभाविक जलसे भरे सरोवरोंमें सफेद-सफेद कमल फूल रहे थे और पर्वतोंके अपने वनोंमें सफेद-सफेद फूल खिल उठे थे उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उन सबके बहाने श्रीकृष्णके शुक्ल यशको ही शीघ्र धारण कर रहे हों ॥३॥ फलरूपी स्तनोंके भारी भारसे आक्रान्त, सर्वत्र व्याप्त धानकी सातिशय कान्तिरूपी चोलीसे सुशोभित और हर्षातिरेकसे सब ओर विकसित—नये-नये अंकुरोंको धारण करनेवाली उपजाऊ भूमिरूपी रमणी उस समय नये राजा श्रीकृष्णके कण्ठालिगनके लिए उत्सुकके समान जान पड़ती थी ॥४॥ उस शरद् ऋतुमें सन्ततिके भाररूप विभूतिसे प्राप्त होनेवाली व्यग्रतासे व्यग्र एवं गर्भधारणके योग्य समय पाकर हर्षित होने-वाली गायों और बैलोंके जोरदार शब्द श्रीकृष्णके हृदय सम्बन्धी सन्तोषको मानो इसलिए ही बरबस पुष्ट कर रहे थे कि वे उनके शत्रुओंके नष्ट होनेकी घोषणा कर रहे थे ॥५॥

यद्यपि कंस, श्रीकृष्णकी चेष्टाको जान चुका था तथापि उनके नष्ट करनेके उपायोंमें बुद्धि लगानेवाले उस दुष्टने फिर भी उस समय कमल लानेके लिए समस्त गोपोंके समूहको यमुनाके

अथानन्तर गूँजते हुए भ्रमररूपी प्रत्यंचासे युक्त बाणासन जातिके वृक्षरूपी धनुषसे सुशोभित, कबूतररूपी शंख और कलहंसरूपी शय्यासे सहित तथा शत्रुरूपी मयूरोंके मद और पंखोंको नष्ट करनेवाली शरद् ऋतु आयी सो ऐसी जान पड़ती थी मानो कृष्णकी नवीन लक्ष्मीकी लीलासे ही सहित हो। **भावार्थ**—जिस प्रकार कृष्णने उज्ज्वल नागशय्यापर आरूढ़ हो शंख बजाया था और धनुष धारण किया था उसी प्रकार वह शरद् ऋतु भी कलहंसरूपी नागशय्या-पर आरूढ़ हो कबूतररूपी शंखको बजा रही थी तथा बाणासन वृक्षरूपी धनुषको धारण कर रही थी ॥१॥ उस समय आकाशमें मेघोंका समूह नष्ट हो गया था तथा चन्द्रमाका प्रकाश फैलने लगा था इसलिए वह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था। इसी प्रकार पृथिवीकी विपुल कीचड़ नष्ट हो गयी थी तथा उसपर काशके फूल-फूल उठे थे इसलिए वह ऐसी जान पड़ती थी मानो कुछ दिन बाद जो अतिशय बलवान् कंसका घात होनेवाला है उससे प्रकट होनेवाले कृष्णके अट्टहास-

को ही पहलेसे धारण करने लगी हो ॥२॥ उस समय स्वच्छ नदियोंमें विशाल पुलिनोंकी टक्कर-से फेन निकल रहा था, स्वाभाविक जलसे भरे सरोवरोंमें सफेद-सफेद कमल फूल रहे थे और पर्वतोंके अपने वनोंमें सफेद-सफेद फूल खिल उठे थे उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उन सबके बहाने श्रीकृष्णके शुक्ल यशको ही शीघ्र धारण कर रहे हों ॥३॥ फलरूपी स्तनोंके भारी भारसे आक्रान्त, सर्वत्र व्याप्त धानकी सातिशय कान्तिरूपी चोलीसे सुशोभित और हर्षातिरेकसे सब ओर विकसित—नये-नये अंकुरोंको धारण करनेवाली उपजाऊ भूमिरूपी रमणी उस समय नये राजा श्रीकृष्णके कण्ठालिंगनके लिए उत्सुकके समान जान पड़ती थी ॥४॥ उस शरद् ऋतुमें सन्ततिके भाररूप विभूतिसे प्राप्त होनेवाली व्यग्रतासे व्यग्र एवं गर्भधारणके योग्य समय पाकर हर्षित होने-वाली गायों और बैलोंके जोरदार शब्द श्रीकृष्णके हृदय सम्बन्धी सन्तोषको मानो इसलिए ही बरबस पुष्ट कर रहे थे कि वे उनके शत्रुओंके नष्ट होनेकी घोषणा कर रहे थे ॥५॥

यद्यपि कंस, श्रीकृष्णकी चेष्टाको जान चुका था तथापि उनके नष्ट करनेके उपायोंमें बुद्धि लगानेवाले उस दुष्टने फिर भी उस समय कमल लानेके लिए समस्त गोपोंके समूहको यमुनाके मदोन्मत्त हाथियोंसे युक्त अपनी सेनाओंके द्वारा पृथिवीतलको भूषित करते और अकस्मात् आग-मनसे दुष्ट कंसके अहंकारपूर्ण हृदयको विदीर्ण करते हुए शीघ्र ही मथुराकी ओर चल पड़े ॥१३॥

यदुवंशी राजाओंको विशाल मथुरा नगरीकी ओर आया देख यद्यपि कंस शंकासे युक्त हो गया था तथापि जब उसे यह बताया गया कि ये चिरकालसे वियुक्त छोटे भाई—वसुदेवको देखनेके लिए आये हैं तब उसने निःशंक हो सामने जाकर उनका स्वागत किया, उन्हें अच्छी तरह नम-स्कार किया और छोटे भाइयोंसे सहित उन समस्त भाइयोंका नगरमे प्रवेश कराया ॥१४॥ विशाल मथुरा नगरीके घरोंकी शोभा देखनेसे जिनके नेत्र सन्तुष्ट हो गये थे तथा नगरीके अधिपति—कंसने जिन्हें उत्तमोत्तम भवन प्रदान किये थे, ऐसे वे सब यदुवंशी राजा मथुरा नगरीमें रहने लगे। कंस दान, मान तथा नमस्कारके द्वारा प्रतिदिन उनकी सेवा करता था। यद्यपि वे बाह्यमें ऐसी चेष्टा दिखाते थे जैसे प्रेम ही धारण कर रहे हों तथापि अन्तरंगमें अत्यधिक दाह रखते थे ॥१५॥

तदनन्तर जिन्होंने समस्त कार्यका अच्छी तरह निश्चय कर लिया था, जिनके अवयव वृषभके समान सफेद थे, जो अत्यन्त विज्ञ थे, जिनकी बुद्धि अत्यन्त निपुण थी और जो कृष्णके हृदयमें युद्धकी अभिलाषा उत्पन्न करना चाहते थे ऐसे धीर-वीर बलभद्रने गोकुल जाकर कृष्णके सामने ही यशोदासे कहा कि जल्दी स्नान कर ॥१६॥ क्यों इस तरह देर कर रही है, तू अपने शरीरकी सम्भालमें ही भूली हुई है, एक बार नहीं अनेक बार कहा फिर भी अपनी आदत नहीं छोड़ती। ठीक ही है उज्ज्वल एवं शुभ शुक्तियोंके द्वारा उत्तम मुक्तामणियोंको उत्पन्न करनेवाली समुद्रकी वेला अपनी चंचलता नहीं छोड़ती है। चिरकाल तक साथ-साथ रहनेपर भी बलभद्रने यशोदासे ऐसे कटुक वचन पहले कभी नहीं कहे थे इसलिए वह बहुत ही चकित तथा भयभीत हो गयी। यद्यपि उसने कहा कुछ नहीं फिर भी उसके नेत्रोंसे आंसू निकल आये। वह चुपचाप शीघ्र ही स्नान कर भोजन बनानेके लिए प्रकृत-अवसरानुकूल यत्न करने लगी। इधर कृष्ण और बल-भद्र दोनों स्नान करनेके लिए नदी चले गये ॥१७-१८॥

एकान्तमें पहुँचनेपर बलभद्रने कृष्णसे कहा कि आज तुम्हारा यह मुख लम्बी-लम्बी साँसों तथा अश्रुओंसे युक्त क्यों है? तुषारसे कुम्हलाये हुए कमलके समान कान्तिसे रहित तुम्हारा यह मुख किसी भारी मानसिक सन्तापको प्रकट कर रहा है सो उसका कारण कहो ॥१९॥ इस प्रकार प्रेमसहित पूछे हुए कृष्णने, प्रसन्न मुख कमलसे युक्त बलभद्रकी ओर देखकर यह वचन कहे कि हे आर्य! मेरे वचन सुनिए। मेरे मुखपर प्रकट हुए विकारसे मेरा मानसिक दुःख प्रकट हो रहा

है, यह ठीक है। आप शास्त्रज्ञानसे श्रेष्ठ विद्वान् हैं, लोककी रीतिको जानते हैं और हे पूज्य! आप नगरवासी लोगोंको श्रेष्ठ उपदेश देते हैं फिर यह तो बताइए कि आज आपको हमारी पूज्य माता यशोदाका अत्यन्त कठोर वचनोंसे तिरस्कार करना क्या उचित था? ।।२०।। इस प्रकारके वचनों द्वारा शोक प्रकट करते हुए कृष्णका बलभद्रने दोनों भुजाओंसे गाढ़ आलिंगन कर लिया। हर्षसे उनका शरीर रोमांचित हो गया। तदनन्तर अविरल अश्रुधारासे हृदयकी स्वच्छ वृत्तिको सूचित करते हुए उन्होंने कृष्णके लिए सब वृत्तान्त कह सुनाया ।।२१।। उन्होंने सबसे पहले तीव्र अहंकारकी वशीभूत जरासन्धकी पुत्री कंसकी स्त्री जीवद्यशाके लिए अतिमुक्तक मुनिने जो अवन्ध्य—सत्य वचन कहे थे वे सुनाये। तदनन्तर क्षुभितहृदय कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए छह पुत्रोंको अपनी जानमें मार डाला यह क्रोधवर्धक समाचार सुनाया। फिर, तुम प्रसवके समय-से पहले ही उत्पन्न हुए थे और उत्पन्न होते ही तुम्हें हम गोकुलमें छिपाकर यशोदाके यहाँ रख गये थे यह कहा। तदनन्तर बाल्यकालसे ही लेकर शत्रुने मारनेके जो नाना साधन जुटाये उनका निरूपण किया। अन्तमें यह बताया कि इस समय कंस भयंकर मल्लयुद्धका निश्चय कर तुम्हारे मारनेमें चित्त लगा रहा है ।।२२–२४।। इस प्रकार ज्योंही कृष्णने बड़े भाई बलभद्रसे समस्त हरिवंश, पिता, गुरु, बन्धु तथा भाइयोंका हाल जाना त्योंही वे आनन्दसे अत्यधिक मुख-कमलकी शोभाको धारण करने लगे—हर्षातिरेकसे उनके मुख-कमलकी लक्ष्मी खिल उठी। और वे बड़े भाई-रूपी पर्वतसे प्राप्त अत्यधिक रक्षासे युक्त हो सिंहके समान सुशोभित होने लगे ।।२५।।

तदनन्तर जन्मजात हितबुद्धिसे उत्पन्न स्नेहसे जिनके अन्तःकरण परस्पर मिल रहे थे, जो महामच्छोंकी लीला धारण कर रहे थे एवं जलक्रीड़ामें जो अत्यन्त चतुर थे ऐसे दोनों भाइयोंने यमुना नदीमें स्नान किया। तत्पश्चात् गोप समूहसे सेवनीय दोनों भाई उन्हीं गोपोंके साथ-साथ अपने घर आ गये ।।२६।। घरपर दोनों साथ-साथ मणिजटित भूमिमें गये और वहाँ उन्होंने साथ-ही-साथ, जिसके सीथ अत्यन्त कोमल और उज्ज्वल थे ऐसा शालिधानका भात, शुभ सुगन्धित एवं तत्काल तपाये हुए घीसे स्वादिष्ट दाल, शाक, दूध और दहीके साथ जीमा। जीमनेके बाद अत्यन्त कोमल और सुगन्धित चन्दनादि द्रव्योंके चूर्णसे कुल्ला किया, हाथोंमें उन्होंका उद्वर्तन किया, अपने कर-किसलयमें लेकर गाढ़ा-गाढ़ा सुन्दर लेप लगाया, कटी हुई हरी सुपारी तथा इलायची आदिसे युक्त पान खाया। पानकी लालीसे उनके मुखकी स्वाभाविक लाली और भी अधिक बढ़ गयी जिससे उनके अधर तथा ओठ अत्यन्त सुन्दर दिखने लगे ।।२७–२८।। तदनन्तर जो नाना आसनोंके लगानेमें चतुर थे, मल्लविद्याके निर्दोष ज्ञाता थे, नीलाम्बर और पीताम्बर धारण कर जिन्होंने चलनेके योग्य सुन्दर वेष धारण किया था, लम्बे-चौड़े वक्षस्थलपर उत्तम सिन्दूरकी रज लगाकर जिन्होंने नूतन वनमाला और मालतीका सेहरा धारण किया था, और जो अपने दृढ़ मनमें वैरी कंसके मारनेका निश्चय कर चंचल चरणोंके आघातसे पृथिवीको कम्पित कर रहे थे ऐसे दोनों भाई, अतिशय भयानक मल्लोंके वेगसे युक्त एवं अपने-अपने वर्गके लोगोंसे सहित गोपोंके साथ शीघ्र ही मथुराको ओर चले ।।२९–३०।। मार्गमें कंसके भक्त एक असुरने नागका रूप बनाया, दूसरेने कटु शब्द करनेवाले गधाका और तीसरेने दुष्ट घोड़ेका रूप बनाया तथा नगर-प्रवेशमें विघ्न डालते हुए सबके-सब मुँह फाड़कर सामने आये परन्तु कृष्णने उन सबको मार भगाया ।।३१।।

नगरमें प्रवेश करते हुए दोनों भाई जब द्वारपर पहुँचे तो शत्रुकी आज्ञासे उनपर एक साथ चम्पक और पादाभर नामक दो हाथी हूल दिये गये। उन हाथियोंके भूरे रंगके गण्डस्थल, निरन्तर झरती हुई मदकी रेखाओंसे सुशोभित थे। उन हाथियोंको सामने आते जानकर दोनों भाई ऐसे सन्तुष्ट हुए जैसे युद्धकी रंगभूमिमें आगत प्रथम मल्लोंको देखकर ही सन्तुष्ट हो रहे

हों ॥३२॥ उनमें-से बलभद्र तो बड़ी सुन्दरताके साथ चम्पक हाथीके सामने अड़ गये और कृष्ण पादाभर हाथीके सामने जा डटे। तदनन्तर नर मल्ल और हस्तिमल्लोंकी जोड़ियोंमें ऐसा मल्ल-युद्ध हुआ जो देखनेवाले मनुष्योंके लिए बिलकुल नया तथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला था ॥३३॥ यद्यपि हाथियोंने अपने दांत टेढ़ी सूँड़ोंसे छिपा रखे थे तथापि उन दोनोंने उन्हें पैरोंके मजबूत प्रहार और बहुत भारी चपेटसे उखाड़ लिया था। उस समय वे हाथियोंके दांत ऐसे जान पड़ते थे मानो अत्यधिक बाहुबलकी लीलासे जिसका अग्रभाग उखाड़ा जा रहा था ऐसे किसी पर्वतके साँपोंसे घिरे हुए बड़े बांसोंके अंकुरोंका समूह ही हो ॥३४॥

तदनन्तर निर्दयतापूर्वक जड़से उखाड़े हुए अपने सुशोभित दांतोंके परिघातसे जो भयंकर वज्रपातके समान जोरदार—विरस शब्द कर रहे थे ऐसे उन दोनों हाथियोंको मारकर दोनों भाई नगरमें प्रविष्ट हुए। उस समय वह मथुरा नगर जोरसे जय-जयकार करनेवाले गोपोंसे व्याप्त होनेके कारण बहुत बड़ा जान पड़ता था (?) ॥३५॥

तदनन्तर कमलकी कलिकाओंसे जिसके तोरण-द्वारकी शोभा बढ़ रही थी एवं जिसके भीतर घेरकर बैठे हुए राजाओं तथा नगरवासियोंसे सुशोभित, कुश्तीके लिए गोलाकार स्थान बनाये गये थे ऐसी बहुत बड़ी रंगभूमिमें दोनों भाई, अपने कन्धोंसे बड़े-बड़े मल्लोंके उन्नत कन्धोंको धक्का देते हुए, हर्षपूर्वक प्रविष्ट हुए ॥३६॥ उस समय रंगभूमिमें अपने चरणों और भुजदण्डोंके संकोच तथा विस्तारसे जिनकी शोभा बढ़ रही थी, जो अभिनयके अनुरूप दृष्टिके दृढ़ निक्षेपसे अत्यन्त रमणीय थीं एवं हिलते हुए चंचल वस्त्रोंके छोरसे जो सुन्दर थीं ऐसी कृष्ण और बलभद्रकी क्रीड़ापूर्वक उछलना तथा ताल ठोकना आदि चेष्टाएँ अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं ॥३७॥ रंगभूमिमें पहुँचते ही बलभद्रने 'यह यहां शत्रु कंस बैठा है, ये जरासन्धके आदमी हैं और ये अपने-अपने पुत्रों सहित समुद्रविजय आदि दशों भाई विराजमान हैं' इस प्रकार इशारेसे कृष्णको समस्त मनुष्योंका परिचय करा दिया। वे समस्त लोग भी उसी गोलकी ओर देख रहे थे जो बलभद्र तथा कृष्णसे सहित था ॥३८॥

अथानन्तर जहां अनेक नगरवासी और राजा आदि श्रेष्ठ पुरुष देखनेके लिए एकत्रित थे तथा क्षोभको प्राप्त हुए समस्त मल्लोंकी उछल-कूद एवं तालके शब्दोंसे जो अत्यधिक मनोहर जान पड़ता था ऐसे अखाड़ेमें बारी-बारीसे कंसकी आज्ञा पाकर अन्य अनेक मल्ल जंगली भैंसाओंके समान अहंकारी हो मल्ल-युद्ध करने लगे ॥३९॥ जब साधारण मल्लोंका युद्ध हो चुका तब दुष्ट कंसने कृष्णसे लड़नेके लिए उस चाणूर मल्लको आज्ञा दी जो पर्वतकी विशाल दीवालके समान विस्तृत वक्षःस्थलसे युक्त था और जिसने अपने मजबूत भुजयन्त्रसे बड़े-बड़े अहंकारी मल्लोंको पेल डाला था। यही नहीं, पीछेसे मुष्टिक मल्लको भी उसने उनपर टूट पड़नेके लिए अपनी विषम-विषमयी दृष्टिसे इशारा कर दिया ॥४०॥

तदनन्तर समर्थ सिंहके समान आकार और खड़े होनेकी मुद्रा विशेषको प्रकट करनेवाले कृष्ण और चाणूर मल्ल, स्थिर चरण रख एवं तीक्ष्ण नखोंसे कठोर मुट्ठियां बांधकर अविराम रूपसे मुष्टि-युद्धमें जुट गये—परस्पर मुक्केबाजी करने लगे ॥४१॥ वज्रके समान कठोर मुट्ठिका धारक मुष्टिक मल्ल पीछेसे मुट्ठिका प्रहार करना ही चाहता था कि इतनेमें बलभद्र मल्लने शीघ्रतासे 'बस-बस ! ठहर-ठहर !' यह कहते हुए चवड़े और शिरमें जोरसे मुक्का लगाकर उसे प्राणरहित कर दिया ॥४२॥ इधर सिंहके समान शक्तिके धारक एवं मनोहर हुंकारसे युक्त श्रीकृष्णने भी चाणूर मल्लको जो उनसे शरीरमें दूना था अपने वक्षःस्थलसे लगाकर भुजयन्त्रके द्वारा इतने जोरसे दबाया कि उससे अत्यधिक रुधिरकी धारा बहने लगी और वह निष्प्राण हो गया ॥४३॥ कृष्ण और बलभद्रमें एक हजार सिंह और हाथियोंका बल था। इस प्रकार अखाड़ेमें

जब उन्होंने हठपूर्वक कंसके दोनों प्रधान मल्लोंको मार डाला तो उन्हें देख, कंस हाथमें पैनी तलवार लेकर उनकी ओर चला। उसके चलते ही समस्त अखाड़ेका जनसमूह समुद्रकी नाईं जोरदार शब्द करता हुआ उठ खड़ा हुआ ॥४४॥ कृष्णने सामने आते हुए शत्रुके हाथसे तलवार छीन ली और मजबूतीसे उसके बाल पकड़ उसे क्रोधवश पृथिवीपर पटक दिया। तदनन्तर उसके कठोर पैरोंको खींचकर 'उसके योग्य यही दण्ड है' यह विचार उसे पत्थरपर पछाड़कर मार डाला। कंसको मारकर कृष्ण हँसने लगे ॥४५॥

कंसकी सेना क्षुभित हो सामने आयी तो उसे देख रामकी भौंहें कुटिल हो गयीं। उन्होंने उसी समय क्रोधवश मंचका एक खम्भा उखाड़ लिया और गर्वसे सब ओर दिये हुए उसके वज्रतुल्य कठोर आघातोंसे चिल्लाती हुई उस सेनाको क्षणभरमें खदेड़ दिया ॥४६॥ कंसके कार्यमें नियुक्त जरासन्धकी स्वच्छन्द एवं मदोन्मत्त सेना यद्यपि क्षुभित हुई थी तथापि ज्योंही विषम दृष्टिके धारक शक्तिशाली यादव लोग चंचल समुद्रके समान शब्द करनेवाली अपनी-अपनी सेनाओंके साथ एक ही समय उठ खड़े हुए त्योंही वह समस्त सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयो ॥४७॥

तदनन्तर मल्लके वेषसे युक्त दोनों भाई अनावृष्टिके साथ-साथ, चार घोड़ोंसे वाहित रथपर सवार हो अपने पिताके घर गये। पिताका वह घर समुद्रविजय आदि राजाओं तथा अन्य अनेक यदुवंशियोंके समूहसे भरा हुआ था ॥४८॥ वहाँ जाकर दोनों भाइयोंने क्रमसे समुद्रविजय आदि गुरुजनोंको नमस्कार कर उनकी पूजा की तथा गुरुजनोंने उन्हें आशीर्वाद दिया। इस प्रकार अपने संयोगरूप प्रथम जलकी धारासे युक्त दोनों भाइयोंने चिर कालके विरहसे उत्पन्न सबके मानसिक सन्तापको अस्त कर दिया ॥४९॥ कुबेरकी उपमा धारण करनेवाले वसुदेव और देवकी, शत्रुरूपी अग्निको शान्त करनेवाले पुत्रके मुखको निःशंक रूपसे देखकर अनुपम सुखको प्राप्त हुए। इसी प्रकार कंसने जिसकी नाक चिपटी कर दी थी उस कन्याने भी भाईका मुख देख अनुपम सुखका अनुभव किया सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें पुत्र-पुत्रियोंका समागम सुखके लिए होता ही है ॥५०॥ जिनकी बेड़ियोंका कलंक नष्ट हो गया था और जो कंसकी शंकासे विमुक्त हो चुके थे ऐसे राजा उग्रसेन उस समय यादवोंकी आज्ञासे कृष्णके द्वारा प्रदत्त, चिरकालीन विरहसे दुबली-पतली राज्यलक्ष्मीरूपी स्त्रीका मथुरामें पुनः उपभोग करने लगे॥ **भावार्थ**—कृष्णने राजा उग्रसेन-की बेड़ी काटकर उन्हें पुनः मथुराका राजा बना दिया और वे चिरकालके विरहसे कृश राज्य-लक्ष्मीका पुनः सेवन करने लगे ॥५१॥ उधर कुटुम्बी जन तथा अपनी स्त्रियोंके रुदन आदिसे सहित कंस जब अन्तिम शारीरिक संस्कारको प्राप्त हो चुका तथा यादवोंके ऊपर जिसका चित्त अत्यन्त कुपित हो रहा था एवं आसुओंसे जिसका गला रुँधा हुआ था ऐसी जीवद्यशा अपने पिता जरासन्ध-के पास पहुँची ॥५२॥

अथानन्तर किसी समय ऊपरकी ओर मुख कमल किये हुए मथुरा निवासी समस्त लोगोंने आकाशमें विद्याधरोंके राजा सुकेतुका दूत देखा। वह दूत हर्षसे लहराते हुए आकाशरूपी समुद्रमें बड़े वेगसे आ रहा था, मच्छको उत्कट लीलाको धारण कर रहा था, और देदीप्यमान मणियोंके आभूषणोंसे युक्त था ॥५३॥ उसका शरीर चन्दनसे आर्द्र था तथा वह महीन और श्वेत वस्त्र पहने था इसलिए मानसरोवरमें स्नान करनेवाले हंसके समान जान पड़ता था। वह शीघ्र ही प्रत्येक दिशाओंमें विचरण करनेवाले श्रेष्ठ राजाओं (पक्षमें राजहंस पक्षियों) से गंगा नदीके समान सुशोभित मथुरा नगरीकी गलीमें आया ॥५४॥ तदनन्तर द्वारपालने जिसे प्रवेश दिया था ऐसा वह दूत, यादवोंसे सुशोभित सभामें सावधानीसे प्रविष्ट हो नमस्कार कर बैठ गया। फिर कुछ देर बाद अवसरको जाननेवाले उस दूतने यादवोंके समक्ष, शत्रुओंको जीतनेवाले कृष्णसे

निम्नांकित वचन कहे ॥५५॥ उसने कहा कि हे राजाओंके द्वारा स्तुत ! आप मेरी प्रार्थना सुनिए—विजयार्ध पर्वतके ऊपर एक सुकेतु नामका राजा है जो नमि और विनमिकी कुललक्ष्मीकी मानो विजय-पताका है, नीतिमें अत्यन्त चतुर है और दक्षिण श्रेणीमें स्थित रथनूपुरचक्रवाल नामक नगरमें रहता है ॥५६॥ शंख फूकना, नागशय्यापर चढ़ना और धनुष चढ़ाना इन लक्षणों-से आपकी परीक्षा कर उसने शीघ्र ही प्रेमपूर्वक मुझे यहाँ आपके पास भेजा है तथा कहलाया है कि यद्यपि आप उत्तमोत्तम वस्तुओंको प्रदान करनेवाले लोगोंसे घिरे रहते हैं तथापि मेरी एक तुच्छ प्रार्थना है वह यह कि आप मेरी पुत्री सत्यभामाको स्वीकृत कर लें। आपका यह कार्य विद्याधर लोकके वैभवको बढ़ानेवाला एवं समस्त कल्याणोंका मूल होगा ॥५७॥ समस्त यादवोंके लिए रुचिकर दूतके वचन सुनकर प्रसन्नचित्त कृष्णने यह उत्तर दिया कि विद्याधरोंके राजा सुकेतुरूपी कुबेरके द्वारा रची सत्यभामा नामक रत्नोंकी धारा मुझ रत्नाचलपर शीघ्र ही पड़े। **भावार्थ**—मुझे सत्यभामाका वर होना स्वीकृत है अथवा कुछ पुस्तकोंमें धनपतिके स्थानपर नगपति पाठ है इसलिए इस श्लोकका यह अर्थ भी होता है कि विद्याधररूपी विजयार्ध पर्वतके द्वारा रची सत्य-भामारूपी जलकी धारा मुझ रत्नाचलपर शीघ्र ही पड़े ॥५८॥

तदनन्तर कृष्णकी ओरसे जिसका सत्कार किया गया था और जिसकी बुद्धि अत्यन्त प्रसन्न थी ऐसा राजा सुकेतुका वह दूत अपने स्थानपर चला गया। वहां जाकर उसने पहले कृष्णके उत्तम गुणोंकी स्तुति की, उसके पश्चात् सन्तुष्ट होकर, वल्लभाके साथ बैठे हुए सन्तोषी राजा सुकेतुके लिए सर्व कार्यके सिद्ध होनेकी सूचना दी ॥५९॥ 'पृथिवीपर श्रीकृष्ण और बलदेव दोनों अत्यन्त देदीप्यमान हैं तथा शत्रुओंके तेज, रूप और कान्तिको खण्डित करनेवाले हैं' इस प्रकार अपने दूतके मुखसे जानकर विद्याधरोंका राजा सुकेतु और उसका भाई रतिमाल अपनी-अपनी कन्याओंके साथ मथुरा आ पहुँचे ॥६०॥ रतिमालकी कन्याका नाम रेवती था और वह रूपमें साक्षात् रतिके समान जान पड़ती थी। रतिमालने अपनी वह सुन्दर कन्या बड़े भाई बलभद्रके लिए दी और अत्यन्त प्रसन्न सुकेतुने स्वयंप्रभा रानीके गर्भसे उत्पन्न अपनी सत्यभामा नामक पुत्री कृष्णके लिए दी ॥६१॥ इस विवाह-मंगलके अवसरपर जो स्तनरूपी कलश और नितम्बोंके बहुत भारी भारसे खिन्न थीं, जिनके वस्त्र, मेखला, केशपाश और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो रहे थे, जो नूपुरोंकी झनकारसे मनोहर जान पड़ती थीं और उज्ज्वल वेषको धारण करनेवाली थीं ऐसी भूमिगोचरी एवं विद्याधरोंकी स्त्रियोंने नृत्य किया था ॥६२॥ जो पहली-पहली नयी वधुओंसे सहित थे, नील और पीत वस्त्रके धारक थे, नाना प्रकारके मणिमय आभूषणोंकी कान्तिसे जिनके शरीर देदीप्यमान हो रहे थे तथा जो चारों ओर बैठे हुए यदुवंशी राजाओंसे घिरे हुए थे ऐसे अपने पुत्रोंको देखकर यादवोंकी स्त्रियोंसे युक्त रोहिणी तथा देवकी अत्यधिक सन्तुष्ट हो रही थीं ॥६३॥ प्रथम समागममें ही सत्यभामाने कृष्णके तथा अतिशय प्रिय रेवतीने बलभद्रके हृदयको हर लिया था। इसी प्रकार कृष्ण तथा बलभद्रने भी अभ्यस्त गुण और कलाओंके उत्तमोत्तम प्रयोगोंसे उन दोनोंका हृदय हर लिया था सो ठीक ही है क्योंकि चतुर मनुष्य उचित कार्यके करनेके समय कभी नहीं चूकते हैं ॥६४॥

तदनन्तर जिसका हृदय अत्यन्त कलुषित था, जो अत्यधिक व्याकुल थी और जिसके तमाल पुष्पके समान काले-काले केश बिखरे हुए थे ऐसी कंसकी स्त्री जीवद्यशा, राजा जरासन्धके पास जाकर यदुवंशियोंके द्वारा किये हुए दोषका बखान करती हुई रोने लगी तथा जिस प्रकार वेला समुद्रको क्षुभित कर देती है उसी प्रकार उसने राजा जरासन्धको क्षुभित कर दिया ॥६५॥ वह कह रही थी कि हे तात ! जब आप समस्त पृथिवीका शासन कर रहे हैं तब मैं पतिरहित हो वैधव्यके दुःखको कैसे प्राप्त हो गयी ? हे पिताजी ! अब तक मैंने जो यह वैधव्यका दुःख सहा

है वह गर्वसे फूले यादवोंके रक्तरूप पंकसे युक्त शिरोंसे वैरका बदला चुकानेके लिए ही सहा है ॥६६॥ इस प्रकार प्रायः विलापसे युक्त पुत्रीके वचन सुनकर राजा जरासन्धने कहा कि बेटी ! अत्यधिक शोक छोड़। इस संसारमें जो होता है वह होनहार दैवके योगसे ही होता है। दूसरोंकी शक्तिका तिरस्कार करनेवाला दैव ही इस संसारमें प्रधान है ॥६७॥ खेतमें घुसनेका इच्छुक पशु भी वधकी शंका कर सबसे पहले निकलनेके लिए निरुपद्रव मार्गका विचार कर लेता है परन्तु तेरे पतिको मारते हुए इन अत्यन्त मत्त यादवोंने इस स्पष्ट बातको भी भुला दिया इससे सिद्ध है कि ये मरना चाहते हैं ॥६८॥ हे वत्से ! ये भले अब तक तेरे चरणकी शरण प्राप्त कर निष्कण्टक रहे हों और भले ही ये बल तथा कुलकी शाखाओंसे युक्त हों परन्तु यह निश्चित है कि ये शीघ्र ही मेरे क्रोधसे बरसनेवाली दावानलकी ज्वालाओंसे भस्म होनेवाले हैं, इनका नाम भी नष्ट हो जानेवाला है और ये श्रवण मार्गको अतिक्रान्त कर चुके हैं—अब इनका नाम भी नहीं सुनाई देगा ॥६९॥

इस प्रकार प्रिय वचनरूपी जलके द्वारा पुत्रीकी क्रोधाग्निके समूहको शान्त कर क्षोभको प्राप्त हुए क्रोधानलसे युक्त राजा जरासन्धने यादवोंको मारनेके लिए यमराजके तुल्य अपने कालयवन नामक पुत्रको शीघ्र ही आदेश दिया ॥७०॥ कालयवन, चंचल समुद्रके समान दिखनेवाली हाथी, घोड़ा और रथ आदिसे युक्त सेनाके साथ शीघ्र ही शत्रुके सम्मुख चला और यादवोंके साथ सत्रह बार भयंकर युद्ध कर अतुलमालावर्त नामक पर्वतपर नष्ट हो गया–मर गया ॥७१॥ तदनन्तर राजा जरासन्धने शीघ्र ही अपने भाई अपराजितको भेजा जो कि शत्रुओंको जीतनेवाला था, प्राणोंके तुल्य था, अपने संयोगसे प्रलय कालकी अग्निकी शिखाओंके समूहको नष्ट करनेवाला था, अपनी सेनारूपी प्रबल पवनसे प्रेरित था, और शत्रुरूपी जगत्के ग्रसनेके लिए सतृष्ण था ॥७२॥ वीर अपराजितने सन्तुष्ट होकर शत्रुओंके बीच यादवोंके साथ तीन सौ छियालीस बार युद्ध किया परन्तु अन्तमें वह श्रीकृष्णके बाणोंके अग्रभागसे निष्प्राण हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। पृथिवीपर पड़ा यशस्वी अपराजित ऐसा जान पड़ता था मानो थकावटको दूर करनेवाली वीरशय्यापर ही शयन कर रहा हो ॥७३॥ अथानन्तर जो निरन्तर हर्षको धारण कर रहे थे, कृष्णपुरी मथुरामें निवास करते थे और कृष्ण तथा बलभद्रके अवार्य वीर्यके गर्वसे जिनकी शत्रुकी शंका नष्ट हो गयी थी ऐसे यादव लोग मथुरावासी नागरिक जनोंके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥७४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो समस्त जीवोंके लिए बन्धुके समान है, पृथिवीमण्डलके फलोंकी समृद्धिको बढ़ानेवाली है तथा लक्ष्मी और यशकी मालासे सहित है ऐसी यह जिनेन्द्र मतरूपी मेघके जलकी धारा शत्रुसमूहरूपी प्रचण्ड दावानलके गर्वको शान्त करती है और बन्धुजनोंके प्रकृष्ट बहुत भारी हर्षको उत्पन्न करती है ॥७५॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कंस और अपराजितके वधका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३६॥

सर्ग- ३७

अथानन्तर—गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! दशार्होंमें मुख्य सौर्यपुर निवासी राजा समुद्रविजयके यहां भगवान्के गर्भमें आनेके पहलेसे ही जो लोकको हर्षित करनेवाला परम पवित्र आश्चर्य हुआ था उसे मैं कहता हूँ सो सावधान होकर सुनो ॥१॥ भगवान् नेमि जिनेन्द्रके स्वर्गावतारसे छह माह पहलेसे लेकर जन्मपर्यन्त—पन्द्रह मास तक इन्द्रकी आज्ञासे राजा समुद्रविजयके घर देवोंने धनकी वर्षा जारी रखी ॥२॥ वह धनकी धारा प्रतिदिन, तीन बार साढ़े तीन करोड़की संख्याका परिमाण लिये हुए पड़ती थी और उसने सब ओर याचक जगत्को सन्तुष्ट कर दिया था सो ठीक ही है क्योंकि धनकी वर्षा करनेवालोंको पात्र भेद कहां होता है ?॥३॥ उस समय पूर्वादि दिशाओंके अग्रभागसे आयी हुई दिक्कुमारी देवियां परिचर्या द्वारा माता शिवादेवीकी सेवा कर रही थीं और उससे यह सूचित कर रही थीं कि जो विजयी जिन बालक माताके गर्भमें आनेवाला है उसने तीनों जगत्में समस्त दिशाओंके समूहको जीत लिया है ॥४॥ पतिके साथ मिलकर नाना प्रकारके अतिशय देखनेसे जिसकी बुद्धि अत्यन्त हर्षित हो रही थी ऐसी शिवादेवीने एक दिन रात्रिमें सोते समय नीचे लिखे सोलह उत्तम स्वप्न देखे ॥५॥

पहले स्वप्नमें उसने इन्द्रका वह ऐरावत हाथी देखा जिसके सब ओरसे निरन्तर लगातार मदरूपी जलके निर्झर झर रहे थे, जिसने अपनी ध्वनिसे दिशाओंको व्याप्त कर रखा था, जिसपर तमालके समान काले-काले भ्रमर झंकार कर रहे थे और जो कैलास पर्वतके समान स्थिर था ॥६॥ दूसरे स्वप्न में अम्बिकाका वह महावृषभ देखा जिसके सुन्दर सींग थे, जिसकी कांदोल ऊँची उठ रही थी, जिसके खुर पृथिवीको खोद रहे थे, जिसकी सास्ना—गलकम्बल अत्यन्त लम्बी थी, जिसकी पूँछें और आँखें अत्यन्त दीर्घ थीं, जो रंगमें सफ़ेद था, मेघकी गर्जनाके समय गम्भीर शब्द कर रहा था तथा नेत्रोंके लिए अत्यन्त प्रिय था ॥७॥ तीसरे स्वप्नमें एक ऐसा सिंह देखा जो पर्वतोंको लांघनेवाला था, पर्वतके अग्रभागपर स्थित था, चन्द्रमाकी कला अथवा अंकुशके समान दाढ़ोंको धारण करनेवाला था, शरीरका अत्यन्त लम्बा था, जिसका शब्द दिशाओंके अन्तमें विश्राम कर रहा था और जो शरद् ऋतुके घुमड़ते हुए मेघके समान सफेद था ॥८॥ चौथे स्वप्नमें वह लक्ष्मी देखी जो किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलोंके समान स्थूल स्तनोंसे युक्त थी, शुभ हाथी घड़ोंसे रखे हुए सुगन्धित जलसे जिसका अभिषेक कर रहे थे, जो अपने हाथमें कमल लिये हुए था और खिले हुए कमलोंके आसनपर बैठी थी ॥९॥ पाँचवें स्वप्नमें जागती हुईके समान सावधान शिवादेवीने निर्मल आकाशमें लटकती हुई दो ऐसी उत्तम मालाएँ देखीं जिन्होंने अपनी परागसे भ्रमरोंके समूहको लाल-लाल कर दिया था और जो अपनी भुजाओंके समान फूलोंसे भी कहीं अधिक मुकोमल थीं (पक्षमें फूलोंके द्वारा अत्यन्त कोमल थी) ॥१०॥ छठे स्वप्नमें उसने निरभ्र आकाशके बीच ऐसा चन्द्रमा देखा जो अपनी तीक्ष्ण किरणों (पक्षमें हाथों) से रात्रिके सघन अन्धकारके समूहको नष्ट कर उदित हुआ था और रात्रिरूपी स्त्रीके स्थिर अट्टहासके समान जान पड़ता था ॥११॥ सातवें स्वप्नमें ऐसा सूर्य देखा जिसका मुख सम्पूर्ण दिन दर्शनीय था, जो सन्ध्याकी लालीरूपी सिन्दूरकी परागसे पिंजर वर्ण था, पूर्व दिशारूपी स्त्रीके पुत्रके समान जान

पड़ता था और नेत्रोंके लिए चिरकाल तक सुख उत्पन्न करनेवाला था ॥१२॥ आठवें स्वप्नमें उसने मत्स्योंका वह युगल देखा जो बिजलीके समान चंचल शरीरका धारक था, सरसीरूपी उत्तम स्त्रीके चंचल एवं समीचीन नेत्रोंके युगलके समान जान पड़ता था, लम्बा था, पारस्परिक स्नेहसे भरा हुआ था, क्रीड़ा कर रहा था और ईर्ष्यासे रहित था ॥१३॥ नौवें स्वप्नमें कमललोचना शिवादेवीने अत्यन्त सुगन्धित जलसे भरे हुए दो ऐसे कलश देखे जिनके मुखपर कमल रखे हुए थे, जो उत्तम स्वर्णसे निर्मित थे और स्वभावसे उठते हुए कुचकलशके समान जान पड़ते थे ॥१४॥ तदनन्तर दशवें स्वप्नमें उसने एक ऐसा बड़ा सरोवर देखा जो शुभ जलसे भरा हुआ था, कमलोंसे सुशोभित था, राजहंस आदि उत्तम पक्षियोंसे युक्त था, मनको हरण करनेवाला था और अपने मनके समान पवित्र एवं निर्मल था ॥१५॥ ग्यारहवें स्वप्नमें एक ऐसा महासागर देखा जो उठती हुई ऊँची-ऊँची लहरोंसे भंगुर था, मूँगा, मोती, मणि और पुष्पोंसे सुशोभित था, फेनसे युक्त था, उद्धत था, तथा घूमते हुए भयंकर मगरमच्छोंका घर था ॥१६॥ बारहवें स्वप्नमें लक्ष्मीका आसनभूत एक ऐसा सिंहासन देखा जिसे नखोंके अग्रभाग एवं डाँढ़ोंसे मजबूत, दृष्टिसे देदीप्यमान और चमकती हुई सटाओंसे युक्त सिंह धारण किये हुए थे तथा मणियोंकी कान्तिसे जिसने दिशा-रूप स्त्रियोंके मुखको रक्त वर्ण कर दिया था ॥१७॥ तेरहवें स्वप्नमें उसने आकाशतलमें ऐसा विमान देखा जो नाना प्रकारके बेल-बूटोंसे युक्त था, ध्वजाओंके अग्रभागसे चंचल था, उत्तम पताकारूपी भुजाओंकी मालासे जो नृत्य करता हुआ-सा जान पड़ता था, और जो लटकती हुई मोतियों और मणियोंकी मालाओंसे उज्ज्वल था ॥१८॥ चौदहवें स्वप्नमें उसने नागेन्द्रका एक ऐसा विशाल देदीप्यमान भवन देखा जो फणाओंपर स्थित मणियोंके प्रकाशसे पृथिवीके अन्धकारको नष्ट करनेवाली नागकन्याओंके मधुर संगीतसे व्याप्त था, देदीप्यमान मणियोंसे जगमगा रहा था और पृथिवीसे ऊपर प्रकट हुआ था ॥१९॥ पन्द्रहवें स्वप्नमें शिवा देवीने उत्तम रत्नोंकी एक ऐसी राशि देखी जो पद्मरागमणि तथा चमकते हुए हीरोंके सहित थी, उत्तमोत्तम मणियोंकी बड़ी-बड़ी शिखाओंसे व्याप्त थी, इन्द्र-धनुषसे दिशाओंके अग्रभागको रोकनेवाली थी, तथा आकाशका स्पर्श कर रही थी ॥२०॥ और शरीरधारिणी लक्ष्मीके समान सन्तोषको पुष्ट करनेवाली शिवा देवीने सोलहवें स्वप्नमें ऐसी अग्नि देखी जो शिखाओंसे भयंकर थी, रात्रिके समय अपनी उज्ज्वल किरणों-से दिशाओंके अग्रभागको प्रकाशित कर रही थी तथा अपना सौम्य रूप दिखला रही थी ॥२१॥ इस प्रकार स्वप्न दर्शनके बाद कार्तिक शुक्ला षष्ठीके दिन देवोंके आसनोंको कम्पित करते हुए भगवान्ने स्वर्गसे च्युत हो सफेद हाथीका रूप धरकर माताके मुखमें प्रवेश किया। **भावार्थ**— आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे भगवान्के आत्म-प्रदेशोंका आकार तो पूर्व शरीरके समान ही रहता है। यहाँ जो 'सफेद हाथीका रूप धरकर' कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि माताने सोलह स्वप्न देखनेके बाद देखा था कि एक सफेद हाथी आकाशसे उतरकर हमारे मुखमें प्रविष्ट हुआ है ॥२२॥ इस प्रकार बार-बार जागनेसे जिनमें अन्तर पड़ रहा था ऐसे पूर्वोक्त निरन्तराय—निर्विघ्न सोलह स्वप्नोंको देखकर जय-जयकार और मंगलमय संगीतसे माता शिवा देवीके नेत्र निद्रारहित हो गये तथा आलस्यरहित होकर उसने शय्या छोड़ दी ॥२३॥ प्रातःकाल होनेपर जिसने शरीरपर मंगलमय अलंकार धारण किये थे ऐसी शिवा देवी कुतूहलवश पतिके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया तथा रात्रिमें देखे हुए सब स्वप्न क्रम-क्रमसे सुना दिये। तदनन्तर प्रसन्न बुद्धिके धारक राजा समुद्रविजयने उन स्वप्नोंका इस प्रकार फल कहा—॥२४॥

हे प्रिये! यह प्रतिदिन पड़नेवाली आश्चर्यकारिणी धनकी वृष्टि जिसकी उत्पत्ति कह रही है, तथा दिक्कुमारी देवियाँ जिसके लिए आपकी सेवा करती हैं वह तीर्थंकर आज तुम्हारे गर्भमें आकर विराजमान हुआ है ॥२५॥ हे सुन्दर जाँघोंवाली प्रिये! यहाँ तेरे स्वप्नोंका फल क्या कहा

जाये ? क्योंकि तू तीर्थंकरकी माता है। तेरे तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न होगा। यद्यपि स्वप्नोंका इतना ही फल पर्याप्त है तथापि वह तीनों लोकोंका परम गुरु जिस फलको प्राप्त होगा वह कहा जाता है सो समझ ॥२६॥

हे कृशोदरि ! तूने स्वप्नमें अनेकप—हाथी देखा है उसका फल यह है कि तेरा पुत्र अनेकप—अनेक जीवोंकी रक्षा करनेवाला होगा। अपनी चालसे हाथीकी चालको विडम्बित करनेवाला होगा और तीनों जगत्में इच्छाके अनुरूप एक आधिपत्यको प्राप्त होगा ॥२७॥ हे प्रिये ! बैल देखनेसे तेरा पुत्र निर्मल बुद्धिका धारक, तथा जगत्का गुरु होगा और जिस प्रकार बैल गायोंके कुलको अलंकृत करता है उसी प्रकार वह गुणोंसे अपने कुल तथा तीनों जगत्को अलंकृत करेगा। वह बैलके समान उज्ज्वल नेत्र तथा उन्नत कन्धोंको धारण करनेवाला होगा ॥२८॥ सिंह देखनेसे वह अनन्त वीर्यका धारक होगा और जिस प्रकार सिंह मदोन्मत्त हाथियोंको मदरहित कर देता है उसी प्रकार वह अत्यधिक गर्वको धारण करनेवाले समस्त पुरुषोंको गर्वरहित कर देगा। वह महान्, अद्वितीय धीर, वीर और अन्तमें तपोवनका स्वामी होगा अर्थात् दीक्षा लेकर कठिन तपश्चरण करेगा ॥२९॥ हे वल्लभे ! जो तूने अभिषेकसे युक्त लक्ष्मी देखी है उसका फल यह है कि उत्पन्न होते ही तेरे पुत्रका सुरेन्द्र और असुरेन्द्र सुमेरु पर्वतके मस्तकपर क्षीरसागरके जलसे अभिषेक करेंगे और वह पर्वतके समान स्थिर होगा ॥३०॥ सुगन्धित मालाओंके देखनेसे यह सूचित होता है कि वह पुत्र तीनों जगत्में व्याप्त यशसे सहित होगा, उत्त . सुगन्धिको प्राप्त होगा और अपने अनन्तज्ञान तथा अनन्तदर्शनरूपी दृष्टिके द्वारा समस्त लोक और अलोकको भी व्याप्त करेगा ॥३१॥ हे सुन्दरि ! चन्द्रमाके देखनेसे वह जिनेन्द्र चन्द्र, अत्यधिक दयारूपी चन्द्रिकासे सुन्दर होगा, जगत्के अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला होगा और समस्त जगत्के निरन्तर आह्लादको करनेवाला होगा ॥३२॥ सूर्यके देखनेसे तेरा वह पुत्र तेजका भाण्डार होगा, और अपने बहुत भारी तेजके द्वारा समस्त तेजस्वी जनोंके तेजको जीतकर तीनों लोकोंको अन्धकारसे रहित करेगा ॥३३॥ हे शिव देवि ! सुखसे क्रीड़ा करती हुई मछलियोंका युगल देखनेसे यह सूचित होता है कि तुम्हारा पुत्र विषयोंके उपभोगसे उत्पन्न सुखको पाकर अन्तमें मोक्षके अनन्त सुखको अवश्य ही प्राप्त होगा ॥३४॥ सुवर्ण कलशोंका युगल देखनेसे यह सिद्ध होता है कि तुम्हारा पुत्र हर्षपूर्वक जगत्के मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होगा और उसके प्रभावसे यह घर निधियोंसे परिपूर्ण हो जायेगा ॥३५॥ नाना प्रकारके पुष्पोंसे युक्त कमल सरोवरके देखनेसे तुम्हारा वह पुत्र समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त होगा, तृष्णारहित बुद्धिका धारक होगा और अत्यधिक दाह उत्पन्न करनेवाली तृष्णारूपी प्याससे पीड़ित मनुष्योंको इसी संसारमें सन्तोषसे युक्त-सुखी करेगा ॥३६॥ अमृतमय महासागरके देखनेसे यह सूचित होता है कि तुम्हारा पुत्र समुद्रके समान गम्भीर बुद्धिका धारक होगा, तथा उपदेश देकर जगत्के जीवोंको कीर्तिरूपी महानदियोंसे परिपूर्ण श्रुतज्ञानरूपी सागरका पान करायेगा ॥३७॥ उत्तम रत्नोंसे जटित सिंहासन देखनेसे यह प्रकट होता है कि तुम्हारे पुत्रकी आज्ञा सर्वोपरि होगी और वह देदीप्यमान मणियोंसे जगमगाते मुकुटों-पर हाथ लगाये हुए देव-दानवोंसे घिरे उत्तम सिंहासनपर आरूढ़ होगा ॥३८॥ उत्तम विमानके देखनेसे यह सूचित होता है कि विमानोंके स्वामी इन्द्रोंकी पंक्तियोंसे उसके चरण पूजित होंगे, वह मानसिक व्यथासे रहित होगा, महान् अभ्युदयका धारक होगा और बहुत बड़े मुख्य विमानसे वह यहाँ अवतार लेगा ॥३९॥

नागेन्द्रके निकलते हुए भवनको देखनेसे यह प्रकट होता है कि तुम्हारा वह पुत्र संसाररूपी पिंजड़ेको भेदनेवाला होगा और मति श्रुत तथा अवधिज्ञानरूपी तीन प्रमुख नेत्रोंसे

युक्त होगा ॥४०॥ आकाशमें रत्नोंकी राशि देखनेसे तुम यह विश्वास करो कि तुम्हारा पुत्र बहुत प्रकारकी देदीप्यमान किरणोंसे अनुरंजित होगा, नाना प्रकारके गुणरूपी रत्नोंकी राशि उसका आश्रय लेगी और वह शरणागत जीवोंको आश्रय देनेवाला होगा ॥४१॥ और ज्वालाओंके समूहसे व्याप्त आकाशमें देदीप्यमान तथा दक्षिणावर्तसे युक्त निर्धूम अग्निके देखनेसे यह सिद्ध होता है कि तुम्हारा पुत्र ध्यानरूपी महाप्रचण्ड अग्निको प्रकट कर समस्त कर्मोंके वन-को जलावेगा ॥४२॥

हे प्रिये ! उस पुत्रके प्रभावसे मुकुट तथा उत्तम कुण्डल आदि आभूषणोंसे सुशोभित इन्द्र साधारण राजाओंके समान अनुकूल सेवक होकर मेरी आज्ञाको अलंकृत करेंगे ॥४३॥ अपनी चोटीमें गुँथी हुई जिनकी निजकी मालाएँ ढीली हो रही हैं तथा जो मेखला और नूपुरोंकी मनोहर झंकारसे युक्त हैं ऐसी इन्द्रकी इन्द्राणियां इसके प्रभावसे सजावट आदिके कार्यमें तेरी सेवा करनेके लिए सदा उद्यत रहेंगी ॥४४॥ हे प्रिये ! यहां पवित्र कर्म करनेवाला जो जिनेन्द्ररूपी सूर्य उत्पन्न होनेवाला है उससे तुम अपने वंशको, अपने आपको, इस मुझको तथा समस्त जगत्को पविभ्रित भूषित एवं संसार-सागरसे उद्धृत समझो ॥४५॥

इस प्रकार पतिके द्वारा कहे हुए स्वप्नके फलको सुनकर रानी शिवादेवीका चित्त बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। और पूर्वोक्त गुण विशिष्ट पुत्र मेरी गोदमें आ ही गया है, ऐसा विचारकर वह समस्त जनसमूहके मनको हरनेवाली जिनपूजा आदि उत्तम क्रियाएँ करने लगीं ॥४६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य, जिनेन्द्र भगवान्के जन्मसे सम्बद्ध स्वप्नोंके फलका वर्णन करने-वाले इस स्तोत्रका प्रतिदिन प्रातः-सन्ध्याके समय पाठ करता है, स्मरण करता है, अथवा श्रवण करता है वह जिनेन्द्र भगवान्की लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥४७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें स्वप्नोंके फलका वर्णन करनेवाला सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३७॥

□

सर्ग- ३८

तदनन्तर इन्द्रकी आज्ञा और अपनी भक्तिके भारसे कुबेरने स्वयं आकर शुभ तीर्थजलसे भगवान्‌के माता-पिताका अच्छी तरह अभिषेक किया और मनोज्ञ कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न अन्यजन-दुर्लभ सुगन्ध और उत्तमोत्तम आभूषणोंसे उनकी पूजा की ॥१॥ जिस प्रकार आकाशकी लक्ष्मी अपने निर्मल उदरमें चन्द्रमाको धारण करती है उसी प्रकार भगवान्‌की माता शिवादेवीने प्रसिद्ध दिक्कुमारी देवियोंके द्वारा पहलेसे ही शुद्ध किये हुए अपने निर्मल उदरमें जगत्‌के कल्याणके लिए सर्वप्रथम उस गर्भको धारण किया जो उठती हुई प्रभासे युक्त था, अपने बन्धुजनरूपी समुद्रकी वृद्धिको करनेवाला था, तथा सन्तापके उदयको दूर करनेवाला था ॥२॥ उस गर्भरूपी फलके भारने अत्यधिक दयासे प्रेरित होकर ही मानो स्तनरूपी गुच्छोंके भारसे नम्रीभूत एवं पतली कमरवाली शिवादेवीरूपी लताको रंचमात्र भी बाधा नहीं पहुँचायी थी। न तो उसकी त्रिवलि-रूपी तरंगकी शोभाको नष्ट किया था, न श्वासोच्छ्वाससे उसके अधररूपी पल्लवको बाधित किया था और न उसे आलस्यसे युक्त ही होने दिया था ॥३॥ अपने अत्यन्त गूढ़ गर्भमें भगवान्‌के शरीरकी जो उत्पत्ति हुई थी उसे प्रकट करनेके लिए ही मानो शिवादेवीके स्तनोंका भार अत्यधिक दूधसे परिपूर्णताको प्राप्त हो गया था तथा मेखलाके सघन बन्धनसे युक्त उसकी नितम्ब-स्थली उस स्तनके भारको धारण करनेके गौरवसे ही मानो अत्यधिक विस्तृत हो गया थी ॥४॥ उस समय भगवान्‌के प्रभावसे शिवादेवीका मन संसारकी रक्षा करने तथा समस्त तत्त्वोंके अव-लोकन करनेमें अभ्यस्त रहता था, वचन सब प्रकारके संशयको नष्ट करनेवाले हितकारी भाषण-में अभ्यस्त रहता था और शरीर व्रतरूपी आभूषणके धारण करने तथा विनयके पोषण करनेमें अभ्यस्त रहता था ॥५॥ भगवान्‌की माता, देवांगनाओंके द्वारा सम्पादित एवं अनन्तगुणी कान्ति और बलको बढ़ानेवाला अमृतमय आहार करती थीं इसलिए उनका शरीर कृश होनेपर भी अपनी प्रभासे दशों दिशाओंको सुवर्ण जैसी कान्तिका धारक करता हुआ बिजलीके समान सुशो-भित हो रहा था ॥६॥ हाथीरूपी मगरमच्छों, उछलते हुए उन्नत अश्वरूपी मीन-समूहों, बड़े-बड़े रथरूपी जहाजों, राजाओंकी सेनारूपी नदियों और जहाँ-तहाँ प्रवेश करते हुए मित्रोंरूपी तरंगोंसे प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हुए राजा समुद्रविजय उस समय सचमुच ही विशाल समुद्रकी शोभाको धारण करते हुए वृद्धिगत हो रहे थे ॥७॥ इस प्रकार जो जगद्वलयरूपी वेलामें पूजित थे, परस्परमें जिनका विशाल हर्ष निरन्तर बढ़ रहा था और जो इन्द्रकी आज्ञामें लीन देव-देवियोंके द्वारा की हुई विभूतिसे सहित थे ऐसे भगवान्‌के माता-पिताने गर्भके नौ माह सानन्द व्यतीत किये ॥८॥

तदनन्तर वैशाख शुक्ल त्रयोदशीकी शुभ तिथिमें रात्रिके समय जब चन्द्रमाका चित्रा नक्षत्रके साथ संयोग था और समस्त शुभग्रहोंका समूह जब यथायोग्य उत्तम स्थानोंपर स्थित था तब शिवादेवीने समस्त जगत्‌को जीतनेवाले अतिशय सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया ॥९॥ जो तीन ज्ञानरूपी उज्ज्वल नेत्रोंके धारक थे तथा एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त नील कमलके समान सुन्दर शरीरको धारण कर रहे थे ऐसे जिनबालकने अपनी कान्तिके द्वारा, प्रसूतिकागृहके भीतर

व्याप्त मणिमय दीपकोंके कान्तिसमूहको कई गुणा अधिक कर दिया था ॥१०॥ उस समय जिनेन्द्र-रूपी चन्द्रमाका उदय होनेपर जो धवल पयोधर—मेघोंको धारण करनेवाली थी (पक्षमें धवल स्तनोंसे युक्त थी) अखण्ड—पूर्ण चन्द्रमा ही जिसका मुख था, (पक्षमें पूर्ण चन्द्रमाके समान जिसका मुख था), देदीप्यमान ताराओंके समूह ही जिसके आभूषण थे, (पक्षमें देदीप्यमान ताराओंके समूहके समान जिसके आभूषण थे), जो अत्यन्त सुन्दरी थी (पक्षमें हारसे सुशोभित थी), और जो तरंगरूपी भुजपंजरके मध्यमें वर्तमान थी ऐसी—आकाशरूपी स्त्रीका मदनरूपी महा-सागरने अपनी इच्छानुसार चुम्बन किया था ॥११॥

उस समय जो सुमेरुरूपी गम्भीर नाभिसे युक्त थी, कुलाचलरूपी कण्ठ और स्तनोंसे सहित थी, बहती हुई नदियोंके समूहरूपी हारके भारको धारण करनेवाली थी, समुद्रका घेरा ही जिसका वस्त्र था तथा शब्दायमान वेदिका ही जिसकी मेखला थी, ऐसी जम्बूद्वीपकी भूमि चल-विचल हो गयी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो हर्षके वशीभूत हो नृत्य ही कर रही हो ॥१२॥ जो अनुत्तर विमानरूपी मुखसे उज्ज्वल था, मोक्षरूपी मस्तकसे सहित था, नौ अनुदिश-रूपी ठोड़ोसे युक्त था, नौ ग्रैवेयकरूपी ग्रीवाको धारण करनेवाला था, स्वर्गरूपी शरीरसे सहित था, तथा मध्यम लोकरूपी कमर और अधोलोकरूपी जंघाओंसे युक्त था ऐसा तीन लोकरूपी पुरुष उस समय चंचल हो उठा था सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमरपर हाथ रखकर नृत्य ही कर रहा हो ॥१३॥ उस समय जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मके प्रभावसे भवनवासी देवोंके लोकमें अपने आप शंखोंका जोरदार शब्द होने लगा। समस्त व्यन्तर देवोंके लोकमें शीघ्र ही जोरदार पटह शब्द होने लगे। सूर्यलोकमें सिंहनाद होने लगा और कल्पवासी देवोंके भवनोंमें विशाल शब्द करनेवाले घण्टा बज उठे ॥१४॥ तदनन्तर जिनके मुकुट और सिंहासन कम्पायमान हो रहे थे, जिन्होंने अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्रको प्रयुक्त किया था, और उसके द्वारा जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मको जानकर जिन्हें अत्यधिक हर्ष उत्पन्न हुआ था, ऐसे तीनों लोकोंमें रहनेवाले सुरेन्द्र तथा असुरेन्द्र चतुर्णिकायके देवोंको साथ ले बड़ी विभूतिसे भरत क्षेत्रकी ओर चल पड़े ॥१५॥ हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाते समय मुकुटोंके अग्रभागसे टकराये हुए कटकोंके रत्नोंको किरणोंसे जिन्होंने समस्त दिशाओंके अग्रभाग व्याप्त कर दिये थे ऐसे अत्यन्त शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारक अहमिन्द्र देव, यद्यपि अपने-अपने ही निवासस्थानोंमें स्थित रहे थे तथापि उन्होंने सिंहासनोंसे सात कदम सामने आकर जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया था ॥१६॥ असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्-कुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार, द्वीपकुमार, महोदधिकुमार, स्तनितकुमार और उदधिकुमार ये दश प्रकारके भवनवासी देव, दशों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए जहाँ-तहाँ पृथिवीसे ऊपर आने लगे ॥१७॥ जिनकी स्त्रियाँ मनको हरण करनेमें दक्ष, गीत तथा नाना प्रकारके नृत्योंसे युक्त थीं, ऐसे किंपुरुष, किन्नर, महोरग, राक्षस, पिशाच, भूत, यक्ष और गन्धर्व ये मध्यलोकमें विशिष्ट प्रीतिके रखनेवाले आठ प्रकारके व्यन्तर देव चारों ओरसे आने लगे ॥१८॥ उज्ज्वल किरणोंसे युक्त ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और तारा नामको धारण करनेवाले पाँच प्रकारके प्रसिद्ध ज्योतिषी देवोंका समूह एक साथ अपने-अपने विमानोंसे यहाँ आता हुआ ऐसा सुशोभित होने लगा मानो वह पृथिवीपर एक दूसरा ही ज्योतिषलोक बनानेके लिए उद्यत हुआ हो ॥१९॥ जो यथायोग्य अपनी-अपनी सात प्रकारकी सेनाओंके सहित थे, ऐसे प्रथम स्वर्गसे लेकर सोलहवें स्वर्ग तकके सोलह इन्द्र, आनन्दके वशीभूत हो समस्त स्वर्गोंके देवोंके साथ यहाँ आ पहुँचे ॥२०॥ सौधर्मेन्द्र अपनी स्त्रियोंके साथ उस ऐरावत नामक गजराजपर बैठा हुआ सुशोभित हो रहा था, जो चलते-फिरते हिमालयके समान जान पड़ता तथा अनेक मुखोंके भीतर दाँतोंपर विद्यमान

कमल-समूहको कलिकाओंपर नृत्य करती हुई देवांगनाओंके सुन्दर नृत्यसे सुशोभित था ॥२१॥ इन्द्रको चारों ओरसे घेरे हुए देवोंकी वह सेना सुशोभित हो रही थी जिसने सात कक्षाओंका विभाग किया था, जो गोल आकारके सहित थी, स्वाभाविक पुरुषार्थसे युक्त थी, तथा वज्र आदि शस्त्रोंके वनसे जिसने आकाशके अन्तरालको रोक रखा था ॥२२॥ तदनन्तर घोड़ोंकी बहुत बड़ी विराट् सेना थी जो अपने वेगसे शीघ्रगामी वायुको शीघ्र ही जीत रही थी। जो अपनी हिनहिनाहटसे तीन लोकके अन्तरालको संयुक्त तथा वियुक्त कर रही थी, और आकाश-रूपी समुद्रकी उठती हुई तरंगोंके समूहके समान जान पड़ती थी ॥२३॥ तदनन्तर बैलोंकी वह सेना चारों ओर खड़ी थी जो कि सुन्दर मुख, सुन्दर अण्डकोश, नयन कमल, मनोहर कांदौल, पूंछ, शब्द, सुन्दर शरीर, सास्ना, सुवर्णमय खुर और सींगोसे युक्त थी तथा अत्यधिक कान्तिसे युक्त चन्द्रमाकी प्रभाको धारण कर रही थी ॥२४॥ तदनन्तर रथोंकी वह सेना भी सुशोभित हो रही थी जो स्वयं सात प्रकारसे विभिन्न होनेपर भी पर्वतोंसे अभेद्य थी, आकाशरूपी सागर-में जो देवोंके यानपात्रके समान जान पड़ती थी, प्रभासे जिसने सूर्यके देदीप्यमान रथको जीत लिया था, जो अत्यन्त मनोहर थी और जिसका घेरा वलयके समान सुशोभित था ॥२५॥ तत्पश्चात् जो चारों ओर जलके छींटोंकी वर्षा कर रहे थे, जिनके शुण्डादण्ड ऊपरकी ओर उठे हुए थे, जो बहुत भारी गर्जना कर रहे थे, जो आकारमें बहुत भारी थे, एवं जो बड़े-बड़े देवों-से अधिष्ठित थे, ऐसे मेघोंकी समानता धारण करनेवाले हाथियोंसे रचित, अनेक प्रकारकी रच-नाओंसे युक्त हाथियोंकी सेना भी वर्षा ऋतुकी शोभा विस्तृत कर रही थी ॥२६॥ हाथियोंकी सेनाके बाद गन्धर्वोंकी वह सेना सुशोभित हो रही थी जिसने मधुर मूर्छनासे कोमल वीणा, उत्कृष्ट बाँसुरी और तालके शब्दसे मिश्रित सातों प्रकारके आश्रित स्वरोंसे जगत्के मध्यभागको पूर्ण कर दिया था, जो देव-देवांगनाओंसे सुशोभित थी एवं सबको आनन्द उत्पन्न करनेवाली थी ॥२७॥ गन्धर्वोंकी सेनाके बाद उत्कृष्ट नृत्य करनेवाली नर्तकियोंकी वह सेना भी आकाशमें प्रकट हुई थी जो कि नितम्बोंके भारसे मन्द-मन्द चल रही थी, समस्त रसोंको पुष्ट करनेवाली थी और वलयों-से सुशोभित अपने शरीरोंसे देवरूपी वृक्षोंके मनरूपी पुष्पमंजरीको ग्रहण कर रही थी ॥२८॥ प्रत्येक सेनामें सात-सात कक्षाएँ थीं। उनमें-से प्रथम कक्षामें चौरासी हजार घोड़े, बैल आदि थे फिर दूसरी-तीसरी आदि कक्षाओंमें क्रमसे दूने-दूने होते गये थे ॥२९॥

अपनी-अपनी सेनाओंसे युक्त समस्त इन्द्र, भगवान्‌का जन्माभिषेक करनेके लिए आकाशमें व्याप्त हो जब-तक सूर्यपुर आते हैं तब-तक प्रसन्नतासे युक्त एवं आदरसे भरी दिक्कुमारी देवियाँ भगवान्‌का समस्त जातकर्म करने लगीं ॥३०॥ देवियोंमें निर्मल हारोंके धारण करनेसे सुशोभित एवं चमकते हुए मणियोंके आभूषण और कानोंके कुण्डलोंसे विभूषित, जगत्-प्रसिद्ध विजया, वैजयन्ती, अपराजिता, जयन्ती, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना और हृदयको आनन्दित करनेवाली नन्दोत्तरा नामकी देवियाँ अपने स्तनोंके समान स्थूल, तथा अंगसे विगलित होते हुए शृंगार रसके समान निर्मल जलसे भरी हुई बड़ी ऊँची झारियाँ लिये हुए थीं ॥३१-३२॥ यशोधरा, सुप्रसिद्धा, सुकीर्ति, सुस्थिता, प्रणिधि, लक्ष्मीमती, विचित्र गुणोंसे युक्त चित्रा और वसुन्धरा ये देवियाँ मणिमय दर्पण लेकर खड़ी थीं और चन्द्रमासे युक्त दिशाओंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥३३॥

इला, नवमिका, सुरा, पीता, पद्मावती, पृथ्वी, प्रवरकांचना और चन्द्रिका नामकी देवियाँ, प्रभासे देदीप्यमान ताराओंके समान आभूषणोंसे सुशोभित तथा देदीप्यमान थीं। ये देवियाँ भगवान्‌की मातापर सफेद छत्र लगाये हुए थीं और चन्द्रमाके सहित रात्रियोंके समान

जान पड़ती थीं ॥३४॥ श्री, धृति, आशा, वारुणी, पुण्डरीकिणी, अलम्बुसा, मिश्रकेशी और ह्री आदि देवियां हाथोंपर चामर लिये खड़ी थीं तथा अधिक फेनावली और तरंगोंसे युक्त आयी हुई कुलनदियों—गंगा आदि नदियोंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥३५॥ देदीप्यमान कनकचित्रा, चित्रा, तीन लोकके देवोंमें प्रसिद्ध त्रिशिरा और सूत्रामणि, ये विद्युत्कुमारी देवियां उस समय जिनेन्द भगवान्के समीप अपनी चेष्टाओंसे ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो मेघके समीप अन्धकारको नष्ट करनेवाली बिजलीरूपी लताएँ ही हों ॥३६॥ उस समय समस्त विद्युत्कुमारियोंमें प्रधान रुचकप्रभा, रुचका, रुचकाभा और रुचकोज्ज्वला तथा दिक्कुमारियोंमें प्रधान विजय आदि चार देवियां विधिपूर्वक भगवान्का जातकर्म कर रही थीं ॥३७॥

भगवान्के जन्मोत्सवके पूर्व ही कुबेरने सूर्यपुरकी अद्भुत शोभा बना रखी थी। उसके महलोंपर बड़ी-बड़ी ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ फहरा रही थीं तथा वह इन्द्रलोककी शोभाको जीतनेके लिए उद्यत सरीखा जान पड़ता था। अपने-अपने इन्द्रों सहित चारों निकायोंके सुर और असुर आदरके साथ शीघ्र ही आकर जिनेन्द्र भगवान्की भक्तिसे. उस नगरकी तीन प्रदक्षिणाएँ दे उसकी शोभा देखने लगे ॥३८॥ तदनन्तर सज्जनोंका सखा और मर्यादाको जाननेवाला इन्द्र नगरमें प्रवेश कर शिवादेवीके महलके समीप खड़ा हो गया और वहींसे उसने आदरसे युक्त, पवित्र एवं चंचलतासे रहित इन्द्राणीको जात बालकके लानेका आदेश दिया। पतिकी आज्ञानुसार इन्द्राणीने प्रसूतिका-गृहमें प्रवेश किया। उस समय आदरसे भरी इन्द्राणी अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥३९॥ वहां उसने यत्नपूर्वक जिन-माताको प्रणाम कर मायामयी निद्रामें सुला दिया तथा देव-मायासे एक दूसरा बालक बनाकर उनके समीप लिटा दिया। तदनन्तर इन्द्राणीने कोमल हाथोंसे जिन-बालकको उठाकर अपने स्वामी—इन्द्रके लिए दे दिया और देवोंके राजा इन्द्रने शिरसे जिन-बालकको प्रणाम कर दोनों हाथोंसे उन्हें ले लिया ॥४०॥ जिन्होंने अपने मुखरूपी चन्द्रमाके द्वारा चन्द्रमाको जीत लिया था, नेत्रोंसे पुण्डरीक—सफेद कमलको जीत लिया था, शरीरकी कान्तिसे नील कमलोंके वनकी शोभाको प्रमुख रूपसे पराजित कर दिया था और अपने हाथों तथा पैरोंसे कमलोंको पराभूत कर दिया था ऐसे जिनेन्द्र बालकको उस समय इन्द्र एक हजार नेत्रोंसे भी देखकर तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ—उसकी देखनेकी उत्कण्ठा ज्योंकी-त्यों बनी रही ॥४१॥ वह इन्द्र जिनके मस्तकपर इन्द्रनील मणिका ऊँचा चूड़ामणि सुशोभित हो रहा था, ऐसे जिन-बालकको ऐरावत हाथीरूपी स्फटिकमय पर्वतके मस्तकपर विराजमान कर चला। उस समय वह इन्द्र चंचल चामर और छत्रोंसे अतिशय शोभायमान था और उनसे ऐसा जान पढ़ता था मानो चंचल तरंगोंके समूहसे युक्त फेनसे भरा समुद्र ही चला जा रहा हो ॥४२॥

ऐरावत हाथीके बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुखमें आठ-आठ दाँत थे, प्रत्येक दाँतपर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवरमें एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनीमें बत्तीस-बत्तीस पत्र थे और एक-एक पत्रपर उत्तम रससे भरी हुई एक-एक अप्सरा नृत्य कर रही थी ॥४३॥ उस प्रकारकी लोकोत्तर विभूतिके साथ देव लोग मेरु पर्वतके समीप पहुँचे तथा उसकी परिक्रमा देकर पाण्डुक नामक विशाल वनखण्डमें प्रविष्ट हुए। वहां उन्होंने विशाल पाण्डुकशिलाके ऊपर जो पांच सौ धनुष ऊँचा सिंहासन है उसपर जिन-बालकको विराजमान किया ॥४४॥

तदनन्तर पूजाके उपकरणोंको धारण करनेवाले एवं नवीन उत्सवसे आनन्दित देवांगनाओंके समूह जब चारों ओर खड़े थे, स्पष्ट तथा श्रेष्ठ रस, भाव, हाव और लयसे देवोंको अनुरंजित करनेवाले श्रेष्ठ नृत्यकारोंके समूह जब नृत्य कर रहे थे, सुमेरु पर्वतकी सुविशाल

गुफाओंसे गूँजनेवाली प्रतिध्वनिसे वृद्धिगत, दिशाओंके अन्तरालमें फैलनेवाले, जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंके समान अत्यन्त प्रकट, एवं कानोंको सुख देनेवाले बजते हुए नगाड़ों और शंखोंके शब्द तथा सिंहनाद और भेरियोंकी ध्वनियोंसे जब संसारका मध्यभाग परिपूर्ण हो रहा था, प्रकट होती हुई सुगन्धिसे युक्त, नाना प्रकारके पटवास, धूपोंके समूह और उत्तमोत्तम पुष्पोंके समूह जब इधर-उधर आकाशतलको व्याप्त कर रहे थे, और मुखरूपी पाण्डुक वनसे उत्पन्न उत्कृष्ट गन्धसे हृदयको प्रिय लगनेवाली सुन्दर वायु जब दिशाओंके मुखको अत्यन्त सुगन्धित कर रही थी तब अनेक शरीरोंको धारण करनेवाले इन्द्रने देवोंके साथ भक्तिपूर्वक, देवोंके द्वारा लाये हुए, मणिमय और सुवर्णमय कुम्भोंसे च्युत, अत्यन्त सुगन्धित क्षीरसागरके शुभ जलसे जिनेन्द्र भगवान्का स्वयं महाभिषेक करना शुरू किया ।।४५-४८।। उस समय सुमेरु पर्वत और क्षीरसागरके मध्य आकाशमें, हर्षसे भरी एवं देदीप्यमान मणियोंके समूहसे उज्ज्वल कलश हाथमें लिये देवोंकी पंक्तियां सब ओर खड़ी थीं उनसे उस समय वह आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत-सी रस्सियोंसे बांधकर कहीं ले जाया जा रहा हो ।।४९।। उस समय वहां 'कलश लो, जल्दी दो, और तुम भगवान्को शीघ्र ही मेरे सम्मुख धारण करो' इस प्रकार कानोंके लिए प्रिय शब्द हो रहे थे। तथा वह कलशोंकी पंक्ति देव-समूहके एक हाथसे दूसरे हाथमें जाती हुई शोभापूर्वक पाण्डुक वनमें ऐसी प्रवेश कर रही थी मानो बड़े-बड़े हंसोंकी पंक्ति ही प्रवेश कर रही हो ।।५०।। आकाशमें वेगशाली देवोंके वशीभूत (हाथोंमें स्थित) सुवर्ण, मणि, रत्न और चांदीसे निर्मित कलशोंकी पंक्तियाँ आकाशमें ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो सुन्दर पंखोंकी कान्तिसे दिशाओंको व्याप्त करती हुई वेगसे उड़नेवाले गरुड़ और हंसोंकी अनेक पंक्तियां ही हों ।।५१।। इन्द्रको भुजाओंके द्वारा उठाये हुए, मेघोंके समान गर्जना करनेवाले एवं उज्ज्वल जलसे भरे हुए हजार कलशोंसे अभिषेकको प्राप्त होनेवाले भगवान्ने मेरुपर्वतको सफेद कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि शुद्ध पदार्थके आश्रयसे अशुद्ध भी शुद्धताको प्राप्त हो जाता है। **भावार्थ—**भगवान्के अभिषेक जलसे मेरु पर्वत सफेद-सफेद दिखने लगा ।।५२।।

जिनशासनकी प्राप्तिसे जिनके प्रशस्त रागका उदय हो रहा था, जिनके शरीरमें रोमांच प्रकट हुए थे और जिनका संसाररूपी सागर अत्यन्त अल्प रह गया था ऐसे अन्य समस्त स्वर्गोंके इन्द्रोंने भी बड़े सन्तोषके साथ इच्छानुसार निर्मल जलसे जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया था ।।५३।। तदनन्तर कोमल हाथोंको धारण करनेवाली शची आदि इन्द्राणियोंने आकर सुगन्धित द्रव्योंसे भगवान्को उद्वर्तन—उबटन किया और अपने ही स्तनोंके समान सुशोभित एक साथ उठाये हुए, शुभ जलसे परिपूर्ण कलशोंके द्वारा उनका अभिषेक किया ।।५४।।

तदनन्तर इन्द्र आदि समस्त सुर और असुरोंके समूहने उत्तम वस्त्र, मणिमय आभूषण, माला तथा विलेपनसे सुशोभित, कल्याणके पर्वत, एवं अतिशय विशाल लक्ष्मीके स्वामी श्री जिनेन्द्र देवका अरिष्टनेमि नाम रखकर उनकी प्रदक्षिणा दी और उसके बाद नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे उनका स्तवन किया ।।५५।।

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें भगवान्के जन्माभिषेकका वर्णन करनेवाला अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।३८।।

□

सर्ग- ३९

इन्द्र, नेमि जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा- हे प्रभो ! आपने समस्त श्रुतज्ञान, मतिज्ञान और अवधिज्ञानसे विकसित, शुद्ध चेष्टाओंके धारक, जागरूक एवं विशिष्ट पदार्थोंको दिखलानेवाली दृष्टिके द्वारा समस्त चराचर पदार्थोंसे युक्त तीनों जगत्को अच्छी तरह देख लिया है। आपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके भेदसे त्रिविधताको प्राप्त निर्मल रत्नोंसे सुशोभित पूर्वभव सम्बन्धी उग्र तपसे युक्त सोलह कारण भावनाओंके द्वारा तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका संचय किया है ॥१॥ उसी तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थिति तथा अनुभागबन्धके कारण अत्यन्त विशिष्ट एवं अद्‌भुत पुण्यके महोदयरूपी वायुके वेगसे आपने देवसमूहरूपी कुलाचलोंको विचलित किया है। उन्होंने आपके चरण युगलकी सेवा की है। आप युगमें मुख्य हैं तथा आपके मुख कमलके देखने सम्बन्धी तृप्तिसे रहित भव्यजीवरूपी भ्रमरोंके अत्यधिक स्तवनोंकी ध्वनिसे वृद्धिगत दुन्दुभियोंके शब्दसे आपका शुद्ध यश प्रकट हो रहा है ॥२॥ हे नाथ ! आपने यशसे शुक्लीकृत जन्मसे समस्त भारतवर्षको पवित्र किया है। अत्यन्त श्रेष्ठ हरिवंशरूप विशाल उदयाचलके शिखामणिस्वरूप बालदिनकर-जैसी कान्तिसे आपने सूर्यके शरीरको जीत लिया है। हे विभो ! आपने अधिक कान्तिको धारण करनेवाले शरीरके द्वारा पूर्णचन्द्रको जीत लिया है एवं इन्द्रनील मणि-जैसी कान्तिके समूहसे आपने समस्त दिशाओंके मुखमण्डलको सुशोभित कर दिया है इसलिए हे नेमि जिनेन्द्र ! आपको नमस्कार हो ॥३॥ हे परमेश्वर ! हे विश्वजनीन ! हे अप्रतिम—हे अनुपम ! आप तीनों लोकोंके गुरु हैं, एवं उत्कट बुद्धिके धारक हैं। यहां उत्पन्न होते ही आपने अनुपम, प्रसिद्ध एवं मोक्षका जो हितकारी मार्ग बतलाया है उसे स्वीकारकर तथा नाना प्रकारका तपकर भव्यजीव समस्त पापकर्मरूपी मलको विधिपूर्वक नष्ट कर पृथिवीमें वन्दनीय होंगे ॥४॥ हे प्रणतप्रिय ! हे भक्तवत्सल ! अब आप जन्म-जरा-मरणरूपी रोगोंसे भयंकर संसाररूपी महादुःखके अपार सागरको पार कर मोक्षस्वरूप, समस्त लोकको उस शिखरको प्राप्त होंगे जहाँपर उत्कृष्ट सीमाको प्राप्त समस्त गुणोंके आधारभूत सिद्ध भगवान्‌रूप महापरमेष्ठी विराजमान रहते हैं और जिसे मुनिगण उत्कृष्ट, अद्वितीय, अविनाशी एवं आत्म-हितकारी पद कहते हैं ॥५॥ जहाँका उत्तम, महान्, आत्मगत, निरन्तर उदयमें रहनेवाला, अन्तरहित और अनन्त बलसम्पन्न सुख महापुरुषोंको ही प्राप्त हो सकता है अभव्य जीवोंको नहीं। हे स्वामिन् ! आप उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाववाले पदार्थोंके निरूपण करनेमें निपुण शासनका उपदेश करनेवाले हैं। इस संसारमें समस्त जगत्की प्रभुतासे सम्बद्ध एवं इन्द्र, नरेन्द्र आदि देव और मनुष्योंके विशेष महान् अभ्युदयोंका कारणभूत जो सुख है वह भी आपके शासनकी सेवासे ही प्राप्त होगा। अन्य मतोंके आश्रयसे नहीं। इसलिए सब आपका ही आश्रय लेवें इस प्रकार आपके विषयमें निश्चय—दृढ़ श्रद्धाको प्राप्त कर जो प्राणी इस पृथिवीमें नर्ग्रन्थ बुद्धिके धारण करनेमें प्रवीण होते हैं—निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण करते हैं हे जिनेन्द्र ! वे ही प्राणी इस संसारमें कृतकृत्यताको प्राप्त होते हैं ॥६-७॥ हे भगवन् ! आप प्रिय एवं सर्वहितकारी वचनोंके वैभवसे सहित हैं, संसारका अन्त करनेवाले हैं, आपने दिशाओंके अन्तरालको सुगन्धित कर

दिया है, आप उत्कृष्ट संहनन, उत्कृष्ट संस्थान और उत्कृष्ट रूपसे युक्त हैं, आप समस्त लक्षणोंसे सुशोभित हैं, आपके शरीरका रस—रुधिर दूधके समान है, आप रस और भावको जाननेवाले हैं, आपका शरीर मलसे रहित है, पसीनासे रहित है, आप पृथिवीमें व्याप्त अनन्त बलसे सहित हैं ॥८॥ आपने संयमरूप आत्मबुद्धिसे कामदेवको जीत लिया है। आप सुखरूपी सस्यसे परिपूर्ण एवं अत्यन्त रक्षणीय भूमिकी रक्षा करनेवाले हैं। हे सबके रक्षक भगवन्! इस तरह आप अनन्त गुणोंके धारक हैं। हे नाथ! आपके गुणोंकी अभिलाषासे हम आपके प्रति नम्रीभूत हैं—आपको नमस्कार करते हैं ॥९॥ हे नाथ! यह अनेकों हजार योजन ऊँचा पर्वतों-का राजा सुमेरु पर्वत भी मानो आपके योगका साधन हो गया। सो आपके सिवाय प्रचण्ड बुद्धिको धारण करनेवाला ऐसा कौन महापुरुष है जो इसे श्रेष्ठ तथा देदीप्यमान स्नानपीठ बना सकनेको समर्थ है ॥१०॥

हे ईश! यह आपका ऐश्वर्य अपरिमित है, मानरूपी धनके धारक बड़े-बड़े देव तथा मनुष्योंके द्वारा माननीय है। हे जिनेन्द्र! इस संसारमें स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाला भी ऐसा कौन दूसरा माननीय पुरुष है जो आपके समान ऐश्वर्यको प्राप्त कर सके ॥११॥ हे भगवन्! बाल्यकालमें भी आप लोकोत्तर पराक्रमके धारक हैं, प्राणियोंके हितकारक हैं, तीनों लोकोंके द्वारा स्तुत हैं तथा आप नूतन भक्तिके भारसे नम्रीभूत मनुष्योंके लिए शारीरिक और मानसिक सुखके करनेवाले हैं ॥१२॥ हे प्रभो! आप कामरूपी गजराजको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप क्रोधरूपी महानागको वश करनेके लिए पक्षिराज—गरुड़के समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप मानरूपी पर्वतको चकनाचूर करनेके लिए वज्रके समान हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप लोभरूपी महावनको भस्म करनेके लिए दावानलके समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥१३॥ आप ईश्वरताके धारण करनेमें धीर-वीर हैं अतः आपको नमस्कार हो। हे देव! आप विष्णुतासे युक्त हैं अतः आपको नमस्कार हो। आप अर्हन्तरूप अचिन्त्य पदके स्वामी हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप ब्रह्म पदको प्राप्त करनेवाले हैं अतः आपको नमस्कार हो ॥१४॥ इस प्रकार सत्य वचनों-के समूहसे देवोंने भगवान्‌की स्तुति कर उन्हें प्रणाम किया तथा भयंकर संसारसे पार करनेवाले भगवान्‌से उन्होंने यही एक वर माँगा कि हे भगवन्! हम लोगोंको उत्तम बोधिकी प्राप्ति हो ॥१५॥

अथानन्तर खेद-रहित एवं विशाल बुद्धिके धारक देव सन्तोषकी अधिकतासे आकाशमें जिन शंखोंको अधिक मात्रामें फूँक रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अमृतके महासागरके मथनेसे जो अत्यन्त शुद्ध अमृतका पिण्ड निकला था उसे अधिक मात्रामें पी जानेके दोषसे देव लोग चिरकाल तक पचा नहीं सके इसलिए उन्होंने उगल दिया हो उसी पीयूष-पिण्डके टुकड़े हों। शंखोंके शब्दोंके साथ-साथ बजाये जानेवाले अत्यधिक गम्भीर ध्वनिसे युक्त भेरी, मृदंग तथा पटह आदिको एवं अधिक मात्रासे बजनेवाली बाँसुरी और वीणाके शब्द, 'श्री जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्माभिषेकका उत्सव हो चुका है' इसकी घोषणा करनेके लिए ही मानो जब समस्त लोकके अन्त तक एवं समस्त दिशाओंके अन्तरालमें व्याप्त होनेके लिए उठ रहे थे। और जब विद्याधरोंके समूह एवं देवांगनाओंके उन्नत संगीतमय शब्दोंसे सुन्दर श्रेष्ठ शृंगार, हास्य और अद्भुत रससे परिपूर्ण वाचिक, आंगिक, सात्त्विक और आहार्य इन चार प्रकारके अपने सुन्दर दिव्य अभिनेयोंके प्रकट करनेमें प्रवृत्त अप्सराओंके समूह सुन्दर नृत्य कर रहे थे। तब सौधर्म स्वर्गका इन्द्र, सम्भ्रम पूर्वक विभ्रमोंसे शोभायमान उठते हुए ऐरावत हाथीके कन्धेपर धीर-वीर जिनेन्द्रको विराजमान कर सुमेरु पर्वतसे उस शौर्यपुरकी ओर चला

जो शूरवीरताके पर्वत एवं सिंहोंके समान बलवान् यादववंशी राजाओंसे अधिष्ठित था। उस समय जिनेन्द्र भगवान्‌के ऊपर सफेद छत्र सुशोभित हो रहा था, चंचल चमरोंकी पंक्तियाँ उनपर ढोरी जा रही थीं, और प्रकृष्ट गीतोंसे युक्त अप्सराओंके समूह उनकी अत्यन्त विशुद्ध कीर्ति गा रहे थे। सौधर्मेन्द्रने उस समय समस्त आकाशको सब प्रकारकी सेनाओंसे पूर्ण कर रखा था। मार्गमें चलते हुए, हर्षसे परिपूर्ण, प्रणाम, स्तुति तथा संगीतके प्रयोगमें लीन प्रसिद्ध देवोंके समूह भगवान्‌का यथायोग्य अभिनन्दन कर रहे थे। त्रिलोक सम्बन्धी इन्द्रोंका समूह भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवामें तत्पर था और भगवान् उसे महान् आनन्द प्राप्त करा रहे थे। इस प्रकार जो लोकोत्तर एवं अत्यन्त आश्चर्यकारी परम ऐश्वर्यको धारण कर रहे थे, शिवादेवीके पुत्र थे, 'समृद्धिको प्राप्त होओ' 'बढ़ते रहो' 'जोवित रहो' इत्यादि पुण्य शब्दोंसे उस समय जिनकी स्तुति हो रही थी, कुलाचलोंसे उत्पन्न अत्यधिक स्वच्छ जलसे युक्त महा-नदियोंकी तरंगोंके संसर्गसे शीतल, भोगभूमि सम्बन्धी कल्पवृक्षोंके रंग-बिरंगे पुष्प-समूहके संयोगसे आश्चर्यकारी सुगन्धिको धारण करनेवाले तथा खेद दूर करनेके लिए सम्भ्रमपूर्वक बहुत दूरसे सम्मुख आये हुए मित्रके समान, शरीरके अनुकूल मन्द-मन्द समीरसे जिनका आलिंगन हो रहा था, जो प्रभु थे, तीर्थंकर थे, कोमल शरीरके धारक थे, जो मनको हरण करनेवाले तथा बाल्य अवस्थाके अनुरूप वस्त्रोंसे सुशोभित विशिष्ट आभूषणोंसे युक्त थे, देदीप्यमान मालाओं-से उज्ज्वल थे, बाल कल्पवृक्षकी उत्कृष्ट शोभाको तिरस्कृत करनेवाले थे, मेघके समान श्याम-मूर्तिके धारक थे, सफेद एवं उत्कृष्ट गन्धसे युक्त उत्तम चन्दनसे लिप्त थे और इसके कारण जो उदित होती हुई सघन चांदनीसे आलिंगित प्रगाढ़ इन्द्रनीलमणिके पर्वतकी शोभाको धारण कर रहे थे, और देवोंकी सेनासे आवृत थे ऐसे नेमिजिनेन्द्र शीघ्र ही उत्तर दिशाको उल्लंघ कर अपने उस सौर्यपुर नगरमें जा पहुँचे जहांकी दिशाओंका अन्तराल और आकाश ऊँची-ऊँची ध्वजाओंके समूह तथा वादित्रोंकी गम्भीर ध्वनिसे व्याप्त था, जहांके बड़े-बड़े मार्ग, दिव्य और सुगन्धित जलकी वृष्टिसे सींचे जाकर फूलोंकी पड़ती हुई वर्षासे रुके हुए थे, जो लक्ष्मीका भण्डार था तथा मंगलाचारमय विधि-विधानसे सुन्दर था, उस समय भगवान् नेमिनाथ पृथिवो-पर समस्त लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले आश्चर्यको प्रकट कर रहे थे।

बालक होनेपर भी जिनकी शोभा बालकों जैसी नहीं थी अर्थात् जो प्रकृतिसे वयस्क-के समान सुन्दर थे। जो कृष्ण तथा सौर्यपुरकी प्रजारूपी शोभायमान कमलिनीको विकसित करनेके लिए बालसूर्य थे और जो अतिशय ऊँचे ऐरावत—गजराजके मस्तकपर विराजमान थे ऐसे जिन-बालकको लेकर इन्द्रने उन्हें माताकी गोदमें दिया। तदनन्तर विक्रिया शक्तिसे युक्त इन्द्रने स्वयं देदीप्यमान कन्धोंकी शोभाको पुष्ट करनेवाली हजार भुजाएँ बनाकर उन्हें फैलाया तथा उनपर अत्यधिक सौन्दर्यसे युक्त नाना प्रकारका नृत्य करनेवाली हजारों देवियों-को धारण किया। तत्पश्चात् इस लीलाको जब सामने बैठे हुए यादव लोग बड़े हर्षसे देख रहे थे तथा अपने हृदयमें जब इसे समस्त पृथ्वीके स्वामित्वके लाभसे भी अधिक समझ रहे थे तब राज्यमें दक्ष इन्द्रने महानन्द नामका वह उत्तम नाटक किया जिसने सबके नेत्रोंको विस्तृत कर दिया था, अर्थात् जिसे सब टकटकी लगाकर देख रहे थे। उत्सवपूर्वक प्रारम्भ किये हुए उत्तम ताण्डव नृत्यकी अखण्ड शोभाके प्रयोगसे सहित था, नाना प्रकारके वादित्रोंकी जातियोंके समूहसे जिसमें अभिनेय अंश वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे, जो भौंहोंके क्षोभकी लीलासे सहित था, दिङ्मण्डलके भेदसे सहित था, पृथ्वीके प्रतापसे सहित था, और नाना रसोंके कारण जिसमें उदार-भाव प्रकट हो रहा था।

तदनन्तर इन्द्रने भगवान्‌के माता-पिताको प्रणाम किया, उनकी पूजा की, अन्य म ुष्योंके लिए दुष्प्राप्य अमूल्य आभूषण आदिसे उन्हें विभूषित किया, रक्षाके निमित्त जिनेन्द्रके दाहिने हाथके अँगूठेमें अमृतमय मुख्य आहार निक्षिप्त किया। क्रीड़ाके लिए भगवान्‌की समान अवस्थाको धारण करनेवाले देवकुमारोंको उनके पास नियुक्त किया, कुबेरको यह आज्ञा दी कि तुम भगवान्‌की अवस्था, काल और ऋतुके अनुकूल उनके कल्याणके योग्य समस्त व्यवस्था करना। इस प्रकार इन्द्र यह आज्ञा देकर भगवान्‌के माता-पितासे पूछकर तथा उनकी आज्ञा प्राप्त कर अपने आपको कृतकृत्य मानता हुआ चार निकायके देवोंसे अनुगत समस्त इन्द्रोंके साथ जैसा आया था वैसा चला गया। इन्द्रकी यात्रा सफल हुई।

तदनन्तर अपना-अपना कार्य पूरा कर दिक्कुमारी देवियोंने आर्यपुत्री, जिनबालक सहित माता—शिवादेवीके पास आकर उन्हें प्रणाम किया और उसके बाद वे प्रकृष्ट हर्षसे युक्त अपने शरीरकी प्रभाओंसे दशों दिशाओंको देदीप्यमान करती हुई अपने-अपने स्थानोंपर चली गयीं। इधर गुण-समूहरूपी किरणोंके समूहसे समस्त जगत्‌को आनन्दित करनेवाले, बालक होनेपर भी वृद्धा-जैसी क्रियासे युक्त, बन्धुवर्ग तथा देवोंके द्वारा लालित नेमिजिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए लक्ष्मीसे सुशोभित होने लगे।

गौतम स्वामी कहते हैं कि यह स्तवन उन नेमिजिनेन्द्रके जन्माभिषेकसे सम्बन्ध रखनेवाला है जिनके सातिशय प्रभावने तीनों लोकोंको व्याप्त कर रखा है, जो पापको दूर करनेवाले हैं, एक पुण्यका ही मार्ग बतानेवाले हैं, संसारमें सारभूत हैं, मोक्षके निकट हैं, भव्य जीवोंको हर्ष उत्पन्न करनेवाले हैं, प्रमादको हरनेवाले हैं, धर्मका उपहार देनेवाले हैं, सब लोग बड़े हर्षसे जिनका नाम श्रवण करते हैं, जिनका स्मरण करते हैं और जिनका अच्छी तरह कीर्तन करते हैं। पढ़ा गया, सुना गया और सदा चिन्तवन किया गया यह स्तोत्र इस लोकमें साक्षात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्ररूपी सम्पत्तिको करता है, मानसिक और शारीरिक सुख प्रदान करता है, शान्ति करता है, पुष्टि करता है, तुष्टि और सम्पत्तिको सम्पन्न करता है तथा परलोकमें अनेक कल्याणोंकी प्राप्तिमें कारणभूत उत्कृष्ट पुण्यास्रवका स्वयं कारण है, समस्त पाप कर्मोंके हजारों प्रकारके आस्रवोंका निवारण करता है और पूर्वभवमें सर्वदा स्नेह तथा मोह आदि भावोंसे संचित भयंकरसे भयंकर पापोंका नाश करता है। यह मुख्य स्तोत्र, जिनेन्द्र भगवान्‌में सातिशय भक्ति उत्पन्न करे।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें जन्माभिषेकके समय इन्द्र द्वारा कृत स्तुतिका वर्णन करनेवाला उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३९॥

□

सर्ग- ४०

अथानन्तर—युद्धमें भाईका वध सुनकर शोकरूपी सागरमें डूबता हुआ जरासन्ध, शत्रुओं-पर उत्पन्न हुए क्रोधरूपी जहाजके द्वारा बचाया गया था। भावार्थ—भाई अपराजितके मरनेसे जरासन्धको जो दुःख हुआ था उससे वह अवश्य ही मर जाता परन्तु शत्रुओंसे बदला लेनेके क्रोधने उसकी रक्षा कर दी ॥१॥ समस्त नय और पराक्रममें निपुण जरासन्धने समस्त यादवोंका नाश करनेके लिए मनमें पक्का विचार कर लिया और निर्भीक हो शत्रुके सम्मुख जानेके लिए मित्रोंके समूहको आज्ञा दे दी ॥२॥ स्वामीकी आज्ञा पाकर उसके हितकी इच्छा करनेवाले नाना देशोंके राजा अपनी-अपनी चतुरंग सेनाओंसे युक्त हो आ पहुँचे ॥३॥ इधर अनन्त सेनारूपी सागरके मध्यमें वर्तमान जरासन्धने जब यादवोंकी ओर प्रयाण किया तब गुप्तचररूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले चतुर यादवोंने शीघ्र ही उसका पता चला लिया ॥४॥ तदनन्तर जो शास्त्र और अवस्थामें वृद्ध थे तथा पदार्थका यथार्थ स्वरूप निरूपण करनेवाले थे ऐसे वृष्णिवंश एवं भोजवंशके प्रधान पुरुष इस प्रकार मन्त्र करनेके लिए तत्पर हुए ॥५॥

वे कहने लगे कि तीन खण्डोंमें इसकी आज्ञा अन्य पुरुषोंके द्वारा कभी खण्डित नहीं हुई। यह अत्यन्त उग्र है, इसका शासन भी अत्यन्त उग्र है, चक्र, खड्ग, गदा तथा दण्डरत्न आदि अस्त्रोंके बलसे यह उद्धत है, किये हुए उपकारको माननेवाला है, जो मनुष्य अपराध कर नम्रीभूत हो जाते हैं उनपर यह क्षमा कर देता है, हम लोगोंका इसने पहले कभी अपकार नहीं किया, उपकार करनेमें ही निरन्तर तत्पर रहा है किन्तु अब माता और भाईके वधसे उत्पन्न पराभवरूपी रजके मलको दूर करनेके लिए क्रोधयुक्त हुआ है और भयभीत होते हुए हम लोगोंके सम्मुख आ रहा है ॥६-८॥ यह इतना अहंकारी है कि हम लोगोंकी दैव और पुरुषार्थ सम्बन्धी सामर्थ्यको जो कि अत्यन्त प्रकट है देखता हुआ भी नहीं देख रहा है ॥९॥ कृष्णके पुण्यका सामर्थ्य और बलरामका पौरुष—यह सब परम वैभव बालक अवस्था ही से प्रकट हो रहा है। इन्द्रोंके आसन-को कम्पित कर देनेवाले नेमिनाथ तीर्थंकर यद्यपि इस समय बालक हैं तथापि उनका प्रभुत्व तीनों जगत्में प्रकट हो चुका है। वह यह भी नहीं सोच रहा है कि जिस तीर्थंकरका पालन करनेके लिए समस्त लोकपाल व्यग्र रहते हैं उस तीर्थंकरके कुलका कौन मनुष्य अपकार कर सकेगा? ऐसा कौन अज्ञानी है जो बड़ी-बड़ी ज्वालाओंको धारण करनेवाली अग्निका हाथसे स्पर्श करेगा और ऐसा कौन बलवान् है जो जीतनेकी इच्छासे तीर्थंकर, बलभद्र और कृष्णका सामना करेगा? ॥१०-१३॥ यह राजा जरासन्ध प्रतिनारायण है और इसके मारनेवाले ये बलभद्र तथा नारायण यहाँ निश्चित ही उत्पन्न हो चुके हैं ॥१४॥ इसलिए जबतक यह प्रति-नारायणरूपी पतंग, अपने पक्षों (सहायकों, पक्षमें पंखों) के साथ आकर कृष्णरूपी अग्निमें स्वयं भस्म नहीं हो जाता है तबतक हम लोग शीघ्र ही विग्रहके बाद अन्यत्र आसन ग्रहण कर शूर-वीर कृष्णको विजयके सम्मुख करें। इस समय हम लोगोंको पश्चिम दिशाका आश्रय कर कुछ दिनों तक चुप बैठ रहना उचित है क्योंकि ऐसा करनेसे कार्यकी सिद्धि निःसन्देह होगी ॥१५-१७॥ हम लोग इस तरह शान्तिसे चुप रहेंगे फिर भी यदि जरासन्ध हमारा सामना करेगा तो हम

लोग युद्ध द्वारा सत्कार कर उसे यमराजके पास भेज देंगे ॥१८॥ इस प्रकार परस्पर सलाह कर उन्होंने वह मन्त्रणा अपने कटकमें प्रकट की और भेरीके शब्दसे नगरमें प्रस्थान करनेकी आज्ञा दे दी ॥१९॥ भेरीका शब्द सुनकर यादव और भोजवंशी राजाओंकी चतुरंग सेना चल पड़ी ॥२०॥ मथुरा, शौर्यपुर और वीर्यपुरकी प्रजाने स्वामीके अनुरागसे साथ ही प्रस्थान कर दिया ॥२१॥ धर्मात्माजनोंसे युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि चारों वर्णकी प्रजाने राजा, मन्त्री आदि प्रकृतिके साथ होनेवाले उस प्रस्थानको ऐसा माना जैसे अपने स्थानसे वनक्रीड़ाके लिए ही जा रहे हैं ॥२२॥ उस समय अपरिमित धनसे युक्त अठारह करोड़ यादव शौर्यपुरसे बाहर निकले थे ॥२३॥ उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और वार आदिको प्राप्त हुए वे उच्चकुलीन राजा, छोटे-छोटे पड़ावों द्वारा गमन करते थे ॥२४॥ तदनन्तर अनेक देशोंका उल्लंघन कर जब वे पश्चिम दिशाकी ओर गमन कर रहे थे तो विशाल विन्ध्याचल पर्वत उनके समीपस्थ हुआ अर्थात् क्रमशः गमन करते हुए वे विन्ध्याचलके समीप जा पहुँचे ॥२५॥ जो हाथियोंके वनोंसे सुन्दर था, सिंह और व्याघ्रोंसे सुशोभित था, और अपनी चोटियोंसे आकाशका चुम्बन कर रहा था ऐसे उस विन्ध्याचलकी शोभाने मनुष्योंका मन हर लिया ॥२६॥ 'मार्गमें पीछे-पीछे जरासन्ध आ रहा है' यह सुनकर अत्यधिक उत्साहसे भरे हुए यादव लोग भी युद्धकी इच्छा करते हुए उसकी प्रतीक्षा करने लगे ॥२७॥ उन दोनोंकी सेनाओंमें थोड़ा अन्तर देखकर समय और भाग्यके नियोगसे अर्धभरत क्षेत्रमें निवास करनेवाली देवियोंने अपने दिव्य सामर्थ्यसे विक्रिया कर बहुत-सी चिताएँ रच दीं और शत्रुके लिए यह दिखा दिया कि यादव लोग अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त हैं ॥२८-२९॥ जरासन्धने, ज्वालाओंके समूहसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसी जलती हुई चतुरंग सेनाको जहाँ-तहाँ देखा ॥३०॥ ज्वालाओंसे जब जरासन्धका मार्ग रुक गया तब उसने अपनी सेना वहीं ठहरा दी और बुढ़ियाका रूप धरकर रोती हुई एक देवीसे पूछा कि 'हे वृद्धे ! यह किसका विशाल कटक व्याकुल हो जल रहा है ? और तू यहाँ क्यों रो रही है ? सब ठीक-ठीक कह'। उस समय वृद्धाके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा उसका कण्ठ यद्यपि शोकसे रुँधा हुआ था तथापि जरासन्धके इस प्रकार पूछनेपर बड़ी कठिनाईसे शोकको रोककर वह कहने लगी ॥३१-३३॥

हे प्रतापी राजन् ! मैंने जो कुछ देखा है वह कहती हूँ क्योंकि यह एक साधारण बात है कि जो मनुष्य महापुरुषके लिए अपना दुःख निवेदन करता है वह बड़े-से-बड़े दुःखसे विमुक्त हो जाता है—छूट जाता है ॥३४॥ राजगृह नगरमें जरासन्ध नामका एक वह सत्यप्रतिज्ञ राजा है जो समुद्रान्त पृथिवीका शासन करता है ॥३५॥ जान पड़ता है कि उसकी प्रतापरूपी अग्निकी ज्वालाएँ शत्रुओंको शान्त करनेके लिए बड़वानलके छलसे समुद्रमें भी देदीप्यमान रहती हैं ॥३६॥ अपने अपराधोंकी बहुलतासे यादव लोग जरासन्धकी ओरसे सदा सशल्यहृदय रहते थे इसलिए उससे भयभीत हो प्राण बचानेके लिए कहीं भाग निकले। परन्तु समस्त पृथिवीमें जब उन्होंने कहीं किसीको शरण देनेवाला नहीं देखा तब वे अग्निमें प्रवेश कर मरणको ही उत्तम शरणमें जा पहुँचे अर्थात् अग्निमें जलकर निःशल्य हो गये ॥३७-३८॥ मैं उन राजाओंकी वंश-परम्परासे चली आयी दासी हूँ। मुझे अपना जीवन प्रिय था इसलिए मैं उनके साथ नहीं जल सकी परन्तु अपने स्वामीके कुमरणके दुःखसे दुःखी होकर रो रही हूँ ॥३९॥ जिनके पीछे जरासन्ध लगा हुआ था ऐसे यदुवंशी, कुरुवंशी तथा भोजवंशी राजाओंकी प्रजा अपने मन्त्री आदिके साथ अग्निके मुखमें प्रविष्ट हो चुकी है ॥४०॥ परन्तु मुझ अभागिनीको अपने प्राण प्यारे रहे इसलिए मेरा शरीर दुःखके भारका स्थान हो रहा है तथा उन सबके वियोगसे दुःखी हो मैं पिशाचसे ग्रस्त-की तरह साँसें भर रही हूँ—जी रही हूँ ॥४१॥

वृद्धाके इस प्रकार वचन सुनकर जरासन्ध बहुत विस्मित हुआ और उसके वचनोंका

निश्वास कर अन्धकवृष्णियोंके वंशका नाश मानने लगा ॥४२॥ वह उसी समय अपने स्थानपर वापस लौट आया और वहाँ रहकर मृतक जनोंके लिए बन्धुजनोंके साथ जलांजलि देकर कृत-कृत्यकी तरह निश्चिन्ततासे रहने लगा ॥४३॥ उधर यादव लोग भी अपनी इच्छानुसार इलायची-के वनकी लताओंके समागमसे सुगन्धित वायुके द्वारा वीजित समुद्रके तटपर जा पहुँचे ॥४४॥ इस प्रकार पश्चिम समुद्रके पास आकर दूर देशमें ठहरे हुए वे सब राजा, प्रजा तथा मन्त्री आदि लोग यथायोग्य स्थानोंमें स्थित हो गये ॥४५॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, अत्यन्त निर्दय और कुपित जरासन्ध अत्यधिक हठसे मार्ग-में यादवोंके पीछे लगा और शत्रुका नाश करने तथा स्वयं मरनेके लिए शीघ्र दौड़ा परन्तु ज्वालाओंसे मार्ग रुक जानेके कारण चूँकि लौट आया इसलिए समस्त उत्तम क्रियाओंको करनेवाले जिनेन्द्र भक्त जन कहते हैं कि वह उन दोनोंका पुण्योदय ही श्रवण करने योग्य था। भावार्थ—अपने-अपने पुण्योदयसे ही दोनोंकी रक्षा हुई थी ॥४६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें हरिवंश और यादवोंके प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४०॥

□

सर्ग- ४१

तदनन्तर समुद्रविजय आदि दशार्ह, महाभोज, वृष्णि, कृष्ण तथा नेमिजिनेन्द्र आदि क्षत्रिय लहराते हुए समुद्रको देखनेकी इच्छासे उसके समीप गये ॥१॥ उस समय उस समुद्रमें जहाँ-तहाँ जलके छींटे बिखर रहे थे। उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो मदोन्मत्त दिग्गज ही हो और मछलियोंके बार-बार उछलने तथा नीचे आनेकी लीलासे ऐसा जान पड़ता था मानो नेत्रोंको कुछ-कुछ खोल रहा हो और बन्द कर रहा हो ॥२॥ वह समुद्र ऊँची उठती हुई अपनी चंचल तरंगरूपी भुजाओंके समूहसे ऐसा जान पड़ता था मानो विशाल आकाशसे ईर्ष्या कर समस्त दिशाओंसे युक्त आकाशका आस्फालन करनेके लिए ही उद्यत हुआ हो ॥३॥ जो लहरोंसे चारों ओर घूम रहा था, जिसके भीतर बड़े-बड़े भयंकर मगर-मच्छ उछल-कूद कर रहे थे, एवं जो मकरी-रूपी हस्तिनियोंसे घिरा हुआ था ऐसे समुद्रको उन सबने देखा ॥४॥ उस समय वह समुद्र, जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा निरूपित शास्त्र-रूपी सागरके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार बुद्धिहीन मनुष्य उद्योग करनेपर भी जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागरका पार प्राप्त नहीं कर पाते हैं उसी प्रकार बुद्धिहीन (नौकानिर्माण आदिकी बुद्धिसे रहित) मनुष्य उद्यम करनेपर भी उस समुद्रका पार नहीं प्राप्त कर पा रहे थे। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागरकी अपनी स्थिति, अत्यन्त गम्भीरताके योगसे अलंघित है अर्थात् उसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है उसी प्रकार उस समुद्रकी अपनी स्थिति भी अत्यधिक गम्भीरता—गहराईके योगसे अलंघित थी अर्थात् उसे लाँघकर कोई नहीं जा सकता था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर, उत्कृष्ट भंगरूपी तरंगोंसे युक्त अंग—द्वादशांगरूपी महाजलसे युक्त है उसी प्रकार वह समुद्र भी ज्वारभाटा, तरंग तथा फेन आदि उठते हुए अंगोंसे पूर्ण महाजलसे युक्त था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर पुराणोंमें निरूपित नाना मार्गोंके समूहरूपी नदियोंके अग्रभागसे मनोहर है उसी प्रकार वह समुद्र भी पुराण—जीर्ण-शीर्ण मार्गको बहाकर लानेवाले नदियोंके अग्रभागसे मनोहर था अर्थात् उसमें अनेक नदियाँ आकर मिल रही थीं। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर सर्वश्रेष्ठ आत्मद्रव्य, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी महारत्न तथा मुक्त जीवरूपी मुक्ताफलोंका आकर—खान है उसी प्रकार वह समुद्र भी अमूल्य—श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त बड़े-बड़े रत्न तथा मुक्ताफलोंका आकर—खान था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर अनादिक है—अर्थ सामान्यकी दृष्टिसे अनादि है उसी प्रकार वह समुद्र भी *अनादिक—असदृश जलसे युक्त है। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर विशालता और निर्दोषताके संयोगसे आकाशकी लक्ष्मीको स्वीकृत करता है—आकाशके समान जान पड़ता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अपने विस्तार और स्वच्छताके कारण आकाशकी लक्ष्मीको स्वीकृत कर रहा था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर अपने भीतर अनन्त जीवोंकी रक्षारूप दृढ़ व्रतको धारण करता है अर्थात् अनन्त जीवोंकी रक्षारूप सुदृढ़ व्रतको धारण करनेका उपदेश देता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अपने भीतर रहनेवाले अनन्त जीवोंकी रक्षारूप दृढ़व्रतको धारण करता था—अपने भीतर रहनेवाले

अनन्त जीवोंकी रक्षा करता था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर, विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त वादियोंके द्वारा अलंघित पद है अर्थात् समस्त वादी उसके एक पदका भी खण्डन नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार वह समुद्र भी बक-झक करनेवाले समस्त विजयाभिलाषी लोगोंके द्वारा अलंघित पद था अर्थात् उसके एक स्थानका भी कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर अपने मुख अथवा स्पर्शसे ही शरणागत मनुष्योंके अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी सन्तापको दूर करता है फिर अपने अवगाहन, मनन, चिन्तन आदिके द्वारा तो कहना ही क्या है? उसी प्रकार वह समुद्र भी अपने अग्रभाग अथवा स्पर्शसे ही समीपमें आये हुए मनुष्योंके अगणित एवं सन्ततिबद्ध सन्तापको दूर करता था फिर अपने अवगाहनकी तो बात ही क्या थी? इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा निरूपित शास्त्र-रूपी सागरके समान उस समुद्रको देखकर वह राजाओंका समूह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समय वह समुद्र बिखरी हुई पुष्पांजलियोंसे सुशोभित हो रहा था, तरंगोंसे लहरा रहा था और शंखोंके शब्दसे व्याप्त था। इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् नेमिनाथके आगमनसे उत्पन्न अत्यधिक हर्षसे ही उसने पुष्पांजलियां बिखेरी हों, तरंगरूपी भुजाओंको ऊपर उठाकर वह नृत्य कर रहा हो और शंखध्वनिके बहाने हर्षध्वनि कर रहा हो ॥५–११॥ वह अपने तरंगरूपी हाथोंके द्वारा मूँगा और मोतियोंका अर्घ्य बिखेर रहा था तथा गर्जनासे मुखर होनेके कारण मानो कृष्णके लिए स्वागत शब्दका उच्चारण ही कर रहा हो ॥१२॥ उस समुद्रमें मछलियां उछल रही थीं उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वह मछलियांरूपी नेत्रोंसे युगके प्रधान श्री बलदेवको देखकर उछलते हुए जलसे उठकर उनका सत्कार ही कर रहा हो ॥१३॥ समुद्रमें जो फेनोंके समूह उठ रहे थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो समुद्रविजय, अक्षोभ्य तथा भोजक वृष्णि आदि राजाओंको देख उनके निमित्तसे होनेवाले अपने हर्षको ही प्रकट कर रहा हो ॥१४॥

तदनन्तर किसी प्रशस्त तिथिमें मंगलाचारकी विधिको जाननेवाले कृष्णने अपने बड़े भाई बलदेवके साथ स्थान प्राप्त करनेकी अभिलाषासे अष्टमभक्त अर्थात् तीन दिनका उपवास किया ॥१५॥ तत्पश्चात् पंचपरमेष्ठियोंका स्तवन करनेवाले धीर-वीर कृष्ण, जब समुद्रके तटपर नियमोंमें स्थित होनेके कारण डाभकी शय्यापर उपस्थित थे तब सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे गौतम नामक शक्तिशाली देवने आकर समुद्रको शीघ्र ही दूर हटा दिया। वह समुद्र वहां कालान्तरमें आकर स्थित हो गया था ॥१६–१७॥ तदनन्तर श्रीकृष्णके पुण्य और श्री नेमिनाथ तीर्थंकरकी सातिशय भक्तिसे कुबेरने वहां शीघ्र ही द्वारिका नामको उत्तम पुरीकी रचना कर दी ॥१८॥ वह नगरी बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वज्रमय कोटके घेरासे युक्त तथा समुद्ररूपी परिखासे घिरी हुई थी ॥१९॥ रत्न और स्वर्णसे निर्मित अनेक खण्डोंके बड़े-बड़े महलोंसे आकाशको रोकती हुई वह द्वारिकापुरी आकाशसे च्युत अलकापुरीके समान सुशोभित हो रही थी ॥२०॥ कमल तथा नीलोत्पलों आदिसे आच्छादित, स्वादिष्ट जलसे युक्त वापी, पुष्करिणी, बड़ी-बड़ी वापिकाएँ, सरोवर और ह्रदोंसे युक्त थी ॥२१॥ देदीप्यमान कल्पलताओंसे आलिंगित कल्पवृक्षोंके समान सुशोभित पान-लौंग तथा सुपारी आदिके उत्तमोत्तम वनोंसे सहित थी ॥२२॥ वहां सुवर्णमय प्राकार और गोपुरोंसे युक्त बड़े-बड़े महल विद्यमान थे तथा सभी स्थानोंपर सुख देनेवाले रंग-बिरंगे मणिमय फर्श शोभायमान थे ॥२३॥ जिनके बीच-बीचमें प्याऊ तथा सदावर्त आदिका प्रबन्ध था ऐसी लम्बी-चौड़ी सड़कोंसे वह नगरी बहुत सुन्दर जान पड़ती थी तथा वह राजाओं और समस्त प्रजाके निवासके योग्य सुशोभित थी ॥२४॥ सब प्रकारके रत्नोंसे निर्मित प्राकार और तोरणोंसे युक्त एवं बाग-बगीचोंसे सहित ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिरोंसे वह नगरी

अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥२५॥ इस नगरीके बीचोंबीच आग्नेय आदि दिशाओंमें समुद्र-विजय आदि दशों भाइयोंके क्रमसे महल सुशोभित हो रहे थे ॥२६॥ उन सब महलोंके बीचमें कल्पवृक्ष और लताओंसे आवृत, अठारह खण्डोंसे युक्त श्रीकृष्णका सर्वतोभद्र नामका महल सुशोभित हो रहा था ॥२७॥ अन्तःपुर तथा पुत्र आदिके योग्य महलोंकी पंक्तियाँ श्रीकृष्णके भवनका आश्रय कर चारों ओर सुशोभित हो रही थीं ॥२८॥ अन्तःपुरके घरोंकी पंक्तियोंसे घिरा एवं वापिका तथा बगीचा आदिसे विभूषित बलदेवका भवन सुशोभित हो रहा था ॥२९॥ बलदेव-के महलके आगे एक सभामण्डप सुशोभित था जो इन्द्रके सभामण्डपके समान था और अपनी दीप्तिसे सूर्यकी किरणोंका खण्डन करनेवाला था ॥३०॥ उस नगरीमें उग्रसेन आदि सभी राजाओं-के योग्य महलोंकी पंक्तियाँ सुशोभित थीं जो आठ-आठ खण्डकी थीं ॥३१॥ जिसका वर्णन करना शक्य नहीं था तथा जो अनेक द्वारोंसे युक्त थी ऐसी सुन्दर नगरीकी रचना कर कुबेरने श्री-कृष्णसे निवेदन किया अर्थात् नगरी रची जानेकी सूचना श्रीकृष्णको दी ॥३२॥ उसी समय कुबेरने श्रीकृष्णके लिए मुकुट, उत्तम हार, कौस्तुभमणि, दो पीत-वस्त्र, लोकमें अत्यन्त दुर्लभ नक्षत्रमाला आदि आभूषण, कुमुद्वती नामकी गदा, शक्ति, नन्दक नामका खड्ग, शार्ङ्ग नाम-का धनुष, दो तरकश, वज्रमय बाण, सब प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त एवं गरुड़की ध्वजासे युक्त दिव्य रथ, चमर और श्वेत छत्र प्रदान किये ॥३३-३५॥ साथ ही बलदेवके लिए दो नील-वस्त्र, माला, मुकुट, गदा, हल, मुसल, धनुष-बाणोंसे युक्त दो तरकश, दिव्य अस्त्रोंसे परिपूर्ण एवं तालकी ऊँची ध्वजासे सबल रथ और छत्र आदि दिये ॥३६-३७॥ समुद्रविजय आदि दसों भाई तथा भोज आदि राजाओंका भी कुबेरने वस्त्र, आभरण आदिके द्वारा खूब सत्कार किया ॥३८॥ श्री नेमिनाथ तीर्थंकर अपनी अवस्थाके योग्य उत्तमोत्तम वस्तुओंके द्वारा पूजाको प्राप्त हुए ही थे। इस विषयका अधिक वर्णन करनेसे क्या प्रयोजन है? ॥३९॥ 'आप सब लोग नगरीमें प्रवेश करें' इस प्रकार सबसे कहकर और पूर्णभद्र नामक यक्षको सन्देश देकर कुबेर क्षणभरमें अन्तर्हित हो गया ॥४०॥

तदनन्तर यादवोंके संघने समुद्रके तटपर श्रीकृष्ण और बलदेवका अभिषेक कर हर्षित हो उनकी जयजयकार घोषित की ॥४१॥ तत्पश्चात् जिन्होंने पुण्यका संचय किया था ऐसे श्री-कृष्ण आदिने चतुरंग सेना और समस्त प्रजाके साथ, प्राप्त हुए स्वर्गके समान उस द्वारिकापुरी-में बड़े वैभवसे प्रवेश किया ॥४२॥ पूर्णभद्र यक्षके द्वारा बतलाये हुए मंगलमय भवनोंमें प्रजाके सब लोग अपने परिवारके साथ यथायोग्य सुखसे ठहर गये ॥४३॥ मथुरा, सूर्यपुर और वीर्य-पुरके निवासी लोग अपने-अपने मोहल्लोंके पूर्व-जैसे ही नाम रखकर यथायोग्य सन्तोषको प्राप्त हुए ॥४४॥ कुबेरकी आज्ञासे यक्षोंने इस नगरीके समस्त भवनोंमें साढ़े तीन दिन तक अटूट धन-धान्यादिकी वर्षा की थी ॥४५॥ जब श्रीकृष्ण वहाँ रहने लगे तब उनके प्रतापसे वशीभूत हो पश्चिमके राजा उनकी आज्ञा मानने लगे ॥४६॥ तदनन्तर द्वारिकापुरीके स्वामी श्रीकृष्ण अनेक राजाओंकी हजारों कन्याओंके साथ विवाह कर वहाँ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगे ॥४७॥

जिनका शरीर समस्त कलाओंका स्थान था ऐसे नेमिकुमार भी वहाँ बालचन्द्रमाके समान दिनों-दिन बढ़ने लगे ॥४८॥ जिनका उदय यादवोंके मुख-कमलको विकसित करनेवाला था, एवं जिन्होंने अपनी ज्योतिसे अन्धकारके समूहको नष्ट कर दिया ऐसे नेमिकुमाररूपी बालसूर्य अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥४९॥ प्रतिदिन बलभद्र और श्रीकृष्णके आनन्दको बढ़ाते हुए नेमिकुमार बाल्य अवस्थामें नगरनिवासी लोगोंके नेत्र और मनको हरण करनेवाली क्रीड़ा करते थे ॥५०॥ अतिशय रूपके धारक भगवान् नेमिनाथ जहाँ-तहाँ समस्त यादवोंकी स्त्रियोंके एक

हाथसे दूसरे हाथको सुशोभित करते हुए यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए ॥५१॥ जिनके शरीरमें अनेक शुभ लक्षण प्रकट थे, तथा जिनके नेत्र नील कमलके समान थे ऐसे युवा नेमिकुमारपर लगी दृष्टिको स्त्रियां दूसरी जगह ले जानेमें समर्थ न हो सकीं ॥५२॥ भगवान्‌के रूपरूपी बाणने दूरसे ही जगत्‌के जीवोंकी हृदयस्थलीको भेद दिया था परन्तु उनकी हृदयस्थलीको दूसरोंका रूपरूपी बाणोंका समूह नहीं भेद सका था। भावार्थ—यौवन प्रकट होनेपर भी भगवान्‌के हृदयमें कामकी बाधा उत्पन्न नहीं हुई थी ॥५३॥ चूँकि पृथिवीतलपर भगवान्‌के रूपकी न उपमा थी न उपमेय ही था इसलिए भगवान्‌के रूपके विषयमें उपमान और उपमेयके लिए इन्द्रको खेद-खिन्न होना पड़ा ॥५४॥ क्रीड़ाओंके समय अपने कुटुम्बी जनोंके द्वारा अपने विवाहकी चर्चा की जानेपर नेमिजिनेन्द्र मन्द-मन्द मुसकराते हुए स्वयं लज्जित हो उठते थे ॥५५॥ तीन ज्ञानरूपी जलके द्वारा जिसके भीतरका मोहरूपी कलंक धुल गया था ऐसा भगवान्‌का अन्तःकरण वैभव-रूपी धूलसे धूसर नहीं हुआ ॥५६॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो नेमिजिनेन्द्र, भोजक वृष्णि, कृष्ण और बलभद्रके उत्तम गुणोंके समूहरूपी प्रकट चाँदनीसे स्पृष्ट थी, जिसमें हर्षसे भरे लोग तरंगोंके समान उछल रहे थे तथा जो द्वारोंसे सुन्दर थी ऐसी द्वारिकापुरी समुद्रकी वेलाके समान अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें द्वारिकापुरीका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४१॥

□

सर्ग- ४२

अथानन्तर किसी समय आकाशमें गमन करनेवाले नारद मुनि आकाशसे उतरकर सभासदोंसे भरी हुई यादवोंकी सभामें आये ।।१।। उन नारदजीकी जटाएँ, दाढ़ी और मूँछ कुछ-कुछ पीले रंगकी थीं तथा वे स्वयं चन्द्रमाके समान शुक्ल कान्तिके धारक थे इसलिए बिजलियोंके समूहसे सुशोभित शरद् ऋतुके मेघके समान जान पड़ते थे ।।२।। वे रंग-बिरंगे एक विस्तृत योग-पट्टसे विभूषित थे इसलिए परिवेष (मण्डल) से युक्त चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहे थे ।।३।। उनका कौपीन और चद्दर हवासे मन्द-मन्द हिल रहा था इसलिए वे उनसे ऐसे जान पड़ते थे मानो जगत्का उपकार करनेकी इच्छासे आकाशसे कल्प वृक्ष ही नीचे आ गिरा हो ।।४।। वे अपने शरीरपर स्थित तीन लरके उस शुद्ध यज्ञोपवीत सूत्रसे अत्यन्त उज्ज्वल थे जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन गुणोंके समान जान पड़ता था ।।५।। वे जिस प्रकार असाधारण पाण्डित्यसे सुशोभित थे उसी प्रकार गौरवकी उत्पत्तिके असाधारण कारणरूप नैष्ठिक ब्रह्मचर्यसे सुशोभित थे ।।६।। वे राजाओंके उत्कृष्ट राज्योदयके समान समस्त राजाओंके पूजनीय थे क्योंकि जिस प्रकार राज्योदय शुद्धप्रकृति अर्थात् भ्रष्टाचार-रहित मन्त्री आदि प्रकृतिसे सहित होता है उसी प्रकार नारद भी शुद्धप्रकृति अर्थात् निर्दोष स्वभावके धारक थे और राज्योदय जिस प्रकार शत्रुओंके षड्वर्गसे रहित होता है उसी प्रकार नारद भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छह अन्तरंग शत्रुओंसे रहित थे ।।७।। द्वारिकाका वैभव देख, आश्चर्यसे जिनका शिर तथा शरीर कम्पित हो रहा था ऐसे नारदजीको आकाशसे नीचे उतरते देख सब राजा लोग सहसा उठकर खड़े हो गये ।।८।। सम्मान मात्रसे सन्तुष्ट हो जानेवाले नारदजीको सबने नमस्कार तथा आसन-दान आदि उपचारोंसे क्रमपूर्वक सम्मान किया ।।९।। श्री नेमिजिनेन्द्र, कृष्ण नारायण और बलभद्रके दर्शन तथा सम्भाषणसे उत्पन्न सुखरूपी अमृतका पान करके भी जिनके नेत्र तृप्त नहीं हुए थे ऐसे नारद मुनि सभारूप सागरके मध्यमें अधिष्ठित हुए—विराजमान हुए ।।९-१०।। तत्पश्चात् नारदने पूर्व-पश्चिम विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न तीर्थंकरोंकी कथारूप अमृतसे तथा मेरु पर्वतकी वन्दनाके समाचारोंसे उन सबके मनको सन्तुष्ट किया ।।११।।

इसी अवसरमें राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे नाथ ! यह नारद कौन है ? और इसकी उत्पत्ति किससे हुई है ? इसके उत्तरमें पूज्य गणधर देव कहने लगे कि हे श्रेणिक ! चरमशरीरी नारदकी उत्पत्ति तथा स्थिति कहता हूँ सो श्रवण कर ।।१२-१३।।

सौर्यपुरके पास दक्षिण दिशामें एक तापसोंका आश्रम था उसमें फल-मूल आदिका भोजन करनेवाले अनेक तापस रहते थे ।।१४।। वहाँ उञ्छ वृत्तिसे आजीविका करनेवाले एक सुमित्र नामक तापसने अपनी सोमयशा नामक स्त्रीमें चन्द्रमाके समान कान्तिवाला एक पुत्र उत्पन्न किया ।।१५।।

भूख और प्याससे पीड़ित सुमित्र और सोमयशा, दोनों दम्पती चित्त सोनेवाले उस बच्चेको एक वृक्षके नीचे रखकर उञ्छ वृत्तिके लिए जबतक नगरमें आये तबतक एकान्तमें

क्रीड़ा करते हुए उस बालकको देखकर जृम्भक नामक देव पूर्वभवके स्नेहसे उठाकर वैताड्यपर्वत-पर ले गये। वहाँ उन्होंने मणिकांचन नामक गुहामें उस बालकको रखकर कल्प वृक्षोंसे उत्पन्न दिव्य आहारसे उसका पालन-पोषण किया ॥१६-१८॥ वह बालक देवोंको बहुत ही इष्ट था इसलिए जब वह आठ वर्षका हुआ तब उन्होंने सन्तुष्ट होकर उसे रहस्यसहित जिनागम और आकाशगामिनी विद्या प्रदान की ॥१९॥ वही नारदके नामसे प्रसिद्ध हुआ। नारद अनेक विद्याओंका ज्ञाता तथा नाना शास्त्रोंमें निपुण था। वह साधुके वेषमें रहता था तथा साधुओंकी सेवासे उसने संयमासंयम—देशव्रत प्राप्त किया था। वह कामको जीतनेवाला होकर भी कामके समान विभ्रमको धारण करता था, कामी मनुष्योंको प्रिय था, हास्यरूप स्वभावसे युक्त था, लोभसे रहित था, चरमशरीरी था, यद्यपि स्वभावसे ही निष्कषाय था तथापि पृथ्वीमें युद्ध देखना उसे बहुत प्रिय था, अधिकतर वह अधिक बोलनेवालोंमें शिरोमणि था, और जिनेन्द्र भगवान्के जन्माभिषेक आदि महान् अतिशयोंके देखनेका कुतूहली होनेसे विभ्रमपूर्वक लोकमें परिभ्रमण करता रहता था ॥२०-२३॥

हे राजन्! यह वही नारद, यादवोंसे पूछकर श्रीकृष्णका अन्तःपुर देखनेके लिए अन्तःपुरके महलमें प्रविष्ट हुआ ॥२४॥ उस समय कृष्णकी महादेवी सत्यभामा, जो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी, आभूषणादि धारण कर हाथमें स्थित मणिमय दर्पणमें अपना रूप देख रही थी। नारदने उस साध्वीको दूरसे ही देखा। वह उनकी दृष्टिके सामने साक्षात् रतिके समान जान पड़ती थी। अपना रूप देखनेमें जिसका चित्त उलझा हुआ था ऐसी सत्यभामा नारदको न देख सकी इसलिए वह सहसा रुष्ट हो वहाँसे शीघ्र ही बाहर निकल आये ॥२५-२७॥ बाहर आकर वह विचार करने लगे कि इस संसारमें समस्त विद्याधर और भूमिगोचरी राजा तथा उनके अन्तःपुरोंकी स्त्रियां उठकर मुझे नमस्कार करती हैं परन्तु यह विद्याधरकी लड़की सत्यभामा इतनी ढीठ है कि इसने सौन्दर्यके मदसे गर्वितचित्त हो मेरी ओर देखा भी नहीं अतः इसे धिक्कार है ॥२८-२९॥ अब मैं सपत्नीरूपी वज्रपातके द्वारा इसके सौन्दर्य, सौभाग्य और गर्वरूपी पर्वतको अभी हाल चूर-चूर करता हूँ ॥३०॥ रूप और सौभाग्यमें सत्यभामाको अतिक्रान्त करनेवाली अन्य कन्याको श्रीकृष्ण शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि यह पृथ्वी अनेक रत्नोंसे युक्त है। सपत्नीके आनेपर मैं सत्यभामाके मुखको श्वासोच्छ्वाससे मलिन देखूँगा। मुझ नारदके कुपित होनेपर इसका अनर्थसे छुटकारा कैसे हो सकता है? ॥३१-३२॥ इस प्रकार विचार करते हुए नारद आकाशमें उड़कर उस कुण्डिनपुरमें जा पहुँचे, जहाँ शत्रुओंके लिए भयंकर महाकुलीन राजा भीष्म रहते थे ॥३३॥ उनके नीति और पौरुषको पुष्ट करनेवाला रुक्मी नामका पुत्र था तथा कला और गुणोंमें निपुण रुक्मिणी नामकी एक शुभ कन्या थी ॥३४॥ निर्मल अन्तःकरणके धारक नारदने, राजा भीष्मके अन्तःपुरमें, अनुराग—प्रेमको धारण करनेवाली फुआसे युक्त उस रुक्मिणी नामक कन्याको देखा जो अनुराग—लालिमाको धारण करनेवाली सन्ध्यासे युक्त सूर्यकी उदयकालीन लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥३५॥ वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो तीनों जगत्के उत्तम लक्षण, उत्तम रूप और उत्तम भाग्यको लेकर नारायण-कृष्णके उत्कृष्ट पुण्यके द्वारा ही रची गयी हो ॥३६॥ वह कन्या अपने हाथ, पैर, मुखकमल, जंघा और स्थूल नितम्बकी शोभासे, रोमराजि, भुजा, नाभि, स्तन, उदर तथा शरीरकी कान्तिसे, भौंह, कान, नेत्र, शिर, कण्ठ, नाक और अधरोष्ठकी आभासे संसारकी समस्त उपमाओंको अभिभूत-तिरस्कृत कर उत्कृष्ट-रूपसे स्थित थी ॥३७-३८॥ अनेक उत्तमोत्तम स्त्रियोंको देखनेवाले नारद उस कन्याको देखकर आश्चर्यमें पड़ गये तथा इस प्रकार विचार करने लगे कि 'अहो! यह कन्या तो पृथिवीपर रूपकी चरम सीमामें विद्यमान है—सबसे अधिक रूपवती है ॥३९॥ जो अपनी सानी नहीं रखती ऐसी इस

कन्याको कृष्णके साथ मिलाकर मैं सत्यभामाके रूप तथा सौभाग्य-सम्बन्धी दुष्ट अहंकारको अभी हाल खण्डित किये देता हूँ' ॥४०॥

इस प्रकार विचार करते हुए नारदको आये देख, शब्दायमान भूषणोंसे युक्त तथा स्वाभाविक विनयकी भूमि रुक्मिणी उठकर खड़ी हो गयी ॥४१॥ उसने हाथ जोड़कर बड़े आदरसे सम्मुख जाकर नारदको प्रणाम किया तथा नारदने भी 'द्वारिकाके स्वामी तुम्हारे पति हों' इस आशीर्वादसे उस नम्रीभूत कन्याको प्रसन्न किया ॥४२॥ उसके पूछनेपर जब नारदने द्वारिकाका वर्णन किया तब वह कृष्णमें अत्यन्त अनुरक्त हो गयी ॥४३॥ अन्तमें नारदरूपी चित्रकार, रुक्मिणीके हृदयकी दीवालपर वर्ण, रूप तथा अवस्थासे युक्त कृष्णका चित्र खींचकर बाहर चले गये ॥४४॥

बाहर आकर नारदने रुक्मिणीका आश्चर्यकारी रूप स्पष्ट रूपसे चित्रपर लिखा और चित्तमें विभ्रम उत्पन्न करनेवाला वह रूप उन्होंने जाकर श्रीकृष्णके लिए दिखाया ॥४५॥ नवयौवनवती तथा स्त्रियोंके लक्षणोंसे युक्त उस चित्रगत कन्याको देखकर कृष्णने दुगुने आदरसे युक्त हो नारदसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह किसकी विचित्र कन्या आपने चित्रपटपर अंकित की है ? यह तो मानुषीका तिरस्कार करनेवाली कोई विचित्र देव-कन्या जान पड़ती है ॥४६–४७॥ कृष्णके इस प्रकार पूछनेपर छल-रहित नारदने सब समाचार ज्योंका-त्यों सुना दिया तथा उसे सुनकर कृष्ण उसके साथ विवाह करनेकी चिन्ता करने लगे ॥४८॥

उधर सब समाचारको जाननेवाली फुआने हितकी इच्छासे एकान्तमें ले जाकर योग्य समयमें रुक्मिणीसे इस प्रकार कहा कि हे बाले ! तू मेरे वचन सुन। किसी समय अवधि-ज्ञानके धारक अतिमुक्तक मुनि यहाँ आये थे। उन्होंने तुझे देखकर कहा था कि 'यह कन्या स्त्रियोंके उत्तम लक्षणोंसे युक्त है अतः लक्ष्मीके समान होनहार नारायण श्रीकृष्णके वक्षःस्थलका आलिंगन प्राप्त करेगी। कृष्णके अन्तःपुरमें स्त्रियोंके योग्य गुणोंसे युक्त सोलह हजार रानियाँ होंगी, उन सबमें यह प्रभुत्वको प्राप्त होगी—उन सबमें प्रधान बनेगी।' इस प्रकार कहकर अमोघवादी मुनिराज उस समय चले गये और कुछ समय तक कृष्णकी चर्चा अन्तर्हित रही आयी। परन्तु आज नारदने पुनर्जन्मकी कथाके समान यह कथा पुनः उठायी है। यदि यह सब सत्य है तो मैं समझती हूँ कि मुनिराजके उक्त वचन सत्य ही निकलेंगे। परन्तु हे बाले ! विचारणीय बात यह है कि तेरा भाई रुक्मी जो अत्यधिक प्रभावको धारण करनेवाला है वह तुझे बन्धुपनेको धारण करनेवाले शिशुपालके लिए दे रहा है। तेरे विवाहका समय भी निकट है और आज-कलमें तेरे लिए शिशुपाल यहाँ आनेवाला है ॥४९–५६॥

फुआके ऐसे वचन सुन रुक्मिणीने कहा कि मुनिराजके वचन पृथिवीपर अन्यथा कैसे हो सकते हैं ॥५७॥ इसलिए आप मेरे अभिप्रायको किसी तरह शीघ्र ही प्रयत्न कर द्वारिकापतिके पास भेज दीजिए। वही मेरे पति होंगे ॥५८॥ कन्याके यह वचन सुनकर तथा उसका अभिप्राय जानकर फुआने शीघ्र ही एक विश्वासपात्र आदमीके द्वारा गुप्त रूपसे यह लेख श्रीकृष्णके पास भेज दिया ॥५९॥ लेखमें लिखा था कि हे कृष्ण ! रुक्मिणी आपमें अनुरक्त है तथा आपके नामग्रहणरूपी आहारसे सन्तुष्ट हो प्राण धारण कर रही है। यह आपके द्वारा अपना हरण चाहती है। हे माधव ! यदि माघ शुक्ला अष्टमीके दिन आप आकर शीघ्र ही रुक्मिणीका हरण कर ले जाते हैं तो निःसन्देह यह आपकी होगी। अन्यथा पिता और बान्धवजनोंके द्वारा यह शिशुपालके लिए दे दी जायेगी और उस दशामें आपकी प्राप्ति न होनेसे मरना ही इसे शरण रह जायेगा अर्थात् यह आत्म-घात कर मर जायेगी। यह नागदेवकी पूजाके बहाने आपको नगरके बाह्य उद्यानमें स्थित मिलेगी सो आप दयालु हो अवश्य ही आकर इसे स्वीकृत करें ॥६०–६३॥

इस प्रकार लेखके यथार्थ भावको ज्ञात कर कृष्ण, रुक्मिणीका हरण करनेके लिए सावधानचित्त हो गये ।।६४।।

इधर कन्यादानकी तैयारी करनेवाले विदर्भेश्वर—राजा भीष्मके कहे अनुसार शिशुपाल आदरके साथ कुण्डिनपुर जा पहुँचा ।।६५।। उस समय उसकी रागसे युक्त बहुत भारी चतुरंगिणी सेनासे कुण्डिनपुरके दिग्दिगन्त सुशोभित हो उठे ।।६६।। इधर अवसरको जाननेवाले नारदने शीघ्र ही आकर एकान्तमें कृष्णको प्रेरित किया सो वे भी बड़े भाई बलदेवके साथ गुप्त रूपसे कुण्डिनपुर आ पहुँचे ।।६७।। रुक्मिणी नागदेवकी पूजा कर फुआ आदिके साथ नगरके बाह्य उद्यानमें पहलेसे ही खड़ी थी सो कृष्णने उसे अच्छी तरह देखा ।।६८।। उन दोनोंकी जो अनुरागरूपी अग्नि एक दूसरेके श्रवणमात्र ईंधनसे युक्त थी वह उस समय एक दूसरेको देखने रूप वायुसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो गयी ।।६९।। कृष्णने यथायोग्य चर्चा करनेके बाद वहाँ रुक्मिणीसे कहा कि 'हे भद्रे ! मैं तुम्हारे लिए ही आया हूँ और जो तुम्हारे हृदयमें स्थित है वही मैं हूँ ।।७०।। यदि सचमुच ही तूने मुझमें अपना अनुपम प्रेम लगा रखा है तो हे मेरे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली प्रिये ! आओ रथपर सवार होओ' ।।७१।। फुआने भी रुक्मिणीसे कहा कि हे कल्याणि ! अतिमुक्तक मुनिने जो तुम्हारा पति कहा था वही यह तुम्हारे पुण्यके द्वारा खींचकर यहाँ लाया गया है ।।७२।। हे भद्रे ! जहाँ माता-पिता पुत्रोंके देनेवाले माने गये हैं वहाँ वे कर्मोंके अनुसार ही देनेवाले माने गये हैं इसलिए सबसे बड़ा गुरु कर्म ही है ।।७३।।

तदनन्तर जिनके नेत्र कुछ-कुछ निमीलित हो रहे थे ऐसे श्रीकृष्णने अनुराग और लज्जासे युक्त रुक्मिणीको अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर रथपर बैठा दिया ।।७४।। कामकी व्यथासे पीड़ित उन दोनोंका जो सर्व-प्रथम सर्वांगीण शरीरका स्पर्श हुआ था वह उन दोनोंके लिए परस्पर सुखका देनेवाला हुआ था ।।७५।। उन दोनोंके मुखसे जो सुगन्धित श्वास निकल रहा था वह परस्पर मिलकर एक दूसरेको सुगन्धित कर रहा था तथा एक दूसरेको वशमें करनेके लिए वशीकरणमन्त्रपनेको प्राप्त हो रहा था ।।७६।। रुक्मिणीका वह कल्याण, शिशुपालको विमुख और कृष्णको सम्मुख करनेवाले एक विधि—पुराकृत कर्मके द्वारा ही किया गया था । **भावार्थ**—रुक्मिणीका जो कृष्णके साथ संयोग हुआ था उसमें उसका पूर्वकृत कर्म ही प्रबल कारण था क्योंकि उसने पूर्वनिश्चित योजनाके साथ आये हुए शिशुपालको विमुख कर दिया था और अनायास आये हुए श्रीकृष्णको सम्मुख कर दिया था ।।७७।।

तदनन्तर श्रीकृष्णने रुक्मिणीके भाई रुक्मी, शिशुपाल और भीष्मको रुक्मिणीके हरणका समाचार देकर अपना रथ आगे बढ़ा दिया ।।७८।। उसी समय श्रीकृष्णने दिशाओंको मुखरित करनेवाला अपना पांचजन्य और बलदेवने अपना सुघोष नामका शंख फूँका जिससे शत्रुकी सेना क्षोभयुक्त हो गयी ।।७९।। समाचार मिलते ही रुक्मी और शिशुपाल दोनों धीर-वीर, बड़ी शीघ्रतासे रथोंपर सवार हो, धीर-वीर एवं रथोंपर सवार होकर जानेवाले कृष्ण और बलदेवका सामना करनेके लिए पहुँचे ।।८०।। साठ हजार रथों, दश हजार हाथियों, वायुके समान वेगशाली तीन लाख घोड़ों और खड्ग, चक्र, धनुष, हाथमें लिये कई लाख पैदल सिपाहियोंके द्वारा शेष दिशाओंको ग्रस्त करते हुए वे दोनों वीर निकटताको प्राप्त हुए ।।८१-८२।। इधर अर्धासनपर बैठी रुक्मिणीको सान्त्वना देते एवं ग्राम, खानें, सरोवर तथा नदियोंको दिखाते हुए श्रीकृष्ण धीरे-धीरे जा रहे थे ।।८३।।

तदनन्तर भयंकर सेनाको आयी देख मृगनयनी रुक्मिणी अनिष्टकी आशंका करती हुई स्वामीसे बोली कि 'हे नाथ ! क्रोधसे युक्त यह मेरा भाई महारथी रुक्मी और शिशुपाल अभी

हाल आ रहे हैं इसलिए मैं अपना भला नहीं समझती ॥८४-८५॥ विशाल सेनासे युक्त दोनोंके साथ एकाकी आप दोनोंका महायुद्ध होनेपर विजयमें सन्देह है। अहो! मैं बड़ी मन्द भाग्यवती हूँ' ॥८६-८७॥ इस प्रकार कहती हुई रुक्मिणीसे श्रीकृष्णने कहा कि 'हे कोमल हृदये! भयभीत न हो, मुझ पराक्रमीके रहते हुए दूसरोंकी संख्या बहुत होनेपर भी क्या हो सकता है?' इस प्रकार कहकर असाधारण अस्त्रके जाननेवाले श्रीकृष्णने अपने बाणसे सामने खड़े हुए ताल-वृक्षको अनायास ही काट डाला ॥८८॥ और अँगूठीमें जड़े हुए हीराको हाथसे चूर्ण कर उसके सन्देहको जड़-मूलसे नष्ट कर दिया ॥८९॥

तदनन्तर इन कार्योंसे पतिकी शक्तिको जाननेवाली रुक्मिणीने हाथ जोड़कर कहा कि हे नाथ! आपके द्वारा युद्धमें मेरा भाई यत्नपूर्वक रक्षणीय है अर्थात् उसकी आप अवश्य रक्षा कीजिए ॥९०॥ 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार भयभीत प्रियाको सान्त्वना देकर श्रीकृष्ण तथा बलभद्रने बड़े वेगसे शत्रुकी ओर अपने रथ घुमा दिये ॥९१॥ तदनन्तर रोषसे भरे हुए इन दोनों-के बाणोंके समूहसे मुठभेड़को प्राप्त हुई शत्रुकी सेना चारों ओर भागकर नष्ट हो गयी तथा उसका सब अहंकार नष्ट-भ्रष्ट हो गया ॥९२॥ भयंकर युद्धमें सिंहके समान शूर-वीर कृष्णने शिशुपालको और बलदेवने भयंकर आकारको धारण करनेवाले भीष्मपुत्र राजा रुक्मीको सामने किया ॥९३॥ द्वन्द्व-युद्धमें श्रीकृष्णने अपने बाणके द्वारा यशके साथ-साथ शिशुपालका ऊँचा मस्तक दूर जा गिराया ॥९४॥ और बलदेवने रथके साथ-साथ रुक्मीको इतना जर्जर किया कि उसके प्राण ही शेष रह गये। तदनन्तर कुशल बलदेव कृष्णके साथ वहाँसे चल दिये ॥९५॥ रैवतक (गिरनार) पर्वतपर श्रीकृष्णने विधि-पूर्वक रुक्मिणीके साथ विवाह किया और उसके पश्चात् उत्कृष्ट विभूति-से सन्तुष्ट हो भाई—बलदेवके साथ द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया ॥९६॥ रेवतीके देखनेके लिए उत्सुक बलदेवने अपने महलमें प्रवेश किया और प्रीतिसे युक्त कृष्णने भी नववधूके साथ अपने महलमें प्रवेश किया ॥९७॥

तदनन्तर सूर्य अस्त होनेके सम्मुख हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो युद्धमें अनेक रथोंके चक्रको चूर्ण करनेवाला, विजिगीषु राजाओंके तेजको हरनेवाला एवं शिशुपालका घात करनेवाला कृष्णका चरित देखकर वह अपने आपके पकड़े जानेकी आशंकासे भयभीत हो गया था इसीलिए तो हजार किरणोंसे तीक्ष्ण होनेपर भी वह अपने शरीरको संकुचित कर अस्ता-चलकी गुफामें चला गया था ॥९८॥ प्रातःकालके समय राग (प्रेम—पक्षमें ललाई) से युक्त जिस सन्ध्याको सूर्यने महान् उदय (उदय—पक्षमें वैभव) के धारक होनेपर भी तीव्र राग (प्रेम—पक्षमें ललाई) से युक्त हो अपने बदलेके प्रेमसे अच्छी तरह अनुवर्तित किया था अर्थात् सन्ध्याको रागयुक्त देख अपने आपको भी रागयुक्त किया था उस सन्ध्याने अब सायंकालके समय कुसुम्भ-के फूलके समान लाल वर्ण हो किरणरूप सम्पत्तिके नष्ट हो जानेपर भी सूर्यके प्रति अपनी अनु-रक्तता दिखलायी थी। भावार्थ—'सूर्यने महान् अभ्युदयसे युक्त होनेपर भी मेरे प्रति राग धारण किया था इसलिए इस विपत्तिके समय मुझे भी इसके प्रति राग धारण करना चाहिए' यह विचारकर ही मानो सन्ध्याने सूर्यास्तके समय लालिमा धारण कर ली ॥९९॥ तदनन्तर अंजनकी महारजके समान काले, मोह उत्पन्न करनेवाले, प्रचण्ड पवनके समान भयंकर, उद्धत, सब ओर फैलनेवाले, उन्मुख एवं अन्तर-रहित अन्धकारके समूहरूपी पापोंसे जगत् शीघ्र ही ऐसा आच्छादित हो गया मानो दुर्जनोंसे ही व्याप्त हुआ हो ॥१००॥ तत्पश्चात् जो अपनी किरणों-से गाढ़ अन्धकारको दूर हटा रहा था, मनुष्योंके नेत्र तृषासे पीड़ित होकर ही मानो जिसका शीघ्र पान कर रहे थे, जो जगत्के जीवोंको कामकी उत्तेजना करनेवाला था और जो सूर्यसे उत्पन्न हुए सन्तापको नष्ट कर रहा था ऐसा चन्द्रमा सुखी मनुष्योंके मुखको और भी अधिक

बढ़ानेके लिए उदयको प्राप्त हुआ ॥१०१॥ उस समय जगत्‌में समस्त जीवोंके साथ-साथ, चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे कुमुदिनी विकासको प्राप्त हुई और अपनी प्रियासे वियुक्त विरहसे देदीप्यमान चक्रवाकोंके साथ-साथ कमलिनी विकासको प्राप्त नहीं हुई सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी मनुष्योंको हर्षके कारण सुख नहीं पहुँचा सकते ॥१०२॥ तदनन्तर मानवती स्त्रियोंके मानको हरनेवाले एवं दम्पतियोंको हर्षरूपी सम्पत्तिके प्राप्त करानेवाले प्रदोष कालके प्रवृत्त होनेपर वे यादव अपनी सुन्दर स्त्रियोंके साथ चूनाके समान उज्ज्वल चांदनीसे शुभ्र महलोंमें क्रीड़ा करने लगे ॥१०३॥ जो रुक्मिणीके शरीररूपी लतापर भ्रमरके समान जान पड़ते थे ऐसे सुन्दर शरीरके धारक कृष्ण भी रात्रिके समय चिरकाल तक रमण की हुई रुक्मिणीके साथ क्रीड़ा करते रहे और क्रीड़ाके अनन्तर कोमल शय्यापर उसके गाढ़ आलिंगित स्थूल स्तन, भुजा और मुखके स्पर्शसे निद्रा सुखको प्राप्त कर सो रहे ॥१०४॥ तदनन्तर रात्रिके समस्त भेदोंको जाननेवाले, उत्तम पंखोंकी फड़फड़ाहटसे सुन्दर, रात्रिके अन्तको सूचना देनेवाले और नाना प्रकारकी कलँगियोंसे युक्त मुर्गे पहले नीची और बादमें ऊँची ध्वनिसे सुन्दर बांग देने लगे सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानो 'मदमें सोयी हुई यदु स्त्रियां जाग न जायें' इस भयसे ही वे एक साथ न चिल्लाकर क्रम-क्रमसे चिल्लाते थे ॥१०५॥ प्रातःकालमें प्रातः सन्ध्याके समान रुक्मिणी पहले जाग गयी और अपने उत्तम करकमलोंसे कृष्णका शरीर दबाने लगी। उसके कोमल हाथोंका स्पर्श पा श्रीकृष्ण भी जाग गये और जागकर उन्होंने रतिक्रीड़ाके कारण जिसके शरीरसे सुगन्धि निकल रही थी तथा जो लज्जासे नम्रीभूत थी ऐसी रुक्मिणीको पासमें बैठी लक्ष्मीके समान देखा ॥१०६॥ उस समय द्वारिकापुरी प्रातःकालके नगाड़ोंके जोरदार शब्दों, शंखों, मधुर संगीतों और मेघोंकी उत्कृष्ट गर्जनाके समान समुद्रकी गम्भीर गर्जनाके शब्दोंसे गूँज उठी। इधर-उधर घर-घर राजा और प्रजाके लोग जाग उठे तथा यथायोग्य अपने-अपने कार्योंमें सब प्रजा लग गयी ॥१०७॥ तदनन्तर जो शीघ्र ही आकर दूसरोंके द्वारा संयोजित पदार्थको यहांसे दूर हटा रहा था, तथा दूसरोंके द्वारा वियोजित पदार्थको मिला रहा था, अत्यन्त चतुर था, समर्थ था, जगत्‌का उज्ज्वल एवं जागृत रहनेवाला उत्कृष्ट नेत्र था, जो जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनमार्गके समान था अथवा विधाताके समान था ऐसा सूर्य उदयको प्राप्त हुआ। **भावार्थ**—रात्रिके समय चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र आदि कान्तिमान् पदार्थ अपने साथ अन्धकारको भी थोड़ा-बहुत स्थान दे देते हैं पर सूर्य आते ही साथ उस अन्धकारको पृथिवीतलसे दूर हटा देता है। इसी प्रकार रात्रिके समय चकवा-चकवी परस्पर वियुक्त हो जाते हैं परन्तु सूर्य उदय होते ही उन्हें मिला देता है ॥१०८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें रुक्मिणी-हरणका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४२॥

□

सर्ग- ४३

श्रीकृष्णने सत्यभामाके महलके पास, नाना प्रकारकी सम्पदाओंसे व्याप्त एवं योग्य परिजनोंसे सहित एक सुन्दर महल रुक्मिणीके लिए दिया ॥१॥ उसे महत्तरिका, द्वारपालिनी तथा सेवक आदि परिजनोंसे युक्त किया। नाना प्रकारके वाहन घोड़े, रथ, बैल आदि दिये तथा पट्टरानी पदसे उसका गौरव बढ़ाया जिससे वह बहुत ही सन्तुष्ट हुई ॥२॥ इधर सत्यभामाको जब पता चला कि श्रीकृष्ण समस्त स्त्रियोंको अतिक्रान्त करनेवाली एक स्त्री लाये हैं और वह उन्हें अत्यधिक प्रिय है तब वह ईर्ष्यासे सहित होनेपर भी बड़ी धीरतासे उन्हें नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें रमण कराने लगी ॥३॥

एक दिन कृष्ण रुक्मिणीके द्वारा उगले हुए मुखके पानको वस्त्रके छोरमें छिपाकर सत्यभामाके घर गये। वह पान स्वभावसे ही सुगन्धित था और उसपर रुक्मिणीके मुखकी सुगन्धिने चार चांद लगा दिये थे इसलिए उसपर भ्रमरोंका समूह आ बैठा था। 'यह कोई सुगन्धित पदार्थ है' इस भ्रान्तिसे सत्यभामाने उसे ले लिया और उत्तम वर्ण तथा गन्धसे युक्त उस पानके उगालको अच्छी तरह पीसकर अपने शरीरपर लगा लिया। यह देख श्रीकृष्णने उसकी खूब हँसी उड़ायी जिससे वह ईर्ष्यावश उनके प्रति आगबबूला हो गयी ॥४-६॥

कृष्णकी चेष्टाओंसे सौतके सौभाग्यका अतिशय जानकर सत्यभामा उसका रूप-लावण्य देखनेके लिए उत्सुक हो गयी ॥७॥ और एक दिन पतिसे बोली कि 'हे नाथ! मुझे रुक्मिणी दिखलाइए, कानोंकी तरह मेरे नेत्रोंको भी हर्ष उपजाइए' ॥८॥ सत्यभामाकी बात स्वीकृत कर वे हृदयमें कुछ रहस्य छुपाये हुए गये और मणिमय वापिकाके तटपर रुक्मिणीको खड़ा कर पुनः सत्यभामाके पास आ गये ॥९॥ तदनन्तर 'तुम उद्यानमें प्रवेश करो, मैं तुम्हारी इष्ट रुक्मिणीको अभी लाता हूँ' यह कहकर उन्होंने सत्याभामाको तो आगे भेज दिया और आप स्वयं पीछेसे जाकर किसी झाड़ीके ओटमें शरीर छिपाकर खड़े हो गये ॥१०॥ मणिमय आभूषणोंको धारण करनेवाली रुक्मिणी मणिमय वापिकाके समीप एक हाथसे आम्रकी लता पकड़कर पंजोंके बल खड़ी थी। उस समय वह अपनी अतिशय सुशोभित बड़ी मोटी चोटी बायें हाथसे पकड़े थी। स्तनोंके भारसे वह नीचेको झुक रही थी तथा ऊपर लगे हुए फलपर उसके बड़े-बड़े नेत्र लग रहे थे। देवीके समान सुन्दर रूपको धारण करनेवाली रुक्मिणीको देखकर सत्यभामाने समझा कि 'यह देवी है' इसलिए उसने उसके सामने फूलोंकी अंजलि बिखेरकर तथा उसके चरणोंमें गिरकर अपने सौभाग्य और सौतके दौर्भाग्यकी याचना की। वह ईर्ष्यारूपी शल्यसे कलंकित जो थी ॥११-१४॥ इसी समय मन्द-मन्द मुसकाते हुए श्रीकृष्णने आकर सत्यभामासे कहा कि अहा! दो बहिनोंका यह नीतियुक्त अपूर्व मिलन हो लिया? ॥१५॥ श्रीकृष्णके वचन सुन सत्यभामा सब रहस्य जान गयी और कुपित हो बोली कि अरे! क्या आप हैं? हम दोनोंका इच्छानुरूप दर्शन हो इसमें आपको क्या मतलब? ॥१६॥ तदनन्तर कृष्णके वचन स्वीकारकर रुक्मिणीने सत्यभामाको विनयपूर्वक नमस्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि उच्च कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके विनय स्वभावसे ही होता है ॥१७॥ श्रीकृष्ण लतामण्डपोंसे सुशोभित उद्यानमें उन दोनों रानियोंके

साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर अपने महलमें लौट गये ॥१८॥

तदनन्तर सुखसागरमें निमग्न एवं पराक्रमसे सुशोभित कृष्णके अनेक दिन उन दोनों रानियोंके साथ जब एक दिनके समान व्यतीत हो रहे थे तब एक दिन अत्यधिक स्नेहसे युक्त हस्तिनापुरके राजा दुर्योधनने इस प्रिय समाचारके साथ कृष्णके पास अपना दूत भेजा कि 'आपकी रुक्मिणी और सत्याभामा रानियोंमें-से जिसके पहले पुत्र उत्पन्न होगा वह यदि मेरे पुत्री उत्पन्न हुई तो उसका पति होगा' ॥१९-२१॥ दूतके उक्त वचन सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने दूतका सम्मान कर उसे विदा किया। दूतने भी अपने स्वामीके लिए कार्य सिद्ध होनेका समाचार कह सुनाया ॥२२॥

यह समाचार सुनकर सत्यभामाने रुक्मिणीके पास अपनी दूतियाँ भेजीं और वे रुक्मिणीके चरणोंमें नम्रीभूत हो कहने लगीं कि हे स्वामिनि! हम लोगोंकी स्वामिनि—सत्यभामा आपसे कुछ उत्तम वचन कह रही हैं सो हे मानवति! आभरणकी तरह उस प्रशंसनीय वचनको आप कानमें धारण करें—श्रवण करें। वह वचन यह है कि 'हम दोनोंमें-से जिसके पहले पुत्र होगा वह दुर्योधनकी होनहार पुत्रीको विवाहेगा यह निश्चित हो चुका है। उस विवाहके समय जिनके पुत्र न होगा उसकी कटी हुई केश-लताको पैरोंके नीचे रखकर वधू और वर स्नान करेंगे'। यह कार्य बहुत ही प्रशस्त तथा यशको बढ़ानेवाला है इसलिए हे यशस्विनि! हे भाग्यशालिनि! हे आर्ये! यदि आपको रुचता है—अच्छा लगता है तो स्वीकृति दीजिए ॥२३-२७॥ कानोंके लिए अमृतके समान आनन्द देनेवाले उस वचनको सुनकर रुक्मिणीने सन्तुष्ट हो 'तथास्तु' कह दिया और दूतियोंने जाकर अपनी स्वामिनी—सत्यभामाके लिए वह समाचार कह सुनाया ॥२८॥

तदनन्तर चतुर्थ स्नानके बाद रुक्मिणी जब रात्रिमें शय्यापर सोयी तब उसने स्वप्नमें हंसविमानके द्वारा आकाशमें विहार किया ॥२९॥ जागनेपर उसने वह स्वप्न पतिदेव श्रीकृष्णके लिए कहा और उसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि तुम्हारे आकाशमें विहार करनेवाला कोई महान् पुत्र होगा ॥३०॥ पतिके वचन सुनकर रुक्मिणी, प्रातःकालके समय सूर्यकी किरणोंसे संसर्गको प्राप्त हुई कमलिनीके समान विकासको प्राप्त हुई ॥३१॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण तथा अन्य समस्त जनोंके परम आनन्दको बढ़ाता हुआ अच्युतेन्द्र, स्वर्गसे अवतार ले रुक्मिणीके गर्भमें आया ॥३२॥

उसी समय सत्यभामाने भी शिरसे स्नान कर उत्तम स्वप्नपूर्वक स्वर्गसे च्युत हुए पुत्रको गर्भमें धारण किया ॥३३॥ जिनकी यशरूपी लता बढ़ रही थी ऐसे बढ़ते हुए दोनों गर्भोंने अपनी-अपनी माताओं और पिताके परम आनन्दको वृद्धिगत किया ॥३४॥ प्रसवका महीना पूर्ण होनेपर रुक्मिणीने उत्तम मनुष्यके लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न किया और उसीके साथ-साथ सत्यभामाने भी रात्रिमें उत्तम पुत्रको जन्म दिया ॥३५॥ दोनों ही रानियोंने हितके इच्छुक एवं शुभ समाचार देनेवाले पुरुष रात्रिके ही समय एक साथ श्रीकृष्णके पास भेजे। उस समय श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे इसलिए सत्यभामाके द्वारा भेजे सेवक उनके सिरके पास और रुक्मिणीके द्वारा भेजे सेवक उनके चरणोंके समीप खड़े हो गये ॥३६॥ जब श्रीकृष्ण जगे तो पहले उनकी दृष्टि चरणोंके पास खड़े सेवकोंपर पड़ी। उन्होंने भाग्य-वृद्धिके लिए पहले रुक्मिणीके पुत्र-जन्मका समाचार सुनाया जिससे प्रसन्न होकर कृष्णने उन्हें अपने शरीरपर स्थित आभूषण पुरस्कारमें दिये ॥३७॥ तदनन्तर जब कृष्णने मुड़कर दूसरी ओर देखा तो सत्यभामाके सेवकजनोंने उनकी स्तुति कर उन्हें सत्यभामाके पुत्रोत्पत्तिका समाचार सुनाया जिससे सन्तुष्ट होकर कृष्णने उन्हें भी पुरस्कारमें धन दिया ॥३८॥

उसी समय अग्निके समान देदीप्यमान धूमकेतु नामका एक महाबलवान् असुर विमानमें

बैठकर आकाशमार्गसे जाता हुआ रुक्मिणीके महलपर आया ॥३९॥ आतेके ही साथ उसका विमान रुक गया जिससे कुछ आश्चर्यमें पड़कर वह नीचेकी ओर देखने लगा। वह विभंगावधि-ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाला था ही इसलिए उसके द्वारा रुक्मिणीके पुत्रको देख क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये और दर्शनरूपी ईन्धनसे उसकी पूर्व वैररूपी अग्नि भड़क उठी। उस पापीने आते ही कड़ी रक्षामें नियुक्त पहरेदारोंको, परिवारके लोगोंको तथा स्वयं रुक्मिणीको महानिद्रामें निमग्न कर पुत्रको उठा लिया और वजनमें पर्वतके समान भारी उस पुत्रको दोनों भुजाओंसे लेकर वह मलिनबुद्धि एवं श्यामरंगका धारक महाअसुर आकाशमें उड़ गया ॥४०-४३॥ आकाशमें ले जाकर वह विचार करने लगा कि इस पूर्व भवके वैरीको क्या मैं हाथोंसे मसल डालूँ ? या नखोंसे चीरकर आकाशमें पक्षियोंके लिए इसकी बलि बिखेर दूँ ? अथवा मुझसे द्रोह करनेवाले इस क्षुद्र शत्रुको नाकोंके समूहसे महाभयंकर एवं मगरों और ग्राहोंके समूहसे भरे हुए समुद्रमें गिरा दूँ ? अथवा यह मांसका पिण्ड तो है ही। इसके मारनेसे क्या लाभ है ? यह रक्षकोंसे रहित ऐसा ही छोड़ दिया जायेगा तो अपने-आप मर जायेगा ॥४४-४६॥ बालकके पुण्यसे इस प्रकार विचार करता वह महासुर जा रहा था कि दूरसे खदिर अटवीको देख वह नीचे उतरा ॥४७॥ और वहाँ तक्षशिलाके नीचे उस बालकको रखकर वह धूमकेतु नामका असुर, धूमकेतु ताराके समान शीघ्र ही अदृश्य हो गया ॥४८॥

तदनन्तर उसी समय मेघकूट नगरका राजा कालसंवर, अपनी कनकमाला रानीके साथ पृथिवीके समस्त स्थलोंपर विहार करता हुआ विमान-द्वारा आकाश-मार्गसे वहाँ आया सो बालकके प्रभावसे उसकी गति रुक गयी ॥४९-५०॥ 'यह क्या है' इस प्रकार विचारकर कालसंवर परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ। नीचे उतरकर उसने हिलती हुई एक बड़ी मोटी शिला देखी ॥५१॥ स्वेच्छासे शिला हटाकर जब उसने देखा तो उसके नीचे अक्षत शरीर, कामदेवके समान आभा-वाला एवं सुवर्णके समान कान्तिमान् वह बालक देखा ॥५२॥ दयासे युक्त हो कालसंवरने उस बालकको उठा लिया और 'तुम्हारे पुत्र नहीं है इसलिए यह तुम्हारा पुत्र हुआ, लो' इस प्रकार मधुर शब्द कहकर अपनी प्रियाको देनेके लिए उद्यत हुआ ॥५३॥ पहले तो विद्याधरी कनकमालाने दोनों हाथ पसार दिये पर पीछे चतुर एवं दूर तक देखनेवाली उस विद्याधरीने अपने हाथ संकोच लिये और इस प्रकार खड़ी हो गयी मानो पुत्रको चाहती ही न हो ॥५४॥ 'प्रिये ! यह क्या है ?' इस प्रकार पतिके कहनेपर उसने कहा कि आपके उच्च कुलमें उत्पन्न हुए पांच सौ पुत्र हैं ॥५५॥ सो जब वे इस अज्ञात कुलवाले पुत्रको अहंकारसे उन्मत्त हो शिरमें थप्पड़ मारेंगे तब मैं वह दृश्य देखनेको समर्थ न हो सकूँगी इसलिए मेरा निपूती रहना ही अच्छा है ॥५६॥

रानीके इस प्रकार कहनेपर कालसंवरने उसे सान्त्वना दी और कानका सुवर्ण-पत्र ले 'यह युवराज है' ऐसा कहकर उसे पट्ट बाँध दिया ॥५७॥ तदनन्तर नीति-निपुण कनकमालाने सन्तुष्ट होकर वह पुत्र ले लिया। और पुत्रसहित दोनों मेघकूट नामक श्रेष्ठ नगरमें प्रविष्ट हुए ॥५८॥ अतिशय निपुण राजा कालसंवरने नगरमें यह घोषणा कराकर कि 'गूढ़ गर्भको धारण करनेवाली महादेवी कनकमालाने आज शुभ पुत्रको जन्म दिया है' पुण्यके भण्डारस्वरूप उस पुत्रका जन्मोत्सव कराया। जन्मोत्सवमें विद्याधरियोंके समूह नृत्य कर रहे थे और उनके नूपुरोंकी रुनझुन न्यारी ही शोभा प्रकट कर रही थी ॥५९-६०॥ स्वर्णके समान श्रेष्ठ कान्तिका धारक होनेसे उसका प्रद्युम्न नाम रखा गया। वहाँ सैकड़ों विद्याधर-कुमारोंके द्वारा सेवित होता हुआ वह प्रद्युम्नकुमार दिनों-दिन बढ़ने लगा ॥६१॥

इधर द्वारिकापुरीमें जब रुक्मिणी जागृत हुई तो उसने पुत्रको नहीं देखा। तदनन्तर वृद्ध धायोंके साथ उसने उसे जहां-तहां देखा पर जब प्रयत्न सफल नहीं हुआ तब वह जोर-जोरसे

इस प्रकार विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तुझे कौन हर ले गया है ? विधाताने मेरे नेत्रोंको निधि दिखाकर क्यों छीन ली है ? अवश्य ही मैंने दूसरे जन्ममें किसी स्त्रीको पुत्रसे वियुक्त किया होगा नहीं तो कारणके बिना यह ऐसा फल कैसे प्राप्त होता ? ॥६२–६४॥ रुक्मिणीके इस प्रकार करुण विलाप करनेपर परिवारके लोग भी रोने लगे और इस तरह रोनेका एक जोरदार शब्द उठ खड़ा हुआ ॥६५॥

तदनन्तर सब वृत्तान्त जानकर भाई-बान्धवों एवं अन्य सुन्दर स्त्रियोंके साथ कृष्ण भी वहाँ शीघ्र आ पहुँचे। रोनेका शब्द सुनकर बलदेव भी आ गये। अपने नन्दक नामक खड्गको हाथमें लिये श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंके पराक्रम तथा अपने प्रमादकी निन्दा करने लगे ॥६६–६७॥ वचन बोलनेमें अतिशय चतुर श्रीकृष्ण कहने लगे कि 'दैव और पुरुषार्थमें दैव ही परम बलवान् है। संसारमें इस अकारण पुरुषार्थको धिक्कार है ॥६८॥ अन्यथा उभारी हुई तलवारकी धारासे सुशोभित मुझ वासुदेवका भी पुत्र दूसरोंके द्वारा किस प्रकार हरा जाता ?' ॥६९॥ इत्यादि बहुत बोलनेवाले श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे कहा कि 'हे प्रिये ! इस विषयमें अधिक शोकयुक्त न होओ। हे धीरे ! धीरता धारण करो ॥७०॥ जो पुत्र स्वर्गसे च्युत हो तुम्हारे और हमारे उत्पन्न हुआ है वह साधारण पुत्र नहीं है। उसे इस संसारमें अवश्य ही भोगोंका भोगनेवाला होना चाहिए ॥७१॥ इसलिए जिस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि मनुष्य आकाशमें सूक्ष्म विम्बको धारण करनेवाले प्रतिपदाके चन्द्रमाको खोजते हैं उसी प्रकार मैं लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले तेरे पुत्रको लोकमें सर्वत्र खोजता हूँ ॥७२॥

इस प्रकार आँसुओंसे जिसके दोनों कपोल धुल रहे थे ऐसी प्रिया रुक्मिणीको शान्त कर श्रीकृष्ण पुत्रके खोजनेमें उपाय करने लगे ॥७३॥ उसी समय निरन्तर उद्यम करनेवाले नारद ऋषि वहाँ श्रीकृष्णके पास आये और सब समाचार सुनकर शोकसे क्षणभरके लिए निश्चलताको प्राप्त हो गये ॥७४॥ उन्होंने सब ओर तुषारसे जले कमलोंके समान मुरझाये हुए यादवोंके मुख बड़े आश्चर्यके साथ देखे ॥७५॥ तदनन्तर शोक दूर कर नारदने कृष्णसे कहा कि 'हे वीर ! शोक छोड़ो, मैं पुत्रका समाचार लाता हूँ ॥७६॥ यहाँ जो अवधिज्ञानी अतिमुक्तक मुनिराज थे वे तो केवलज्ञानरूपी नेत्रको प्राप्त कर मोक्ष जा चुके हैं ॥७७॥ और जो तीन ज्ञानके धारक नेमिकुमार हैं वे जानते हुए भी नहीं कहेंगे। किस कारणसे नहीं कहेंगे ? यह हम नहीं जानते। इसलिए मैं पूर्वविदेह क्षेत्रमें जाकर तथा सीमन्धर भगवान्‌से पूछकर पुत्रका सब समाचार तेरे लिए प्राप्त कराऊँगा' ॥७८–७९॥ श्रीकृष्णका उत्तर पा नारद वहाँसे निकल रुक्मिणीके भवन पहुँचे और वहाँ शोकरूपी तुषारसे जले हुए रुक्मिणीके मुख-कमलको देख स्वयं हृदयसे शोक करने लगे परन्तु बाह्यमें धैर्यको धारण किये रहे। रुक्मिणीने उठकर उनका सत्कार किया। अनन्तर वे उसीके निकट आसनपर बैठ गये ॥८०–८१॥ रुक्मिणी पिताके तुल्य नारदको देखकर गला फाड़-फाड़कर रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समीप पुराना शोक भी नवीनके समान हो जाता है ॥८२॥ अत्यन्त चतुर नारदमुनि, उसके शोक-सागरको हलका करनेके लिए ही मानो मनको आनन्दित करते हुए इस प्रकार वचन बोले ॥८३॥

हे रुक्मिणी ! तू शोक छोड़, तेरा पुत्र कहीं जीवित है भले ही उसे पूर्वभवका कोई वैरी किसी तरह हरकर ले गया है। श्रीकृष्णसे तुझमें जो उसकी उत्पत्ति हुई है यही उस महात्माके दीर्घायुष्यको सूचित कर रही है ॥८४–८५॥ हे प्रिय पुत्री ! तू जानती है कि इस संसारमें प्राणियोंको सुख-दुःख उत्पन्न करनेवाले संयोग और वियोग होते ही रहते हैं ॥८६॥ परन्तु जो कर्मोंकी अधीनताको जाननेवाले हैं एवं ज्ञानके द्वारा उन्मीलित बुद्धिरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले हैं ऐसे यादवोंके ऊपर वे संयोग और वियोग शत्रुओंके समान अपना प्रभाव नहीं जमा सकते हैं ॥८७॥

तू तो जिन-शासनके तत्त्वको जाननेवाली एवं संसारकी स्थितिकी जानकार है अतः शोकके वशीभूत मत हो। मैं शीघ्र ही तेरे पुत्रका समाचार लाता हूँ ॥८८॥ इस प्रकार वचनरूपी अमृतसे उस कृशांगीको समझाकर नारदमुनि आकाशमें उड़ सीमन्धर भगवान्‌के समीप जा पहुँचे ॥८९॥ वहाँ पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें मनुष्य, सुर और असुरोंसे सेवित सीमन्धर जिनेन्द्रके उन्होंने दर्शन किये ॥९०॥ हाथ जोड़ मुखसे पवित्र स्तोत्रका उच्चारण कर उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया और उसके बाद वे राजाओंकी सभामें जा बैठे ॥९१॥

वहाँ उस समय पाँच सौ धनुषकी ऊँचाईवाला पद्मरथ चक्रवर्ती बैठा था। दश धनुष ऊँचे नर-प्रशंसित नारदको देखते ही उसने उन्हें कौतुकवश अपने हस्त-कमलोंसे उठाकर भगवान्‌से पूछा कि हे नाथ! यह मनुष्यके आकारका कीड़ा कौन-सा है? और इसका क्या नाम है? ॥९२–९३॥ तदनन्तर सीमन्धर भगवान्‌ने सब रहस्य कहा। उन्होंने बताया कि यह जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रके नौवें नारायणके हितमें उद्यत रहनेवाला नारद है ॥ ९४ ॥ यह सुन चक्रवर्तीने फिर पूछा कि हे स्वामिन्! यह यहाँ किसलिए आया है? इसके उत्तरमें धर्मचक्रके प्रवर्तक सीमन्धर भगवान्‌ने चक्रवर्तीके लिए प्रारम्भसे लेकर सब समाचार कहा। साथ ही यह भी कहा कि उस बालकका प्रद्युम्न नाम है। वह सोलहवाँ वर्ष आनेपर सोलह लाभोंको प्राप्त कर अपने माता-पिताके साथ पुनः मिलेगा। प्रज्ञप्ति नामक महाविद्यासे जिसका पराक्रम चमक उठेगा ऐसा वह प्रद्युम्न इस पृथिवीपर समस्त देवोंके लिए भी अजय्य हो जावेगा ॥९५–९७॥

चक्रवर्तीने फिर पूछा—'प्रभो! प्रद्युम्नका चरित कैसा है? और वह किस कारणसे हरा गया?' इसके उत्तरमें सीमन्धर जिनेन्द्रने चक्रवर्तीके लिए नारदके सन्निधानमें प्रद्युम्नका निम्न प्रकार चरित कहा ॥९८॥

भरतक्षेत्र सम्बन्धी मगध देशके शालिग्राम नामक गाँवमें सोमदेव नामका एक ब्राह्मण रहता था ॥९९॥ अग्निकी स्वाहाके समान उसकी अग्निला नामकी ब्राह्मणी थी जो उसे बहुत ही सुख देनेवाली थी। उस ब्राह्मणीसे सोमशर्माके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र हुए ॥१००॥ ये दोनों ही पुत्र, पृथिवीपर वेद तथा वेदार्थमें अत्यन्त निपुण हो गये। इन्होंने अपने प्रभावसे अन्य ब्राह्मणोंकी प्रभाको आच्छादित कर दिया तथा शुक्र और बृहस्पतिके समान देदीप्यमान होने लगे ॥१०१॥ वेदार्थकी भावनासे उत्पन्न जातिवादसे गर्वित, बकवास करनेवाले, माता-पिताके प्रिय वचनोंसे पले-पुसे ये दोनों पुत्र भोग-वासनामें तत्पर हो गये। जब वे सोलह वर्षके हुए तो स्त्रियोंको ही स्वर्ग समझने लगे और परलोककी कथासे अत्यन्त द्वेष करने लगे ॥१०२–१०३॥

तदनन्तर किसी समय श्रुतरूप सागरके पारगामी नन्दिवर्धन नामके गुरु विशाल संघके साथ आकर शालिग्रामके बाहर उपवनमें ठहर गये ॥१०४॥ चारों वर्णके महाजन आकुलतारहित हो उनकी वन्दनाके लिए जा रहे थे सो उन्हें देख दोनों ब्राह्मण-पुत्रोंने उसका कारण पूछा ॥१०५॥ तदनन्तर एक सरलस्वभावी ब्राह्मणने उन्हें स्पष्ट बताया कि मुनियोंका एक बड़ा संघ आया है। उसीकी वन्दनाके लिए हम लोग जा रहे हैं ॥१०६॥ ब्राह्मणका उत्तर सुन दोनों पुत्र विचारने लगे कि 'पृथिवीतलपर हम लोगोंसे बढ़कर दूसरा वन्दनीय है ही कौन? चलो हम भी उसका माहात्म्य देखें' इस प्रकार विचारकर मानसे भरे दोनों पुत्र उपवनकी ओर चले ॥१०७॥ उस समय अवधिज्ञानरूपी नेत्रके धारक, साधुशिरोमणि नन्दिवर्धनगुरु, समुद्रके समान अपार जन-समूहके मध्यमें स्थित हो धर्मका उपदेश दे रहे थे। जब दोनों ब्राह्मण उनके पास पहुँचे तब 'भैंसाओंके समान इन दोनोंसे इस समय यहाँ समीचीन धर्मके श्रवणमें बाधा न आवे' इस प्रकार श्रोताओंका हित चाहनेवाले अवधिज्ञानी सात्यकि मुनिने उन दोनों ब्राह्मणोंको दूरसे देख

'हे ब्राह्मणो ! यहां आइए' इस तरह बुला लिया और आकर वे उनके सामने बैठ गये ॥१०८-११०॥ तदनन्तर उन अहंकारी ब्राह्मणोंको सात्यकि मुनिराजके सामने बैठा देख, लोगोंने आ-आकर उनके सामनेकी भूमिको उस प्रकार भर दिया जिस प्रकार कि वर्षाऋतुमें महानद जलके प्रवाहसे भर देता है। **भावार्थ**—कौतुकसे प्रेरित हो लोग मुनिराजके पास आ गये ॥१११॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे विद्वानो ! आप लोग कहां से आये हैं ? इसके उत्तरमें ब्राह्मणोंने कहा कि क्या आप नहीं जानते इसी शालिग्रामसे आये हैं ॥११२॥ सात्यकि मुनिराजने कहा कि हां यह तो सत्य है कि आप शालिग्रामसे आये हैं परन्तु यह तो बताइए कि इस अनादि-अनन्त संसारमें भ्रमण करते हुए आप किस गतिसे आये हैं ? ॥११३॥ ब्राह्मणोंने कहा कि यह बात तो हम लोग ही क्या दूसरेके लिए भी दुर्ज्ञेय है अर्थात् इसे कोई नहीं जान सकता। तब मुनिराजने कहा कि हे ब्राह्मणो ! सुनो, यह बात नहीं है कि कोई नहीं जान सकता, सुनिए, मैं कहता हूँ ॥११४॥

तुम दोनों भाई इस जन्मसे पूर्व जन्ममें इसी शालिग्रामकी सीमाके निकट अपने कर्मसे दो शृगाल थे और दोनों ही परस्परकी प्रीतिसे युक्त थे ॥११५॥ इसी ग्राममें एक प्रवरक नामका ब्राह्मण किसान रहता था। एक दिन वह खेतको जोतकर निश्चिन्त हुआ ही था कि बड़े जोरसे वर्षा होने लगी तथा तीव्र आंधी आ गयी। उनसे वह बहुत पीड़ित हुआ, उसका शरीर कांपने लगा और भूख-रूपी रोगने भी उसको खूब सताया जिससे वह खेतके पास ही वटवृक्षके नीचे अपना चमड़ेका उपकरण छोड़कर घर चला गया ॥११६–११७॥ प्राणियोंका संहार करनेवाली वह वर्षा लगातार सात दिन-रात तक होती रही। इस बीचमें दोनों शृगाल भूखसे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और उन्होंने उस किसानका वह भीगा हुआ उपकरण खा लिया ॥११८॥ कुछ समय बाद पेटमें बहुत भारी शूलकी वेदना उठनेसे उन दोनों शृगालोंको असह्य वेदना सहन करनी पड़ी। अकामनिर्जराके योगसे उन्हें प्रशस्त आयुका बन्ध हो गया और उसके फलस्वरूप मरकर वे सोमदेव ब्राह्मणके जातिके गर्वसे गर्वित अग्निभूत और वायुभूति नामके तुम दोनों पुत्र हुए ॥११९–१२०॥ पापके उदयसे प्राणियोंको दुर्गति मिलती है और पुण्यके उदयसे सुगति प्राप्त होती है इसलिए जातिका गर्व करना वृथा है ॥१२१॥ वर्षा बन्द होनेपर जब किसान खेतपर पहुँचा तो वहां मरे हुए दोनों शृगालोंको देखकर उठा लाया और उनकी मशकें बनवाकर कृत-कृत्य हो गया। वे मशकें उसके घरमें आज भी रखी हैं ॥१२२॥ तीव्र मानसे युक्त प्रवरक भी समय पाकर मर गया और अपने पुत्रके ही पुत्र हुआ। वह कामदेवके समान कान्तिका धारक है तथा जाति स्मरण होनेसे झूठ-मूठ ही गूँगाके समान रहता है ॥१२३॥ देखो, वह अपने बन्धुजनोंके बीचमें बैठा मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहा है। इतना कहकर सत्यवादी सात्यकि मुनिराजने उस गूँगेको अपने पास बुलाकर कहा कि तू वही ब्राह्मण किसान अपने पुत्रका पुत्र हुआ है। अब तू शोक और गूँगेपनको छोड़ तथा वचनरूपी अमृतको प्रकट कर—स्पष्ट बात-चीत कर अपने बन्धुजनोंको हर्षित कर ॥१२४–१२५॥ इस संसारमें नटके समान स्वामी और सेवक, पिता और पुत्र, माता तथा स्त्रीमें विपरीतता देखी जाती है अर्थात् स्वामी सेवक हो जाता है, सेवक स्वामी हो जाता है, पिता पुत्र हो जाता है, पुत्र पिता हो जाता है, और माता स्त्री हो जाती है, स्त्री माता हो जाती है ॥१२६॥ यह संसार रेंहटमें लगी घटियोंके जालके समान जटिल तथा कुटिल है। इसमें निरन्तर भ्रमण करनेवाले जन्तु ऊँच-नीच अवस्थाको प्राप्त होते ही हैं ॥१२७॥ इसलिए हे पुत्र ! संसाररूपी सागरको निःसार एवं भयंकर जानकर दयामूलक व्रतका सारपूर्ण संग्रह कर ॥१२८॥ इस प्रकार मुनिराजने जब उसके गूँगेपनका कारण प्रत्यक्ष दिखा दिया तब वह तीन प्रदक्षिणा देकर

उनके चरणोंमें गिर पड़ा ॥१२९॥ उसके नेत्र आनन्द के आँसुओंसे व्याप्त हो गये। वह बड़े आश्चर्यके साथ खड़ा हो हाथ जोड़ मस्तकसे लगा गद्‌गद वाणीसे कहने लगा ॥१३०॥

'भगवन्! आप सर्वज्ञके समान हैं, ईश्वर हैं, यहाँ बैठे-बैठे ही तीनों लोक सम्बन्धी वस्तुके यथार्थ स्वरूपको स्पष्ट जानते हैं ॥१३१॥ हे नाथ! मेरा मनरूपी नेत्र अज्ञानरूपी पटलसे मलिन हो रहा था सो आज आपने उसे ज्ञानरूपी अंजनकी सलाईसे खोल दिया है ॥१३२॥ महामोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त इस अनादि संसार-अटवीमें भ्रमण करते हुए मुझे आपने सच्चा मार्ग दिखलाया है इसलिए हे मुनिराज! आप ही मेरे बन्धु हैं ॥१३३॥ हे भगवन्! प्रसन्न होइए और मुझे दैगम्बरी दीक्षा दीजिए!' इस प्रकार गुरुको प्रसन्न कर तथा उनके निकट आ उस गूँगे ब्राह्मणने सत्पुरुषोंके लिए इष्ट दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१३४॥ उस ब्राह्मण-का पूर्वोक्त चरित सुनकर तथा देखकर कितने ही लोग मुनिपदको प्राप्त हो गये और कितने ही श्रावक अवस्थाको प्राप्त हुए ॥१३५॥

अग्निभूति और वायुभूति अपने पूर्वभव सुन बड़े लज्जित हुए। लोगोंने भी उन्हें बुरा कहा इसलिए वे चुप-चाप अपने घर चले गये। वहाँ माता-पिताने भी उनकी निन्दा की ॥१३६॥ रात्रि-के समय सात्यकि मुनिराज कहीं एकान्तमें कायोत्सर्ग मुद्रासे स्थित थे सो उन्हें अग्निभूति और वायुभूति तलवार हाथमें ले मारना ही चाहते थे कि यक्षने उन्हें कील दिया जिससे वे तलवार उभारे हुए ज्योंके-त्यों खड़े रह गये ॥१३७॥ प्रातःकाल होनेपर लोगोंने मुनिराजके पास खड़े हुए उन दोनोंको देखा और 'ये वही निन्दित कार्यके करनेवाले पापी ब्राह्मण हैं' इस प्रकार कहकर उनकी निन्दा की ॥१३८॥ अग्निभूति, वायुभूति सोचने लगे कि देखो, मुनिराजका यह कितना भारी प्रभाव है कि जिनके द्वारा अनायास ही कीले जाकर हम दोनों खम्भे-जैसी दशाको प्राप्त हुए हैं ॥१३९॥ उन्होंने मनमें यह भी संकल्प किया कि यदि किसी तरह इस कष्टसे हम लोगोंका छुटकारा होता है तो हम अवश्य ही जिनधर्म धारण करेंगे क्योंकि उसकी सामर्थ्य हम इस तरह प्रत्यक्ष देख चुके हैं ॥१४०॥

उसी समय उनका कष्ट सुन उनके माता-पिता शीघ्र दौड़े आये और मुनिराजके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न करनेका उद्यम करने लगे ॥१४१॥ करुणाके धारक मुनिराज अपना योग समाप्त कर जब विराजमान हुए तब उन्होंने यह सब क्षेत्रपालके द्वारा किया जान विनयपूर्वक बैठे क्षेत्रपालसे कहा कि—'यक्ष! यह इनका अनीतिसे उत्पन्न दोष क्षमा कर दिया जाये। कर्मसे प्रेरित इन दोनों प्राणियोंपर दया करो' ॥१४२–१४३॥ इस प्रकार राजाओंकी आज्ञाके समान मुनिराजकी आज्ञा प्राप्त कर 'जैसी आपकी आज्ञा हो' यह कह क्षेत्रपालने दोनोंको छोड़ दिया ॥१४४॥

तदनन्तर मुनिराजके समीप आकर अग्निभूति, वायुभूतिने मुनि और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका धर्म श्रवण किया और अणुव्रत धारण कर श्रावक पद प्राप्त किया ॥१४५॥ सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त दोनों ब्राह्मणपुत्र चिरकाल तक धर्मका पालन कर मृत्युको प्राप्त हो सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ॥१४६॥ उनके माता-पिताको जैनधर्मकी श्रद्धा नहीं हुई इसलिए वे मिथ्यात्वसे मोहित हो मरकर कुगतिके पथिक हुए ॥१४७॥

अग्निभूति, वायुभूतिके जीव जो सौधर्म स्वर्गमें देव हुए थे, स्वर्गके सुख भोग, वहाँसे च्युत हुए और अयोध्या नगरीमें रहनेवाले समुद्रदत्त सेठकी धारिणी नामक स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न हुए ॥१४८॥ उनमें बड़े पुत्रका नाम पूर्णभद्र और छोटे पुत्रका नाम मणिभद्र था। इस पर्यायमें भी दोनोंने सम्यक्त्वकी विराधना नहीं की थी तथा दोनों ही जिन-शासनसे स्नेह रखनेवाले थे ॥१४९॥ तदनन्तर काल पाकर इन दोनोंके पिता, अयोध्याके राजा तथा अन्य भव्य जीवोंने महेन्द्रसेन

गुरुसे धर्म श्रवण कर जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥१५०॥ किसी समय पूर्णभद्र और मणिभद्र, रथपर सवार हो मुनिपूजाके लिए नगरसे जा रहे थे सो बीचमें एक चाण्डाल तथा कुत्तीको देखकर स्नेहको प्राप्त हो गये ॥१५१॥

मुनिराजके पास जाकर दोनोंने भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर आश्चर्यसे युक्त हो उन्होंने पूछा कि हे स्वामिन्! कुत्ती और चाण्डालके ऊपर हम दोनोंको स्नेह किस कारण उत्पन्न हुआ? ॥१५२॥

अवधिज्ञानके द्वारा तीनों लोकोंकी स्थितिको जाननेवाले मुनिराजने कहा कि ब्राह्मण-जन्ममें तुम्हारे जो माता-पिता थे वे ही ये कुत्ती और चाण्डाल हुए हैं सो पूर्वभवके कारण इनपर तुम्हारा स्नेह हुआ है ॥१५३॥ इस प्रकार सुनकर तथा मुनिराजको नमस्कारकर दोनों भाई कुत्ती और चाण्डालके पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने उन दोनोंको धर्मका उपदेश दिया तथा पूर्वभवकी कथा सुनायी जिससे वे दोनों ही शान्त हो गये ॥१५४॥ चाण्डालने संसारसे विरक्त हो दीनता छोड़ चारों प्रकारके आहारका त्याग कर दिया और एक माहका संन्यास ले मरकर नन्दीश्वर द्वीपमें देव हुआ ॥१५५॥ कुत्ती इसी नगरमें राजाकी पुत्री हुई। इधर राजपुत्रीका स्वयंवर हो रहा था। जिस समय वह स्वयंवरमें स्थित थी उसी समय पूर्वोक्त नन्दीश्वर देवने आकर उसे सम्बोधा ॥१५६॥ जिससे संसारको असार जान सम्यक्त्वकी भावनासे युक्त उस नवयौवनवती राजपुत्रीने एक सफेद साड़ीका परिग्रह रख आर्यिकाकी दीक्षा ली ॥१५७॥

पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दोनों भाई चिरकाल तक श्रावकके उत्तम एवं श्रेष्ठ व्रतका पालन कर अन्तमें सल्लेखना द्वारा सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुए ॥१५८॥ पश्चात् स्वर्गसे च्युत होकर अयोध्या नगरीके राजा हेमनाभकी धरावती रानीमें मधु और कैटभ नामक पुत्र हुए ॥१५९॥ तदनन्तर किसी दिन राज्यगद्दीपर मधुका और युवराजपदपर कैटभका अभिषेक कर महानुभाव राजा हेमनाभने जिनदीक्षा धारण कर ली ॥१६०॥ मधु और कैटभ पृथिवीतलपर अद्वितीय वीर हुए। वे दोनों सूर्य और चन्द्रमाके समान अद्भुत तेजके धारक थे ॥१६१॥

तदनन्तर जो क्षुद्र सामन्तोंके द्वारा वशमें नहीं किया जा सका था ऐसा अन्धकारके समान भयंकर भीमक नामका एक राजा पहाड़ी दुर्गका आश्रय पा मधु और कैटभके विरुद्ध खड़ा हुआ सो उसे वश करनेके लिए दोनों भाई चले। चलते-चलते वे उस वटपुर नगरमें पहुँचे जहाँ वीरसेन राजा रहता था ॥१६२-१६३॥ प्रसन्नतासे युक्त राजा वीरसेनने सम्मुख आकर बड़े आदरसे मधुकी अगवानी की और स्वामि-भक्तिसे प्रेरित हो अपने अन्तःपुरके साथ उसका खूब सम्मान किया ॥१६४॥

राजा वीरसेनकी एक चन्द्राभा नामकी स्त्री थी जो चन्द्रिकाके समान सुन्दर और मानवती थी। मधुर-मधुर भाषण करनेवाली उस चन्द्राभाने राजा मधुका मन हर लिया ॥१६५॥ जिस प्रकार अत्यन्त कठोर चन्द्रकान्तमणिकी शिला, चन्द्रमाको देखनेसे, आर्द्रभावको प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार शस्त्र और शास्त्रोंके अभ्याससे अत्यन्त कठोर होनेपर भी मधु राजाकी बुद्धि चन्द्राभाको देखनेसे आर्द्रभावको प्राप्त हो गयी ॥१६६॥ वह विचार करने लगा कि जो राज्य, रूप और सौभाग्यसे युक्त इस चन्द्राभासे सहित है उसे ही मैं सुखका कारण मानता हूँ और इससे रहित राज्यको विषके समान समझता हूँ ॥१६७॥ जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमाका कलंक भी सुशोभित होता है उसी प्रकार चन्द्राभाके द्वारा आलिंगित मुझ राजाधिराजका कलंक भी शोभा देगा। भावार्थ—परस्त्रीके सम्पर्कसे यद्यपि मेरा अपवाद होगा—मैं कलंकी कहलाऊँगा तथापि चन्द्रमाके कलंकके समान मेरा वह कलंक शोभाका ही कारण होगा ॥१६८॥ जिस प्रकार

चन्द्रिकाके संगसे विकसित कुमुदवनकी सुगन्धिको कीचड़की दुर्गन्ध नष्ट नहीं कर सकती उसी प्रकार चन्द्राभाके संगसे प्रफुल्लित मेरी कीर्तिको अपवादरूपी कीचड़की दुर्गन्ध नष्ट नहीं कर सकेगी ॥१६९॥ राजा मधु यद्यपि बहुत बुद्धिमान् और अभिमानी था तथापि रागसे अन्धा होनेके कारण उसने उक्त विचार कर चन्द्राभाके हरण करनेमें अपना मन लगाया—उसके हरनेका मनमें पक्का निश्चय कर लिया ॥१७०॥

तदनन्तर उच्छृङ्खल राजा भीमकको वशकर कृतकृत्य होता हुआ राजा मधु अयोध्या नगरीमें वापस आ गया। वहाँ चूँकि चन्द्राभाके द्वारा उसका मन हरा गया था इसलिए उसने बड़े उत्साहसे युक्त हो अपने समस्त सामन्तोंको अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही अपने नगरमें बुलाया और यथायोग्य नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे सबका सत्कारकर उन्हें अपने-अपने घर विदा कर दिया। स्वामीके द्वारा यह सत्कार प्राप्तकर सबके मुख प्रसन्नतासे विकसित हो रहे थे। वटपुरका राजा वीरसेन भी अपनी स्त्री चन्द्राभाके साथ वहाँ आया था सो राजा मधुने उसका बहुत भारी सत्कार कर उसे यह कहकर अपने घरके लिए विदा कर दिया कि चन्द्राभाके योग्य आभूषण अभी तक तैयार नहीं हो सके हैं इसलिए तैयार होनेपर भेज देंगे। भोला-भाला वीरसेन चला गया और चन्द्राभाको रोककर राजा मधुने अपनी स्त्री बना ली। महादेवीका पद देकर उसने चन्द्राभाको समस्त स्त्रियोंका प्रभुत्व प्रदान किया। इस प्रकार वह उसके साथ मनचाहे भोग भोगने लगा ॥१७१–१७६॥ इधर चन्द्राभाका पहलेका पति उसकी विरहरूपी अग्निसे प्रदीप्त हो अत्यधिक उन्मत्तताको प्राप्त हो पृथिवीपर बड़ी व्यग्रतासे इधर-उधर घूमने लगा ॥१७७॥ एक दिन वह 'चन्द्राभा चन्द्राभा' इस प्रकारके आलापकी वार्तासे दुखी हुआ धूलि-धूसरित हो नगरकी गलियोंमें घूम रहा था कि महलपर खड़ी चन्द्राभाने उसे देख लिया ॥१७८॥ देखते ही के साथ उसके हृदयमें दया उमड़ आयी। उसने पास ही बैठे राजा मधुसे कहा कि हे नाथ ! देखो यह मेरा पूर्व पति कैसा प्रलाप करता हुआ घूम रहा है ॥१७९॥

उसी अवसरपर कुछ क्रूर कर्मचारियोंने परस्त्रीसेवन करनेवाले किसी पुरुषको पकड़कर न्यायके वेत्ता राजा मधुके लिए दिखाया और कहा कि हे देव ! इसके लिए कौन-सा दण्ड योग्य है ? राजा मधुने उत्तर दिया कि यह अपराधी अत्यन्त पापी है इसलिए इसके हाथ पांव तथा शिर काटकर इसे भयंकर शारीरिक दण्ड दिया जाये। देवी चन्द्राभाने उसी समय कहा कि हे देव ! क्या यह अपराध आपने नहीं किया है ? आपने भी तो परस्त्रीहरणका अपराध किया है ॥१८०–१८२॥ चन्द्राभाके उक्त वचन सुनते ही राजा मधु तुषारसे पीड़ित कमलके समान म्लान हो गया—उसके मुखकी कान्ति नष्ट हो गयी। वह विचार करने लगा कि मेरा हित चाहने वाली इस चन्द्राभाने यह सत्य ही कहा है ॥१८३॥ सचमुच ही परस्त्रीहरण दुर्गतिके दुःखका कारण है। पतिको विरागी देख चन्द्राभाने भी विरक्त हो कहा कि हे प्रभो ! इन परस्त्रीविषयक भोगोंसे क्या प्रयोजन है ? हे नाथ ! ये भोग यद्यपि वर्तमानमें सुख पहुँचानेवाले हैं तथापि परिपाक कालमें किंपाक फलके समान दुःखदायी हैं। सज्जन पुरुषोंको वे ही भोग इष्ट होते हैं जो निज और परके सन्तापके कारण नहीं हैं। अन्य विषयरूप भोगोंको सत्पुरुष भोग नहीं मानते ॥१८४–१८६॥

चन्द्राभाके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर राजा मधुने धीरे-धीरे मोहरूपी मदिराके सुदृढ़ मदको छोड़ दिया ॥१८७॥ और बड़ी प्रसन्नतासे आदरपूर्वक उससे कहा कि ठीक, ठीक, हे साध्वि ! तुमने बहुत अच्छी बात कही ॥१८८॥ यथार्थमें सत्पुरुषोंको ऐसा काम करना उचित नहीं जो परलोक तथा इस लोकमें दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेवाला तथा पापको बढ़ानेवाला हो ॥१८९॥ जब मेरे जैसा प्रबुद्ध व्यक्ति भी ऐसा लोक-निन्द्य कार्य करता है तब अविवेकी साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥१९०॥ जहाँ अपनी स्त्रीके

विषयमें भी सेवन किया हुआ यह अत्यधिक राग कर्मबन्धका कारण है वहाँ परस्त्रीविषयक रागकी तो कथा ही क्या है? ॥१९१॥ यह मनरूपी मदोन्मत्त महा हाथी ज्ञानरूपी अंकुशसे रोके जानेपर भी इस जीवको कुमार्गमें ले जाता है। यहाँ विद्वान् क्या करे? ॥१९२॥ जो इस अनंकुश मनरूपी गजको तीक्ष्ण दण्डोंसे रोककर सुमार्गमें ले जाते हैं ऐसे शूर-वीर पुरुष संसारमें विरले ही हैं ॥१९३॥ रतिरूपी हस्तिनीके द्वारा हरा हुआ यह मनरूपी मत्त हाथी जबतक इन्द्रिय-विजयरूपी दण्डोंसे युक्त नहीं किया जाता है तबतक इसके मदका नाश कैसे हो सकता है? ॥१९४॥ यह मनरूपी हाथी जबतक प्रयत्नपूर्वक वशमें नहीं किया गया है तबतक यह चढ़नेवालेके लिए भयका ही कारण रहता है, शान्तिका नहीं ॥१९५॥ इसके विपरीत अच्छी तरह वशमें किया हुआ मनरूपी हाथी, साधुरूपी महावतके द्वारा प्रेरित हो तपरूपी रणभूमिमें पापरूपी सेनाको अच्छी तरह रोक लेता है ॥१९६॥ शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धरूपी धान्यकी अभिलाषा रखनेवाले एवं मनरूपी वायुसे प्रेरित हो चौकड़ी भरनेवाले इस इन्द्रियरूपी मृगोंके झुण्डके संचित धैर्यको ध्यानरूपी मजबूत जालसे जबरदस्ती रोककर मैं तपके द्वारा चिरसंचित पापका अभी हाल क्षय करता हूँ ॥१९७-१९८॥ इस प्रकार कहकर तथा मनके वेगको रोककर राजा मधुने ज्ञानरूपी जलसे धुली हुई अपनी बुद्धिको सन्तापकी शान्तिके लिए तपश्चरणमें लगाया ॥१९९॥

उसी समय विमलवाहन नामक मुनिराज एक हजार मुनियोंके साथ अयोध्या नगरीमें आकर उसके सहस्राम्रवनमें ठहर गये ॥२००॥ मुनियोंके आगमनका समाचार सुन राजा मधु, अपने छोटे भाई कैटभ और स्त्रीजनोंके साथ उनके दर्शन करनेके लिए गया। विधिपूर्वक उनकी पूजा कर उसने विशेष रूपसे धर्मश्रवण किया ॥२०१॥ तथा भोग, संसार, शारीरिक सुख एवं नगर आदिसे विरक्त हो उसने भाई कैटभ तथा अन्य अनेक क्षत्रियोंके साथ जिन-दीक्षा ले ली ॥२०२॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा व्रत और शीलसे युक्त चन्द्राभा आदि सैकड़ों-हजारों रानियाँ भी दीक्षित हो गयीं—आर्यिका बन गयीं ॥२०३॥ राजा मधुके बाद उसका पुत्र कुलवर्धन, जो शरीर, पुरुषार्थ तथा विजयसे निरन्तर बढ़ रहा था अपने कुलकी रक्षा करने लगा ॥२०४॥

राजा मधु और कैटभ घोर तप करने लगे। वे व्रत गुप्ति और समितिसे युक्त थे तथा परिग्रहसे रहित निर्ग्रन्थ-मुनिराज थे ॥२०५॥ उस समय उन दोनोंके एक अंगोपांग ही परिग्रह था अथवा बाह्य और आभ्यन्तर आसक्तिका अभाव होनेसे अंगोपांग भी परिग्रह नहीं था ॥२०६॥ वे दोनों मुनि वेला-तेलाको आदि लेकर छह-छह माहके उपवास करते थे और आगममें प्रतिपादित समस्त आचरणोंसे कर्मोंकी निर्जरा करते थे ॥२०७॥ जब कभी वे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ोंकी चोटियोंपर आतापन योग लेकर विराजमान होते थे तब उनके शरीरसे पसीनाकी बूँदें टपकने लगती थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो कर्म ही गल-गलकर नीचे गिर रहे हों ॥२०८॥ वर्षाऋतुमें जीवोंकी रक्षा-के लिए वे विहार बन्द कर वृक्षोंके नीचे विराजमान रहते थे। उस समय धैर्यरूपी कवचको धारण करनेवाला उनका शरीर युद्धमें बाणोंकी पंक्तिके समान जलकी धाराओंसे खण्डित नहीं होता था। भावार्थ—वर्षा योगके समय वे वृक्षोंके नीचे बैठते थे और जलकी अविरल धाराओंको बड़े धैर्यके साथ सहन करते थे ॥२०९॥ हेमन्त ऋतुकी रात्रियोंमें वे प्रतिमा योगसे विराजमान रहकर शरीरकी कान्तिरूपी कमलिनीको जलानेवाली तुषार वायुको बड़ी शान्तिसे सहन करते थे ॥२१०॥ वे दोनों धीर, वीर, मुनिराज, उत्तम अनुप्रेक्षाओं, दशधर्मों, चारित्रकी शुद्धियों और परीषह जयके द्वारा संवर करते थे ॥२११॥ वे स्वाध्याय, ध्यान तथा योगमें स्थित रहते थे, वैयावृत्त्य करनेमें उद्यत रहते थे और रत्नत्रयकी विशुद्धताके द्वारा दृष्टान्तपनेको प्राप्त देखे गये थे ॥२१२॥ इस प्रकार अनेक हजार वर्ष तक जिन्होंने तपरूपी विशाल धनका संचय किया था और जो शल्यरूपी दोषसे

सदा दूर रहते थे ऐसे मधु और कैटभ मुनिराज अन्तमें सम्मेदाचलपर आरूढ़ हुए और वहां एक महीनेका प्रायोपगमन संन्यास लेकर उन्होंने समाधिपूर्वक शरीरका त्याग किया ।।२१३-२१४।। शरीर त्यागकर वे आरण और अच्युत स्वर्गमें हजारों देव-देवियोंके स्वामी इन्द्र और सामानिक देव हुए ।।२१५।। वहां बाईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुको धारण करनेवाले वे दोनों सम्यग्दृष्टि देव स्वर्गके उत्तम सुखका उपभोग करने लगे ।।२१६।।

उनमें जो मधुका जीव था वह स्वर्गसे च्युत हो भरत क्षेत्रमें कृष्ण नारायणकी रुक्मिणी रानीके उदररूपी भूमिका मणि बन प्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ ।।२१७।। और जो कैटभका जीव था वह भी स्वर्गसे च्युत हो कृष्णकी जाम्बवती पट्टरानीमें कृष्णके समान कान्तिको धारण करनेवाला प्रद्युम्नका शम्ब नामका छोटा भाई होगा ।।२१८।। प्रद्युम्न और शम्ब दोनों ही भाई अत्यन्त धीर-वीर चरमशरीरी एवं सुन्दर थे और दूसरे जन्मसम्बन्धी महाप्रीतिके कारण परस्पर एक दूसरेके हित करनेमें उद्यत रहते थे ।।२१९।।

वटपुरका स्वामी राजा वीरसेन चन्द्राभाके विरहजन्य सन्तापसे आर्तध्यानमें तत्पर रहता हुआ चिर काल तक संसाररूपी अटवीमें भ्रमण करता रहा ।।२२०।। अन्तमें मनुष्य पर्यायको प्राप्त कर वह अज्ञानी तापस हुआ और आयुके अन्तमें मरकर धूमकेतु—अग्निके समान प्रचण्ड धूमकेतु नामका देव हुआ ।।२२१।।

ज्यों ही उसे पूर्वजन्मसम्बन्धी वैरका स्मरण आया त्यों ही उसने बालक प्रद्युम्नको मातासे वियुक्त कर दिया सो आचार्य कहते हैं कि पापको बढ़ानेवाले इस वैर-भावको धिक्कार है ।।२२२।। अपने पूर्व-संचित पुण्यने प्रद्युम्नकी मृत्युसे रक्षा की सो ठीक ही है क्योंकि अपायसे रक्षा करनेमें पुण्यकी ही सामर्थ्य कारण है ।।२२३।। इस प्रकार उस समय सीमन्धर जिनेन्द्रके द्वारा प्रतिपादित प्रद्युम्नका चरित श्रवण कर चक्रवर्ती राजा पद्मरथने बड़ी प्रसन्नतासे जिनेन्द्र भगवान्को प्रणाम किया ।।२२४।।

इधर आनन्दके वशीभूत हुए नारद, सीमन्धर जिनेन्द्रको नमस्कार कर आकाशमार्गमें जा उड़े और मेघकूट नामक पर्वतपर आ पहुँचे ।।२२५।। वहां पुत्रलाभके उत्सवसे नारदने कालसंवर राजाका अभिनन्दन किया तथा पुत्रवती कनकमाला नामकी देवीकी स्तुति की ।।२२६।। सैकड़ों कुमार जिसकी सेवा कर रहे थे ऐसे रुक्मिणी-पुत्रको देख नारदको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे प्रसन्नताके वेगको मनमें छिपाये हुए परम रोमांचको प्राप्त हुए ।।२२७।। कालसंवर आदिने नमस्कार कर नारदका सम्मान किया। तदनन्तर आशीर्वाद देकर वे बहुत ही शीघ्र आकाशमें उड़कर द्वारिका आ पहुँचे ।।२२८।। वहां आकर जिस प्रकार गये, जिस प्रकार देखा और जिस प्रकार सुना वह सब प्रकट कर नारदने प्रद्युम्नकी कथा कर यादवोंके लिए हर्ष प्रदान किया ।।२२९।। तदनन्तर जिनका मुखकमल खिल रहा था ऐसे नारदने रुक्मिणी रानीको देखकर उसे सीमन्धर जिनेन्द्रके द्वारा कहा सब समाचार कह सुनाया ।।२३०।। अन्तमें उन्होंने कहा कि हे रुक्मिणि ! मैंने विद्याधरोंके राजा कालसंवरके घर क्रीड़ा करता हुआ तुम्हारा पुत्र देखा है। वह देवकुमारके समान अत्यन्त रूपवान् है ।।२३१।। सोलह लाभोंको प्राप्त कर तथा प्रज्ञप्तिविद्याका संग्रह कर तुम्हारा वह पुत्र सोलहवें वर्षमें अवश्य ही आवेगा ।।२३२।।

हे रुक्मिणि ! जब उसके आनेका समय होगा तब तेरे उद्यानमें असमयमें ही प्रिय समाचार-को सूचित करनेवाला मयूर अत्यन्त उच्च स्वरसे शब्द करने लगेगा ।।२३३।। तेरे उद्यानमें जो मणिमयी वापिका सूखी पड़ी है वह उसके आगमनके समय कमलोंसे सुशोभित जलसे भर जावेगी ।।२३४।। तुम्हारा शोक दूर करनेके लिए, शोक दूर होनेकी सूचना देनेवाला अशोक वृक्ष

असमयमें ही अंकुर और पल्लवोंको धारण करने लगेगा ॥२३५॥ तर यहा जा गूग ह व तभा तक गूँगे रहेंगे जबतक कि प्रद्युम्न दूर है। उसके निकट आते ही वे गूँगापन छोड़ देवेंगे ॥२३६॥ इन प्रकट हुए लक्षणोंसे तू पुत्रके आगमनका समय जान लेना। सीमन्धर भगवान्के वचनोंको अन्यथा मत मान ॥२३७॥ इस प्रकार नारदके हितकारी वचन सुन रुक्मिणीके स्तनोंसे दूध झरने लगा। वह श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर इस प्रकार कहने लगी कि हे भगवन् ! वात्सल्य प्रकट करनेमें जिनका चित सदा उद्यत रहता है ऐसे आपने आज यह मेरा उत्तम बन्धुजनोंका ऐसा कार्य किया है जो दूसरोंके लिए सर्वथा दुष्कर है ॥२३८–२३९॥ हे मुने ! हे धीर ! हे नाथ ! मैं पुत्रको शोकाग्निमें निराधार जल रही थी सो आपने हाथका सहारा दे मुझे बचा लिया है ॥२४०॥ सीमन्धर भगवान्ने जो कहा है वह वैसा ही है और मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे जीते रहते अवश्य ही पुत्रका दर्शन होगा ॥२४१॥ मैं अपना हृदय कठोर कर जिनेन्द्र भगवान्के कहे अनुसार जीवित रहूँगी। अब आप इच्छानुसार जाइए और मुझे आपका दर्शन फिर भी प्राप्त हो इस बातका ध्यान रखिए ॥२४२॥ इस प्रकार नारदसे निवेदन कर रुक्मिणीने उन्हें प्रणाम किया और नारद आशीर्वाद देकर चले गये। तदनन्तर रुक्मिणी शोक छोड़ श्रीकृष्णकी इच्छाको पूर्ण करती हुई पूर्वकी भाँति रहने लगी ॥२४३॥

इस सर्गमें कुमार प्रद्युम्न और शम्बके पूर्वभवोंका चरित लिखा गया है जिसमें उनके मनुष्यसे देव, देवसे मनुष्य, मनुष्यसे देव, देवसे मनुष्य, पुन: मनुष्यसे देव और देवसे मनुष्य तकका चरित बताया गया है तथा यह भी बताया गया है कि ये दोनों अन्तमें मोक्षके अभ्युदयको प्राप्त करेंगे इसलिए जिनशासनमें भक्ति रखनेवाले भव्यजन इस चरितका अच्छी तरह आचरण करें—ध्यानसे इसे पढ़ें-सुनें ॥२४४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें शम्ब और प्रद्युम्नका वर्णन करनेवाला तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४३॥

□

सर्ग- ४४

रानी सत्यभामाका जो पुत्र था वह श्रीमान् तथा सूर्यके प्रभामण्डलके समान देदीप्यमान था इसलिए उसका भानु नाम रखा गया। वह भानु प्रातःकालके सूर्यके समान अपनी महिमासे बढ़ने लगा ॥१॥ सूर्यकी किरणोंके समान तेजका धारक भानु ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था त्यों-त्यों सत्यभामाका मानरूपी पर्वत बढ़ता जाता था ॥२॥ तदनन्तर किसी समय नारद कृष्णकी सभामें आये तो कृष्णने उनसे पूछा—भगवन्! इस समय कहांसे आ रहे हैं? आपका मुख किसी बड़े भारी हर्षको प्रकट कर रहा है ॥३॥ नारदने कहा—विजयार्ध पर्वतको दक्षिणश्रेणीमें एक जम्बूपुर नामका नगर है। उसमें जाम्बव नामका विद्याधर रहता है, उसकी शिवचन्द्रा नामकी चन्द्रमुखी भार्या है। उन दोनोंके सत्र ओर यशको फैलानेवाला विश्वक्सेन नामका पुत्र तथा जाम्बवती नामकी कन्या है। जाम्बवती क्या है मानो स्वयं आयी हुई लक्ष्मी ही है ॥४-५॥ वह इस समय सखियोंके साथ स्नान करनेके लिए गंगा नदीमें उतरी है और सुन्दर ताराओंसे घिरी चन्द्रमाकी कलाके समान उत्तम जान पड़ती है। वह गंगाके द्वारमें स्थित है तथा ऊँचे उठे वस्त्राच्छादित स्तनोंसे युक्त है। वह जाम्बव नाम पर्वतसे निकली नदीके समान है एवं दूसरेके लिए प्राप्त करना अशक्य है अथवा अपने पिता जाम्बवकी सेनाके समान दूसरेके लिए वश करना अशक्य है ॥६-७॥

इस प्रकार स्नेहसे युक्त नारदके इन वचनोंसे श्रीकृष्ण उस समय उस प्रकार उत्तेजित हो उठे जिस प्रकार कि घीसे अग्नि उत्तेजित हो उठती है ॥८॥ वे *अनावृष्टि और उसकी सेनाको साथ ले शीघ्र ही उस स्थानकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने स्नान-क्रीड़ाको प्रारम्भ करनेवाली जाम्बवतीको देखा ॥९॥ उसी समय सहसा नील कमलके समान कान्तिके धारक श्रीकृष्णपर कन्या जाम्बवतीकी दृष्टि भी जा पड़ी। तदनन्तर कामदेवने एक ही साथ अपने पाँचों बाणोंसे दोनोंको वेध दिया ॥१०॥ अवसर देख श्रीकृष्णने श्री, रति और ह्रीदेवीको लज्जित करनेवाली जाम्बवतीका दोनों भुजाओंसे गाढ़ आलिंगन किया। तदनन्तर जिनके नेत्र कुछ-कुछ निमीलित हो रहे थे ऐसे श्रीकृष्ण, स्पर्शजन्य सुखसे निमीलित नेत्रोंवाली उस कन्याको हर लाये ॥११॥ उसी समय वहां कन्या हरणके कारण उसकी सखियोंका जोरदार रोनेका शब्द हुआ जो समीपवर्ती शिविरमें फैल गया ॥१२॥ शब्दको सुन, क्रोधसे भरा कन्याका पिता विद्याधरोंका राजा जाम्बव, हाथमें तलवार और देदीप्यमान ढाल ले आकाश-मार्गसे चलकर शीघ्र ही वहां आ पहुँचा ॥१३॥ उसे आया देख आकाशगामी अनावृष्टिने आकाशमें कुछ देर तक तो उसका युद्धके द्वारा अतिथि-सत्कार किया। तदनन्तर हाथमें तलवारको धारण करनेवाले उस विद्याधर राजा जाम्बवको उसने बांध लिया ॥१४॥ नीतिके ज्ञाता वीर अनावृष्टिने उसे लाकर श्रीकृष्णको दिखाया। इस घटनासे राजा जाम्बवको वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे वह अपने पुत्र विश्वक्सेनको श्रीकृष्णके अधीन कर तपके लिए वनको चला गया ॥१५॥ जाम्बवतीके विवाहसे परम आनन्दको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण विश्वक्सेनको साथ ले अपनी द्वारिका नगरीको चले गये ॥१६॥ जाम्बवतीके आगमनसे रुक्मिणीको भी हर्ष हुआ, इसलिए श्रीकृष्णने रुक्मिणीके महलके समीप ही जाम्बवतीके लिए सुन्दर महल दिया ॥१७॥

जाम्बवतीके भाई विश्वक्सेनका सम्मान कर उसे अपने स्थानपर विदा किया और पृथिवीतलमें दुर्लभ भोगोंसे जाम्बवतीके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥१८॥ रुक्मिणी और जाम्बवतीमें जो प्रीति प्रथम उत्पन्न हुई थी वह परस्पर एक-दूसरेके महलमें आने-जानेसे बढ़ती गयी तथा अखण्ड रूपमें परिणत हो गयी ॥१९॥

उसी समय सिंहलद्वीपमें सूक्ष्मबुद्धिका धारक श्लक्ष्णरोम नामका राजा रहता था। उसे वश करनेके लिए किसी समय कृष्णने अपना दूत भेजा ॥२०॥ दूतने वहाँ जाकर और शीघ्र ही वापस आकर श्रीकृष्णको उसके प्रतिकूल होनेकी खबर दी और साथ ही यह भी खबर दी कि उसके उत्तम लक्षणोंसे युक्त एक लक्ष्मणा नामकी कन्या है ॥२१॥ तदनन्तर हर्षसे युक्त श्रीकृष्ण बलदेवके साथ शीघ्र ही वहाँ गये। वहाँ जाकर उन्होंने स्नान करनेके लिए समुद्रमें आयी हुई दीर्घलोचना लक्ष्मणाको देखा ॥२२॥ तदनन्तर अपने रूपसे उसके चित्तको हरकर और महाशक्तिशाली द्रुमसेन नामक सेनापतिको युद्धमें मारकर श्रीकृष्ण उस रूपवती लक्ष्मणाको हर लाये ॥२३॥ द्वारिकामें लाकर उसके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और जाम्बवतीके महलके समीप उसे महल दे रमण करने लगे ॥२४॥ लक्ष्मणाका भाई महासेन कृष्णके पास आकर नम्रीभूत हुआ और मानी कृष्णके द्वारा सम्मान-पूर्वक विदा पाकर अपने सिंहलद्वीपको चला गया ॥२५॥

उसी समय सुराष्ट्र देशमें एक राष्ट्रवर्धन नामका राजा था। अजाखुरी उसकी नगरी थी और विनया नामकी रानी थी जो समस्त स्त्रियोंमें उत्तम थी ॥२६॥ विनया नामक रानीसे उसके नमुचि नामका पुत्र हुआ था जो नीति और पराक्रमका भण्डार था। इसी प्रकार एक सुसीमा नामकी पुत्री थी जो कि उत्तम सीमासे युक्त पृथिवीके समान जान पड़ती थी ॥२७॥ युवराज नमुचिका पराक्रम समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध था। वह अभिमानका मानो बड़ा ऊँचा पर्वत था और माननीय राजाओंका निरन्तर तिरस्कार करता रहता था ॥२८॥ एक दिन युवराज नमुचि और उसकी बहन सुसीमा दोनों ही स्नान करनेके लिए समुद्रतटपर आये। इधर हितकारी नारदने श्रीकृष्णके लिए उन दोनोंकी खबर दी ॥२९॥ श्रीकृष्ण खबर पाते ही बलदेवके साथ वहाँ गये और प्रभास तीर्थके तीरपर जिसकी सेना ठहरी हुई थी ऐसे उस नमुचिको मारकर तथा कन्या सुसीमाको हरकर द्वारिका आ गये ॥३०॥ वहाँ लक्ष्मणाके भवनके समीप सुवर्णमय उत्तम महल देकर उसके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगे ॥३१॥

तदनन्तर सुसीमाके पिता राजा राष्ट्रवर्धनने भी पुत्रीके लिए उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण और श्रीकृष्णके लिए रथ, हाथी आदिकी भेंट भेजी ॥३२॥

उसी समय सिन्धुदेशके वीतभय नामक नगरमें इक्ष्वाकु वंशको बढ़ानेवाला मेरु नामका राजा रहता था, उसकी चन्द्रवती नामकी भार्या थी ॥३३॥ उससे उसके एक गौरी नामकी कन्या उत्पन्न हुई थी जो गौरवर्णकी थी, रूपवती गौर विद्याके समान थी अथवा ईतियोंसे रहित पृथिवीके समान जान पड़ती थी ॥३४॥ निमित्तज्ञानीने बताया था कि यह नौवें नारायण श्रीकृष्णकी स्त्री होगी, इसलिए उसके वचनोंका स्मरण रखनेवाले राजा मेरुने पहले तो श्रीकृष्णके पास दूत भेजा और उसके बाद मृगलोचना गौरीको भेजा ॥३५॥ श्रीकृष्णने मनको हरनेवाली गौरीको विवाहकर उसके लिए सुसीमाके भवनके समीप ऊँचा महल प्रदान किया ॥३६॥

उसी समय बलदेवके मामा राजा हिरण्यनाभ अरिष्टपुर नगरमें राज्य करते थे। उनकी श्रीकान्ता नामकी उत्तम स्त्री थी। उससे उनके पद्मावती नामकी कन्या उत्पन्न हुई थी जो साक्षात् लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी। 'उसका स्वयंवर हो रहा है' यह सुनकर अनावृष्टिके साथ-साथ बलदेव और कृष्ण भी वहाँ गये ॥३७-३८॥ आत्मीयजनोंके साथ स्नेह बढ़ानेवाले इन दोनोंको

राजा हिरण्यनाभने बड़े गौरव और प्रेमके साथ देखा ॥३९॥ हिरण्यनाभका बड़ा भाई रेवत जो पिताके साथ पहले ही दीक्षित हो वनमें रहने लगा था उसकी चार कन्याएँ १ रेवती, २ बन्धुमती, ३ सीता और ४ राजीवनेत्रा बलदेवके लिए पहले ही दी जा चुकीं ॥४०–४१॥ जब पद्मावतीका स्वयंवर होने लगा तब युद्धनिपुण श्रीकृष्ण, उसे हठपूर्वक हर ले आये और रणमें जिन्होंने शूरवीरता दिखायी उन्हें शीघ्र ही नष्ट कर डाला ॥४२॥ तदनन्तर विवाह कर अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ लिये दोनों भाई, भाइयोंके साथ शीघ्र ही द्वारिका आये और देवोंके समान क्रीड़ा करने लगे ॥४३॥ हर्षित श्रीकृष्ण गौरीके महलके समीप पद्मावतीके लिए महल देकर बहुत प्रसन्न हुए ॥४४॥

उसी समय गान्धार देशकी पुष्कलावती नगरीमें एक इन्द्रगिरि नामका राजा रहता था। उसकी मेरुसती नामकी स्त्री थी। उससे उसके हिमगिरिके समान स्थिर हिमगिरि नामका पुत्र था और गान्धारी नामकी सुन्दरी पुत्री थी जो गन्धर्व आदि कलाओंमें अत्यन्त निपुण थी ॥४५–४६॥ शीघ्रतासे आये हुए नारदसे श्रीकृष्णको जब यह विदित हुआ कि गान्धारीका भाई उस हयपुरीके राजा सुमुखको दे रहा है तब वे शीघ्र ही जाकर रणांगणमें प्रतिकूल हिमगिरिको मारकर गान्धारीको हर लाये एवं उस सौम्यमुखीके साथ विवाह कर बहुत हर्षित हुए ॥४७-४८॥ उन्होंने पद्मावतीके महलके समीप गान्धारीके लिए उत्तम महल दिया और उस धैर्यशालिनीको उत्तम भोगोंसे सम्मानित किया ॥४९॥ इस प्रकार जो वशीकृत आठ दिशाओंके समान उन आठ इष्ट पट्टरानियोंसे अन्तःपुरमें सदा सेवित रहते थे, जो पुण्यरूपी वृक्षसे उत्पन्न भोगरूपी विशाल फलका उपभोग करते थे, जन-समूहको आनन्द प्रदान करते थे, एवं प्रबल पराक्रमके धारक थे ऐसे श्रीकृष्ण समृद्धिको प्राप्त हुए ॥५०–५१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जिनधर्मको धारण करनेवाला भव्य जीव युद्धमें सामने खड़े शत्रुओंके समूहको क्षणमात्रमें तृणके समान पराजित कर अनायास ही उत्तमोत्तम स्त्रीरूपी रत्नोंको प्राप्त कर लेता है ॥५२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें जाम्बवती आदि महादेवियोंके लाभका वर्णन करनेवाला चवालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४४॥

□

अथानन्तर किसी दिन यादवोंके भानेज महापराक्रमी, राजा पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन, महाबलवान् भीमसेन, नकुल और सहदेव ये पांचों पाण्डव द्वारिकापुरी आये ॥१-२॥ इसी बीचमें राजा श्रेणिकने हाथ जोड़कर गौतमगणधरसे पूछा कि हे भगवन्! पाण्डु और पाण्डव किसके वंशमें उत्पन्न हुए हैं? ॥३॥ गौतमस्वामीने कहा कि पाण्डु और पाण्डव कुरुवंशमें हुए हैं जिसमें कि शान्ति, कुन्थु और अर ये तीन तीर्थंकर हुए हैं ॥४॥ हे मगधेश्वर! अब मैं प्रारम्भसे लेकर चतुर्वर्गकी सेवा करनेवाले कुरुवंशी राजाओंके कुछ नाम कहता हूँ सुनो ॥५॥

शोभामें देवकुरु-उत्तरकुरुकी तुलना करनेवाले कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें जो आभूषणस्वरूप श्रेयान् और सोमप्रभ नामके दो राजा हुए थे वे कुरुवंशके तिलक थे, भगवान् वृषभदेवके समकालीन थे और दानतीर्थके नायक थे ॥६-७॥ उनमें सोमप्रभके जयकुमार नामका पुत्र हुआ। वह जयकुमार ही आगे चलकर भरत चक्रवर्तीके द्वारा 'मेघस्वर' इस नामसे सम्बोधित किया गया ॥८॥ जयकुमारसे कुरु पुत्र हुआ। कुरुके कुरुचन्द्र, कुरुचन्द्रके शुभंकर और शुभंकरके धृतिकर पुत्र हुआ ॥९॥

तदनन्तर कालक्रमसे अनेक करोड़ राजा और अनेक सागर प्रमाण तीर्थंकरोंका अन्तराल काल व्यतीत हो जानेपर धृतिदेव, धृतिकर, गंगदेव, धृतिमित्र, धृतिक्षेम, सुव्रत, व्रात, मन्दर, श्रीचन्द्र और सुप्रतिष्ठ आदि सैकड़ों राजा हुए। तदनन्तर धृतपद्म, धृतेन्द्र, धृतवीर्य, प्रतिष्ठित आदि राजाओंके हो चुकनेपर धृतिदृष्टि, धृतिद्युति, धृतिकर, प्रीतिकर आदि हुए ॥१०-१३॥ तत्पश्चात् भ्रमरघोष, हरिघोष, हरिध्वज, सूर्यघोष, सुतेजस्, पृथु और इभवाहन आदि राजा हुए। तदनन्तर विजय, महाराज और जयराज हुए ॥१४-१५॥ इनके पश्चात् उसी वंशमें चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार हुए जो रूपपाशसे खिचकर आये हुए देवोंके द्वारा सम्बोधित हो दीक्षित हो गये थे ॥१६॥ सनत्कुमारके सुकुमार नामका पुत्र हुआ। उसके बाद वरकुमार, विश्व, वैश्वानर, विश्वकेतु और बृहद्ध्वज नामक राजा हुए। तदनन्तर विश्वसेन राजा हुए जिनकी स्त्रीका नाम ऐरा था। इन्हींके पंचम चक्रवर्ती और सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ हुए ॥१७-१८॥ इनके पश्चात् नारायण, नरहरि, प्रशान्ति, शान्तिवर्धन, शान्तिचन्द्र, शशांकांक और कुरु राजा हुए ॥१९॥ इत्यादि राजाओंके व्यतीत होनेपर इसी वंशमें सूर्य नामक राजा हुए जिनकी स्त्रीका नाम श्रीमती था। उन दोनोंके भगवान् कुन्थुनाथ उत्पन्न हुए जो तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे ॥२०॥ तदनन्तर क्रम-क्रमसे बहुत राजाओंके व्यतीत हो जानेपर सुदर्शन नामक राजा हुए जिनकी स्त्रीका नाम मित्रा था। इन्हीं दोनोंके सप्तम चक्रवर्ती अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ हुए ॥२१-२२॥ उनके बाद सुचारु, चारु, चारुरूप और चारुपद्म राजा हुए। तदनन्तर अन्य राजाओंके हो चुकनेपर इसी वंशमें पद्ममाल, सुभौम और पद्मरथ राजा हुए। उनके बाद महापद्म चक्रवर्ती हुए। उनके विष्णु और पद्म नामक दो पुत्र हुए ॥२३-२४॥ तदनन्तर सुपद्म, पद्मदेव, कुलकीर्ति, कीर्ति, सुकीर्ति, कीर्ति, वसुकीर्ति, वासुकि, वासव, वसु, सुवसु, श्रीवसु, वसुन्धर, वसुरथ, इन्द्रवीर्य, चित्र, विचित्र, वीर्य, विचित्र, विचित्रवीर्य, चित्ररथ, महारथ, धृतरथ, वृषानन्त, वृषध्वज, श्रीव्रत, व्रतधर्मा, धृत, धारण, महासर, प्रतिसर, शर, पारशर, शरद्वीप, द्वीप, द्वापायन, सुशान्ति, शान्तिभद्र, शान्तिषेण, योजनगन्धा राजपुत्रीके भर्ता शन्तनु और शन्तनुके राजा धृतव्यास पुत्र हुए ॥२५-३१॥ तदनन्तर धृतधर्मा, धृतोदय, धृततेज, धृतयश, धृतमान और धृत हुए। धृतके धृतराज नामक पुत्र हुआ। उसको अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा नामकी तीन स्त्रियाँ थीं जो उच्चकुलमें उत्पन्न हुई थीं ॥३२-३३॥ उनमें अम्बिकासे धृतराष्ट्र, अम्बालिकासे पाण्डु और अम्बासे ज्ञानिश्रेष्ठ विदुर ये तीन पुत्र हुए ॥३४॥ भीष्म भी शन्तनुके ही वंशमें उत्पन्न हुए थे। धृतराजके भाई रुक्मण उनके पिता थे और पवित्र बुद्धिको धारण

करनेवाली राजपुत्री गंगा उनकी माता थी ॥३५॥ राजा धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि सौ पुत्र थे जो नय-पौरुषसे युक्त तथा परस्पर एक दूसरेके हित करनेमें तत्पर थे ॥३६॥ राजा पाण्डुकी स्त्रीका नाम कुन्ती था, जिस समय राजा पाण्डुने गन्धर्व विवाह कर कुन्तीसे कन्या अवस्थामें सम्भोग किया था उस समय कर्ण उत्पन्न हुए थे और विवाह करनेके बाद युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम ये तीन पुत्र हुए ॥३७॥ इन्हीं पाण्डुकी माद्री नामकी दूसरी स्त्री थी उससे नकुल और सहदेव ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। ये दोनों ही पुत्र कुलके तिलकस्वरूप थे और पर्वतके समान स्थिर थे। युधिष्ठिर-को आदि लेकर तीन तथा नकुल और सहदेव ये पाँच पाण्डव कहलाते थे ॥३८॥ जब राजा पाण्डु और रानी माद्री जिन-धर्मके प्रसादसे स्वर्गवासी हो गये तब पाण्डव और दुर्योधनादि धार्तराष्ट्र राज्य-विषयको लेकर एक दूसरेके विरोधी हो गये ॥३९॥ जब इनका विरोध बढ़ने लगा तब भीष्म, विदुर, द्रोण, मन्त्री शकुनि तथा दुर्योधनके मित्र शशरोम आदिने मध्यस्थ बनकर कौरवोंके राज्यके बराबर दो भाग कर दिये। एक भाग युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डवोंको मिला और दूसरा भाग दुर्योधन आदि सौ कौरवोंको प्राप्त हुआ ॥४०–४१॥

इधर दुर्योधनकी कर्णके साथ उत्तम मित्रता हो गयी और जरासन्धके साथ स्थिर बैठकें होने लगीं ॥४२॥ द्रोणाचार्य धनुर्विद्यामें अत्यन्त निपुण थे और वे मध्यस्थ-भावसे पाण्डवों तथा कौरवोंके लिए भार्गवाचार्यका काम करते थे अर्थात् दोनोंको समान रूपसे धनुर्विद्याका उपदेश देते थे ॥४३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! द्रोणाचार्यकी शिष्य और आचार्योंकी परम्परा तो प्रसिद्ध है अतः उसे छोड़ भार्गवाचार्यकी वंशपरम्पराका वर्णन करता हूँ उसे सुन ॥४४॥ भार्गवका प्रथम शिष्य आत्रेय था, उसका शिष्य कौथुमि पुत्र था, कौथुमिका अमरावर्त, अमरा-वर्तका सित, सितका वामदेव, वामदेवका कपिष्ठल, कपिष्ठलका जगत्स्थामा, जगत्स्थामाका सरवर, सरवरका शरासन, शरासनका रावण, रावणका विद्रावण और विद्रावणका पुत्र द्रोणाचार्य था जो समस्त भार्गव वंशियोंके द्वारा वन्दित था—सब लोग उसे नमस्कार करते थे ॥४५–४७॥ द्रोणाचार्य-की अश्विनी नामक स्त्रीसे अश्वत्थामा नामक पुत्र हुआ था। यह अश्वत्थामा बड़ा धनुर्धारी था और युद्धमें एक अर्जुन ही उसका प्रतिस्पर्धी था—अर्जुन ही उसकी बराबरी कर सकता था अन्य नहीं ॥४८॥

तदनन्तर अर्जुनके प्रताप और विज्ञानसे ईर्ष्या रखनेवाले दुर्योधन आदि कौरव सन्धिमें दोष लगानेके लिए उद्यत हो गये अर्थात् अर्जुनके लोकोत्तर प्रताप और अनुपम सूझ-बूझसे ईर्ष्या कर कौरव लोग राज्यके विषयमें पहले जो सन्धि हो चुकी थी उसमें दोष लगाने लगे ॥४९॥ वे कहने लगे कि कौरवोंके आधे राज्यको एक ओर तो सिर्फ पाँच पाण्डव भोगते हैं और एक ओर आधे राज्यको हम सौ भाई भोगते हैं—इससे बढ़कर अन्यायपूर्ण कार्य और क्या होगा? ॥५०॥ दुर्योधनादिकका यह विचार पाण्डवोंने भी सुना। पाण्डवोंमें युधिष्ठिर शान्तिप्रिय व्यक्ति थे अतः उन्होंने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया परन्तु शेष चार पाण्डव प्रसन्न तथा गम्भीर होनेपर भी उस तरह क्षोभको प्राप्त हो गये जिस तरह कि प्रचण्ड वायुसे चारों दिशाओंके चार समुद्र क्षोभको प्राप्त हो जाते हैं ॥५१॥ अर्जुनरूपी मेघ यह कहता हुआ उठकर खड़ा हो गया कि मैं उठते हुए इस शत्रुरूपी पर्वतको बाणरूपी जलकी धारासे अभी हाल आच्छादित किये देता हूँ परन्तु युधि-ष्ठिररूपी वायुने उसे शान्त कर दिया ॥५२॥ भीमरूपी भुजंग यह कहकर उठ खड़ा हुआ कि मैं सौ-के-सौ हिस्सेदारोंको अपनी दृष्टिसे अभी भस्म किये देता हूँ परन्तु बड़े भाई युधिष्ठिरने उसे मन्त्रके द्वारा शान्त कर दिया ॥५३॥ नकुल भी, नकुल (नेवला) के समान शत्रुरूपी सर्पोंके सन्तापदायी कुलका अन्त करनेके लिए उद्यम करने लगा परन्तु अग्रज—युधिष्ठिरने उसे अपने भुजरूपी पिंजरेमें कैद कर रोक रखा ॥५४॥ और सहदेवरूपी दावानल यह कहता हुआ देदीप्य-

मान होने लगा कि मैं शत्रुरूपी वनखण्डको अभी हाल भस्म किये देता हूँ परन्तु बड़े भाई— युधिष्ठिररूपी मेघने उसे शान्त कर दिया ॥५५॥

तदनन्तर सब पाण्डव शान्तचित्त होकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद जब वे गहरी नींदमें सो रहे थे तब कौरवोंने उनके घरमें आग लगवा दी ॥५६॥ सहसा उनकी नींद खुल गयी और पाँचोंके पांच पाण्डव माताको साथ ले सुरंगसे निकलकर निर्भय हो कहीं चले गये ॥५७॥ इस घटनासे जनताका दुर्योधनके प्रति विद्वेष उमड़ पड़ा सो ठीक ही है क्योंकि पापमें अनुराग रखनेवाले किस पुरुषपर सज्जनोंको विद्वेष नहीं होता? अर्थात् सभीपर होता है ॥५८॥ तदनन्तर कुटुम्बके लोगोंने समझा कि पाण्डव तो इसी आगमें भस्म हो चुके हैं इसीलिए वे मरणोत्तरकाल होनेवाली क्रियाओंको कर निश्चिन्त-जैसे होकर रहने लगे ॥५९॥

इधर महाबुद्धिमान् पाण्डव गंगा नदीको पार कर तथा वेष बदलकर पूर्व दिशाकी ओर गये ॥६०॥ माता कुन्ती धीरे-धीरे चल पाती थी इसलिए वे उसकी चालके अनुसार इच्छापूर्वक सुखसे धीरे-धीरे चलते हुए उस कौशिक नामकी नगरीमें पहुँचे जहां वर्ण नामका राजा रहता था ॥६१॥ राजा वर्णकी स्त्रीका नाम प्रभावती था और उससे उसके कुसुमकोमला नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी। पाण्डवोंपर लोगोंका अधिक अनुराग था इसलिए कुसुमकोमलाने भी उनका नाम सुना तथा उन्हें देखा ॥६२॥ वह भाग्यशालिनी सुन्दर कन्यारूपी कुमुदिनी, युधिष्ठिररूपी चन्द्रमाको देखनेसे परम विकासको प्राप्त हो गयी ॥६३॥ जो युधिष्ठिरकी प्रिय स्त्री होनेवाली थी ऐसी कन्या कुसुमकोमला उन्हें देख मनमें विचार करने लगी कि इस जन्ममें मेरे यही उत्तम पति हों ॥६४॥ कन्याके अभिप्रायको जानकर युधिष्ठिरके भी प्रेमरूपी बन्धन समुत्पन्न हो गया और वे इशारेसे विवाहकी आशा दिखा आगे चले गये ॥६५॥ कुसुमकोमला, उनके पुनः समागम-की प्रतीक्षा करती हुई कन्याजनोंके योग्य विनोदोंसे समय बिताने लगी ॥६६॥

तदनन्तर जो स्वभावसे ही सुन्दर आकारके धारक थे ऐसे वे पाँचों भाई ब्राह्मणका वेष रख, मनुष्योंके चित्तको हरते हुए आगे चले ॥६७॥ वे सब महापुण्यशाली जीव थे इस-लिए उस अज्ञातवासके समय भी उन्हें मनोहर आसन, शयन और भोजन सुखपूर्वक अचिन्तित रूपसे प्राप्त होते रहते थे ॥६८॥ तत्पश्चात् वे तापसके वेषमें श्लेष्मान्तक नामक वनमें पहुँचे वहाँ तापसोंके सुन्दर तपोवनमें उन्होंने विश्राम किया और तापसोंने उनका अच्छा सत्कार किया ॥ ६९ ॥ उस आश्रममें वसुन्धरपुरके राजा विन्ध्यसेनकी वसन्तसुन्दरी नामकी पुत्री, जो कि नर्मदा नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी रहती थी ॥७०॥ यह कन्या गुरुजनोंने युधिष्ठिरके लिए पहले ही दे रखी थी परन्तु जब उनके जल जानेका समाचार सुना तब वह अपने पूर्वकृत कर्मकी निन्दा करती हुई इस इच्छासे कि 'उन प्राणनाथका दर्शन इस जन्ममें न हो सका तो जन्मान्तरमें हो', तपस्वियोंके उस आश्रममें तप करने लगी थी ॥७१–७२॥ वह अतिशय रूप और लावण्यकी धारक थी, सुन्दर स्वच्छ साड़ीसे सुशोभित थी, शिरपर जटाएँ रखाये हुई थी और स्निग्ध कान्तिसे सहित थी इसलिए पायोंको धारण करनेवाली स्निग्ध छायासे सहित वटवृक्षकी शाखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥७३॥ वह तापसी कानों तक लम्बे नेत्र, सुन्दर ओठ, मुखरूपी चन्द्रमा एवं नितम्ब और स्तनोंके भारसे सबका मन हरती थी ॥७४॥ वह समस्त तापसोंके द्वारा पूज्य थी, चन्द्रमाकी कलाके समान कृश तथा निर्मल थी और अपने आवाससे उस तपोवनको पवित्र करती थी ॥७५॥ मधुर वचन बोलनेवाली उस तापसीने तापसोंके योग्य वृत्तिसे पाण्डवोंका अतिथि-सत्कार किया तथा उनकी भूख-प्यास और मार्गकी थकावटको दूर किया ॥७६॥

एक दिन कुन्तीने बड़े प्रेमसे उससे पूछा कि हे कमलके समान कोमलांगी बेटी! तुझे नयी

अवस्थामें ही वैराग्य किस कारणसे हो गया है जिससे तूने यह कठिन व्रत धारण कर रखा है ? ।।७७।। इस प्रकार स्नेहके साथ पूछी जानेपर मृगनेत्री राजपुत्री मनोहर वाणीसे उनका मन हरती हुई बोली कि हे पूज्ये ! आपने ठीक पूछा है, मेरे वैराग्यका कारण सुनिए क्योंकि सज्जन पुरुष बताये हुए मनके दुःखको दूर कर देते हैं ।।७८–७९।। मेरे गुरुजनोंने मुझे स्वभावसे उत्तम चेष्टाके धारक पाण्डवोंके बड़े भाई युधिष्ठिरके लिए पहले ही दे रखा था ।।८०।। परन्तु मेरे पापके प्रभावसे माता और भाइयोंके साथ उनके विषयका जो समाचार लोगोंसे सुना है उसका स्मरण भी नहीं किया जा सकता ।।८१।। 'मेरा पति दाहके दुःखसे मरा है इसलिए मुझे भी उसी मार्गसे मरना युक्त था परन्तु मैं शक्तिहीन होनेके कारण उस मार्गसे मर नहीं सकी इसलिए तपस्या करने लगी हूँ' ।।८२।।

तापसीके वचन सुन उसे होनहार पुत्रवधू जान सौम्य स्वभावकी धारक कुन्तीने कहा कि हे भद्रे ! तूने बहुत उत्तम किया जो प्राणोंकी रक्षा की ।।८३।। मित्रजन, मित्रजनके विषयमे कुछ अन्य विचार करते हैं और भाग्य उससे विपरीत कुछ अन्य ही कार्य कर देता है इसलिए दीर्घदर्शिताकी आकांक्षा की जाती है ।।८४।। हे कल्याणि ! प्राण कल्याणके कारण हैं इसलिए मेरे कहनेसे तू तपस्या करती हुई भी इन्हें अवश्य धारण कर। यदि जीवित रहेगी तो कल्याणको अवश्य प्राप्त करेगी ।।८५।। पाण्डुके प्रथम पुत्र—युधिष्ठिरने भी माता कुन्तीके ही वचनोंका अनुवाद किया—वही बात कही और अणुव्रत, शीलव्रत तथा गुणव्रतोंसे युक्त धर्मका उपदेश दिया ।।८६।। उस समय युधिष्ठिर तथा कन्याका, मनमें प्रीति उत्पन्न करनेवाला जो परस्पर वार्तालाप हुआ था उससे कन्याने मनमें यह समझा अर्थात् यह शंका उसके मनमें उत्पन्न हुई कि क्या यह राजाओंके लक्षणोंसे युक्त वही युधिष्ठिर हैं जो दयासे युक्त हो माताके साथ यहाँ मुझे अत्यधिक उपदेश दे रहे हैं ? मेरे पुण्य अथवा गणनीय आदरणीय तपसे ही यहाँ प्रकट हुए हैं। ये दृढ़प्रतिज्ञ और उद्यमी प्रिय, कुमार यहाँ बिना किसी आघातसे चिर काल तक जीवित रहें ।।८७–८९।।

युधिष्ठिर आदि पाण्डव जब वहाँसे जाने लगे तब उस कन्याने 'आप शिष्ट जनोंका फिरसे दर्शन प्राप्त हो' यह कह मधुर वार्तालापसे उनका सम्मान किया। वे चले गये और कन्या युधिष्ठिरकी प्राप्तिकी आशासे उसी तपोवनमें रहने लगी ।।९०।। इधर जब राजा समुद्रविजयने सुना कि दुर्योधनने हमारी बहन तथा भानजोंको महलमें जलाकर मार डाला है तब वे कुपित हो कौरवोंको मारनेके लिए आये ।।९१।। तदनन्तर महान् आदरसे युक्त जरासन्धने स्वयं आकर यादवों और कौरवोंके बीच सन्धि करा दी। सन्धि कराकर जरासन्ध अपनी राजधानीको चला गया ।।९२।।

इधर पाण्डव तापसोंका वेष छोड़ सामान्य ब्राह्मणके वेषमें विचरण करने लगे और माता कुन्तीके साथ चलते-चलते सब ईहापुर नामक उत्तम नगरमें पहुँचे ।।९३।। वहाँ एक भ्रमरके समान काला भृंगराक्षस नामका महाभयंकर नरभोजी राक्षस मनुष्योंको दुःखी कर रहा था सो भीमसेनने उसे नष्ट कर वहाँके निवासियोंका भय दूर किया ।।९४।। जिनका भय नष्ट हो गया था ऐसे प्रजाके लोगोंने मातासहित पाण्डवोंका खूब सत्कार किया। तदनन्तर इच्छानुसार चलते हुए वे त्रिशृंग नामक महानगरमें पहुँचे ।।९५।। वहाँ क्रूरकर्मा मनुष्योंके लिए तीव्र दण्ड देनेवाला प्रचण्डवाहन नामका राजा था। उसकी विमलप्रभा नामकी प्रिय स्त्री थी ।।९६।। उन दोनोंके दश पुत्रियाँ थीं जो सबकी-सब रूपके अतिशयसे युक्त, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली और कलाओंमें पारंगत थीं ।।९७।। उनके नाम थे—१ गुणप्रभा, २ सुप्रभा, ३ ह्री, ४ श्री, ५ रति, ६ पद्मा, ७ इन्दीवरा, ८ विश्वा, ९ आचर्या और १० अशोका। इनमें गुणप्रभा ज्येष्ठ थी ।।९८।।

ये सभी कन्याएँ पहले युधिष्ठिरके लिए प्रदान की गयी थीं परन्तु बादमें उनका अन्यथा समाचार प्राप्त कर वे अणुव्रतोंको धारण करनेवाली श्राविकाएँ बन गयी थीं ॥९९॥ उसी त्रिश्रृंगपुरमें एक प्रियमित्र नामका सेठ रहता था जो बहुत भारी धनी तथा पुरुषोंके अन्तरको समझनेवाला था। पाण्डवोंको विशिष्ट पुरुष समझ उसने उनका बहुत सत्कार किया ॥१००॥ उसकी सोमिनी नामकी स्त्री थी और उससे उसके स्वरूप तथा सौन्दर्यसे नेत्रोंको आनन्द देनेवाली नयनसुन्दरी नामकी कन्या हुई थी ॥१०१॥ यह कन्या वीर युधिष्ठिरके लिए पहले ही दे दी गयी थी इसलिए वह भी पूर्वोक्त राजपुत्रियोंके समान अणुव्रत धारण कर रहती थी ॥१०२॥ राजा प्रचण्डवाहन और अपनी स्त्रीसहित सेठ प्रियमित्र, ब्राह्मणवेषधारी पाण्डवोंको महापुरुष समझते थे इसलिए ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरके लिए वे सब कन्याएँ देना चाहते थे ॥१०३॥ परन्तु कन्याओंने अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि 'युधिष्ठिर भले ही परलोक चले गये हों पर इस भवमें वे ही मेरे पति हैं अन्य नहीं।' इस निश्चयसे उन्होंने ब्राह्मणवेषधारी युधिष्ठिरको अन्य पुरुष समझ स्वीकृत नहीं किया ॥१०४॥

तदनन्तर सुमेरुके समान स्थिरचित्तके धारक वे सब पाण्डव उस नगरसे भी चल दिये और चलते-चलते चम्पापुरीमें पहुँचे जहाँ महाराजा कर्ण राज्य करते थे ॥१०५॥ वहाँ एक मदोन्मत्त बड़ा हाथी नगरमें उपद्रव मचा रहा था सो कुशल भीमने क्रीड़ा कर उसे मदरहित कर दिया। भीमकी यह वीरता देख कर्णको क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥१०६॥ वहाँसे चलकर वे इन्द्रपुरके समान सुन्दर वैदिशपुर पहुँचे। उस समय वहाँका राजा वृषध्वज था और युवराज दृढायुध था ॥१०७॥ राजा वृषध्वजकी रानीका नाम दिशावली था और उसके दिशानन्दा नामकी पुत्री थी। दिशाओंकी विशुद्धताके समान दिशानन्दाकी सुन्दरता समस्त दिशाओंमें प्रसिद्ध थी ॥१०८॥ एक दिन गम्भीर स्वर और गम्भीर दृष्टिको धारण करनेवाले, नेत्रप्रिय रूपवान् भीम भिक्षाकी अभिलाषासे राजमहलमें गये। वहाँ राजा वृषध्वजने उन्हें देखा ॥१०९॥ देखते ही उसने समझ लिया कि यह कोई महापुरुष है इसलिए वह कन्या दिशानन्दाको लेकर अपने अन्तःपुरके साथ भीमके आगे खड़ा हो गया और इस प्रकारके मधुर वचन कहने लगा ॥११०॥ 'हे श्रीमन्! यह कन्या ही आपके लिए अनुरूप भिक्षा है इसलिए इसे स्वीकृत कीजिए, पाणिग्रहणके लिए हाथ पसारिए' ॥१११॥ भीमने कहा कि 'अहा! यह भिक्षा तो अपूर्व रही, इस समय ऐसी भिक्षा स्वीकृत करनेके लिए मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ'। उक्त उत्तर दे भीमने अपने आवासस्थानपर आकर युधिष्ठिर आदिके लिए यह समाचार सुनाया ॥११२॥ तदनन्तर ये सब इस नगरमें डेढ़ मास तक रहे। उसके बाद क्रीड़ाओंके प्रदान करनेमें निपुण नर्मदा नदीको पार कर विन्ध्याचलमें प्रविष्ट हुए ॥११३॥ विन्ध्याचलके बीच सन्ध्याके आकारका एक अन्तरद्वीप था। उसके सन्ध्याकार नामक नगरमें हिडिम्बवंशमें उत्पन्न राजा सिंहघोष रहता था ॥११४॥ उसकी सुदर्शना नामकी स्त्री थी और उससे हृदयसुन्दरी नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी। त्रिकूटाचलका स्वामी मेघवेग उस हृदयसुन्दरीको चाहता था और उसके निमित्त उसने राजा सिंहघोषसे याचना भी की थी परन्तु वह उसे प्राप्त नहीं कर सका ॥११५॥ हृदयसुन्दरीके विषयमें निमित्तज्ञानियोंने यह कहा था कि 'विन्ध्याचलपर गदाविद्याको सिद्ध करनेवाले विद्याधरको जो मारेगा वही हृदयसुन्दरीका पति होगा' ॥११६॥ भीमने विन्ध्याचलपर जाकर देखा कि एक विद्याधर वृक्षकी कोटरमें बैठकर गदाको सिद्ध कर रहा है। देखते ही भीमने वह गदा हाथमें ले ली और उसीके प्रहारसे उस वृक्षको एक साथ गिरा दिया ॥११७॥ तदनन्तर भीमका हृदयसुन्दरीके साथ समागम हुआ। हिडिम्बवंशी राजा सिंहघोषके साथ पाण्डवोंका यह सम्बन्ध महान् हर्षका कारण हुआ ॥११८॥

तदनन्तर महान् अभ्युदयको धारण करनेवाले पाण्डव दक्षिणके नाना देशों बिहार कर हस्तिनापुर जानेके लिए उद्यत हुए ॥११९॥ मार्गके वश चलते-चलते वे सब, स्वर्गके प्रतिबिम्बको धारण करनेवाली माकन्दी नगरी पहुँचे। उस समय सुन्दर शरीरसे सुशोभित पाण्डव देवोंके विभ्रमको धारण कर रहे थे—देवोंके समान जान पड़ते थे ॥१२०॥ वहांका राजा द्रुपद था, उसकी स्त्रीका नाम भोगवती था और उन दोनोंके धृष्टद्युम्न आदि अनेक पुत्र थे जो एकसे-एक बढ़कर बलवान् थे ॥१२१॥ राजा द्रुपदकी एक द्रौपदी नामकी पुत्री भी थी जिसका शरीर रूप, लावण्य, सौभाग्य तथा अनेक कलाओंसे अलंकृत था एवं जो अपने सौन्दर्यके विषयमें सानी नहीं रखती थी ॥१२२॥ कामदेवने सब राजपुत्रोंको उसके लिए पागल-सा बना दिया था इसलिए वे नाना प्रकारके उपहार हाथमें ले उसकी याचना करते थे ॥१२३॥ तदनन्तर 'किस-किससे बुराई की जाये' यह विचार दाक्षिण्य-भंगसे भयभीत राजा द्रुपदने कन्याकी इच्छा रखनेवाले सब राजकुमारोंको चन्द्रक यन्त्रका वेध करनेके लिए आमन्त्रित किया ॥१२४॥ इस पृथिवीपर द्रौपदीरूप ग्रहके वशीभूत हुए कर्ण, दुर्योधन आदि जितने राजा थे उन सबका झुण्ड माकन्दी नगरीमें इकट्ठा हो गया ॥१२५॥ उसी समय सुरेन्द्रवर्धन नामका एक विद्याधर राजा अपनी पुत्रीके योग्य वर खोजनेके लिए वहाँ आया और उसने राजा द्रुपदकी आज्ञासे गाण्डीव नामक धनुषको वरकी परीक्षाका साधन निश्चित किया ॥१२६॥ उस समय यह घोषणा की गयी कि 'जो अत्यन्त भयंकर गाण्डीव धनुषको गोल करने एवं राधावेध (चन्द्रकवेध) में समर्थ होगा वही द्रौपदीका पति होगा' ॥१२७॥ इस घोषणाको सुनकर वहाँ जो द्रोण तथा कर्ण आदि राजा आये थे वे सब गोलाकार हो धनुषके चारों ओर खड़े हो गये ॥१२८॥ परन्तु सती स्त्रीके समान देवोंसे अधिष्ठित उस धनुष-यष्टिका देखना भी उनके लिए अशक्य था फिर छूना और खींचना तो दूर रहा ॥१२९॥

तदनन्तर जब सब परास्त हो गये तब द्रौपदीके होनहार पति एवं सदा सरल प्रकृतिको धारण करनेवाले अर्जुनने उस धनुष-यष्टिको देखकर तथा छूकर ऐसा खींचा कि वह सती स्त्रीके समान इनके वशीभूत हो गयी ॥१३०॥ जब अर्जुनने खींचकर उसपर डोरी चढ़ायी और उसका आस्फालन किया तो उसके प्रचण्ड शब्दमें कर्ण आदि राजाओंके नेत्र फिर गये तथा कान बहरे हो गये ॥१३१॥ तीक्ष्ण आकृतिके धारक पार्थको देखकर कर्ण आदिके मनमें यह तर्क उत्पन्न हुआ कि क्या स्वाभाविक ऐश्वर्यको धारण करनेवाला अर्जुन अपने भाइयोंके साथ मरकर यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ है ? ॥१३२॥ अर्जुनके सिवाय अन्य सामान्य धनुर्धारीका ऐसा खड़ा होना कहाँ सम्भव है ? अहा ! इसकी दृष्टि, इसकी मुट्ठी और इसकी चतुराई—सभी आश्चर्यकारी हैं ॥१३३॥ उधर राजा लोग ऐसा विचार कर रहे थे इधर अत्यन्त चतुर अर्जुन डोरीपर बाण रख झटसे चलते हुए चक्रपर चढ़ गया और राजाओंके देखते-देखते उसने शीघ्र ही चन्द्रकवेध नामका लक्ष्य बेध दिया ॥१३४॥ उसी समय द्रौपदीने शीघ्र ही आकर वरकी इच्छासे अर्जुनकी झुकी हुई सुन्दर ग्रीवामें अपने दोनों कर-कमलोंसे माला डाल दी ॥१३५॥ उस समय जोरदार वायु चल रही थी इसलिए वह माला टूटकर साथ खड़े हुए पांचों पाण्डवोंके शरीरपर जा पड़ी ॥१३६॥ इसलिए विवेकहीन किसी चपल मनुष्यने जोर-जोरसे यह वचन कहना शुरू कर दिया कि इसने पांच कुमारोंको वरा है ॥१३७॥ जिस प्रकार किसी सुगन्धित, ऊँचे एवं फलोंसे युक्त वृक्षपर लिपटी फूली लता सुशोभित होती है उसी प्रकार अर्जुनके समीप खड़ी द्रौपदी सुशोभित हो रही थी ॥१३८॥ तदनन्तर कुशल अर्जुन नूपुरोंके निश्चल बन्धनसे युक्त उस द्रौपदीको अनीतिज्ञ राजाओंके आगेसे उनके देखते-देखते माता कुन्तीके पास ले चला ॥१३९॥ युद्ध करनेके लिए उत्सुक राजाओंको यद्यपि नीतिचतुर राजा द्रुपदने रोका था तथापि कितने ही राजा जबर्दस्ती

अर्जुनके पीछे लग गये ॥१४०॥ परन्तु अर्जुन, भीम और धृष्टद्युम्न इन तीनों धनुर्धारियोंने उन्हें दूरसे ही रोक दिया। ऐसा रोका कि न आगे न पीछे कहीं एक डग भी रखनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥१४१॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नके रथपर आरूढ़ अर्जुनने अपने नामसे चिह्नित एवं समस्त सम्बन्धोंको सूचित करनेवाला बाण द्रोणाचार्यकी गोदमें फेंका ॥१४२॥ द्रोण, अश्वत्थामा, भीष्म और विदुरने जब उस समस्त सम्बन्धोंको सूचित करनेवाले बाणको बांचा तो उसने सबको परम हर्ष प्रदान किया ॥१४३॥ पाण्डवोंका समागम होनेपर राजा द्रुपद, कुटुम्बी जन, तथा द्रोणाचार्य आदिको जो महान् सुख उत्पन्न हुआ था। उससे शंख और बाजोंके शब्द होने लगे ॥१४४॥ परम आनन्दको देनेवाले भाइयोंके इस समागमपर दुर्योधन आदिने भी ऊपरी स्नेह दिखाया और पांचों पाण्डवोंका अभिनन्दन किया ॥१४५॥ जिस प्रकार स्नेह—तेलके समूहसे भारी दीपिका किसीके पाणिग्रहण—हाथमें धारण करनेसे अत्यधिक देदीप्यमान होने लगती है उसी प्रकार स्नेह—प्रेमके भारसे भरी द्रौपदी, पाणिग्रहण—विवाहके योगसे अर्जुनके द्वारा धारण की हुई अत्यधिक देदीप्यमान होने लगी ॥१४६॥ राजा लोग द्रौपदी और अर्जुनका विवाह-मंगल देखकर अपने-अपने स्थानपर चले गये और दुर्योधन भी पाण्डवोंको साथ ले हस्तिनापुर पहुँच गया ॥१४७॥ दुर्योधनादि सौ भाई और पाण्डव आधे-आधे राज्यका विभाग कर पुनः पूर्वकी भांति रहने लगे ॥१४८॥ उज्ज्वल चारित्रके धारक युधिष्ठिर तथा भीमसेनने पहले अज्ञातवासके समय अपने-अपने योग्य जिनकन्याओंको स्वीकृत करनेका आश्वासन दिया था उन्हें बुलाकर तथा उनके साथ विवाह कर उन्हें सुखी किया ॥१४९॥ द्रौपदी अर्जुनकी स्त्री थी, उसमें युधिष्ठिर और भीमकी बहू-जैसी बुद्धि थी और सहदेव तथा नकुल उसे माताके समान मानते थे ॥१५०॥

द्रौपदीकी भी पाण्डुके समान युधिष्ठिर और भीममें श्वसुर बुद्धि थी और सहदेव तथा नकुल इन दोनों देवरोंमें अर्जुनके प्रेमके अनुरूप उचित बुद्धि थी ॥१५१॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि जो अत्यन्त शुद्ध आचारके धारक मनुष्योंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते हैं उनके उस निन्दासे उत्पन्न हुए पापका निवारण करनेके लिए कौन समर्थ है? ॥१५२॥ दूसरेके विद्यमान दोषका कथन करना भी पापका कारण है फिर अविद्यमान दोषके कथन करनेकी तो बात ही क्या है? वह तो ऐसे पापका कारण होता है जिसका फल कभी व्यर्थ नहीं जाता—अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥१५३॥ साधारणसे-साधारण मनुष्योंमें प्रीतिके कारण यदि समानधनता होती है तो धनके विषयमें ही होती है स्त्रियोंमें नहीं होती। फिर जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं उनकी तो बात ही क्या है? ॥१५४॥ महापुरुषोंकी कोटिमें स्थित पाण्डवोंके मिथ्या दोष कथन करनेवाले दुष्टोंकी जिह्वाके सौ खण्ड क्यों नहीं हो जाते? ॥१५५॥ पापका वक्ता और श्रोता जो इस लोकमें उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता है वह मानो परलोकमें वृद्धिके लिए ही सुरक्षित रहता है ऐसा समझना चाहिए। **भावार्थ**—जिस पापका फल वक्ता और श्रोताको इस जन्ममें नहीं मिल पाता है उसका फल परभवमें अवश्य मिलता है और ब्याजके साथ मिलता है ॥१५६॥ सद्बुद्धिसे पुण्यरूप कथाओंका सुनना वक्ता और श्रोताके लिए जिस प्रकार कल्याणका कारण माना गया है उसी प्रकार पापरूप कथाओंका सुनना उनके लिए अकल्याणका कारण माना गया है ॥१५७॥ इसलिए असत्यरूप दोषसे उद्धत वाणीको छोड़ो, और सत्य वचनसे उत्पन्न उस निर्मलताका सेवन करो जो अपने यशसे विशद है, गुणी मनुष्योंके प्राप्त करनेमें उद्यत है। इस लोकमें विजय प्राप्त करानेवाली है और सर्वज्ञदेवके द्वारा निरूपित है ॥१५८॥ इस संसारमें विपत्ति और पराभवके समय अच्छी तरहसे आचरित अपना आचरण

ही प्राणियोंके लिए शरण है क्योंकि सदाचारका फल जो नीति और पौरुष है वह शत्रुके उस रोषको परिभूत कर देता है—दूर कर देता है ॥१५९॥ जो अग्निकी शिखावलीसे वर्धमान धर्म-रूपी ग्रीष्म कालको नष्ट करनेके लिए वर्षा ऋतुके समान है, दूसरोंका निराकरण करनेके लिए एक जिनागम है, और नाना प्रकारके लाभोंका भण्डार है, ऐसा व्रतविधान, श्रुतरूपी अंजनकी शलाकाका प्रयोग करनेवाले मनुष्योंके द्वारा अवश्य ही धारण करने योग्य है ॥१६०॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कुरुवंशकी उत्पत्ति, पाण्डव और धार्तराष्ट्रोंके समागम तथा अर्जुनको द्रौपदीके लाभका वर्णन करनेवाला पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४५॥

□

सर्ग- ४६

अथानन्तर बन्धुओंका सम्मान करनेवाले पर्वतोंके समान धीर-वीर पाण्डवोंका भोग भोगते हुए हस्तिनापुरमें सुखसे समय व्यतीत होने लगा ॥१॥ पाँचों पाण्डव उत्कृष्ट विभूतिसे प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे, उन्हें देख सौ कौरव पहलेके समान पुनः मर्यादासे विचलित हो गये ॥२॥ एक बार शकुनिके उपदेशसे दुर्योधनने युधिष्ठिरको शीघ्र ही जुआमें जीत लिया। जीत लेनेपर अपने छोटे भाइयोंके साथ मिलकर दुर्योधनने भीमसेन आदि छोटे भाइयोंसे युक्त युधिष्ठिरसे कहा कि हे युधिष्ठिर ! चूँकि तुम सत्यवादी हो—तुम्हारे द्वारा की हुई प्रतिज्ञा कभी मिथ्या नहीं होती इसलिए तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार यहाँसे चला जाना चाहिए और छिपकर वहाँ रहना चाहिए जहाँसे तुम्हारा नाम भी सुनाई न दे सके ॥३-४॥ दुर्योधनके इस कथनको सुनकर यद्यपि भीमसेन आदि भाइयोंको क्षोभ उत्पन्न हुआ तथापि युधिष्ठिर उन्हें शान्त कर बारह वर्षकी लम्बी अवधिके लिए सब राज्य-पाट छोड़ हस्तिनापुरसे बाहर निकल गये ॥५॥ जिस प्रकार चाँदनी चन्द्रमाके पीछे-पीछे चलती है उसी प्रकार प्रेम और हर्षसे भरी द्रौपदी अर्जुनके पीछे-पीछे चलने लगी ॥६॥

तदनन्तर धैर्यसे सम्पन्न, उत्तम शक्तिसे सुशोभित एवं एक-दूसरेके हित करनेमें तत्पर वे सब श्रेष्ठ पुरुष क्रम-क्रमसे कालांजला नामक अटवीमें पहुँचे ॥७॥ उस समय वहाँ प्रकीर्णकासुरीका पुत्र सुतार नामका विद्याधर असुरोद्गीत नामक नगरसे आकर क्रीड़ा कर रहा था ॥८॥ वह शावरी विद्यासे युक्त था अतः किरातका सुन्दर वेष रख अपनी कुसुमावली नामक स्त्रीके साथ क्रीड़ा कर रहा था ॥९॥ उसकी स्त्री भी किरातका वेष रखे थी और दोनों इच्छानुसार साथ-साथ क्रीड़ा कर रहे थे। धनुर्धारी अर्जुनने धनुर्धारी उस विद्याधरको देखा ॥१०॥ उन दोनोंने ज्योंही अकस्मात् एक-दूसरेको देखा त्योंही उनमें भयंकर युद्ध होने लगा। ऐसा युद्ध कि जिसमें दिशाएँ दिव्य वाणोंसे आच्छादित हो गयीं ॥११॥ तदनन्तर उन दोनोंमें बाहुयुद्ध होनेपर बलवान् अर्जुनने दृढ़ मुट्ठी बाँधकर उस बलवान् विद्याधरकी छातीपर भुजासे मजबूत प्रहार किया। जिससे घबड़ाकर विद्याधरकी स्त्री कुसुमावली अर्जुनसे पतिकी भिक्षा माँगने लगी। फलस्वरूप अर्जुनने उसे छोड़ दिया और वह उन्हें प्रणाम कर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें चला गया ॥१२-१३॥

तदनन्तर वे धीर-वीर क्रम-क्रमसे मेघदल नामक उस नगरमें पहुँचे जहाँ सिंह नामका राजा राज्य करता था। राजा सिंहकी स्त्रीका नाम कनकमेखला था और उन दोनोंके कनकावर्ता नामकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। उसी नगरीमें मेघ नामक सेठ और अलका नामक सेठानीके चारुलक्ष्मी नामकी एक सुन्दर कन्या और थी ॥१४-१५॥ निमित्तज्ञानीके आदेशानुसार भिक्षाके लिए गये हुए भयंकर कन्धोंको धारण करनेवाले भीमसेनने उन दोनों कन्याओंको प्राप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यके लिए क्या कार्य कठिन है ? ॥१६॥ सौम्य प्रकृतिके धारक उन श्रेष्ठ पुरुषोंने कुछ दिन तक वहाँ विश्राम किया। तदनन्तर क्रम-क्रमसे चलकर वे कौशल नामक देशमें पहुँचे ॥१७॥ वहाँ भी कुछ महीने तक सुखसे ठहरकर वे उस रामगिरि पर्वतपर पहुँचे जो कि पहले राम और लक्ष्मणके द्वारा सेवित हुआ था ॥१८॥ तथा जिस पर्वतपर रामचन्द्रजीके द्वारा

बनवाये हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान देदीप्यमान, सैकड़ों जिन-मन्दिर सुशोभित हो रहे थे ॥१९॥ नाना देशोंसे आये हुए भव्य जीव प्रतिदिन जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना करते थे, पाण्डवोंने भी उन प्रतिमाओंको बड़ी भक्तिसे वन्दना की ॥२०॥ जिस प्रकार सीताके साथ रामचन्द्रजीने क्रीड़ा की थी उसी प्रकार उस पर्वतके सुन्दर-सुन्दर लतागृहोंमें अर्जुन द्रौपदीके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करता था ॥२१॥ जिन्होंने कभी सुखके विच्छेदका अनुभव नहीं किया था, जो स्वेच्छासे जहां-तहां विहार करते थे और मान्य चेष्टाओंके धारक थे ऐसे उन भाग्यशाली पाण्डवोंने उस पर्वतपर ग्यारह वर्ष व्यतीत कर दिये ॥२२॥

तदनन्तर वहांसे चलकर वे उस विराटनगरमें पहुँचे जहां विराट नामका राजा रहता था। राजा विराटकी स्त्रीका नाम सुदर्शना था ॥२३॥ पाण्डव और अत्यन्त कुशल द्रौपदी—सब अपने-आपको छिपाकर राजा विराटसे सम्मानित हो विराटनगरमें रहने लगे ॥२४॥ इस प्रकार विनोदपूर्वक वहाँ रहते हुए प्रमादरहित पाण्डवोंका सुखसे समय बीतने लगा ॥२५॥ अब इनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी घटना लिखी जाती है—

इसी पृथिवीतलपर एक चूलिका नामकी नगरी थी। उसके राजाका नाम चूलिक था। राजा चूलिककी, विकसित कमलके समान मुखवाली एवं सौ पुत्रोंसे पवित्र विकचा नामकी स्त्री थी ॥२६॥ विकचाके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े पुत्रका नाम कीचक था। यह कीचक क्रूरकर्मा मनुष्यों-में अग्रणी था तथा रूप, यौवन, विज्ञान, शूर-वीरता और धनके मदसे मलिन था ॥२७॥ एक बार वह कीचक, अपनी बहन सुदर्शनाको देखनेके लिए विराटनगर आया। वहाँ उसने द्रौपदी-को देखा ॥२८॥ उस समय द्रौपदी किसी विशिष्ट सुगन्धित पदार्थके संयोगसे समस्त दिशाओंको सुगन्धित कर रही थी एवं रूप, लावण्य, सौभाग्य आदि गुणोंसे उसका शरीर परिपूर्ण था ॥२९॥ यद्यपि कीचक मानी था तथापि उसका मन देखते ही द्रौपदीके विषयमें दीनताको प्राप्त हो गया। वह वहांसे अन्यत्र जाता था तब भी उसका मन द्रौपदीके साथ तन्मयताको ही प्राप्त रहता था ॥३०॥ कीचकने अनेक उपायोंसे द्रौपदीको स्वयं लुभाया तथा दूसरोंके द्वारा भी उसे प्रलोभन दिखलाये पर वह उसके हृदयमें स्थितिको प्राप्त न कर सका ॥३१॥ द्रौपदी उसे तृणके समान तुच्छ समझती थी और उसे मना भी कर चुकी थी पर वह अपनी धृष्टता नहीं छोड़ता था अतः विवश हो शैलन्ध्री (सैरन्ध्री) का वेष धारण करनेवाली द्रौपदीने एक दिन उसकी इस दुर्हठ-की शिकायत भीमसेनसे कर दी ॥३२॥ फिर क्या था, भीमसेनका हृदय क्रोधसे उबल उठा। उन्होंने कामातुर कीचकको द्रौपदीके द्वारा सायंकालके समय एकान्त स्थानमें मिलनेका संकेत करा दिया और आप स्वयं शैलन्ध्री (द्रौपदी) का वेष रख उस स्थानपर पहुँच गये। आप अत्यन्त बलवान् तो थे ही ॥३३॥ जिस प्रकार हस्तिनीके स्पर्शसे अन्धा मदोन्मत्त हाथी बन्धन-के स्थानमें स्वयं आ जाता है उसी प्रकार मदनातुर कीचक उस संकेत-स्थानमें स्वयं आ गया। तदनन्तर स्पर्शजन्य आनन्दके अतिरेकसे जिसके नेत्र निमीलित हो रहे थे ऐसे उस कीचकके कण्ठको द्रौपदीका वेष धारण करनेवाले भीमसेनने अपनी दोनों भुजाओंसे आलिंगित किया और पृथिवीपर पटककर उसकी छातीपर दोनों पैरोंसे चढ़ गये। जिस प्रकार वज्राघातसे किसी पर्वत-को चूर-चूर किया जाता है उसी प्रकार मजबूत मुक्कोंके प्रहारसे उसे चूर-चूर कर दिया। इस प्रकार उसकी परस्त्रीविषयक आकांक्षाको पूर्ण कर महामना भीमसेनने दयायुक्त हो 'अरे पापी जा' यह कह उसे छोड़ दिया ॥३४-३६॥

तदनन्तर विषयोंका प्रत्यक्ष फल देख कीचकको उनसे अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसने रतिवर्धन नामक मुनिराजके पास जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥३७॥ कीचक मुनि अनुप्रेक्षाओंके द्वारा आत्माकी भावना करते—आत्माका स्वरूप विचारते, शास्त्रोंका

स्वाध्याय करते और भाव-शुद्धिके द्वारा रत्नत्रयको शुद्ध करनेके लिए उद्यम करने लगे ॥३८॥ कीचकके सौ भाइयोंने जब कीचकको नहीं देखा तो वे बहुत ही घबड़ाये। उन्होंने जहाँ-तहाँ उसकी खोज की पर कहीं नहीं दिखा। उसी समय उन्हें एक जलती हुई चिताकी अग्नि दिखी। किसीने बता दिया कि वह कीचककी ही चिता है, यह सुन वे सब भाई बहुत ही कुपित हुए। वे सोचने लगे कि कीचककी यह दशा इस शैलन्ध्रीने ही की है इसलिए वे कुपित होकर उसे (शैलन्ध्रीका वेष धारण करनेवाले भीमको) उसी चितामें डालनेकी इच्छा करने लगे। परन्तु भीमसेनने उनकी बलवत्ता ठिकाने लगा दी और एक-एक कर सबको जलती हुई उस चितामें डाल दिया जिससे सब जलकर राख हो गये ॥३९–४०॥ देखो, एक ही भीमसेनने मदसे उद्धत हुए अनेक पुरुषोंको नामावशिष्ट कर दिया—मरणको प्राप्त करा दिया सो ठीक ही है क्योंकि एक सिंह अनेकों हाथियोंको नष्ट कर देता है ॥४१॥

अथानन्तर किसी दिन कीचक मुनि एकान्त उपवनके मध्यमें विराजमान थे। वे उस समय पद्मासनसे योगारूढ हो निश्चल बैठे थे कि एक यक्षने उन्हें देखा ॥४२॥ उनके चित्तकी परीक्षा करनेके लिए वह यक्ष आधी रातके समय द्रौपदीका रूप रख उनके पास पहुँचा और कामसे अलसाया हुआ रूप उन्हें दिखाने लगा ॥४३॥ परन्तु मुनिराज कीचक, उसके सुन्दर आलापके सुननेमें बहिरे-जैसे हो गये और दृष्टिके विलाससे युक्त उसका मनोहर रूप देखनेके लिए अन्धेके समान हो गये ॥४४॥ जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंके समूहकी अच्छी तरह रक्षा की थी तथा जो मनकी शुद्धिको प्राप्त हो रहे थे ऐसे उन कीचक मुनिराजको उसी समय अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥४५॥ तदनन्तर ध्यान समाप्त होनेपर यक्षने उन्हें प्रणाम किया और 'हे नाथ! क्षमा कीजिए' इस प्रकार बार-बार कहकर उनसे क्षमा माँगी ॥४६॥ तत्पश्चात् यक्षने पुनः नमस्कार कर उनसे द्रौपदीके प्रति मोह उत्पन्न होनेका कारण पूछा क्योंकि बिना कारणके उस प्रकारके मोहकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ॥४७॥ उत्तरस्वरूप मुनिराज कीचक, नम्रीभूत यक्षके लिए अपने तथा द्रौपदीके कुछ पूर्वभव इस प्रकार कहने लगे ॥४८॥

एक समय मैं, तरंगिणी नामक नदीके तटपर जहाँ वेगवती नामक नदीका संगम होता था, क्षुद्र मनुष्योंका वैरी क्षुद्र नामका म्लेच्छ था, उस समय मेरे परिणाम अत्यन्त रौद्र रूप थे ॥४९॥ एक बार अचानक ही मुनिराजके दर्शन कर मैं अत्यन्त शान्त हो गया और वैश्य कुलमें मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ। इस समय मेरे पिता धनदेव और माता सुकुमारिका थी तथा मेरा निजका नाम कुमारदेव था। एक बार मेरी माताने विष मिला आहार देकर एक सुव्रत नामक मुनिको मार डाला ॥५०–५१॥ उसके फलस्वरूप वह पापिनी नरक पहुँची और वहाँ मुनिके घातसे उत्पन्न दुःख भोगकर तिर्यंच तथा नरकगतिके दुःख भोगती रही ॥५२॥ मैं भी संयमसे रहित था इसलिए तीव्र वेदनावाले संसारमें भटककर पापरूपी पवनसे प्रेरित हुआ अपनी माताके जीवके कुत्ता हुआ। तदनन्तर तापसोंके किसी तपोवनमें सित नामक तापसके द्वारा मृगशृंगिणी नामक तापसीके मधु नामका पुत्र हुआ तथा तापसोंके आश्रममें ही मैं वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥५३–५४॥ एक दिन किसी श्रावकने विनयदत्त नामक मुनिराजको आहार दान दिया। उसका माहात्म्य देख मैंने दीक्षा ले ली और उसके फलस्वरूप स्वर्गारोहण कर वहाँसे च्युत होता हुआ कीचक हुआ ॥५५॥ माता सुकुमारिका चिरकाल तक भ्रमण कर संसारमें तीव्र दुःख भोगती रही। अन्तमें वह दौर्भाग्यसे युक्त दुःखोंको भोगनेवाली मानुषी हुई ॥५६॥ अनुमतिका उसका नाम था। अन्तमें वह निदान सहित तपसे युक्त हो द्रौपदी हुई है। इसी कारण इसमें मुझे मोह उत्पन्न हो गया था ॥५७॥ देखो, माता बहन हो जाती है, पुत्री प्रिय स्त्री हो जाती है, और स्त्री, माता, बहन तथा पुत्रीपनेको प्राप्त हो जाती है। आश्चर्यकी बात है कि संसाररूपी चक्रके साथ घूमनेवाले जीवोंमें संकर और व्यतिकर नियमसे होते रहते हैं ॥५८॥ इसलिए हे भव्यजनो! संसारको

इस विचित्रताको अच्छी तरह समझकर वैषयिक सुखसे भले ही वह कितना ही महान् क्यों न हो विरक्त होओ और संसारके कारणोंसे विरक्त हो सदाचारके धारी बन विशाल तपसे मोक्षके लिए ही यत्न करो ॥५९॥

इस प्रकार कीचक मुनिके वचन सुन उस यक्षने अपनी देवियोंके साथ-साथ अपनी आत्माको उस समय सम्यग्दर्शनरूपी उत्कृष्ट रत्नोंके आभूषणोंसे आभूषित किया। तदनन्तर वह बड़े हर्षसे मुनिराजको नमस्कार कर वनके अन्तमें अन्तर्हित हो गया–छिप गया ॥६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अन्तरंगमें विवेक बुद्धिको धारण करनेवाला जो मनुष्य, अन्तरंग और बहिरंगके भेदसे दोनों प्रकारका तप करता है वह मनुष्य देव तथा असुरोंके समूहसे पूजित-चरण होता हुआ लोकमें निर्बाध जिनमार्गको प्रकाशित करता है और आत्मशुद्धिके द्वारा अविनाशी परम पदको प्राप्त होता है ॥६१॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कीचकके निर्वाण गमनका वर्णन करनेवाला छयालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४६॥

□

सर्ग- ४७

अथानन्तर कीचकके छोटे भाइयोंका वृत्तान्त और उसके बाद जिसमें भीम तथा अर्जुनकी कोपाग्निसे शत्रुरूपी वनका अन्तराल भस्म हो गया था ऐसा गायोंका पकड़ना आदि घटनाएँ हो चुकीं तब अपनी मर्यादाको खण्डित न करनेवाले होकर भी दुःशासन (खोटा शासन अथवा दुःशासन नामक कौरवके अन्तरको) विदीर्ण करनेवाले पाण्डव समीचीन नयोंके समान एक-दूसरे-के अनुकूल रहते हुए अपने पिता पाण्डुके भवनमें एकत्रित हुए ॥१-२॥ अबतक उनकी अज्ञात निवासकी अवधि पूर्ण हो चुकी थी इसलिए धर्मराज—युधिष्ठिरकी आज्ञासे वे भीमसेन आदि, युद्धमें दुर्योधनके साथ जा खड़े हुए और जिस प्रकार मुनि सबको सम्मत—इष्ट होते हैं उसी प्रकार वे पाण्डव भी सबको सम्मत—इष्ट थे ॥३॥ तदनन्तर जिस प्रकार समस्त दिशाओंको पूर्ण करके और सर्वहितकारी जलकी वर्षा करनेवाले वर्षाकालिक मेघ अत्यन्त उन्नत उत्तम पदको प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार सबके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले एवं समस्त अर्थरूपी अमृतकी वर्षा करनेवाले वे पाण्डव भी अत्यन्त उच्च पदको प्राप्त हुए। **भावार्थ**—पाण्डव हस्तिनापुर आकर रहने लगे और सबकी दृष्टिमें उच्च माने जाने लगे ॥४॥

तदनन्तर दुर्योधनादिक सौ भाई ऊपरसे उन्हें प्रसन्न रखकर हृदयमें पुनः क्षोभको प्राप्त होने लगे—भीतर-ही-भीतर उन्हें परास्त करनेके उपाय करने लगे सो ठीक ही है क्योंकि इधर-उधर बहनेवाले जलमें स्वच्छता कितने समय तक रह सकती है ? ॥५॥ दुर्योधनादिकने पहलेके समान फिरसे सन्धिमें दोष उत्पन्न करना शुरू कर दिया और उससे भीम, अर्जुन आदि छोटे भाई फिरसे उत्तेजित होने लगे परन्तु युधिष्ठिर उन्हें शान्त करते रहे ॥६॥ स्वच्छ बुद्धिके धारक, धीर-वीर एवं दयालु युधिष्ठिर कौरवोंका कभी अहित नहीं विचारते थे इसलिए वे माता तथा भाई आदि परिवारके साथ पुनः दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥७॥ चलते-चलते युधिष्ठिर विन्ध्यवनमें पहुँचे। वहाँ अपने आश्रममें रहकर तपस्या करनेवाले विदुरको देखकर उन्होंने अपने सब भाइयों-के साथ उन्हें नमस्कार किया और उनकी इस प्रकार स्तुति की ॥८॥ हे पूज्य ! आपका ही जन्म सफल है जो आप सम्पदाओंका परित्याग कर जिनेन्द्रोक्त मोक्षमार्गमें महातप करते हुए निर्भय स्थित हैं ॥९॥ जिस मार्गमें तत्त्वश्रद्धानरूप निर्मल सम्यग्दर्शन, समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करने-वाला ज्ञान और निर्दोष चारित्र प्रतिपादित है एवं व्रत, गुप्ति, समिति तथा इन्द्रिय और कषाय-को जीतनेवाले संयमका निरूपण किया गया है उस मार्गमें स्थित हो आप-जैसे महानुभाव शीघ्र ही सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं ॥१०-११॥ इस प्रकार जिनेन्द्रोक्त मार्ग तथा महामुनि विदुरकी स्तुति कर युधिष्ठिर द्वारिका पहुँचे। यादवोंको पाण्डवोंके आगमनका जब पता चला तो उन्होंने इनका बड़ा स्वागत किया और छोटे भाइयोंके साथ युधिष्ठिरने द्वारिकामें प्रवेश किया ॥१२॥ समुद्रविजय आदि दशों भाइयोंने बहन तथा अपने भानजोंको बहुत समयके बाद देखा था इसलिए इन सबके समागमसे उन्हें परम हर्ष हुआ ॥१३॥ भगवान् नेमिनाथ, कृष्ण, बलदेव आदि समस्त यादव कुमार, समस्त अन्तःपुर और प्रजाके सब लोग उस समय बहुत ही सन्तुष्ट हुए ॥१४॥ नेत्रोंको आनन्द देनेवाला पाण्डवों तथा समस्त स्वजनोंका वह दर्शन—परस्पर-

का मिलना सबके लिए सुखदायी हुआ ।।१५।। यादव और पाण्डव परस्पर मिलकर हर्षसे ऐसा मानने लगे कि शत्रुओंने हमारा अपकार नहीं उपकार ही किया है। **भावार्थ**—यदि दुर्योधनादिक अपकार न करते तो हम लोग इस तरह परस्पर मिलकर आनन्दका अनुभव नहीं कर सकते थे, अत: उनका किया अपकार अपकार नहीं प्रत्युत उपकार है ऐसा सब लोग मानने लगे ।।१६।।

तदनन्तर श्रीकृष्णके द्वारा दिखलाये हुए भोगोपभोगकी सब सामग्रीसे युक्त पांच उत्तमोत्तम महलोंमें पांचों पाण्डव पृथक्-पृथक् रहने लगे ।।१७।। युधिष्ठिरने लक्ष्मीमती, भीमने शेषवती, अर्जुनने सुभद्रा, सहदेवने विजया और नकुलने रति नामक कन्याको प्राप्त किया ।।१८।। यथा-क्रम से पूर्वोक्त यादव-कन्याओंको विवाह कर देवोंकी उपमाको धारण करनेवाले पाण्डव उन इष्ट स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे ।।१९।। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार मैंने तेरे लिए संक्षेपसे कुरुवीरकी कथा कही। अब मैं प्रद्युम्नकी चेष्टाएँ कहता हूँ सो सुन ।।२०।।

अत्यन्त रमणीय विजयार्ध पर्वतपर कलारूपी गुणोंके द्वारा बन्धु-जनोंके हर्षरूपी सागरको बढ़ाता हुआ प्रद्युम्न चन्द्रमाके समान बढ़ने लगा ।।२१।। विद्याधरपुत्र प्रद्युम्नने बड़े उद्यमके साथ बाल्यकालमे ही आकाशगामिनी आदि विद्याधरोंके योग्य विद्याओंको शीघ्र ही सीख लिया था ।।२२।। वह बाल्य अवस्थासे ही लेकर अस्त्रके समान अपने लावण्य, रूप, सौभाग्य और पौरुषके द्वारा शत्रु-मित्र पुरुष तथा स्त्रियोंके मनको हरण करता था ।। २३ ।। यौवनको प्राप्त होते ही प्रद्युम्न समस्त अस्त्र-शस्त्रोंमें कुशल हो गया। अपने सौन्दर्यके कारण तरुण प्रद्युम्न यद्यपि अन्य युवाओंके हृदयपर प्रहार करता था—उनमें मात्सर्य उत्पन्न करता था तथापि वह सबको प्रिय था ।।२४।। मन्मथ, मदन, काम, कामदेव और मनोभव इत्यादि सार्थक नामोंसे वह युक्त था। यद्यपि वह अनंग—शरीरसे रहित नहीं था तथापि लोग उसे अनंग कहते थे। **भावार्थ**—प्रद्युम्न कामदेव पदका धारक था। साहित्यमें कामका एक नाम अनंग है इसलिए प्रद्युम्न भी अनंग कहलाता था ।।२५।। अतिशय कुशल प्रद्युम्नने, पांच-सौ पुत्रोंको जीतनेवाले सिंहरथको युद्धमें जीतकर कालसंवरको दिखा दिया। **भावार्थ**—उस समय एक सिंहरथ नामका विद्याधर कालसंवरके विरुद्ध था उसे जीतनेके लिए उसने अपने पांच-सौ पुत्र भेजे थे परन्तु सिंहरथने उन सबको पराजित कर दिया था। प्रद्युम्न ऐसा कुशल शूरवीर था कि उसने उसे युद्धमें जीतकर कालसंवरके आगे डाल दिया ।।२६।। ऐसे वीर पुत्रको देखकर कालसंवर बड़ा सन्तुष्ट हुआ और विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंको अपने वशीभूत मानने लगा ।।२७।। इसीसे प्रभावित हो राजाने प्रद्युम्नके लिए विधि-विधानपूर्वक युवराज पदका वह महापट्ट बांध दिया जो महाराज्यपदरूपी उत्कृष्ट फलके लिए पुष्पके समान था ।।२८।। इस घटनासे राजा कालसंवरके जो पाँच-सौ पुत्र थे वे सब ओरसे प्रद्युम्नके नाशका उपाय सोचने लगे ।।२९।। वे निरन्तर छलके खोजनेमें तत्पर रहने लगे। परन्तु बैठने, सोने, वस्त्र, पान तथा भोजन, पानो आदिके समय वे उसे छलनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ।।३०।।

किसी एक समय नीतिके अनुकूल आचरण करनेवाले कुमारोंके समूह, विनीत प्रद्युम्नकुमारको सिद्धायतनके गोपुरके समीप ले गये और इस प्रकारकी प्रेरणा करने लगे कि 'जो इस गोपुरके अग्रभागपर चढ़ेगा वह उसपर रहनेवाले देवसे विद्याओंका खजाना तथा मुकुट प्राप्त करेगा'। साथियोंसे इस प्रकार प्रेरित हो कुमार वेगसे गोपुरके अग्रभागपर चढ़ गया और वहांके निवासी देवसे विद्याओंका खजाना तथा मुकुट ले आया ।।३१-३२।। तदनन्तर भाइयोंसे प्रेरित हो वेगसे महाकाल नामक गुहामें घुस गया और वहांसे तलवार, ढाल, छत्र तथा चमर ले आया ।।३३।। वहांसे निकलकर नागगुहामें गया और वहांके निवासी देवसे उत्तम पादपीठ, नागशय्या, आसन, वीणा तथा भवन बना देनेवाली विद्या ले आया ।।३४।। वहांसे आकर किसी

वापिकामें गया और युद्धमें जीते हुए देवसे मकरके चिह्नसे चिह्नित ऊँची ध्वजा प्राप्त कर निकला। तदनन्तर अग्निकुण्डमें प्रविष्ट हुआ सो वहाँसे अग्निसे शुद्ध किये दो वस्त्र ले आया ॥३५॥ तत्पश्चात् मेषाकृति पर्वतमें प्रवेश कर कानोंके दो कुण्डल ले आया। उसके बाद पाण्डुक नामक वनमें प्रवेश कर वहाँके निवासी मर्कट नामक देवसे मुकुट और अमृतमयी माला लेकर लौटा ॥३६॥ कपित्थ नामक वनमें गया तो वहाँके निवासी देवसे विद्यामय हाथी ले आया। वल्मीक वनमें प्रवेश कर वहाँके निवासी देवसे छुरी, कवच तथा मुद्रिका आदि ले आया ॥३७॥ शराव नामक पर्वतमें वहाँके निवासी देवसे कटिसूत्र, कवच, कड़ा, बाजूबन्द और कण्ठाभरण आदि प्राप्त किये ॥३८॥ शूकर नामक वनमें शूकरदेवसे शंख और सुन्दर धनुष प्राप्त किया तथा वहींपर कीले हुए मनोवेग नामक विद्याधरसे हार और इन्द्रजाल प्राप्त किया ॥३९॥ मनोवेगका वैरी वसन्त विद्याधर था, कुमारने उन दोनोंकी मित्रता करा दी इसलिए उससे एक कन्या तथा नरेन्द्रजाल प्राप्त किया ॥४०॥ आगे चलकर एक भवनमें प्रवेश कर उसके अधिपति देवसे पुष्पमय धनुष और उन्माद, मोह, सन्ताप, मद तथा शोक उत्पन्न करनेवाले बाण प्राप्त किये ॥४१॥ तदनन्तर एक दूसरी नागगुहामें गया तो वहाँके स्वामी देवसे चन्दन तथा अगुरुकी मालाएँ, फूलोंका छत्र और फूलोंकी शय्या प्राप्त की ॥४२॥ तदनन्तर जयन्तगिरिपर वर्तमान दुर्जय नामक वनमें गया और वहाँसे विद्याधर वायु तथा उसकी सरस्वती नामक स्त्रीसे उत्पन्न रति नामक पुत्री लेकर लौटा ॥४३॥ इस प्रकार इन सोलहों लाभके स्थानोंमें जिसे अनेक महा-लाभोंकी प्राप्ति हुई थी ऐसे प्रद्युम्न कुमारको देखकर संवर आदि कुमारोंके चित्त आश्चर्यसे चकित हो गये। तदनन्तर पुण्यका माहात्म्य समझ शान्ति धारण कर वे प्रद्युम्नके साथ अपने नगर वापस आ गये ॥४४-४५॥ जो प्राप्त हुए सफेद बैलोंसे जुते दिव्य रथपर आरूढ़ था, धनुष, पांच बाण, छत्र, ध्वजा और दिव्य आभूषणोंसे आभूषित था तथा कामके बाणोंसे पुरुष और स्त्रियोंके मनको हर रहा था ऐसे प्रद्युम्नने सैकड़ों कुमारोंसे परिवृत हो मेघकूट नामक नगरमें प्रवेश किया ॥४६-४७॥

पहुँचते ही उसने नमस्कार कर कालसंवरके दर्शन किये और उसके बाद उसी भांति रथपर बैठा हुआ कनकमालाके घरकी ओर प्रस्थान किया ॥४८॥ उस प्रकारकी वेषभूषासे युक्त तथा नेत्रोंके लिए आनन्ददायी प्रद्युम्नको समीप आया देख कनकमाला किसी दूसरे ही भावको प्राप्त हो गयी ॥४९॥ रथसे नीचे उतरकर नम्रीभूत हुए प्रद्युम्नकी कनकमालाने बहुत प्रशंसा की, उसका मस्तक सूँघा, उसे पासमें बैठाया और कोमल हाथसे उसका स्पर्श किया ॥५०॥ तदनन्तर मोहका तीव्र उदय होनेसे उसकी आत्मा विवश हो गयी और हृदयरूपी भूमिको खोदते हुए अनेक खोटे विचार उसके मनमें उठने लगे ॥५१॥ वह विचारने लगी कि जो स्त्री शय्यापर अपने अंगोंसे इसके अंगोंके स्पर्शको एक बार भी प्राप्त कर लेती है संसारमें वही एक स्त्री है अन्य स्त्रियां तो स्त्रीकी आकृतिमात्र हैं ॥५२॥ यदि मुझे प्रद्युम्नका आलिंगन प्राप्त होता है तो मेरा रूप, लावण्य, सौभाग्य तथा चातुर्य सफल है और दुर्लभ रहता है तो यह सब मेरे लिए तृणके समान तुच्छ है ॥५३॥ जिसके मनमें कनकमालाके ऐसे विचारोंकी कल्पना भी नहीं थी ऐसा प्रद्युम्न, पूर्वोक्त संकल्प-विकल्प करनेवाली कनकमालाको प्रणाम कर तथा आशीर्वाद प्राप्तकर अपने घर चला गया ॥५४॥

उधर प्रद्युम्नके आलिंगनजन्य सुखको प्राप्त करनेकी जिसको लालसा लग रही थी ऐसी विद्याधरी कनकमाला प्रबल दुःखसे दुःखी हो सब काम-काज भूल गयी ॥५५॥ दूसरे दिन उसके अस्वस्थ होनेका समाचार पा प्रद्युम्न उसे देखने गया तो क्या देखता है कि कनकमाला कमलिनीके

पत्तोंकी शय्यापर पड़ी हुई बहुत व्याकुल हो रही है ॥५६॥ प्रद्युम्नने उससे शरीरकी अस्वस्थताका कारण पूछा तो उसने शरीर और वचनसम्बन्धी चेष्टाओंसे अपना अभिप्राय प्रकट किया ॥५७॥ तदनन्तर इस विपरीत बातको जानकर और कर्मकी चेष्टाओंकी निन्दा कर प्रद्युम्न उसे माता और पुत्रका सम्बन्ध बतलानेमें तत्पर हुआ ॥५८॥ इसके उत्तरमें कनकमालाने भी उसे आदि, मध्य और अन्त तक जैसा वृत्तान्त हुआ था वह सब बतलाते हुए कहा कि तू मुझे अटवीमें किस प्रकार मिला, किस प्रकार तेरा लालन-पालन हुआ और किस प्रकार मुझे विद्याओंका लाभ हुआ ॥५९॥ कनक-मालासे अपना सम्बन्ध सुन प्रद्युम्नके मनमें संशय उत्पन्न हुआ जिससे वह स्पष्ट पूछनेके लिए जिन-मन्दिरमें विद्यमान सागरचन्द्र मुनिराजके पास गया और हर्षपूर्वक उन्हें नमस्कार कर उसने उनसे अपने सब पूर्वभव पूछे। पूर्वभव ज्ञात कर उसे यह भी मालूम हो गया कि यह कनकमाला पूर्वभवमें चन्द्राभा थी ॥६०–६१॥ शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारक प्रद्युम्नको मुनिराजसे यह भी विदित हुआ कि तुझे कनकमालासे प्रज्ञप्ति विद्याका लाभ होनेवाला है। तदनन्तर शीलरूपी धनको धारण करनेवाले प्रद्युम्नने जाकर कामसे पीड़ित कनकमालासे प्रज्ञप्ति विद्याके विषयमें पूछा ॥६२॥

प्रद्युम्नको आया देख कनकमालाने उससे कहा कि हे काम! मैं एक बात कहती हूँ सुन, यदि तू मुझे चाहता है तो मैं तुझे गौरी और प्रज्ञप्ति नामक विद्याएँ कहती हूँ–बतलाती हूँ—तू ग्रहण कर ॥६३॥ तदनन्तर 'यह आपकी प्रसन्नता है, मैं आपको चाहता हूँ, विद्याएँ मुझे दीजिए' इस प्रकार कहनेवाले प्रद्युम्नके लिए कनकमालाने विद्याधरोंको दुष्प्राप्य दोनों विद्याएँ विधिपूर्वक दे दीं ॥६४॥ हाथ फैलाकर दोनों विद्याओंको ग्रहण करता हुआ प्रद्युम्न बड़ा प्रसन्न हुआ। जब वह विद्याएँ ले चुका तब इस प्रकारके उत्तम वचन बोला कि 'पहले अटवीसे लाकर आपने मेरी रक्षा की अतः प्राणदान दिया और अभी विद्यादान दिया—इस तरह प्राणदान और विद्यादान देनेसे आप मेरी गुरु हैं'। इस प्रकारके उत्तम वचन कह तीन प्रदक्षिणाएँ दे वह हाथ जोड़ शिरसे लगा-कर सामने खड़ा हो गया और पुत्रके उचित जो भी आज्ञा मेरे योग्य हो सो दीजिए, इस प्रकार याचना करने लगा। कनकमाला चुप रह गयी और प्रद्युम्न थोड़ी देर वहाँ रुककर चला गया ॥६५–६६॥'मैं इस तरह इसके द्वारा छली गयी हूँ' यह जान कनकमालाने तीव्र क्रोधवश अपने कक्ष, वक्षःस्थल तथा स्तनोंको स्वयं ही नखोंके आघातसे युक्त कर लिया ॥६७॥ और पतिके लिए अपना शरीर दिखाते हुए कहा कि हे नाथ! अपत्यजनोंके योग्य (?) यह प्रद्युम्नकी करतूत देखो। पतिने भी स्त्रीके इस प्रपंचपर विश्वास कर लिया ॥६८॥ राजा कालसंवर इस घटनासे बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने एकान्तमें बुलाकर अपने पांच सौ पुत्रोंसे कहा कि 'जिस तरह किसी अन्यको पता न चल सके उस तरह इस प्रद्युम्नको मार डाला जाये' ॥६९॥

तदनन्तर पिताकी आज्ञा पा हर्षसे फूले हुए वे पापी कुमार बड़े आदरसे दूसरे दिन प्रद्युम्नको साथ लेकर कालाम्बु नामक वापिका पर गये ॥७०॥ और एक साथ सब प्रद्युम्नपर कूदकर उसके घातकी इच्छा रखते हुए उसे बार-बार प्रेरित करने लगे कि चलो वापीमें जलक्रीड़ा करें ॥७१॥ उसी समय प्रज्ञप्ति विद्याने प्रद्युम्नके कानमें सब बात ज्योंकी-त्यों कह दी। सुनकर प्रद्युम्नको बहुत क्रोध आया और वह उसी क्षण मायासे अपना मूल शरीर कहीं छिपा कृत्रिम शरीरसे वापिकामें कूद पड़ा। उसके कूदते ही वज्रके समान निर्दय एवं मारनेके इच्छुक सब कुमार एक साथ उसके ऊपर कूद पड़े ॥७२-७३॥ प्रद्युम्नने एकको शेष बचा सभी कुमारोंको ऊपर पैर और नीचे मुख कर कील दिया और एक भाईको पांच चोटियोंका धारक बना खबर देनेके लिए कालसंवरके पास भेज दिया ॥७४॥

तदनन्तर पुत्रोंका समाचार सुन द्विगुणित क्रोधसे देदीप्यमान होता हुआ कालसंवर युद्धको

तैयारी कर सब सेनाके साथ वहाँ पहुँचा ॥७५॥ उधर प्रद्युम्नने भी विद्याके प्रभावसे एक सेना बना ली सो उसके साथ चिर काल तक युद्ध कर कालसंवर हार गया और जीवनकी आशा छोड़ जाकर कनकमालासे बोला कि 'तू मुझे शीघ्र ही प्रज्ञप्ति नामक विद्या दे।' कनकमालाने कहा कि 'मैं तो बाल्य अवस्थामें दूधके साथ वह विद्या प्रद्युम्नके लिए दे चुकी हूँ' ॥७६-७७॥ तदनन्तर स्त्रीकी मायापूर्ण दुश्चेष्टाको जानकर मानी कालसंवर पुनः युद्धके मैदानमें आकर युद्ध करने लगा और प्रद्युम्नने उसे बांधकर एक शिलातलपर रख दिया ॥७८॥ उसी समय अत्यन्त निपुण नारदजी वहाँ आ पहुँचे। प्रद्युम्नने उनका सम्मान किया। तदनन्तर नारदने सब सम्बन्ध कहा ॥७९॥ तदनन्तर राजा कालसंवरको बन्धनसे मुक्त कर प्रद्युम्नने क्षमा मांगते हुए उनसे कहा कि माता कनकमालाने जो भी किया है वह पूर्व कर्मके वशीभूत होकर ही किया है अतः उसे क्षमा कीजिए ॥८०॥ उपायके ज्ञाता प्रद्युम्नने जिनका कुछ भी उपाय नहीं चल रहा था ऐसे पांच सौ कुमारोंको भी छोड़ दिया और भ्रातृस्नेहके प्रकट करनेमें तत्पर हो उनसे बार-बार क्षमा माँगी ॥८१॥

तदनन्तर रुक्मिणी और कृष्णके दर्शनके लिए जिसका मन अत्यन्त उत्सुक हो रहा था ऐसे प्रद्युम्नने जानेके लिए राजा कालसंवरसे आज्ञा मांगी और उसने भी सन्तुष्ट होकर उसे विदा कर दिया ॥८२॥ तत्पश्चात् स्नेहपूर्वक पिताको प्रणाम कर प्रद्युम्न, द्वारिका जानेके लिए नारदके साथ-साथ विमान द्वारा आकाशमें आरूढ़ हुआ ॥८३॥ नाना प्रकारकी कथाओंके द्वारा आकाशमें आते हुए दोनों जब हस्तिनापुरको पार कर कुछ आगे निकल आये तब एक सेना उनके दृष्टिपथमें आयी—एक सेना उन्हें दिखाई दी ॥८४॥ सेनाको देख प्रद्युम्नने नारदसे पूछा कि 'हे पूज्य! यह अटवीके बीच नीचे किसकी बड़ी भारी सेना विद्यमान है? इस सेनाका मुख पश्चिम दिशाकी ओर है। यह बड़ी तेजीसे कहाँ और किसलिए जा रही है?' इस प्रकार प्रद्युम्नके पूछनेपर नारदने कहा कि हे प्रद्युम्न! सुनो, मैं इस समय तुझसे एक कथाका कुछ अंश कहता हूँ ॥८५-८६॥

कुरुवंशका अलंकारभूत एक दुर्योधन नामका राजा है जो युद्धमें शत्रुओंके लिए सचमुच ही दुर्योधन है (जिसके साथ युद्ध करना कठिन है) और वह हस्तिनापुर नामके उत्तम नगरमें रहता है ॥८७॥ एक बार पहले प्रसन्न होकर उसने कृष्णसे प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरे कन्या हुई और आपकी रुक्मिणी तथा सत्यभामा रानियोंके पुत्र हुए तो जो पुत्र पहले होगा उसके लिए मैं अपनी कन्या दूँगा ॥८८॥ तदनन्तर रुक्मिणीके तुम और सत्यभामाके भानु साथ ही साथ उत्पन्न हुए परन्तु रुक्मिणीके सेवकोंने कृष्ण महाराजके लिए पहले तुम्हारी खबर दी इसलिए तुम 'अग्रज' घोषित किये गये और सत्यभामाके स्वजनोंने पीछे खबर दी इसलिए उसका पुत्र भानु 'अनुज' घोषित किया गया ॥८९॥ तदनन्तर अकस्मात् कहीं जाता हुआ धूमकेतु नामका असुर तुम्हें हर ले गया इसलिए तुम्हारी माता रुक्मिणी बहुत दुखी हुई और सत्यभामा सन्तुष्ट हुई ॥९०॥ जब आपका कुछ समाचार नहीं मिला तब यशरूपी धनको धारण करनेवाले दुर्योधनने अपनी उदधिकुमारी नामकी कन्या सत्यभामाके पुत्र भानुके लिए भेज दी ॥९१॥ हे स्वामिन्! नाना भावोंको धारण करनेवाली यह वही कन्या बड़ी भारी सेनासे सुरक्षित हो द्वारिकाको जा रही है तथा सत्यभामाके पुत्र भानुकी स्त्री होनेवाली है ॥९२॥

यह सुन प्रद्युम्नने नारदको तो वहीं आकाशमें खड़ा रखा और आप उसी क्षण नीचे उतर-कर भीलका वेष रख सेनाके सामने खड़ा हो गया ॥९३॥ वह कहने लगा कि 'कृष्ण महाराजने मेरे लिए जो शुल्क देना निश्चित किया है वह देकर जाइए'। भीलके इस प्रकार कहनेपर कुछ लोगोंने कहा कि 'मांग क्या चाहता है'? ॥९४॥ भीलने उत्तर दिया कि 'इस समस्त सेनामें जो

वस्तु सारभूत हो वही चाहता हूँ'। उसके इस प्रकार कहनेपर लोगोंने क्रोध दिखाते हुए कहा कि 'सेनामें सारभूत तो कन्या है'। भीलने फिर कहा कि 'यदि ऐसा है तो वही कन्या मुझे दी जाये'। यह सुन लोगोंने कहा कि 'तू विष्णु—कृष्णसे उत्पन्न नहीं हुआ है'—कन्या उसे दी जायेगी जो विष्णुसे उत्पन्न होगा। भीलने जोर देकर कहा कि 'मैं विष्णुसे उत्पन्न हुआ हूँ'। 'इस असम्बद्ध बकनेवालेकी धृष्टता तो देखो' यह कह उसे धनुषकी कोटीसे अलग हटाकर लोग ज्योंही आगे जानेके लिए उद्यत हुए त्योंही वह विद्याके द्वारा निर्मित भीलोंकी सेनासे दुर्योधनकी सेनाको जीतकर तथा कन्या लेकर आकाशमें जा पहुँचा ॥९५-९८॥ विमानमें पहुँचकर प्रद्युम्नने अपना असली रूप रख लिया अतः सुन्दर रूपको धारण करनेवाले उसको देखकर कन्या निर्भय हो गयो और नारदके कहनेसे यथार्थ बातको जान हर्षित हो सुखकी साँस लेने लगी ॥९९॥

अथानन्तर कन्या उदधिकुमारी और नारद मुनिके साथ, इच्छानुकूल गमन करनेवाले विमानपर आरूढ़ होकर प्रद्युम्न, द्वारोंसे सुन्दर द्वारिका नगरी जा पहुँचा ॥१००॥ दूरसे ही उसने विशाल सागर और कोटसे सुरक्षित एवं गोपुर और अट्टालिकाओंसे व्याप्त द्वारिकाको देखा ॥१०१॥ उसी समय सत्यभामाका पुत्र भानुकुमार, घोड़ेको व्यायाम करानेके लिए नगरीके बाह्य मैदानमें आया था उसे प्रद्युम्नने देखा। देखते ही वह विमानको आकाशमें खड़ा रख पृथिवीपर आया और वृद्धका रूप रख सुन्दर घोड़ा लेकर भानुकुमारके पास पहुँचा। बोला कि मैं यह घोड़ा भानुकुमारके लिए लाया हूँ। देखते ही भानुकुमार उस सुन्दर घोड़ापर सवार हो गया ॥१०२-१०३॥ इच्छानुकूल रूपको धारण करनेवाले उस घोड़ेने भानुकुमारको बहुत देर तक तंग किया और बादमें वह भानुकुमारको साथ ले अपनी इच्छानुसार उस वृद्धके पास ले आया। भानुकुमार घोड़ासे नीचे उतर आया और वृद्धने अट्टहास कर तथा हाथसे घोड़ाका आस्फालन कर व्यंग्यपूर्ण भाषामें हँसी उड़ाते हुए भानुकुमारसे कहा कि अहो! घोड़ाके चलानेमें आपकी बड़ी चतुराई है? ॥१०४-१०५॥ साथ ही वृद्धने यह भी कहा कि मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ स्वयं मुझसे घोड़ापर बैठते नहीं बनता। यदि कोई मुझे बैठा दे तो मैं अपना कौशल दिखाऊँ। साथ ही भानुकुमारके लोग उसे घोड़ापर चढ़ानेके लिए उद्यम करने लगे परन्तु प्रद्युम्नने अपना शरीर इतना भारी कर लिया कि उन अनेक लोगोंको उसका उठाना दुर्भर हो गया। इस प्रकार अपनी मायासे उन सब लोगोंको तंग कर वह वृद्ध रूपधारी प्रद्युम्न उस घोड़ेपर स्वयं चढ़ गया और अपना कौशल दिखाता हुआ चला गया ॥१०६॥ तदनन्तर उसने मायामयी वानरों और मायामयी घोड़ोंसे सत्यभामाका उपवन उजाड़ डाला तथा मायासे उसकी बड़ी भारी वापिका सुखा दी ॥१०७॥ नगरके द्वारपर राजा श्रीकृष्ण आ रहे थे उन्हें देख उसने मायामयी मक्खियों और डांस-मच्छरोंको इतनी अधिक संख्यामें छोड़ा कि उनका आगे बढ़ना कठिन हो गया और हाथ हिलाते हुए उनसे लौटते ही बना। तदनन्तर वह गधे और मेढ़ेके रथपर सवार हो नगरमें चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा ॥१०८॥ इस प्रकार नाना तरहकी क्रीड़ाओंसे नगरवासियोंको मोहित कर उसने बड़ी प्रसन्नतासे अपने बाबा वसुदेवके साथ मेषयुद्धसे क्रीड़ा की ॥१०९॥

तदनन्तर सत्यभामाके महलमें पहुँचा। वहाँ ब्राह्मणोंका भोज होनेवाला था सो प्रद्युम्न एक ब्राह्मणका रूप रख सबसे आगेके आसनपर जा बैठा। एक अपरिचित ब्राह्मणको आगे बैठा देख सब ब्राह्मण कुपित हो गये तब लगे हुए आसनोंसे उसने उन ब्राह्मणोंको खूब तंग किया। तत्पश्चात् उस विप्रभोजमें जितना भोजन बना था वह सब प्रद्युम्नने खा लिया। जब कुछ भी न बचा तो सत्यभामाको कृपण बता खाये हुए भोजनको वमन द्वारा वहीं उगल वह वहाँसे बाहर चला गया ॥११०॥ अब वह क्षुल्लकका वेष रख माता रुक्मिणीके महलमें गया, वहाँ उसने माता

रुक्मिणीके द्वारा दिये हुए लड्डू खाये। उसी समय सत्यभामाका आज्ञाकारी नाई रुक्मिणीके शिरके बाल लेनेके लिए उसके घर आया सो प्रद्युम्नने सब समाचार जान उसका खूब तिरस्कार किया ॥१११॥ सत्यभामाकी शिकायत सुन बलदेव रुक्मिणीके महलपर आनेको उद्यत हुए तो प्रद्युम्न एक ब्राह्मणका रूप रख द्वारपर पैर फैलाकर पड़ रहा। बलदेवने उसे दूर हटनेके लिए कहा पर वह टससे मस नहीं हुआ और कहने लगा कि आज सत्यभामाके घर बहुत भोजन कर आया हूँ हमसे उठते नहीं बनता। कुपित हो बलदेवने उसको टांग पकड़कर खींचना चाहा पर उसने विद्याबलसे टांगको इतना मजबूत कर लिया कि वे खींचते-खींचते तंग आ गये। इस प्रकार नाना विद्याओंमें कुशल प्रद्युम्न अपनी इच्छानुसार लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा ॥११२॥

उसी समय, प्रद्युम्नके आनेके जो चिह्न पहले नारदने कहे थे वे माता रुक्मिणीको प्रत्यक्ष दिखने लगे और उसके स्तनरूपी कलशोंसे अत्यधिक दूध झरने लगा ॥११३॥ अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर वह विचार करने लगी कि कहीं सोलह वर्ष व्यतीत होनेके बाद मेरा पुत्र ही तो रूप बदलकर नहीं आ गया है ? ॥११४॥ उसी क्षण प्रद्युम्नने भी अपने असली रूपमें प्रकट हो पुत्रका स्नेह प्रकट कर माताको प्रणाम किया ॥११५॥ पुत्रको देखते ही रुक्मिणी आनन्दसे भर गयी, उसके नेत्र हर्षके आंसुओंसे व्याप्त हो गये और वह नम्रीभूत पुत्रका आलिगन कर चिरसंचित दुःखको आंसुओंके द्वारा तत्काल छोड़ने लगी ॥११६॥ पुत्रके दर्शनरूपी अमृतसे सींची हुई रुक्मिणीके शरीरमें प्रत्येक रोम-कूपसे रोमांच निकल आये थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पुत्रका स्नेह ही फूट-फूटकर प्रकट हो रहा हो ॥११७॥ तदनन्तर जब माता और पुत्र परस्पर कुशल समाचार पूछ चुके तब माताने चित्तके लिए अत्यधिक सन्तोष प्रदान करनेवाले पुत्रसे कहा कि हे पुत्र ! वह कनकमाला धन्य है जिसने तेरी बाल्य अवस्थाकी बाल-क्रीड़ाओंके देखने रूप पुत्र जन्मके फलका उपभोग किया ॥११८–११९॥ माताके इतना कहते ही नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाले प्रद्युम्नने नमस्कार कर कहा कि हे मातः ! मैं यहाँ ही अपनी बाल-चेष्टाएँ दिखलाता हूँ, देख। ॥१२०॥ तदनन्तर वह उसी क्षण एक दिनका बालक बन गया और नेत्ररूपी नील कमलको फुला-फुलाकर हाथका अँगूठा चूसने लगा ॥१२१॥ कुछ देर बाद वह माताके स्तनका चूचक मुँहमें दाबकर दूध पीने लगा तथा चित्त लेटकर माताके कर-पल्लवोंको सुख उपजाने लगा ॥१२२॥ फिर छातीके बल सरकने लगा। पुनः उठनेका प्रयत्न करता परन्तु फिर नीचे गिर पड़ता। तदनन्तर माताकी हाथकी अँगुली पकड़ मणिमय फर्शपर चलने लगा ॥१२३॥ तदनन्तर धूलिमें खेलता-खेलता आकर माताके कण्ठसे लिपटकर उसे सुख उपजाने लगा और कभी माताके मुखकी ओर नेत्र लगा मुसकराता हुआ तोतली बोली बोलने लगा ॥१२४॥ इस प्रकार मनोहर बाल-क्रीड़ाओंसे माताका मनोरथ पूर्ण कर वह अपने असली रूपमें आ गया और नमस्कार कर बोला कि मैं तुझे आकाशमें लिये चलता हूँ ॥१२५॥

तदनन्तर वह दोनों भुजाओंसे शीघ्र ही रुक्मिणीको ऊपर उठा आकाशमें खड़ा हो कहने लगा कि 'समस्त यादव राजा सुनें। मैं तुम लोगोंके देखते-देखते लक्ष्मीकी भाँति सुन्दर श्रीकृष्णकी प्रिया रुक्मिणीको हरकर ले जा रहा हूँ। हे यादवो ! शक्ति हो तो उसकी रक्षा करो' ॥१२६–१२७॥ इस प्रकार कहकर तथा शंख फूंककर उसने रुक्मिणीको तो विमानमें नारद और उदधि-कुमारीके पास बैठा दिया और स्वयं युद्धके लिए आकाशमें आ खड़ा हुआ ॥१२८॥ तदनन्तर चतुरंग सेनाओंसे सहित और पांचों प्रकारके शस्त्र चलानेमें निपुण यादव राजा, युद्धके लिए तैयार हो नगरीसे बाहर निकले ॥१२९॥ प्रद्युम्न विद्याबलसे यादवोंकी सब सेनाको मोहित कर आकाशमें स्थित कृष्णके साथ चिरकाल तक युद्ध करता रहा ॥१३०॥ अन्तमें प्रद्युम्नने जब कृष्णके

अस्त्र-कौशलको निष्फल कर दिया तब प्रौढ़ दृष्टिको धारण करनेवाले दोनों वीर अपनी बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३१॥ उसी समय रुक्मिणीके द्वारा प्रेरित नारदने आकाशमें शीघ्र ही आकर पिता-पुत्रका सम्बन्ध बतला दोनों वीरोंको युद्ध करनेसे रोका ॥१३२॥

तदनन्तर नम्रीभूत पुत्रका आलिंगन कर श्रीकृष्ण परम हर्षको प्राप्त हुए और हर्षके आँसुओंसे नेत्रोंको व्याप्त करते हुए उसे आशीर्वाद देने लगे ॥१३३॥ तत्पश्चात् मायासे सुलायी हुई सेनाको विद्यासे उठाकर प्रद्युम्नने सन्तुष्ट हो बन्धुजनोंके साथ-साथ नगरीमें प्रवेश किया ॥१३४॥ जिन्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई थी ऐसी पुत्रवत्सला रानी रुक्मिणी और जाम्बवतीने उस समय हर्षसे बहुत उत्सव कराया ॥१३५॥ तदनन्तर मान्य प्रद्युम्नकुमार अन्य स्त्रियोंको लज्जा उत्पन्न करनेवाली उत्तमोत्तम मान्य कन्याओंके साथ उत्तम विवाह-मंगलको प्राप्त हुआ ॥१३६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि स्वर्णकी देदीप्यमान मालासे युक्त रानी कनकमालाने अपने पति कालसंवर विद्याधरके साथ विवाहके समय आकर जिसके विवाहरूप कल्याणको देखा था एवं जिनेन्द्र भगवान्‌के उत्कृष्ट शासनके प्रभावसे जिसे बहुत भारी सुखकी प्राप्ति हुई थी ऐसा प्रद्युम्नकुमार उदधिकुमारी आदि कन्याओंको विधिपूर्वक विवाहकर उनका उपभोग करने लगा ॥१३७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें कुरुवंश तथा प्रद्युम्नका माता-पिताके साथ समागमका वर्णन करनेवाला सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४७॥

□

सर्ग- ४८

अथानन्तर गौतम गणधरने कहा कि हे श्रेणिक ! अब मैं आगमानुसार क्रमसे शम्ब तथा सुभानु कुमारकी मनोहर उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ तुम सुनो ।।१।।

राजा मधुका भाई कैटभ जिसका पहले वर्णन आ चुका है, अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था। जब उसकी वहांकी आयु समाप्त होनेको आयी तब वह सत्यभामाके लिए पुत्रकी इच्छा रखनेवाले श्रीकृष्णके लिए एक सुन्दर हार दे गया ।।२।। सायंकालके समय प्रद्युम्नके प्रयोगसे सत्यभामाका रूप धारण कर रानी जाम्बवतीने कृष्णके साथ उपभोग कर वह हार प्राप्त कर लिया ।। ३ ।। पुण्यके उदयसे उसी समय अखण्ड अभ्युदयको धारण करनेवाला कैटभका जीव स्वर्गसे च्युत हो जाम्बवतीके गर्भमें आ गया। गर्भ धारण कर रानी जाम्बवती अपने घर आ गयी ।। ४ ।। तदनन्तर सत्यभामा भी कृष्णके पास पहुँची और कामके उदयको प्राप्त हो श्रीकृष्णके साथ रमण कर उसने भी स्वर्गसे च्युत किसी शिशुको गर्भमें धारण किया ।।५।। तदनन्तर दोनों रानियोंका गर्भ बढ़ने लगा और जिस प्रकार चन्द्रमाओंके बढ़नेपर समुद्रोंका हर्ष बढ़ने लगता है उसी प्रकार उन दोनों रानियोंके गर्भके बढ़नेपर माता-पिता तथा कुटुम्बी जनोंका हर्ष बढ़ने लगा ।।६।। तदनन्तर नौ माह पूर्ण होनेपर रानी जाम्बवतीने शम्ब नामक पुत्रको और रानी सत्यभामाने सूर्यके समान देदीप्यमान सुभानु नामक पुत्रको उत्पन्न किया ।।७।। इधर अभ्युदयको प्राप्त प्रद्युम्न और शम्बसे रुक्मिणी तथा जाम्बवती हर्षको प्राप्त हुईं उधर भानु और सुभानुसे सत्यभामा भी अत्यधिक हर्षित हुई ।।८।। कृष्णकी अन्य स्त्रियोंमें भी यथायोग्य अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जो यादवोंके हृदयको आनन्द देनेवाले तथा सत्य, पराक्रम और यशसे अत्यधिक सुशोभित थे ।।९।। सैकड़ों कुमारोंसे सेवित पराक्रमी शम्ब, समस्त क्रीड़ाओंमें सुभानुको दबा देता था और उसे जीतकर सातिशय क्रीड़ा करता था ।।१०।।

रुक्मिणीके भाई रुक्मीकी एक वैदर्भी नामकी कन्या थी। रुक्मिणीने उसे प्रद्युम्नके लिए मांगा परन्तु रुक्मीने पूर्व विरोधके कारण उसके लिए वह कन्या न दी ।।११।। यह सुन शम्ब और प्रद्युम्न दोनों भीलके वेषमें गये और रुक्मीको पराजित कर बलपूर्वक उस कन्याको हर लाये ।।१२।। तदनन्तर दूसरी लक्ष्मीके समान सुन्दर उस कन्याको विवाहकर प्रद्युम्न द्वारिका नगरीमें उसे मनोहर भोगोंसे शीघ्र ही क्रीड़ा कराने लगा ।।१३।। शम्ब जुआ खेलनेमें बहुत चतुर था। एक दिन उसने सबके देखते-देखते जुआमें सुभानुका सब धन जीत लिया और सब लोगोंको बांट दिया ।।१४।। नाना प्रकारकी बोली बोलनेवाले पक्षियोंकी क्रीड़ासे शम्बने सुभानु कुमारको जीत लिया। एक कृष्णकी सभामें दोनों कुमारोंके बीच सुगन्धिकी परखमें शास्त्रार्थ हो पड़ा जिसमें शम्बने सुभानुको पुनः हरा दिया ।।१५।। एक बार उसने अग्निमें शुद्ध किये हुए दो दिव्य वस्त्रों तथा दिव्य अलंकारोंको प्राप्त कर राजा कृष्णकी सभामें सुभानुको जीत लिया ।।१६।। एक बार अपना बल दिखाकर उसने सुभानु कुमारको ऐसा जीता कि कृष्ण महाराज उसपर एकदम प्रसन्न हो गये। कृष्णने उससे वर माँगनेका आग्रह किया जिससे एक माहका राज्य प्राप्त कर उसने बहुत विपरीत क्रियाएँ कीं ।।१७।। प्रणय कोपको धारण करनेवाले कृष्णने उस दुरा-

चारी शम्बको बहुत ताड़ना दी। एक दिन शम्बकुमार कन्याका रूप धारण कर रथमें सवार हो सत्यभामाकी गोदमें जा प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ सत्यभामाने समझा कि यह कन्या मेरे पुत्र सुभानुके लिए ही लायी गयी है इसलिए उसने सुभानुके साथ विवाह करा दिया परन्तु विवाहके बाद ही शम्बकुमारने लोगोंके देखते-देखते अपना असली रूप प्रकट कर दिया ॥१९॥ उसने एक ही रात्रि-में सौ कन्याओंके साथ विवाह सम्बन्धी मांगलिक स्नान कर अपनी माता जाम्बवतीको बहुत सुखी किया ॥२०॥ इन्द्रके समान कीर्तिको धारण करनेवाले सत्यभामा आदि रानियोंके सैकड़ों कुमार भी उस समय अनेक कन्याओंको विवाह कर इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगे ॥२१॥ एक दिन शम्ब अपने मान्य पितामह वसुदेवके घर गया और प्रणाम कर क्रीड़ापूर्वक इस प्रकार कहने लगा—हे पूज्य ! आपने पृथिवीपर बहुत समय तक क्लेश उठाते हुए भ्रमण किया तब कहीं आप विद्याधरोंकी पूज्य एवं मनोहर कन्याएँ प्राप्त कर सके परन्तु मैंने घर बैठे बिना किसी क्लेशके एक ही रात्रिमें सौ कन्याओंके साथ विवाह कर लिया। आप हम दोनोंके अन्तरको देखिए ॥२२–२४॥ यह सुन वसुदेवने कहा कि वत्स ! तू बाणके समान दूसरेसे (प्रद्युम्नसे) प्रेरित हो चलता है और फिर तेरी चाल भी कहाँ है ? सिर्फ घरमें ही। इसीलिए हम दोनोंमें बहुत अन्तर है ॥२५॥ मैं विद्याधरोंके नगररूपी समुद्रोंका मगर हूँ और तू द्वारिकारूपी कूपका मेढक है फिर भी हे पण्डितमन्य ! तू अपने आपको मेरे समान मानता है ॥२६॥ मैंने विद्याधरोंके नगरोंमें जो कुछ अनुभव किया, देखा तथा सुना है वह अत्यन्त मनोहारी है और दूसरोंके लिए अतिशय दुर्लभ है ॥२७॥ वसुदेवके इस प्रकार कहनेपर शम्बने नमस्कार कर आदरपूर्वक उनसे कहा कि हे आर्य ! मैं आपका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ कृपा कर कहिए ॥२८॥ इसके उत्तरमें वसुदेवने कहा कि हे वत्स ! तू आनन्दभेरी बजवाकर समस्त यादवोंको इसकी सूचना दे। सबके लिए मैं साथ ही अपना चरित्र कहूँगा ॥२९॥ तदनन्तर आनन्दभेरीके बजवानेपर जब स्त्री-पुत्रादि सहित समस्त यादव एकत्रित हो गये तब वसुदेवने उनके लिए विस्तारपूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहा ॥३०॥ उन्होंने लोकालोकके विभागका वर्णन किया, हरिवंशकी परम्पराका निरूपण किया, अपनी क्रीड़ाओंका कथन किया, सौर्यपुरके लोगोंने राजा समुद्रविजयसे मेरी क्रीड़ाओंसे होने-वाली लोगोंकी विपरीत चेष्टाएँ कहीं, तदनन्तर मैं छलसे सौर्यपुरसे निकलकर बाहर चला गया.... यह निरूपण किया। इस प्रकार प्रद्युम्न और शम्बकी उत्पत्ति तथा उनकी विभूतिपर्यन्त अपना मनुष्य तथा विद्याधरोंसे सम्बन्ध रखनेवाला दिव्य चरित कह सुनाया ॥३१–३२॥ वसुदेवके अन्तः-पुरमें जो विद्याधर स्त्रियाँ थीं वे सब उनका यह चरित सुन पूर्व वृत्तान्तको स्मरण करती हुई अत्यन्त हर्षित हुईं ॥३३॥ सभासद् लोग, वृद्ध पुरुष, स्त्री, युवा, बालक, समस्त यदुवंशी, इनके अन्तःपुर, पाण्डव तथा द्वारिकाके अन्य लोग, वसुदेवके उक्त चरितको सुनकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए और शिवा आदि देवियाँ वसुदेवके इस कथारूपी रसका पान कर संशयरहित हो उनकी प्रशंसा करने लगीं ॥३४–३५॥ सुगन्धित वस्त्रोंको धारण करनेवाले सब राजा यथायोग्य अपने-अपने स्थानोंपर चले गये और सबके अन्तःपुर भी पहरेदारोंसे सुरक्षित हो अपने-अपने स्थानों-पर पहुँच गये ॥३६॥ अनेक आश्चर्योंसे युक्त वसुदेवकी कथा फिरसे ताजी हो गयी और पुनः प्रति-दिन घर-घर होने लगी ॥३७॥

तदनन्तर नमस्कार कर पूछनेवाले राजा श्रेणिकके लिए गौतम गणधर, भगवान् महावीर स्वामीकी दिव्यध्वनिके अनुसार कुछ कुमारोंका इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥३८॥

धर, गुणधर, युक्तिक, दुर्धर, सागर और चन्द्र ये राजा उग्रसेनके पुत्र थे ॥३९॥ महासेन, शिवि, स्वस्थ, विषद और अनन्तमित्र ये उग्रसेनके चाचा राजा शान्तनके पुत्र थे ॥४०॥ इनमें

महासेनके सुषेण, विषमित्रके हृदिक, शिविके सत्यक, हृदिकके कृतिधर्मा और दृढधर्मा, सत्यकके वज्रधर्मा और वज्रधर्माके असंग नामका पुत्र हुआ ॥४१–४२॥ राजा समुद्रविजयके महानेमि, सत्यनेमि, दृढनेमि, भगवान् अरिष्टनेमि, सुनेमि, जयसेन, महोजय, सुफल्गु, तेजःसेन, मय, मेघ, शिवनन्द, चित्रक और गौतम आदि अनेक पुत्र हुए ॥४३–४४॥ अक्षोभ्यके, अपने वचनोंसे समुद्रको क्षुभित करनेवाला उद्धव, अम्भोधि, जलधि, वामदेव और दृढव्रत ये पांच पुत्र प्रसिद्ध थे। स्तिमितसागरसे ऊर्मिमान्, वसुमान्, वीर और पातालस्थिर ये चार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥४५–४६॥ राजा विद्युत्प्रभ, माल्यवान्, और गन्धमादन ये तीन हिमवत्के पुत्र थे तथा ये तीनों ही सत्यव्रत और पराक्रमसे युक्त थे ॥४७॥ निष्कम्प, अकम्पन, वलि, युगन्त, केशरिन् और बुद्धिमान् अलम्बुष ये छह पुत्र विजयके प्रसिद्ध थे ॥४८॥ महेन्द्र, मलय, सह्य, गिरि, शैल, नग और अचल, सार्थक नामोंको धारण करनेवाले ये सात पुत्र अचलके थे ॥४९॥ वासुकि, धनंजय, कर्कोटक, शतमुख और विश्वरूप ये पाँच पुत्र धरणके थे ॥५०॥ दुष्पूर, दुर्मुख, दुर्दर्श और दुर्धर, चतुर क्रियाओंको धारण करनेवाले ये चार पुत्र पूरणके थे ॥५१॥ चन्द्र, शशांक, चन्द्राभ, शशिन्, सोम और अमृतप्रभ चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्तिको धारण करनेवाले ये छह पुत्र अभिचन्द्रके थे ॥५२॥ और वसुदेवके महाबलवान् अनेक पुत्र थे। हे श्रेणिक ! मैं यहां उनमें-से कुछके नाम कहता हूँ सो सुन ॥५३॥

वसुदेवकी विजयसेना रानीसे अक्रूर और क्रूर नामके दो पुत्र हुए थे। श्यामा नामक रानीसे ज्वलन और अग्निवेग ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥५४॥ गन्धर्वसेनासे वायुवेग, अमितगति और महेन्द्रगिरि ये तीन पुत्र हुए थे। ये तीनों पुत्र ऐसे जान पड़ते थे मानो तीनों लोक ही हों ॥५५॥ मन्त्रीकी पुत्री पद्मावतीसे दारु, वृद्धार्थ और दारुक ये तीन पुत्र हुए ॥५६॥ नीलयशाके सिंह और मतंगज ये दो धीर-वीर पुत्र थे। सोमश्रीके नारद और मरुदेव ये दो पुत्र थे ॥५७॥ मित्रश्रीसे सुमित्र, कपिलासे कपिल और पद्मावतीसे पद्म तथा पद्मक ये दो पुत्र हुए थे ॥५८॥ अश्वसेनासे अश्वसेन, पौण्ड्रासे पौण्ड्र और रत्नवतीसे रत्नगर्भ तथा सुगर्भ ये दो पुत्र हुए थे ॥५९॥ सोमदत्तकी पुत्रीसे चन्द्रकान्त और शशिप्रभ तथा वेगवतीसे वेगवान् और वायुवेग ये दो पुत्र हुए थे ॥६०॥

दृढमुष्टि, अनावृष्टि और हिममुष्टि ये तीन पुत्र मदनवेगासे उत्पन्न हुए थे। ये तीनों ही पुत्र कामदेवकी उपमाको प्राप्त थे ॥६१॥ बन्धुषेण और सिंहसेन ये बन्धुमतीके पुत्र थे तथा शीलायुध प्रियंगसुन्दरीका पुत्र था ॥६२॥ रानी प्रभावतीसे गन्धार और पिंगल ये दो तथा रानी जरासे जरत्कुमार और वाह्लीक ये दो पुत्र हुए थे ॥६३॥ अवन्तीसे सुमुख, दुर्मुख और महारथ, रोहिणीसे बलदेव, सारण तथा विदूरथ, बालचन्द्रासे वज्रदंष्ट्र और अमितप्रभ और देवकीसे कृष्ण पुत्र हुए थे। इस प्रकार वसुदेवके पुत्रोंका वर्णन किया ॥६४–६५॥

उन्मुण्ड, निषध, प्रकृतिद्युति, चारुदत्त, ध्रुव, पीठ, शक्रन्दमन, श्रीध्वज, नन्दन, धीमान्, दशरथ, देवनन्द, विद्रुम, शन्तनु, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु और रोमशैत्यको आदि लेकर बलदेवके अनेक पुत्र थे ॥६६–६८॥ भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, सुभानुक, बृहद्रथ, अग्निशिख, विष्णुंजय, अकम्पन, महासेन, धीर, गम्भीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित्, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शंख, प्रद्युम्न तथा शम्ब आदि कृष्णके पुत्र थे। ये सभी पुत्र शस्त्र, अस्त्र तथा शास्त्रमें निपुण और युद्धमें कुशल थे ॥६९–७२॥ उन यशस्वी यादवोंके पुत्र और पौत्र, बुआके लड़के तथा भानजे भी हजारोंकी संख्यामें थे ॥७३॥ इस प्रकार सब मिलाकर महाप्रतापी तथा कामदेवके समान सुन्दर रूपको धारण करनेवाले साढ़े तीन करोड़ कुमार,

क्रीड़ाके प्रेमी हो निरन्तर क्रीड़ा करते रहते थे ॥७४॥

निरन्तर रथ तथा हाथियोंपर सवार हो बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए, नाना वेषोंके धारक, प्रबल पराक्रमी और नगरवासी प्रजाको आनन्द उत्पन्न करनेवाले इन वीर कुमारोंसे युक्त द्वारावती नगरी उस समय भवनवासी देवोंसे युक्त पातालपुरीके समान सुशोभित हो रही थी ॥७५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि प्रायः स्वर्गसे च्युत होकर आये हुए तथा जिनेन्द्र-प्रणीत मार्गका अनुसरण करनेसे सातिशय पुण्यका संचय करनेवाले इन प्रशंसनीय उत्तम यदु-कुमारोंके इस कहे जानेवाले चरितको जो बुद्धिमान् मनुष्य एकाग्रचित्त होकर सुनते हैं तथा श्रद्धान करते हैं वे समस्त रोगोंको दूर कर कौमार और यौवन अवस्थाका उपभोग करते हैं—उनकी वृद्धावस्था छूट जाती है ॥७६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें यदुवंशके कुमारोंका नामोल्लेख करनेवाला अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४८॥

□

सर्ग- ४६

अथानन्तर कृष्णकी छोटी बहन जगत्में उत्तम, चन्द्रमाके समान निर्मल यशको धारण करनेवाली एवं मनोहर गुणरूपी आभूषणोंसे भूषित यशोदाकी पुत्री (जो कृष्णके बदलेमें आयी थी)ने अतिशय प्रसिद्ध प्रथम यौवनके बहुत भारी भारको धारण किया ॥१॥ जिनके अंगुलिरूपी पल्लव श्रेष्ठ नखरूपी चन्द्रमण्डलसे सुशोभित थे, जिन्होंने अपनी स्वाभाविक ललाईसे देदीप्यमान महावरकी हँसी की थी, तथा जो अग्रभागमें समान रूपसे ऊँचे उठे हुए थे ऐसे उसके कोमल चरण-कमलोंकी उपमा उस समय लज्जासे ही मानो संसारमें कहीं चली गयी थी। उसके कोमल चरण-कमल अनुपम थे ॥२॥ जो अत्यन्त मजबूत एवं गूढ गांठों और घुटनोंसे मनोहर थी, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई गोलाईसे सुशोभित एवं रोमरहित थी, नितम्बोंका बहुत भारी भार धारण करनेमें समर्थ थी, और जो परस्परके प्रतिस्पर्धी मल्लके समान जान पड़ती थी ऐसी उसकी अनुपम जंघाओंकी उस समय कहीं उपमा नहीं रही ॥३॥ जो कोमल गोल और शुभ्र थे, जिनसे अत्यधिक स्थायी एवं श्रेष्ठ कान्ति चू रही थी, जो दीप्तिरूपी रससे परिपूर्ण थे, हाथीकी सूँड़ और गोल कदलीकी सुकुमारताको उल्लंघन कर विद्यमान थे, अतिशय प्रसिद्ध थे और यथार्थ गुणोंसे युक्त थे, ऐसे उसके दोनों ऊरु उस समय अत्यधिक सुशोभित होने लगे ॥४॥ कलहंसके समान सुन्दर चालसे सुशोभित उस कन्याकी स्थूल जघनस्थली, अनेक रसोंसे परिपूर्ण वर्णवाले कुलाचलोंसे उत्पन्न स्त्रियोंके लिए हर्ष उत्पन्न करनेवाले पुण्यरूपी, नदीकी उस पुलिन भूमि—तट भूमिके समान सुशोभित होने लगी जो कामकी अभूमि—अगोचर तथा नितम्बरूपी सुन्दर तटोंसे युक्त थी ॥५॥ वह कन्या, सूक्ष्म, कोमल और अत्यन्त काली रोमराजिसे, मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली अपनी नाभिकी गहराईसे और शरीरके मध्यमें स्थित त्रिवलियों—तीन रेखाओंकी विचित्रतासे संसारकी समस्त सुन्दर स्त्रियोंके बीच अत्यधिक सुशोभित होने लगी ॥६॥ वक्षःस्थलपर अत्यन्त नील चूचुकसे युक्त कठोर गोल और स्थूल स्तनोंका भार धारण करनेसे वह कन्या ऐसी सुशोभित होने लगी मानो 'अमृत रसका घर खिरकर कहीं नष्ट न हो जाये' इस भयसे इन्द्रनील मणिकी मजबूत मुहरसे युक्त देदीप्यमान सुवर्णके दो कलश ही धारण कर रही हो ॥७॥ शिरीषके फूलके समान कोमल मोटी और उत्तम कन्धोंसे युक्त, उत्तम कमलकी कान्तिके समूहके समान लाल-लाल हथेली रूप पल्लवोंसे सहित, कुरुबकके फूलके समान लाल एवं सुन्दर नखरूपी पुष्पोंसे सुशोभित तथा मूँगकी कोशोंका अनुकरण करनेवाली अंगुलियोंसे युक्त भुजारूपी लताओंसे वह अत्यधिक सुशोभित होने लगी ॥८॥ कोमल शंखके समान कण्ठ, ठुड्डी, अधरोष्ठरूपी विम्बीफल, प्रकृष्ट हास्यसे युक्त श्वेत कपोल, कुटिल भौंहें, ललाट तट एवं द्विगुणित कोमल नील कमलकी उत्तम डण्ठलके समान कानोंको धारण करनेवाली और सफेद काले तथा विशाल नेत्रोंसे सहित वह कन्या चिर काल तक अत्यधिक सुशोभित होने लगी ॥९॥ हास्ययुक्त दांतोंसे सहित वह चन्द्रमुखी कन्या, सुन्दर शिरपर भ्रमरोंकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले देदीप्यमान घुँघराले एवं विस्तृत कटि-तटपर पड़े प्रकाशमान उस केशसमूहको धारण कर रही थी, जो लटकते हुए काम-पाशके समान लोगोंको वश करनेवाला था ॥१०॥ हाथ और

पैरोंमें स्थित अँगूठी, कड़े तथा नूपुर आदि समीचीन एवं प्रसिद्ध चौदह आभरणोंसे जिसका शरीर आभूषणस्वरूप हो रहा था, जो शोभायमान अंगराग, कोमल वस्त्र और महामालाओंको धारण कर रही थी तथा जिसे कन्याओंके उचित समस्त सुख उपलब्ध थे ऐसी वह कन्या अपने शरीरके द्वारा संसारकी अन्य युवतियोंको आच्छादित कर रही थी—तिरस्कृत कर रही थी ॥११॥ वह पिता, पुत्र आदि समस्त यदुवंशके मनुष्योंके द्वारा योग्य सत्कारके द्वारा किये हुए गौरवकी भूमि थी, समस्त कलाओं और मनोहर गुणोंके समूहकी महावसतिका थी और कुटुम्बी जनोंके समीप स्वयं शरीरधारिणी सरस्वतीके समान जान पड़ती थी ॥१२॥

इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर कदाचित् बलदेवके पुत्रोंने आकर उसे नमस्कार किया और जाते समय अपने अल्हड़ स्वभावसे उसे 'चिपटी नाकवाली' कहकर चिढ़ा दिया। उसने एकान्तमें दर्पणमें प्रतिबिम्बित चिपटी नाकसे युक्त अपना मुख देखा जिससे वह लज्जित होती हुई उस पर्यायसे विरक्त हो गयी ॥१३॥ उसने नगरमें विद्यमान आर्यिकाओंके समूहकी प्रधान सुव्रता नामक गणिनीके चरणोंकी शरण प्राप्त की और उन्हें साथ लेकर वह व्रतधर नामक मुनिराजके चरणमूलमें गयी। उन्हें नमस्कार कर उसने उक्त मुनिराजसे पूछा कि 'हे भगवन्! मैंने पूर्वभवमें क्या पाप किया था जिससे मुझे यह कुरूप प्राप्त हुआ है।' इसके उत्तरमें अवधि-ज्ञानरूपी नेत्रको विकसित करनेवाले मुनिराज उससे इस प्रकार कहने लगे—॥१४॥

हे पुत्री! पूर्वभवमें तेरा जीव सुराष्ट्र देशमें उत्तम रूपको धारण करनेवाला पुरुष था। वहाँ विषय और इन्द्रियजन्य सुखोंसे अत्यन्त मूढ़ बुद्धि होनेके कारण वह क्रूरतावश विषयोंमें स्वच्छन्द हुए अपने मन और नेत्रोंको स्वाधीन नहीं रख सका ॥१५॥ एक बार एक मुनि मृतशय्यासे अत्यन्त विषम तप तप रहे थे। तूने उनपर अपनी गाड़ी चला दी जिससे उनकी नाक पिचक गयी। मुनिराजने अपने मनमें बहुत भारी धीरता धारण कर रखी थी इसलिए इस घटनासे उनके मनमें कुछ भी क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ ॥१६॥ मुनिराजके जीवका घात नहीं हुआ था इसलिए तेरा नरक वास नहीं हुआ। किन्तु उनके शरीरका कुछ घात हुआ था इसलिए इस जन्ममें तेरा मुख नासिकासे रहित हो महाविकृत हुआ है। ठीक ही है संसारमें जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है ॥१७॥ जिनेन्द्र भगवान्का यह कहना है कि जो प्राणी इस संसारमें एक बार भी किसी जीवका घात करता है वह उसके पापसे पर-भवमें दूसरोंके द्वारा घात होनेके दुःखको प्राप्त होगा और जो किसीके अवयवका एक बार भी घात करता है वह अपने किये पापके अनुसार अनेक बार अवयवके घातको प्राप्त होगा ॥१८॥ जो क्रूर मनुष्य, प्रभुताके कारण निर्भय हो मन, वचन, कायसे मनुष्य आदि प्राणियोंके वधमें प्रयत्न करते हैं परभवोंमें वे कितने ही चतुर क्यों न हों दुःख देनेमें चतुर पापरूपी महाप्रभु उनपर बार-बार अपना प्रभाव जमाता है—उन्हें बार-बार दुःख देता है ॥१९॥ इसलिए स्वपर हितको चाहने-वाले प्राणियोंको भले ही वे राजा क्यों न हों सदा परहिंसा आदि पापोंसे दूर रहना चाहिए। क्योंकि संसारमें भ्रमण करनेवाले प्राणी अपने द्वारा किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं उनकी प्रभुता—राज्य अवस्था सदा स्थित नहीं रहती ॥२०॥

इस प्रकार गुरुके वचन सुन वह, सुव्रत गणिनीके साथ चली आयी और समस्त बन्धु जनोंका त्यागकर उसने सफेद साड़ीसे स्तनोंको ढक तथा काले केशोंको उखाड़कर आर्यिकाका व्रत धारण कर लिया ॥२१॥ जिसने आभूषण और मालाएँ उतारकर फेंक दी थीं तथा जिसकी बाहुरूपी लताएँ फूलोंके समान कोमल थीं ऐसी वह कन्या उस समय अपने हाथकी कोमल अँगुलियोंसे अपने बँधे हुए समस्त बालोंको उखाड़ती हुई ऐसी जान पड़ती थी मानो बुद्धिरूपी कुटीके भीतर विद्यमान शल्योंके समूहको ही उखाड़ रही हो ॥२२॥ जघन, वक्षःस्थल, स्तन, उदर

और चरणोंपर्यन्त समस्त शरीरको एक अत्यन्त कोमल वस्त्रसे आच्छादित करती हुई वह सती उस समय चिरकाल तक शरद् ऋतुकी उस नदीके समान सुशोभित हो रही थी जिसने स्वच्छ जलसे अपने बालुमय स्थलको ढक रखा था ॥२३॥ कुटुम्बी-जनोंने जिसकी दीक्षा-कालीन पूजा की थी और जो बड़े-बड़े तपोंको जन्म देनेवाली थी ऐसी उस नव-दीक्षिता आर्यिकाको देखकर उस समय समस्त महाजनोंके हृदयमें यही बुद्धि उत्पन्न होती थी कि क्या यह धैर्यसहित सरस्वती है अथवा रति तपस्या कर रही है ॥२४॥ व्रत, गुण, संयम तथा उपवास आदि तपों एवं प्रतिदिन भायी जानेवाली अनित्य आदि भावनाओंसे जो विशुद्ध भावोंको प्राप्त हुई थी, जो आगमोक्त अनेक पाठोंकी वसतिका थी, उत्तमोत्तम गुणोंसे सहित थी, और सदा आर्यिकाओंके समूहके साथ निवास करती थी ऐसी वह आर्यिका तपस्या करती हुई रहती थी ॥२५॥

तदनन्तर बहुत वर्षों और दिनोंके समूह व्यतीत हो जानेपर वह जिनेन्द्र भगवान्के जन्म, दीक्षा और निर्वाण कल्याणककी भूमियोंमें विहार कर किसी समय बहुत बड़े संघकी प्रेरणासे अपनी सहधर्मिणियोंके साथ विन्ध्याचलके विशाल वनमें जा निकली ॥२६॥ और रात्रिके समय, तीक्ष्ण तलवारके समान निर्मल एवं निर्विकल्प चित्तको धारण करनेवाली वह प्रतिमातुल्य आर्यिका किसी मार्गके सम्मुख प्रतिमायोगसे विराजमान हो गयी। उसी समय किसी बहुत धनी संघपर आक्रमण करनेके लिए रात्रिके समान काली भीलोंकी एक बड़ी सेना शीघ्रतासे वहाँ आयी और उसने प्रतिमायोगसे विराजमान उस आर्यिकाको देखा ॥२७॥ 'यह यहाँ वनदेवी विराजमान है' यह समझकर सैकड़ों भीलोंने नमस्कार कर उससे अपने लिए यह वरदान माँगा कि 'हे भगवति ! यदि आपके प्रसादसे निरुपद्रव रहकर हम लोग धन प्राप्त कर सकेंगे तो हम आपके पहले दास होंगे' ॥२८॥ इस प्रकारका मनोरथ कर भीलोंका वह विशाल समूह बड़ी मजबूतीसे चारों ओरसे यात्रियोंके उस संघपर टूट पड़ा और उसे मारकर तथा लूटकर कृतकृत्य होता हुआ जब वह वापस समीपमें आया तो उसने प्रतिमायोगसे स्थित आर्यिकाके खड़े होनेके स्थानपर यह देखा ॥२९॥ जब भील लोग आर्यिकाके दर्शन कर आगे बढ़ गये तब वहाँ एक सिंहने आकर उनपर घोर उपसर्ग शुरू कर दिया। उपसर्ग देख उन्होंने बड़ी शान्तिसे समाधि धारण की और मरण पर्यन्तके लिए अनशनपूर्वक रहनेका नियम ले लिया। तदनन्तर प्रतिमायोगमें ही मरण कर वे स्वर्ग गयीं सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष अपनी मर्यादासे कभी विचलित नहीं होते ॥३०॥ निरन्तर धर्मका उपार्जन करनेवाली एवं गृहीत समाधिको न छोड़नेवाली उस आर्यिकाका शरीर सिंहके नख, मुख और डाढ़ोंके अग्रभागसे विदीर्ण होनेके कारण यद्यपि छूट गया था तथापि उसके हाथकी तीन अँगुलियाँ वहाँ शेष बच रही थीं यही तीन अँगुलियाँ उन भीलोंको दिखाई दीं ॥३१॥ खूनसे विलिप्त होनेके कारण जिसका मार्ग अन्तर्हित हो गया था ऐसी वहाँकी समस्त भूमिको उन भीलोंने उस समय बड़ी आकुलतासे यहाँ-वहाँ देखा पर कहीं उन्हें वह आर्यिका नहीं दिखी। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि वरदान देनेवाली वह देवी इस रुधिरमें ही सन्तोष धारण करती है इसलिए हाथकी उन तीन अँगुलियोंको वहीं देवता रूपसे विराजमान कर दिया और बड़े-बड़े जंगली भैंसाओंको मारकर उन विषम एवं क्रूर भीलोंने सब ओर खून एव मांसकी बलि चढ़ाना शुरू कर दी। इस बलिदानसे वहाँ मक्खियाँ और मच्छर उतराने लगे, वह स्थान आँखोंके लिए विषके समान दिखाई पड़ने लगा। तथा फैली हुई सड़ी बाससे वहाँकी दिशाएँ दुर्गन्धित हो गयीं ॥३२-३३॥ यद्यपि वह आर्यिका परम दयालु थी, निष्पाप थी और तपके प्रभावसे उत्तम गतिको प्राप्त हुई थी तथापि इस संसारमें मांसके लोभी नरकगामी मूर्ख जन भीलोंके द्वारा दिखलाये हुए मार्गसे चलकर उसी समयसे भैंसा आदि पशुओंको मारने लगे ॥३४॥ उत्तम देवगतिकी बात छोड़िए निकृष्ट देवगतिमें भी कोई देव भैंसाओंका रुधिर पान

करनेवाले एवं हाथोंमें त्रिशूल धारण करनेवाले नहीं हैं और न उनमें परस्पर एक दूसरेका मारना ही है फिर भी कवि स्फुट चित्रकारके समान जरा-सी भित्तिका आधार पा सत्पुरुषोको भी दूषण लगानेवाली कविता लिख डालते हैं ॥३५॥

दूसरेकी एकान्तमें होनेवाली सत्य कुचेष्टाका भी सभामें दूसरोंके द्वारा कहा जाना पाप बन्धका कारण है—यह सत्पुरुषोंका मत है। फिर किसीके अविद्यमान दोषको संसारके सामने प्रकट करना नरकगतिका कारण नहीं है यह किस सत्पुरुषका वचन है ? अर्थात् किसीका नहीं ॥३६॥ स्व-परके महावैरी ये धूर्त कवि असत्यको सत्य है ऐसा बताकर विकथाओंका कथन करते हैं और 'ये देवताओंके वचन है' ऐसा समझ मूर्ख प्राणी पृथिवीपर, परका वध करना आदि कुमार्गोंमें भेड़िया-धसानके समान गिरते चले जाते हैं ॥३७॥ विधिपूर्वक आराधना करनेपर प्राणियोंको सुख देनेवाला, परजीवोंकी दयामें तत्पर संसारमें प्रकट हुआ परम धर्मका मार्ग कहाँ ? और दुष्ट कलिकालमें कुकवियोंके द्वारा धर्मरूपसे कल्पित, परघातसे उत्पन्न, नरकका कारण अधर्मकी कलह कहाँ ? **भावार्थ**—धर्म और अधर्ममें महान् अन्तर है ॥३८॥ जिन्होंने लोकपालका चरित प्रकट किया है और जो दुष्टजनोंके भयसे रक्षाकर जीवोंपर सदा अनुग्रह करते हैं ऐसे राजा भी जहाँ इस संसार-में देवताओंको लक्ष्य कर भैंसा तथा मेष आदि जन्तुओंका घात करते हैं वहाँ अन्य क्षुद्र मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ?॥३९॥ भाग्यवश किसी तरह कार्यकी सिद्धिको पाकर 'यह प्रतिनिधिभूत देवता-के द्वारा ही कार्य सिद्ध हुआ है' ऐसा मान जो मनुष्य शस्त्रोंसे अपने ही शरीरको चीर खूनकी बलि देने लगता है वह दूसरोंके शरीरके छेदनेमें दयासहित कैसे हो सकता है ? **भावार्थ**—मनुष्यकी कार्यसिद्धि तो अपने पूर्वकृत कर्मके अनुसार होती है परन्तु देवताकी प्रतिनिधि रूप मूर्तिकी उपासना करनेवाला मनुष्य उस सिद्धिको उस मूर्तिके द्वारा किया हुआ मानता है इसलिए प्रसन्न होकर शस्त्रोंसे ही अंगोंको छेदकर खूनकी बलि देने लगता है। जो अपने ही अंगोंको छेद डालता है उसे दूसरेके अंग छेदनेमें दया कहाँ हो सकती है ? ॥४०॥ नम्रीभूत मनुष्योंने बहुत बड़ी पूजासे जिसे अच्छी तरह सन्तुष्ट कर लिया है और जिसका विद्वेषरूप विपरीत गुण दूर हो गया है ऐसी वर देनेवाली उत्कृष्ट देवीके द्वारा यदि संसारमें इष्ट वर दिया जाता है तो किसी भी मनुष्यको इष्ट सामग्रीसे रहित नहीं होना चाहिए। **भावार्थ**—जब सभी लोग पूजाके द्वारा देवताको सन्तुष्ट कर उससे इष्ट वरदान प्राप्त कर सकते हैं तब सभीको इष्ट वस्तुओंसे भरपूर होना चाहिए ॥४१॥ जिसकी मूर्ति और मन्दिरका निर्माण अन्य धनवान् मनुष्यका कार्य है, तथा जिसकी प्रतिदिन काम आनेवाली दीप, तेल, बलि, पुष्प आदिकी विधि सदा दूसरोंसे पूर्ण होती है वह मूर्खजनोंकी देवता दूसरोंके लिए माँगा हुआ वरदान निश्चित रूपसे देती है यह संसारमें बड़ी हँसीकी बात है। **भावार्थ**—जो अपनी मूर्ति और मन्दिर स्वयं नहीं बना सकती तथा प्रतिदिन उपयोगमें आनेवाले दीपक, तेल, नैवेद्य और फूल आदिके लिए जिसे दूसरोंका मुँह देखना पड़ता है वह दूसरोंके लिए क्या वरदान देगी ? ॥४२॥ पृथिवीपर भक्तजनों द्वारा द्रव्य, भाव, पूजासे पूजी हुई कृतकृत्य जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा, अपने-अपने विशिष्ट परिणामोंके अनुसार परभवमें इष्ट कल्पवृक्षकी लताके समान मनुष्योंके इष्ट मनोरथरूप फलको फलती है ॥४३॥ कुमार्गमें स्वयं प्रवृत्त होना, दूसरेको प्रवृत्त कराना और प्रवृत्त होते हुए को अनुमति देना इन तीन अशुभ प्रवृत्तियोंसे अशुभ कर्मोंका आस्रव होता है जो कि दुर्गतिका मुख्य कारण है और मुनिराजके द्वारा बताये हुए मार्गमें स्वयं प्रवृत्त होना, दूसरेको प्रवृत्त कराना और प्रवृत्त होते हुए को अनुमति देना इन तीन शुभ प्रवृत्तियोंसे शुभ कर्मोंका आस्रव होता है जो कि सुगतिका मुख्य कारण है ॥४४॥ इस प्रकार जब अपने ही शुभ मन, शुभ वचन और शुभ कायसे पुण्यबन्ध होता है और वे शुभ मन आदि अपने अधीन हैं तब संसारके समस्त प्राणी एक पुण्य कर्मको ही क्यों नहीं करते ? किन्तु उसके विपरीत

किये हुए निरर्थक कार्योंसे पाप ही क्यों करते हैं ? अहो ! जान पड़ता है कि इसमें पूर्वबद्ध बहुत भारी कर्मोंके द्वारा किया हुआ बहुत बड़ा कारण है ।।४५।। अहो ! देवमूढ़ता, शास्त्रमूढ़ता और गुरु-मूढ़ता इन तीन मूढ़ताओंरूप अन्धकारका समूह बहुत प्रबल है, वह जगत्‌के जीवोंके पवित्र नेत्रको अच्छी तरह आच्छादित कर रहा है और इसकी कोई ओषधि भी नहीं है। इसी अन्धकारके कारण देखनेका इच्छुक मनुष्य भी पद-पदपर आकुल होता हुआ तत्त्व और अतत्त्वको देखनेमें क्या समर्थ हो पाता है ? अर्थात् नहीं हो पाता ।।४६।। यह पृथिवी अग्नि, वायु, जल, भूमि, लता और वृक्षोंसे तथा मन्दिरोंमें कल्पित अचेतन देवोंसे व्याप्त है और आकाश मनुष्योंके नेत्रगोचर सूर्य, चन्द्र, तारा तथा ग्रहोंके समूहसे व्याप्त है इसलिए इनके विषयमें किसे मूढता नहीं होगी ? **भावार्थ**—पृथिवी और आकाश कल्पित देवताओंसे भरे हुए हैं इसलिए विवेकसे विचारकर यथार्थ देवका निर्णय करना चाहिए ।।४७।। यह संसार कथंचित् सत् है, कथंचित् असत् है, कथंचित् एक है, कथंचित् अनेक है, कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, कथंचित् स्वरूप है, कथंचित् पररूप है, कथंचित् सान्त है, कथंचित् अनन्त है, और गुण-गुणी तथा कार्य-कारणके भेदसे अनेक रूप है फिर भी ये संसारके प्राणी गाढ़ मूढ़ताके कारण एकान्तवादमें निमग्न हैं ।।४८।। समस्त नयों और प्रमाणोंके द्वारा निश्चित वस्तुके विषयमें जो नैगम, संग्रह तथा व्यवहार आदि प्रमुख नय माने गये हैं वे यदि परस्परमें एक दूसरेका निषेध करते हैं तो मिथ्या हैं और परस्पर एक दूसरेपर दृष्टि रखते हैं तो समीचीन हैं ।।४९।। अन्य देवताओंकी रुचिसे रहित एवं जिनेन्द्र भगवान्‌के शासनमें निरत मनुष्यकी जो जीव आदि तत्त्वोंमें प्रगाढ़ श्रद्धा है उसकी वही श्रद्धा बिना किसी प्रयत्नके मोक्ष-सुखसे सम्बन्ध जोड़नेवाली सुगति अथवा सम्यग्ज्ञानको और शुभ एवं समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाले उत्कृष्ट चारित्रको भी प्राप्त होती है। **भावार्थ**—मनुष्यकी श्रद्धारूप परिणति ही सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्‌चारित्रकी प्राप्तिका कारण है ।।५०।। यह व्रत गुण और शीलकी राशि तथा नाना प्रकारका अत्यन्त घोर तप चूंकि दर्शनकी शुद्धिसे युक्त होनेपर ही निर्मल होता है इसलिए जिनेन्द्र भगवान्‌के गुण-ग्रहण करनेमें तत्पर मनुष्यको चाहिए कि वह जन्म, बुढ़ापा और मृत्युका क्षय करनेवाली एवं सुखदायी दर्शनकी शुद्धिका आराधन करे—अपने सम्यग्दर्शनको निर्मल बनावे ।।५१।।

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें दुर्गाकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।४९।।

सर्ग- ५०

इधर कोई एक वणिक् अपना खरीदा हुआ माल बेचनेके लिए बहुत-से अमूल्य मणि लेकर राजा जरासन्धसे मिला ।।१।। उन मणियोंको देखकर राजा जरासन्धने उससे पूछा कि ये मणि तुम कहाँसे लाये हो ? इसके उत्तरमें वणिक्ने कहा कि हे स्वामिन् ! ये मणि उस द्वारिकापुरीसे आये हैं जहां अत्यन्त पराक्रमी राजा कृष्ण रहते हैं ।।२।। यादवोंके स्वामी समुद्रविजय और उनकी रानी शिवा देवीके जब नेमिनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे तब पन्द्रह मास तक देवोंने रत्न-वृष्टि की थी ।।३।। उन्हीं रत्नोंमें-से ये रत्न लाया हूँ । वणिक् तथा मन्त्रियोंसे इस प्रकार यादवोंका माहात्म्य सुनकर जरासन्ध क्रोधसे लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया ।।४।। इस प्रकार यादवोंकी वृद्धि सुनकर राजा श्रेणिकने श्रुतज्ञान रूपी नेत्रके धारक गौतम गणधरको नमस्कार कर पूछा कि हे भगवन् ! महागुण रूपी किरणोंसे सुशोभित, समुद्रमें मणियोंकी राशिके समान समस्त लोकमें प्रख्यात अत्यधिक यादवोंमें जब जरासन्धने अनेक युद्धोंमें जिनका दृढ़ पराक्रम परिपूर्णता-को प्राप्त हो चुका था ऐसे कृष्णका नाम सुना तब उसकी क्या चेष्टा हुई ? सो कृपा कर कहिए ।।५–७।। तदनन्तर गौतम गणधर, श्रवण करनेके लिए उत्सुक राजा श्रेणिकके लिए दोनों नर- श्रेष्ठ—जरासन्ध और कृष्णका चरित इस प्रकार कहने लगे—।।८।।

यादवोंका समाचार जानकर जरासन्ध सन्धिसे विमुख हो गया और मुख्य मन्त्रियोंके साथ मन्त्र करने लगा ।।९।। उसने पूछा कि हे मन्त्रियो ! बताओ तो सही समुद्रमें बढ़ती हुई तरंगोंके समान भंगुर शत्रु आजतक उपेक्षित कैसे रहे आये ? ।।९–१०।। गुप्तचर रूपी नेत्रोंसे युक्त राजाके मन्त्री ही निर्मल चक्षु हैं फिर वे सामने खड़े रहकर स्वामीको तथा अपने-आपको क्यों धोखा देते हैं ? ।।११।। यदि महान् ऐश्वर्यसे मत्त रहनेवाले मैंने उन शत्रुओंको नहीं देखा तो आप लोगोंसे अदृष्ट कैसे रह गये ? आप लोगोंने उन्हें क्यों नहीं देखा ? ।।१२।। यदि शत्रु उत्पन्न होते ही महान् प्रयत्नपूर्वक नष्ट नहीं किये जाते हैं तो वे कोपको प्राप्त हुई बीमारियोंके समान दुःख देते हैं और उनका अन्त अच्छा नहीं होता ।।१३।। ये दुष्ट यादव मेरे जमाई कंस और भाई अपराजितको मारकर समुद्रकी शरणमें प्रविष्ट हुए हैं ।।१४।। यद्यपि वे प्रवेश करनेके अयोग्य समुद्रके मध्यभागमें स्थित हैं तथापि उपाय रूपी जलसे खींचकर मछलियोंके समान मेरे वध्य हैं ।।१५।। द्वारिकामें रहते हुए वे निर्भय क्यों हैं ? अथवा वे तभीतक निर्भय रह सकते हैं जबतक कि मेरी क्रोधाग्नि प्रज्वलित नहीं हुई है ।।१६।। इतने समयतक मुझे उनका पता नहीं था इसलिए अपने कुटुम्बीजनोंके साथ वे सुखसे रहे आये पर अब मुझे पता चल गया है इसलिए उनका सुख-पूर्वक रहना कैसे हो सकता है ? ।।१७।। तीव्र अपराध करनेवाले वे साम और दानके स्थान नहीं हैं इसलिए आपलोग एकान्तरूपसे उन्हें भेद और दण्डके ही पक्षमें रखिए ।।१८।।

तदनन्तर प्रधान रूपसे दण्डको ही उपाय समझनेवाले स्वामी जरासन्धको शान्त कर प्रसादके मार्गमें स्थित मन्त्रियोंने नम्रीभूत हो कहा कि हे नाथ ! हमलोग शत्रुओंकी द्वारिकामें होनेवाली महा वृद्धिको जानते हुए भी समय व्यतीत करते रहे इसका कारण सुनिए ।।१९–२०।। यादवोंके वंशमें उत्पन्न हुए श्री नेमिनाथ तीर्थंकर श्री कृष्ण और बलदेव ये तीन महानु-

भाव इतने बलवान् हैं कि मनुष्योंकी तो बात ही क्या देवोंके लिए भी उनका जीतना कठिन है ॥२१॥ स्वर्गावतारके समय जो रत्नोंकी वृष्टिसे पूजित हुआ था, जन्मके समय इन्द्रोंने सुमेरु पर्वतपर जिसका अभिषेक किया था और देव जिसकी सदा रक्षा करते हैं वह नेमि जिनेन्द्र युद्धमें आपके द्वारा कैसे जीता जा सकता है अथवा पृथिवी तलके समस्त राजा भी इकट्ठे होकर उसे कैसे जीत सकते हैं ? ॥२२–२३॥ शिशुपालके वधको आदि लेकर जो अनेक युद्ध हुए उनमें क्या आपने बलदेव और कृष्णकी उस लोकोत्तर सामर्थ्यको नहीं सुना ? ॥२४॥ प्रतापसे कीर्तिको उपार्जित करनेवाले महातेजस्वी पाण्डव तथा विवाह सम्बन्धसे अनुकूलता दिखलानेवाले अनेक विद्याधर इस समय जिनके पक्षमें हैं ॥२५॥ और जिनके साढ़े तीन करोड़ कुमार रणविद्यामें कुशल हैं वे यादव कैसे जीते जा सकते हैं ? ॥२६॥ नय मार्गके जानकार यदु किसी समय किसी अपेक्षा समुद्रके मध्य जाकर रहे थे। वे 'हमसे भयभीत हैं' ऐसा मत समझिए ॥२७॥ इसलिए हे देव ! जो दैव और कालके बलसे सहित हैं, देव जिनकी रक्षा करते हैं और जो सोते हुए सिंहके समान हैं ऐसे यादव उधर द्वारिकामें सुखसे रहें और इधर हम लोग भी समय व्यतीत करते हुए सुखसे रहें क्योंकि हे उत्तम आज्ञाके धारक ! प्रभो ! जिसमें अपना और परका समय सुखसे व्यतीत हो वही अवस्था प्रशंसनीय कही जाती है ॥२८-२९॥ आपके इस अवस्थासे रहनेपर भी यदि वे क्रोध करते हैं तो उनका प्रतिकार करनेके लिए पुरुषार्थको स्वीकृत करो ॥३०॥ इसे आदि लेकर मन्त्रियोंने यद्यपि हितकारी एवं सत्य निवेदन किया तथापि जरासन्धने उसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया सो ठीक ही है क्योंकि विनाशके समय हठी मनुष्य अपना हठ नहीं छोड़ता ॥३१॥

राजा जरासन्धने मन्त्रियोंको अनसुना कर शत्रुओंको शीघ्र ही कुपित करनेके लिए अजितसेन नामक दूतको द्वारिकापुरी भेजा ॥३२॥ पराक्रमी राजा जरासन्धने चतुरंग सेनाओंके स्वामी, एवं आज्ञाका उल्लंघन न करनेवाले पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओं, पर्वतों एवं मध्यदेशके निवासी राजाओंको 'आप लोग जल्दी आइए" यह कहकर दूत भेजे ॥३३-३४॥ दूतको देखते ही सत्यप्रतिज्ञ एवं हितको चाहनेवाले कर्ण, दुर्योधन आदि राजा, जरासन्धके पास आ पहुँचे ॥३५॥ उक्त राजा तथा महाबलवान् पुत्र आदि कुटुम्बीजन जिसके पीछे-पीछे चल रहे थे ऐसा जरासन्ध, खोटे निमित्तोंसे रोके जानेपर भी शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे चल पड़ा ॥३६॥

उधर जिस प्रकार पुण्य कार्य करनेवाला कुशल मनुष्य स्वर्ग जा पहुँचता है उसी प्रकार स्वामीके कार्यमें लगा हुआ अजितसेन दूत भी उत्तमोत्तम द्वारोंसे युक्त द्वारिका नगरीमें जा पहुँचा ॥३७॥ अनेक आश्चर्यकारी रचनाओंसे व्याप्त सुन्दर द्वारिकापुरीमें प्रवेशकर नगरवासीजनोंके द्वारा देखा गया वह दूत क्रम-क्रमसे राजमहलमें पहुँचा ॥३८॥ द्वारपालके द्वारा सूचना देनेपर उसने समस्त यादवोंसे व्याप्त एवं भोज और पाण्डवोंसे युक्त श्रीकृष्णकी सभामें प्रवेश किया ॥३९॥ प्रणाम करनेके बाद आगे दिलाये हुए आसनपर बैठकर उसने स्वामीके बलकी प्राप्तिसे उत्पन्न घमण्डसे इस प्रकार बोलना शुरू किया ॥४०॥

वह बोला कि राजाधिराज महाराज जरासन्ध जो आज्ञा देते हैं उसे समस्त यादव मन स्थिर कर सुनें ॥४१॥ उनका कहना है कि आप ही लोग स्पष्ट बताओ कि मैंने आपका क्या अनिष्ट किया है ? जिससे कि भयभीत हो आप लोग समुद्रके मध्यमें जा बसे हो ॥४२॥ यद्यपि अपराधी होनेके कारण भयभीत हो तुम लोगोंने दुर्गका आश्रय लिया है तथापि मुझसे तुम्हें भय नहीं है, तुम लोग आकर मुझे नमस्कार करो ॥४३॥ यदि दुर्गका बल पा तुम लोग बिना नमस्कार किये यहाँ रहोगे तो यह मैं समुद्रको पीकर सेनाओंके द्वारा तुम्हारी अभी हाल दुर्दशा कर दूँगा ॥४४॥ जबतक तुम्हारे यहाँ रहनेका पता नहीं था तभी तक तुम्हें काल और देशका बल, बल था पर आज

पता चल जानेपर काल और देशका बल कैसे रह सकता है ? ।।४५।।

दूतके उक्त वचन सुनकर कृष्ण आदि समस्त राजा कुपित हो उठे और भौंहोंसे मुखको कुटिल करते हुए कहने लगे कि जिसकी मृत्यु निकट आ पहुँची है ऐसा तुम्हारा राजा समस्त सेनाओंके साथ आ रहा है सो युद्धके द्वारा हम उसका सत्कार करेंगे। हम लोग संग्रामके लिए उत्कण्ठित हैं ।।४६-४७।। इस प्रकार कहकर यादवोंने दूतको विदा किया। वह उनके रूक्ष वचनरूपी वज्रसे ताड़ित होता हुआ द्वारिकासे चलकर अपने स्वामीके पास गया और सब समाचार कहकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ।।४८।। तदनन्तर दूतके चले जानेपर मन्त्र करनेमें निपुण विमल, अमल और शार्दूल नामक मन्त्रियोंने सलाह कर राजा समुद्रविजयसे इस प्रकार निवेदन किया ।।४९।।

हे राजन् ! क्योंकि साम, स्वपक्ष और परपक्षके लोगोंको शान्तिका कारण होगा इसलिए हम लोग जरासन्धके साथ सामका ही प्रयोग करें। यह जो कुमारोंका समूह आदि है वह सब स्वजनोंका समूह है। अपायबहुल युद्धमें इन सबकी कुशलताके प्रति सन्देह है ।।५०-५१।। जिस प्रकार हमारी सेनामें अमोघ बाणोंकी वर्षा करनेवाले योद्धा हैं उसी प्रकार जरासन्धकी सेना भी पृथिवीमें प्रसिद्ध है ।।५२।। युद्धके अग्रभागमें यदि एक भी स्वजन की मृत्यु हो जायेगी तो वह जिस प्रकार शत्रुके लिए दुःखका कारण होगी उसी प्रकार हमारे लिए भी दुःखका कारण हो सकती है ।।५३।। इसलिए सबकी भलाईके लिए साम ही प्रशंसनीय उपाय है। अतः अहंकारको छोड़कर साम-शान्तिके लिए जरासन्धके पास दूत भेजा जाये ।।५४।। हाँ, सामके द्वारा शान्त करनेपर भी यदि जरासन्ध शान्त नहीं होता है तो हम लोग फिर उसके अनुरूप कार्य करेंगे। इस प्रकार साम उपायके अवलम्बन करनेमें क्या दोष है ? ।।५५।।

इस प्रकार मन्त्र कर मन्त्रियोंने जब राजा समुद्रविजयसे कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'क्या दोष है ?' दूत भेजा जाये। इस प्रकार सलाह कर उन्होंने लोहजंघ कुमारको भिजवा दिया ।।५६।। कुमार लोहजंघ बहुत ही चतुर, शूर-वीर और नीतिरूपी नेत्रका धारक था। वह अपनी सेना ले जरासन्धके साथ सन्धि करनेके लिए चला ।।५७।। पूर्वमालव देशमें पहुँचकर उसने वहाँके वनमें अपनी सेनाका पड़ाव डाला, वहाँ साथ-साथ विचरनेवाले तिलकानन्द और नन्दन नामक दो मुनिराज आये। वे दोनों मुनि मासोपवासी थे और 'वनमें आहार मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नहीं' यह नियम ले वनमें विहार कर रहे थे। उन्हें देख कुमार लोहजंघने उन्हें पडगाह-कर आहार दिया और उसके फलस्वरूप पंचाश्चर्य प्राप्त किये ।।५८–५९।। उसी समयसे वह स्थान पृथिवीतलपर 'देवावतार' नामक तीर्थ बन गया और हजारों प्राणियोंके पाप शान्त होनेका कारण हो गया ।।६०।।

जरासन्ध यद्यपि सन्धि करनेके पक्षमें नहीं था तथापि समझानेमें चतुर दूत लोहजंघने जाकर उसे एकान्तमें समझाया ।।६१।। लोहजंघके वचनोंसे जरासन्ध बहुत प्रसन्न हुआ और उसने छह माह तकके लिए सन्धि स्वीकृत कर ली ।।६२।। तदनन्तर राजा जरासन्धसे सम्मान प्राप्त कर लोहजंघ द्वारिका वापस लौट आया ओर समुद्रविजय आदिके लिए सब समाचार सुनाकर कृतकृत्य हो सुखसे रहने लगा ।।६३।।

तदनन्तर युद्धकी तैयारीका ध्यान रख यादवोंने एक वर्ष शान्तिसे व्यतीत किया। इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण हो जानेपर महाप्रतिज्ञाको पूर्ण करनेवाला जरासन्ध बड़े-बड़े सामन्तोंके समूहसे युक्त तथा सेनारूपी सागरसे दिशाओंको व्याप्त करता हुआ बड़े-बड़े राजाओंके युद्धके योग्य कुरुक्षेत्रके मैदानमें आ पहुँचा ।।६४–६५।। अपनी सेनारूपी नदियोंके समूहसे भरे हुए कृष्णरूपी दूसरे सागर भी पहले ही आकर वहाँ आ जमे थे ।।६६।। उस समय

कृष्णके सम्बन्धी कितने ही दक्षिण-उत्तर और पश्चिमके राजा अपनी-अपनी समस्त सेनाओंके साथ आकर कृष्णसे आ मिले ॥६७॥ दशाह, सान्त्वना देनेवाले भोज और पाण्डव आदि बन्धुजन तथा अन्य अनेक उत्तमोत्तम प्रसिद्ध राजा श्रीकृष्णके हितकी इच्छा करते हुए आ मिले ॥६८॥ वहाँ राजा समुद्रविजय एक अक्षौहिणीके स्वामी थे, पुरुषोंमें अग्रेसर राजा उग्रसेन भी एक अक्षौहिणीका स्वामी था और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजा मेरु भी एक अक्षौहिणीका अधिपति था। राष्ट्रवर्धन देशका राजा आधी अक्षौहिणीका स्वामी था ॥६९-७०॥ सिंहल देशका राजा आधी अक्षौहिणीका प्रभु था और बलवान् राजा पद्मरथ भी उसीके समान—अर्ध अक्षौहिणी प्रमाण सेनासे युक्त था ॥७१॥ शकुनिका भाई वीर पराक्रमी चारुदत्त जो कि कृष्णके हितमें सदा तत्पर रहता था, एक चौथाई अक्षौहिणीका स्वामी था ॥७२॥ वर्वर, यमन, आभीर, काम्बोज और द्रविड़ आदिके अन्य शूर-वीर राजा कृष्णके पक्षमें आ मिले ॥७३॥

उस ओर चक्ररत्नके प्रभावसे भरतक्षेत्रको वश करनेवाले राजा जरासन्धको भी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ प्राप्त थीं ॥७४॥ घोड़े, हाथी, पैदल सैनिक तथा रथोंकी गणनासे युक्त अक्षौहिणी सेनाका प्रमाण इस प्रकार कहा गया है ॥७५॥ जिसमें नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ-सौ करोड़ पैदल सैनिक हों उसे एक अक्षौहिणी कहते हैं ॥७६॥ यादवोंमें कुमार नेमि, बलदेव और कृष्ण ये तीनों अतिरथ थे। ये तीनों भारतवर्षमें जितने अतिरथ थे उन सबको अतिक्रान्त कर उन सबमें श्रेष्ठ थे ॥७७॥ राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठिर, भीम, कर्ण, अर्जुन, रुक्मी, प्रद्युम्न, सत्यक, धृष्टद्युम्न, अनावृष्टि, शल्य, भूरिश्रवस्, राजा हिरण्यनाभ, सहदेव और सारण, ये सब राजा महारथ थे। ये सभी शस्त्र और शास्त्रार्थमें निपुण, पराङ्मुख, जीवोंपर दया करनेमें तत्पर, महाशक्तिमान् और महाधैर्यशाली थे ॥७८–८०॥ समुद्रविजयसे छोटे और वसुदेवसे बड़े अक्षोभ्य आदि आठ भाई, शम्ब, भोज, विदूरथ, द्रुपद, सिंहराज, शल्य, वज्र, सुयोधन, पौण्ड्र, पद्मरथ, कपिल, भगदत्त और क्षेमधूर्त ये सब समरथ थे तथा युद्धमें समान शक्तिके धारक थे ॥८१-८२॥ महानेमि, धर, अक्रूर, निषध, उल्मुक, दुर्मुख, कृतवर्मा, वराट, चारुकृष्ण, शकुनि, यवन, भानु, दुश्शासन, शिखण्डी, वाह्लीक, सोमदत्त, देवशर्मा, वक, वेणुदारी और विक्रान्त ये राजा अर्धरथ थे। ये सभी राजा आश्चर्यकारक युद्ध करनेवाले एवं धीर-वीर थे तथा युद्धसे कभी पराङ्मुख नहीं होते थे ॥८३-८५॥ इनके सिवाय कुल, मान और यशरूपी धनको धारण करनेवाले समस्त राजा रथी नामसे प्रसिद्ध थे। ये राजा यथायोग्य दोनों ही सेनाओंमें थे ॥८६॥

समुद्रोंके समान दोनों पक्षकी सेनाएँ जब पास-पास आ गयीं तब कुन्ती बहुत घबड़ायी। वह शीघ्र ही कर्णके पास गयी। वहाँ जानेमें उसे युधिष्ठिर आदि पुत्रोंने अनुमति दे दी थी। उस समय कन्या अवस्थाके पुत्र कर्णके ऊपर जो उसका अपार स्नेह था उससे उसका शरीर विवश हो रहा था। उसने कर्णके कण्ठसे लगकर रोते-रोते आदि, मध्य और अन्तमें जैसा कुछ हुआ वह सब अपना माता और पुत्रका सम्बन्ध बतलाया। उसने यह भी बतलाया कि मैंने तुझे उत्पन्न होते ही लोकलाजके भयसे कम्बलमें लपेटकर छोड़ दिया था। कर्ण कम्बलके वृत्तान्तको जानता था और यह भी जानता था कि कुरुवंशमें मेरा जन्म हुआ है। अब कुन्तीके कहनेसे उसने निश्चय कर लिया कि मैं कुन्ती और पाण्डुका पुत्र हूँ ॥८७–९०॥ अपने बन्धुजनोंका निर्णय कर कर्णने अपनी समस्त स्त्रियोंके साथ कुन्तीकी पूजा की। तदनन्तर आदर दिखाती हुई कुन्तीने अपने प्रथम पुत्र कर्णसे कहा कि हे पुत्र ! उठ, वहाँ चलें जहाँ तेरे सब भाई तथा श्रीकृष्ण आदि अपने अन्य आत्मीय जन तेरे लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं ॥९१-९२॥ हे पुत्र ! इस समय पृथिवीपर कुरुओंका स्वामी तू ही है और कृष्ण तथा बलदेवके लिए प्राणोंके समान प्रिय है ॥९३॥ तू राजा है, तेरा

छोटा भाई युधिष्ठिर तेरे ऊपर छत्र लगावेगा, भीम चँवर ढोरेगा, धनंजय मन्त्री होगा, सहदेव और नकुल तेरे द्वारपाल होंगे और नीतिपूर्वक निरन्तर हित करनेमें उद्यत मैं तेरी माता हूँ ॥९४-९५॥

इस प्रकार माताके वचन सुनकर यद्यपि कर्ण भाइयोंके स्नेहसे विवश हो गया परन्तु जरासन्धने उसके प्रति जो उपकार किये थे उनसे स्वामीके कार्यका विचार करता हुआ बोला कि लोकमें माता-पिता, और भाई-बान्धव अत्यन्त दुर्लभ हैं यह बात यद्यपि ऐसी ही है, परन्तु इस अवसरके उपस्थित होनेपर स्वामीका कार्य छोड़ भाइयोंका कार्य करना अनुचित है, अप्रशस्त है और इस समय जबकि युद्ध सामने है हास्यका कारण भी है ॥९६-९८॥ इस समय तो स्वामीका कार्य करता हुआ मैं इतना ही कर सकता हूँ कि युद्धमें भाइयोंको छोड़कर अन्य योद्धाओंके साथ युद्ध करूँ ॥९९॥ युद्ध समाप्त होनेपर यदि भाग्यवश हम लोग जीवित रहेंगे तो हे माँ! हमारा भाइयोंके साथ समागम अवश्य ही होगा। तू जा और भाई-बान्धवोंको इतनी खबर दे दे। इस प्रकार कहकर कर्णने माता कुन्तीकी पूजा की और कुन्तीने जाकर उसके कहे अनुसार सब कार्य किया ॥१००-१०१॥ उधर समान भूभागमें वर्तमान राजा जरासन्धकी सेनामें कुशल राजाओंने शत्रुओंको जीतनेके लिए चक्रव्यूहकी रचना की ॥१०२॥ उस चक्रव्यूहमें जो चक्राकार रचना की गयी थी उसके एक हजार आरे थे, एक-एक आरेमें एक-एक राजा स्थित था, एक-एक राजाके सौ-सौ हाथी थे, दो-दो हजार रथ थे, पाँच-पाँच हजार घोड़े थे और सोलह-सोलह हजार पैदल सैनिक थे ॥१०३-१०४॥ चक्रकी धाराके पास छह हजार राजा स्थित थे और उन राजाओंके हाथी, घोड़ा आदिका परिमाण पूर्वोक्त परिमाणसे चौथाई भाग प्रमाण था ॥१०५॥ कर्ण आदि पाँच हजार राजाओंसे सुशोभित राजा जरासन्ध स्वयं उस चक्रके मध्यभागमें जाकर स्थित था ॥१०६॥ गान्धार और सिन्ध देशकी सेना, दुर्योधनसे सहित सौ कौरव, और मध्यदेशके राजा भी उसी चक्रके मध्यभागमें स्थित थे ॥१०७-१०८॥ कुलके मानको धारण करनेवाले धीर, वीर, पराक्रमी पचास राजा अपनी-अपनी सेनाके साथ चक्रधाराकी सन्धियोंपर अवस्थित थे ॥१०९॥ आरोंके बीच-बीचके स्थान अपनी-अपनी विशिष्ट सेनाओंसे युक्त राजाओंसे सहित थे। इनके सिवाय व्यूहके बाहर भी अनेक राजा नाना प्रकारके व्यूह बनाकर स्थित थे ॥११०॥ इस प्रकार चतुर राजाओंके द्वारा रचित, अपनी सेनाके मनको सन्तुष्ट करनेवाला और शत्रुकी सेनाके मनमें भय उत्पन्न करनेवाला वह चक्रव्यूह उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१११॥

इधर रचना करनेमें निपुण वसुदेवको जब पता चला कि जरासन्धकी सेनामें चक्रव्यूहकी रचना की गयी है तब उसने भी चक्रव्यूहको भेदनके लिए गरुड़-व्यूहकी रचना कर डाली ॥११२॥ उदात्तचित्त, रणमें शूर-वीर तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करनेवाले पचास लाख यादव कुमार उस गरुड़के मुखपर खड़े किये गये ॥११३॥ धीर-वीर एवं स्थिरतासे पर्वतको जीतनेवाले अतिरथ, पराक्रमी बलदेव और श्रीकृष्ण उसके मस्तकपर स्थित हुए ॥११४॥ अक्रूर, कुमुद, वीर, सारण, विजय, जय, पद्म, जरत्कुमार, सुमुख, दुर्मुख, मदनवेगा पुत्र महारथ दृढमुष्टि, विदूरथ और अनावृष्टि ये जो वसुदेवके पुत्र थे वे बलदेव और कृष्णके रथकी रक्षा करनेके लिए उनके पृष्ठरक्षक बनाये गये। एक करोड़ रथोंसे सहित भोज, गरुड़के पृष्ठ भागपर स्थित हुआ ॥११५-११७॥ राजा भोजकी पृष्ठ-रक्षाके लिए धारण तथा सागर आदि अन्य अनेक रणवीर राजा नियुक्त हुए ॥११८॥ अपने महारथी पुत्रों तथा बहुत बड़ी सेनासे युक्त राजा समुद्रविजय उस गरुड़के दाहिने पंखपर स्थित हुए ॥११९॥ और उनकी आजू-बाजूकी रक्षा करनेके लिए चतुर, शत्रुओंको मारनेवाले सत्यनेमि, महानेमि, दृढ़नेमि, सुनेमि, महारथी नमि, जयसेन, महीजय, तेजसेन, जय, सेन, नय, मेघ, महाद्युति आदि दश हैं (यादव) तथा सैकड़ों अन्य प्रसिद्ध

राजा पचीस लाख रथोंके साथ स्थित हुए ॥१२०-१२२॥ बलदेवके पुत्र और युद्ध कार्यमें निपुण महामना पाण्डव गरुड़के बायें पक्षका आश्रय ले खड़े हुए ॥१२३॥ इन्हींके समीप उल्मुक, निषध, प्रकृतिद्युति, सत्यक, शत्रुदमन, श्रीध्वज, ध्रुव, राजा दशरथ, देवानन्द, शन्तनु, आनन्द, महानन्द, चन्द्रानन्द, महाबल, पृथु, शतधनु, विपृथु, यशोधन, दृढ़बन्ध और सब प्रकारके शस्त्रोंसे आकाशको भर देनेवाले अनुवीर्य स्थिति थे। ये सभी कुमार अनेक लाख रथोंसे युक्त थे, शस्त्र और अस्त्रोंमें परिश्रम करनेवाले थे, तथा युद्धमें कौरवोंके वधका निश्चय किये हुए थे ॥१२४-१२७॥ इनके पीछे राजा चन्द्रयश, सिंहल, वर्बर, कम्बोज, केरल, कुशल (कोसल) और द्रमिल देशोंके राजा तथा शान्तन साठ-साठ हजार रथ लेकर स्थित थे। इस प्रकार ये बलशाली राजा उस गरुड़की रक्षा करते हुए स्थित थे ॥१२८-१२९॥ इनके सिवाय अशित, भानु, युद्धका प्रेमी तोमर, संजय, अकल्पित, भानु, विष्णु, बृहद्ध्वज, शत्रुंजय, महासेन, गम्भीर, गौतम, वसुधर्मादि, कृतवर्मा, प्रसेनजित्, दृढवर्मा, विक्रान्त और चन्द्रवर्मा आदि राजा अपनी-अपनी सेनाओंसे युक्त हो श्रीकृष्णके कुलकी रक्षा करते थे ॥१३०-१३२॥ जिसके भीतर स्थित महारथी राजा उत्साह प्रकट कर रहे थे, ऐसा यह वसुदेवके द्वारा निर्मित गरुड़व्यूह, जरासन्धके चक्रव्यूहको भेदने की इच्छा कर रहा था ॥१३३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि दोनों पक्षके चतुर मनुष्योंने उस ओर यद्यपि दुःखसे प्रवेश करनेके योग्य चक्रव्यूह और इधर गरुड़-व्यूहकी रचना की थी तथापि जिनेन्द्र प्रदर्शित मार्गमें चलकर संचित किये हुए धर्मके प्रभावसे युद्धमें कोई एक नायक ही विजयी होगा ऐसा मैं समझता हूँ ॥१३४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें चक्रव्यूह और गरुड़व्यूहका वर्णन करनेवाला पचासवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५०॥

□

अथानन्तर इसी बीचमें वसुदेवका हित चाहनेवाले नीचे लिखे समस्त विद्याधर एक साथ मिलकर समुद्रविजयके पास आ पहुँचे ॥१॥ वसुदेवका श्वसुर अशनिवेग, हरिग्रीव, वराहक, सिंहदंष्ट्र, महापुरुषार्थी विद्युद्वेग, मानसवेग, विद्युद्दंष्ट्र, पिंगलगान्धार और नारसिंह इन्हें आदि लेकर आर्य और मातंगजातिके अनेक विद्याधर राजा श्रीकृष्णको भलाईके लिए आ पहुँचे और वसुदेवको आगे कर राजा समुद्रविजयसे जा मिले ॥२-४॥ समुद्रविजय आदि उनका यथायोग्य सम्मान कर हर्षितचित्त होते हुए कहने लगे कि अब हम लोग कृतार्थ हो गये ॥५॥ उन आगत विद्याधरोंने कहा कि इस युद्धसे वसुदेवके विरोधी विद्याधरोंमें बड़ा क्षोभ हो रहा है और वे जरासन्धकी कार्यसिद्धिके लिए आनेवाले हैं ॥६॥ यह सुनकर सब यादवोंने परस्पर सलाह की और विद्याधरोंको शान्त करनेके लिए उन्होंने उन्हीं विद्याधरोंके साथ प्रद्युम्न, शम्ब एवं अनेक पुत्रों-सहित वसुदेवको विजयार्धके लिए छोड़ा ॥७॥ वसुदेव भी भगवान् नेमिनाथ, कृष्ण, बलदेव आदिका आलिंगन कर कुछ पुत्रों, पोतों और विद्याधरोंके साथ शीघ्र ही विजयार्धकी ओर चल पड़े ॥८॥ उसी समय कुबेरके द्वारा समर्पित, दिव्य अस्त्रोंसे परिपूर्ण सिंहविद्याके दिव्य रथपर बलदेव आरूढ़ हुए ॥९॥ गरुडांकित पताकासे सुशोभित कृष्ण, नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे पूर्ण विजय प्राप्त करानेवाले गरुड़ विद्याके रथपर सवार हुए ॥१०॥ और भगवान् नेमिनाथ, इन्द्रके द्वारा प्रेषित, मातलि नामक सारथिसे युक्त, तथा अस्त्र-शस्त्रसे पूर्ण रथपर यादवोंकी कार्यसिद्धिके लिए आरूढ़ हुए ॥११॥ समुद्रविजय आदि समस्त राजाओंने वानरकी ध्वजासे युक्त, वसुदेवके शूर-वीर पुत्र अनावृष्टिको सेनापति बनाकर उसका अभिषेक किया ॥१२॥

उधर राजा जरासन्धने भी हर्षपूर्वक महाबलवान् राजा हिरण्यनाभको शीघ्र ही सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया ॥१३॥ दोनों ओरकी सेनाओंमें युद्धके समय बजनेवाली भेरियाँ और शंख गम्भीर शब्द करने लगे तथा दोनों ओरकी चतुरंग सेना युद्ध करनेके लिए परस्पर एक-दूसरेके सामने आ गयीं ॥१४॥ क्रोधकी अधिकतासे भौंहे टेढ़ी हो जानेके कारण जिनके मुख विषम हो रहे थे ऐसे दोनों पक्षके राजा परस्पर एक-दूसरेको ललकारकर यथायोग्य युद्ध करने लगे ॥१५॥ हाथी हाथियोंके साथ, घोड़े घोड़ोंके साथ, रथ रथोंके साथ और पैदल पैदलोंके साथ युद्ध करने लगे ॥१६॥ उस समय प्रत्यंचाओंके शब्द, रथोंकी चीत्कार, हाथियोंकी गर्जना और योद्धाओंके सिंहनादसे दशों दिशाएँ फटी-सी जा रही थीं ॥१७॥

तदनन्तर शत्रुसेनाको प्रबल और अपनी सेनाको नष्ट करती देख, बैल, हाथी और वानरकी ध्वजा धारण करनेवाले नेमिनाथ, अर्जुन और अनावृष्टि, कृष्णका अभिप्राय जान स्वयं युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए और चक्रव्यूहके भेदन करनेका निश्चय कर पूर्ण तैयारीके साथ आगे बढ़े ॥१८-१९॥ भगवान्‌ने शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेवाला अपना शाक्र (इन्द्रप्रदत्त) नामक शंख फूँका, अर्जुनने देवदत्त और सेनापति अनावृष्टिने बलाहक नामका शंख बजाया ॥२०॥ तदनन्तर इन शंखोंके दिगन्तव्यापी शब्द सुनकर अपनी सेनामें महान् उत्साह उत्पन्न हुआ और शत्रुकी सेनामें महाभय छा गया ॥२१॥ सेनापति अनावृष्टिने चक्रव्यूहका मध्य भाग, भगवान् नेमिनाथने दक्षिण भाग और अर्जुनने पश्चिमोत्तर भाग क्षण-भरमें भेद डाला ॥२२॥ सेनापति अनावृष्टिका जरासन्धके सेनापति हिरण्यनाभने, भगवान् नेमिनाथका रुक्मीने और धैर्यशाली दुर्योधनने अर्जुनका सामना किया ॥२३॥ तत्पश्चात् अहंकारपूर्ण सेनासे युक्त एवं पाँचों प्रकारके शस्त्र बरसानेवाले उन वीरोंका यथायोग्य महायुद्ध हुआ ॥२४॥ अप्सराओंके समूहके साथ आकाशमें दूर खड़ा कलहप्रिय नारद पुष्पवर्षा करता हुआ हर्षसे नाच रहा था ॥२५॥ भगवान् नेमिनाथने चिरकाल तक युद्ध करनेवाले रुक्मीको बाण-वर्षासे नीचे गिराकर हजारों शत्रुराजाओंको युद्धमें तितर-बितर कर दिया ॥२६॥ इसी प्रकार समुद्रविजय आदि भाइयों तथा उनके पुत्रोंने युद्धमें पहुँचकर शत्रुओंको

मृत्युके मुखमें पहुँचाया ॥२७॥ युद्धमें असंख्यात बाणोंकी वर्षा करनेवाले बलदेव और कृष्णके पुत्रोंने, पर्वतोंपर बहुत भारी जलवर्षा करनेवाले मेघोंके समान शत्रुओंके बीच इच्छानुसार क्रीड़ा की ॥२८॥ पुत्रोंसहित पाण्डवोंका धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ जो युद्ध हुआ था उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२९॥ युधिष्ठिर शल्यके साथ, भीम दुःशासनके साथ, सहदेव शकुनिके साथ और उलूक नकुलके साथ युद्ध कर रहे थे । ॥३०॥ तदनन्तर दुर्योधन और अर्जुन युद्ध करनेके लिए तत्पर हुए सो बाणोंके चढ़ानेमें चतुर उन दोनोंका भूतोंको भयभीत करनेवाला भयंकर युद्ध हुआ ॥३१॥ पाण्डवोंने युद्धमें धृतराष्ट्रके कितने ही पुत्रोंको मार डाला और दुर्योधन आदि कितने ही पुत्रोंको जीवित रहते हुए भी मृतकके समान कर दिया ॥३२॥ कर्णने, युद्धमें आये हुए कृष्णके पक्षके अनेक योद्धाओंको कान तक खींचे हुए बाणोंके समूहसे नष्ट कर डाला ॥३३॥ उस समय जब दोनों ओरसे अनेक प्राणियोंका क्षय करनेवाला द्वन्द्व युद्ध हो रहा था तब दोनों पक्षके सेनापतियोंका नाना प्रकारके शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध हुआ ॥३४॥ वीर हिरण्यनाभने युद्धमें यादव सेनापति अनावृष्टिको सात-सौ नब्बे बाणों द्वारा सत्ताईस बार घायल किया ॥३५॥ और बदला लेनेमें कुशल हिरण्यनाभने भी एक हजार बाणों द्वारा उसे सौ बार घायल किया ॥३६॥ रुधिरके पुत्र हिरण्यनाभने अनावृष्टि-की ऊँची ध्वजा छेद डाली और अनावृष्टिने शीघ्र ही उसके धनुष, छत्र और सारथिको भेद डाला ॥३७॥ हिरण्यनाभने दूसरा धनुष लेकर बाणोंकी वर्षा शुरू की और अनावृष्टिने परिघ फेंककर शत्रुका रथ गिरा दिया ॥३८॥ अब हिरण्यनाभ तलवार और ढाल हाथमें ले सामने आया तो अनावृष्टि भी तलवार और ढाल हाथमें ले रथसे उतरकर उसके सामने गया ॥३९॥ तदनन्तर प्रहारके बचाने और प्रहारके देनेकी बहुत भारी कुशलतासे युक्त दोनों सेनापतियोंमें भयंकर खड्ग-युद्ध होता रहा ॥४०॥

अन्तमें अनावृष्टिने हिरण्यनाभकी भुजाओंपर तलवारका घातक प्रहार किया जिससे उसकी दोनों भुजाएँ कट गयीं, छाती फट गयी और वह प्राणरहित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥४१॥ सेनापतिके मरनेपर उसकी चतुरंग सेना शीघ्र ही भागकर युद्धमें जरासन्धकी शरणके पहुँची ॥४२॥ तदनन्तर सैनिक लोग जिसकी स्तुति कर रहे थे ऐसा अनावृष्टि, सन्तुष्ट हो शीघ्र ही रथपर बैठकर बलदेव और कृष्णके समीप गया ॥४३॥ बलदेव और श्रीकृष्णने चक्रव्यूहको भेदनेवाले महापराक्रमी नेमिनाथ अर्जुन और अनावृष्टिका आलिंगन किया ॥४४॥ तदनन्तर उधर सूर्यास्त होनेपर विषादरूपी विषसे दूषित जरासन्धकी सेना शीघ्र ही अपने निवासस्थानपर चली गयी और इधर जिनराज श्री नेमिनाथ भगवान्की लक्ष्मीसे युक्त यादवोंकी सेना, शत्रुके नाशसे अत्यधिक हर्षित एवं लहराते हुए समुद्रके समान झूमती हुई अपने निवासस्थानपर आ गयी ॥४५॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें हिरण्यनाभके वधका वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५१॥

□

सर्ग- ५२

दूसरे दिन जब संसारका मध्य भाग सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हो गया तब जरासन्ध और कृष्ण युद्ध करनेके लिए तैयार हो अपनी-अपनी सेनाओंके साथ बाहर निकले ॥१॥ तदनन्तर जो पहलेके समान व्यूहोंकी रचना कर स्थित थीं और जिनमें अनेक राजा लोग यथास्थान स्थित थे ऐसी दोनों सेनाएँ परस्पर एक दूसरेका घात करनेके लिए उद्यत हुईं ॥२॥ युद्धके मैदानमें आकर रथपर बैठा जरासन्ध, यादवोंको देखकर अपने समीपवर्ती हंसक मन्त्रीसे बोला कि हे हंसक ! यादवोंमें प्रत्येकके नाम-चिह्न आदि तो बता जिससे मैं उन्हींको देखूं अन्य लोगोंके मारनेसे क्या लाभ है ? इस प्रकार कहनेपर हंसक बोला—॥३-४॥

हे स्वामिन् ! जिसमें सुवर्णमयी सांकलोंसे युक्त फेनके समान सफेद घोड़े जुते हुए हैं और जिसपर गरुड़की ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह सूर्यके रथके समान देदीप्यमान कृष्णका रथ दिखाई दे रहा है ॥५॥ जो सुवर्णमयी सांकलोंसे युक्त तोतेके समान हरे रंगके घोड़ोंसे युक्त है तथा जिसपर बैलकी पताका फहरा रही है ऐसा यह शूर-वीर अरिष्टनेमिका रथ है ॥६॥ हे राजन् ! जो कृष्णकी दाहिनी ओर रीठाके समान वर्णवाले घोड़ोंसे जुता हुआ है तथा जिसपर तालकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह बलदेवका रथ सुशोभित हो रहा है ॥७॥ इधर यह कृष्णवर्णके घोड़ोंसे युक्त एवं वानरकी ध्वजासे सहित जो बड़ा भारी रथ दिखाई दे रहा है वह सेनापतिका रथ है ॥८॥ उधर सुवर्णमयी सांकलोंसे युक्त, गरदनके नीले-नीले बालोंवाले घोड़ोंसे जुता हुआ यह पाण्डु राजाके पुत्र युधिष्ठिरका रथ सुशोभित हो रहा है ॥९॥ जो चन्द्रमाके समान सफेद एवं वायुके समान वेगशाली घोड़ोंसे जुता हुआ है तथा जिसपर हाथीकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह बड़ा भारी अर्जुनका रथ है ॥१०॥ जो नील कमलके समान नीले-नीले घोड़ोंसे युक्त है तथा जिसपर मणिमय और सुवर्णमय आभूषण सुशोभित हैं ऐसा यह भीमसेनका रथ है ॥११॥ वह यादवोंकी सेनाके बीचमें लाल रंगके घोड़ोंसे जुता हुआ तथा बड़े-बड़े सिंहोंकी ध्वजासे युक्त समुद्र-विजयका रथ सुशोभित हो रहा है ॥१२॥ वह कुमार अक्रूरका रथ सुशोभित है जो कदलीकी ध्वजासे सहित है, बलवान् घोड़ोंसे युक्त है तथा सुवर्ण और मूंगाओंसे देदीप्यमान हो रहा है ॥१३॥ तीतरके समान मटमैले घोड़ोंसे युक्त रथ सत्यकका है और कुमुदके समान सफेद घोड़ोंसे जुता रथ महानेमिकुमारका है ॥१४॥ जो सुवर्णमय विशाल दण्डकी पताकासे शोभित है तथा तोतेकी चोंचके समान लाल-लाल घोड़ोंसे युक्त है ऐसा यह भोजका महारथ है ॥१५॥ जो सुवर्णमय पलानसे युक्त जुते हुए घोड़ोंसे सुशोभित है ऐसा वह हरिणकी ध्वजाके धारक जरत्कुमारका रथ सुशोभित हो रहा है ॥१६॥ वह जो काम्बोजके घोड़ोसे युक्त, सूर्यके रथके समान देदीप्यमान सफेद रंगका रथ सुशोभित हो रहा है वह राजा सोमके पुत्र सिंहलका रथ है ॥१७॥ जो सुवर्णमय आभूषणोंसे चित्र-विचित्र शरीरके धारक कुछ-कुछ लाल रंगके घोड़ोंसे जुता हुआ है तथा जिसपर मत्स्यकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह मरुराजका रथ सुशोभित हो रहा है ॥१८॥ यह जो कमलके समान आभावाले घोड़ोंसे जुता, सेनाओंके आगे स्थित है वह रणवीर राजा पद्मरथका रथ सुशोभित है ॥१९॥ वह जो सुवर्णमयी झूलोंसे युक्त कबूतरके समान रंगवाले तीन वर्षके

घोड़ोंसे जुता, एवं कमलकी ध्वजासे सहित रथ सुशोभित हो रहा है वह सारणका है ॥२०॥ जो सफेद और लाल रंगके पांच वर्षके घोड़ोंसे जुता है ऐसा वह नग्नजित्के पुत्र मेरुदत्तका रथ प्रकाशमान है ॥२१॥ जो पांच वर्णके घोड़ोंसे जुता है, सूर्यके समान देदीप्यमान है और जिसपर कलशकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह कुमार विदूरथका वेगशाली रथ सुशोभित है ॥२२॥ इस प्रकार बलवान् यादवोंके रथ सब रंगके घोड़ोंसे सहित हैं तथा वे सैकड़ों या हजारोंकी संख्यामें हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥२३॥ अपने पक्षके शूर-वीर राजाओं तथा समस्त राजकुमारों-के नाना चिह्नोंसे युक्त रथोंको आप यथायोग्य जानते ही हैं ॥२४॥ नाना देशोंसे आये हुए अनेक क्षत्रियोंसे युक्त आपका यह व्यूह अत्यन्त शोभित हो रहा है तथा शत्रु सेनाके लिए भय उत्पन्न कर रहा है ॥२५॥

यह सुनकर जरासन्धने अपने सारथिसे कहा कि हे सारथि! तू मेरा रथ शीघ्र ही यादवोंकी ओर ले चल ॥२६॥ तदनन्तर सारथिने रथ आगे बढ़ाया और जरासन्ध लगातार बाणोंकी वर्षासे समस्त यादवोंको आच्छादित करने लगा ॥२७॥ रथ आदि वाहनोंपर स्थित क्रोधसे भरे जरासन्धके पुत्र भी यादवोंके साथ यथायोग्य रणक्रीड़ा करने लगे ॥२८॥ राजा जरासन्धका सबसे बड़ा पुत्र कालयवन जो आये हुए साक्षात् यमराजके समान जान पड़ता था, मलय नामक हाथीपर सवार हो अधिक युद्ध करने लगा ॥२९॥ इसके सिवाय सहदेव, द्रुमसेन, द्रुम, जलकेतु, चित्रकेतु, धनुर्धर, महीजय, भानु, कांचनरथ, दुर्धर, गन्धमादन, सिंहांक, चित्रमाली, महीपाल, बृहद्ध्वज, सुवीर, आदित्यनाग, सत्यसत्त्व, सुदर्शन, धनपाल, शतानीक, महाशुक्र, महावसु, वीराख्य, गंगदत्त, प्रवर, पार्थिव, चित्रांगद, वसुगिरि, श्रीमान्, सिंहकटि, स्फुट, मेघनाद, महानाद, सिंहनाद, वसुध्वज, वज्रनाभ, महाबाहु, जितशत्रु, पुरन्दर, अजित, अजितशत्रु, देवानन्द, शतद्रुत, मन्दर, हिमवान्, विद्युत्केतु, माली, कर्कोटक, हृषीकेश, देवदत्त, धनंजय, सगर, स्वर्णबाहु, मघवान्, अच्युत, दुर्जय, दुर्मुख, वासुकि, कम्बल, त्रिशिरस्, धारण, माल्यवान्, सम्भव, महापद्म, महानाग, महासेन, महाजय, वासव, वरुण, शतानीक, भास्कर, गरुत्मान्, वेणुदारी, वासुवेग, शशिप्रभ, वरुण, आदित्यधर्मा, विष्णुस्वामी, सहस्रदिक्, केतुमाली, महामाली, चन्द्रदेव, बृहद्वलि, सहस्ररश्मि और अर्चिष्मान् आदि जरासन्धके पुत्र प्रहार करने लगे ॥३०-४०॥ गिरते हुए मनुष्य, हाथी, घोड़े और रथोंसे व्याप्त युद्धमें कालयवनको वसुदेवके पुत्रोंने घेर लिया ॥४१॥ तदनन्तर यशका संग्रह करनेवाले एवं एक-दूसरेके प्रति निन्दात्मक वाक्योंका प्रयोग करनेवाले उन कुमारों और कालयवनका भयंकर संग्राम हुआ। संग्रामके समय वे अहंकारवश व्यर्थकी डींगे भी हांक रहे थे

॥४२॥ कालयवनने चक्र, नाराच आदि शस्त्रोंसे कितने ही कुमारोंके शिर छेद डाले जिससे खूनके लथ-पथ उन कटे हुए शिरोंसे पृथ्वी ऐसी सुशोभित होने लगी मानो कमलोंसे ही सुशोभित हो रही हो ॥४३॥ यह देख कुमार सारणने क्रोधमें आकर एक ही तलवारके प्रहारसे कालयवनको

चिरकालके लिए यमराजके घर भेज दिया ॥४४॥ जरासन्धके शेष शूर-वीर पुत्र युद्धके लिए सामने आये तो अर्धचन्द्र बाणोंके द्वारा शिर काटनेवाले कृष्णने उन्हें मृत्युके मुखमें पहुँचा दिया ॥४५॥

तदनन्तर स्वयं जरासन्ध, क्रोधवश धनुष तानकर रथपर सवार हो, रथपर बैठे हुए कृष्णके सामने दौड़ा ॥४६॥ दोनों ही एक-दूसरेके प्रति तिरस्कारके शब्द कह रहे थे तथा दोनों ही उत्कट वीर्यके धारक थे इसलिए दोनोंमें स्वाभाविक एवं दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥४७॥ उधर जरासन्धने श्रीकृष्णको मारनेके लिए शीघ्र ही अग्निके समान देदीप्यमान प्रभाका धारक नागास्त्र छोड़ा ॥४८॥ इधर सावधान चित्तके धारक कृष्णने नागास्त्रको नष्ट करनेके लिए गारुड़ अस्त्र छोड़ा और उसने शीघ्र ही आगे बढ़कर उस नागास्त्रको ग्रस लिया ॥४९॥ जरासन्धने प्रलयकालके मेघके समान भयंकर वर्षा करनेवाला संवर्तक अस्त्र छोड़ा तो श्रीकृष्णने भी महाश्वसन नामक अस्त्रके द्वारा तीव्र आँधी चलाकर उसे दूर कर दिया ॥५०॥ अस्त्रोंके प्रयोगको जाननेवाले जरासन्धने वायव्य अस्त्र छोड़ा तो श्रीकृष्णने अन्तरीक्ष अस्त्रके द्वारा उसका तत्काल निराकरण कर दिया ॥५१॥

जरासन्धने जलानेमें समर्थ देदीप्यमान आग्नेय बाण छोड़ा तो कृष्णने वारुणास्त्रके द्वारा उसे दूर कर दिया ॥५२॥ क्रोधमें आकर जरासन्धने वैरोचन शस्त्र छोड़ा तो श्रीकृष्णने माहेन्द्र अस्त्रसे उसे दूरसे ही नष्ट कर दिया ॥५३॥ शत्रुने युद्धमें राक्षसबाण छोड़ा तो कृष्णने शीघ्र ही नारायण अस्त्र चलाकर शत्रुओंके छक्के छुड़ा दिये ॥५४॥ जरासन्धने तामसास्त्र चलाया तो कृष्णने भास्कर अस्त्रके द्वारा उसे नष्ट कर दिया। और जरासन्धने अश्वग्रीव नामक अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र चलाया तो कृष्णने ब्रह्मशिरस नामक शस्त्रसे उसे तत्काल रोक दिया ॥५५॥ इनके सिवाय शत्रु-ने और भी दिव्य अस्त्र चलाये परन्तु कृष्ण उन सबका निराकरण कर ज्योंके-त्यों स्थिर खड़े रहे— उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ ॥५६॥

इस प्रकार जब जरासन्धका समस्त प्रयास व्यर्थ हो गया तब उसने धनुष पृथ्वीपर फेंक दिया और हजार यक्षोंके द्वारा रक्षित चक्ररत्नका चिन्तवन किया ॥५७॥ चिन्तवन करते ही सूर्यके समान देदीप्यमान तथा दिशाओंके समूहको प्रकाशित करनेवाला चक्ररत्न जरा-सन्धके हाथमें आकर स्थित हो गया ॥५८॥ नाना शस्त्रोंके व्यर्थ हो जानेसे जिसका क्रोध बढ़ रहा था तथा जो भृकुटिके भंगसे अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था, ऐसे जरासन्धने घुमाकर शीघ्र ही वह चक्ररत्न कृष्णकी ओर फेंका ॥५९॥ जिसने अपनी कान्तिसे सूर्यको फीका कर दिया था ऐसे आकाशमें आते हुए उस चक्ररत्नको नष्ट करनेके लिए कृष्णपक्षके अन्य समस्त राजाओंने भी यथायोग्य चक्र छोड़े ॥६०॥ श्रीकृष्ण शक्ति तथा गदा आदि लेकर, बलदेव हल और मूसल लेकर, भीमसेन गदा लेकर, अस्त्रविद्याके राजा अर्जुन नाना अस्त्र लेकर, सेनापति-अनावृष्टि परिघ लेकर और युधिष्ठिर प्रकट हुए साँपके समान शक्तिको लेकर आगे आये ॥६१–६२॥ समुद्रविजय तथा अक्षोभ्य आदि भाई अत्यन्त सावधान होकर उस चक्ररत्नकी ओर महा अस्त्र छोड़ने लगे ॥६३॥ किन्तु भगवान् नेमिनाथ, अवधि-ज्ञानके द्वारा आगामी कार्यकी गतिविधिको अच्छी तरह जानते थे इसलिए वे कृष्णके साथ ही चक्ररत्नके सामने खड़े रहे ॥६४॥ राजाओंके अस्त्रसमूह जिसे रोक रहे थे तथा जिससे देदीप्यमान तिलगोंके समूह निकल रहे थे ऐसा वह चक्ररत्न मित्रके समान धीरे-धीरे पास आया और भगवान् नेमिनाथके साथ-साथ कृष्णकी प्रदक्षिणा देकर शंख, चक्र और अंकुशसे चिह्नित कृष्णके दाहिने हाथमें स्थित हो गया ॥६५–६६॥ उसी समय आकाशमें दुन्दुभि बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी, और 'यह नौवाँ नारायण प्रकट हुआ है' इस प्रकार देव कहने लगे ॥६७॥ अनुकूल एवं सुगन्धित वायु बहने लगी तथा वीर यादवोंके अस्त्र उनके हृदयोंके साथ-साथ उच्छ्वसित हो उठे ॥६८॥ संग्राममें कृष्णको चक्र हाथमें लिये देख, जरासन्ध इस प्रकार

विचार करने लगा कि हाय यह चक्र चलाना भी व्यर्थ हो गया ॥६९॥ चक्ररत्न और पराक्रमके समूहसे जिसने समस्त दिशाओंको व्याप्त कर रखा था तथा जो तीन खण्डका शक्तिशाली अधिपति था ऐसा मैं आज पौरुषहीन हो गया—मेरा पुरुषार्थ खण्डित हो गया ॥७०॥ 'जबतक दैवका बल प्रबल है तभी तक चतुरंग सेना, काल, पुत्र, मित्र एवं पुरुषार्थ कार्यकारी होते हैं ॥७१॥ और दैवके निर्बल होनेपर काल तथा पुरुषार्थ आदि निरर्थक हो जाते हैं....' यह जो विद्वानों द्वारा कहा जाता है वह सत्य ही कहा जाता है रंचमात्र भी अन्यथा नहीं है ॥७२॥ मैं गर्भसे ही ईश्वर था और बड़ेसे-बड़े लोगोंके लिए अलंघनीय था फिर भी गर्भके प्रारम्भसे ही क्लेश उठानेवाले एक छोटे-से व्यक्तिके द्वारा क्यों जीता जा रहा हूँ? ॥७३॥ यदि ऐसा साधारण व्यक्ति भी, विधाताके द्वारा मेरा जीतनेवाला देखा गया था तो फिर इसे बाल्य अवस्थामें गोकुलमें नाना क्लेश क्यों उठाने पड़े? इसलिए विधिकी इस चेष्टाको धिक्कार है ॥७४॥ जो लोगोंको अन्धा बनानेमें दक्ष है, धीर-वीर मनुष्योंके भी धैर्यको नष्ट करनेवाली है तथा जो वेश्याके समान अन्य पुरुषके पास जानेकी इच्छा रखती है ऐसी इस लक्ष्मीको धिक्कार है ॥७५॥ इत्यादि विचार करते-करते जरासन्धको यद्यपि यह निश्चय हो चुका था कि हमारा मरणकाल आ चुका है तथापि वह प्रकृतिसे निर्भय होनेके कारण कृष्णसे इस प्रकार बोला ॥७६॥ अरे गोप! तू चक्र चला, व्यर्थ ही समयकी उपेक्षा क्यों कर रहा है? अरे मूर्ख! समयकी उपेक्षा करनेवाला दीर्घसूत्री मनुष्य अवश्य ही नष्ट होता है ॥७७॥ जरासन्धके इस प्रकार कहनेपर स्वभावसे विनयी कृष्णने उससे कहा कि मैं चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका हूँ इसलिए आजसे मेरे शासनमें रहिए ॥७८॥ यद्यपि यह स्पष्ट है कि तुम हमारा अपकार करनेमें प्रवृत्त हो तथापि हम नमस्कार मात्रसे प्रसन्न हो तुम्हारे अपकारको क्षमा किये देते हैं ॥७९॥ श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर अहंकारसे भरे हुए जरासन्धने जोर देकर कहा—अरे यह चक्र तो मेरे लिए अलात चक्रके समान है तू इससे अहंकारको क्यों प्राप्त हो गया है? ॥८०॥ अथवा जिसने कभी कल्याण देखा ही नहीं ऐसा क्षुद्र मनुष्य थोड़ा-सा वैभव पाकर ही अहंकार करने लगता है और जिसने कल्याण देखा है ऐसा महान् पुरुष बहुत भारी वैभव पाकर भी अहंकार नहीं करता ॥८१॥ मैं तुझे यादवोंके साथ, इस चक्रके साथ तथा तेरी सहायता करनेवाले अन्य राजाओंके साथ शीघ्र ही समुद्रमें फेंकता हूँ ॥८२॥ जरासन्धके इस प्रकार कहनेपर चक्रवर्ती कृष्णने कुपित हो घुमाकर चक्ररत्न छोड़ा और उसने शीघ्र ही जाकर जरासन्धकी वक्षःस्थलरूपी भित्तिको भेद दिया ॥८३॥ वह चक्ररत्न जरासन्धको मारकर क्षण-भरमें पुनः कृष्णके हाथमें आ गया सो ठीक ही है क्योंकि भेजे हुए व्यक्तिके कृतकार्य हो चुकनेपर कालक्षेप करना निष्फल है ॥८४॥ कृष्णने यादवोंके मनको हरण करनेवाला अपना पांचजन्य शंख फूँका और भगवान् नेमिनाथ, अर्जुन तथा सेनापति अनावृष्टिने भी अपने-अपने शंख फूँके ॥८५॥ क्षोभको प्राप्त समुद्रके शब्दके समान बाजोंके गम्भीर शब्द होने लगे और चारों ओर अभय घोषणाएँ प्रकट की गयीं ॥८६॥ जिससे स्वसेना और परसेना अपना-अपना भय छोड़ बिना कुछ कहे ही—चुपचाप आकर श्रीकृष्णकी आज्ञाकारिणी हो गयीं ॥८७॥ राजा दुर्योधन, द्रोण तथा दुःशासन आदिने संसारसे विरक्त हो मुनिराज विदुरके समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥८८॥ राजा कर्णने भी रणदीक्षाके बाद सुदर्शन नामक उद्यानमें दमवर मुनिराजके समीप मोक्षफलको देनेवाली दीक्षा ग्रहण कर ली ॥८९॥ राजा कर्णने जिस स्थानपर सुवर्णके अक्षरोंसे भूषित कर्णकुण्डल छोड़े थे उस स्थानको लोग कर्ण-सुवर्ण कहने लगे ॥९०॥ 'क्या मैं अपने स्वामीकी सेवा करूँ?' यह पूछकर मातलि अपने स्वामी इन्द्रके पास चला गया और यादव भी अन्य राजाओंके साथ अपने-अपने शिविरमें चले गये ॥९१॥

उस समय सूर्य अस्त हो गया और सन्ध्याकी लालिमा दशों दिशाओंमें फैल गयी, उससे

ऐसा जान पड़ने लगा मानो संग्राममें श्रीकृष्ण द्वारा मारे गये जरासन्धको देखकर सहृदय सूर्य पहले तो शोकके कारण खूब रोया इसलिए उसका मुख जपाकुसुमके समान लाल हो गया और पश्चात् जलांजलि देनेकी इच्छासे उसने समुद्रमें मज्जन किया है ॥९२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि ये संसारके प्राणी, शुभ कर्मका उदय होनेपर बड़ेसे-बड़े पुरुषोंपर आक्रमण करनेवाली सम्पदा-को प्राप्त होते हैं और शुभ कर्मका उदय नष्ट होनेपर विपत्तियाँ भी भोगते हैं इसलिए हे भक्त-जनो ! जिनमतमें स्थिर हो मोक्ष-प्राप्तिमें कारणभूत निर्मल तप करो ॥९३॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें जरासन्धके वधका वर्णन करनेवाला बावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५२॥

□

सर्ग- ५३

अथानन्तर दूसरे दिन, शत्रुओंके द्वारा अलंघ्य महातेजके द्वारा दिशाओंके मुखको अलंकृत करनेवाले कृष्णके समान जब सूर्य उदयको प्राप्त हुआ तब इधर यादवोंकी सेनामें सुभटोंके घाव अच्छे किये गये और उधर जरासन्ध आदि राजाओंके अन्तिम संस्कार सम्पन्न किये गये ॥१-२॥ एक दिन समुद्रविजय आदि राजा, सभामण्डपमें कृष्णके साथ यथास्थान बैठे हुए वसुदेवके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥३॥ वे परस्परमें चर्चा कर रहे थे कि पुत्र और नातियोंके साथ विजयार्ध पर्वतपर गये हुए वसुदेवको बहुत समय हो गया पर आज तक उनकी कुशलताका समाचार क्यों नहीं आया ? ॥४॥ इस प्रकार जो परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, जिनके हृदय गाय और बछड़ेके समान स्नेहसे सराबोर थे एवं जो बालक और वृद्धजनोंसे युक्त थे ऐसे सब राजा यथास्थान बैठे ही थे कि उसी समय आकाशमें चमकती हुई बिजलीके समान, अपने उद्योत से दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली अनेक विद्याधरियाँ वेगवती नागकुमारीके साथ वहाँ आ पहुँचीं और आशीर्वाद देती हुई कहने लगीं कि आप लोगोंको गुरुजनोंने जो आशीर्वाद दिये थे वे आज सब सफल हो गये। इधर पुत्रने जरासन्धको नष्ट किया है तो उधर पिताने विद्याधरोंको नष्ट कर दिया है ॥५-७॥ पुत्र और नातियोंसे सहित तथा आप लोगोंके स्नेहसे युक्त वसुदेव अच्छी तरह हैं और अपनेसे ज्येष्ठ जनोंके चरणोंमें प्रणाम और पुत्रोंके प्रति आलिंगनका सन्देश कह रहे हैं ॥८॥ विद्याधरियोंके मुखसे यह समाचार सुनकर हर्षकी अधिकतासे जिनके रोमांच निकल आये थे ऐसे सब राजाओंने उनसे पूछा कि वसुदेवने विद्याधरोंको किस प्रकार जीता था ? ॥९॥ यह सुन वसुदेवके हित करनेमें उद्यत रहनेवाली नागकुमारी देवीने कहा कि वसुदेवने रणमें जो सामर्थ्य दिखायी उसे ध्यानसे सुनिए ॥१०॥ युद्धमें निपुण वसुदेवने विजयार्ध पर्वतपर जाकर अपने श्वसुर और साले आदि विद्याधरोंसे मिलकर यहाँ आनेवाले विद्याधरोंको रोका ॥११॥ तदनन्तर समग्र सेनासे युक्त उन विद्याधरोंका जब वसुदेवने रणमें सामना किया तो वे जरासन्धकी सहायता छोड़कर स्वयं युद्धमें संलग्न हो गये ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् वहाँ जब दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा तब लोगोंको प्रलयकी आशंका होने लगी और उनके चित्त भयसे व्याकुल हो उठे ॥१३॥ हाथी, घोड़े, रथ और प्यादोंका द्वन्द्व युद्ध होनेपर दोनों सेनाएँ परस्पर न्यायपूर्वक एक-दूसरेका वध करने लगीं ॥१४॥ वसुदेव, उनके पुत्र, अभिमानी प्रद्युम्न, शम्ब तथा पक्षके अनेक विद्याधर ये सब शस्त्ररूपी ज्वालाओंको धारण कर शत्रुरूपी राजाओंके समूहको भस्म कर रहे थे एवं बड़ी चपलताके साथ सामने आये थे इसलिए दावानलके समान जान पड़ते थे ॥१५-१६॥ इसी अवसरपर सन्तुष्ट हुए देवोंने आकाशमें यह घोषणा की कि वसुदेवका पुत्र कृष्ण नौवाँ नारायण हुआ है और उसने चक्रधारी होकर अपने गुणोंमें द्वेष रखनेवाले प्रतिशत्रु जरासन्धको उसीके चक्रसे युद्धमें मार डाला है। यह कहकर देवोंने आकाशसे चाँदनीके समान नानारत्नमयी वृष्टि वसुदेवके रथपर करनी प्रारम्भ कर दी ॥१७-१९॥ तदनन्तर शत्रु विद्याधर देवोंकी उक्त वाणी सुनकर भयभीत हो गये और जहाँ-तहाँसे एकत्रित हो वसुदेवकी शरणमें आने लगे ॥२०॥ उन्होंने वसुदेवके पास आकर उनके पुत्रोंको

एवं प्रद्युम्न कुमार और शम्ब कुमारको अपनी अनेक कन्याएँ प्रदान कीं ॥२१॥ हम लोग वसुदेवकी प्रेरणा पाकर यह कुशल समाचार सुनानेके लिए आपके पास आयी हैं ॥२२॥ नारायणकी भक्तिसे प्रेरित हुए अनेक विद्याधर राजा, नाना प्रकारके उपहार हाथमें लिये वसुदेवके साथ आ रहे हैं ॥२३॥ इस प्रकार वनवती (नागकुमारी) देवी जबतक उन्हें यह इष्ट समाचार सुनाती है तबतक विद्याधरोंके विमानोंके समूहसे आकाश व्याप्त हो गया ॥२४॥ वसुदेवके अनुयायी विद्याधरोंने विमानोंसे उतरकर बलदेव और कृष्णको नमस्कार किया तथा नाना प्रकारके उपहार समर्पित किये ॥२५॥ तदनन्तर भक्तिसे भरे बलदेव और नारायणने पिताको नमस्कार किया और पिताने भी दोनोंका आलिंगन कर उनकी बहुत प्रशंसा की ॥२६॥ वसुदेवने समुद्रविजय आदि समस्त गुरुजनोंको प्रणाम किया एवं प्रद्युम्न आदिने भी गुरुजनों एवं भाई-बान्धवोंको यथायोग्य नमस्कार किया ॥२७॥ नारायण और बलभद्रने यथायोग्य जिनका सत्कार किया था ऐसे समस्त विद्याधरोंने अपना-अपना जन्म सफल माना ॥२८॥

तदनन्तर जिनके सर्व मनोरथ पूर्ण हो गये थे तथा जो हर्षसे परिपूर्ण थे ऐसे बलदेव और नारायणने समस्त सेनाको साथ ले पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥२९॥ जरासन्धके मारे जानेपर यादवोंने जिस स्थानपर आनन्द-नृत्य किया था वह स्थान आनन्दपुरके नामसे प्रसिद्ध और जैन-मन्दिरोंसे व्याप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर सब रत्नोंसे सहित नारायणने, चक्ररत्नकी पूजा कर देव, असुर और मनुष्योंसे सहित दक्षिण भरतक्षेत्रको जीता ॥३१॥ लगातार आठ वर्षों तक प्रतिदिन मनोवांछित पदार्थोंने जिनकी सेवा की थी और जीतने योग्य समस्त राजाओंको जिन्होंने जीत लिया था ऐसे श्रीकृष्ण अब कोटिक शिलाकी ओर गये ॥३२॥ चूंकि उस उत्कृष्ट शिलापर अनेक करोड़ मुनिराज सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए हैं इसलिए वह पृथ्वीमें कोटिक शिलाके नामसे प्रसिद्ध है ॥३३॥ श्रीकृष्णने सर्व-प्रथम उस पवित्र शिलापर पूजा की और उसके बाद अपनी दोनों भुजाओंसे उसे चार अंगुल ऊपर उठाया ॥३४॥ वह शिला एक योजन ऊँची, एक योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी है तथा अर्ध भरतक्षेत्रमें स्थित समस्त देवोंके द्वारा सुरक्षित है ॥३५॥ पहले त्रिपृष्ठ नारायणने इस शिलाको जहांतक भुजाएँ ऊपर पहुँचती हैं वहांतक उठाया था। दूसरे द्विपृष्ठने मस्तक तक, तीसरे स्वयम्भूने कण्ठ तक, चौथे पुरुषोत्तमने वक्षःस्थल तक, पांचवें नृसिंहने हृदय तक, छठे पुण्डरीकने कमर तक, सातवें दत्तकने जांघों तक, आठवें लक्ष्मणने घुटनों तक और नवें कृष्ण नारायणने उसे चार अंगुल तक ऊपर उठाया था ॥३६-३८॥ क्योंकि युग-युगमें कालभेद होनेसे प्रधान पुरुषको आदि लेकर सभी शक्तिशाली मनुष्योंकी शक्ति भिन्न-भिन्न रूप होती आयी है ॥३९॥ शिला उठानेके बलसे समस्त सेनाने जान लिया कि श्रीकृष्ण महान् शारीरिक बलसे सहित हैं। तदनन्तर चक्ररत्नको धारण करनेवाले श्रीकृष्ण बान्धवजनोंके साथ द्वारिकाकी ओर वापस आये ॥४०॥ वहां वृद्धजनोंने नाना प्रकारके आशी-र्वादोंसे जिनका अभिनन्दन किया था ऐसे श्रीकृष्ण नारायणने मनोहर गोपुरोंसे सुन्दर एवं स्वर्गके समान सजी हुई द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया ॥४१॥ जो भूमिगोचरी और विद्याधर राजा उनके साथ लौटकर आये थे उन्हें यथायोग्य भोग्य सामग्री दी गयी और वे द्वारिकापुरीके महलोंमें विधिपूर्वक निश्चिन्ततासे ठहराये गये थे ॥४२॥

तदनन्तर समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंने अतिशय प्रसिद्ध बलदेव और श्रीकृष्णको अर्ध भरतक्षेत्रके स्वामित्वपर अभिषिक्त किया अर्थात् राज्याभिषेक कर उन्हें अर्ध भरतक्षेत्रका स्वामी घोषित किया ॥४३॥ तत्पश्चात् चक्ररत्नके धारक श्रीकृष्णने जरासन्धके द्वितीय पुत्र सहदेवको राजगृहका राजा बनाया और उसे निरहंकार होकर मगध देशका एक चौथाई भाग प्रदान किया ॥४४॥ उग्रसेनके पुत्र द्वारके लिए मथुरापुरी दी, महानेमिके लिए

शौर्यपुर दिया ॥४५॥

पाण्डवोंके लिए प्रीतिपूर्वक उनका प्रिय हस्तिनापुर दिया और राजा रुधिरके नाती रुक्मनाभके लिए कोशल देश दिया ॥४६॥ इस प्रकार चक्रपाणि—श्रीकृष्णने आये हुए समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंकी यथायोग्य स्थानोंपर स्थापना की—यथायोग्य स्थानोंका उन्हें राजा बनाया ॥४७॥ तदनन्तर श्रीकृष्णसे विदा लेकर पाण्डव आदि यथास्थान चले गये और यादव देवोंके समान द्वारिकामें क्रीड़ा करने लगे ॥४८॥

शत्रुओंका मुख नहीं देखनेवाला सुदर्शन चक्र, अपने शब्दसे शत्रुपक्षको कम्पित करनेवाला शाङ्‌र्ग धनुष, सौनन्दक खड्‌ग, कौमुदी गदा, शत्रुओंपर कभी व्यर्थ नहीं जानेवाली अमोघमूला शक्ति, पांचजन्य शंख और विशाल प्रतापको प्रकट करनेवाला कौस्तुभ मणि; शंखके चिह्नसे चिह्नित श्रीकृष्णके ये सात रत्न थे। ये सातों रत्न देवोंके द्वारा पूजित, अतिशय हितकारी और दिव्य आकारसे युक्त होते हुए अत्यन्त सुशोभित थे ॥४९-५०॥ शत्रु-समूहके विभ्रमको अनायास ही नष्ट करनेवाले बलदेवके, अपराजित नामक दिव्य हल, दिव्य गदा, दिव्य मुसल, दिव्य शक्ति और दिव्य माला ये पांच रत्न थे। बलभद्रके भी ये पांचों रत्न देवोंके द्वारा पूजित थे ॥५१॥ गुणोंको जाननेवाले, गणनीय एवं नतमस्तक सोलह हजार प्रमुख राजा और आठ हजार आज्ञाकारी, भक्त, गणबद्ध देव जिनकी निरन्तर सेवा करते थे ऐसे श्रीकृष्ण सुखका उपभोग करते थे ॥५२॥ रतिकालमें देवांगनाओंके समान सुन्दर हाव-भावोंसे मनको हरनेवाली सोलह हजार स्त्रियाँ श्रीकृष्णके शरीरकी सेवा करती थीं और उनसे आधी अर्थात् आठ हजार उत्तम स्त्रियाँ बलदेवके शरीरकी सेवा करती थीं। श्रीकृष्ण और बलदेव अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ यथेच्छ क्रीड़ा करते थे ॥५३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो जिन-धर्मको धारण करनेवाले थे, जिनके रति और रागमें कभी व्यवधान नहीं पड़ता था, प्रिय युवतियाँ ही जिनकी सहायक थीं और जो समस्त भूमिके अधिपति थे ऐसे यादव लोग, द्वारिकापुरीमें हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद् ऋतुके योग्य स्थानोंमें मनचाहे भोग भोगते हुए क्रीड़ा करते थे ॥५४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कृष्णविजयका वर्णन करनेवाला तिरपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५३॥

□

सर्ग- ५४

अथानन्तर राजा श्रेणिकने पुन: पाण्डवोंकी चेष्टा पूछी सो सन्देहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यके समान गौतम गणधर इस प्रकार कहने लगे ॥१॥

जब पाण्डव हस्तिनापुरमें यथायोग्य रीतिसे रहने लगे तब कुरु देशकी प्रजा अपने पूर्व-स्वामियोंको प्राप्त कर अत्यधिक सन्तुष्ट हुई ॥२॥ पाण्डवोंके सुखदायक सुराज्यके चालू होनेपर देशके सभी वर्ण और सभी आश्रम धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदिको सर्वथा भूल गये ॥३॥ एक दिन सर्वत्र बे-रोक-टोक गमन करनेवाले, क्रुद्ध हृदय और स्वभावसे कलहप्रेमी नारद, पाण्डवोंके घर आये ॥४॥ पाण्डवोंने नारदको बहुत आदरसे देखा परन्तु जब वे द्रौपदीके घर गये तब वह आभूषण धारण करनेमें व्यग्र थी इसलिए कब नारदने प्रवेश किया और कब निकल गये यह वह नहीं जान सकी ॥५॥ नारदजी, द्रौपदीके इस व्यवहारसे तेलके संगसे अग्निके समान, क्रोधसे जलने लगे सो ठीक ही है क्योंकि जो प्राणी सम्मानसे दुखी होता है वह सज्जनोंके भी अवसरको नहीं जानता ॥६॥ उन्होंने द्रौपदीको दु:ख देनेका दृढ़ निश्चय कर लिया और उसी निश्चयके अनुसार वे पूर्वधातकीखण्डके भरत क्षेत्रकी ओर आकाशमें चल पड़े ॥७॥ वे नि:शंक होकर अंग देशकी अमरकंकापुरीमें पहुँचे और वहां उन्होंने स्त्रीलम्पट, पद्मनाभ नामक शोभासम्पन्न राजाको देखा ॥८॥ राजा पद्मनाभने नारदको आत्मीय जान, अपना अन्त:पुर दिखाया और पूछा कि ऐसा स्त्रियोंका रूप आपने कहीं अन्यत्र भी देखा है ? ॥९॥ राजा पद्मनाभके प्रश्नको खीरमें पड़े घीके समान अनुकूल मानते हुए नारदने द्रौपदीके लोकोत्तर सौन्दर्यका वर्णन इस रीतिसे किया कि उसने उसे द्रौपदीरूपी पिशाचके वशीभूत कर दिया अर्थात् उसके हृदयमें द्रौपदीके प्रति अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी। तदनन्तर द्रौपदीके द्वीपक्षेत्र, नगर तथा भवनका पता बता-कर वे कहीं चले गये ॥१०–११॥ पद्मनाभने द्रौपदीके प्राप्त करनेकी इच्छासे तीव्र तपके द्वारा पाताललोकमें निवास करनेवाले संगमक नामक देवकी आराधना की ॥१२॥ तदनन्तर आराधना किया हुआ वह देव रात्रिके समय सोती हुई द्रौपदीको पद्मनाभकी नगरीमें उठा लाया ॥१३॥ देवने लाकर उसे भवनके उद्यानमें छोड़ दिया और इसकी सूचना राजा पद्मनाभको कर दी। राजा पद्मनाभने जाकर साक्षात् देवांगना द्रौपदीको देखा ॥१४॥ यद्यपि द्रौपदी अपनी सर्वतो-भद्र शय्यापर जाग उठी थी और निद्रारहित हो गयी थी तथापि 'यह स्वप्न है' इस प्रकार शंका करती हुई बार-बार सो रही थी ॥१५॥ नेत्रोंको बन्द करनेवाली द्रौपदीका अभिप्राय जानकर राजा पद्मनाभ धीरेसे उसके पास गया और प्रिय वचन बोलता हुआ इस प्रकार कहने लगा ॥१६॥ उसने कहा कि हे विशाललोचने ! देखो, यह स्वप्न नहीं है। हे घटस्तनि ! यह धातकीखण्डद्वीप है और मैं राजा पद्मनाभ हूँ ॥१७॥ नारदने मुझे तुम्हारा मनोहर रूप बतलाया था और मेरे द्वारा आराधित देव मेरे लिए तुम्हें यहां हरकर लाया है ॥१८॥ यह सुनकर उसका हृदय चकित हो गया तथा यह 'क्या है' इस प्रकार कहती हुई वह विचार करने लगी कि अहो ! यह मुझे दुरन्त दु:ख आ पड़ा है ॥१९॥ 'जबतक अर्जुनका दर्शन नहीं होता तबतकके लिए मेरे आहारका त्याग है' ऐसा नियम लेकर उसने अर्जुनके द्वारा छोड़ने योग्य वेणी बांध ली ॥२०॥ तदनन्तर

शीलरूपी वज्रमय कोटके भीतर स्थित द्रौपदी कामके द्वारा पीड़ित होनेवाले राजा पद्मनाभसे इस प्रकार बोली ॥२१॥ कि बलदेव और कृष्णनारायण मेरे भाई हैं, धनुर्धारी अर्जुन मेरा पति है, पतिके बड़े भाई महावीर भीम और अर्जुन अतिशय वीर हैं और पतिके छोटे भाई सहदेव और नकुल यमराजके समान हैं ॥२२॥ जल और स्थलके मार्गोंसे जिन्हें कोई कहीं रोक नहीं सका ऐसे मनोरथके समान शीघ्रगामी उनके रथ समस्त पृथिवीमें विचरण करते हैं ॥२३॥ इसलिए हे राजन् ! यदि तू भाई-बान्धवों-सहित, इनसे अपना भला चाहता है तो सर्पिणीके समान मुझे शीघ्र ही वापस भेज दे ॥२४॥ जिसकी अन्य सब इच्छाएँ दूर हो चुकी थीं ऐसे पद्मनाभने द्रौपदीके इस तरह कहनेपर भी जब अपना हठ नहीं छोड़ा तब परिस्थितिके अनुसार तत्काल विचार करनेवाली द्रौपदीने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया ॥२५॥ कि हे राजन् ! यदि मेरे आत्मीय-जन एक मासके भीतर यहाँ नहीं आते हैं तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह मेरा करना ॥२६॥ 'तथास्तु'—'ऐसा हो' इस प्रकार कहकर पद्मनाभ अपनी स्त्रियोंके साथ उसे अनुकूल करता और सैकड़ों प्रिय पदार्थोंसे लुभाता हुआ रहने लगा ॥२७॥ द्रौपदी भय छोड़कर विश्वस्त हो गयी और निरन्तर अश्रु छोड़ती तथा आहार-विहार बन्द कर पतिका मार्ग देखने लगी ॥२८॥

इधर जब द्रौपदी अकस्मात् अदृश्य हो गयी तब पाँचों पाण्डव किंकर्तव्यविमूढ़ हो अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥२९॥ तदनन्तर जब वे निरुपाय हो गये तब उन्होंने श्रीकृष्णके पास जाकर सब समाचार कहा। उसे सुनकर यादवों सहित श्रीकृष्ण बहुत दुःखी हुए और उसी समय उन्होंने समस्त भरत क्षेत्रमें यह समाचार श्रवण कराया ॥३०॥ जब भरत क्षेत्रमें कहीं पता नहीं चला तब उन्होंने समझ लिया कि कोई क्षुद्र वृत्तिवाला मनुष्य इसे हरकर दूसरे क्षेत्रमें ले गया है। इस तरह समस्त यादव उसका समाचार प्राप्त करनेमें तत्पर हो गये ॥३१॥

किसी दिन श्रीकृष्ण सभामण्डपमें बैठे हुए थे कि उसी समय नारदजी वहाँ आ पहुँचे। समस्त यादवोंने उनका सम्मान किया। तदनन्तर प्रिय समाचार सुनाते हुए उन्होंने कहा कि मैंने द्रौपदीको धातकीखण्ड द्वीपकी अमरकंकापुरीमें राजा पद्मनाभके घर देखा है। उसका शरीर अत्यन्त काला तथा दुर्बल हो गया है, उसके नेत्र निरन्तर पड़ती हुई अश्रुधारासे व्याप्त रहते हैं और राजा पद्मनाभके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ बड़े आदरके साथ उसकी सेवा करती रहती हैं ॥३२–३४॥ उसे इस समय अपने शीलव्रतका ही सबसे बड़ा भरोसा है तथा वह लम्बी-लम्बी श्वास छोड़ती रहती है। आप-जैसे भाइयोंके रहते हुए वह शत्रुके घरमें क्यों रह रही है ? ॥३५॥ इस प्रकार द्रौपदीका समाचार पाकर उस समय कृष्ण आदि बहुत हर्षित हुए और अपकारके साथ-साथ उपकार करनेवाले नारदकी प्रशंसा करने लगे ॥३६॥ 'वह दुष्ट द्रौपदीका हरणकर कहाँ जावेगा ? मृत्युके इच्छुक उस दुराचारीको अभी यमराजके घर भेजता हूँ' ॥३७॥ इस प्रकार शत्रुके प्रति द्वेष प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण द्रौपदीको लानेके लिए उद्यत हुए और रथपर बैठकर दक्षिण समुद्रके तटपर जा पहुँचे ॥३८॥ वहाँ जाकर उन्होंने धातकीखण्ड द्वीपको प्राप्त करनेकी इच्छासे पाण्डवोंके साथ नियममें स्थित लवणसमुद्रके अधिष्ठाता देवकी अच्छी तरह आराधना की ॥३९॥ तदनन्तर लवणसमुद्रका अधिष्ठाता देव पाँच पाण्डवों सहित कृष्णको छह रथोंमें ले गया और इस तरह वे शीघ्र ही समुद्रका उल्लंघन कर धातकीखण्ड द्वीपके भरत क्षेत्रमें जा पहुँचे ॥४०॥ वहाँ जाकर ये अमरकंकापुरीके उद्यानमें ठहर गये और राजा पद्मनाभके द्वारा नियुक्त पुरुषोंने उसे खबर दी कि कृष्ण आदि आ पहुँचे हैं ॥४१॥ खबर पाते ही उसकी उद्धत चतुरंग सेना नगरीसे बाहर निकली परन्तु पाँचों पाण्डवोंने युद्धमें उसे इतना मारा कि वह भाग-कर नगरमें जा घुसी ॥४२॥ राजा पद्मनाभ बड़ा नीतिज्ञ था इसलिए वह नगरका द्वार बन्द कर

भीतर रह गया। नगरका द्वार लांघना जब पाण्डवोंके वशकी बात नहीं रही तब श्रीकृष्णने स्वयं पैरके आघातोंसे द्वारको तोड़ना शुरू किया। उनके पैरके आघात क्या थे मानो वज्रके प्रहार थे। उन्होंने नगरकी समस्त बाह्य तथा आभ्यन्तर भूमिको तहस-नहस कर डाला। प्राकार और गोपुर टूटकर गिर गये! बड़े-बड़े महल और शालाओंके समूह गिरने लगे जिससे मदोन्मत्त हाथी और घोड़े इधर-उधर दौड़ने लगे, नगरमें सर्वत्र हाहाकारका महान् शब्द गूँजने लगा और मनुष्य घबड़ाकर बाहर निकल आये ।।४३–४५।। जब द्रोही राजा पद्मनाभ निरुपाय हो गया तब वह भयसे व्याकुल हो नगरवासियों और अन्तःपुरकी स्त्रियोंको साथ ले शीघ्र ही द्रौपदीकी शरणमें पहुँचा और नम्रीभूत होकर कहने लगा कि हे देवि! तू देवताके समान है, सौम्य है, पतिव्रता है, मुझ पापीको क्षमा करो, क्षमा करो और अभय दान दिलाओ ।।४६–४७।। द्रौपदी परम दयालु थी इसलिए उसने शरणमें आये हुए पद्मनाभसे कहा कि तू स्त्रीका वेष धारण कर चक्रवर्ती कृष्णकी शरणमें जा। क्योंकि उत्तम मनुष्य नमस्कार करनेवाले अपराधी जनोंपर भी प्रायः दया-सहित होते हैं, फिर जो भीरु हैं अथवा भीरुजनोंका वेष धारण करते हैं उनपर तो वे और भी अधिक दया करते हैं ।।४८–४९।। यह सुनकर राजा पद्मनाभने स्त्रीका वेष धारण कर लिया और स्त्रियोंको साथ ले तथा द्रौपदीको आगे कर वह श्रीकृष्णकी शरणमें जा पहुँचा ।।५०।। श्रीकृष्ण शरणागतोंका भय हरनेवाले थे इसलिए उन्होंने उसे अभय दान देकर अपने स्थानपर वापस कर दिया, केवल उसके स्थान तथा नाम आदिमें परिवर्तन कर दिया ।।५१।। द्रौपदीने कुशल-प्रश्नपूर्वक श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार किया और पाँचों पाण्डवोंके साथ यथायोग्य विनयका व्यवहार किया ।।५२।। तदनन्तर अर्जुनने विरहसे पीड़ित वल्लभाका आलिंगन कर पसीनासे भीगे हुए दोनों हाथोंसे स्वयं उसकी वेणी खोली ।।५३।। द्रौपदीने पाण्डवोंके साथ स्नान किया, भोजन किया, हृदयसे सबका अतिथि-सत्कार किया, उनके सामने अपना दुःख निवेदन किया और अश्रुधाराके साथ-साथ सब दुःख छोड़ दिया। **भावार्थ—**पाण्डवोंके सामने सब दुःख प्रकट कर वह सब दुःख भूल गयी ।।५४।।

तदनन्तर कृष्णने द्रौपदीको रथमें बैठाकर समुद्रके किनारे आ इस रीतिसे अपना शंख बजाया कि उसका शब्द समस्त दिशाओंमें व्याप्त हो गया ।।५५।। उस समय वहाँ चम्पा नगरीके बाहर स्थित जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करनेके लिए धातकीखण्डका नारायण कपिल आया था उसने पृथिवीको कम्पित करनेवाला शंखका उक्त शब्द सुनकर जिनेन्द्र भगवान्से पूछा कि हे नाथ! मेरे समान शक्तिको धारण करनेवाले किस मनुष्यने यह शंख बजाया है। इस समय मेरे द्वारा शासित इस भरतक्षेत्रमें मेरे समान दूसरा मनुष्य नहीं है ।।५६–५७।। प्रश्नका उत्तर देनेवाले जिनेन्द्र भगवान्ने जब यथार्थ बात कही तब कृष्णको देखनेकी इच्छा करता हुआ वह वहांसे जाने लगा। यह देख जिनेन्द्र भगवान्ने कहा कि हे राजन्! तीन लोकमें कभी चक्रवर्ती-चक्रवर्तियोंका, तीर्थंकर-तीर्थंकरोंका, बलभद्र-बलभद्रोंका, नारायण-नारायणोंका और प्रतिनारायण-प्रतिनारायणोंका परस्पर मिलाप नहीं होता। तुम जाओगे तो चिह्न मात्रसे ही उसका और तुम्हारा मिलाप हो सकेगा। एक दूसरेके शंखका शब्द सुनना तथा रथोंकी ध्वजाओंका देखना इन्हीं चिह्नोंसे तुम्हारा और उसका साक्षात्कार होगा ।।५८–६०।। तदनन्तर कपिल नारायण, श्रीकृष्णको लक्ष्य कर आया और जिनेन्द्र भगवान्के कहे अनुसार उसका दूर-से ही समुद्रमें कृष्णके साथ साक्षात्कार हुआ ।।६१।। कपिल नारायणने चम्पा नगरीमें वापस आकर अनुचित कार्य करनेवाले अमरकंकापुरीके स्वामी राजा पद्मनाभको क्रोधमें आकर बहुत डांटा ।।६२।। कृष्ण तथा पाण्डव पहलेकी ही भांति महासागरको शीघ्र ही पार कर इस तटपर आ गये। वहां कृष्ण तो विश्राम करने लगे परन्तु पाण्डव चले आये ।।६३।। पाण्डव नौकाके द्वारा

गंगाको पार कर दक्षिण तटपर आ ठहरे। भीमका स्वभाव क्रीड़ा करनेका था इसलिए उसने इस पार आनेके बाद नौका तटपर छिपा दी ॥६४॥ पीछे जब द्रौपदीके साथ कृष्ण आये और उन्होंने पूछा कि आप लोग इस गंगाको किस तरह पार हुए हैं? तो कृष्णकी चेष्टाको जाननेके इच्छुक भीमने कहा कि हम लोग भुजाओंसे तैरकर आये हैं। श्रीकृष्ण भीमके कथनको सत्य मान गंगाको पार करनेकी शीघ्रता करने लगे ॥६५–६६॥ श्रीकृष्णने घोड़ों और सारथीके सहित रथको एक हाथपर उठा लिया और एक हाथ तथा दो जंघाओंसे गंगाको इस तरह पार कर लिया जिस तरह मानो वह घोंटू बराबर ही हो ॥६७॥ तदनन्तर आश्चर्यसे चकित और आनन्द-से विभोर पाण्डवोंने शीघ्र ही सामने जाकर नम्रीभूत हो श्री कृष्णका आलिंगन किया और उनकी अपूर्व शक्तिसे परिचित हो, वे उनकी स्तुति करने लगे ॥६८॥ तत्पश्चात् भीमने सबको सुनाते हुए स्वयं कहा कि यह तो मैंने हँसी की थी। यह सुन, श्रीकृष्ण उसी समय पाण्डवोंसे विरक्तता को प्राप्त हो गये सो ठीक ही है क्योंकि बिना देश-कालकी हँसी शोभा नहीं देती ॥६९॥ कृष्णने पाण्डवोंको फटकारते हुए कहा कि अरे निन्द्य पाण्डवो! मैंने संसारमें तुम लोगोंके देखते-देखते अनेकों बार अमानुषिक कार्य किये हैं फिर इस गंगाके पार करनेमें कौन-सी बात मेरी परीक्षा करनेमें समर्थ थी? ॥७०॥ इस प्रकार पाण्डवोंसे कहकर वे उन्हींके साथ हस्तिनापुर गये और वहाँ सुभद्राके पुत्र आर्य-सूनुके लिए राज्य देकर उन्होंने पाण्डवोंको क्रोधवश वहांसे विदा कर लिया ॥७१॥

तदनन्तर समस्त सामन्त जिनके पीछे-पीछे चल रहे थे और यादवोंने सम्मुख आकर जिनका अभिनन्दन किया था ऐसे कृतकार्य श्रीकृष्णने विशाल द्वारिका नगरीमें प्रवेश कर अपनी स्त्रियोंके समूहको प्रसन्न किया ॥७२॥ असमयमें वज्रपातके समान कठोर कृष्णचन्द्रकी आज्ञासे पाण्डव, अपने अनुकूल जनोंके साथ दक्षिण दिशाकी ओर गये और वहाँ उन्होंने मथुरा नगरी बसायी ॥७३॥ वहां वे दक्षिण दिशामें लौंग और कृष्णागुरुकी सुगन्धित वायुसे व्याप्त समुद्रके मनोहर तटोंपर तथा उत्तम चन्दनसे दिशाओंको सुगन्धित करनेवाली मलयगिरिकी ऊंची-ऊँची चोटियोंपर विहार करने लगे ॥७४॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, कहां तो लवणसमुद्र और जम्बू वृक्षसे सुशोभित जम्बू-द्वीपकी भूमि और कहां अत्यन्त दुर्गम धातकीखण्डकी भूमि? फिर भी पूर्वकृत जैनधर्मके प्रभावसे वहाँ यातायातके द्वारा कार्यको सिद्धि हो जाती है ॥७५॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें द्रौपदीका हरण, पुनः उसका ले आना तथा दक्षिण-मथुराके बसाये जानेका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५४॥

□

सर्ग- ५५

अथानन्तर एक दिन कुबेरके द्वारा भेजे हुए वस्त्र, आभूषण, माला और विलेपनसे सुशोभित, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजाओंसे घिरे एवं मदोन्मत्त हाथीके समान सुन्दर गतिसे युक्त युवा नेमिकुमार, बलदेव तथा नारायण आदि कोटि-कोटि यादवोंसे भरी हुई कुसुमचित्रा नामक सभामें गये। राजाओंने अपने-अपने आसन छोड़ सम्मुख जाकर उन्हें नमस्कार किया। श्रीकृष्णने भी आगे आकर उनकी अगवानी की। तदनन्तर श्रीकृष्णके साथ वे उनके आसनको अलंकृत करने लगे। श्रीकृष्ण और नेमिकुमारसे अधिष्ठित हुआ वह सिंहासन, दो इन्द्रों अथवा दो सिंहोंसे अधिष्ठितके समान अत्यधिक शोभाको धारण करने लगा ॥१-३॥ सभाके बीच, सभ्यजनोंकी कथारूप अमृतका पान करनेवाले एवं अत्यधिक शूर-वीरता और शारीरिक विभूतिसे युक्त अनेक राजा जिनकी उपासना कर रहे थे और अपनी कान्तिसे जिन्होंने सबको आच्छादित कर दिया था ऐसे नेमिकुमार श्रीकृष्णके साथ क्षण-भर क्रीड़ा करते रहे ॥४॥

तदनन्तर बलवानोंकी गणना छिड़नेपर कोई अर्जुनकी, कोई युद्धमें स्थिर रहनेवाले युधिष्ठिरकी, कोई पराक्रमी भीमकी, कोई उद्धत सहदेव और नकुलकी एवं कोई अन्य लोगोंकी, अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥५॥ किसीने कहा बलदेव सबसे अधिक बलवान् हैं तो किसीने दुर्धर गोवर्धन पर्वतको उठानेवाले एवं अपना बल देखनेमें तत्पर राजाओंके समूहको अपने स्थानसे विचलित करनेके लिए बाण धारण करनेवाले श्रीकृष्णको सबसे अधिक बलवान् कहा ॥६॥ इस प्रकार कृष्णकी सभामें आगत राजाओंकी तरह-तरहकी वाणी सुनकर लीलापूर्ण दृष्टिसे भगवान् नेमिनाथकी ओर देखकर कहा कि तीनो जगत्में इनके समान दूसरा बलवान् नहीं है ॥७॥ ये अपनी हथेलीसे पृथिवीतलको उठा सकते हैं, समुद्रोंको शीघ्र ही दिशाओंमें फेंक सकते हैं और गिरिराजको अनायास ही कम्पायमान कर सकते हैं। यथार्थमें ये जिनेन्द्र हैं, इनसे उत्कृष्ट दूसरा कौन हो सकता है ? ॥८॥ इस प्रकार बलदेवके वचन सुन कृष्णने पहले तो भगवान्की ओर देखा और तदनन्तर मुसकराते हुए कहा कि हे भगवन्। यदि आपके शरीरका ऐसा उत्कृष्ट बल है तो बाहु-युद्धमें उसकी परीक्षा क्यों न कर ली जाये ? ॥९॥ भगवान्ने कुछ खास ढंगसे मुख ऊपर उठाते हुए कृष्णसे कहा कि मुझे इस विषयमें मल्ल युद्धकी क्या आवश्यकता है ? हे अग्रज ! यदि आपको मेरी भुजाओंका बल जानना ही है तो सहसा इस आसनसे मेरे इस पैरको विचलित कर दीजिए ॥१०॥ श्रीकृष्ण उसी समय कमर कसकर भुजबलसे जिनेन्द्र भगवान्को जीतनेकी इच्छासे उठ खड़े हुए परन्तु पैरका चलाना तो दूर रहा नखरूपी चन्द्रमाको धारण करनेवाली पैरकी एक अंगुलिको भी चलानेमें समर्थ नहीं हो सके ॥११॥ उनका समस्त शरीर पसीनाके कणोंसे व्याप्त हो गया और मुखसे लम्बी-लम्बी साँसें निकलने लगीं। अन्तमें उन्होंने अहंकार छोड़कर स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा कि हे देव ! आपका बल लोकोत्तर एवं आश्चर्यकारी है ॥१२॥ उसी समय इन्द्रका आसन कम्पायमान हो गया और वह तत्काल ही देवोंके साथ आकर भगवान्की पूजा-स्तुति तथा नमस्कार कर अपने स्थानपर चला गया ॥१३॥ उधर कृष्णके अहंकारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा अनेक राजाओंसे परिवृत हो अपने महलमें चले

गये और इधर कृष्ण भी अपने आपके विषयमें शंकित होते हुए अपने महलमें गये सो ठीक ही है क्योंकि संक्लिष्ट बुद्धिके धारक पुरुष जिनेन्द्र भगवान्के विषयमें भी शंका करते हैं। **भावार्थ—** कृष्णके मनमें यह शंका घर कर गयी कि भगवान् नेमिनाथके बलका कोई पार नहीं है अतः इनके रहते हुए हमारा राज्य-शासन स्थिर रहेगा या नहीं? ॥१४॥ उस समयसे श्रीकृष्ण, उत्तम—अमूल्य गुणोंसे युक्त जिनेन्द्ररूपी उन्नत चन्द्रमाकी बड़े आदरसे प्रतिदिन सेवा-शुश्रूषा करते हुए प्रेम-प्रदर्शनपूर्वक उनकी पूजा करने लगे ॥१५॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रुतशोणित नामका एक नगर है, उस समय उसमें बाण नामका एक महा अहंकारी विद्याधर रहता था ॥१६॥ राजा बाणके गुण और कला-रूपी आभूषणोंसे युक्त तथा पृथिवीमें सर्वत्र प्रसिद्ध उषा नामकी एक पुत्री थी जो अपने उदार गुणोंसे विख्यात प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको चिरकालसे अपने हृदयमें धारण कर रही थी ॥१७॥ यद्यपि कुमार अनिरुद्ध अत्यन्त कोमल शरीरका धारक था तथापि कुटिल भौंहोंवाली उषाके हृदयमें वास करते हुए उसने कुटिलवृत्ति अंगीकृत की थी इसीलिए तो उसके शरीरमें उसने भारी सन्ताप उत्पन्न किया था ॥१८॥ यद्यपि कुमारी उषा अपने मनकी महाव्यथा दूसरेसे कहती नहीं थी तथापि भीतर ही भीतर वह अत्यन्त दुर्बल हो गयी थी। एक दिन उसकी सखीने अपना हित करनेवाली उस उषासे पूछकर सब कारण जान लिया और वह रात्रिके समय अनिरुद्धको विद्याधरियोंसे श्रेष्ठ विद्याधरलोकमें ले गयी ॥१९॥ प्रातःकालके समय जब सहसा युवा अनिरुद्धकी नींद खुली तब उसने अपने आपको रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त महलमें कोमल शय्यापर सोता हुआ पाया। जागते ही उसने एक कन्याको देखा ॥२०॥ वह कन्या स्थूल नितम्ब और निविड़ स्तनोंके भारसे युक्त थी, पतली कमर और त्रिबलिसे सुशोभित थी, सत्पुरुषोंके मनको हरण करनेवाली थी और काम अथवा रोमांचोंको धारण करनेवाली थी। उसे देख अनिरुद्ध विचार करने लगा कि यह यहाँ कौन उत्तम स्त्री मेरा मन हरण कर रही है? क्या यह इन्द्राणी है? अथवा नाग-वधू है? क्योंकि ऐसी मनुष्यकी स्त्री तो मैंने कभी भी कहीं भी नहीं देखी है ॥२१-२२॥ इन्द्रके स्थानके समान नेत्रोंको हरण करनेवाला यह स्थान भी तो अपूर्व ही दिखाई देता है। यहाँ दिखाई देनेवाला यह सत्य है? या असत्य है? यथार्थमें सोनेवालोंका मन संसारमें भ्रमण करता रहता है ॥२३॥ अतर्कित वस्तुओंको देखकर कुमार इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि इतनेमें चित्रलेखा सखी आयी और सब समाचार बता एकान्तमें कंकण बन्धन कराकर उस कन्याके साथ मिला गयी ॥२४॥ तदनन्तर देव-देवांगनाओंके समान निरन्तर सुरतरूपी अमृतका पान करनेवाले उन दोनों स्त्री-पुरुषोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा। इधर श्रीकृष्णको जब अनिरुद्धके हरे जानेका वृत्तान्त विदित हुआ तब वे बलदेव, शम्ब और प्रद्युम्न आदि यादवोंके साथ मिलकर अनिरुद्धको लानेके लिए आकाशमार्गसे विद्याधरोंके राजा बाणकी नगरी पहुँचे ॥२५-२६॥ और मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियोंसे व्याप्त युद्धमें विद्याधरोंके अधिपति बाणको जीतकर उषासहित अनिरुद्धको अपने नगर वापस ले आये ॥२७॥ तदनन्तर अनिरुद्धके समागमसे समुत्पन्न सुखको पाकर सब लोगोंका विरहजन्य दुःख दूर हो गया और समस्त सुखोंके आधारभूत स्वजन और पुरजन सुखसे क्रीड़ा करने लगे ॥२८॥

अथानन्तर एक समय वसन्त ऋतुके आनेपर श्रीकृष्ण, अपनी स्त्रियोंसे लालित भगवान् नेमिनाथ, राजा महाराजा और नगरवासीरूपी सागरके साथ, जहाँ उपवन फूल रहे थे ऐसे गिरनार पर्वतपर क्रीड़ा करनेकी इच्छासे गये ॥२९॥ जो धारण किये हुए सफेद छत्रोंसे सुशोभित थे, तथा बैल, ताल और गरुड़की ध्वजाओंसे युक्त थे ऐसे सुन्दर भूषणोंसे विभूषित भगवान् नेमिनाथ, बलदेव और श्रीकृष्ण पृथक्-पृथक् बड़े-बड़े घोड़ोंके रथोंपर सवार हो एकके बाद एक

जा रहे थे ॥३०॥ उनके पीछे समुद्रविजय आदि दश यादवोंके कुमारोंसे परिवृत प्रद्युम्न, मार्गमें फूलोंके बाण, धनुष तथा मकर चिह्नांकित ध्वजासे मनुष्योंको आनन्दित करता हुआ हाथी और घोड़ोंके रथोंपर सवार हो जा रहा था ॥३१॥ उसके पीछे नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित नगरवासी लोग यथायोग्य उत्तमोत्तम वाहनोंपर सवार होकर चल रहे थे और इनके बाद कृष्ण आदि राजाओंकी स्त्रियां पालकी आदिपर सवार हो मार्गमें प्रयाण कर रही थीं ॥३२॥ उस समय जन-समूहसे व्याप्त और उपवनोंसे सुशोभित गिरनार पर्वत, देव-देवियोंसे व्याप्त एवं नाना वनोंसे युक्त सुमेरु पर्वतकी शोभाको धारण कर रहा था ॥३३॥ समीप पहुँचनेपर सब लोग यथायोग्य अपने-अपने वाहन छोड़, पर्वतके नितम्बपर स्थित वनोंमें शीघ्र ही इच्छानुसार विहार करने लगे ॥३४॥ उस समय वासन्ती फूलोंकी परागसे सुगन्धित, श्रमको दूर करनेवाली, ठण्डी दक्षिणकी वायु सब दिशाओंमें बह रही थी इसलिए मनुष्योंके कामभोग-सम्बन्धी श्रम ही शेष रह गया था शेष सब श्रम दूर हो गया था ॥३५॥ आम्रलताओंके रसका आस्वादन करनेवाली, सुन्दर कण्ठसे मनुष्योंका मन हरण करनेमें अत्यन्त दक्ष और कामको उत्तेजित करनेमें निपुण मधुरभाषी कोकिलाएँ उस समय पर्वतपर चारों ओर कुहू-कुहू कर रही थीं ॥३६॥ मधुपान करनेमें लीन भ्रमरोंके समूहसे कुरवक और मौलिश्रीके वृक्ष तथा द्विपद अर्थात् स्त्री-पुरुष अथवा कोकिल आदि पक्षी और षट्पद अर्थात् भ्रमरोंके शब्दसे वनके प्रदेश, अत्यन्त मनोहर हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि आश्रय, आश्रयी—अपने ऊपर स्थित पदार्थके गुण ग्रहण करता ही है ॥३७॥ मदपायी भ्रमर, सप्तपर्ण पुष्पके समान गन्धवाले हाथियोंके गण्डस्थलोंपर स्थितिको छोड़कर आम्र और देवदारुकी मंजरियोंपर जा बैठी सो ठीक ही है क्योंकि नवीन वस्तुओंसे अल्पाधिक प्रीति होती ही है ॥३८॥ फूलोंके भारको धारण करनेवाले वृक्ष अत्यन्त नम्रीभूत हो रहे थे और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो स्नेह-भंगके भयसे ही नम्रीभूत हो रहे थे। वे ही वृक्ष पुष्पावचयनके समय जब युवतियोंके हाथोंसे कम्पित होते थे तब तरुण पुरुषोंके समान अतनु—बहुत भारी अथवा काम-सम्बन्धी सुखको प्राप्त होते थे ॥३९॥ फूल चुनते समय वृक्षोंकी ऊँची शाखाओंको स्त्रियां किसी तरह अपने हाथसे पकड़कर नीचेकी ओर खींच रही थीं उससे वे नायकके समान स्त्री द्वारा केश खींचनेके सुखका अनुभव कर रहे थे ॥४०॥ तरुण पुरुष, स्त्रियोंके साथ चिरकाल तक जहाँ-तहाँ वन-भ्रमणके सुखका उपभोग कर फूलोंके समूहसे निर्मित शय्याओंपर सम्भोगरूपी अमृतका सेवन करने लगे ॥४१॥ उस वसन्त ऋतुमें सुखसे युक्त समस्त यादव, प्रत्येक वन, प्रत्येक झाड़ी, प्रत्येक लतागृह, प्रत्येक वृक्ष और प्रत्येक वापीमें विहार करते हुए विषय-सुखका सेवन कर रहे थे ॥४२॥ सोलह हजार स्त्रियोंके द्वारा अनेकरूपताको प्राप्त भोगरूपी आकाशमें विद्यमान एवं सौन्दर्यको धारण करनेवाले श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाने भी वसन्तऋतुके उस चैत्र-वैशाख मासको बहुत अच्छा माना था ॥४३॥ मनुष्यकी मनोवृत्तिको हरण करनेवाली श्रीकृष्णकी स्त्रियां, पतिकी आज्ञा पाकर वृक्षों और लताओंसे रमणीय वनोंमें भगवान् नेमिनाथके साथ क्रीड़ा करने लगीं ॥४४॥ मधुके मदसे जिसका हृदय और नेत्र अलसा रहे थे ऐसी किसी स्त्रीको वन-लताओंके फूलोंके गुच्छ तोड़ते समय मुखकी सुगन्धिसे प्रेरित गुनगुनाते हुए भ्रमरोंने घेर लिया इसलिए उसने भयभीत हो देवर—नेमिनाथको पकड़ लिया ॥४५॥ कोई कठिनस्तनी वक्षःस्थलपर उनका चुम्बन करने लगी, कोई उनका स्पर्श करने लगी, कोई उन्हें सूंघने लगी, कोई अपने कोमल हाथसे उनका हाथ पकड़ चन्द्रमाके समान मुखके धारक भगवान् नेमिनाथको अपने सम्मुख करने लगी ॥४६॥ कितनी ही स्त्रियां साल और तमाल वृक्षकी छोटी-छोटी टहनियोंसे पंखोंके समान उन्हें हवा करने लगीं। कितनी ही अशोक वृक्षके नये-नये पल्लवोंसे कर्णाभरण अथवा सेहरा बनाकर उन्हें पहनाने लगीं ॥४७॥ कोई अपने आलिंगनकी इच्छासे नाना प्रकारके फूलोंसे निर्मित माला उनके शिरपर

पहनाने लगी, कोई गलेमें डालने लगी और कोई उनके शिरको लक्ष्य कर कुरवकके पुष्प फेंकने लगी ।।४८।। इस प्रकार युवा नेमिनाथ कृष्णको स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए उस वसन्तको ऐसा समझ रहे थे जैसे उसका कभी अन्त ही आनेवाला न हो। तदनन्तर वसन्तके बाद आनेवाली ग्रीष्म ऋतु सेवककी तरह भगवान्‌की सेवा करने लगी ।।४९।।

उस समय तीक्ष्ण गरमीसे युक्त ग्रीष्म ऋतुको अच्छा मानते हुए श्रीकृष्ण उसी गिरनार पर्वतपर प्रतिदिन निवास करने लगे क्योंकि वह उन्हें बहुत ही आनन्दका कारण था और ठण्डे-ठण्डे जलकणोंसे युक्त निर्झरोंसे मनोहर था ।।५०।। यद्यपि भगवान् नेमिनाथ स्वभावसे ही रागरूपी परागसे पराङ्मुख थे तथापि श्रीकृष्णके स्त्रियोंके उपरोधसे वे शीतल जलसे भरे हुए जलाशयमें जलक्रीड़ा करने लगे ।।५१।। यदु नरेन्द्रकी उत्तम स्त्रियां कभी तैरने लगती थीं, कभी लम्बी-लम्बी डुबकियां लगाती थीं, कभी हाथमें पिचकारियाँ ले हर्षपूर्वक परस्पर एक-दूसरेके मुखकमलपर पानी उछालती थीं ।।५२।। वे अपनी हथेलीकी अंजलियों और पिचकारियोंसे जब भगवान्‌के ऊपर जल उछालने लगीं तो उन्होंने भी जल्दी-जल्दी पानी उछालकर उन सबको उस तरह विमुख कर दिया जिस तरह कि समुद्र अपने जलकी तीव्र ठेलसे जब कभी नदियोंको विमुख कर देता है—उलटा लौटा देता है ।।५३।। उनका वह ऐसा अनुपम स्नान न केवल जनरंजन–मनुष्योंको राग—प्रीति उत्पन्न करनेवाला हुआ था किन्तु फैलती हुई सुगन्धिसे युक्त नाना प्रकारके विलेपनोंसे जल रंजन—जलको रँगनेवाला भी हुआ था ।।५४।। जिस प्रकार कमलोंके समूहको मर्दन करनेवाली एक चंचल सूंड़से युक्त हस्तिनियोंका समूह जलाशयमें किसी महाहस्तीके साथ चिरकाल तक तैरता रहता है उसी प्रकार वह तरुण स्त्रियोंका समूह अपने हाथ चलाता और कमलोंके समूहको मर्दित करता हुआ चिर काल तक तैरता रहा। इस जल-क्रीड़ासे उनका ग्रीष्मकालीन घामसे उत्पन्न समस्त भय दूर हो गया था ।।५५।। उस समय स्त्रियोंके कर्णाभरण गिर गये थे, तिलक मिट गये थे, आकुलता बढ़ गयी थी, दृष्टि चंचल हो गयी थी, ओठ धूसरित हो गये थे, मेखला ढीली हो गयी थी और केश खुल गये थे इसलिए वे सम्भोगकाल-जैसी शोभाको प्राप्त हो रही थीं ।।५६।। तदनन्तर परिजनोंके द्वारा लाये हुए वस्त्राभूषणोंसे विभूषित स्त्रियोंने, सन्तुष्ट होकर वस्त्रोंसे भगवान्‌का शरीर पोंछा और उन्हें दूसरे वस्त्र पहनाये ।।५७।।

भगवान्‌ने जो तत्काल गीला वस्त्र छोड़ा था उसे निचोड़नेके लिए उन्होंने कुछ विलासपूर्ण मुद्रामें कटाक्ष चलाते हुए कृष्णकी प्रेमपात्र एवं अनुपम सुन्दरी जाम्बवतीको प्रेरित किया ।।५८।। भगवान्‌का अभिप्राय समझ शीघ्रतासे युक्त तथा नाना प्रकारके वचन बनानेमें पण्डित जाम्बवती बनावटी क्रोधसे विकारयुक्त कटाक्ष चलाने लगी, उसका ओष्ठ कम्पित होने लगा एवं हाव-भाव-पूर्वक भौंहें चलाकर नेत्रसे भगवान्‌की ओर देखकर कहने लगी कि ।।५९।। जिनके शरीर और मुकुटके मणियोंकी प्रभा करोड़ों सर्पोंके मणियोंके कान्तिमण्डलसे दूनी हो जाती है, जो कौस्तुभ मणिसे देदीप्यमान हैं, जो महानागशय्यापर आरूढ़ हो जगत्‌में प्रचण्ड आवाजसे आकाशको व्याप्त करनेवाला अपना शंख बजाते हैं, जो जलके समान नीली आभाको धारण करनेवाले हैं, जो अत्यन्त कठिन शार्ङ्गनामक धनुषको प्रत्यंचासे युक्त करते हैं, जो समस्त राजाओंके स्वामी हैं और जिनकी अनेक शुभ–सुन्दर स्त्रियाँ हैं वे मेरे स्वामी हैं किन्तु वे भी कभी मुझे ऐसी आज्ञा नहीं देते फिर आप कोई विचित्र ही पुरुष जान पड़ते हैं जो मेरे लिए भी गीला वस्त्र निचोड़नेका आदेश दे रहे हैं ।।६०-६२।। जाम्बवतीके उक्त शब्द सुनकर कृष्णकी कितनी ही स्त्रियोंने उसे उत्तर दिया कि अरी निर्लज्ज! इस तरह तीन लोकके स्वामी और अनन्तगुणोंके धारक भगवान् जिनेन्द्रकी तू क्यों निन्दा कर रही है? ।।६३।। जाम्बवतीके वचन सुन भगवान् नेमिनाथने हँसते हुए कहा कि तूने राजा कृष्णके जिस पौरुषका वर्णन

किया है संसारमे वह कितना कठिन है ? इस प्रकार कहकर वे वेगसे नगरको ओर गये और शीघ्रतासे राजमहलमें घुस गये ॥६४॥ वे लहलहाते सर्पोंकी फणाओंसे सुशोभित श्रीकृष्णको विशाल नागशय्यापर चढ़ गये । उन्होंने उनके शार्ङ्ग धनुषको दूना कर प्रत्यंचासे युक्त कर दिया और उनके पांचजन्य शंखको जोरसे फूंक दिया ॥६५॥ शंखके उस भयंकर शब्दसे दिशाओंके मुख, समस्त आकाश, समुद्र, पृथिवी आदि सभी चीजें व्याप्त हो गयीं और उससे ऐसी जान पड़ने लगीं मानो शंखके शब्दसे व्याप्त होनेके कारण फट ही गयी हों ॥६६॥ अत्यधिक मदको धारण करनेवाले हाथियोंने क्षुभित होकर जहां-तहां अपने बन्धनके खम्भे तोड़ दिये । घोड़े भी बन्धन तुड़ाकर हिनहिनाते हुए नगरमें इधर-उधर दौड़ने लगे ॥६७॥ महलोंके शिखर और किनारे टूट-टूटकर गिरने लगे । श्रीकृष्णने अपनी तलवार खींच ली । समस्त सभा क्षुभित हो उठी, और नगरवासी जन प्रलयकालके आनेकी शंकासे अत्यन्त आकुलित होते हुए भयको प्राप्त हो गये ॥६८॥ जब कृष्णको विदित हुआ कि यह तो हमारे ही शंखका शब्द है तब वे शीघ्र ही आयुधशालामें गये और नेमिकुमारको देदीप्यमान नागशय्यापर अनादरपूर्वक खड़ा देख अन्य राजाओंके साथ आश्चर्य करने लगे ॥६९॥ ज्यों ही कृष्णको यह स्पष्ट मालूम हुआ कि कुमारने यह कार्य जाम्बवतीके कठोर वचनोंसे कुपित होकर किया है त्यों ही बन्धुजनोंके साथ उन्होंने अत्यधिक सन्तोषका अनुभव किया । उस समय कुमारकी वह क्रोधरूप विकृति भी कृष्णके लिए अत्यन्त सन्तोषका कारण हुई थी ॥७०॥

अपने स्वजनोंके साथ कृष्णने युवा नेमिकुमारका आलिंगन कर उनका अत्यधिक सत्कार किया और उसके बाद वे अपने घर गये । घर जानेपर जब उन्हें विदित हुआ कि अपनी स्त्रीके निमित्तसे उन्हें कामोद्दीपन हुआ है तब वे अधिक हर्षित हुए ॥७१॥ श्रीकृष्णने नेमिनाथके लिए विधिपूर्वक भोजवंशियोंकी कुमारी राजीमतीकी याचना की, उसके पाणिग्रहण संस्कारके लिए बन्धुजनोंके पास खबर भेजी और स्त्रियोंसहित समस्त राजाओंको बड़े सम्मानके साथ बुलाकर अपने निकट किया ॥७२॥ उस समयके योग्य जिनका स्नपन किया गया था, जो परम रूपको धारण कर रहे थे, जिन्होंने उत्तमोत्तम आभूषण धारण किये थे और जो अपने-अपने नगरमें अपने-अपने घर स्थित थे ऐसे उत्तम वधू और वर मनुष्योंका मन हरण कर रहे थे ॥७३॥

तदनन्तर अब पृथिवीपर वर्षाकाल आनेवाला है इस भयसे ही मानो ग्रीष्म ऋतु कहीं चली गयी । आकाशमें मेघमाला छा गयी और उसे मरुस्थलके पथिक प्यासे होनेपर भी बड़ी दीनतासे देखने लगे ॥७४॥ मेघोंकी प्रथम गर्जनाके जो शब्द और शीतल जलके छींटे क्रमसे मयूरों तथा चातकोंको सुखदायी थे वे ही पृथिवीपर दूने सन्तापको प्राप्त समस्त विरही मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुःसह हो रहे थे ॥७५॥ सावनके महीनेमें जब मेघोंके समूह बरसने लगे तब दावानल और सूर्यके कारण दग्ध वनपंक्तिसे जो सर्वप्रथम वाष्प (भाप) और सोंदी-सोंदी सुगन्धि निकली वह ऐसी जान पड़ने लगी मानो मेघरूपी मित्रके दिखनेसे ही वनावलीके वाष्प—हर्षाश्रु और सुखोच्छ्वासकी सुगन्धि निकलने लगी हो ॥७६॥ चंचल बिजली और बलाकाओंसे सहित, मेघ जब इन्द्रधनुषरूपी धनुषको धारण कर शर अर्थात् बाण (पक्षमें जल) की वर्षा करने लगे तब सैकड़ों इन्द्रगोपोंसे व्याप्त पृथिवी ऐसी जान पड़ने लगी मानो जहां-तहां पथिक जनोंके गिरे हुए अनुरागी हृदयोंसे ही व्याप्त हो रही हो ॥७७॥ समस्त दिशाएँ फूले हुए कुटज, कदम्ब और कोहाके वृक्षोंसे मनोहर दिखने लगीं तथा वन, गर्त और पर्वतोंसे सहित समस्त भूमि शिलीन्ध्र-के नये-नये दलोंसे सुशोभित हो उठी ॥७८॥ मेघोंकी घनघोर गर्जनासे डरी हुई युवतियाँ, भुजाओंकी खनकती हुई चूड़ियोंके शब्दसे युक्त पतियोंके कण्ठके दृढालिंगनसे अपने तीव्र

भयरूपी पिशाचका निग्रह करने लगीं। भावार्थ—मेघगर्जनासे भयभीत स्त्रियाँ पतियोंके कण्ठका दृढालिंगन करने लगीं ॥७९॥ आतापन, वर्षा और शिशिरके भेदसे तीन प्रकारके योगको धारण करनेवाले मुनियोंका उस समय पर्वतकी शिलाओंपर होनेवाला आतापन योग छूट गया था इसलिए वे वनमें शीत, वायु और वर्षाकी बाधा सहन करते हुए वृक्ष और लताओंके नीचे स्थित हो गये। भावार्थ—मुनिगण वृक्षोंके नीचे बैठकर वर्षायोग धारण करने लगे ॥८०॥ ऐसी ही वर्षाऋतुमें एक दिन युवा नेमिकुमार, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित सूर्यके रथके समान देदीप्यमान एवं चार घोड़ोंसे जुते रथपर सवार हो अनेक राजकुमारोंके साथ वनभूमिकी ओर चल दिये ॥८१॥ प्रसन्नतासे युक्त राजीमती तथा नगरकी स्त्रियोंने अपने प्यासे नेत्रोंसे जिनके शरीररूपी जलका पान किया था एवं जिसका दर्शन मनको हरण कर रहा था ऐसे नेमिनाथ भगवान्, उन राजकुमारोंके साथ विशाल राज-मार्गसे दर्शकोंपर दया करते हुएके समान धीरे-धीरे गमन कर रहे थे ॥८२॥ उस समय समुद्र, सुन्दर नृत्यमें व्यस्त भुजाओंके समान अपनी चंचल तरंगोंसे शब्दायमान हो रहा था और भगवान्के समीप आनेपर नाना प्रकारके नृत्योंको धारण करनेवाले नर्तकके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥८३॥ उपवनमें पहुँचकर युवा नेमिकुमार शीघ्र ही वनकी लक्ष्मीको देखने लगे और वनके नाना वृक्षोंकी पंक्तियाँ अपनी शाखारूप भुजाएँ फैलाकर नम्रीभूत हो उनपर फूलोंकी अंजलियाँ बिखेरने लगीं ॥८४॥ उसी समय उन्होंने वनमें एक जगह, भयसे जिनके मन और शरीर काँप रहे थे, जो अत्यन्त विह्वल थे, पुरुष जिन्हें रोके हुए थे और जो नाना जातियोंसे युक्त थे ऐसे तृणभक्षी पशुओंको देखा ॥८५॥ यद्यपि भगवान्, अवधिज्ञानसे उन पशुओंको एकत्रित करनेका कारण जानते थे तथापि उन्होंने शीघ्र ही रथ रोककर अपने शब्दसे मेघध्वनिको जीतते हुए, सारथिसे पूछा कि ये नाना जातिके पशु यहाँ किसलिए रोके गये हैं? ॥८६॥ सारथिने नम्रीभूत हो हाथ जोड़कर कहा कि हे विभो! आपके विवाहोत्सवमें जो मांसभोजी राजा आये हैं उनके लिए नाना प्रकारका मांस तैयार करनेके लिए यहाँ पशुओंका निरोध किया गया है ॥८७॥ इस प्रकार सारथिके वचन सुनकर ज्यों ही भगवान्ने मृगोंके समूहकी ओर देखा त्यों ही उनका हृदय प्राणिदयासे सराबोर हो गया। वे अवधिज्ञानी थे ही इसलिए राजकुमारोंकी ओर देखकर इस प्रकार कहने लगे कि वन ही जिनका घर है, वनके तृण और पानी ही जिनका भोजन-पान है और जो अत्यन्त निरपराध हैं ऐसे दीन मृगोंका संसारमें फिर भी मनुष्य वध करते हैं। अहो! मनुष्योंकी निर्दयता तो देखो ॥८८–८९॥ रणके अग्रभागमें जिन्होंने कीर्तिका संचय किया है ऐसे शूरवीर मनुष्य हाथी, घोड़े और रथ आदिपर सवार हो निर्भयताके साथ मारनेके लिए सामने खड़े हुए लोगोंपर ही उनके सामने जाकर प्रहार करते हैं अन्य लोगोंपर नहीं ॥९०॥ जो पुरुष अत्यधिक क्रोधसे युक्त शरभ, सिंह तथा जंगली हाथियों आदिको दूरसे छोड़ देते हैं और मृग तथा खरगोश आदि क्षुद्र प्राणियोंपर प्रहार करते हैं उन्हें लज्जा क्यों नहीं आती? ॥९१॥ अहा! जो शूरवीर पैरमें काँटा न चुभ जाये इस भयसे स्वयं तो जूता पहनते हैं और शिकारके समय कोमल मृगोंको सैकड़ों प्रकारके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारते हैं यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥९२॥ यह निन्द्य मृग-समूहका वध प्रथम तो विषयसुखरूपी फलको देता है परन्तु जब इसका अनुभाग अपना रस देने लगता है तब उत्तरोत्तर छह कायका विघात सहन करना पड़ता है। भावार्थ—हिंसक प्राणी छह काय-के जीवोंमें उत्पन्न होता है और वहाँ नाना जीवोंके द्वारा मारा जाता है ॥९३॥ यह मनुष्य चाहता तो यह है कि मुझे विशाल राज्यकी प्राप्ति हो पर करता है समस्त प्राणियोंका वध सो यह विरुद्ध बात है क्योंकि प्राणिवधका फल तो निश्चय ही पापबन्ध है और उसके फलस्वरूप कटुक फलकी ही प्राप्ति होती है राज्यादिक मधुर फलकी नहीं ॥९४॥ प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और

अनुभाग रूप चार प्रकारके बन्धके वशीभूत हुआ यह प्राणियोंका समूह क्रम-क्रमसे दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करता हुआ नाना प्रकारके दुःख भोगता रहता है ।।९५।। यह प्राणी प्रत्येक भवमें भय और दुःखकी खानसे युक्त विषय-सम्बन्धी खोटे सुखोंसे प्रभावित रहा है और आज मनुष्य-भवमें भी इतना अधिक मोहित हो रहा है कि संसार-सम्बन्धी दुःखको दूर करनेके लिए यत्न ही नहीं करता ।।९६।।

जिस प्रकार सैकड़ों नदियां समुद्रके सन्तोषके लिए नहीं हैं उसी प्रकार बाह्य विषयोंसे उत्पन्न, सन्ततिबद्ध, बहुत भारी संसारसुख भी प्राणीके सन्तोषके लिए नहीं हैं ।।९७।।

औरकी बात जाने दो मैंने स्वयं सागरों पर्यन्त विद्याधरेन्द्र, देवेन्द्र और नरेन्द्रके जन्म-में राजाओं तथा जयन्त विमानमें समुत्पन्न सुखका उपभोग किया है पर वह मेरी तृप्तिके लिए नहीं हुआ ।।९८।। यद्यपि मुझे लोकोत्तर सुख सुलभ है तथापि वह कुछ ही दिन ठहरनेवाला है, निःसार है और मेरी आयु भी असार है अतः वह मेरे लिए तृप्ति करनेवाला कैसे हो सकता है ? ।।९९।। इसलिए मैं इस विनाशीक एवं सन्तापकारी विषयजन्य सुखको छोड़कर महान् उद्यम करता हुआ अत्यधिक तपसे अविनाशी, असन्तापसे उत्पन्न आत्मोत्थ मोक्ष सुखका उपार्जन करता हूँ ।।१००।। भगवान् उस समय मन-वचनसे इस प्रकारका विचार कर ही रहे थे कि उसी समय पंचम स्वर्गमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण तुषित, वह्नि, अरुण, आदित्य आदि लौका-न्तिक देव शीघ्र ही आ पहुँचे और मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे कि हे प्रभो ! इस समय भरतक्षेत्रमें तीर्थ प्रवर्तानेका समय है इसलिए तीर्थप्रवृत्त कीजिए।।१०१–१०२।। भगवान् स्वयं ही मार्गको जानते थे इसलिए लौकान्तिक देवोंके उक्त वचन यद्यपि पुनरुक्त बातका ही कथन करते थे तथापि अवसरपर पुनरुक्तता भी फलीभूत होती है ।।१०३।। मृगोंके हितैषी भगवान्ने शीघ्र ही मृगोंको छोड़ दिया और राजकुमारोंके साथ स्वयं नगरीमें प्रवेश किया। नगरीमें जाकर वे राज्यसिंहासनको अलंकृत करने लगे और इन्द्रोंने पहलेके समान आकर उनकी स्तुति की ।।१०४।। तदनन्तर इन्द्रोंने उन्हें स्नानपीठपर विराजमान कर देवोंके द्वारा लाये हुए क्षीरोदकसे उनका अभिषेक किया और देवोंके योग्य माला, विलेपन, वस्त्र एवं आभूषणोंसे विभूषित किया ।।१०५।। उत्तम सिंहासनके ऊपर विराजमान भगवान्को घेरकर खड़े हुए कृष्ण, बलभद्र आदि अनेक राजा और सुर-असुर ऐसे जान पड़ते थे जैसे प्रथम सुमेरुको घेरकर स्थित कुलाचल ही हों ।। १०६ ।। जिस प्रकार पिंजरेको तोड़कर निकलनेवाले बलवान् सिंहको कोई अनुनय-विनयके द्वारा रोकनेमें समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार तपके लिए जानेके इच्छुक भगवान्को श्रीकृष्ण भोजवंशी तथा यदुवंशी आदि कोई भी रोकनेमें समर्थ नहीं हो सके ।।१०७।।

तदनन्तर संसारकी स्थितिके जानकार जिनेन्द्र भगवान् पिता आदि परिवारके लोगोंको अच्छी तरह समझाकर कुबेररूप शिल्पीके द्वारा निर्मित उत्तरकुरु नामकी पालकीकी ओर पैदल ही चल पड़े ।।१०८।। वह पालकी ध्वजाओं और सफेद छत्रसे मण्डित थी, उत्तम मणिमय दीवालों-से युक्त थी। उत्तमोत्तम बेल-बूटोंसे सहित थी, और विविध रूपको धारण कर रही थी। जिस प्रकार उदयाचलकी भित्तिपर चन्द्रमा आरूढ़ होता है उसी प्रकार भगवान् भी उस पालकीपर आरूढ़ हो गये ।।१०९।। तदनन्तर सबसे पहले कुछ दूर तक पृथिवीपर तो श्रेष्ठ राजा लोगोंने उस कल्याणकारिणी पालकीको उठाया और उसके बाद इन्द्र आदि उत्तमोत्तम देव उसे बड़े हर्षसे आकाशमें ले गये ।।११०।। उस समय आकाशमें तो अत्यधिक आनन्दसे देवोंके द्वारा किया हुआ वह शब्द व्याप्त हो रहा था जो श्रीहीन मनुष्योंके लिए हितकारी नहीं था और नीचे पृथिवी-पर दुःखसे पीड़ित भोजवंशके लोगोंका जोरदार करुणक्रन्दन मुखसे रुदन करनेवाले जगत्के

जीवोंके कर्ण-विवरको प्राप्त कर रहा था ॥१११॥ जिनके शरीरको देवोंका समूह नमस्कार कर रहा था तथा जो निविडताको प्राप्त हुए शान्त रसके समान जान पड़ते थे ऐसे उन भगवान् नेमिनाथके सम्मुख, जिस प्रकार जलके सरोवरके निकट मयूर और सारस नृत्य करते हैं उसी प्रकार अप्सराओंका समूह नाना रसोंको प्रकट करता हुआ बड़ी शीघ्रतासे नृत्य कर रहा था ॥११२॥ इस प्रकार जो पापोंकी सेनाको जीत रहे थे वे जिनेन्द्र भगवान् कमलके समान कान्तिकी धारक हितकारी देवसेनाके साथ सुमेरु पर्वतके समान कान्तिवाले गिरनार पर्वतपर पहुँचे ॥११३॥

जिस पर्वतपर रात्रि और दिनके अन्तमें अर्थात् प्रातःकाल और सायंकालके समय आकाशमें विचरनेवाले एवं अन्धकारसे होनेवाले विशाल भयका अन्त करनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके महान् स्वरूपका दर्शन नहीं हो पाता उस गिरनार पर्वतका यहाँ ऊँचाईमें उदाहरण ही क्या हो सकता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। भावार्थ—यह पर्वत इतना ऊँचा है कि उसपर प्रातःकाल और सायंकालके समय सूर्य और चन्द्रमाका दर्शन ही नहीं हो पाता। वह गिरनार पर्वत कुत्सित फूलोंसे रहित था, और शब्दायमान किरणोंके गिरनेके स्थानमें उड़नेवाले पक्षियों, मुखमें मधुर रसको देनेवाले आम्रलताके फलों एवं फूलोंसे लदे नाना प्रकारके वृक्षोंसे अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥११४-११५॥

तदनन्तर जो मणियों और सुवर्णके कारण सुमेरु गिरिके समान जान पड़ता था, जो नाना प्रकारकी धातुओंके रंगके समूहसे उपलक्षित भूमिको धारण कर रहा था, जो अपने शिखरोंसे किन्नर देवोंको अनुरक्त कर रहा था, और जो वनकी वसुधासे मनुष्य तथा देवोंकी बुद्धिको हरण कर रहा था ऐसे गिरनार पर्वतके उस निष्कलंक उपवनमें जिसमें कि वानरसे रहित एकाकी सिंह विचरण करता था विष्णु-कृष्णसहित इन्द्रने वीतराग जिनेन्द्रकी सम्मति पाकर वह पालकी रख दी ॥११६-११७॥ उस उपवनमें पहुँचकर भगवान्‌ने विशाल तप धारण करनेके उद्देश्यसे देवोंको हर्षित करनेवाले पृथ्वीपर विद्यमान पालकी रूपी आसनको छोड़ दिया और स्वयं पृथ्वीतलकी मायाका परित्याग करनेके लिए नमिनाथ भगवान्‌के समान शिलातलपर जा पहुँचे ॥११८॥ तदनन्तर जो अतिशय बुद्धिमान् थे, जिनकी पद्मासन और धीरता अत्यन्त शोभायमान थी तथा जो प्रियस्त्री, एवं राज्यलक्ष्मीके त्यागकी बुद्धिमें रत—लीन थे ऐसे भगवान् नेमिनाथने परदाके अन्दर माला, वस्त्र और सब अलंकार उतारकर परिग्रहसे रहित तथा दयासे युक्त होकर कोमल अंगुलियोंसे युक्त सुदृढ़ पंचमुट्ठियोंसे उन सघन केशोंको तत्काल उखाड़कर फेंक दिया जो अत्यन्त सुन्दर और काले थे एवं अतिशय भीरु मनुष्य ही अपने शरीर-में जिनका चिरकाल तक स्थान बनाये रखते हैं ॥११९-१२०॥ भगवान् नमिनाथने जिस तपको धारण किया था उसी तपको एक हजार राजाओंने भी भगवान् नेमिनाथके साथ धारण किया था उस समय मानरहित भगवान्‌को सूर्यका आताप सन्तप्त नहीं कर सका था क्योंकि इन्द्रके द्वारा लगाये हुए छत्रसे वह रुक गया था अथवा छत्ररूपी जल वहाँ पड़ रहा था उसके प्रभावसे सूर्यजन्य आताप उन्हें दुखी करनेमें समर्थ नहीं हो सका था ॥१२१॥ उस समय क्रोधरहित इन्द्रिय-दमनसे युक्त अपने आपके द्वारा शिरपर बद्ध कुटिल केशोंको उखाड़ता हुआ राजाओंका समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो चिरकालसे साथ लगी हुई कुटिल शल्योंकी परम्पराको ही उखाड़कर फेंक रहा हो ॥१२२॥ इन्द्रने भगवान्‌के केशोंको इकट्ठा कर मणिसमूहकी किरणोंसे सुशोभित पिटारेमें रखकर उन्हें क्षीरसागरमें क्षेप दिया। उस समय भगवान् अतिशय तेजसे युक्त शरीर धारण कर रहे थे ॥१२३॥ भगवान् नेमिनाथने जिस स्थानपर जीवदयाकी रक्षा करनेवाला, एवं अत्यन्त पवित्र, वस्त्ररूप परिग्रहका त्याग किया था वह शीघ्र ही संसारमें शास्त्र-सम्मत

तदनन्तर जब पापरहित भगवान् आहार लेनेके लिए द्वारिकापुरीमें आये तब उत्तम तेजके धारक प्रवरदत्तने उन्हें उत्तम खीरका आहार देकर देवसमूहके द्वारा महिमासे युक्त, हितकारी अद्भुत महिमा—प्रतिष्ठा प्राप्त की ॥१२९॥ जब भगवान् नेमिनाथ किये हुए उस हितकारी मार्गमें तपस्या करने लगे तब अपार वियोगसे युक्त राजपुत्री राजीमती अपने लज्जापूर्ण चेष्टासे युक्त मनमें दिनके समय सूर्यके संयोगसे सहित कुमुदिनीके समान सन्तापको धारण करने लगी ॥१३०॥ राजीमती, प्रबल शोकके वशीभूत थी, निरन्तर विलाप करती रहती थी, उसके आभूषण और केशोंका समूह शिथिल हो गया था तथा वह करुण शब्दोंसे आकाश और पृथ्वीके विशाल अन्तरालको व्याप्त करनेवाले परिजनोंसे घिरकर अत्यधिक रोती रहती थी ॥१३१॥ नितम्ब और स्थूल स्तनों से सुन्दर तथा अश्रुकणोंसे व्याप्त हारको धारण करनेवाली वह राजीमती कभी तो वरको हरनेवाले अपने दुर्दैवको उलाहना देती थी और कभी अत्यन्त मनोहर वरको दोष देती थी ॥१३२॥ तदनन्तर तप धारण करनेकी प्रेरणा देनेवाले गुरुजनोंके उन हितकारी वचनोंसे जब उसके शोकका भार शान्त हो गया तब उसने अपाय-बाधासे रहित, शान्तिरूप सुखके दायक, एवं दुर्भाग्यको दूर करनेवाले तपमें बुद्धि लगायी—तप धारण करनेका विचार किया ॥१३३॥ हाथों और पाँवोंकी कान्तिसे सुन्दर कमल सम्बन्धी शोभाके समूहको धारण करनेवाली राजमतीने जो वृत्त—चारित्र धारण किया है वह उसके ताप—दुःखको अन्त करनेवाला हे ऐसा जानकर अन्तमें उसके कुटुम्बोजन मानसिक सन्तापके अन्त-

प्रसिद्ध तीर्थस्थान बन गया ॥१२४॥ उस समय चार ज्ञानसे सुशोभित, करोड़ों देवरूपी महाकवियोंसे विभूषित और परिग्रहरहित मनुष्योंको संसारसे तारनेवाले भगवान् अनेक मुनियोंके बीच, ग्रहों और ताराओंके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१२५॥ अतिथि भगवान्ने सावन सुदी चौथके दिन बेलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की थी इसलिए उस दिन अनेक उत्तम वस्तुओंका त्याग करनेवाले मनुष्य, देव तथा असुरोंने दीक्षा कल्याणकका उत्सव किया था ॥१२६॥

तदनन्तर सुर और असुर भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लगे—हे भगवन् ! आप कामदेवका पराजय करनेमें समर्थ हैं, हितकारी चेष्टाओंसे युक्त संसारी प्राणियोंके शरणभूत हैं—रक्षक हैं, क्रोधसे रहित हैं, तृष्णासे रहित हैं, उत्तम नयमें स्थित हैं—नयका पालन करनेवाले हैं और मुनि हैं—मनन-शील हैं अतः आपको नमस्कार हो। इस प्रकार साथ-साथ स्तुति कर तथा सब ओरसे नमस्कार कर अपने हृदयोंमें तपस्वी नेमिनाथ भगवान्को धारण करनेवाले एवं चक्रमें स्थित नेमि–चक्रधाराके समान प्रवर्तक राजा तथा सुर-असुर अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१२७–१२८॥

को प्राप्त हुए ॥१३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि ये स्त्रियां नाना दुःख उठाती हैं। सबसे पहले तो इन्हें परतन्त्रताका विशिष्ट दुःख है, फिर पतिके दुर्लभ होनेपर शरीरको शून्य—व्यर्थ समझती हैं। फिर सपत्नीके होनेका, ऋतुमती होनेका, वन्ध्या होनेका, विधवा होनेका, प्रसूतिकालमें रोग हो जानेका, अन्धा होनेका, दौर्भाग्य होनेका, भाग्यहीन पतिके मिलनेका, लड़कोलड़की ही, गर्भमें आनेका, बार-बार मृत सन्तानके होनेका, बिलकुल अनाथ हो जानेका, गर्भ धारण करनेका, पतिके जीवित रहते हुए भी उसके साथ वियोग होनेका, अथवा किसी मर्मान्तक रोगके हो जानेका दुःख सहन करती है ॥१३५–१३६॥ जिस प्रकार आतान-वितानभूत तन्तु वस्त्रके स्वतन्त्र कारण हैं, उसी प्रकार मिथ्यादर्शन स्त्रीपर्यायका स्वतन्त्र कारण है, इसलिए

सेवनीय शक्तिके धारक भव्य-जीवोंको स्त्री-सम्बन्धी दुःखोंका अन्त करनेवाले सम्यग्दर्शनकी सेवा करनी चाहिए ।।१३७।।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें भगवान्के दीक्षा-कल्याणका वर्णन करनेवाला पचपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।५५।।

□

सर्ग- ५६

अथानन्तर—व्रत गुप्ति और समितियोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त एवं परीषहोंको सहन करनेवाले मुनिराज नेमिनाथ रत्नत्रय और तपरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित होने लगे ॥१॥ उज्ज्वल बुद्धिके धारक भगवान्, आर्त और रौद्र नामक अप्रशस्त ध्यानको छोड़कर धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान नामक प्रशस्त ध्यानोंका ध्यान करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २ ॥ उत्तमसंहननके धारक पुरुषकी चिन्ताका किसी एक पदार्थमें अन्तर्मुहूर्तके लिए रुक जाना सो ध्यान है और चिन्ताका अर्थ चंचल मन है ॥ ३ ॥ पीड़ाको आर्ति कहते हैं। आर्तिके समय जो ध्यान होता है उसे आर्तध्यान कहते हैं। यह आर्तध्यान अत्यन्त कृष्ण, नील और कापोत लेश्याके बलसे उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे आर्तध्यान दो प्रकारका है। उनमें रोना आदि तथा दूसरेकी लक्ष्मी देखकर आश्चर्य करना और विषयोंमें आसक्त होना आदि बाह्य आर्तध्यान है ॥ ५ ॥ अपने-आपका आर्तध्यान स्वसंवेदनसे जाना जाता है और दूसरोंका अनुमानसे। आभ्यन्तर आर्तध्यानके चार भेद हैं जो नीचे लिखे अनुसार अपने-अपने लक्षणोंसे सहित हैं ॥ ६ ॥ अभीष्ट वस्तुकी उत्पत्ति न हो ऐसा चिन्तवन करना सो पहला आर्तध्यान है। यदि अनिष्ट वस्तु उत्पन्न हो चुकी है तो उसके वियोगका बार-बार चिन्तवन करना दूसरा आर्तध्यान है। इष्ट विषयका कभी वियोग न हो ऐसा चिन्तवन करना सो तीसरा आर्तध्यान है और इष्ट विषयका यदि वियोग हो गया है तो उसके अन्तका विचार करना यह चौथा आर्तध्यान है ॥७–८॥ अमनोज्ञ दुःखके बाह्य साधन चेतन और अचेतनके भेदसे दो प्रकारके हैं। उनमें मनुष्य आदि तो चेतन साधन हैं और विष-शस्त्र आदि अचेतन साधन हैं ॥ ९ ॥ अन्तरंग साधन भी शारीरिक और मानसिकके भेदसे दो प्रकारका है। वात आदिके प्रकोपसे उत्पन्न उदर-शूल, नेत्र-शूल, दन्त-शूल आदि नाना प्रकारकी दुःसह बीमारियाँ शारीरिक साधन हैं ॥१०॥ और शोक, अरति, भय, उद्वेग, विषाद आदि विषसे दूषित जो जुगुप्सा तथा दौर्मनस्य—बेचैनी आदि विकार हैं वे मानसिक दुःखके साधन हैं ॥११॥ 'सभी प्रकारके अमनोज्ञ—अनिष्ट विषयोंकी उत्पत्ति नहीं हो' इस प्रकार बार-बार चिन्ता करना सो पहला मलिन आर्तध्यान है ॥१२॥ यदि किसी प्रकारके अमनोज्ञ—अनिष्ट विषयकी उत्पत्ति हो गयी है तो उसका अभाव किस प्रकार होगा ? इसी बातका निरन्तर संकल्प करना दूसरा आर्तध्यान कहा गया है ॥१३॥ मनोज्ञ सुखके बाह्य साधन चेतन-अचेतनके भेदसे दो प्रकारके हैं। उनमें पशु, स्त्री, पुत्र आदि सचेतन साधन हैं और धन-धान्यादि अचेतन साधन हैं ॥१४॥ आभ्यन्तर साधन भी शारीरिक और मानसिकके भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमें पित्त आदिकी समतासे जो आरोग्य अवस्था है वह शारीरिक साधन है और रति, अशोक, अभय आदिसे उत्पन्न जो सौमनस्य आदि है वह मानसिक साधन है ॥१५॥ मुझे इस लोक-सम्बन्धी और परलोक-सम्बन्धी इष्ट विषयका वियोग न हो ऐसा संकल्प करना तीसरा आर्तध्यान कहलाता है ॥१६॥ और पहले उत्पन्न इष्ट विषयके वियोगके अभावका संकल्प करना—बार-बार चिन्तवन करना चौथा आर्तध्यान है ॥१७॥ इस आर्तध्यानका आधार प्रमाद है, फल तिर्यंच गति है। यह परोक्ष क्षायोपशमिक भाव है और पहलेसे लेकर छठे गुणस्थान तक पाया जाता है ॥१८॥

क्रूर अभिप्रायवाले जीवको रुद्र कहते हैं। उसके जो ध्यान होता है वह रौद्रध्यान कहलाता है। यह हिंसानन्द, चौर्यानन्द, मृषानन्द और परिग्रहानन्दके भेदसे चार प्रकारका है ॥१९॥ जिनको हिंसा आदिमें आनन्द अर्थात् अभिरुचि होती है वे संक्षेपसे हिंसानन्द आदि कहे जाते हैं ॥२०॥ बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे रौद्रध्यानके दो भेद हैं। उनमें क्रूर व्यवहार करना तथा गाली आदि अशिष्ट वचन बकना, बाह्य रौद्रध्यान है। अपने-आपमें पाया जानेवाला रौद्र-ध्यान स्वसंवेदनसे जाना जाता है—स्वयं ही अनुभवमें आ जाता है और दूसरेमें पाया जाने-वाला रौद्रध्यान अनुमानसे जाना जाता है। हिंसा आदि कार्योंमें जो संरम्भ, समारम्भ और आरम्भरूपी प्रवृत्ति है वह आभ्यन्तर आर्तध्यान है। इसके हिंसानन्द आदि चार भेद हैं जिनके लक्षण इस प्रकार हैं। हिंसामें तीव्र आनन्द मानना सो हिंसानन्द नामक पहला रौद्रध्यान है ॥२१-२२॥ श्रद्धान करने योग्य पदार्थोंके विषयमें अपनी कल्पित युक्तियोंसे दूसरोंको ठगनेका संकल्प करना मृषानन्द नामका दूसरा रौद्र ध्यान है ॥२३॥ प्रमादपूर्वक दूसरेके धनको जबरदस्ती हरनेका अभिप्राय रखना सो स्तेयानन्द नामका तीसरा रौद्रध्यान कहा गया है ॥२४॥ और चेतन, अचेतन दोनों प्रकारके परिग्रहकी रक्षाका निरन्तर अभिप्राय रखना तथा मैं इसका तथा मैं इसका स्वामी हूँ और यह मेरा स्व है इस प्रकार बार-बार चिन्तवन करना सो परिग्रह संरक्षणानन्द नामका चौथा रौद्रमें चारों प्रकारका ध्यान है ॥२५॥ यह रौद्रध्यान तीव्र कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्याके बलसे होता है, प्रमादसे सम्बन्ध रखता है और नीचेके पाँच गुण स्थानोंमें होता है ॥२६॥ इसका काल अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि इससे अधिक एक पदार्थमें उपयोगका स्थिर होना दुर्धर है। यह परोक्ष ज्ञानसे होता है अतः क्षयोपशमभाव रूप है ॥२७॥ भावलेश्या और कषायके आधीन होता है इसलिए औदायिकभाव रूप भी है। इस ध्यानका उत्तर फल नरकगति है ॥२८॥ जो पुरुष मोक्षाभिलाषी हैं वे आर्तरौद्र नामक दोनों अशुभ ध्यानोंको छोड़ शुद्ध भिक्षा-को ग्रहण करनेवाले भिक्षु-मुनि होकर धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें अपनी बुद्धि लगावें ॥२९॥ जिस समय एकान्त, प्रासुक तथा क्षुद्र जीवोंके उपद्रवसे रहित क्षेत्र, दिव्य संहनन—आदिके तीन संहनन रूप द्रव्य, उष्णता आदिकी बाधासे रहित काल और निर्मल अभिप्राय रूप श्रेष्ठभाव, इस प्रकार क्षेत्रादि चतुष्टय रूप सामग्री मुनिको उपलब्ध होती है तब समस्त बाधाओंको सहन करनेवाला मुनि प्रशस्त ध्यानका आरम्भ करता है ॥३०-३१॥ ध्यान करनेवाला पुरुष, गम्भीर, निश्चल शरीर और सुखद पर्यंकासनसे युक्त होता है। उसके नेत्र न तो अत्यन्त खुले होते हैं और न बन्द ही रहते हैं ॥३२॥ नीचेके दांतोंके अग्रभागपर उसके ऊपरके दाँत स्थित वह इन्द्रियोंके समस्त व्यापारसे निवृत्त हो चुकता है, श्रुतका पारगामी होता है, धीरे-धीरे श्वासोच्छ्वासका संचार करता है ॥३३॥ मोक्षका अभिलाषी मनुष्य अपनी मनोवृत्तिको नाभिके ऊपर मस्तकपर, हृदयमें अथवा ललाटमें स्थिर कर आत्माको एकाग्र करता हुआ धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान इन दो हितकारी ध्यानोंका चिन्तवन करता है ॥३४॥ बाह्य और आध्यात्मिक भावोंका जो यथार्थ-भाव है वह धर्म कहलाता है, उस धर्मसे जो सहित है उसे धर्म्यध्यान कहते हैं ॥३५॥ बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे धर्म्यध्यानका लक्षण दो प्रकारका है। शास्त्रके अर्थकी खोज करना, शीलव्रतका पालन करना, गुणोंके समूहमें अनुराग रखना, अँगड़ाई, जमुहाई, छींक, डकार और श्वासोच्छ्वासमें मन्दता होना, शरीरको निश्चल रखना तथा आत्माको व्रतोंसे युक्त करना, यह धर्म्यध्यानका बाह्य लक्षण है। और आभ्यन्तर लक्षण अपाय विचय आदिके भेदसे *दश प्रकार-का है। इनमें अपायका अर्थ त्याग है और मीमांसाका अर्थ विचार है ॥३६-३८॥ मन, वचन और काय इन तीन योगोंकी प्रवृत्ति ही प्रायः संसारका कारण है सो इन प्रवृत्तियोंका मेरे अपाय—त्याग किस प्रकार हो सकता है? इस प्रकार शुभ लेश्यासे अनुरंजित जो चिन्ताका

प्रबन्ध है वह अपाय विचय नामका प्रथम धर्म्यध्यान माना गया है ॥३९-४०॥ पुण्यरूप योग प्रवृत्तियोंको अपने आधीन करना उपाय कहलाता है। यह उपाय मेरे किस प्रकार हो सकता है इस प्रकारके संकल्पोंकी जो सन्तति है वह उपाय विचय नामका दूसरा धर्म्यध्यान है ॥४१॥ द्रव्यार्थिक नयसे जीव अनादि निधन हैं—आदि-अन्तसे रहित हैं और पर्यायार्थिक नयसे सादि-सनिधन हैं। असंख्यात प्रदेशी हैं, अपने उपयोगरूप लक्षणसे सहित हैं, शरीररूप अचेतन उपकरणसे युक्त हैं और अपने द्वारा किये हुए कर्मके फलको भोगते हैं....इत्यादि रूपसे जीवका जो ध्यान करना है वह जीव विचय नामका तीसरा धर्म्यध्यान है ॥४२-४३॥ धर्म-अधर्म आदि अजीव द्रव्योंके स्वभावका चिन्तन करना यह अजीव विचय नामका चौथा धर्म्यध्यान है ॥४४॥ ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग रूप चार प्रकारके बन्धोंके विपाक-फलका विचार करना सो विपाक विचय नामका पाँचवाँ धर्म्यध्यान है ॥४५॥ शरीर अपवित्र है और भोग किंपाक फलके समान तदात्व मनोहर हैं इसलिए इनसे विरक्त बुद्धिका होना ही श्रेयस्कर है " इत्यादि चिन्तन करना सो विराग विचय नामका छठा धर्म्यध्यान है ॥४६॥ चारों गतियोंमें भ्रमण करनेवाले इन जीवोंकी मरनेके बाद जो पर्याय होती है उसे भव कहते हैं। यह भव दुःखरूप है। इस प्रकार चिन्तवन करना सो भव विचय नामका सातवाँ धर्म्य-ध्यान है ॥४७॥ यह लोकाकाश अलोकाकाशमें स्थित है तथा चारों ओरसे तीन वातवलयोंसे वेष्टित है इत्यादि लोकके संस्थान-आकारका विचार करना सो संस्थान विचय नामका आठवाँ धर्म्यध्यान है ॥४८॥ जो इन्द्रियोंसे दिखाई नहीं देते ऐसे बन्ध, मोक्ष आदि पदार्थोंमें जिनेन्द्र भगवान्की आज्ञाके अनुसार निश्चयका ध्यान करना सो आज्ञा विचय नामका नौवाँ धर्म्यध्यान है ॥४९॥ और तर्कका अनुसरण करनेवाले पुरुष स्याद्वादकी प्रक्रियाका आश्रय लेते हुए समीचीन मार्गका आश्रय करते हैं—उसे ग्रहण करते हैं, इस प्रकार चिन्तवन करना सो हेतु विचय नामका दसवाँ धर्म्यध्यान है ॥५०॥ यह दश प्रकारका धर्म्यध्यान अप्रमत्त गुणस्थानमें होता है, प्रमादके अभावसे उत्पन्न होता है पीत और पद्मनायक शुभ लेश्याओंके बलसे होता है, काल और भावके विकल्पमें स्थित है तथा स्वर्ग और मोक्षरूप फलको देनेवाला है। ध्यानमें तत्पर मनुष्योंको यह ध्यान अवश्य ही करना चाहिए। भावार्थ—यहाँ उत्कृष्टताकी अपेक्षा धर्म्यध्यानको सातवें अप्रमत्त-गुणस्थानमें बताया है परन्तु सामान्य रूपसे यह चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर सातवें गुणस्थान तक होता है और स्वर्गका साक्षात् तथा मोक्षका परम्परासे कारण है ॥५१-५२॥

जो शुचित्व अर्थात् शौचके सम्बन्धसे होता है वह शुक्लध्यान कहलाता है। दोष आदिकका अभाव हो जाना शौच है। यह शुक्ल और परम शुक्लके भेदसे दो प्रकार है तथा शुक्ल और परम शुक्ल दोनोंके दो-दो भेद माने गये हैं ॥५३॥ पृथक्त्व वितर्क वीचार और एकत्व वितर्क ये दो भेद शुक्लध्यानके हैं और सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति तथा व्युपरत क्रिया निवर्ति ये दो परम शुक्लध्यानके भेद हैं ॥५४॥ वाह्य और आध्यात्मिकके भेदसे शुक्लध्यानका लक्षण दो प्रकारका कहा गया है। इनमें श्वासोच्छ्वासके प्रचारकी अव्यक्त अथवा उच्छिन्नदशासे युक्त मनुष्यके जो अँगड़ाई और जमुहाई आदिका छूट जाना है वह बाह्य लक्षण हैं एवं अपने-आपको जिसका स्वसंवेदन होता है तथा दूसरेको जिसका अनुमान होता है वह आध्यात्मिक लक्षण है। आगे उन शुक्ल और परम शुक्ल ध्यानोंका आध्यात्मिक लक्षण कहा जाता है ॥५५-५६॥ पृथग्भाव अथवा नानात्वको पृथक्त्व कहते हैं। निर्दोष द्वादशांग-श्रुतज्ञान वितर्क कहलाता है। अर्थ, व्यंजन (शब्द) और योगोंका जो क्रमसे संक्रमण होता है उसे वीचार कहते हैं। जिस पदार्थका ध्यान किया जाता है वह अर्थ कहलाता है, उसके प्रतिपादक शब्दको व्यंजन कहते हैं और वचन आदि योग हैं ॥५७-५८॥ जिसमें वितर्क (द्वादशांग) के अर्थादिमें क्रमसे नानारूप

परिवर्तन हो वह पृथक्त्ववितर्क वीचार नामका पहला शुक्लध्यान माना जाता है ॥५९॥ इसका स्पष्टीकरण यह है कि निश्चल चित्रका धारक कोई पूर्वविद् मुनि द्रव्याणु अथवा भावाणुका अवलम्बन कर ध्यान कर रहा है सो जिस प्रकार कोई अतीक्ष्ण—भोथले शस्त्रसे किसी वृक्षका धीरे-धीरे काटता है उसी प्रकार वह विशुद्धताका वेग कम होनेसे मोहनीय कर्मके उपशम अथवा शमको धीरे-धीरे करता है। कर्मोंकी अत्यधिक निर्जराको करता हुआ वह मुनि द्रव्यसे द्रव्यान्तरको, पर्यायसे पर्यायान्तरको, व्यंजनसे व्यंजनान्तरको और योगसे योगान्तरको प्राप्त होता है ॥६०-६२॥ वह प्रथम शुक्लध्यान शुक्लतर लेश्याके बलसे होता है। उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी— दोनों गुणस्थानोंमें होता है। क्षायोपशमिक भावसे सहित है। समस्त पूर्वोंके ज्ञाता मुनिके यह ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक रहता है तथा दोनों श्रेणियोंके वशसे यह स्वर्ग और मोक्ष रूप फलको देनेवाला है। भावार्थ—उपशम श्रेणीमें होनेवाला शुक्लध्यान स्वर्गका कारण है और क्षपकश्रेणीमें होनेवाला मोक्षका कारण है ॥६३–६४॥

जिसमें वीचार—अर्थादिके संक्रमणसे रहित होनेके कारण एक रूपमें ही वितर्कका उपयोग होता है अर्थात् वितर्कके अर्थ एवं व्यंजन आदिपर अन्तर्मुहूर्त तक चित्तकी गति स्थिर रहती है वह एकत्व वितर्क वीचार नामका दूसरा शुक्लध्यान है ॥६५॥ यह ध्यान एक ही अणु अथवा पर्यायको विषय कर प्रवृत्त होता है। मोह आदि घातिया कर्मोंका घात करनेवाला है, पूर्व धारीके होता है और इस ध्यानके प्रभावसे ध्यान करनेवाला कुशल मुनि ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, वीर्य और चारित्र आदि क्षायिक भावोंसे सुशोभित होने लगता है। अब वह तीर्थंकर अथवा सामान्य केवली हो जाता है। वह सबके द्वारा पूज्य एवं सेवनीय हो जाता है और तीन लोकोंका परमेश्वर हो उत्कृष्ट रूपसे देशोन कोटिवर्ष पूर्व तक विहार करता रहता है ॥६६–६८॥

जब उन केवली भगवान्‌की आयु अन्तर्मुहूर्तकी शेष रह जाती है तथा आयुके बराबर ही वेदनीय आदि तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति अवशिष्ट रहती है तब वे समस्त वचन योग, मनोयोग और स्थूल काय योगको छोड़कर स्वभावसे ही सामान्य शुक्लकी अपेक्षा तीसरे और विशेष—परमशुक्लकी अपेक्षा प्रथम सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामक ध्यानको प्राप्त करने योग्य होते हैं ॥६९-७१॥ जब उन केवली भगवान्‌की स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी हो और शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति अधिक हो तब वे स्वभाववश अपने-आप चार समयों द्वारा आत्मप्रदेशोंको फैलाकर दण्ड, कपाट, प्रतर और लोक पूरण कर तथा उतने ही समयोंमें उन्हें संकुचित कर सब कर्मोंकी स्थिति एक बराबर कर लेते हैं। इस क्रियाके समय उनका उपयोग विशेष अपने-आपमें होता है, वे विशिष्ट करण अर्थात् भावका अवलम्बन करते हैं, सामायिक भावसे युक्त होते हैं, महासंवरसे सहित होते हैं—नवीन कर्मोंका आस्रव प्रायः बन्द कर देते हैं और सत्तामें स्थित कर्मोंके नष्ट करने तथा उदयावलीमें लानेमें समर्थ रहते हैं। यह सब करनेके बाद जब वे पुनः पूर्व शरीर प्रमाण हो जाते हैं तब प्रथम परम शुक्लध्यानको पूर्ण कर द्वितीय परमशुक्लध्यानको प्राप्त होते हैं ॥७२-७६॥ आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दरूप योग तथा कायबल आदि प्राणोंके समुच्छिन्न—नष्ट हो जानेसे यह ध्यान समुच्छिन्नक्रिय नामसे कहा गया है ॥७७॥ इस ध्यानके समय यत्नपूर्वक समस्त कर्मोंके बन्ध और आस्रवोंका निरोध हो चुकता है। ध्याता अयोग—योगरहित हो जाता है और उसके मोक्षका साक्षात् कारण परम यथाख्यातचारित्र प्रकट हो जाता है ॥७८॥ वह अयोगकेवली आत्मा, समस्त कर्मोंको नष्ट कर सोलहवानीके स्वर्णके समान प्रकट हुई चेतनाशक्तिसे देदीप्यमान हो उठता है ॥७९॥ इसी समय वह सिद्ध होता हुआ अनादि सिद्ध ऊर्ध्वगमन स्वभाव, पूर्व प्रयोग, असंगत्व और बन्धच्छेद रूप हेतुओंसे अग्निशिखा,

आविद्धकुलालचक्र, व्यपगतलेपालाबु और एरण्डबीजके समान ऊपरको जाता हुआ एक समय मात्रमें ऊर्ध्वलोकके अन्तमें पहुँच जाता है ।।८०-८१।। धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे सिद्धात्मा लोकान्तको उल्लंघन कर आगे नहीं जाता। वह उसी स्थानपर अनन्त सुखका उपभोग करता हुआ विराजमान हो जाता है ।।८२।। चारों वर्गोंमें प्राणियोंके लिए मोक्ष ही अतिशय हितकारी है, अपने समस्त कर्मोंका क्षय हो जाना मोक्षका लक्षण है और ऐसा मोक्ष ऊपर कहे हुए समीचीन ध्यानसे ही प्राप्त होता है ।।८३।। कर्मप्रकृतियोंका अभाव हो जाना ही अनन्त सुखका देनेवाला मोक्ष है। वह कर्म प्रकृतियोंका अभाव यत्नसाध्य तथा अयत्नसाध्यकी अपेक्षा दो प्रकारका है। चरमशरीरी जीवके भुज्यमान आयुको छोड़कर अन्य आयुओंका जो अभाव है वह अयत्नसाध्य अभाव है क्योंकि इनकी सत्ता पहलेसे आती नहीं है और चरमशरीरीके नवीन बन्ध होता नहीं है। अब यत्नसाध्य प्रकृतियोंका अभाव किस तरह होता है यह कहते हैं ।।८४-८५।। असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्त संयत नामक सातवें गुणस्थान तक किसी गुणस्थानमें कर्मभूमिका मनुष्य मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर विशुद्ध बुद्धिका धारक होता हुआ सूर्यके समान क्षायिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है ।।८६-८७।। तदनन्तर सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मनुष्य क्षपक श्रेणीमें चढ़कर अथाप्रवृत्तकरण (अधःप्रवृत्तकरण) को करके उसके बाद अपूर्वकरणको करता है ।।८८।। फिर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होकर पापप्रकृतियोंकी स्थिति तथा अनुभागको क्षीण करता हुआ अनिवृत्तिकरणको प्राप्त होता है ।।८९।। तदनन्तर अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थानमें क्षपक संज्ञाको प्राप्त होता हुआ कर्मप्रकृतिरूप वनको शुक्लध्यानरूपी अग्निसे आक्रान्त करता है ।।९०।। फिर सत्तामें स्थित निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जातियाँ, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण इन सोलह प्रकृतियोंका एक साथ क्षय करता है ।।९१-९२।। इसी गुणस्थानमें सोलह प्रकृतियोंके क्षयके बाद अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण नामक आठ कषायोंको नष्ट करता है। फिर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदको नष्ट कर हास्यादि छह नोकषायोंको पुंवेदमें डालकर एक साथ नष्ट करता है। फिर पुंवेदको संज्वलन क्रोधरूपी अग्निमें, संज्वलन क्रोधको संज्वलन मानमें, संज्वलन मानको संज्वलन मायामें और संज्वलन मायाको संज्वलन लोभमें डालकर क्रमसे दग्ध करता है ।।९३-९५।। फिर संज्वलन लोभको और भी सूक्ष्म कर सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुणस्थानमें पहुँचता है। इसके अन्तमें संज्वलन लोभका अन्त कर मोहकर्मका बिलकुल अभाव कर चुकता है ।।९६।। फिर क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती होकर एकत्ववितर्क नामक शुक्लध्यानरूपी अग्निसे इसके उपान्त्य समयमें निद्रा और प्रचलाको तथा अन्त समयमें ज्ञानावरण और अन्तरायकी पाँच-पाँच और दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंको जलाकर सयोगकेवली होता है ।।९७-९८।। तदनन्तर सयोगकेवली गुणस्थानको उल्लंघ कर जब आगामी गुणस्थानको प्राप्त होता है तब अयोगकेवली होकर अर्हन्त अवस्थाके उपान्त्य समयमें सातावेदनीय और असातावेदनीयमेंसे कोई एक, देवगति, औदारिक शरीरको आदि लेकर पांच शरीर, पाँच संघात, पाँच बन्धन, औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन अंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, पांच वर्ण, पाँच रस, आठ स्पर्श, दो गन्ध, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उच्छ्वास, परघात, उपघात, प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकारकी विहायोगति, प्रत्येक शरीर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र इन बहत्तर प्रकृतियोंको नष्ट करता है ।।९९-१०६।। फिर अन्त समयमें सातावेदनीय, असातावेदनीयमें-से एक, मनुष्य आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, उच्चगोत्र, यशस्कीर्ति और तीर्थंकर इन तेरह प्रकृतियोंको नष्ट करता है। अयोगकेवली गुणस्थानमें यह जीव

प्रदेशपरिस्पन्दका अभाव हो जानेके कारण स्वभावसे स्थिर रहता है ॥१०७-१०९॥ अ इ उ ऋ लृ इन पाँच लघु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है उतने काल तक चौदहवें गुणस्थानमें रहकर यह जीव सिद्ध हो जाता है। जीवकी यह सिद्धि सादि तथा अनन्त है और अनन्त गुणोंके सन्निधानसे युक्त है ॥११०॥

भगवान् नेमिनाथने धर्म्यध्यानके पूर्वोक्त दस भेदोंका यथायोग्य ध्यान करते हुए, छद्मस्थ अवस्थाके छप्पन दिन समीचीन तपश्चरणके द्वारा व्यतीत किये ॥१११॥ तदनन्तर आश्विन शुक्ल प्रतिपदाके दिन प्रातःकालके समय भगवान्‌ने शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा चार घातियारूपी महावनको जलाकर तीन लोकके इन्द्रोंके आसन कँपा देनेवाले एवं अन्य जनदुर्लभ, केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अनन्तचतुष्टय प्राप्त किये ॥११२-११३॥ घण्टाओंके शब्द, विशाल सिंहनाद, दुन्दुभियोंके स्पष्ट शब्द और शंखोंकी भारी आवाजसे समस्त देवोंने शीघ्र ही निश्चय कर लिया कि जिनेन्द्र भगवान्‌को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है तथा इन्द्रोंने भी सिंहासन और उन्नत मुकुटोंके कम्पित होनेसे अपने-अपने अवधिज्ञानका प्रयोग कर उक्त बातका ज्ञान कर लिया। तदनन्तर तीनों लोकोंके इन्द्र, समुद्रोंके समूहको क्षुभित करनेवाली अपनी-अपनी सेनाओंके साथ गिरनार पर्वतकी ओर चल पड़े ॥११४॥

उस समय इन्द्रोंने अवार्य वेगसे युक्त वाहनोंके समूह और सात प्रकारकी अनेक सेनाओंसे आकाशरूपी समुद्रको व्याप्त कर दिया और आकर गिरनार पर्वतकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उस समय वह पर्वत, ऊँचे शिखरका अभिमान धारण करनेवाले गिरिराज—सुमेरु पर्वतको भी जीत रहा था क्योंकि सुमेरु पर्वतपर तो भगवान्‌का मात्र जन्मकल्याणक सम्बन्धी अभिषेक हुआ था और गिरनार पर्वतपर दीक्षाकल्याणकके बाद पुनः ज्ञानकल्याणक होनेसे अनेक गुण प्रकट हुए थे ॥११५॥ देवलोग, दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले मन्दार आदि वृक्षोंके फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवांगनाओंके सुन्दर संगीतसे मिश्रित दुन्दुभियोंके शब्द संसारको मुखरित करने लगे। लोगोंके शोकको नष्ट करनेवाला फल और फूलोंसे युक्त अशोक वृक्ष प्रकट हो गया। तीन लोकको विभुताके चिह्नस्वरूप श्वेत छत्रत्रय सिरपर फिरने लगे। हंसावलीके पातके समान सुशोभित एवं पर्वतको भूमिको सफेद करनेवाले हजारों चमर ढुलने लगे। अपनी कान्तिसे देदीप्यमान सूर्यकी प्रभाके समूहको पराजित करनेवाला भामण्डल प्रकट हो गया। नाना रत्नसमूहकी किरणोंसे इन्द्रधनुषको उत्पन्न करनेवाला स्वर्ण-सिंहासन आविर्भूत हो गया और नाना भाषाओंके भेदसे युक्त एवं ओठोंके स्फुरणसे रहित दिव्यध्वनि खिरने लगी। इस प्रकार पूर्वोक्त आठ प्रातिहार्यों, दूसरोंको अत्यन्त शान्त करनेवाली अपनी समस्त विशेषताओं और केवलज्ञान-सम्बन्धी, जन्म-सम्बन्धी तथा देवकृत चौंतीस अतिशयोंसे विभूषित, तीन लोकके उद्धारके लिए स्वाभाविक धैर्यके धारक और अनेक गुणोंके समूहको प्रकट करनेके लिए सूर्यके समान, हरिवंशके शिरोमणि बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान् पृथिवीपर प्रकट हुए ॥११६-११८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें भगवान् नेमिनाथके केवलज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला छप्पनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५६॥

□

सर्ग- ५७

अथानन्तर देवोंने इन्द्रकी आज्ञासे क्षण-भरमें तीन जगत्के जीवोंके लिए शरणभूत समवशरणकी रचना कर दी ॥१॥ बलदेव और कृष्णको आदि ले यादव और भोजवंशके सागर-स्वरूप समस्त द्वारिका निवासी बड़े वैभवके साथ गिरिनार पर्वतपर चढ़े और भीतर-बाहर जिनेन्द्र भगवान्का समवशरण देखकर वह जनताका अपार सागर परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥२-३॥ तीर्थंकरोंकी समवसरण भूमि जैसी होती है उसका यहाँ संक्षेपसे श्रोताओंके लिए वर्णन किया जाता है ॥४॥

समवसरणकी दिव्य भूमि स्वाभाविक भूमिसे एक हाथ ऊँची रहती है और उससे एक हाथ ऊपर कल्पभूमि होती है ॥५॥ यह भूमि अपनी शोभासे स्वर्गलक्ष्मीको जीतनेवाली, चौकोर, सुखदायी और देशकालके अनुसार बारह योजनसे लेकर एक योजन तक विस्तारवाली होती है। **भावार्थ**—समवसरण भूमिका उत्कृष्ट विस्तार बारह योजन और कमसे-कम विस्तार एक योजन प्रमाण होता है ॥६॥ यह भूमि कमलके आकारकी होती है इसमें गन्धकुटी तो कर्णिकाके समान ऊँची उठी होती है और बाह्य भूमि कमलदलके समान विस्तृत है ॥७॥ यह इन्द्रनीलमणिसे निर्मित होती है, इसका बाह्य भाग दर्पणतलके समान निर्मल होता है और प्रवेश करनेवाले बहुतसे जीवोंको एक साथ स्थान देनेवाली रहती है ॥८॥ जिसमें मानके योग्य इन्द्र आदि देव त्रिलोकीनाथ—भगवान्की दूरसे ही पूजा करते हैं वह मानांगण नामकी भूमि है ॥९॥ इस भूमिकी चारों महादिशाओंमें दो-दो कोश विस्तृत चार महावीथियाँ हैं। ये वीथियाँ अपने मध्यमें स्थित चार मानस्तम्भोंके पीठ धारण करती हैं ॥१०॥ ये पीठ अपनी ऊँचाईसे तिगुने चौड़े एवं सुवर्ण और रत्नमयी मूर्तियोंके धारक होते हैं तथा मनुष्य, सुर, असुर सभी आकर इन्हें नमस्कार करते हैं ॥११॥ जहाँ स्थित होकर मनुष्य और देव, मानस्तम्भोंकी पूजा करते हैं वह आस्थानांगणा नामकी भूमि देदोप्यमान लाल मणियोंको कान्तिको धारण करती है ॥१२॥ वीथियोंके मध्यमें तीन कटनीदार चार सुवर्णमयी पीठिकाएँ हैं जो छाती बराबर ऊँची हैं और आधा कोश चौड़ी हैं ॥१३॥ उन पीठिकाओंपर चार मानस्तम्भ सुशोभित हैं जो पीठिकाओंकी चौड़ाईसे एक धनुष कम चौड़े हैं और एक योजनसे कुछ अधिक ऊँचे हैं ॥१४॥ वे मानस्तम्भ बारह योजनकी दूरीसे दिखाई देते हैं। पालिकाके अग्रभागपर जो कमल हैं उन्हींपर स्थित हैं, उनका मूलभाग हीराका, मध्यभाग स्फटिकका और अग्रभाग वैडूर्यमणिका बना हुआ है ॥१५॥ हर एक मानस्तम्भ दो-दो हजार कोणोंसे सहित हैं—दो-दो हजार पहलके हैं, नाना रत्नोंकी किरणोंसे मिले हुए हैं, उनकी चारों दिशाओंमें ऊपर सिद्धोंकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं तथा उनकी रत्नमयी बड़ी-बड़ी पालिकाएँ हैं ॥१६॥ पालिकाओंके अग्रभागपर जो कमल हैं उनपर सुवर्णके देदोप्यमान घट हैं, उन घटोंके अग्रभागसे लगी हुई सीढ़ियाँ हैं, तथा उन सीढ़ियोंपर लक्ष्मीदेवीके अभिषेककी शोभा दिखलायी गयी है ॥१७॥ वे मानस्तम्भ लक्ष्मीदेवीके चूड़ारत्नके समान अपनी कान्तिके समूहसे बीस योजन तकका क्षेत्र प्रकाशमान करते रहते हैं तथा जिनका मन अहंकारसे युक्त है ऐसे देव और मनुष्यों-को वहीं रोक देनेवाले हैं ॥१८॥ उन मानस्तम्भोंकी चारों दिशाएँ हंस, सारस और चकवोंके शब्दोंसे अत्यन्त सुन्दर हैं तथा उनमें खिले हुए कमलोंसे युक्त चार सरोवर हैं ॥१९॥

सरोवरोंके आगे एक वज्रमय कोट है जो छाती बराबर ऊँचा है, अत्यन्त कान्तिसे युक्त है, ऊँचाईसे दूना चौडा है और चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥२०॥ इस कोटको चारों ओरसे घेरकर एक परिखा स्थित है जिसकी भूमि जलके समान कान्तिवाले मणियोंसे निर्मित है, उसमें घुटनों प्रमाण गहरा पानी भरा है तथा वह पृथिवीरूपी स्त्रीकी नीली साड़ीके समान जान पड़ती है ॥२१॥ वह परिखा अत्यन्त स्वच्छ है तथा उसका जल स्वर्णमय कमलोंकी परागके समूहसे पीला-पीला हो रहा है अतएव उसमें प्रतिबिम्बित दिशारूप स्त्रियोंके मुख अंगरागसे सहितके समान जान पड़ते हैं ॥२२॥ उसके आगे चारों ओरसे घेरकर स्थित लताओंका वन सुशोभित है जो फूलोंके द्वारा दिशाओंके अन्त भागको सुगन्धित कर रहा है तथा पक्षियों और भ्रमरोंके समूहसे व्याप्त है ॥२३॥ उसके आगे देदीप्यमान सुवर्णके समान चमकीला, एवं विजय आदि चाँदीके बड़े-बड़े चार गोपुरोंसे सुशोभित कोट, चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥२४॥ उन गोपुरोंपर व्यन्तर जातिके देव द्वारपाल हैं जो कटक आदि आभूषणोंसे सुशोभित हैं, अपने प्रभावसे अयोग्य व्यक्तियोंको दूर हटाते रहते हैं तथा जिनके हाथ मुद्‌गरोंसे उद्धत होते हैं ॥२५॥ देदीप्यमान कान्तिसे युक्त उन गोपुरोंके मणिमय तोरणोंकी दोनों ओर छत्र, चमर तथा भृंगार आदि अष्टमंगल द्रव्य एक सौ आठ-एक सौ आठ संख्यामें सदा सुशोभित रहते हैं ॥२६॥ उन गोपुरोंके आगे वीथियोंकी दोनों ओर तीन-तीन खण्डकी दो-दो नाट्यशालाएँ हैं जिनमें बत्तीस-बत्तीस देव-कन्याएँ नृत्य करती हैं ॥२७॥ तदनन्तर पूर्वदिशामें अशोक वन, दक्षिणमें सप्तपर्ण वन, पश्चिममें चम्पक वन और उत्तरमें आम्रवन सुशोभित है ॥२८॥ इन चारों वनोंमें अशोक वनका अशोक वृक्ष, सप्तपर्ण वनका सप्तपर्ण वृक्ष, चम्पक वनका चम्पक वृक्ष और आम्रवनका आम्रवृक्ष स्वामी हैं। ये स्वामी वृक्ष सिद्धकी प्रतिमाओंसे सहित हैं अर्थात् इनके नीचे सिद्धोंकी प्रतिमाएँ विराजमान रहती हैं ॥२९॥ उन वनोंमें तिकोनी, चौकोनी और गोलाकार अनेक वापिकाएँ हैं। उन वापिकाओंके तट रत्ननिर्मित हैं तथा उनकी भूमि शुद्ध स्फटिकसे निर्मित है। ये सभी वापिकाएँ तोरणोंसे युक्त हैं, दर्शनीय हैं, सीढ़ियोंसे युक्त हैं, ऊँचे-ऊँचे बरण्डोंसे सुशोभित हैं, प्रवेश करनेमें गहरी हैं और दो कोश चौड़ी हैं ॥३०-३१॥ नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दवती, अभिनन्दिनी, और नन्दघोषा ये छह वापिकाएँ अशोक वनमें स्थित हैं ॥३२॥ विजया, अभिजया, जैत्री, वैजयन्ती, अपराजिता और जयोत्तरा ये छह वापिकाएँ सप्तपर्ण वनमें स्थित हैं ॥३३॥ कुमुदा, नलिनी, पद्मा, पुष्करा, विश्वोत्पला और कमला ये छह वापियां चम्पक वनमें मानी गयी हैं ॥३४॥ और प्रभासा, भास्वती, भासा, सुप्रभा, भानुमालिनी और स्वयंप्रभा ये छह वापियां आम्रवनमें कही गयी हैं ॥३५॥ पूर्व आदि दिशाओंकी वापिकाएँ क्रमसे उदय, विजय, प्रीति और ख्याति नामक फल देती हैं तथा इन फलोंके इच्छुक मनुष्य इन वापिकाओंकी पूजा करते हैं ॥३६॥ क्रमके जाननेवाले भक्तजन उन वापिकाओंसे यथोक्त फूलोंका समूह प्राप्त कर स्तूपों तक क्रम-क्रमसे जिनेन्द्र प्रतिमाओंकी पूजा करते हुए आगे प्रवेश करते हैं ॥३७॥ उदय और प्रीतिरूप फलको देनेवाली वापिकाओंके बीचके मार्गके दोनों ओर तीन खण्डकी सुवर्णमय देदीप्यमान बत्तीस नाट्यशालाएँ है ॥३८॥ ये नाट्यशालाएँ डेढ़ कोश चौड़ी हैं, नाना प्रकारके बेलबूटोंसे सुशोभित हैं और उनकी भूमियां रत्नोंकी बनी हैं तथा उनकी दीवाल स्वच्छ स्फटिकसे निर्मित हैं ॥३९॥ उनमें ज्योतिषी देवोंकी बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ नृत्य करती ह जो हाव, भाव और विलाससे युक्त तथा शृंगार आदि रसोंकी पुष्टिसे सुपुष्ट होती हैं ॥४०॥ उसके आगे चार गोपुरोंसे युक्त अत्यन्त सुन्दर वज्रमयी वनवेदी है जो पूर्वोक्त वनोंको चारों ओर-से घेरे हुए है। चार गोपुरोंके आगे चार वीथियाँ हैं और उनके दोनों पसवाड़ोंमें ध्वजाओंकी

पंक्तियाँ फहराती रहती हैं ॥४१॥ प्रत्येक विभागमें उन ध्वजाओंकी पृथक्-पृथक् पीठिकाएँ हैं जो तीन धनुष चौड़ी हैं, चित्र-विचित्र हैं तथा उनपर आधा योजन ऊँचे रत्नमयी बाँस लगे हुए हैं ॥४२॥ उन बाँसोंके अग्रभागपर जो पटिया लगे हैं उनमें दश प्रकारकी रंग-बिरंगी, छोटी-छोटी घण्टियों और चित्रपट्टकोंसे युक्त बड़ी ध्वजाएँ फहराती रहती हैं ॥४३॥ वे दस प्रकारकी ध्वजाएँ क्रमसे मयूर, हंस, गरुड़, माला, सिंह, हाथी, मकर, कमल, बैल और चक्रके चिह्नसे चिह्नित होती हैं ॥४४॥ एक दिशामें एक जातिकी ध्वजाएँ एक सौ आठ होती हैं और चारों दिशाओंकी मिलकर एक जातिकी चार सौ बत्तीस होती हैं। यह इनकी सामान्य रूपसे संक्षेपमें संख्या बतलायी है ॥४५॥ विशेष रीतिसे एक दिशामें एक करोड़ सोलह लाख चौंसठ हजार हैं और चारों दिशाओंमें चार करोड़ अड़सठ लाख छत्तीस हजार कुछ अधिक हैं ॥४६–४७॥

प्रीति और कल्याणरूप फल देनेवाली वापिकाओंके बीचके मार्गमें दोनों ओर पाँच खण्डकी नृत्यशालाएँ हैं जिनमें भवनवासी देवोंकी देवांगनाएँ नृत्य करती हैं ॥४८॥ नृत्यशालाओंके आगे पाँच-पाँच खण्डके रत्नमयी चार गोपुरोंसे विभूषित स्वर्णनिर्मित दूसरा कोट है ॥४९॥ गोपुरोंके दोनों पसवाड़ोंमें देदीप्यमान सुवर्णके पीठोंपर स्थित, शंखके समान सुन्दर कण्ठोंमें पड़ी मालाओंसे सुशोभित मुखोंपर कमल धारण करनेवाले एवं जलसे भरे स्वर्णनिर्मित मंगलकलश दो-दोकी संख्यामें सुशोभित हैं। इस दूसरे कोटके द्वारोंपर भवनवासी देवोंके इन्द्र द्वारपाल हैं जो बेंतकी छड़ी धारण किये हुए पहरा देते हैं ॥५०–५१॥ गोपुरोंके आगे दो-दो नाट्यशालाएँ हैं और उनके आगे स्वर्णनिर्मित दो-दो धूपघट रखे हुए हैं ॥५२॥ उससे आगे चारों दिशाओंमें सिद्धोंकी प्रतिमाओंसे युक्त, दो-दो सिद्धार्थ वृक्षोंसे सहित कल्पवृक्षोंका वन वीथियोंके अन्तमें यथारीति स्थित हैं ॥५३॥ तदनन्तर चार गोपुरोंसे सहित, वनकी रक्षा करनेवाली अन्तर्वेदिका है और मार्गोंमें तोरणोंसे युक्त, सबका भला करनेवाले नौ-नौ स्तूप हैं ॥५४॥ वे स्तूप पद्मराग मणियोंसे निर्मित होते हैं तथा उनके समीप स्वर्ण और रत्नोंके बने, मुनियों और देवोंके योग्य नाना प्रकारके सभागृह रहते हैं ॥५५॥ सभागृहोंके आगे आकाशस्फटिक मणिसे बना, नाना प्रकारके महारत्नोंसे निर्मित सात खण्डवाले चार गोपुरोंसे सुशोभित तीसरा कोट है ॥५६॥ इस कोटके पूर्व द्वारके विजय, विश्रुत, कीर्ति, विमल, उदय, विश्वधुक्, वासवीर्य और वर ये आठ नाम प्रसिद्ध हैं ॥५७॥ दक्षिण द्वारके वैजयन्त, शिव, ज्येष्ठ, वरिष्ठ, अनघ, धारण, याम्य और अप्रतिघ ये आठ नाम कहे गये हैं ॥५८॥ पश्चिम द्वारके जयन्त, अमितसार, सुधाम, अक्षोभ्य, सुप्रभ, वरुण और वरद ये आठ नाम स्मरण किये गये हैं ॥५९॥ और उत्तर द्वारके अपराजित, अर्थ, अतुलार्थ, उदक, अमोघक, उदय, अक्षय और पूर्णकामक ये आठ नाम हैं ॥६०॥ उन द्वारोंके पसवाड़ोंमें उत्तम रत्नमय आसनोंके मध्यमें स्थित मंगलरूप दर्पण सुशोभित हैं जो देखनेवालोंके पूर्व भव दिखलाते हैं ॥६१॥ ये दर्पण गाढ़ अन्धकारको नष्ट करनेवाले कान्तिके समूहसे सदा देदीप्यमान रहते हैं और उनसे गोपुर सूर्यकी प्रभाको तिरस्कृत कर अतिशय शोभायमान होते हैं ॥६२॥ विजयादिक गोपुरोंमें यथायोग्य 'जय हो' 'कल्याण हो' इन शब्दोंका उच्चारण करनेवाले एवं देदीप्यमान आभूषणोंसे युक्त कल्पवासी देव द्वारपाल रहते हैं ॥६३॥ ये तीनों कोट एक कोश, दो कोश और तीन कोश ऊँचे होते हैं तथा मूल, मध्य और ऊपरी भागमें इनकी चौड़ाई ऊँचाईसे आधी होती है ॥६४॥ इन कोटोंके जगतीतलोंका प्रमाण अपनी ऊँचाईसे तीन हाथ कम कहा गया है और उनके ऊपर बने हुए बन्दरके शिरके आकारके कंगूरे एक हाथ तथा एक वितस्ति चौड़े और आधा वेमा ऊँचे कहे गये हैं ॥६५॥ उसके आगे नाना वृक्षों और लतागृहोंसे व्याप्त, मंच, प्रेंखागिरि और प्रेक्षागृहोंसे सुशोभित अन्तर्वण है ॥६६॥ वेदिकाओंसे बद्ध वीथियोंके बीचमें कल्याणजय नामका आंगन है और उसमें शाल्मली वृक्षके समान ऊँचे एवं अन्तरसे स्थित केला-

के वृक्ष प्रकाशमान हो रहे हैं ।।६७।। तदनन्तर उन्हींके भीतर नाटकशाला है जिसमें सुवर्णके समान कान्तिकी धारक लोकपाल देवोंकी देवांगनाएँ निरन्तर नृत्य करती रहती हैं ।।६८।। उनके मध्यमें श्रेष्ठ गुणोंका स्थान तथा ऊँची उठनेवाली किरणोंसे सुशोभित रत्नावलीसे अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाला दूसरा पीठ है ।।६९।। उसके आगे सिद्धार्थवृक्ष हैं जो सिद्धोंकी प्रतिमाओंसे सुशोभित शाखाओंसे इच्छापूर्वक ही मानो दिशाओंको व्याप्त कर स्थित हैं ।।७०।। उसके आगे एक मन्दिर है जिसे पृथ्वीके आभरणस्वरूप बारह स्तूप उस तरह सुशोभित करते रहते हैं जिस तरह कि सुवर्णमय चार मेरु पर्वत जम्बूद्वीपके महामेरुको सुशोभित करते रहते हैं ।।७१।। इनके आगे चारों दिशाओंमें शुभ वापिकाएँ हैं जो चारों दिशाओंमें बने हुए गोपुर-द्वारों और वेदिकासे अलंकृत हैं ।।७२।। नन्दा, भद्रा, जया और पूर्णा ये चार उनके नाम हैं। उन वापिकाओंके जलमें स्नान करनेवाले जीव अपना पूर्व-भव जान जाते हैं ।।७३।। वे वापिकाएँ पवित्र जलसे भरी एवं समस्त पापरूपी रोगोंको हरनेवाली हैं। इनमें देखनेवाले जीवोंको अपने आगे-पीछेके सात भव दिखने लगते हैं ।।७४।। वापिकाओंके आगे एक जयांगण सुशोभित है जो एक कोश ऊँचा है, एक योजनसे कुछ अधिक चौड़ा है, कटि बराबर ऊँचे बरण्डोंपर स्थित कदली-ध्वजाओंसे व्याप्त है, जिनमें मनुष्य निरन्तर प्रवेश करते और निकलते रहते हैं ऐसे द्वारों और उच्च तोरणोंसे युक्त है, तीन लोककी विजयका आधार है, उसमें बीच-बीचमें मूँगाओंकी लाल-लाल बालूका अन्तर देकर मोतियोंकी सफेद बालू बिछी हुई है, उत्तम रत्नमय पुष्पों और रखे हुए सुवर्णकमलोंसे चित्र-विचित्र है। उस जयांगणके भूभाग, जहाँ-तहाँ सुवर्ण रससे लिप्त अतएव पृथिवीपर आये हुए सूर्योंके समान दिखनेवाले विशाल वर्तुलाकार मण्डलोंसे सुशोभित हैं। जहाँ-तहाँ नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित वह जयांगण, देव, असुर और मनुष्योंसे परिपूर्ण भवनों, मण्डपों तथा अन्य सुखकर निवासस्थानोंसे सुशोभित है ।।७५-७९।। कहीं चित्रोंसे सुन्दर और कहीं पुराणोंमें प्रतिपादित आश्चर्यकारी विभूतिसे युक्त तथा नाना प्रकारके कथानकोंसे सहित भवन बने हैं ।।८०।। वे भवन कहीं पुण्यके फलकी प्राप्तिसे देखनेवाले लोगोंको धर्मका साक्षात् फल दिखलाते हैं तो कहीं पापका परिपाक दिखाकर अधर्मका साक्षात् फल दिखलाते हैं ।।८१।। वे भवन, उन दर्शकजनोंको दान, शील, तप और पूजाके प्रारम्भ तथा उनके फलोंकी एवं उनके अभावमें होनेवाली विपत्तियोंकी श्रद्धा कराते हैं ।।८२।। उस जयांगणके मध्यमें सुवर्णमय पीठको अलंकृत करता हुआ इन्द्रध्वज सुशोभित होता है जो ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान्‌की विजयलक्ष्मीका मूर्तिधारी शरीर ही हो। उस इन्द्रध्वजमें देदीप्यमान गोले, लटकती हुई मोतियोंकी माला और जगमगाते हुए मणियोंसे युक्त एक पताका लगी रहती है। वह पताका वायुसे कम्पित होनेके कारण घण्टियोंके शब्दसे अत्यन्त रमणीय जान पड़ती है। ऊपर उठती हुई किरणोंसे युक्त रत्नोंकी मालासे सुशोभित वह पताका जब आकाशमें फहराती है तब ऐसी जान पड़ती है मानो समुद्रसे लहर ही उठ रही हो। इन्द्रादिक देव उसे बड़े कौतुकसे देखते हैं ।।८३-८५।।

उसके आगे एक हजार खम्भोंपर खड़ा हुआ महोदय नामका मण्डप है जिसमें मूर्तिमती श्रुतदेवता विद्यमान रहती है ।।८६।। उस श्रुतदेवताको दाहिने भागमें करके, बहुश्रुतके धारक अनेक धीर-वीर मुनियोंसे घिरे श्रुतकेवली कल्याणकारी श्रुतका व्याख्यान करते हैं ।।८७।। महोदय मण्डपसे आधे विस्तारवाले चार परिवार मण्डप और हैं जिनमें कथा कहनेवाले पुरुष आक्षेपिणी आदि कथाएँ कहते रहते हैं ।।८८।। इन मण्डपोंके समीपमें नाना प्रकारके फुटकर स्थान भी बने रहते हैं जिनमें बैठकर केवलज्ञान आदि महाऋद्धियोंके धारक ऋषि इच्छुकजनोंके लिए उनकी इष्ट वस्तुओंका निरूपण करते हैं ।।८९।।

उसके आगे नाना प्रकारकी लताओंसे व्याप्त एक सुवर्णमय पीठ रहता है जिसकी भव्यजीव नाना प्रकारकी समयानुसार पूजा करते हैं ॥९०॥ उस पीठका श्रीपद नामका द्वार है जो रत्नों और फूलोंके समूहसे युक्त है तथा जो मार्गके बीचमें बने हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान देदीप्यमान मण्डलोंसे परिपूर्ण है ॥९१॥ उस द्वारके दोनों ओर प्रभासक नामके दो मण्डप हैं जिनमें मार्गके सम्मुख, इच्छानुसार फल देनेवाले निधियोंके स्वामी दो देव सुशोभित रहते हैं ॥९२॥ उनके आगे प्रमदा नामकी दो विशाल नाट्यशालाएँ हैं जिनमें कल्पवासिनी अप्सराएँ सदा नृत्य करती रहती हैं ॥९३॥ विजयांगणके कोनोंमें चार लोकस्तूप होते हैं जिनपर पताकाओंकी पंक्तियाँ फहराती रहती हैं, तथा जो एक योजन ऊँचे रहते हैं ॥९४॥ ये लोकस्तूप, नीचे वेत्रासनके समान, मध्यमें झालरके समान, ऊपर मृदंगके समान और अन्तमें तालवृक्षके समान लम्बी नालिकासे सहित हैं ॥९५॥ इनका स्वच्छ स्फटिकके समान रूप होता है, अतः इनके भीतरकी रचना अत्यन्त स्पष्ट रहती है। इन स्तूपोंमें लोककी रचना दर्पणतलके समान स्पष्ट दिखाई देती है ॥९६॥ इन स्तूपोंके आगे मध्यलोक नामसे प्रसिद्ध स्तूप हैं जिनके भीतर मध्यलोककी रचना स्पष्ट दिखती है ॥९७॥ आगे मन्दराचलके समान देदीप्यमान मन्दर नामके स्तूप हैं जिनपर चारों दिशाओंमें भगवान्‌की प्रतिमाएँ सुशोभित हैं ॥९८॥ उनके आगे कल्पवासियोंकी रचनासे युक्त कल्पवास नामक स्तूप हैं जो देखनेवालोंको कल्पवासी देवोंकी विभूति साक्षात् दिखाते हैं ॥९९॥ उनके आगे ग्रैवेयकोंके समान आकारवाले ग्रैवेयक स्तूप हैं जो मनुष्योंको मानो ग्रैवेयकोंकी शोभा ही दिखाते रहते हैं ॥१००॥ उनके आगे अनुदिश नामके नौ स्तूप सुशोभित हैं जिनमें प्राणी नौ अनुदिशोंको प्रत्यक्ष देखते हैं ॥१०१॥ आगे चलकर जो चारों दिशाओंमें विजय आदि विमानोंसे सुशोभित हैं ऐसे समस्त प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले सर्वार्थसिद्धि नामके स्तूप हैं ॥१०२॥ उनके आगे स्फटिकके समान निर्मल सिद्धस्तूप प्रकाशमान हैं जिनमें सिद्धोंके स्वरूपको प्रकट करनेवाली दर्पणोंकी छाया दिखाई देती है ॥१०३॥ उनके आगे देदीप्यमान शिखरोंसे युक्त भव्यकूट नामके स्तूप रहते हैं जिन्हें अभव्य जीव नहीं देख पाते क्योंकि उनके प्रभावसे उनके नेत्र अन्धे हो जाते हैं ॥१०४॥ उनके आगे प्रमोह नामके स्तूप हैं जिन्हें देखकर लोग अत्यधिक विभ्रममें पड़ जाते हैं और चिरकालसे अभ्यस्त गृहीत वस्तुको भी भूल जाते हैं ॥१०५॥ आगे चलकर प्रबोध नामके अन्य स्तूप हैं जिन्हें देखकर लोग प्रबोधको प्राप्त हो जाते हैं और तत्त्वको प्राप्त कर साधु हो निश्चित हो संसारसे छूट जाते हैं ॥१०६॥ इस प्रकार जिनकी वेदिकाएँ एक दूसरेसे सटी हुई हैं तथा जो तोरणोंसे समुद्भासित हैं ऐसे अत्यन्त ऊँचे दशस्तूप क्रम-क्रमसे परिधि तक सुशोभित हैं ॥१०७॥ इसके आगे एक कोट रहता है जो एक कोश चौड़ा तथा एक धनुष ऊँचा होता है और उसके मण्डलकी भूमिको बचाकर मनुष्य तथा देव प्रदक्षिणा देते रहते हैं ॥१०८॥ इस परिधिमें बाहरकी ओर सत्रह कर्णिकाएँ हैं जो एक-एक कोश विस्तृत हैं और भीतरकी ओर एक कर्णिका है जो साढ़े तीन योजन विस्तारवाली है (?) ॥१०९॥ जिस प्रकार परिवेश सूर्यको घेरता है उसी प्रकार चित्र-विचित्र रत्नोंसे निर्मित यह परिधि भीतरके देदीप्यमान मण्डलको घेरे रहती है ॥११०॥ वहाँ गणधर देवकी इच्छा करते ही एक दिव्य पुर बन जाता है सो ठीक ही है क्योंकि मनःपर्यय ज्ञानके धारक जीवोंका प्रभाव महान् होता है ॥१११॥ वह पुर कल्पके ज्ञाता मनुष्यके द्वारा त्रिलोकसार, श्रीकान्त, श्रीप्रभु, शिवमन्दिर, त्रिलोकीश्री, लोककान्तिश्री, श्रीपुर, त्रिदशप्रिय, लोकालोकप्रकाशाढ्यो, उदय, अभ्युदयावह, क्षेम, क्षेमपुर, पुण्य, पुण्याह, पुष्पकास्पद, भुवःस्वर्भूः, तपःसत्य, लोकालोकोत्तम, रुचि, रुचावह, उदारर्द्धि, दानधर्मपुर, श्रेय, श्रेयस्कर, तीर्थ, तीर्थावह, उदग्रह, विशाल, चित्रकूट, धीश्रीधर, त्रिविष्टप, मंगलपुर,

उत्तमपुर, कल्याणपुर, शरणपुर, जयपुरी, अपराजितापुरी, आदित्यपुरी, जयन्तीपुरी, अचलसंपुर, विजयन्त, विमल, विमलप्रभ, कामभू, गगनाभोग, कल्याण, कलिनाशन, पवित्र, पंचकल्याण, पद्मावर्त, प्रभोदय, परार्घ्य, मण्डितावास, महेन्द्र, महिमालय, स्वायम्भुव, सुधाधात्री, शुद्धावास, सुखावती, विरजा, वीतशोका, अर्थविमला, विनयावनि, भूतधात्री, पुराकल्प, पुराण, पुण्यसंचय, ऋषीवती, यमवती, रत्नवती, अजरामरा, प्रतिष्ठा, ब्रह्मनिष्ठोर्वी, केतुमालिनी, अरिन्दम, मनोरम, तमःपार, अरत्नी, रत्नसंचय, अयोध्या, अमृतधानी, ब्रह्मपुर, जाताह्वय और उदात्तार्थ नामसे कहा जाता है ॥११२–१२२॥ भगवान्‌के प्रभावसे उत्पन्न वह नगर, तीन लोकके समस्त श्रेष्ठ पदार्थोंके समूहसे युक्त, आश्चर्यस्वरूप एवं बहुत भारी आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ सुशोभित होता है ॥१२३॥ उसका बनानेवाला कुबेर भी एकाग्रचित्त हो उसके बनानेका पुनः विचार करे तो वह भी नियमसे भूल कर जायेगा फिर अन्य मनुष्यकी बात ही क्या है? ॥१२४॥ उस नगरका निर्माण यथास्थान छब्बीस प्रकारके सुवर्ण और मणियोंसे चित्र-विचित्र है अतः अत्यधिक सुशोभित होता है ॥१२५॥ उसके तलभागमें तीन जगती रहती हैं जो आधा-आधा कोश चौड़ी होती हैं और ऊपर-ऊपर उन जगतियोंमें उतनी ही हानि होती जाती है ॥१२६॥ उन जगतियोंकी रचना वज्रमयी एवं चित्र-विचित्र रत्नोंसे उज्ज्वल है और उनकी श्रेष्ठ कान्ति चारों ओर इन्द्रधनुषोंको विस्तृत करती रहती है ॥१२७॥ छाती प्रमाण ऊँचे तथा देदीप्यमान प्रभाके धारक बरण्डे उन जगतियोंको सुशोभित करते रहते हैं तथा उनपर एक धनुषके अन्तरसे स्थित सुशोभित पताकाएँ हैं ॥१२८॥ उन जगतियोंमें तीस-तीस वितस्तियोंके कूट और उनसे द्विगुण आयामवाले दश-दश धनुषोंके अन्तरसे स्थित कोष्ठक रहते हैं ॥१२९॥ उन जगतियोंके समीप दोनों ओर द्वारपालोंके दो-दो आवासस्थान हैं जिनमें प्रत्येक द्वारपर कुबेरकी अपूर्व धनराशि प्रकाशमान है ॥१३०॥ प्रत्येक जगतीके कूटोंकी संख्या सात सौ बहत्तर है तथा कोष्ठकोंकी संख्या अड़तालीस है ॥१३१॥ संक्षेपसे तीनों जगतियोंकी कूटसंख्या बाईस सौ बीस है और कोष्ठोंकी संख्या उसी प्रमाणसे है ॥१३२॥ प्रथम जगतीमें बत्तीस हजार तीन सौ इक्यासी, दूसरीमें चौबीस हजार दो सौ उन्नीस और तीसरीमें इकतीस हजार छप्पन ध्वजाएँ रहती हैं ॥१३३॥ पूर्व कूटोंमें दो लाख बत्तीस हजार चार सौ सत्तर, मध्यम कूटोंमें सात लाख इकसठ हजार एक सौ, और अन्तिम कूटोंमें दो लाख चौवन हजार आठ सौ अस्सी और कोष्ठकोंमें दूनी-दूनी हैं ॥१३४–१३५॥ इस प्रकार समस्त ध्वजाओंकी संख्या छब्बीस लाख बीस हजार दो सौ छप्पन है ॥१३६॥ वहाँ सस्वेद—जलसिक्त प्रदेशोंमें रत्नोंसे मण्डित अनेक मण्डप हैं जो दो कोस चौड़े और एक कोस ऊँचे हैं ॥१३७॥ जिनकी रचना मण्डपोंसे आधी चौड़ी है, ऐसे शिखरोंके मध्य भागमें विराजमान जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमाएँ हैं जो उत्तम मंगल द्रव्योंसे सुशोभित हैं ॥१३८॥ यद्यपि ये प्रतिमाएँ अपने-अपने स्थानपर स्थित हैं तथापि सामने खड़े होकर देखनेवालोंको ऐसी दिखाई देती हैं मानो उन स्थानोंसे निकलकर आकाशमें ही विद्यमान हों ॥१३९॥

वहाँ चारों दिशाओंमें देदीप्यमान तीन पीठ होते हैं उनमें पहले पीठपर चार हजार धर्मचक्र सुशोभित हैं ॥१४०॥ दूसरी पीठपर मयूर और हंसोंकी ध्वजाओंसे भिन्न आठ प्रकारकी महाध्वजाएँ दिशाओंको सुशोभित करती हुई विद्यमान हैं ॥१४१॥ तीसरी पीठपर श्रीमण्डपको सुशोभित करनेवाला अनेक मंगलद्रव्योंसे सहित गन्धकुटी नामका प्रासाद है उसमें भगवान्‌का सिंहासन रहता है ॥१४२॥ उस सिंहासनपर विराजमान जिनेन्द्रदेवकी सन्तुष्ट चित्तके धारक मनुष्य, सुर और असुरोंके झुण्डके झुण्ड मुकुटोंपर हाथ लगाकर स्तुति करते थे ॥१४३॥ वे कह रहे थे कि हे महादेव! आपकी जय हो। हे महेश्वर! आप जयवन्त हों, हे महाबाहो! आप विजयी हों, हे विशालनेत्र! जयवन्त हों ॥१४४॥ इत्यादि करोड़ों स्तवनोंके बाद वरदत्तने तत्काल

दीक्षा ले ली और गणोंके स्वामी प्रथम गणधर हो गये ॥१४५॥ उसी समय छह हजार रानियोंके साथ दीक्षा लेकर राजीमती आर्यिकाओंके समूहकी प्रधान बन गयी ॥१४६॥ मुनि-समूहको आदि लेकर बारह गण भगवान् नेमिनाथको प्रणाम कर यथास्थान उनकी उपासना करते थे ॥१४७॥

मार्गके चारों ओर घेरकर बारह सभाएँ उनकी पूर्व, दक्षिण आदि दिशाओंमें मुनिसमूह-को आदि लेकर बारह गण विराजमान थे ॥१४८॥ वहाँ उत्कृष्ट वरको प्रदान करनेवाले भगवान् नेमिनाथके आगे वरदत्तको आदि लेकर अनेक मुनि सुशोभित थे जो धर्मके स्वरूपको प्रत्यक्ष करनेवाले एवं अत्यन्त निर्मल धर्मेश्वरके अंशके समान जान पड़ते थे ॥१४९॥ उनके आगे कल्प-वासिनी देवियाँ सुशोभित थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो भगवान्की बाह्याभ्यन्तर विभूतियाँ ही उनका रूप रखकर स्थित हों ॥१५०॥ उनके बाद तीसरी सभामें लज्जा, दया, क्षमा, शान्ति आदि गुणरूपी सम्पत्तिसे सुशोभित आर्यिकाएँ विराजमान थीं जो समीचीन धर्मकी पुत्रियोंके समान जान पड़ती थीं ॥१५१॥ चौथी सभामें प्रशंसनीय एवं अपने-आपसे निकलनेवाली प्रभासे सुशो-भित ज्योतिषी देवोंकी स्त्रियाँ बैठी थीं जो भगवान्की कान्तिके समान जान पड़ती थीं ॥१५२॥ पाँचवीं सभामें मूर्तिधारिणी वनकी लक्ष्मीके समान सुन्दर वनवासी व्यन्तर देवोंकी स्त्रियाँ स्थित थीं तथा वे वनकी पुष्पलताओंके समान नम्रीभूत हो भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर रही थीं ॥१५३॥ छठी सभामें भगवान्की अत्यधिक भक्तिसे युक्त भवनवासी देवोंकी अंगनाएँ स्थित थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्ग, भूमि और अधोलोककी लक्ष्मियाँ ही भगवान्के समीप आकर बैठी हैं ॥१५४॥ सातवीं सभामें फणाके समान देदीप्यमान रत्नोंकी कान्तिसे लाल-लाल दिखनेवाले भवनवासी देव, अपने संसारसे भयभीत होते हुए, पापबन्धका छेदन करनेवाले भग-वान्के समीप विद्यमान थे ॥१५५॥ आठवीं सभामें सुन्दर आकारके धारक व्यन्तर देव बैठे थे। वे भगवान्के आभूषणस्वरूप थे, तथा फूलोंकी मालाओंको धारण करनेवाले मन्दरगिरिके समान जान पड़ते थे ॥१५६॥ नवमी सभामें, जिनकी अपनी प्रभा भगवान्की प्रभामें निमग्न हो गयी थी ऐसे सूर्य आदि ज्योतिषी देवोंके समूह नम्रीभूत हो भगवान्से अपनी प्रभावृद्धिकी प्रार्थना कर रहे थे ॥१५७॥ दसवीं सभामें सौन्दर्यके स्वामी, सुखी एवं ऊपर उठे हुए भगवान्के अंशोंके समान इन्द्र आदि कल्पवासी देव सुशोभित हो रहे थे ॥१५८॥ ग्यारहवीं सभामें चक्रवर्ती आदि राजा भगवान्को उपासना करते थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरधारी दान-पूजा आदि धर्मोंके निर्मल अंश ही हो ॥१५९॥ तथा बारहवीं सभामें, जिन्हें अविद्या, वैर, माया आदि दोषोंके नष्ट हो जानेसे विद्या, क्षमा आदि तत्तद्गुण प्राप्त हुए थे ऐसे सिंह, हाथी आदि तिर्यंच विद्यमान थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उन्हींके समान दूसरे तिर्यंच हों। **भावार्थ—** तिर्यंच अपनी स्वाभाविक कुटिलताको छोड़कर तदाकार होनेपर भी ऐसे लगते थे जैसे ये वे न हों दूसरे ही हों ॥१६०॥ इस प्रकार द्वादशांगके गुणोंके समान बारह सभाओं-सम्बन्धी बारह गण, प्रदक्षिणा रूपसे भगवान्की उपासना करते थे ॥१६१॥

भगवान् नेमिनाथ, अपने सिंहासनकी शोभासे दूसरोंमें न पाये जानेवाले परमेष्ठीपनाको ख्यापित कर रहे थे। क्रमपूर्वक ढोरे जानेपर देवोपनीत चमरोंसे महेशिताको, तीन चन्द्रमाके समान कान्तिको धारण करनेवाले छत्रत्रयसे तीन लोकके स्वामित्वको, संसारके आन्तरिक अन्धकारको नष्ट करनेवाले भामण्डलसे कान्तिकी अधिकताको, सब ऋतुओंके फूलोंसे युक्त अशोक वृक्षके द्वारा अन्य समस्त जीवोंके शोक दूर करनेकी सामर्थ्यको, पुष्पवृष्टिरूप पूजाके द्वारा पूज्यताको, अभयोत्पत्तिकी घोषणा करनेवाली दिव्यध्वनिसे जयलक्ष्मीकी सर्वहितकारिताको और

आनन्ददायी मंगलमय वादित्रोंके नादसे साधुजनोंके चित्तको आनन्दित करनेकी सामर्थ्यको प्रकट कर रहे थे ॥१६२–१६५॥ जो आत्माके आधीन हो उन्हें प्रतीहार कहते हैं। इस प्रकार आत्माधीन गुणोंसे उत्पन्न अष्ट महाप्रातिहार्योंसे भगवान् नेमिनाथ सुशोभित हो रहे थे ॥१६६॥ आत्मोत्थ समस्त विभूतिको धारण करनेवाले भगवान् सर्वलोकातिवर्ती दीप्तिसे लोगोंका कल्याण करनेके लिए समवसरणमें विराजमान हुए ॥१६७॥ उस समय देव लोग घोषणाके साथ यह कहकर जीवोंका आह्वान कर रहे थे कि हे आत्महितके इच्छुक भव्यजनो ! सम्पूर्ण विकसित आत्माको धारण करनेवाले केवली भगवान् यह विराजमान हैं, शीघ्रतासे यहां आओ-आओ और इन्हें नमस्कार करो ॥१६८॥ इस प्रकार जब देवोंने आह्वान किया तब शीघ्र ही मनुष्य, देव और असुर वैभवके साथ सब ओरसे समवसरणमें आने लगे ॥१६९॥

समवसरणके दृष्टिगोचर होते ही वे मानांगणमें खड़े हो सबसे पहले हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर वाहनोंसे नीचे उतरते हैं ॥१७०॥ तदनन्तर वाहन आदि परिग्रहको बाहर छोड़कर विशिष्ट राज्यचिह्नोंसे युक्त हो मानपीठकी प्रदक्षिणा देते हैं ॥१७१॥ प्रदक्षिणाके बाद सबसे पहले मानस्तम्भको नमस्कार करते हैं तदनन्तर हृदयमें उत्तम भक्तिको धारण करते हुए उत्तम पुरुष भीतर प्रवेश करते हैं ॥१७२॥ और पापी, विरुद्ध कार्य करनेवाले, शूद्र, पाखण्डी, नपुंसक, विकलांग, विकलेन्द्रिय तथा भ्रान्त चित्तके धारक मनुष्य बाहर ही प्रदक्षिणा देते रहते हैं ॥१७३॥ सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा नरेन्द्र आदि उत्तम पुरुष छत्र, चमर और भृंगार आदिको जयांगणमें छोड़आप्तजनोंके साथ हाथ जोड़कर भीतर प्रवेश करते हैं ॥१७४॥ मणिमय मुकुटोंको धारण करनेवाले वे सब, भीतर प्रवेश कर विधिपूर्वक प्रणाम करते हैं और चक्रपीठपर आरूढ़ होकर भगवान् जिनेन्द्रकी तीन बार प्रदक्षिणा देते हैं ॥१७५॥ इच्छानुसार अपनी शक्ति और विभवके अनुकूल सामग्रीसे पूजा करते हुए अपने नामका उल्लेख कर नमस्कार करते हैं ॥१७६॥ तदनन्तर जिन्होंने अपनी अंजलियाँ मस्तकसे लगा रखी हैं और रोमांचोंसे जिनका हर्ष प्रकट हो रहा है ऐसे वे सब अपनी-अपनी सीढ़ियोंसे नीचे उतरकर सभाओंमें यथास्थान बैठते हैं ॥१७७॥ जिस प्रकार सूर्यके सम्मुख खिला हुआ कमलोंका समूह सुशोभित होता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान्रूपी सूर्यके सम्मुख वह गणरूपी—द्वादश सभारूपी कमलोंका समूह सुशोभित हो रहा था ॥१७८॥ जिस प्रकार नदी समुद्रको भरनेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार सब ओरसे समवसरणमें प्रवेश करती हुई वह सेना उसे भरनेमें समर्थ नहीं थी ॥१७९॥ वहाँ बाहर निकलता, आता, प्रवेश करता, दर्शन करता, प्रदक्षिणा देता, सन्तुष्ट होता, भगवान्को प्रणाम करता और उनकी स्तुति करता हुआ सज्जनोंका समूह सदा विद्यमान रहता है ॥१८०॥ समवसरणके भीतर भगवान्के प्रभावसे न मोह रहता है, न राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, न उत्कण्ठा, रति एवं मात्सर्यभाव रहते हैं, न अँगड़ाई और जमुहाई आती है, न नींद आती है, न तन्द्रा सताती है, न क्लेश होता है, न भूख लगती है, न प्यासका दुःख होता है और न सदा समस्त दिन कभी अन्य समस्त प्रकारका अमंगल ही होता है ॥१८१–१८२॥ बाह्य विभूतिके अद्वितीय स्थान समवसरण भूमिमें जब अन्तरंग आत्माकी पवित्रतासे युक्त भगवान् विराजमान होते हैं तब बारह सभाओंका समूह अपने तृषित नेत्रोंसे उनके अमृतरूप सौन्दर्य सागरका पान करता है ॥१८३॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें समवशरणका वर्णन करनेवाला सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५७॥

□

सर्ग- ५८

इस प्रकार नित्य उत्सव और अनन्त कल्याणोंके एक स्थानस्वरूप समवशरणमें जब धर्म सुननेके इच्छुक जीव हाथ जोड़कर बैठ गये तब वरदत्त गणधरने वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्री नेमि जिनेन्द्र-को नमस्कार कर समस्त भव्यजीवोंका हित पूछा। **भावार्थ**—हे भगवन् ! समस्त जीवोंके लिए हितरूप क्या है, ऐसा प्रश्न किया ।।१–२।। गणधरके उक्त प्रश्नके अनन्तर भगवान्‌की दिव्य-ध्वनि खिरने लगी। भगवान्‌की वह दिव्यध्वनि चारों दिशाओंमें दिखनेवाले चार मुखोंसे निकलती थी; चार पुरुषार्थरूप चार फलको देनेवाली थी, सार्थक थी, चार वर्ण और आश्रमोंको आश्रय देनेवाली थी, चारों ओर सुनाई पड़ती थी, चार अनुयोगोंकी एक माता थी, आक्षेपिणी, विक्षे-पिणी, संवेजिनी और निर्वेदिनी इन चार कथाओंका वर्णन करनेवाली थी, चार गतियोंका निवा-रण करनेवाली थी। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ और नौका स्थान थी, अर्थात् सामान्य रूपसे एक जीवका वर्णन करनेवाली होनेसे एकका स्थान थी, श्रावक मुनिके भेदसे दो प्रकारके धर्मका अथवा चेतन-अचेतन और मूर्तिक-अमूर्तिकके भेदसे दो द्रव्योंका निरूपक होनेसे दोका स्थान थी, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्ररूपी रत्नत्रय अथवा चेतन, अचेतन और चेतनाचेतन द्रव्योंका वर्णन करनेवाली होनेसे तीनका स्थान थी, चार गति, चार कषाय अथवा मिथ्यात्वादि चार प्रत्ययोंका निरूपण करनेवाली होनेसे चारका स्थान थी, पांच अस्ति-काय अथवा प्रमाद-सहित मिथ्यात्वादि पांच प्रत्ययोंका वर्णन करनेवाली होनेसे पाँचका स्थान थी, छह द्रव्योंका वर्णन करनेवाली होनेसे छहका स्थान थी, सात तत्त्वोंकी निरूपक होनेसे सातका स्थान थी, आठ कर्मोंका निरूपण करनेवाली होनेसे आठका स्थान थी और सात तत्त्व तथा पुण्य-पाप इन नौ पदार्थोंका वर्णन करनेवाली होनेसे नौका स्थान थी। पर्याय-रहित होने-पर भी सत्ताके समान अनन्त पर्यायोंको उत्पन्न करनेवाली थी, अहितको नष्ट करनेवाली थी, सदा हितकी रुचि उत्पन्न करनेवाली थी, हितका स्थापन करनेवाली थी, पात्रमें यथायोग्य हित-को अपने प्रभावसे धारण करनेवाली थी, अशुभसे शीघ्र हटानेवाली थी, उत्कृष्ट शुभको पूर्ण करनेवाली थी, अर्जित कर्मको शिथिल करनेवाली अथवा बिलकुल ही नष्ट करनेवाली थी। जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँसे चारों ओर एक योजनके घेरामें इतनी स्पष्ट सुनाई पड़ती थी जैसे यहीं उत्पन्न हो रही हो। वह दिव्य ध्वनि जैसी उत्पत्तिस्थानमें सुनाई पड़ती थी वैसी ही एक योजनके घेरामें सर्वत्र सुनाई पड़ती थी—उसमें हीनाधिकता नहीं मालूम होती थी, मधुर स्निग्ध, गम्भीर, दिव्य, उदात्त और स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त थी, अनन्यरूप थी, एक थी और साध्वी—अतिशय निर्मल थी ।।३–९।।

भगवान्‌की उस दिव्यध्वनिमें जगत्‌की वह स्थिति दिख रही थी जो भाव और अभावके अद्वैत-भावसे बँधी हुई है अर्थात् द्रव्यार्थिक नयसे भावरूप और पर्यायार्थिक नयसे अभावरूप है, अहेतुक है—किसी कारणसे उत्पन्न नहीं है, अनादि है और पारिणामिकी है—स्वतः सिद्ध है ।।१०।। आत्मा है, परलोक है, धर्म और अधर्म है, यह जीव उनका कर्ता है, भोक्ता है तथा संसारके सब पदार्थ अस्तिरूप और नास्तिरूप हैं, यह कथन भी उसी दिव्यध्वनिमें दिखाई

देता था ॥११॥ यह जीव स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है, स्वयं संसारमें घूमता है और स्वयं उससे मुक्त होता है ॥१२॥ अविद्या तथा रागसे संक्लिष्ट होता हुआ संसार-सागर-में बार-बार भ्रमण करता है और विद्या तथा वैराग्यसे शुद्ध होता हुआ पूर्णस्वभावमें स्थित हो सिद्ध हो जाता है ॥१३॥ इस अध्यात्म-विशेषको प्रकट करनेके लिए वह दीपिकाके समान थी तथा रूप आदि गुणोंके विषयमें जो अज्ञानान्धकार विस्तृत था उसे शीघ्र ही दूर कर रही थी ॥१४॥ जिस प्रकार आकाशसे बरसा पानी एकरूप होता है परन्तु पृथिवीपर पड़ते ही वह नाना रूप दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार भगवान्‌की वह वाणी यद्यपि एकरूप थी तथापि सभामें पात्रके गुणोंके अनुसार वह नानारूप दिखाई दे रही थी ॥१५॥ संसारके जीवादि समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाली भगवान्‌की वह दिव्यध्वनि सूर्यको पराजित करनेवाली थी तथा सावधान होकर बैठी हुई सभाके अन्तःकरणमें स्थित आवरण-सहित अज्ञानान्धकारको खण्ड-खण्ड कर रही थी ॥१६॥ भगवान् कह रहे थे कि संसारके मार्गका जो पथिक भव्यतारूपी शुद्धिसे युक्त होता है उसीके मोक्ष पुरुषार्थ देखा गया है। **भावार्थ**—मोक्षकी प्राप्ति भव्य जीवको ही होती है ॥१७॥ उस मोक्षका उपाय ध्यान और अध्ययन रूप एक हेतुसे प्राप्त होता है तथा सबसे पूर्व वह, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र इन तीनके समुदायरूप है ॥१८॥ उनमें जीवादि सात तत्त्वोंका, निर्मल तथा शंका आदि समस्त अन्तरंग मलोंके सम्बन्धसे रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन माना गया है ॥१९॥ वह सम्यग्दर्शन, दर्शनमोहरूपी अन्धकारके क्षय, उपशम तथा क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, क्षायिक आदिके भेदसे तीन प्रकारका है और निसर्गज तथा अधिगमजके भेद-से दो प्रकारका है ॥२०॥ जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं; इनका अपने-अपने लक्षणोंसे श्रद्धान करना चाहिए ॥२१॥ जीवका लक्षण उपयोग है और वह उपयोग आठ प्रकारका है। उपयोगके आठ भेदोंमें मति, श्रुत और अवधि ये तीन, सम्यग्ज्ञान तथा मिथ्याज्ञान—दोनों रूप होते हैं ॥२२॥ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख और दुःख ये सब चिदात्मक हैं ये ही जीवके लक्षण हैं; क्योंकि इनसे ही चैतन्यरूप जीवकी पहचान होती है ॥२३॥ पृथिवी आदि भूतोंकी आकृति मात्रको जीव नहीं कहते; क्योंकि वह तो इसके शरीरकी अवस्था है। शरीरका चैतन्यके साथ अनेकान्त है अर्थात् शरीर यहीं रहा आता है और चैतन्य दूर हो जाता है ॥२४॥ आटा, किण्व (मदिराका बीज) तथा पानी आदि मदिराके अंगोंमें मद उत्पन्न करने वाली शक्तिका अंश पृथक् होता है, परन्तु शरीरके अवयवोंमें चैतन्य शक्ति पृथक् नहीं होती। **भावार्थ**—आटा आदि मदिराके कारणोंको पृथक्-पृथक् कर देनेपर भी उनमें जिस प्रकार मादक शक्तिका कुछ अंश बना रहता है उस प्रकार शरीरके अंगोंको पृथक्-पृथक् करनेपर उनमें चैतन्य शक्तिका कुछ अंश नहीं रहता इससे सिद्ध होता है कि चैतन्य शरीरके अंगोंका धर्म नहीं है, किन्तु उनसे पृथक् द्रव्य है ॥२५॥ जो पृथिवी आदि चार भूतोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति अथवा अभि-व्यक्ति मानते हैं उनके मतमें बालू आदिसे तेलकी उत्पत्ति अथवा अभिव्यक्ति क्यों नहीं मान ली जाती है? **भावार्थ**—जिस प्रकार बालू आदिसे तेलकी उत्पत्ति और अभिव्यक्ति नहीं हो सकती उसी प्रकार पृथिवी आदि चार भूतोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति और अभिव्यक्ति नहीं हो सकती ॥२६॥ यह जीव इस संसारमें अनादि निधन है, निजकर्मसे परवश हुआ यह यहाँ दूसरी गतिसे आता है और कर्मके परवश हुआ दूसरी गतिको जाता है ॥२७॥ जितना यह प्रत्यक्ष गोचर दिखाई देता है इतना ही जीव है—अतीत अनागत कालमें इसकी सन्तति नहीं चलती इत्यादि कथन निज-परका अहित करनेवाले जीवोंका ही विरुद्ध कथन है ॥२८॥ क्षण-क्षणमें जो संविद् (ज्ञान) उत्पन्न होता है उतना ही आत्मा है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि संवित्ति-

को क्षणिक मान लेनेपर आगे-पीछेकी कड़ी जोड़नेवाली बुद्धिका लोप हो जायेगा और उसके लोप होनेपर लेने-देने तथा कर्ता-कर्म आदि व्यवहारका ही लोप हो जायेगा ॥२९॥ इससे सिद्ध होता है कि यह जीव स्वयं द्रव्यरूप है, ज्ञाता है, द्रष्टा है, कर्ता है, भोक्ता है, कर्मोंका नाश करनेवाला है, उत्पाद-व्ययरूप है, सदा गुणोंसे सहित है, असंख्यात प्रदेशी है, संकोच विस्तार रूप है, अपने शरीर प्रमाण है और वर्णादि बीस गुणोंसे रहित है ॥३०-३१॥ न यह आत्मा सावाँके कणके बराबर है, न आकाशके बराबर है, न परमाणुके बराबर है, न अँगूठाके पोरा-के बराबर है और न पाँच सौ योजन प्रमाण है ॥३२॥ यदि आत्माको सावाँके कण, अंगुष्ठ-पर्व अथवा परमाणुके समान छोटा माना जायेगा तो आत्मा प्रत्येक शरीरमें उसके खण्ड-खण्ड रूप प्रदेशोंके साथ ही रह सकेगा, समस्त प्रदेशोंके साथ नहीं और इस दशामें जहाँ आत्मा न रहेगा वहाँकी स्पर्शन इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकेगी। जिस प्रकार चक्षुरादि इन्द्रियाँ शरीरके किसी निश्चित स्थानमें ही कार्य कर सकती हैं उसी प्रकार स्पर्शन इन्द्रिय भी जहाँ आत्मा होगा वहीं कार्य कर सकेगी सर्वत्र नहीं। इसी प्रकार आत्माका परिमाण यदि शरीरसे अधिक माना जायेगा तो अनेकों योजनों तक जहाँ कि शरीर नहीं है मात्र आत्माके प्रदेश हैं, वहाँ सब ओर क्या पदार्थका स्पर्शन होने लगेगा? और इस दशामें जिस प्रकार चक्षुके द्वारा योजनोंकी दूरी तक पदार्थोंका अवलोकन होता है उसी प्रकार योजनोंकी दूरी तक पदार्थका स्पर्शन भी होने लगेगा और ऐसा माननेपर प्रत्यक्ष तथा अनुमान दोनोंसे विरोध आता है इसलिए शरीरके प्रमाण ही आत्माको मानना चाहिए। सबका अनुभव भी इसी प्रकारका है ॥३३-३५॥ वह जीव गति, इन्द्रिय, छह काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, सम्यक्त्व, लेश्या, दर्शन, संज्ञित्व, भव्यत्व और आहार इन चौदह मार्गणाओंसे खोजा जाता है तथा मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुण-स्थानोंसे उसका कथन किया गया है ॥३६-३७॥ प्रमाण, नय, निक्षेप, सत्, संख्या और निर्देश आदिसे संसारी जीवका तथा अनन्त ज्ञान आदि आत्मगुणोंसे मुक्त जीवका निश्चय करना चाहिए ॥३८॥ वस्तुके अनेक स्वरूप हैं उनमें-से किसी एक निश्चित स्वरूपको ग्रहण करनेवाला ज्ञान नय कहलाता है। इसके द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकके भेदसे दो भेद हैं। इनमें द्रव्यार्थिक नय यथार्थ है और पर्यायार्थिक नय अयथार्थ है ॥३९॥ द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये ही दो मूल नय हैं तथा दोनों ही परस्पर सापेक्ष माने गये हैं। अच्छी तरह देखे गये नैगम, संग्रह आदि नय इन्हीं दोनों नयोंके भेद हैं ॥४०॥ नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं ॥४१॥ इनमें प्रारम्भके तीन नय द्रव्यार्थिक नयके भेद हैं और वे सामान्य-को विषय करते हैं तथा अवशिष्ट चार नय पर्यायार्थिक नयके भेद हैं और वे विशेषको विषय करते हैं ॥४२॥ पदार्थके संकल्पमात्रको ग्रहण करनेवाला नय नैगम नय कहलाता है। प्रस्थ तथा ओदन आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। **भावार्थ**—जो नय अनिष्पन्न पदार्थके संकल्पमात्रको विषय करता है वह नैगम नय कहलाता है, जैसे कोई प्रस्थकी लकड़ी लेनेके लिए जा रहा है उससे कोई पूछता है कि कहाँ जा रहे हो, तो वह उत्तर देता है कि प्रस्थ लेने जा रहा हूँ। यद्यपि जंगलमें प्रस्थ नहीं मिलता है वहाँसे लकड़ी लाकर प्रस्थ बनाया जाता है तथापि नैगम नय संकल्प मात्रका ग्राहक होनेसे ऐसा कह देता है कि प्रस्थ लेनेके लिए जा रहा हूँ। इसी प्रकार कोई ओदन—भात बनानेके लिए लकड़ी, पानी आदि सामग्री इकट्ठी कर रहा है उस समय कोई पूछता है कि क्या कर रहे हो? तो वह उत्तर देता है कि ओदन बना रहा हूँ। यद्यपि उस समय वह ओदन नहीं बना रहा है तथापि उसका संकल्प है इसलिए नैगम नय ऐसा कह देता है कि ओदन बना रहा हूँ ॥४३॥ अनेक भेद और पर्यायोंसे युक्त पदार्थको एकरूपता प्राप्त कराकर समस्त पदार्थका ग्रहण करना संग्रह नय है; जैसे सत् अथवा द्रव्य। **भावार्थ**—संसारके पदार्थ

अनेक रूप हैं उन्हें एकरूपता प्राप्त कराकर सत् शब्दसे कहना। इसी प्रकार जीव, अजीव आदि अनेक भेदोंसे युक्त पदार्थोंको 'द्रव्य' इस सामान्य शब्दसे कहना यह संग्रह नय है ॥४४॥

संग्रह नयके विषयभूत सत्ता आदि पदार्थोंके विशेष रूपसे भेद करना व्यवहार नय है, क्योंकि व्यवहार नय सत्ताके भेद करता-करता उसे अन्तिम भेद तक ले जाता हैं। भावार्थ—जैसे संग्रह नयने जिस सत्को ग्रहण किया था व्यवहार नय कहता है कि वह सत्, द्रव्य और गुणके भेदसे दो प्रकारका है। अथवा संग्रह नयने जिस द्रव्यको विषय किया था व्यवहार नय कहता है कि उस द्रव्यके जीव और अजीवके भेदसे दो भेद हैं। इस प्रकार यह नय पदार्थमें वहाँ तक भेद करता जाता है जहां तक भेद करना सम्भव है ॥४५॥

पदार्थकी भूत-भविष्यत् पर्यायको वक्र और वर्तमान पर्यायको ऋजु कहते हैं। जो नय पदार्थकी भूत-भविष्यत्रूप वक्र पर्यायको छोड़कर सरल सूत्रपातके समान मात्र वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र नय कहलाता है। भावार्थ—इसके सूक्ष्म और स्थूलके भेदसे दो भेद हैं। जीवकी समय-समयमें होनेवाली पर्यायको ग्रहण करना सूक्ष्म ऋजुसूत्र नयका विषय है और देव, मनुष्य आदि बहुसमयव्यापी पर्यायको ग्रहण करना स्थूल ऋजुसूत्र नयका विषय है ॥४६॥ यौगिक अर्थका धारक होनेसे शब्द नय, लिंग, साधन—कारक, संख्या—वचन, काल और उपग्रह-पदके व्यभिचारको नहीं चाहता अर्थात् लिंग संख्या आदिके भेदसे होनेवाले दोषको वह सदा दूर करता है। वह व्याकरणशास्त्रके आधीन रहता है। भावार्थ—जैसे लिंगव्यभिचार—'पुष्यस्तारका नक्षत्रम्' यहाँ पुंलिंग पुष्यका, स्त्रीलिंग तारका अथवा नपुंसक लिंग नक्षत्रके साथ सम्बन्ध हो जाता है, लिंगभेद होनेपर भी विशेषण-विशेष्यभावमें अन्तर नहीं आता। साधनव्यभिचार—साधन कारकको कहते हैं, इसका उदाहरण 'सेना पर्वतमधिवसति' है। यहाँ पर्वत शब्द अधिकरणकारक है अत: उसमें सामान्य नियमके अनुसार सप्तमी विभक्ति आना चाहिए तथापि अधि उपसर्गपूर्वक वस् धातुका प्रयोग होनेसे कर्मकारकमें आनेवाली द्वितीया विभक्ति हो गयी फिर भी अर्थ अधिकरणकारकके अनुसार ही - 'सेना पर्वतपर रहती है' होता है। संख्याव्यभिचार—संख्या वचनको कहते हैं, इसके उदाहरण हैं 'जलमापो, वर्षा: ऋतु:, आम्राः वनम्, वरणाः नगरम्' यहाँपर 'जलम्' एकवचन है फिर भी उसका पर्याय 'आप:' यह नित्य बहुवचनान्त शब्द दिया जा सकता है। 'वर्षा:' बहुवचन है और 'ऋतु:' एकवचन है फिर भी इनका विशेष्य-विशेषण भाव हो सकता है। इसी प्रकार शेष उदाहरण भी समझ लेना चाहिए। कालव्यभिचार—भूत, भविष्यत् और वर्तमानके भेदसे कालके तीन भेद हैं इनमें परस्पर विरुद्ध कालोंका भी प्रयोग होता है, जैसे 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' यह उदाहरण है। यहाँ विश्वदृश्वाका अर्थ होता है 'विश्वं दृष्टवान्' इति विश्वदृश्वा—जिसने विश्वको देख लिया। परन्तु यहाँपर विश्वदृश्वा इस भूतकालिक कर्मका जनिता इस भविष्यत्कालिक क्रियाके साथ सम्बन्ध जोड़ा गया है। उपग्रहव्यभिचार—आत्मनेपद, परस्मैपद आदि पदोंको उपग्रह कहते हैं। शब्दनय परस्मैपदके स्थानपर आत्मनेपद और आत्मनेपदके स्थानपर परस्मैपदके प्रयोगको जो कि व्याकरणके अनुसार होता है स्वीकृत कर लेता है। जैसे तिष्ठति, संतिष्ठते, प्रतिष्ठते, रमते, विरमति, उपरमति आदि। यहाँ 'तिष्ठति'में परस्मैपदका प्रयोग होता है परन्तु सम् और प्र उपसर्ग लग जानेसे संतिष्ठते तथा प्रतिष्टतेमें आत्मनेपद हो गया। 'रमते' यह आत्मनेपदका प्रयोग है परन्तु 'विरमति'में वि उपसर्ग और 'उपरमति'में उप उपसर्ग लग जानेसे परस्मैपद प्रयोग हो जाता है। लिंगादिके व्यभिचारके समान शब्दनय पुरुष व्यभिचारको भी नहीं मानता जैसे 'एहि मन्ये रथेन यास्यति, नहि यास्यति, यातस्ते पिता'—यहाँपर 'मन्यसे' इस मध्यमपुरुषके बदले हास्यमें 'मन्ये' इस उत्तमपुरुषका प्रयोग किया गया है। तात्पर्य यह है कि शब्दनय व्याकरणके

नियमोंके आधीन है, अतः वह सामान्य नियमोंके विरुद्ध प्रयोग होनेसे आनेवाले दोषको स्वीकृत नहीं करेगा ॥४७॥

जो शब्दभेद होनेपर अर्थभेद स्वीकृत करता है अर्थात् एक पदार्थके लिए अनेक पर्यायात्मक शब्द प्रयुक्त होनेपर उनके पृथक्-पृथक् अर्थको स्वीकृत करता है वह समभिरूढ़नय है, जैसे लोकमें देवेन्द्रके लिए इन्द्र, शक्र और पुरन्दर शब्दका प्रयोग आता है परन्तु समभिरूढ़नय इन सबके पृथक्-पृथक् अर्थको ग्रहण करता है। वह कहता है कि जो परम ऐश्वर्यका अनुभव करता है वह इन्द्र है, जो शक्तिसम्पन्न है वह शक्र है और जो पुरोंका विभाग करनेवाला है वह पुरन्दर है, इसलिए इन भिन्न-भिन्न पर्याय शब्दोंसे सामान्य देवेन्द्रका ग्रहण न कर उसकी भिन्न-भिन्न विशेषताओंका ग्रहण करता है। अथवा जो नाना अर्थोंका उल्लंघन कर एक अर्थको मुख्यतासे ग्रहण करता है वह समभिरूढ़नय है, जैसे गो शब्द कोशमें वचन आदि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध है किन्तु लोकमें वह अधिकतासे पशु अर्थमें ही प्रयुक्त होता है। अथवा जो शब्दके निरुक्त—प्रकृति-प्रत्ययके संयोगसे सिद्ध होनेवाले अर्थको न मानकर उसके चालू वाच्यार्थको ही माना है वह समभिरूढ़नय है, जैसे गो शब्दका निरुक्त अर्थ गच्छतीति गोः जो चले वह है, परन्तु लोकमें इस अर्थकी उपेक्षा कर पशु विशेषको गो कहते हैं, वह चलती हो तब भी गो है और बैठी या खड़ी हो तब भी गो है ॥४८॥

जो पदार्थ जिस क्षणमें जैसी क्रिया करता है उसी क्षणमें उसको उस रूप कहना, अन्य क्षणमें नहीं, यह एवंभूतनय है। यह नय पदार्थके यथार्थ स्वरूपको कहता है जैसे 'इन्दतीति इन्द्रः' जिस समय इन्द्र ऐश्वर्यका अनुभव करता है उसी समय इन्द्र कहलाता है अन्य समयमें नहीं ॥ ४९ ॥

द्रव्यकी अनन्त शक्तियां हैं। ये सातों नय प्रत्येक शक्तिके भेदोंको स्वीकृत करते हुए उत्तरोत्तर सूक्ष्म पदार्थको ग्रहण करते हैं ॥५०॥ इन *नयोंमें कितने ही नय अर्थप्रधान हैं और कितने ही शब्दप्रधान हैं, इसलिए प्रारम्भसे लेकर शब्दनय तक पांच प्रकारके नय और संग्रहको आदि लेकर अन्त तक छह प्रकारके नय अर्थात् नैगमादि सातों नयोंमें प्रत्येक सैकड़ो प्रकारके हैं ॥५१॥ क्योंकि जितने वचनके मार्ग-भेद हैं उतने नय हैं इसलिए नय इतने हैं। इस प्रकार यथार्थमें नयोंकी संख्या निश्चित नहीं है ॥५२॥

धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल ये पाँचों अजीव तत्त्व हैं तथा सम्यग्दर्शनके विषयभूत हैं ॥५३॥ इनमें-से धर्म और अधर्म द्रव्य क्रमसे गति और स्थितिके निमित्त हैं अर्थात् धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलके गमनमें निमित्त है तथा अधर्ममें द्रव्य उन्हींकी स्थितिमें निमित्त है। आकाश, जीव और अजीव दोनों द्रव्योंके अवगाहमें निमित्त है ॥५४॥ पुद्गल द्रव्य पूरण गलन क्रिया करता हुआ वर्णादि अनेक गुणोंसे युक्त है। उसके दो भेद हैं, स्कन्ध और परमाणु। बहुत-से परमाणुओंके संयोगसे स्कन्ध बनता है और स्कन्धमें भेद होते-होते परमाणुकी उत्पत्ति होती है ॥५५॥ जो वर्तना लक्षणसे सहित है वह काल द्रव्य है। इसके समय आदि अनेक भेद हैं। परिवर्तनरूप धर्मसे सहित होनेके कारण काल द्रव्य परत्व और अपरत्व व्यवहारसे युक्त है ॥५६॥

काय, वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं। वह योग ही आस्रव कहलाता है। उसके शुभ और अशुभके भेदसे दो भेद हैं। उनमें शुभयोग शुभास्रवका और अशुभयोग अशुभास्रवका कारण है ॥५७॥ आस्रवके स्वामी दो हैं—सकषाय (कषायसहित) और अकषाय (कषायरहित)। इसी प्रकार आस्रवके दो भेद हैं—साम्परायिक आस्रव और ईर्यापथ आस्रव। मिथ्यादृष्टि-

को आदि लेकर सूक्ष्मकषाय गुणस्थान तकके जीव सकषाय हैं और वे प्रथम साम्परायिक आस्रवके स्वामी हैं तथा उपशान्तकषायको आदि लेकर सयोगकेवली तकके जीव अकषाय हैं और ये अन्तिम ईर्यापथ आस्रवके स्वामी हैं। [चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगकेवली भी अकषाय हैं परन्तु उनके योगका अभाव हो जानेसे आस्रव नहीं होता] ॥५८-५९॥ पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, हिंसा आदि पाँच अव्रत और पचीस क्रियाएँ ये साम्परायिक आस्रवके द्वार हैं ॥६०॥ इनमें पांच इन्द्रियाँ, चार कषाय और पाँच अव्रत प्रसिद्ध हैं, अतः इन्हें छोड़कर पचीस क्रियाओंका स्वरूप कहते हैं। प्रतिमा, शास्त्र, अर्हन्त देव तथा सच्चे गुरु आदिकी पूजा, भक्ति आदि करना सम्यक्त्वको बढ़ानेवाली सम्यक्त्वक्रिया है ॥६१॥ पापके उदयसे अन्य देवताओंकी स्तुति आदिमें प्रवृत्ति करना मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली मिथ्यात्व क्रिया है ॥६२॥ गमनागमनादिमें प्रवृत्ति करना सो प्रायः असंयमको बढ़ानेवाली प्रयोग क्रिया है ॥६३॥ संयमी पुरुषका प्रायः असंयमकी ओर सम्मुख होना प्रमादको बढ़ानेवाली समादान क्रिया है ॥६४॥ जो क्रिया ईर्यापथमें निमित्त है वह ईर्यापथ क्रिया है। ये पांच क्रियाएँ साम्परायिक आस्रवकी हेतु हैं ॥६५॥ क्रोधके आवेशसे जो क्रिया होती है वह प्रादोषिकी क्रिया है। दोषसे भरा मनुष्य जो उद्यम करता है वह कायिकी क्रिया है ॥६६॥ हिंसाके उपकरण-शस्त्र आदिके ग्रहणसे जो क्रिया होती है वह क्रियाधिकरिणी क्रिया है। स्व-परको दुःख उत्पन्न करनेवाली पारितापिकी क्रिया है ॥६७॥ इन्द्रिय, आयु और बल प्राणका वियोग करनेवाली क्रिया प्राणातिपातिकी है। ये पांच आध्यात्मिक क्रियाएँ हैं ॥६८॥ चित्तके रागसे आर्द्र हो जानेके कारण जब उत्तम पुरुष प्रमादी बन, किसी सुन्दर रूपके देखनेकी अभिलाषा करता है तब उसके दर्शन क्रिया होती है ॥६९॥ वही मनुष्य जब अत्यधिक प्रमादी बन स्पर्श करने योग्य पदार्थका बार-बार चिन्तन करता है तब कर्मबन्धमें कारणभूत स्पर्शन क्रिया होती है ॥७०॥ पापके नये-नये कारण उत्पन्न करनेसे पापका आस्रव करनेवाली जो क्रिया होती है वह प्रत्यायिकी क्रिया कही गयी है ॥७१॥ स्त्री-पुरुष और पशुओंके मिलने-जुलने आदिके योग्य स्थानपर शरीर-सम्बन्धी मल-मूत्रादिको छोड़ना समन्तानुपातिनी क्रिया है। यह क्रिया साधुजनोंके अयोग्य है ॥७२॥ बिना शोधी, बिना देखी भूमिपर शरीरादिका रखना अनाभोगक्रिया है। ये पाँचों ही क्रियाएँ दुष्क्रियाएँ कहलाती हैं ॥७३॥ दूसरेके द्वारा करने योग्य क्रियाको स्वयं अपने हाथसे करना यह पूर्वोक्त आस्रवको बढ़ानेवाली स्वहस्तक्रिया है ॥७४॥ पापोत्पादक वृत्तियोंको स्वयं अच्छा समझना निसर्गक्रिया है, यह स्वभावसे ही आस्रवको बढ़ानेवाली है ॥७५॥ दूसरेके द्वारा आचरित पापपूर्ण क्रियाओंका प्रकट करना यह दूसरेकी बुद्धिको विदारण करनेवाली विदारण क्रिया है ॥७६॥ आगमकी आज्ञाके अनुसार आवश्यक आदि क्रियाओंके करनेमें असमर्थ मनुष्यका मोहके उदयसे उनका अन्यथा निरूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है ॥७७॥ अज्ञान अथवा आलस्यके सहित होनेके कारण शास्त्रोक्त विधियोंके करनेमें अनादर करना अनाकांक्षाक्रिया है, इस प्रकार ये पांच क्रियाएँ हैं ॥७८॥

दूसरोंके द्वारा किये जानेवाले आरम्भमें प्रमादी होकर स्वयं हर्ष मानना अथवा छेदन-भेदन आदि क्रियाओंमें अत्यधिक तत्पर रहना प्रारम्भ क्रिया है ॥७९॥ परिग्रहमें तत्पर जो क्रिया है वह पारिग्रहिकी क्रिया है। ज्ञान, दर्शन आदिके विषयमें जो छलपूर्ण प्रवृत्ति है वह माया-क्रिया है ॥८०॥ प्रोत्साहन आदिके द्वारा दूसरेको मिथ्यादर्शनके प्रारम्भ करने तथा उसके दृढ़ करनेमें तत्पर जो क्रिया है वह मिथ्यादर्शन क्रिया है ॥८१॥ कर्मोदयके वशीभूत होनेसे पापसे निवृत्ति नहीं होना अप्रत्याख्यान क्रिया है। इस प्रकार आस्रवको बढ़ानेवाली ये पांच क्रियाएँ हैं। इस प्रकार पांच-पांचके पचीस क्रियाओंका वर्णन किया ॥८२॥

जीवोंके परिणाम मन्द, मध्य और तीव्र होते हैं इसलिए हेतुमें भेद होनेसे आस्रव भी मन्द, मध्यम और तीव्र होता है ॥८३॥ जीवाधिकरण और अजीवाधिकरणके भेदसे आस्रवके दो भेद हैं। जीवाधिकरण आस्रवके मूलमें तीन भेद हैं—१ संरम्भ, २ समारम्भ और ३ आरम्भ। इनमें-से प्रत्येकके कृत, कारित, अनुमोदना—तीन, मनोयोग, वचनयोग, काययोग तीन और क्रोध, मान, माया, लोभरूप कषाय—चार इनसे परस्पर गुणित होनेपर छत्तीस-छत्तीस भेद होते हैं। तीनोंके मिलाकर एक सौ आठ भेद हो जाते हैं॥ भावार्थ—किसी कार्यके करनेका मनमें विचार करना संरम्भ है। उसके साधन जुटाना समारम्भ है और कार्यरूपमें परिणत करना आरम्भ है। स्वयं कार्य करना कृत है, दूसरेसे कराना कारित है और कोई करे उसमें हर्ष मानना अनुमति है। मनसे किसी कार्यका विचार करना मनोयोग है, वचनसे प्रकट करना वचनयोग है और कायसे कार्य करना काययोग है। क्रोध कषायसे प्रेरित हो किसी कार्यको करना क्रोध कषाय है, मानसे प्रेरित हो करना मान कषाय है, मायासे प्रेरित हो करना माया कषाय है और लोभसे प्रेरित होकर करना लोभ कषाय है। मूलमें संरम्भ आदिके भेदसे आस्रव तीन प्रकारका होता है, इनमें-से प्रत्येकका भेद कृत, कारित अनुमोदनाकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है, फिर यही तीन भेद तीन योगके निमित्तसे होते हैं, इसलिए तीनका तीनमें गुणा करनेपर नौ भेद होते हैं। तदनन्तर यही नौ भेद क्रोधादि कषायकी अपेक्षा चार-चार प्रकारके होते हैं इसलिए नौमें चारका गुणा करनेपर छत्तीस भेद होते हैं। छत्तीस भेद संरम्भके, छत्तीस समारम्भके और छत्तीस आरम्भके, तीनोंको मिलाकर एक सौ आठ भेद होते हैं। अथवा दूसरी तरहसे संरम्भादि तीनमें कृत, कारितादिका गुणा करनेपर नौ भेद हुए, उनमें तीन योगका गुणा करनेपर सत्ताईस हुए और उसमें क्रोधादि चार कषायका गुणा करनेपर एक सौ आठ भेद होते हैं। ये सब परिणाम जीवकृत हैं अतः इन्हें जीवाधिकरण आस्रव कहते हैं ॥८४-८५॥ दो प्रकारकी निर्वर्तना, चार प्रकारका निक्षेप, दो प्रकारका संयोग और तीन प्रकारका निसर्ग ये अजीवाधिकरण आस्रवके भेद हैं ॥८६॥ मूलगुण निर्वर्तना और उत्तरगुण निर्वर्तनाके भेदसे निर्वर्तनाके दो भेद हैं। शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास आदिकी रचना होना मूलगुण निर्वर्तना है और काष्ठ, पाषाण, मिट्टी आदिसे चित्राम आदिका बनाना उत्तरगुण निर्वर्तना है ॥८७॥ सहसा निक्षेपाधिकरण, दुष्प्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण, अनाभोग निक्षेपाधिकरण और अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण इन चार भेदोंसे निक्षेपाधिकरण चार प्रकारका होता है। शीघ्रतासे किसी वस्तुको रख देना सहसा निक्षेप है। दुष्टतापूर्वक साफ की हुई भूमिमें किसी वस्तुको रखना दुष्प्रमृष्ट निक्षेप है। अव्यवस्थाके साथ चाहे जहां किसी वस्तुको रख देना अनाभोग निक्षेप है और बिना देखी-शोधी भूमिमें किसी वस्तुको रख देना अप्रत्यवेक्षित निक्षेप है ॥८८॥ भक्तपान संयोग और उपकरण संयोगके भेदसे संयोगाधिकरण आस्रव दो प्रकारका कहा गया है। भोजन और पानको अन्य भोजन तथा पानमें मिलाना भक्तपान संयोग है तथा बिना विवेकके उपकरणोंका परस्पर मिलना उपकरण संयोग है जैसे शीतस्पर्शयुक्त पीछीसे घाममें सन्तप्त कमण्डलुका सहसा पोंछना आदि ॥८९॥ वाङ्निसर्ग, मनोनिसर्ग और कायनिसर्गके भेदसे निसर्गाधिकरण आस्रव तीन रूपताको प्राप्त होता है। वचनकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको वाङ्निसर्ग कहते हैं, मनकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको मनोनिसर्ग कहते हैं और कायकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको काय निसर्ग कहते हैं ॥९०॥ इस प्रकार यह सामान्य रूपसे कर्मास्रवोंका भेद कहा। अब ज्ञानावरणादिके भेदसे युक्त विशिष्ट कर्मोंके आस्रवका भेद कहा जाता है ॥९१॥ ज्ञानके विषयमें किये हुए प्रदोष, निह्नव, आदान, विघ्न, आसादन और दूषण ज्ञानावरणके आस्रव हैं और दर्शनके विषयमें किये हुए प्रदोष आदि दर्शनावरणके

आस्रव हैं। मोक्षके साधनभूत तत्त्वज्ञानका निरूपण होनेपर कोई मनुष्य चुपचाप बैठा है परन्तु भीतर ही भीतर उसका परिणाम कलुषित हो रहा है इसे प्रदोष कहते हैं। किसी कारणसे 'मेरे पास नहीं है' अथवा 'मैं नहीं जानता हूँ' इत्यादि रूपसे ज्ञानको छिपाना निह्नव है। मात्सर्यके कारण देने योग्य ज्ञान भी दूसरेको नहीं देना सो अदान है। ज्ञानमें अन्तराय डाल देना विघ्न है। दूसरेके द्वारा प्रकाशमें आने योग्य ज्ञानको काय और वचनसे रोक देना आसादन है और प्रशस्त ज्ञानमें दोष लगाना दूषण है ॥९२॥

वेदनीय कर्मके दो भेद हैं—१ असातावेदनीय और २ सातावेदनीय। इनमें-से निज, पर और दोनोंके विषयमें होनेवाले दुःख, शोक, वध, आक्रन्दन, ताप और परिदेवन ये असातावेदनीयके आस्रव हैं। पीड़ारूप परिणामको दुःख कहते हैं। अपने उपकारक पदार्थोंका सम्बन्ध नष्ट हो जानेपर परिणामोंमें विकलता उत्पन्न होना शोक है। आयु, इन्द्रिय तथा बल आदि प्राणोंका वियोग करना वध है। सन्ताप आदिके कारण अश्रुपात करते हुए रोना आक्रन्दन है। लोकमें अपनी निन्दा आदिके फैल जानेसे हृदयमें तीव्र पश्चात्ताप होना ताप है। और उपकारीका वियोग होनेपर उसके गुणोंका स्मरण तथा कीर्तन करते हुए इस तरह विलाप करना जिससे सुननेवाले दयार्द्र हो जावें उसे परिदेवन कहते हैं ॥९३॥ समस्त प्राणियोंपर दया करना, व्रती जनोंपर अनुराग रखना, सरागसंयम, दान, क्षमा, शौच, अर्हन्त भगवान्की पूजामें तत्पर रहना और बालक तथा वृद्ध तपस्वियोंकी वैयावृत्ति आदि करना सातावेदनीयके आस्रव हैं ॥९४-९५॥ केवली, श्रुत, संघ, धर्म तथा देवका अवर्णवाद करना—झूठे दोष लगाना दर्शन मोहनीय कर्मके आस्रवके हेतु कहे गये हैं। केवली कवलाहारसे जीवित रहते हैं इत्यादि असद्भूत दोषोंका निरूपण करना केवलीका अवर्णवाद है। शास्त्रमें मांस भक्षण आदि निषिद्ध कार्योंका उल्लेख है इत्यादि कहना श्रुतका अवर्णवाद है। ऋषि, मुनि, यति और अनगार इन चार प्रकारके मुनियोंका समूह संघ कहलाता है—इनके दोष कहना अर्थात् ये शरीरसे अपवित्र हैं, शूद्र-तुल्य हैं, नास्तिक हैं, आदि कहना संघका अवर्णवाद है। जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ धर्म निर्गुण है और उसके पालन करनेवाले असुर होते हैं इत्यादि कहना धर्मका अवर्णवाद है और देव मांस-मदिराका सेवन करते हैं, इत्यादि कहना देवका अवर्णवाद है ॥९६॥ कषायके उदयसे जो तीव्र परिणाम होता है वह चारित्र मोहके नानाप्रकारके आस्रवोंका कारण है ॥९७॥ चारित्र मोहनीयके कषायवेदनीय और अकषायवेदनीयकी अपेक्षा दो भेद हैं। इनमें-से निज तथा परको कषाय उत्पन्न कर उद्धत वृत्तिका धारण करना तथा तपस्विजनोंके सम्यक् चारित्रमें दूषण लगाना कषायवेदनीयके आस्रव हैं। धर्मका उपहास आदि करनेसे हास्यरूप स्वभावका होना अर्थात् धर्मकी हँसी उड़ाकर प्रसन्नताका अनुभव करना हास्य अकषायवेदनीयका आस्रव है ॥९८-१००॥ दूसरोंको अरति उत्पन्न करना, रतिको नष्ट करना और दुष्ट स्वभावके धारक जनोंकी सेवा करना रति नामक अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०१॥ अपने-आपको शोक उत्पन्न करना तथा दूसरोंके शोककी वृद्धि देख प्रसन्नताका अनुभव करना शोक अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०२॥ दूसरोंको भय उत्पन्न करना तथा अपने भयकी चिन्ता करना भय अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०३॥ उत्तम आचरण करनेवाले मनुष्योंके आचारमें ग्लानि करना तथा उनकी निन्दा करना जुगुप्सा अकषायवेदनीयका आस्रव है ॥१०४॥ दूसरेको धोखा देनेमें अत्यधिक तत्पर रहना, असत्य बोलना तथा रागकी अधिकता होना स्त्री अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०५॥ नम्रतासे सहित होना, क्रोधकी न्यूनता होना और अपनी स्त्रीमें सन्तोष रखना ये संसारमें पुंवेद अकषायवेदनीयके आस्रव माने गये हैं ॥१०६॥ कषायोंकी प्रचुरता होना, गुह्य अंगोंका छेदन करना तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखना ये नपुंसक अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०७॥

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखना नरकायुका आस्रव है। मायाचार तिर्यंच आयुका आस्रव है ॥१०८॥ थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखनेसे मनुष्य आयुका आस्रव होता है। सन्तोष धारण करते हुए अव्रत अवस्था होना तथा स्वभावसे कोमल परिणामी होना भी मनुष्यायुके आस्रव हैं ॥१०९॥ सम्यग्दर्शन, व्रतीपना, बालतप तथा अकामनिर्जरा ये देवायुके आस्रव हैं ॥११०॥

अपने योगोंकी कुटिलता और दूसरोंके साथ विसंवाद ये अशुभ नामकर्मके आस्रव हैं और अपने योगोंकी सरलता तथा विसंवादका अभाव होना शुभ नामका आस्रव है ॥१११॥ नामकर्मका विशेष भेद जो तीर्थंकर प्रकृति है उसके आस्रव, अत्यन्त निर्मलताको प्राप्त दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनाएँ हैं ॥११२॥ दूसरोंके विद्यमान गुणोंको छिपाना, अपनी प्रशंसा करना तथा अपने अविद्यमान गुणोंका कथन करना ये नीचगोत्रकर्मके आस्रव हैं ॥११३॥ विनयपूर्ण प्रवृत्ति करना तथा अहंकार नहीं करना उच्चगोत्रके आस्रव हैं और दान आदिमें विघ्न करना अन्तरायकर्मके आस्रव हैं ॥११४॥

पुण्यकर्मका जो शुभास्रव होता है उसका सामान्यरूपसे वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अब उसकी विशेष प्रतीतिके लिए यह प्रतिपादन किया जा रहा है ॥११५॥ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अपरिग्रह इन पांच पापोंसे विरक्त होना सो व्रत है। वह व्रत अणुव्रत और महाव्रतके भेदसे दो प्रकारका है। उक्त पापोंसे एकदेश विरत होना अणुव्रत है और सर्वदेश विरत होना महाव्रत है ॥११६॥ महाव्रत और अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंको अपने व्रतमें स्थिर रखनेके लिए उक्त पांचों व्रतोंमें प्रत्येककी पांच-पांच भावनाएँ कही जाती हैं ॥११७॥ सम्यक् वचनगुप्ति, सम्यग्मनोगुप्ति, भोजनके समय देखकर भोजन करना (आलोकितपान भोजन), ईर्या-समिति और आदाननिक्षेपण समिति ये पांच अहिंसा व्रतकी भावनाएँ हैं ॥११८॥ अपने क्रोध, लोभ, भय और हास्यका त्याग करना तथा प्रशस्त वचन बोलना (अनुवीचिभाषण) ये पांच सत्यव्रतकी भावनाएँ हैं ॥११९॥ शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि और सधर्माविसंवाद ये पांच अचौर्य व्रतकी भावनाएँ हैं ॥१२०॥ स्त्री-रागकथा श्रवण त्याग, अर्थात् स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथाओंके सुननेका त्याग करना, उनके मनोहर अंगोंके देखनेका त्याग करना, शरीरकी सजावटका त्याग करना, गरिष्ठ रसका त्याग करना एवं पूर्व कालमें भोगे हुए रतिके स्मरणका त्याग करना ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएँ हैं ॥१२१॥ पंच इन्द्रियोंके इष्ट-अनिष्ट विषयोंमें यथायोग्य राग-द्वेषका त्याग करना ये पांच अपरिग्रह व्रतकी भावनाएँ हैं ॥१२२॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको व्रतोंकी स्थिरताके लिए यह चिन्तवन भी करना चाहिए कि हिंसादि पाप करनेसे इस लोक तथा परलोकमें नाना प्रकारके कष्ट और पापबन्ध होता है ॥१२३॥ अथवा नीतिके जानकार पुरुषोंको निरन्तर ऐसी भावना करनी चाहिए कि ये हिंसा आदि दोष दुःख रूप ही हैं। यद्यपि ये दुःखके कारण हैं दुःखरूप नहीं परन्तु कारण और कार्यमें अभेद विवक्षासे ऐसा चिन्तवन करना चाहिए ॥१२४॥ मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य ये चार भावनाएँ क्रमसे प्राणी-मात्र, गुणाधिक, दुःखी और अविनेय जीवोंमें करना चाहिए। भावार्थ—किसी जीवको दुःख न हो ऐसा विचार करना मैत्री भावना है। अपनेसे अधिक गुणी मनुष्योंको देखकर हर्ष प्रकट करना प्रमोद भावना है। दुःखी मनुष्योंको देखकर हृदयमें दयाभाव उत्पन्न होना करुणा भावना है और अविनेयमिथ्यादृष्टि जीवोंमें मध्यस्थ भाव रखना माध्यस्थ्य भावना है ॥१२५॥ अपनी आत्मामें संवेग और वैराग्य उत्पन्न करनेके लिए संसारसे भयभीत रहनेवाले विचारक मनुष्योंको सदा संसार और शरीरके स्वभावका चिन्तवन करना चाहिए ॥१२६॥

इस संसारमें प्राणियोंके लिए यथासम्भव इन्द्रियादि दश प्राण प्राप्त हैं। प्रमादी बनकर

उनका विच्छेद करना सो हिंसा पाप है ॥१२७॥ प्राणियोंके दुःखका कारण होनेसे प्रमादी मनुष्य जो किसीके प्राणोंका वियोग करता है वह अधर्मका कारण है—पापबन्धका निमित्त है परन्तु समितिपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले प्रमादरहित जीवके कदाचित् यदि किसी जीवके प्राणोंका वियोग हो जाता है तो वह उसके लिए बन्धका कारण नहीं होता है ॥१२८॥ प्रमादी आत्मा अपनी आत्माका अपने-आपके द्वारा पहले घात कर लेता है पीछे दूसरे प्राणियोंका वध होता भी है और नहीं भी होता है ॥१२९॥ विद्यमान अथवा अविद्यमान वस्तुको निरूपण करनेवाला प्राणि-पीड़ा-कारक वचन असत्य अथवा अनृत वचन कहलाता है। इसके विपरीत जो वचन प्राणियोंका हित करनेवाला है वह ऋत अथवा सत्यवचन कहलाता है ॥१३०॥ बिना दी हुई वस्तुका स्वयं ले लेना चोरी कही जाती है। परन्तु जहाँ संक्लेश परिणामपूर्वक प्रवृत्ति होती है वहीं चोरी होती है ॥१३१॥ जिसमें अहिंसादि गुणोंकी वृद्धि हो वह वास्तविक ब्रह्मचर्य है। इससे विपरीत सम्भोगके लिए स्त्री-पुरुषोंकी जो चेष्टा है वह अब्रह्म है ॥१३२॥ गाय, घोड़ा, मणि, मुक्ता आदि चेतन, अचेनरूप बाह्य धनमें तथा रागादिरूप अन्तरंग विकारमें ममताभाव रखना परिग्रह है। यह परिग्रह छोड़ने योग्य है ॥१३३॥ इन हिंसादि पांच पापोंसे विरत होना सो अहिंसा आदि पांच व्रत हैं। ये व्रत महाव्रत और अणुव्रतके भेदसे दो प्रकारके हैं तथा जिसके ये होते हैं वह व्रती कहलाता है ॥१३४॥ व्रतका सम्बन्ध रहनेपर भी जो निःशल्य होता है वही व्रती माना गया है। माया, निदान और मिथ्यात्वके भेदसे शल्य तीन प्रकारकी है। यह शल्य, शल्य अर्थात् कांटोंके समान दुःख देनेवाली है ॥१३५॥

सागार और अनगारके भेदसे व्रती दो प्रकारके माने गये हैं। इनमें अणुव्रतोंके धारी सागार कहलाते हैं और महाव्रतोंके धारक महाव्रती कहे जाते हैं ॥१३६॥ जो मनुष्य राग-भावमें स्थित है वह किसी तरह वनमें रहनेपर भी सागार—गृहस्थ है और जिसका रागभाव दूर हो गया है वह घरमें रहनेपर भी अनगार है ॥१३७॥ त्रस और स्थावरके भेदसे जीव दो प्रकारके हैं। इनमें-से त्रसकायिक जीवोंके विघातसे विरत होना पहला अहिंसाणुव्रत कहा गया है ॥१३८॥ जिसमें राग, द्वेष, मोहसे प्रेरित हो पर-पीड़ाकारक असत्य वचनसे विरति होती है वह दूसरा सत्याणुव्रत है ॥१३९॥ दूसरेका गिरा-पड़ा या भुला हुआ द्रव्य चाहे अधिक हो चाहे थोड़ा, बिना दी हुई दशामें उसको नहीं लेना तीसरा अचौर्याणुव्रत है ॥१४०॥ परस्त्रियोंमें राग छोड़कर अपनी स्त्रियोंमें ही जो सन्तोष होता है वह चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत है ॥१४१॥ सुवर्ण, दास, गृह तथा खेत आदि पदार्थोंका बुद्धिपूर्वक परिमाण कर लेना इच्छापरिमाण नामका पाँचवाँ अणुव्रत है ॥१४२॥

पांच अणुव्रतोंके धारक सद्गृहस्थके तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी होते हैं ॥१४३॥ दिशाओं और विदिशाओंमें प्रसिद्ध चिह्नों द्वारा की हुई अवधिका उल्लंघन नहीं करना सो दिग्व्रत नामका पहला गुणव्रत है ॥१४४॥ दिग्व्रतके भीतर यावज्जीवनके लिए किये हुए बृहत् परिमाणके अन्तर्गत कुछ समयके लिए जो ग्राम-नगर आदिकी अवधि की जाती है उससे बाहर नहीं जाना सो देशव्रत नामका दूसरा गुणव्रत है ॥१४५॥ पापोपदेश, अपध्यान, प्रमादाचरित, हिंसादान और दुःश्रुति ये पांच प्रकारके अनर्थदण्ड हैं। जो पापके उपदेशका कारण है वह अपकार करनेवाला अनर्थदण्ड है उससे विरत होना सो अनर्थदण्ड-त्याग नामका तीसरा गुणव्रत है ॥१४६-१४७॥ वणिक् तथा वधक आदिके सावद्य कार्योंमें आरम्भ करानेवाले जो पापपूर्ण वचन हैं वह पापोपदेश अनर्थ दण्ड है ॥१४८॥ अपनी जय, दूसरेकी पराजय तथा वध, बन्धन एवं धनका हरण आदि किस प्रकार हो ऐसा चिन्तन करना सो अपध्यान है ॥१४९॥ वृक्षादिकका छेदना, पृथिवीका कूटना, पानीका सींचना आदि अनर्थक कार्य करना प्रमादाचरित नामका अनर्थदण्ड

है ॥१५०॥ विष, कण्टक, शस्त्र, अग्नि, रस्सी, दण्ड तथा कोड़ा आदि हिंसाके उपकरणोंका देना सो हिंसादान नामका अनर्थदण्ड है ॥१५१॥ हिंसा तथा रागादिको बढ़ानेवाली दुष्ट कथाओंके सुनने तथा दूसरोंको शिक्षा देनेमें जो पापबन्धके कारण एकत्रित होते हैं वह पापसे युक्त दुःश्रुति नामका अनर्थदण्ड है ॥१५२॥

देवताके स्मरणमें स्थित पुरुषके सुख-दुःख तथा शत्रु-मित्र आदिमें जो माध्यस्थ्य भावकी प्राप्ति है उसे सामायिक नामका पहला शिक्षाव्रत जानना चाहिए ॥१५३॥ दो अष्टमी और दो चतुर्दशी इन चार पर्वके दिनोंमें निरारम्भ रहकर चार प्रकारके आहारका त्याग करना सो प्रोषधोपवास नामका दूसरा शिक्षाव्रत है। जिसमें इन्द्रियाँ बाह्य-संसारसे हटकर आत्माके समीप वास करती हैं वह उपवास कहलाता है ॥१५४॥ गन्ध, माला, अन्न, पान आदि उपभोग हैं और आसन आदिक परिभोग हैं। पास जाकर जो भोगा जाता है वह उपभोग कहलाता है और जो एक बार भोगकर छोड़ दिया जाता है तथा पुनः भोगनेमें आता है वह परिभोग कहलाता है। जिसमें उपभोग तथा परिभोगका यथाशक्ति परिमाण किया जाता है वह उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत है ॥१५५-१५६॥ मांस, मदिरा, मधु, जुआ, वेश्या तथा रात्रिभोजनसे विरत होना एवं काम आदि जीवोंका त्याग करना सो नियम कहलाता है ॥१५७॥ जो संयमकी वृद्धिके लिए निरन्तर भ्रमण करता रहता है वह अतिथि कहलाता है उसे शुद्धिपूर्वक आगमोक्त विधिसे आहार आदि देना अतिथिसंविभाग व्रत है ॥१५८॥ भिक्षा, औषध, उपकरण और आवासके भेदसे अतिथि संविभाग चार प्रकारका कहा गया है ॥१५९॥ मृत्युके कारण उपस्थित होनेपर बहिरंगमें शरीर और अन्तरंगमें कषायोंका अच्छी तरह कृश करनी सल्लेखना कहलाती है। व्रती मनुष्यको मरणान्तकालमें यह सल्लेखना अवश्य ही करनी चाहिए ॥१६०॥ जब अन्त अर्थात् मरणका किसी तरह परिहार न किया जा सके तब रागादिकी अनुत्पत्तिके लिए आगमोक्त मार्गसे सल्लेखना करना उचित माना गया है ॥१६१॥

निःशंकित आदि आठ अंगोंके विरोधी शंका, कांक्षा आदि आठ दोष सम्यग्दर्शनके अतिचार हैं। सत्पुरुषोंको इनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए ॥१६२॥ पांच अणुव्रत तथा सात शील व्रतोंमें प्रत्येकके पाँच-पांच अतिचार होते हैं। यहां यथाक्रमसे उनका वर्णन किया जाता है। तद्-तद् व्रतोंके धारक मनुष्योंको उन अतिचारोंका अवश्य ही परिहार करना चाहिए ॥१६३॥ जीवोंकी गतिमें रुकावट डालनेवाला बन्ध, दण्ड आदिसे अत्यधिक पीटना-वध, कान आदि अवयवोंका छेदना, अधिक भार लादना और भूख आदिकी बाधा करनेवाला अन्नपानका निरोध ये पांच अहिंसाणुव्रतके अतिचार कहे गये हैं ॥१६४-१६५॥ मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये पांच सत्याणुव्रतके अतिचार हैं। किसीको धोखा देना तथा स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करानेवाली क्रियाओंमें दूसरोंकी अन्यथा प्रवृत्ति कराना मिथ्योपदेश है। स्त्री-पुरुषोंकी एकान्त चेष्टाको प्रकट करना रहोभ्याख्यान है। जो बात दूसरेने नहीं कही है उसे उसके नामपर स्वयं लिख देना कूटलेखक्रिया है। कोई मनुष्य धरोहरमें रखे हुए धनकी संख्या भूलकर उससे स्वल्प ही धनका ग्रहण करता है तो उस समय ऐसे वचन बोलना कि 'हाँ इतना ही था ले जाओ' यह न्यासापहार है। भौंहका चलना आदि चेष्टाओंसे दूसरेके रहस्यको जानकर ईर्ष्यावश उसे प्रकट कर देना साकार मन्त्रभेद है। मर्यादाके पालक तथा आचार शास्त्रके ज्ञाता मनुष्योंको विचार कर इन अतिचारोंका अवश्य ही परिहार करना चाहिए ॥१६६-१७०॥ स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिकमानोन्मान और प्रतिरूपकव्यवहार ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतिचार हैं। कृत कारित अनुमोदनासे चोरको चोरीमें

प्रारंत करना स्तेनप्रयोग है। चोरोंके द्वारा चुराकर लायी हुई वस्तुका स्वयं खरीदना तदाहृता-दान है। आक्रमणकर्ताकी खरीद होनेपर स्वकीय राज्यकी आज्ञाका उल्लंघन कर विरुद्ध राज्यमें आना-जाना, अपने देशकी वस्तुएँ वहाँ लेजाकर बेचना विरुद्ध-राज्यातिक्रम नामका अतिचार है। प्रस्थ आदि मानमें भेद और तुला आदि उन्मानमें भेद रखकर हीन मानोन्मानसे दूसरोंको देना और अधिक मानोन्मानसे स्वयं लेना हीनाधिक मानोन्मान नामका अतिचार है। कृत्रिममिलावट-दार सोना, चाँदी आदिके द्वारा दूसरोंको ठगना प्रतिरूपक नामका अतिचार है ॥१७१–१७३॥ परविवाहकरण, अनंगक्रीड़ा, गृहीतेत्वरिकागमन, अगृहीतेत्वरिकागमन और कामतीव्राभिनिवेश ये पांच स्वदारसन्तोषव्रतके अतिचार हैं। प्रयत्नपूर्वक इनका परिहार करना चाहिए। अपनी या अपने संरक्षणमें रहनेवाली सन्तानके सिवाय दूसरेकी सन्तानका विवाह कराना पर-विवाहकरण है। काम-सेवनके लिए निश्चित अंगोंके अतिरिक्त अंगोंके द्वारा काम सेवन करना अनंगक्रीड़ा है। दूसरेके द्वारा गृहीत व्यभिचारिणी स्त्रीके यहाँ जाना गृहीतेत्वरिकागमन है। दूसरेके द्वारा अगृहीत व्यभिचारिणी स्त्रीके यहाँ जाना अगृहीतेत्वरिकागमन है। और स्वस्त्रीके साथ भी काम सेवनमें अधिक लालसा रखना कामतीव्राभिनिवेश है ॥१७४–१७५॥ हिरण्य-सुवर्ण, वास्तु-क्षेत्र, धन-धान्य, दासी-दास और कुप्य—बर्तन, चाँदी आदिको हिरण्य तथा सोना व सोनेके आभूषण आदिको सुवर्ण कहते हैं। रहनेके मकानको वास्तु और गेहूँ, चना आदिके उत्पत्ति-स्थानोंको क्षेत्र कहते हैं। गाय, भैंस आदिको धन तथा गेहूँ, चना आदि अनाजको धान्य कहते हैं। दासी-दास शब्दका अर्थ स्पष्ट है। बर्तन तथा वस्त्रको कुप्य कहते हैं। इनके प्रमाणका उल्लंघन करना सो हिरण्यसुवर्णातिक्रम आदि अतिचार होते हैं ॥१७६॥

अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, ऊर्ध्वव्यतिक्रम, स्मृत्यन्तराधान और क्षेत्रवृद्धि ये पाँच दिग्व्रतके अतिचार हैं। लोभके वशीभूत होकर नीचेकी सीमाका उल्लंघन करना अधोव्यतिक्रम है, समान धरातलकी सीमाका उल्लंघन करना तिर्यग्व्यतिक्रम है। ऊपरकी सीमाका उल्लंघन करना ऊर्ध्वव्यतिक्रम है। की हुई सीमाको भूलकर अन्य सीमाका स्मरण रखना स्मृत्यन्तरा-धान है तथा मर्यादित क्षेत्रकी सीमा बढ़ा लेना क्षेत्रवृद्धि है ॥१७७॥ प्रेष्य प्रयोग, आनयन, पुद्गल क्षेप, शब्दानुपात और रूपानुपात ये पाँच देशव्रतके अतिचार हैं। मर्यादाके बाहर सेवकको भेजना प्रेष्यप्रयोग है। मर्यादासे बाहर किसी वस्तुको बुलाना आनयन है। मर्यादाके बाहर कंकड़-पत्थर आदिका फेंकना पुद्गलक्षेप है, मर्यादाके बाहर अपना शब्द भेजना शब्दानुपात है और मर्यादाके बाहर काम करनेवाले लोगोंको अपना रूप दिखाकर सचेत करना रूपानुपात है ॥१७८॥

कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगानर्थक्य ये पाँच अनर्थदण्ड व्रतके अतिचार हैं। रागकी उत्कष्टतासे हास्यमिश्रित भण्ड वचन बोलना कन्दर्प है। शरीरसे कुचेष्टा करना कौत्कुच्य है। आवश्यकतासे अधिक बोलना मौखर्य है। प्रयोजनका विचार न रख आवश्यकतासे अधिक किसी कार्यमें प्रवृत्ति करना-कराना असमीक्ष्याधिकरण है और उपभोग-परिभोगकी वस्तुओंका निरर्थक संग्रह करना उपभोगपरिभोगानर्थक्य है ॥१७९॥ मनो-योग दुष्प्रणिधान, वचनयोग दुष्प्रणिधान, काययोग दुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृत्यनुपस्थान ये पाँच सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार हैं। मनको अन्यथा चलायमान करना मनोयोगदुष्प्रणि-धान है, वचनकी अन्यथा प्रवृत्ति करना—पाठका अशुद्ध उच्चारण करना वचनयोग दुष्प्रणि-धान है। कायको चलायमान करना काययोग दुष्प्रणिधान है। सामायिकके प्रति आदर वा उत्साह नहीं होना—बेगार समझकर करना अनादर है और चित्तकी एकाग्रता न होनेसे सामा-यिककी विधि या पाठका भूल जाना अथवा कार्यान्तरमें उलझकर सामायिकके समयका स्मरण

नहीं रखना स्मृत्यनुपस्थान है ॥१८०॥ बिना देखी हुई जमीनमें मलोत्सर्ग करना, बिना देखे किसी वस्तुको उठाना, बिना देखी हुई भूमिमें बिस्तर आदि बिछाना, चित्तकी एकाग्रता नहीं रखना और व्रतके प्रति आदर नहीं रखना ये पाँच प्रोषधोपवास व्रतके अतिचार हैं ॥१८१॥ सचित्ताहार, सचित्त सम्बन्धाहार, सचित्त सन्मिश्राहार, अभिषवाहार और दुष्पक्वाहार ये पाँच उपभोग-परिभोगपरिमाण व्रतके अतिचार हैं। सचित्त—हरी वनस्पति आदिका आहार करना सचित्ता-हार है। सचित्तसे सम्बन्ध रखनेवाले आहार-पानको ग्रहण करना सचित्त सम्बन्धाहार है। सचित्तसे मिली हुई अचित्त वस्तुका सेवन करना सचित्तसन्मिश्राहार है। गरिष्ठ पदार्थोंका सेवन करना अभिषवाहार है और अधपके अथवा अधिक पके आहारका ग्रहण करना दुष्पक्वाहार है ॥१८२॥ सचित्त-निक्षेप, सचित्तावरण, पर-व्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रमता ये पाँच अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार हैं। हरे पत्ते आदिपर रखकर आहार देना सचित्तनिक्षेप है। हरे पत्ते आदिसे ढका हुआ आहार देना सचित्तावरण है। अन्य दाताके द्वारा देय वस्तुका देना परव्यपदेश है। अन्य दाताओंके गुणको नहीं सहन करना मात्सर्य है और समय उल्लंघन कर देना कालातिक्रम है ॥१८३॥ जीविताशंसा, मरणाशंसा, निदान, सुखानुबन्ध और मित्रानुराग ये पाँच सल्लेखनाके अतिचार हैं। क्षपकका दीनचित्त होकर अधिक समय तक जीवित रहनेकी आकांक्षा रखना जीविताशंसा है। पीड़ासे घबड़ाकर जल्दी मरनेकी इच्छा करना मरणाशंसा है। आगामी भोगोंकी आकांक्षा करना निदान है। पहले भोगे हुए सुखका स्मरण रखना सुखानुबन्ध है और मित्रोंसे प्रेम रखना मित्रानुराग है ॥१८४॥ सम्यग्ज्ञानादि गुणोंकी वृद्धि आदि स्व-परके उपकारकी इच्छासे योग्य पात्रके लिए प्रासुक द्रव्यका देना त्याग कहलाता है, इसका दूसरा नाम अतिसर्ग भी है ॥१८५॥ जिस प्रकार भूमि आदिके भेदसे धान्यकी उत्पत्ति आदिमें भेद होता है उसी प्रकार विधि द्रव्य दाता और पात्रकी विशेषतासे दानके फलमें भेद होता है ॥१८६॥ दानके समय पडगाहने आदिकी क्रियाओंमें आदर या अनादरके होनेसे दानकी विधिमें भेद हो जाता है और वह फलके भेदका करनेवाला हो जाता हैं ॥१८७॥ तप तथा स्वाध्यायकी वृद्धि आदिका कारण होनेसे देयमें भेद होता है। यथार्थमें एक पदार्थ तो ऐसा है जो लेनेवालेके लिए समताभाव-का करनेवाला होता है और दूसरा पदार्थ ऐसा है जो विषमताका करनेवाला होता है। इसलिए देय द्रव्यमें भेद होनेसे दानके फलमें भी भेद होता है ॥१८८॥ कोई दाता तो ईर्ष्या, विषाद आदि दुर्गुणोंसे रहित होता है और कोई दाता ईर्ष्या आदि दुर्गुणोंसे युक्त होता हैं। यही दाताकी विशेषता है। यथार्थमें मनकी गति विचित्र होती है ॥१८९॥ मोक्षके कारणभूत दानोंके ग्रहण करनेमें सत्पुरुषोंके मनकी शुद्धिका जो तारतम्य—हीनाधिकता है वह पात्रकी विशेषता है ॥१९०॥ पुण्यास्रव अनेक कल्याणोंकी प्राप्ति करानेवाला होनेसे सुखोंका कारण कहा जाता है और पापास्रव संसारके दुःखोंका कारण माना जाता है ॥१९१॥ इस प्रकार आस्रव तत्त्वका वर्णन होनेके बाद भगवान्की दिव्य ध्वनिमें बन्ध तत्त्वका वर्णन प्रारम्भ हुआ।

आत्मपरिणामोंमें स्थित मिथ्यादर्शन, हिंसा आदि अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्धके कारण हैं ॥१९२॥ इनमें मिथ्यादर्शन, निसर्गज (अगृहीत) और अन्योपदेशज (गृहीत) के भेदसे दो प्रकारका है। मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जो तत्त्वका अश्रद्धान होता है वह निसर्गज मिथ्यादर्शन है ॥१९३॥ और परोपदेशपूर्वक होनेवाले अतत्त्व श्रद्धानको अन्योपदेशज मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसके क्रियावादी, अक्रियावादी, वैनयिक और अज्ञानीके भेदसे चार भेद हैं ॥१९४॥ इनके सिवाय एकान्त, विपरीत, विनय, अज्ञान और संशय इन निमित्तोंकी अपेक्षा मिथ्यादर्शन पांच प्रकारका भी माना जाता है। वस्तु अनेक धर्मात्मक है परन्तु उसे एक धर्मरूप ही श्रद्धान करना एकान्त मिथ्यादर्शन है, जैसे वस्तु नित्य ही है अथवा अनित्य ही है। वस्तुका

जैसा स्वरूप है उससे विपरीत श्रद्धान करना सो विपरीत मिथ्यादर्शन है जैसे हिंसामें धर्म मानना, सग्रन्थवेषसे मोक्ष मानना आदि। देव-अदेव, और तत्त्व अतत्त्वका विवेक न रखकर सबको एक-सा मानना तथा सबकी भक्ति करना वैनयिक मिथ्यादर्शन है। हिताहितकी परीक्षा-रहित अज्ञान-मूलक रूढिवश श्रद्धान करना सो अज्ञान मिथ्यादर्शन है और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्-चारित्र मोक्षका मार्ग है या नहीं ? अहिंसामें धर्म है या हिंसामें। इस प्रकार सन्देह रूप श्रद्धान करना संशय मिथ्यादर्शन है ॥१९५॥ पांच स्थावर और त्रस इन छह कायके जीवोंकी हिंसाका त्याग नहीं करना, तथा पांच इन्द्रिय और मनको वश नहीं करना यह बारह प्रकारकी अविरति है। प्रमाद अनेक प्रकारका है और नौ नोकषायोंको साथ मिलाकर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ आदिके भेदसे कषायके पच्चीस भेद हैं ॥१९६॥ सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोगके भेदसे मनोयोग चार प्रकारके हैं। सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभव वचनयोगके भेदसे वचनयोगके चार भेद हैं। तथा औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग और कार्मण काययोगके भेदसे काय-योगके पाँच भेद हैं। इस प्रकार सब मिलाकर योगके तेरह भेद हैं। भावार्थ—प्रमत्त संयत गुण-स्थानमें आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोगकी भी सम्भावना रहती है इसलिए उन्हें मिलानेपर योगके पन्द्रह भेद हो जाते हैं ॥१९७॥ ये मिथ्यादर्शनादि पांच समस्त और व्यस्त रूपसे बन्धके कारण हैं। अर्थात् कहीं सब बन्धके कारण हैं और कहीं कम। मिथ्यादृष्टि गुण-स्थानमें पांचों ही बन्धके कारण हैं। उसके तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यादर्शनको छोड़कर अन्तिम चार बन्धके कारण हैं ॥१९८॥ संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थानमें विरति, अविरति, मिश्रित तथा प्रमाद आदि तीन कर्मबन्धके हेतु कहे गये हैं ॥१९९॥ प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थानवर्ती जीवके प्रमाद, कषाय और योग ये तीन बन्धके कारण हैं। इसके आगे चार गुणस्थानोंमें अर्थात् सातवेंसे लेकर दसवें गुणस्थान तक कषाय और योग ये दो बन्धके कारण हैं ॥२००॥ उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवली इन तीन गुणस्थानोंके जीवमात्र योगके निमित्तसे कर्मबन्ध करते हैं। अयोगकेवली भगवान् योगका भी अभाव हो जानेसे कर्मोंका बन्ध नहीं करते हैं ॥२०१॥

कषायसे कलुषित जीव प्रत्येक क्षण कर्मके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है। वही बन्ध कहलाता है। यह बन्ध अनेक प्रकारका माना गया है ॥२०२॥ सामान्यरूपसे बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार भेदोंको प्राप्त होता है ॥२०३॥ प्रकृतिका अर्थ स्वभाव होता है। जिस प्रकार नीम आदिकी प्रकृति तिक्तता आदि है उसी प्रकार समस्त कर्मोंकी अपनी-अपनी प्रकृति नियतरूपसे स्थित है ॥२०४॥ जैसे ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृति अज्ञान अर्थात् पदार्थका ज्ञान नहीं होने देना। दर्शनावरण कर्मकी प्रकृति पदार्थोंका अदर्शन अर्थात् दर्शन नहीं होने देना है ॥२०५॥ साता, असातावेदनीय कर्मकी प्रकृति ज्ञानी मनुष्योंको क्रमसे सुख और दुःखका वेदन कराना है ॥२०६॥ दर्शनमोहकी प्रकृति तत्त्वका अश्रद्धान कराना है तथा अतिशय महान् चारित्रमोह कर्मकी प्रकृति सदा असंयम उत्पन्न करना है ॥२०७॥ आयुकर्मकी प्रकृति भव-धारण करना है। नामकर्मकी प्रकृति जीवमें देव, नारकी आदि संज्ञाएँ उत्पन्न करना है ॥२०८॥ गोत्र कर्मकी प्रकृति उच्च और नीच व्यवहार कराना है तथा अन्तराय कर्मकी प्रकृति दान आदिमें तीव्र विघ्न करना है ॥२०९॥ इसलिए ऐसा लक्षण करना चाहिए कि कर्मोंके द्वारा जो किया जाता है वही प्रकृतिबन्ध है और उनका अपने स्वभावसे च्युत नहीं होना सो स्थिति-बन्ध है ॥२१०॥

जिस प्रकार बकरी, गाय तथा भैंस आदिके दूध अपने-अपने स्वभावसे ही माधुर्य गुणसे च्युत नहीं होते हैं उसी प्रकार कर्म भी अपनी-अपनी प्रकृतिसे च्युत नहीं होते हैं ।।२११।।

जिस प्रकार दूधमें रसविशेष, तीव्र अथवा मन्द आदि भावसे रहता है उसी प्रकार कर्मरूप पुद्गलमें भी सामर्थ्य-विशेष तीव्र अथवा मन्द आदि भावसे रहता है। यही अनुभवबन्ध माना गया है ।।२१२।। आत्माके कर्मरूप परिणत पुद्गल स्कन्धोंके समूहमें परमाणुके प्रमाणसे कल्पित परिच्छेदों—खण्डोंकी जो संख्या है वह प्रदेशबन्ध कहलाता है ।।२१३।। प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगके निमित्तसे होते हैं तथा स्थिति और अनुभवबन्ध कषायके निमित्तसे माने गये हैं ।।२१४।।

जिसके द्वारा ज्ञान ढँका जाये अथवा जो स्वयं ज्ञानको ढांके वह ज्ञानावरण कर्म है। इसी प्रकार दर्शनावरण कर्मकी निरुक्तिका जानना चाहिए अर्थात् जिसके द्वारा दर्शन ढँका जाये अथवा जो स्वयं दर्शनको ढांके उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं ।।२१५।। जिसके द्वारा सुख-दुःखका वेदन—अनुभव कराया जाये अथवा जो स्वयं सुख-दुःखका अनुभव करे वह वेदनीय कर्म है। जिसके द्वारा जीव मोहित किया जाये अथवा जो स्वयं मोहित करे वह मोहनीय कर्म है ।।२१६।। जीव जिसके द्वारा नरकादि भवको प्राप्त कराया जाये अथवा जो स्वयं नारकादि भवको प्राप्त हो वह आयु कर्म है। आत्मा जिसके द्वारा नाना नामोंको प्राप्त कराया जाये अथवा जो स्वयं आत्माको नाना नामोंसे युक्त करे वह नामकर्म है ।।२१७।। आत्मा जिसके द्वारा प्रयत्नपूर्वक उच्च अथवा नीच कहा जाता है वह गोत्र कहलाता है और जो यत्नपूर्वक देय आदिके बीचमें आ जाता है वह अन्तराय कर्म है ।।२१८।। जिस प्रकार एक बार खाया हुआ अन्न रस, रक्त आदि नानारूपताको प्राप्त होता है, उसी प्रकार एक आत्मपरिणामके द्वारा ग्रहण किये हुए पुद्गल नाना कर्मरूपताको प्राप्त हो जाते हैं ।।२१९।। यह आठ प्रकारका मूल प्रकृतिबन्ध कहा गया है, अब इसके आगे उत्तर प्रकृतियोंके भेद कहे जाते हैं ।।२२०।।

ज्ञानावरण पाँच प्रकारका है, दर्शनावरण नौ प्रकारका है, वेदनीय दो प्रकारका है, मोहनीय अट्ठाईस प्रकारका है, आयु चार प्रकारका है, नाम बयालीस प्रकारका है, गोत्र दो प्रकारका कहा गया है और अन्तराय पाँच प्रकारका है ।।२२१–२२२।। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पांच आवरण करने योग्य गुण हैं। इन्हें आवरण करनेवाले मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये पाँच ज्ञानावरण कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ हैं ।।२२३।। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा शक्तिरूपसे अभव्य जीव भी मनःपर्यय और केवलज्ञानसे युक्त है, अतः उसके भी ज्ञानावरणके पाँचों भेद स्थित हैं ।।२२४।।

भव्य जीवकी भव्यता उक्त गुणोंके प्रकट होनेकी योग्यताके सद्भावकी अपेक्षा रखती है और अभव्य जीवकी अभव्यता केवलज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञानके प्रकट होनेकी योग्यता न होनेकी अपेक्षासे है। भावार्थ—किसीने प्रश्न किया था कि जब भव्य और अभव्य दोनोंके ही मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानकी शक्ति विद्यमान है तब इनमें भव्यता और अभव्यताका भेद कैसे हुआ? इसका उत्तर ग्रन्थकर्ताने दिया है कि भव्य जीवके उन शक्तियोंकी प्रकटता हो जाती है और अभव्य जीवके उनकी प्रकटता नहीं होती ।।२२५।।

चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण ये चार आवरण तथा निद्रा आदिक पाँच अर्थात् निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पांच निद्राएँ सब मिलाकर दर्शनावरण कर्मकी नौ उत्तर प्रकृतियां हैं। जो जीवके चक्षुर्दर्शन—चक्षुइन्द्रियसे होनेवाले सामान्य अवलोकनको प्रकट न होने दे वह चक्षुर्दर्शनावरण है। जो

अचक्षुर्दर्शन---चक्षुको छोड़कर अन्य इन्द्रियों तथा मनसे होनेवाले सामान्य अवलोकनको प्रकट न होने दे वह अचक्षुर्दर्शनावरण है। जो अवधिदर्शन—अवधिज्ञानके पहले प्रकट होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे यह अवधिदर्शनावरण है और जो केवलदर्शन—केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्यावलोकनको न होने दे वह केवलदर्शनावरण है ॥२२६॥ मद तथा खेदको दूर करनेके लिए सोना निद्रा कहलाती है। ऊपर-ऊपर अधिक रूपसे निद्राका आना निद्रानिद्रा कही जाती है ॥२२७॥ थकावट आदिसे उत्पन्न होनेवाली जो निद्रा जीवको बैठे-बैठे ही अत्यधिक चपल कर देवे वह प्रचला है। प्रचला जब बार-बार अधिक रूपमें आती है तब प्रचलाप्रचला कहलाने लगती है ॥२२८॥ जिसके द्वारा आत्मा स्त्यान अर्थात् सोते समय गृद्धता करने लगे—किसी कर्ममें सचेष्ट हो जावे और जिसके उदयसे यह जीव अत्यधिक कठिन काम कर ले वह स्त्यानगृद्धि है। यह पाँच प्रकारकी निद्रा, दर्शनावरण कर्मके उदयसे आती है और इन निद्राओंके माध्यमसे दर्शनावरण कर्म आत्माके दर्शनगुणको घातता है ॥२२९॥ वेदनीय कर्मके दो भेद हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय। जिनके उदयसे शारीरिक और मानसिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं वे यथाक्रमसे सातावेदनीय और असातवेदनीय कहलाते हैं ॥२३०॥

मोहनीय कर्मके मूलमें दो भेद हैं—१. दर्शनमोहनीय, २. चारित्रमोहनीय। इनमें-से दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यङ्मिथ्यात्व ये तीन उत्तर प्रकृतियाँ हैं ॥२३१॥ आत्माके शुभ परिणामोंसे जब मिथ्यात्वप्रकृतिका स्वरस—फल देनेकी शक्ति रुक जाती है तब श्रद्धान करनेवाले जीवके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होता है। इस प्रकृतिके उदयसे आत्माका श्रद्धानगुण तिरोहित नहीं होता किन्तु चल, मल, अगाढ़ दोषोंसे दूषित हो जाता है ॥२३२॥ मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे श्रद्धान गुण विकृत हो जाता है और अतत्त्व श्रद्धानरूपी परिणति हो जाती है। अर्ध शुद्ध कोदोंकी मदशक्तिके समान मिथ्यात्व प्रकृतिके अर्द्ध शुद्ध होनेपर जीवका जो शुद्ध और अशुद्ध भाव एक साथ प्रकट होता है वह सम्यङ्मिथ्यात्व कहलाता है। सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जीवके परिणाम दही और गुड़के मिश्रित स्वादके समान श्रद्धान और अश्रद्धान रूप होते हैं ॥२३३॥

नोकषाय और कषायके भेदसे चारित्रमोहके दो भेद हैं। इनमें नोकषायके नौ और कषायके सोलह भेद कहे गये हैं ॥२३४॥ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ये नौ नोकषायके भेद हैं। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—जिसके उदयसे उत्सुक होता हुआ हास्य प्रकट हो वह हास्यकर्म है। जिसके उदयसे रति—प्रीति उत्पन्न हो वह रति कर्म है। जिसके उदयसे अरति—अप्रीति उत्पन्न हो वह अरति है। जिसके उदयसे शोक हो वह शोक है। जो उद्वेग—भय उत्पन्न करनेवाला है वह भय है। जिसके उदयसे अपने दोष छिपानेमें प्रवृत्ति हो वह जुगुप्सा है। जिसके उदयसे यह जीव स्त्रीके भावको अर्थात् पुरुषसे रमनेकी इच्छाको प्राप्त होता है वह स्त्रीवेद है। जिसके उदयसे पुरुषके भावको अर्थात् स्त्रीसे रमनेकी इच्छाको प्राप्त होता है वह पुरुषवेद है। और जिसके उदयसे नपुंसकके भावको—अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनोंसे रमनेकी इच्छाको प्राप्त होता है वह नपुंसक वेद है ॥२३५-२३७॥ कषायके मूलमें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनके भेदसे चार भेद हैं। फिर प्रत्येकके क्रोध, मान, माया और लोभकी अपेक्षा चार-चार भेद हैं। इस प्रकार कषायके कुल सोलह भेद हैं। इनमें-से अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरण चारित्रके घातक हैं ॥२३८॥ जिसके उदयसे आत्मा हिंसादि रूप परिणतियोंका त्याग करनेमें समर्थ न हो सके वे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ हैं ॥२३९॥ जिनके

उदयसे जीव संयमको प्राप्त न हो सके वे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ हैं ॥२४०॥ और जिनके उदयसे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं होता तथा जो संयमके साथ विद्यमान रहते हैं वे संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ हैं ॥२४१॥

नारक, तैर्यग्योन, मानुष और दैवके भेदसे आयु कर्म चार प्रकारका कहा गया है। आयु कर्मके उदयसे यह जीव नारकादि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है ॥२४२॥

जिसके उदयसे जीव भवान्तरको प्राप्त होता है वह गति नाम कर्म है। देव तथा नारकादिके भेदसे गति नाम कर्म चार प्रकारका है ॥२४३॥ जिसके निमित्तसे आत्मामें नरकादि पर्याय प्रकट होती है वह चार प्रकारका नरकादि नाम कर्म है ॥२४४॥ उन नरकादि गतियोंमें जो अविरोधी समान धर्मसे आत्माको एक रूप करनेवाली अवस्था है उसे जाति कहते हैं। उस जातिका जो निमित्त है वह जाति नाम कर्म कहा जाता है इसके एकेन्द्रिय जाति आदि पांच भेद हैं ॥२४५॥ जिसके उदयसे जीव एकेन्द्रियादि जातिको प्राप्त होते हैं वह एकेन्द्रियादि जाति नाम कर्म कहलाता है ॥२४६॥

जिसके उदयसे औदारिक आदि पांच शरीरोंकी रचना होती है वह औदारिक शरीरादि पांच प्रकारका शरीर नाम कर्म है ॥२४७॥ जिसके उदयसे शरीरोंमें अंगोपांगका-विवेक होता है वह औदारिक शरीरांगोपांगको आदि लेकर तीन प्रकारका अंगोपांग नाम कर्म है ॥२४८॥ जो जातिकी अपेक्षा चक्षु आदि इन्द्रियोंके स्थान और प्रमाणका निर्माण करते हैं वे स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माणके भेदसे दो प्रकारके निर्माण नाम कर्म हैं ॥२४९॥* जिसके उदयसे, कर्मोदयके वशसे प्राप्त पुद्गलोंका परस्पर संश्लेष होता है वह बन्धन नाम कर्म है। इसके औदारिक शरीर बन्धन आदि पांच भेद हैं ॥२५०॥ जिसके उदयसे शरीरके प्रदेशोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष होता है वह संघात नाम कर्म है। संघातोंका कभी अत्यय—विघटन नहीं होता इसलिए संघात नाम सार्थक है। इसके औदारिक शरीर संघात आदि पांच भेद हैं ॥२५१॥ जिसके उदयसे जीवोंके शरीरकी आकृतिकी रचना होती है वह संस्थान नाम कर्म है। संस्थान अर्थात् आकृतिको करे सो संस्थान है यह संस्थान शब्दकी निरुक्ति है। वह संस्थान, समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान और हुण्डक संस्थानके भेदसे छह प्रकारका होता है। जिसके उदयसे सुडौल—सुन्दर शरीरकी रचना हो वह समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म है। जिसके उदयसे शरीरके अवयव न्यग्रोध—वट वृक्षके समान नाभिसे नीचे छोटे और नाभिसे ऊपर बड़े हों वह न्यग्रोध परिमण्डल नाम कर्म है। जिसके उदयसे शरीरकी रचना स्वाति—सांपकी वामीके समान नाभिके नीचे विस्तृत और नाभिसे ऊपर संकुचित हो वह स्वाति नाम कर्म है। जिसके उदयसे शरीरमें कूबड़ निकल आवे वह कुब्जक संस्थान है। जिसके उदयसे शरीर वामन—बौना हो वह वामन नाम कर्म है और जिसके उदयसे शरीरकी आकृति बेडौल हो वह हुण्डक संस्थान नाम कर्म है ॥२५२-२५३॥

जिसके उदयसे हड्डियोंका परस्पर मिलन और बन्धन अच्छी तरह होता है वह संहनन नाम कर्म है। इसके वज्रर्षभनाराच संहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराच-संहनन, कीलकसंहनन और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन ये छह भेद हैं। जिसके उदयसे वज्रके वेष्टन, वज्रकी कीलियां और वज्रके हाड़ हों उसे वज्रर्षभनाराच संहनन कहते हैं। जिसके उदयसे कीलियां और हाड़ तो वज्रके हों परन्तु वेष्टन वज्रके न हों वह वज्रनाराचसंहनन है। जिसके उदयसे हाड़ तथा सन्धियोंकी कीलें तो हों परन्तु वज्रमय न हों इसी तरह वेष्टन भी वज्रमय न हो उसे नाराचसंहनन कहते हैं। जिसके उदयसे हड्डियां आधी कीलोंसे

सहित हों उसे अर्धनाराचसंहनन कहते हैं। जिसके उदयसे हाड़ परस्पर कोलित हों उसे कीलक संहनन कहते हैं और जिसके उदयसे हाड़ोंकी सन्धियां कीलोंसे रहित हों तथा मात्र नसों और मांससे बँधी हों उसे असंप्राप्तसृपाटिका संहनन कहते हैं ॥२५४–२५५॥ जिसके उदयसे शरीरमें स्पर्शकी उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नाम कर्म है। यह कड़ा, कोमल, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्णके भेदसे आठ प्रकारका है ॥२५६–२५७॥ जिसके निमित्तसे रसमें भेद होता है वह रस नाम कर्म कहा गया है। इसके कटुक, तिक्त, कषाय, आम्ल और मधुरके भेदसे पांच भेद हैं ॥२५८॥ जिसके उदयसे गन्ध होता है वह गन्ध नाम कर्म है। इसके सुगन्ध और दुर्गन्धकी अपेक्षा दो भेद जानना चाहिए ॥२५९॥ जिसके निमित्तसे वर्णमें भेद होता है वह वर्ण नाम कर्म है। यह कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्लके भेदसे पाँच प्रकारका है ॥२६०॥ जिसके उदयसे विग्रह गतिमें पूर्व शरीरकी आकृतिका विनाश न हो वह नरकगत्यानुपूर्व्य आदिके भेदसे चार प्रकारका आनुपूर्व्य नाम कर्म है। जिसके उदयसे यह जीव भारीपनके कारण लोहेके समान नीचे नहीं गिरता है और लघुपनके कारण आककी रुईके समान ऊपर नहीं उड़ता है वह अगुरु लघु नाम कर्म कहा गया है ॥२६१–२६२॥ जिसके उदयसे अपने ही बन्धन आदिसे अपना ही घात होता है वह उपघात नाम कर्म कहा गया है और जिसके उदयसे दूसरोंका घात होता है वह परघात नाम कर्म है ॥२६३॥ जिसके उदयसे शरीरमें सूर्यके समान बहुत भारी आतापकी उत्पत्ति होती है वह आताप नाम कर्म माना गया है इसका उदय सूर्यके विमानमें स्थित बादरपृथिवीकायिक जीवोंके ही होता है। इसकी विशेषता यह है कि यह मूलमें ठण्डा होता है और इसकी प्रभा उष्ण होती है ॥२६४॥ जिसके उदयसे शरीरमें विशिष्ट प्रकारका प्रकाश होता है वह उद्योत नाम कर्म है। यह उद्योत चन्द्रमाके विमानमें स्थित बादरपृथिवीकायिक जीव तथा जुगनू आदिमें देखा जाता है ॥२६५॥ जो उच्छ्वासका कारण है वह उच्छ्वास नाम कर्म माना गया है तथा जो आकाशमें प्रशस्त एवं अप्रशस्त गति करानेमें समर्थ है वह विहायोगति नाम कर्म है ॥२६६॥ जिसके उदयसे ऐसे शरीरकी रचना हो जो सदा एक ही आत्माके उपभोगका कारण हो वह प्रत्येकशरीर नाम कर्म है ॥२६७॥ जिसके उदयसे एक ही शरीर अनेक जीवोंके उपभोगका कारण होता है वह साधारण नाम कर्म है ॥२६८॥ जिसके उदयसे जीवोंका द्वीन्द्रियादिक जीवोंमें जन्म होता है वह त्रसनाम कर्म है। जिसके उदयसे इसके विपरीत सिर्फ एकेन्द्रिय जीवोंमें जन्म हो वह स्थावर नाम कर्म है ॥२६९॥ जिसके निमित्तसे यह जीव समस्त प्राणियोंके लिए प्रीति करनेवाला होता है वह सुभग नाम कर्म है। जिसके निमित्तसे दूसरोंको अप्रीति उत्पन्न करनेवाला हो वह दुर्भग नाम कर्म है ॥२७०॥ जिससे मनोज्ञ स्वरकी रचना होती है वह सुस्वर नाम कर्म है। जो अनिष्ट स्वरका कारण है वह दुःस्वर नाम कर्म है ॥२७१॥ जिससे शरीरमें रमणीयता प्रकट होती है वह शुभ नाम कर्म है। जो अत्यन्त विरूपताका कारण है वह दुःखदायी अशुभ नाम कर्म है ॥२७२॥ जो सूक्ष्म शरीरका कारण है वह सूक्ष्म नाम कर्म है। जो दूसरोंको बाधा करनेवाले शरीरका हेतु है वह बादर नाम कर्म है ॥२७३॥ जो आहार आदि पर्याप्तियोंकी रचनाका कारण है वह पर्याप्ति नाम कर्म है। विद्वानोंने इसके आहारपर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति ये छह भेद कहे हैं ॥२७४॥

जो आहार, शरीर, श्वासोच्छ्वास, इन्द्रिय, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंके अभावका कारण है वह अपर्याप्ति नाम कर्म है ॥ भावार्थ—विग्रह गतिके बाद उत्पत्ति स्थानमें पहुँचनेपर ग्रहण किये हुए आहार-वर्गणाके परमाणुओंमें खल रसभाग रूप परिणमन करनेकी जीवकी शक्तिकी पूर्णताको आहारपर्याप्ति कहते हैं। जिन परमाणुओंको खल रूप परिणमाया था

उन्हें हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा जिन्हें रसरूप परिणमाया था उन्हें रुधिर आदि तरल अवयव रूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। शरीर रूप परिणत परमाणुओंमें स्पर्शनादि इन्द्रियोंके आकार परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं। भीतरकी वायुको बाहर छोड़ना और बाहरकी वायुको भीतर खींचनेकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं। भाषावर्गणाके परमाणुओंको शब्द रूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं। और मनोवर्गणाके परमाणुओंको हृदय-क्षेत्रमें स्थित आठ पाँखुड़ीके कमलाकार द्रव्यमनरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको मन:पर्याप्ति कहते हैं। इनमें-से एकेन्द्रिय जीवके भाषा और मनको छोड़कर चार पर्याप्तियां होती हैं। द्वीन्द्रियसे लेकर असैनीपंचेन्द्रिय तक मनको छोड़कर शेष पाँच पर्याप्तियां होती हैं और सैनी पंचेन्द्रिय जीवके सभी पर्याप्तियाँ होती हैं। जिसके उदयसे ये पर्याप्तियां पूर्ण होती हैं वह पर्याप्तक नाम कर्म है और जिसके उदयसे एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती वह अपर्याप्तक नाम कर्म है। यहाँ अपर्याप्तक शब्दसे लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी विवक्षा है, निर्वृत्यपर्याप्तककी नहीं। क्योंकि वह कर्मोदयकी अपेक्षा तो पर्याप्तक ही है सिर्फ निर्वृत्ति-रचनाकी अपेक्षा लघु अन्तर्मुहूर्तके लिए अपर्याप्तक होता है ॥२७५॥ जो धातु-उपधातुओंको स्थिरताका कारण है वह स्थिर नाम कर्म है और जो इससे विपरीत अस्थिरताका कारण है वह अस्थिर नाम कर्म है, जो प्रभापूर्ण शरीरका कारण है वह आदेय नाम कर्म है और जो प्रभा-रहित शरीरका कारण है वह अनादेय नाम कर्म है ॥२७६॥ जो पुण्यरूप गुणोंकी प्रसिद्धिका कारण है वह यश:कीर्ति नामकर्म कहलाता है और जो इससे विपरीत अपयशका कारण है वह अपयशस्कीर्ति नामकर्म है ॥२७७॥ और जो तीर्थंकर पर्यायका कारण है वह तीर्थंकर नामकर्म है यह सातिशय पुण्य प्रकृति है। इस प्रकार नामकर्मकी तिरानबे उत्तर प्रकृतियां हैं ॥२७८॥

गोत्रकर्मके दो भेद हैं—१. उच्च गोत्र और २. नीच गोत्र। जिसके उदयसे लोकपूज्य कुलमें जन्म होता है उसे उच्च गोत्र कहते हैं और जिसके उदयसे नीच कुलोंमें जन्म होता है वह नीच गोत्र है ॥२७९॥

अन्तराय कर्मके पाँच भेद हैं—१. दानान्तराय, २. लाभान्तराय, ३. भोगान्तराय, ४. उपभोगान्तराय और ५. वीर्यान्तराय। जिसके उदयसे जीव दान करनेकी इच्छा करते हुए भी दान न कर सके वह दानान्तराय है। जिसके उदयसे लाभकी इच्छा रखते हुए भी लाभ प्राप्त न कर सके वह लाभान्तराय है ॥२८०॥ जिसके उदयसे जीव, भोगकी इच्छा रखता हुआ भी भोग नहीं सकता वह भोगान्तराय है। जिसके उदयसे उपभोगकी इच्छा रखता हुआ भी उपभोग नहीं कर सकता वह उपभोगान्तराय है ॥२८१॥ और जिसके उदयसे कार्योंमें उत्साहित होता हुआ भी उत्साह प्रकट नहीं कर सकता वह अन्तराय नामका कर्म है। इस प्रकार यह प्रकृतिबन्धका निरूपण किया ॥२८२॥ अब स्थितिबन्धका निरूपण करते हैं। आठों कर्मोंका स्थितिबन्ध, जघन्य और उत्कृष्टकी अपेक्षासे दो प्रकारका कहा जाता है ॥२८३॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है ॥२८४॥ मोहनीय कर्मकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है और नाम तथा गोत्र कर्मकी बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। यह उत्कृष्ट स्थिति संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके ही बँधती है ॥२८५॥

आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर है। वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है। नाम और गोत्रकी आठ मुहूर्त है तथा शेष पांच कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त है ॥२८६–२८७॥

कषायोंकी तीव्रता, मन्दता आदि भावास्रवकी विशेषतासे जो उनका विशिष्ट परिपाक होता है उसे अनुभव कहते हैं अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावकी विभिन्नतासे कर्मोंका जो विविध—नाना प्रकारका परिपाक होता है वह अनुभवबन्ध कहलाता है ॥२८८–२८९॥ शुभ परिणामोंसे जिस प्रकार पुण्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव बन्ध होता है उसी प्रकार पाप प्रकृतियोंका जघन्य अनुभव बन्ध होता है और अशुभ परिणामोंकी विशेषतासे जिस प्रकार अशुभ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव बन्ध होता है उसी प्रकार शुभ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभव बन्ध होता है। भावार्थ—प्रत्येक समय पुण्य और पाप प्रकृतियोंका अनुभव बन्ध जारी रहता है। जिस समय शुभ परिणामोंकी प्रकर्षता होती है उस समय पुण्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव बन्ध होता है और पाप प्रकृतियोंका जघन्य अनुभव होता है। इसी प्रकार जिस समय अशुभ परिणामोंकी विशेषतासे पापप्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव होता है उस समय पुण्यप्रकृतियोंका जघन्य अनुभव बन्ध होता है ॥२९०–२९१॥

कर्मोंकी समस्त मूल प्रकृतियाँ स्वमुखसे ही अनुभवमें आती हैं—अपना फल देती हैं और मोहनीय तथा आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंकी तुल्य जातीय प्रकृतियाँ स्वमुख तथा परमुख—दोनों रूपसे अनुभवमें आती हैं—फल देती हैं। भावार्थ—जिस प्रकृतिका जिस रूप बन्ध हुआ है उसका उसी रूप उदय आना स्वमुखसे उदय आना कहलाता है और अन्य प्रकृति रूप उदय आना परमुखसे उदय आना कहलाता है। कर्मोंकी ज्ञानावरणादि मूल प्रकृतियाँ सदा स्वमुखसे ही उदयमें आती हैं अर्थात् ज्ञानावरणका उदय दर्शनावरणादि रूप कभी नहीं होता है परन्तु उत्तर प्रकृतियोंमें एक कर्मकी प्रकृतियाँ स्वमुख तथा परमुख दोनों रूपसे फल देती हैं। जैसे वेदनीय कर्मकी साता वेदनीय और असाता वेदनीय ये दो उत्तर प्रकृतियाँ हैं। इनमें सातावेदनीयका उदय साता रूप भी आ सकता है और असाता रूप भी आ सकता है। इसी प्रकार असाता वेदनीयका उदय असाता रूप भी आ सकता है और साता रूप भी। जिस समय अपने रूप उदय आता है उस समय स्वमुखसे उदय आना कहलाता है और जिस समय अन्य रूप उदय आता है उस समय परमुखसे उदय आना कहलाता है। विशेषता यह है कि मोहनीय कर्मके जो दर्शनमोह और चारित्र-मोह भेद हैं उनकी प्रकृतियाँ परस्पर एक दूसरे रूपमें उदय नहीं आतीं—सदा स्वमुख ही उदय आती हैं परन्तु इन भेदोंकी जो अवान्तर उत्तर प्रकृतियां हैं उनका दोनोंसे उदय आता है। इसी प्रकार आयु कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका सदा स्वमुखसे ही उदय आता है परमुखसे नहीं। जैसे नरकायुका सदा नरकायु रूप ही उदय आता है अन्य रूप नहीं ॥२९२॥

विपाकसे और तपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस निर्जरामें एक निर्जरा तो विपाकजा है और दूसरी अविपाकजा है। भावार्थ—निर्जराके विपाकजा और अविपाकजाके भेदसे दो भेद हैं ॥२९३॥ संसारमें भ्रमण करनेवाले जीवका कर्म जब फल देने लगता है तब क्रमसे ही उसकी निवृत्ति होती है, यही विपाकजा निर्जरा कहलाती है ॥२९४॥ और जिस प्रकार आम आदि फलोंको उपाय द्वारा असमयमें ही पका लिया जाता है उसी प्रकार उदयावलीमें अप्राप्त कर्मकी तपश्चरण आदि उपायसे निश्चित समयसे पूर्व ही उदीरणा द्वारा जो शीघ्र ही निर्जरा की जाती है वह अविपाकजा निर्जरा है ॥२९५॥

आत्माके समस्त प्रदेशोंके साथ कर्मपरमाणुओंका जो बन्ध है वह प्रदेशबन्ध कहलाता है। इस प्रदेशबन्धकी सन्ततिमें अनन्तानन्त प्रदेशोंसे युक्त घनांगुलके असंख्येय-भाग प्रमाणक्षेत्रमें अवगाढ एक, दो, तीन आदि संख्यात समयोंकी स्थितिवाले कर्मरूप पुद्‌गल आत्माके समस्त प्रदेशोंमें सदा विद्यमान रहते हैं ॥२९६–२९७॥ उपर्युक्त कर्मबन्ध, पुण्यबन्ध और पापबन्धके

भेदसे दो प्रकारका है, उनमें शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और सद्वेद्य ये चार पुण्यबन्धके भेद हैं और शेष कर्म पापबन्ध रूप हैं ॥२९८॥

आस्रवका रुक जाना संवर कहलाता है। यह भावसंवर और द्रव्यसंवरके भेदसे दो प्रकार-का कहा जाता है ॥२९९॥ संसारकी कारणभूत क्रियाओंका रुक जाना भावसंवर है और कर्मरूप पुद्गल द्रव्यके ग्रहणका विच्छेद हो जाना द्रव्यसंवर है ॥३००॥ तीन गुप्तियाँ, पाँच समितियाँ, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षाएँ, पांच चारित्र और बाईस परिषहजय ये अपने अवान्तर विस्तारसे सहित संवरके कारण हैं ॥३०१–३०२॥ निर्ग्रन्थ मुद्राके धारक मुनिके बन्धके कारणोंका अभाव तथा निर्जराके द्वारा जो समस्त कर्मोंका अत्यन्त क्षय होता है वह मोक्ष कहलाता है ॥३०३॥ इन जीवादि सात तत्त्वोंका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षका साक्षात् साधन है ॥३०४॥ मोक्षमार्गमें स्थित कितने ही भव्य जीव एक ही भवमें सिद्ध हो जाते हैं और कितने ही भव्य स्वर्गके सुख भोगकर सदा आत्माका ध्यान करते हुए सात-आठ भवमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥३०५॥

इस प्रकार नेमि जिनेन्द्रके द्वारा कहा हुआ निर्मल मोक्षमार्ग सुनकर बारह सभाओंके लोगोंने हाथ जोड़कर भगवान्को नमस्कार किया ॥३०६॥ श्रोताओंमें-से कितने ही लोगोंने सम्यग्दर्शन धारण किया, कितने ही लोगोंने संयमासंयम प्राप्त किया और संसारवाससे डरनेवाले कितने ही लोगोंने पूर्ण संयम—मुनिव्रत स्वीकृत किया ॥३०७॥ उस समय दो हजार राजाओंने, दो हजार कन्याओंने एवं हजारों रानियोंने जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे हुए पूर्ण संयमको प्राप्त किया ॥३०८॥ शिवा देवी, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी तथा अन्य देवियोंने श्रावकोंका चारित्र स्वीकृत किया ॥३०९॥ यदुकुल और भोजकुलके श्रेष्ठ राजा तथा अनेक सुकुमारियाँ जिनमार्गकी ज्ञाता बन बारह अणुव्रतोंकी धारक हो गयीं ॥३१०॥ जो देवोंके साथ पूजा कर चुके थे, ऐसे इन्द्र तथा बलभद्र और कृष्ण आदि यादव, जिनेन्द्ररूपी सूर्यको नमस्कार कर अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥३११॥

तदनन्तर जो समस्त दिशाओंको उज्ज्वल कर रही है, मेघोंके द्वारा धुले हुए सुन्दर आकाशमण्डलको जो निर्मल ग्रहों और ताराओंसे पुष्पित बना रही थी एवं जो बन्धूक, कमल और सप्तपर्णके सुगन्धित नूतन फूलोंकी अंजलि छोड़ रही थी ऐसी शरदृऋतु, भक्तिसे भरी लोक-त्रयीके समान जिनेन्द्रदेवके चरणोंके समीप आयी ॥३१२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें श्रीनेमिनाथ भगवान्के धर्मोपदेशका वर्णन करनेवाला अंठानवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५८॥

□

सर्ग- ५९

अथानन्तर जिस प्रकार पहले संसार-समुद्रसे प्राणियोंको पार करनेके लिए भगवान् स्वर्गके अग्रभागसे पृथिवी लोकपर अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार जब विहारके लिए सम्मुख हो गिरनार पर्वतके शिखरसे नीचे उतरनेके लिए उद्यत हुए तब कुबेरने निरन्तर यह मनचाही घोषणा शुरू कर दी कि जिस याचकको जिस वस्तुकी इच्छा हो वह यहाँ आकर उसे इच्छानुसार ले ।।१-२।। उस समय कामधेनुके समान इच्छित पदार्थ प्रदान करनेवाली मणिमयी भूमि बनायी गयी। सो ठीक ही है क्योंकि भगवान्के मंगलमय विजयोद्योगके समय क्या नहीं किया जाता ? अर्थात् सब कुछ किया जाता है ।।३।। जब कि भगवान्का समस्त भूतों—प्राणियोंके हितके लिए उद्यम हो रहा था तब पृथिवी, जल, अग्नि और वायुरूप चार महाभूत भी समस्त भूतों—प्राणियोंके हित-कर हो गये सो ठीक ही है क्योंकि भगवान्की सर्वहितकारिता वैसी ही अनुपम थी ।।४।। धनकी बड़ी मोटी धारा वर्षा ऋतुके मेघकी जलधाराके समान पृथिवीके वसुन्धरा नामकी सार्थकता प्राप्त कराती हुई आकाशसे मार्गमें पड़ने लगी ।।५।। प्रणाम करनेसे जिनके मस्तक चंचल हो रहे थे तथा जो भगवान्की प्रभा और आकारमें अनुराग रखते थे ऐसे देव अपनी कान्तिसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए शीघ्र ही प्रकट होने लगे ।।६।। सर्व-प्रथम देवोंने एक ऐसे सहस्रदल पवित्र कमल-की रचना की जो पूर्व और उत्तरकी ओर स्वर्णमय हजार-हजार कमलोंकी दो पंक्तियाँ धारण करता था तथा वे पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो पृथिवीरूपी स्त्रीके कण्ठमें पड़ी दो मालाएँ ही हों ।।७।। वह कमल पद्मराग मणियोंसे निर्मित था, देदीप्यमान नाना प्रकारके रत्नोंसे चित्र-विचित्र था, प्रत्येक पत्रपर स्थित लक्ष्मीके भागसे मनोहर था, इन्द्रके हजार नेत्ररूपी भ्रमरावली-से सेवित था, देव, धरणेन्द्र और मनुष्योंके नेत्ररूपी भ्रमरोंके लिए मानो मधुगोष्ठीका स्थान था, लक्ष्मीसे सुशोभित था, परम पुण्यरूप था, एक योजन विस्तृत था और उसके चौथाई भाग प्रमाण उसकी कर्णिका—डण्ठल थी ।।८-१०।। यह कमल पद्मयानके नामसे प्रसिद्ध था। सेवा द्वारा इन्द्रको आगे कर आठ वसु उस पद्मयानके आगे-आगे चल रहे थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो इन्द्रके अणिमा, महिमा आदि आठ गुण ही मूर्तिधारी हो चल रहे हों। वे वसु यह कहते हुए भगवान्को प्रणाम करते जा रहे थे कि हे भगवन् ! आप जयवन्त हों, प्रसन्न होइए, लोकहितके लिए उद्यम करनेका आज समय आया है। यथार्थमें वह सब भगवान्का माहात्म्य था ।।११-१२।। तदनन्तर उस पद्मयानपर भगवान् जिनेन्द्र आरूढ़ हुए थे और उस समय पृथिवी हर्षसे झूमती हुई-सी जान पड़ती थी ।।१३।। उस समय मेघोंके शब्दको पराजित करनेवाला देव-दुन्दुभियोंका यह प्रयाणकालिक शब्द सुनाई पड़ रहा था कि धर्मचक्रको आगे-आगे चलानेवाले ये जगत्के स्वामी विजयी भगवान् सब जीवोंके वैभवके लिए विहार कर रहे हैं। इनके इस विहारसे तीन लोकके जीव सम्पत्तिसे वृद्धिको प्राप्त हों अर्थात् सबकी सम्पदा वृद्धिगत हो, और सब अतिवृष्टि आदि ईतियोंसे रहित हों ।।१४-१५।। उस समय वीणा, बाँसुरी, मृदंग, विशाल झालर, शंख और काहलके शब्दसे युक्त तुरहीका मंगलमय शब्द भी समुद्रकी गर्जनाको तिरस्कृत कर रहा था ।।१६।। प्रस्थान कालमें होनेवाला बहुत भारी शब्द, उत्तम कथा, चिल्लाहट, गीत, अट्टहास तथा अन्य

कल-कल शब्दोंसे आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर रहा था ॥१७॥ आकाशमें किन्नरियाँ मनोहर गान गाती थीं, अप्सराएँ नृत्य करती थीं, झूमते हुए गन्धर्व आदि देव तबला बजा रहे थे और नमस्कार करते हुए मनुष्य, सुर तथा असुर, सज्जनोंके द्वारा वन्दनीय भगवान्‌को नमस्कार करते हुए जय-जयकी मंगलध्वनिपूर्वक मंगलमय स्तोत्रोंसे जहाँ-तहाँ उनकी स्तुति कर रहे थे ॥१८-१९॥ पृथिवीतलपर भी सब ओर मनुष्य चित्तको हरनेवाले नाना प्रकारके दिव्य नृत्य, संगीत और वादित्रोंसे युक्त हो रहे थे ॥२०॥ विभूतियोंसे सहित लोकपाल समस्त दिग्भागों-के साथ सबकी रक्षा कर रहे थे। सो ठीक ही है क्योंकि अपने-अपने नियोगोंपर अच्छी तरह स्थित रहना ही भृत्योंकी स्वामि-सेवा है ॥२१॥ देदीप्यमान दृष्टिके धारक कितने ही देव समस्त हिंसक जीवोंको दूर खदेड़कर चारों ओर दौड़ रहे थे ॥२२॥ उस समय प्रसन्नतासे भरा समुद्र, रत्नरूप वलयोंसे सुशोभित ऊपर उठे हुए तरंगरूपी हाथोंसे अंजलि बाँधकर वेलारूपी मस्तकसे मानो भगवान्‌के लिए नमस्कार ही कर रहा था ॥२३॥

उस समय डग-डगपर भगवान्‌को नमस्कार करनेवाले देवोंके करोड़ों देदीप्यमान मुकुटों-का बहुत भारी प्रकाश बार-बार नीचेको झुकता और बार-बार ऊपरको उठता था। उससे ऐसा जान पड़ता था मानो हजारों सूर्योंका एक साथ पतन तथा उदय हो रहा हो। उन्हीं देवोंके जब करोड़ों मुकुट पृथिवीतलका स्पर्श करते थे तब भगवान्‌के आगेकी भूमि ऐसी सुशोभित होने लगती थी मानो उसपर करोड़ों कमलोंकी भेंट ही चढ़ायी गयी हो ॥२४-२५॥ जिनका तेज लोकके अन्त तक व्याप्त था, ऐसे लौकान्तिक देव भगवान्‌के आगे-आगे चल रहे थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो लोकके स्वामी भगवान् जिनेन्द्रका प्रकाश ही मूर्तिधारी हो आगे-आगे गमन कर रहा था ॥२६॥ जिनके परिवारकी देवियोंने मंगल द्रव्य धारण कर रखे थे, तथा जिनके हाथोंमें स्वयं कमल विद्यमान थे, ऐसी पद्मा और सरस्वती देवी, भगवान्‌की प्रदक्षिणा देकर उनके आगे-आगे चल रही थीं ॥२७॥ 'हे देव ! इधर प्रसन्न होइए, इधर प्रसन्न होइए।' इस प्रकार नमस्कार कर जिसने अंजलि बाँध रखी थी ऐसा इन्द्र, तद्-तद् भूमिपतियोंके साथ भगवान्‌के आगे-आगे चल रहा था ॥२८॥

इस प्रकार जो तीनों लोकोंके इन्द्र तथा उनके परिवारसे घिरे हुए थे, लोगोंकी विभूतिके लिए जो समस्त लोककी विभूतिको धारण कर रहे थे, जो कमलकी पताकासे सहित थे, जिनकी आत्मा अत्यन्त पवित्र थी, और जो भव्य जीवरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए उत्तम सूर्यके समान थे, ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र जिस समय उस पद्मयानपर आरूढ़ हुए उसी समय देवोंने मेघ-गर्जनाके समान यह शब्द करना शुरू कर दिया कि हे नाथ ! आपकी जय हो, हे ज्येष्ठ ! आपकी जय हो, हे लोकपितामह ! आपकी जय हो, हे आत्मभू ! आपकी जय हो, हे आत्मेश ! आपकी जय हो, हे देव ! आपकी जय हो, हे अच्युत ! आपकी जय हो। हे समस्त जगत्‌के बन्धु ! आपकी जय हो, हे समीचीन धर्मके स्वामी ! आपकी जय हो, हे सबके शरणभूत लक्ष्मीके धारक ! आपकी जय हो, हे पुण्यरूप ! आपकी जय हो, हे उत्तम ! आपकी जय हो। इस प्रकार उठा हुआ पुण्यात्मा जनोंका जोरदार, अत्यन्त गम्भीर एवं मेघ-गर्जनाकी तुलना करनेवाला वह शब्द आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त करता हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥२९-३३॥

तदनन्तर समस्त इन्द्र जिनके जय-जयकार और मंगल शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे, जिनके चलते हुए चरणकमल उन इन्द्रोंके मुकुटरूपी भ्रमरोंसे व्याप्त थे, जो उन कमलोंमें निवास करनेवाली लक्ष्मीसे समस्त जगत्‌को आनन्दित कर रहे थे, और जो अत्यन्त उत्कृष्ट विभूतिके धारक थे, ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र जीवोंपर दया कर विहार करने लगे ॥३४-३५॥ वे प्रभु,

आकाशमें, स्वच्छ जलके भीतर पड़ते हुए मुख-कमलके प्रतिबिम्बकी शोभाको धारण करनेवाले दिव्य कमलपर अपने चरणकमल रखकर विहार कर रहे थे ॥३६॥ उस समय भगवान्‌के दर्शन करनेके लिए उद्यत एवं उनके आगे-आगे चलनेवाला कुबेर मार्गको सुशोभित करता हुआ ऐसा जान पड़ता था जैसा सूर्यके आगे चलता हुआ उसका सारथि अरुण हो ॥३७॥ भगवान्‌के विहार-का वह मार्ग सुवर्णमय था एवं देदीप्यमान मणियोंके आभूषणसे सहित था। इसलिए अपने पतिके लिए स्थित, सुवर्णमय शरीरकी धारक एवं देदीप्यमान मणियोंके आभूषणोंसे सुशोभित पतिव्रता स्त्रीके समान प्रशंसनीय था ॥३८॥ जिस प्रकार मुनिगण निर्मल क्रियाओंसे अपनी वृत्तिको सदा साफ करते रहते हैं—निर्दोष बनाये रखते हैं उसी प्रकार पवनकुमार देव वायुके मन्द-मन्द झोकोंमें उस मार्गको साफ बनाये रखते थे ॥३९॥ कौंधती हुई बिजलीकी चमकसे समस्त दिशाओंके अग्रभागको प्रकाशित करनेवाले मेघवाहन देव उस मार्गमें सुगन्धित जल सींचते जाते थे ॥४०॥

मोक्षमार्गके ज्ञाता भगवान्‌के विहारकालमें, देवोंके समूह, जिनपर मदोन्मत्त भौंरे मँडरा रहे थे ऐसे मन्दार वृक्षके पुष्पोंसे मार्गको सुशोभित कर रहे थे ॥४१॥ वह मार्ग, गले हुए सोनेके रसके उन मण्डलोंसे जिनके कि तलभाग रत्नोंके चूर्णसे व्याप्त थे एवं नक्षत्रोंके समूहके समान जान पड़ते थे, अतिशय सुशोभित हो रहा था ॥४२॥ गुह्यक जातिके देव केशरके रससे नाना प्रकारके बेल-बूटे बनाते जाते थे मानो वे अपनी चित्रकर्मकी नाना प्रकारकी कुशलताको ही प्रकट करना चाहते थे ॥४३॥ मार्गके दोनों ओरकी सीमाएँ क्रमपूर्वक खड़े किये हुए पत्रोंसे युक्त केला, नारियल, ईख तथा सुपारी आदिके वृक्षोंसे सुन्दर बगीचोंके समान जान पड़ती थीं ॥४४॥ मार्गमें निरन्तर सुन्दर क्रीड़ाके स्थान बने हुए थे जिनमें हर्षसे भरे मनुष्य और देव अपनी स्त्रियोंके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते थे ॥४५॥ जिस प्रकार भोग-भूमिमें भोगी जीवोंको इच्छानुसार भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार उस मार्गमें भी, बीच-बीचमें भोगी जीवोंको उत्कृष्ट विभूतिसे युक्त सब प्रकारकी भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती रहती थीं ॥४६॥ भगवान्‌के विहारका वह मार्ग तीन योजन चौड़ा बनाया गया था तथा मार्गके दोनों ओरकी सीमाएँ दो-दो कोस चौड़ी थीं ॥४७॥ वह मार्ग, जगह-जगह निर्मित तोरणों तथा दृष्टिमें आनेवाले सुवर्णमय अष्टमंगलद्रव्यों-से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्रियोंसे ही सुशोभित हो रहा हो ॥४८॥ मार्गमें जगह-जगह भोगियोंको इच्छानुसार पदार्थ देनेवाली बड़ी-बड़ी कामशालाएँ बनी हुई थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो इच्छानुसार पदार्थ देनेवाली भगवान्‌की मूर्तिमती दानशक्तियाँ ही हों ॥४९॥ तोरणोंकी मध्यभूमिमें जो ऊँचे-ऊँचे केलेके वृक्ष तथा ध्वजाएँ लगी हुई थीं उनसे आच्छादित हुआ मार्ग इतनी सघन छायासे युक्त हो गया था कि वह सूर्यकी छविको भी रोकने लगा था ॥५०॥ वनके निवासी देवोंने वनकी मंजरियोंके समूहसे पीला-पीला दिखनेवाला पुष्पमण्डप तैयार किया था जो उनके अपने पुण्यके समूहके समान जान पड़ता है ॥५१॥ वह पुष्पमण्डप रत्नमयी लताओंके चित्रोंसे सुशोभित दीवालोंसे युक्त था, दो योजन विस्तारवाला था, चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभाके कान्तिमण्डलसे समीपमें सुशोभित था, छोटी-छोटी घण्टियोंकी रुनझुन और घण्टाओंके नादसे दिशाओंको शब्दायमान कर रहा था, उसके दोनों छोर तथा मध्यका अन्तर मोतियोंकी मालाओंसे युक्त था, उत्तम गन्धसे आकर्षित हो सब ओर मँडराते हुए भ्रमरोंके समूहसे उसकी कान्ति उल्लसित हो रही थी, आकाशमें उसका चँदेवा भगवान्‌के मूर्तिक यशके समान दिखाई देता था, उस मण्डपके चारों कोनोंमें ऊँचे खड़े किये हुए खम्भोंके समान सुशोभित, बड़े-बड़े मोतियोंसे निर्मित तथा बीच-बीचमें मूँगाओंसे खचित चार मालाएँ लटक

रही थीं, उनसे वह अधिक सुशोभित हो रहा था। दयाकी मूर्ति, अहितका दमन करनेवाले, स्वयं ईश एवं स्वयं देदीप्यमान भगवान् नेमि जिनेन्द्र उस मण्डपके मध्यमें स्थित हो समस्त जीवोंके हितके लिए विहार कर रहे थे ।।५२–५६।।

उसी पुष्पमण्डपमें भगवान्के पीछे सूर्यको पराजित करनेवाला भामण्डल सुशोभित होता था जिसमें सब जीव अपने आगे-पीछेके सात-सात भव देखते हैं ।।५७।। भगवान्के शिरपर ऊपर-ऊपर अत्यन्त निर्मल तीन छत्र सुशोभित हो रहे थे जिनमें तीनों लोकोंके द्वारा सार तत्त्व प्रकट किया गया था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो वह जिनेन्द्र भगवान्की लक्ष्मी तीन लोकके स्वामित्वको सूचित ही कर रही थी ।।५८।। भगवान्के चारों ओर अपने-आप ढुलनेवाले हजारों चमर ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे आकाशतलमें मेरु पर्वतके चारों ओर हंस सुशोभित होते हैं ।।५९।।

ऋषिगण भगवान्के पीछे-पीछे चल रहे थे, देव उन्हें घेरे हुए थे और इन्द्र प्रतिहार बनकर आठ वसुओंके साथ भगवान्के आगे-आगे चलता था ।।६०।। इन्द्रके आगे तीन लोककी उत्कृष्ट विभूतिसे युक्त लक्ष्मी नामक देवी, मंगलद्रव्य लिये शची देवीके साथ-साथ जा रही थी और वह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीके प्रतिविम्बके समान जान पड़ती थी ।।६१।। तदनन्तर श्रीदेवीसे सहित समस्त एवं परिपूर्णमंगलद्रव्य विद्यमान थे सो ठीक ही है क्योंकि मंगलमय भगवान्की मंगलमय यात्रा मंगलद्रव्योंसे युक्त होती ही है ।।६२।। उनके आगे, जिनपर देदीप्यमान मुकुटके धारक प्रमुख देव बैठे थे ऐसी शंख और पद्म नामक दो निधियाँ चलती थीं। ये निधियाँ समस्त जीवोंको इच्छित वस्तुएँ प्रदान करनेवाली थीं तथा सुवर्ण और रत्नोंकी वर्षा करती जाती थीं ।।६३।। उनके आगे फणाओंपर चमकते हुए मणियोंकी किरणरूप दीपकोंसे युक्त नागकुमार जातिके देव चलते थे और वे अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेवाले केवलज्ञानरूपी दीपककी दीप्तिका अनुकरण करते हुए-से जान पड़ते थे ।।६४।।

उनके आगे धूपघटोंको धारण करनेवाले समस्त अग्निकुमार देव चल रहे थे। उन धूपघटोंकी गन्ध लोकके अन्त तक फैल रही थी और वह जिनेन्द्र भगवान्की गन्धको सूचित कर रही थी ।।६५।। तदनन्तर शान्त और तेजरूप गुणको धारण करनेवाले, भगवान्के भक्त, चन्द्र और सूर्य जातिके देव अपनी प्रभाके समूहरूप मंगलमय दर्पणको धारण करते हुए चल रहे थे ।।६६।। उस समय सन्तापके रोकनेके लिए सुवर्णमय छत्र लगाये गये थे, उनसे सर्वत्र ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश सूर्योंसे ही व्याप्त हो रहा हो ।।६७।। जगह-जगह विजय-स्तम्भ दिखाई दे रहे थे, उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पताकारूपी हाथोंके विक्षेपसे पर-वादियोंको परास्त कर दयारूपी मूर्तिको धारण करनेवाले भगवान्के मानो कन्धे ही नृत्य कर रहे हों ।।६८।। आगे-आगे भगवान्की विजय-पताका फहराती हुई सुशोभित थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन जगत्के नेत्ररूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिए निर्मल चाँदनी ही हो ।।६९।। जो देवियाँ अधोलोक और ऊर्ध्वलोकमें निवास करती हैं तथा पृथिवीपर नाना स्थानोंमें निवास करनेवाली हैं वे भगवान्के आगे प्रेम और आनन्दसे आठ रस प्रकट करती हुई नृत्य कर रही थीं ।।७०।। जिसने अपनी गम्भीर और मधुर ध्वनिसे समस्त दिशाओं और विदिशाओंके अन्तरको व्याप्त कर रखा था ऐसी नान्दी-ध्वनि (भगवत्स्तुतिकी ध्वनि) वर्षा ऋतुकी मेघावलीको जीतकर बड़ी गम्भीरता-से बार-बार हो रही थी ।।७१।। जिसने अपनी प्रभासे सूर्यको जीत लिया था, जो हजार अररूप किरणोंसे सहित था, देवोंके समूहसे घिरा हुआ था और अत्यधिक अन्धकारको नष्ट कर रहा था ऐसा धर्मचक्र आकाश-मार्गसे चल रहा था ।।७२।। आगे-आगे चलनेवाले स्तनितकुमार देव अभय

घोषणाके साथ-साथ यह घोषणा करते जाते थे कि 'ये भगवान् तीन लोकके स्वामी हैं, आओ, आओ और इन्हें नमस्कार करो' ॥७३॥ उस समय बहुत-से उत्तम भवनवासी देव, भगवान् नेमिनाथके प्रभावके अनुरूप दिशाओं और मार्गको अच्छी तरह व्याप्त कर दौड़ते हुए जय-जयकार करते जाते थे ॥७४॥ जो जीव अनेक आश्चर्योंसे भरी हुई भगवान्की इस दिव्ययात्रामें साथ-साथ जाते थे, पृथिवीपर उन्हें अर्थ-दृष्टिको आदि लेकर समस्त आश्चर्योंकी प्राप्ति होती थी। भावार्थ—उन्हें चाहे जहाँ धन दिखाई देना आदि अनेक आश्चर्य स्वयं प्राप्त हो जाते थे ॥७५॥ जिस देशमें भगवान्का विहार होता था उस देशमें भगवान्की आज्ञा न होनेसे ही मानो किसीको न तो आधि-व्याधि—मानसिक और शारीरिक पीड़ाएँ होती थीं और न अतिवृष्टि आदि ईतियाँ ही व्याप्त होती थीं ॥७६॥ वहाँ अन्धे रूप देखने लगते थे, बहरे शब्द सुनने लगते थे, गूँगे स्पष्ट बोलने लगते थे और लँगड़े चलने लगते थे ॥७७॥ वहाँ न अत्यधिक गरमी होती थी, न अत्यधिक ठण्ड पड़ती थी, न दिन-रातका विभाग होता था, और न अन्य अशुभ कार्य अपनी अधिकता दिखला सकते थे। सब ओर शुभ ही शुभ कार्योंकी वृद्धि होती थी ॥७८॥ उस समय सर्व प्रकारकी फली-फूली धान्यरूपी रोमांचको धारण करनेवाली पृथिवीरूपी स्त्री कमलरूपी हाथोंके द्वारा बड़े हर्षसे भगवान्रूपी भर्तारके पादमर्दन कर रही थी ॥७९॥ जिनेन्द्ररूपी सूर्यके पादरूपी किरणोंके सम्पर्कसे फूली हुई कमलावलीको धारण करनेवाला आकाश उस समय चलते-फिरते तालाबकी शोभाको विस्तृत कर रहा था ॥८०॥ उस समय बिना कहे ही समस्त ऋतुएँ एक साथ वृद्धिको प्राप्त हो रही थीं, सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो समदृष्टि भगवान्के द्वारा अवलोकित होनेपर वे समरूपी ही हो गयी थीं। यथार्थमें स्वामीपना तो वही है जिसमें किसीके प्रति विकल्प—भेदभाव न हो ॥८१॥ उस समय पृथिवी जगह-जगह अनेक खजाने, निधियाँ, अन्न, खानें और अमृत उत्पन्न करती थीं इसलिए 'रत्नसू' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयी थी ॥८२॥ अन्तकजित्—यमराजको जीतनेवाले भगवान्के वीर्यसे जिसका पराक्रम पराजित हो गया था ऐसा यमराज, धर्मचक्रसे सबल संसारमें असमयमें करग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता था। भावार्थ—जहाँ भगवान्का धर्मचक्र चलता था वहाँ किसीका असमयमें मरण नहीं होता था ॥८३॥ काल (यम) को हरनेवाले हैं (पक्षमें समयको हरनेवाले) भगवान्की आज्ञाके विरुद्ध आचरण न हो जाये, इस भयसे काल (समय) अपनी विषमताको छोड़कर सदा भगवान्की इच्छानुसार ही प्रवृत्ति करता था। भावार्थ—काल, सर्दी-गरमी, दिन-रात आदिकी विषमता छोड़ सदा एक समान प्रवृत्ति कर रहा था ॥८४॥ भगवान्के विहार-क्षेत्रमें स्थित समस्त त्रस, स्थावर जीव सुखको प्राप्त हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें विभुता वही है जो सबका हित करनेवाली हो ॥८५॥ जो साँप, नेवला आदि समस्त जीव जन्मसे ही वैर रखते थे उन सभीमें भगवान्की आज्ञासे अखण्ड मित्रता हो गयी थी ॥८६॥ भगवान्की बहती हुई गन्धको, पवन किस प्रकार प्राप्त कर सकता है इस प्रकार अनुजीवी जनोंको सेवाकी शिक्षा देता हुआ वह शान्त होकर भगवान्की सेवा कर रहा था। भावार्थ—उस समय शीतल, मन्द सुगन्धित पवन भगवान्की सेवा कर रहा था सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह सेवकजनोंको सेवा करनेकी शिक्षा ही दे रहा था ॥८७॥ धूलिरूपी अन्धकारके नष्ट हो जानेसे प्रकट हुई निर्मलतारूपी आभरणोंकी कान्तिसे युक्त दिशारूपी कन्याएँ फूलोंके जापसे भगवान्की पूजा कर रही थीं ॥८८॥ अत्यन्त स्वच्छ और जगमगाते हुए ताराओंसे देदीप्यमान आकाश, उस सरोवरके समान दिखायी देता था जिसका जल शरद् ऋतुके कारण स्वच्छ हो गया था तथा जिसमें कुमुदोंका समूह विद्यमान था ॥८९॥ उस समय अन्यकी तो बात ही क्या थी अल्पबुद्धिके धारक तिर्यंच आदि समस्त प्राणी भगवान्को दूरसे ही नमस्कार करते थे। भगवान् चतुर्मुख थे इसलिए चारों दिशाओंमें दिखाई देते और छाया आदिसे रहित थे ॥९०॥

भगवान् नेमि जिनेन्द्रके भोजन तथा सब प्रकारके उपसर्गोंका अभाव था सो ठीक ही है क्योंकि लोकके अद्वितीय स्वामीका ऐसा आश्चर्यकारी अद्भुत माहात्म्य होता ही है ।।९१।। जिनका कल्याण होनेवाला था ऐसे प्रवादी लोग, अहंकारसे युक्त होनेपर भी आ-आकर भगवान्को नमस्कार करते थे सो ठीक ही है क्योंकि उन जैसा प्रभाव अन्तमें आश्चर्य करनेवाला एवं प्रतिपक्षीसे रहित होता ही है ।।९२।। जिनके आगे-आगे इन्द्र चल रहा था ऐसे भगवान् जिस-जिस दिशामें पहुँचते थे उसी-उसी दिशाके दिक्पाल पूजनकी सामग्री लेकर भगवान्की अगवानीके लिए आ पहुँचते थे ।।९३।। भगवान् जिस-जिस दिशासे वापस जाते थे उस-उस दिशाके दिक्पाल मंगल द्रव्य लिये हुए अपनी-अपनी सीमा तक पहुँचाने आते थे सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् उसी प्रकारके सार्वभौम थे—समस्त पृथिवीके अधिपति थे ।।९४।। त्रिमार्गगा अर्थात् गंगानदी अपने निश्चित तीन मार्गोंसे चलती है परन्तु वह देवोंकी सेना बिना मार्गके ही चल रही थी—उसके चलनेके मार्ग अनेक थे। इस तरह वह सेना अतिशय पवित्र भगवान्से प्रभावित हो पृथिवीलोकको पवित्र कर रही थी ।।९५।। उस देवसेनाके बीच दण्डके समान एक बहुत ऊँचा कान्तिदण्ड विद्यमान था जो नीचेसे लेकर ऊपर लोकके अन्त तक फैला था और वापस आयी हुई किरणोंसे युक्त था ।।९६।। अन्य तेजधारियोंकी अपेक्षा उस कान्तिदण्डका तेज तिगुना था। अपने तेजके द्वारा वह बड़ा स्थूल दिखाई देता था और सूर्यके सिवाय अन्य ज्योतिषियोंके समूहको तिरस्कृत करनेवाला था ।।९७।। उस कान्तिदण्डका प्रकाश लोकके अन्त तक व्याप्त था, रुकावटसे रहित था, गाढ़ अन्धकारको नष्ट करनेवाला था, और सूर्यके प्रकाशको अतिक्रान्त करनेवाला था ।।९८।। उस कान्तिदण्डके बीचमें पुरुषाकार एक ऐसा दूसरा कान्तिसमूह दिखाई देता था जो तेजका धारक था, अन्य तेजोमयके समान जान पड़ता था, एक हजार सूर्यके समान कान्तिका धारक था, जिससे बढ़कर और दूसरी आकृति नहीं थी, जो चारों ओर फैलनेवाली कान्तिसे घनरूप था, भगवान्के महान् अभ्युदयके समान था, जिसकी कान्तिका विस्तार एक कोस तक फैल रहा था, जो भगवान्की ऊँचाईके बराबर ऊँचा था, दृष्टिको हरण करनेवाला था, सुखपूर्वक देखा जा सकता था, सुखको उत्पन्न करनेवाला था, पुण्यकी मूर्तिस्वरूप था और सबके द्वारा पूजा जाता था ।।९९-१०१।। जिस प्रकार उल्लू सूर्यकी प्रभाको नहीं देख पाते हैं उसी प्रकार दुर्बुद्धि, पापी एवं अपने पापसे उत्पन्न क्रोधसे युक्त पुरुष उस कान्ति-समूहको नहीं देख पाते हैं ।।१०२।। उस कान्ति-समूहमें-से एक विशेष प्रकारकी प्रभा निकलती थी जो सूर्यके तेजको आच्छादित कर रही थी, समस्त दिशाओंको पूर्ण कर रही थी और सूर्यकी प्रभाके समान पृथिवीतलको पहलेसे व्याप्त कर रही थी ।।१०३।। उस प्रभाके पीछे, जो समस्त लोकोंको प्रकाशित कर रहे थे तथा जिनकी प्रभा अत्यधिक किरणोंसे युक्त थी ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र, लोकशान्तिके लिए—संसारमें शान्तिका प्रसार करनेके लिए विहार कर रहे थे ।।१०४।। जिस मार्गमें भगवान्का विहार होता था वह मार्ग, अपने चिह्नोंसे एक वर्ष तक यह प्रकट करता रहता था कि यहाँ भगवान्का विहार हुआ है तथा रत्नवृष्टिसे वह मार्ग ऐसा सुशोभित होता था जैसा नक्षत्रोंके समूहसे ऐरावत हाथी सुशोभित होता है ।।१०५।। जिस प्रकार विहारसे सम्बन्ध रखनेवाली पृथिवीमें मार्ग आदि दिखलाई देते हैं उसी प्रकार आकाशमें मार्ग आदि दिखाई देते हैं सो ठीक ही है क्योंकि तीन लोकके अतिशयसे उत्पन्न भगवान्का वह अतिशय ही आश्चर्यकारी था ।।१०६।। उस समय मन्द बुद्धि मनुष्य तीक्ष्ण बुद्धिके धारक हो गये थे। समस्त हिंसक जीव प्रभावहीन हो गये थे और भगवान्के समीप रहनेवाले लोगोंको खेद, पसीना, पीड़ा तथा चिन्ता आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होता था ।।१०७।। भगवान्के विहारसे अनुगृहीत भूमिमें दो सौ योजन तक विप्लव आदि नहीं होते थे। अथवा दशसे गुणित युग अर्थात् पचास वर्ष तक उस भूमिमें कोई उपद्रव आदि

नहीं होते थे। भावार्थ—जिस भूमिमें भगवान्का विहार होता था वहाँ ५० वर्ष तक कोई उपद्रव दुर्भिक्ष आदि नहीं होता था। यह भगवान्की बहुत भारी महिमा ही समझनी चाहिए ॥१०८॥ इस प्रकार उत्कृष्ट विभूतिसे युक्त, बोधको देनेवाले जगत्के स्वामी भगवान् नेमिनाथने भव्य जीवोंको सम्बोधित करते हुए, जगत्के वैभवके लिए क्रमसे पृथिवीपर विहार किया ॥१०९॥ सुराष्ट्र, मत्स्य, लाट, विशाल शूरसेन, पटच्चर, कुरुजांगल, पांचाल, कुशाग्र, मगध, अंजन, अंग, वंग तथा कलिंग आदि नाना देशोंमें विहार करते हुए भगवान्ने क्षत्रिय आदि वर्णोंको जैनधर्ममें स्थित किया ॥११०–१११॥

तदनन्तर विहार करते-करते भगवान् मलय नामक देशमें आये और उसके भद्रिलपुर नगरके सहस्राम्रवनमें विराजमान हो गये ॥११२॥ पहलेकी तरह चारों प्रकारके देवोंने वहाँपर भी समवसरणकी रचना कर दी और उसमें गणधरोंसे वेष्टित भगवान् सुशोभित होने लगे ॥११३॥ उस नगरका राजा पौण्ड्र, नगरवासियोंके साथ समवसरणमें आया और हाथ जोड़ स्तुति करता हुआ जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया ॥११४॥ देवकीके जो छह पुत्र सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानीकी पुत्रप्रीतिको बढ़ाते हुए उनके यहाँ रहते थे वे भी समवसरणमें आये ॥११५॥ उनमें-से प्रत्येककी बत्तीस-बत्तीस स्त्रियाँ थीं जो अत्यन्त उज्ज्वल थीं और अपने रूप आदि गुणोंसे इन्द्रकी इन्द्राणीको भी जीतती थीं ॥११६॥ बहुत भारी तेजको धारण करनेवाले वे छह भाई अपने-अपने पृथक्-पृथक् छहों रथोंसे नीचे उतरकर समवसरणमें गये और जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर राजाके साथ मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये ॥११७॥ उस समय भगवान्ने सभामें स्थित लोगोंके लिए सम्यग्दर्शनसे सुशोभित श्रावकधर्म और कर्मोंका नाश करनेवाले मुनिधर्मका उपदेश दिया ॥११८॥ तदनन्तर जिनेन्द्र भगवान्से धर्मरूप अमृतका श्रवण कर जिन्होंने तत्त्वके वास्तविक स्वरूपको जान लिया था ऐसे छहों भाई संसारसे विरक्त हो उठे और बन्धुजनोंको इसकी सूचना दे जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंके समीप निर्ग्रन्थ हो एक साथ मोक्ष-लक्ष्मीको प्रदान करनेवाली दीक्षाको प्राप्त हो गये ॥११९–१२०॥ जिन्हें बीज-बुद्धि आदि ऋद्धियाँ प्राप्त हुई थीं ऐसे उन राजकुमारोंने द्वादशांग श्रुतज्ञानका अभ्यास कर घोर तप किया ॥१२१॥ इन छहों मुनियोंके बेला आदि उपवास, उनकी धारणाएँ, पारणाएँ, त्रैकालिक योग तथा शयन, आसन आदि क्रियाएँ साथ-साथ ही होती थीं ॥१२२॥ उत्कृष्ट तप तपनेवाले उन चरमशरीरी मुनियोंके शरीरकी उत्कृष्ट कान्ति पहलेसे भी अधिक बढ़ गयी थी ॥१२३॥ तीर्थंकर भगवान्के चरणोंकी सेवा करनेवाले ये छहों मुनि, बाह्याभ्यन्तर तपमें परस्पर एक-दूसरेके उपमानोपमेयको प्राप्त हो रहे थे ॥१२४॥

तदनन्तर उस प्रकारकी महाविभूतिके साथ पृथिवीपर विहार कर भगवान् ऊर्जयन्त गिरि—गिरनार पर्वतपर आये और समवसरणके द्वारा उसे सुशोभित करने लगे ॥१२५॥ इन्द्रादिक देवों, कृष्ण आदि यादवों और द्वारिकावासी नागरिक जनोंसे जिनकी सेवा हो रही थी ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र उस ऊर्जयन्त गिरिपर अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१२६॥ उस समय समवसरणमें श्रुतज्ञानरूपी समुद्रके भीतरी भागको देखनेवाले वरदत्त आदि ग्यारह गणधर सुशोभित थे ॥१२७॥ भगवान्के समवसरणमें सज्जनोंके माननीय चार सौ पूर्वधारी, एक हजार आठ सौ शिक्षक, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी, आठ सौ वादी और ग्यारह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक मुनिराज थे ॥१२८–१३०॥ राजीमतीको साथ लेकर चालीस हजार आर्यिकाएँ, एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक और सम्यग्दर्शनसे शुद्ध तथा श्रावकके व्रत धारण करनेवाली तीन लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ वहाँ विद्यमान

थीं ॥१३१-१३२॥ दिव्यध्वनिके धारक भगवान् तीर्थंकररूपी मेघ, धर्मरूपी दिव्य अमृतकी वर्षा करते हुए, प्यासे भव्यजीवरूपी चातकोंको पहलेकी तरह तृप्त करने लगे ॥१३३॥

इस प्रकार अपरिमित अभ्युदयके धारक नेमिजिनेन्द्ररूपी सूर्यके दुर्लभ महोदयसे युक्त ऊर्जयन्त पर्वतरूपी उदयाचलपर स्थित होते ही अंजलिरूपी कमलको धारण करनेवाले समस्त लोकरूपी सरोवरमें उत्पन्न हुए विद्वज्जनरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये ॥१३४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें भगवान्के विहारका वर्णन करनेवाला उनसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५९॥

सर्ग- ६०

अथानन्तर धर्मकथा पूर्ण होनेपर विनयको धारण करनेवाली देवकीने हाथ जोड़कर भगवान्‌को नमस्कार किया और उसके बाद यह पूछा कि भगवन् ! आज सुवर्णके समान सुन्दर दो मुनियोंका युगल मेरे भवनमें तीन बार आया और फिर-फिरसे उसने, तीन बार आहार लिया। हे प्रभो ! जब मुनियोंके भोजनकी बेला एक है और एक ही बार वे भोजन करते हैं तब मुनि एक ही घरमें अनेक बार क्यों प्रवेश करते हैं ? ॥१-३॥ अथवा यह भी हो सकता है कि वह तीन मुनियोंका युगल हो और अत्यन्त सदृश रूप होनेके कारण मैं भ्रान्तिवश उन्हें देख नहीं सकी हूँ। परन्तु इतना अवश्य है कि मेरा उन सबमें पुत्रोंके समान स्नेह उत्पन्न हुआ था ॥४॥

देवकीके इस प्रकार कहनेपर भगवान्‌ने कहा कि ये छहों मुनि तेरे पुत्र हैं और कृष्णके पहले तीन युगलके रूपमें तूने इन्हें उत्पन्न किया था ॥५॥ देवने कंससे इनकी रक्षा की और भद्रिलपुरमें सुदृष्टि सेठ तथा अलका सेठानीके यहाँ पुत्ररूपसे इनका लालन-पालन हुआ ॥६॥ धर्म श्रवण कर ये सबके सब एक साथ मेरी शिष्यताको प्राप्त हो गये—मुनि हो गये और कर्मोंका क्षय कर इसी जन्ममें सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥७॥ तेरा इन सबमें जो स्नेह हुआ था वह अपत्यकृत था—पुत्र होनेसे किया गया था सो ठीक ही है क्योंकि समस्त धर्मात्मा जनोंमें प्रेम होता है फिर जो पुत्र होकर धर्मात्मा हैं उनका तो कहना ही क्या है ? ॥८॥ तदनन्तर देवकीने सन्तुष्ट होकर उन पुत्ररूप मुनियोंको नमस्कार किया तथा कृष्ण आदि समस्त यादवोंने नम्रीभूत होकर उनकी स्तुति की ॥९॥

तत्पश्चात् कृष्णकी पट्टरानी सत्यभामाने भगवान्‌को प्रणाम कर अपने पूर्वभव पूछे। उत्तरमें दिव्य नेत्र—केवलज्ञानके धारक भगवान् यादवों और देवोंके समक्ष इस प्रकार उसके पूर्वभव कहने लगे ॥१०॥

पहले भद्रिलपुर नगरमें मुण्डशलायन नामका एक ब्राह्मण रहता था जो मरीचि ब्राह्मण और कपिला ब्राह्मणीका पुत्र था, काव्यकी रचनामें निपुण था और अपने-आपको पण्डित मानता था ॥११॥ श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्रके तीर्थमें धर्मका व्युच्छेद हो जानेसे जब भरतक्षेत्रकी भूमिमें जिनमार्गके ज्ञाता भव्य जीवोंका अभाव हो गया तब उस विषयोंसे पीड़ित ब्राह्मणने पृथिवीपर पापबन्धमें कारणभूत गाय, कन्या तथा सुवर्ण आदिसे दानकी प्रवृत्ति चलायी ॥१२-१३॥ मूर्ख जनोंको मोहित कर वह राजपुरुषोंके आगे तक पहुँच गया अर्थात् क्रम-क्रमसे उसने राजा-प्रजा सभीको अपने चक्रमें फँसा लिया और पापाचारमें प्रवृत्त हो अन्तमें वह सातवें नरक गया ॥१४॥ वहाँसे निकलकर भी तिर्यंच और नारकियोंकी योनिमें परिभ्रमण करता रहा। तदनन्तर कदाचित् काकतालीयन्यायसे मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ ॥१५॥ गन्धावती नदीके किनारे गन्धमादन पर्वतपर वह वल्लरी नामक स्त्रीका स्वामी पर्वतक नामका भील हुआ ॥१६॥ कदाचित् उस पर्वतपर श्रीधर और धर्म नामके दो चारणऋद्धिधारी मुनि आये। उनके दर्शन कर इसके परिणामोंमें कुछ शान्ति आयी जिससे मुनियोंने उससे उपवास कराया। अन्तमें वह धर्मपूर्वक मरणको प्राप्त हो विजयार्ध पर्वतकी अलका नगरीमें महाबल नामक विद्याधरसे ज्योतिर्माला नामकी विद्या-

वराभ शतबलाका भाई हरिवाहन नामका पुत्र हुआ ॥१७-१८॥ कदाचित् राजा महाबल, शतबली और हरिवाहन नामक दोनों पुत्रोंको राज्य-कार्यमें नियुक्त कर श्रीधर गुरुके पास दीक्षित हो गया और दीक्षाका मुख्य फल मोक्षसम्बन्धी सुख उसे प्राप्त हो गया ॥१९॥ किसी कारण शतबली और हरिवाहनमें विरोध पड़ गया जिससे बड़े भाई शतबलीने उसे निकाल दिया। निर्वासित हरिवाहन भगलीदेशके अम्बुदावर्त नामक पर्वतपर स्थित था ॥२०॥ उसी समय वहाँ श्रीधर्म और अनन्तवीर्य नामक दो चारणऋद्धिधारी मुनि आये। उनके दर्शन कर हरिवाहनने दीक्षा ले ली और अन्तमें सल्लेखना धारण कर वह ऐशान स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥२१॥ हरिवाहनके जीव देवने वहाँ देवोंके सुखोंका उपभोग किया परन्तु संक्लेशमय परिणाम होनेके कारण वहाँसे च्युत होकर राजा सुकेतुकी रानी स्वयंप्रभाके गर्भमें तू सत्यभामा नामकी कन्या हुई ॥२२॥ इस जन्ममें तपकर तू अन्तमें उत्तम देव होगी और वहाँसे च्युत हो जिनेन्द्र प्रणीत तप कर मोक्ष सुखको प्राप्त होगी ॥२३॥

इस प्रकार अपने भव सुनकर तथा निकट कालमें हमें मोक्ष प्राप्त होनेवाला है यह जानकर सत्यभामाने हर्षित हो भगवान्‌को नमस्कार किया ॥२४॥

तदनन्तर रानी रुक्मिणीने भी अपने पूर्वभव पूछे सो समस्त पदार्थोंके ज्ञाता भगवान् नेमिनाथ, इस प्रकार कथन करने लगे। उस समय समस्त लोग सुननेके लिए एकाग्रचित्त होकर बैठे थे ॥२५॥

इसी भरत क्षेत्रके मगध देशमें एक लक्ष्मी नामका ग्राम है। उसमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी लक्ष्मीमती नामकी ब्राह्मणी थी जो कि लक्ष्मीके समान उत्तम लक्षणोंकी धारक थी और अपने रूपके अभिमानसे मूढ़ होकर पूज्य जनोंको भी कुछ नहीं समझती थी ॥२६-२७॥ चित्तको हरण करनेवाली वह लक्ष्मीमती, एक दिन आभूषण धारण कर नेत्रोंको प्रिय तथा चन्द्रमाके समान आभावाले मणिमय दर्पणमें अपना मुख देख रही थी उसी समय तपसे अतिशय कृश समाधिगुप्त नामके मुनि भिक्षाके लिए आये। उन्हें देख ग्लानियुक्त हो उसने उनकी निन्दा की ॥२८-२९॥ मुनिनिन्दाके बहुत भारी पापसे वह सात दिनके भीतर ही उदुम्बर कुष्ठसे पीड़ित हो गयी और इतनी अधिक पीड़ित हुई कि वह अग्निमें प्रवेश कर मर गयी ॥ ३० ॥ आर्तध्यानके साथ मरकर वह गधी हुई। उसपर नमक लादा जाता था। सो उसके भारसे मरकर वह मान कषायके दोषसे राजगृह नगरमें शूकरी हुई ॥३१॥ उस बेचारीको भी लोगोंने मार दिया जिससे मरकर वह गोष्ठ—गायोंके रहनेके स्थानमें कुत्ती हुई। एक दिन उस गोष्ठमें भयंकर दावाग्नि लग गयी जिससे वह कुत्ती उसी दावाग्निमें जल गयी ॥३२॥ और मरकर मण्डूकग्राममें रहनेवाले त्रिपद नामक धीवरकी मण्डूकी नामक स्त्रीसे पूतिगन्धिका नामक पुत्री हुई ॥३३॥ अपने पापके उदयसे माताने उसे छोड़ दिया अर्थात् उसकी माता मर गयी जिससे दादीने उसका पालन-पोषण किया। एक दिन इसके घरके उपवनमें वही समाधिगुप्त मुनिराज विहार करते हुए आये और वटवृक्षके नीचे विराजमान हो गये। रात्रिके समय शीतकी अधिकता देख पूतिगन्धाने उन मुनिराजको जालसे ढक दिया ॥ ३४ ॥ मुनिराज अवधिज्ञानरूपी नेत्रके धारक थे इसलिए उन्हें उसकी दशा देख दया आ गयी। उन्होंने उसे समझाया और उसके पूर्व भव सुनाये जिससे उसने धर्म धारण कर लिया ॥ ३५ ॥ एक बार वह पूतिगन्धा सोपारक नगर गयी। वहाँ आर्यिकाओंकी उपासना कर वह उन्हींके साथ आचाम्ल नामका तप करती हुई

सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्रकी गगनवल्लभा नामकी अतिशय प्रिय महादेवी हुई। सोलहवें स्वर्गमें स्त्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्यकी है सो वह उसी उत्कृष्ट स्थितिकी धारक हुई थी ॥३८॥ वहाँसे चय कर तू कुण्डिनपुरमें राजा भीष्मकी श्रीमती रानीसे रुक्मीकी बहन रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई है ॥३९॥ इस उत्तम पर्यायमें तू दीक्षा धारण कर उत्तम देव होगी और वहाँसे च्युत हो निर्ग्रन्थ तपश्चरण कर निश्चित ही मोक्ष प्राप्त करेगी ॥४०॥ अपने पूर्व भव सुनकर रुक्मिणी भयंकर संसारसे भयभीत हो गयी और अपने लिए निकट कालमें मोक्ष प्राप्त होगा यह जानकर बड़े हर्षसे उसने भगवान्‌को नमस्कार किया ॥४१॥

तदनन्तर कृष्णकी तीसरी पट्टरानी जाम्बवतीने श्री नेमिजिनेन्द्रसे अपने पूर्वभव पूछे सो संसारसे भयभीत समस्त प्राणियोंके समक्ष वे उसके पूर्वभव इस प्रकार कहने लगे ॥४२॥ जम्बूद्वीपकी पुष्कलावती देशमें एक वीतशोका नामकी नगरी थी। उसमें देविल नामका एक गृहस्थ रहता था। उसकी देवमती नामकी स्त्रीसे तू यशस्विनी नामकी पुत्री हुई थी ॥४३॥ यशस्विनी, गृहपति (गहोई) की लड़की थी और गृहपति (गहोई) के पुत्र सुमित्रके लिए दी गयी थी। परन्तु पतिके मर जानेपर वह बहुत दुःखी हुई ॥४४॥ जिनधर्मका उपदेश देनेवाले किसी जिनदेव नामक जैनने उसे उपदेश देकर शान्त किया परन्तु मोहके उदयसे वह सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं कर सकी ॥४५॥ वह पतिव्रता लौकिक दान तथा उपवास करती रही और उनके प्रभावसे मरकर नन्दन वनमें व्यन्तर देवकी मेरुनन्दना नामकी स्त्री हुई ॥४६॥ तीस हजार अस्सी वर्ष तक वहाँके भोग भोगकर वह चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण करती रही ॥४७॥ तदनन्तर इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें विजयपुर नगरके राजा बन्धुषेणकी बन्धुमती नामक स्त्रीसे बन्धुयशा नामकी कन्या हुई। बन्धुयशाने कन्या अवस्थामें ही श्रीमती नामक आर्यिकासे जिनदेव प्ररूपित प्रोषधव्रत धारण किया था इसलिए वह मरकर कुबेरकी स्वयंप्रभा नामकी स्त्री हुई। आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत हो जम्बूद्वीपकी पुण्डरीकिणी नामक विशालपुरीमें वज्रमुष्टिकी सुभद्रा स्त्रीसे सुमति नामकी पुत्री हुई। वहाँ उसने सुन्दरी नामक आर्यिकासे प्रेरित हो उनके समीप रत्नावली नामका तप किया जिसके प्रभावसे मरकर वह तेरह पल्यकी आयुकी धारक ब्रह्मेन्द्रकी प्रधान इन्द्राणी हुई। तदनन्तर वहाँसे भी च्युत होकर भरतक्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें जाम्बव नामक नगरके विद्याधर राजा जाम्बवकी जाम्बवती नामक रानीसे तू जाम्बवती नामकी पुत्री हुई ॥४८-५३॥ इस भवमें तू तपस्विनी होकर तप करेगी और स्वर्गका उत्तम देव होकर वहाँसे च्युत हो राजपुत्र होगी। तदनन्तर तपके द्वारा मोक्षको प्राप्त होगी ॥५४॥ इस प्रकार भगवान्‌के द्वारा अपने पूर्वभव कहे जानेपर जिसका सब संशय दूर हो गया था तथा जो शीलरूपी अलंकारसे सुशोभित थी ऐसी जाम्बवती रानी जिनेन्द्र देवको प्रणाम कर 'मैं संसारसे पार हो गयी' ऐसा मानती हुई सुखसे आसीन हुई ॥५५॥

तदनन्तर सुशीला नामक चौथी पट्टरानीने विनयपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्‌से अपने भवान्तर पूछे सो भगवान् सभासदोंके मनको आनन्द उत्पन्न करनेवाली दिव्यध्वनिसे उसके भवान्तर इस प्रकार वर्णन करने लगे—

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वार्धमें जो मेरु पर्वत है उससे पूर्वकी ओरके विदेह क्षेत्रमें एक मंगलावती नामका देश है। उसके रत्नसंचय नामक नगरमें किसी समय विश्वसेन राजा रहता था उसकी स्त्रीका नाम अनुन्धरी था। इसी राजाका एक सुमति नामका प्रसिद्ध मन्त्री था जो श्रावक धर्मका प्रतिपालक था ॥५६-५८॥ कदाचित् अयोध्याके राजा पद्मसेनने राजा विश्वसेनको युद्धमें प्राणरहित कर दिया जिससे उसकी स्त्री अनुन्धरी बहुत दुःखी हुई। सुमति मन्त्रीने उसे

धमका उपदेश दिया परन्तु मोहके कारण वह सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं हो सकी और आयुके अन्तमें मरकर विजयद्वारपर निवास करनेवाले विजय नामक व्यन्तर देवकी ज्वलनवेगा नामकी व्यन्तरी हुई ।।५९-६०।। दश हजार वर्ष तक वहाँके सुख भोगकर वह वहाँसे च्युत हुई और चिरकाल तक भयंकर संसार-सागरमें परिभ्रमण करती रही ।।६१।। तदनन्तर जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दक्षिण तटपर एक रम्य नामका सुन्दर क्षेत्र है । उसके महाधनसम्पन्न शालिग्राम नामक नगरमें एक यक्षिल नामका गृहपति रहता था। उसकी स्त्रीका नाम देवसेना था। ज्वलनवेगाका जीव इन्हीं दोनोंके एक पुत्री हुआ। वह पुत्री चूँकि यक्षकी आराधनासे प्राप्त हुई थी इसलिए उसका यक्षदेवी यही नाम प्रसिद्ध हो गया ।। ६२-६३।। किसी समय वह यक्षदेवी, यक्षगृहकी पूजाके लिए गयी थी। वहाँ उसने धर्मसेन गुरुके समीप बड़े गौरवसे धर्मका उपदेश सुना ।।६४।। किसी दिन उस भक्तिमती कन्याने उक्त मुनिके लिए आहार दान दिया और उसके फलस्वरूप पुण्यबन्ध बांधा ।।६५।। किसी समय वह यक्षदेवी सखियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए विमल नामक पर्वतपर गयी थी वहाँ अकाल वर्षासे पीड़ित होकर वह एक गुफामें घुस गयी ।।६६।। उस गुफामें पहलेसे सिंह बैठा था सो उस सिंहने देखते ही यक्षदेवीको खा लिया। यक्षदेवी अपना शरीर छोड़ हरिवर्ष क्षेत्रमें दो पल्यकी धारक आर्या हुई ।।६७।। वहाँसे चयकर वह ज्योतिष लोकमें एक पल्यकी आयुवाली देवी हुई। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें वीतशोका नामक नगरीके राजा अशोककी श्रीमती नामक रानीसे श्रीकान्ता नामकी पुत्री हुई ।।६८-६९।। श्री-कान्ताने कुमारी अवस्थामें ही जिनदत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर रत्नावली नामका तप किया और उसके फलस्वरूप वह माहेन्द्रस्वर्गके इन्द्रकी ग्यारह पल्यकी आयुवाली प्रिय देवी हुई। स्वर्गके सुख भोगकर वहाँसे च्युत हुई और सुराष्ट्र देशके गिरिनगरमें राष्ट्रवर्धन राजाकी सुज्येष्ठा नामक रानीसे तू सुसीमा नामकी पुत्री हुई है। अब तू तपकी शक्तिसे देव होगी और तदनन्तर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगी ।।७०-७२।। इस प्रकार अपने भव श्रवण कर तथा अपना संसार अत्यन्त निकट जानकर सुसीमा बहुत प्रसन्न हुई और उसने कृतकृत्य भगवान् नेमिजिनेन्द्र-को नमस्कार किया ।।७३।।

तदनन्तर लक्ष्मणा नामक पाँचवीं पट्टरानीने नमस्कार कर भगवान्से अपने पूर्वभव पूछे सो भगवान् उसके पूर्वभव कहने लगे। चूँकि समस्त तीर्थंकर भगवान् प्रश्नोंका उत्तर, निरूपण करते हैं इसलिए वे सर्वहितकारी कहलाते हैं ।।७४।। उन्होंने कहा कि इसी जम्बूद्वीपकी सीता नदीके उत्तर तटपर एक कच्छकावती नामका देश है। उसके अरिष्टपुर नगरमें किसी समय इन्द्रकी उपमाको धारण करनेवाला एक वासव नामका राजा रहता था। उसकी सुमित्रा नामकी वल्लभा थी। एक दिन वह अपनी वल्लभाके साथ, सहस्राम्र वनमें स्थित सागरसेन नामक मुनिराजकी वन्दना करनेके लिए गया ।।७५-७६।। राजा वासव, मुनिराजसे धर्मश्रवण कर विरक्त हो गया और वसुसेन नामक पुत्रको राज्यभार सौंपकर दीक्षित हो गया परन्तु पुत्रके मोहसे रानी सुमित्रा दीक्षा नहीं ले सकी ।।७७।।

कदाचित् पुत्रका भी वियोग हो गया अतः पति और पुत्रके वियोगजन्य तीव्र शोकसे उत्पन्न दुःखसे पीड़ित होकर वह मर गयी और मरकर भीलिनी पर्यायको प्राप्त हुई। एक दिन उस भीलिनीने अवधिज्ञानके धारक नन्दिभद्र नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिराजके दर्शन कर उनसे अपने पूर्वभव सुने। पूर्वभवोंको स्मरण कर उसने तीन दिनका अनशन किया और मरकर नारद नामक देवकी मेघमालिनी नामकी स्त्री हुई। वहाँसे च्युत होकर भरत क्षेत्रके दक्षिण तटपर चन्दनपुर नामक नगरमें राजा महेन्द्रकी अनुन्धरी रानीसे विद्याधरोंके मनको

हरण करनेवाली कनकमाला नामकी पुत्री हुई ॥७८-८१॥ कनकमाला स्वयंवरमें महेन्द्र नगरके राजा हरिवाहन विद्याधरको वरकर उसकी माननीय वल्लभा हो गयी ॥८२॥ किसी समय कनकमाला जिन-प्रतिमाओंकी पूजा करनेके लिए सिद्धकूट गयी थी। वहाँ चारण ऋद्धिके धारक मुनिराजसे अपने पूर्वभव श्रवण कर वह आर्यिका हो गयी और मुक्तावली नामका तपकर सनत्कुमार स्वर्गके इन्द्रकी प्रियदेवी हुई। वहाँ उसकी नौ पल्यकी आयु थी। सुख भोगकर वह वहाँसे च्युत हो यहाँ राजा श्लक्ष्णरोमकी कुरुमती रानीसे लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई है। तीसरे भवमें तेरी मुक्ति होगी। इस प्रकार भवान्तर कहे जानेपर लक्ष्मणा रानीने भगवान् नेमिजिनेन्द्रको नमस्कार किया ॥८३-८५॥

तदनन्तर कृष्णकी छठी पट्टरानी गान्धारीके द्वारा प्रश्न किये जानेपर भगवान् उसके पूर्वभव कहने लगे। उन्होंने कहा कि कोशल देशकी अयोध्या नगरीमें किसी समय रुद्रदत्त नामका राजा रहता था। उसकी विनयश्री नामकी रानी थी। उसने एक समय सिद्धार्थक नामक वनमें अपने पतिके साथ, श्रीधर नामक मुनिराजके लिए आहार दान दिया ॥८६-८७॥ दानके प्रभावसे मरनेके बाद वह उत्तरकुरुमें तीन पल्यकी आयुकी धारक आर्या हुई। उसके बाद पल्यके आठवें भाग बराबर आयुकी धारक चन्द्रमाकी प्रिया हुई ॥८८॥ तदनन्तर इसी विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके स्वामी राजा विद्युद्वेगकी विद्युन्मती नामक रानीसे महाकान्तिकी धारक विनयश्री नामकी कन्या हुई। यह कन्या गुणोंसे अत्यन्त प्रसिद्ध थी और नित्यालोक नगरके स्वामी राजा महेन्द्रविक्रमकी गुणवती स्त्री हुई। कदाचित् सुमेरु पर्वतपर चारण ऋद्धिके धारक युगल मुनियोंसे धर्म श्रवण कर राजा महेन्द्रविक्रम संसारसे विरक्त हो गया और उसने हरिवाहन नामक पुत्रको राज्य-कार्यमें नियुक्त कर दीक्षा धारण कर ली ॥८९-९१॥ विनयश्रीने भी संसारसे विरक्त हो सर्वभद्र नामक उपवास किया और उसके प्रभावसे वह पाँच पल्यकी स्थितिकी धारक सौधर्मेन्द्रकी देवी हुई ॥९२॥ अब तू स्वर्गसे च्युत होकर गान्धार देशकी पुष्कलावती नगरीमें राजा इन्द्रगिरिकी मेरुमती नामक रानीसे गान्धारी नामकी पुत्री हुई ॥९३॥ तू तीसरे भवमें मोक्ष प्राप्त करेगी। इस प्रकार अपने भवान्तरके कहे जानेपर गान्धारीने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया। तदनन्तर कृष्णकी सातवीं पट्टरानी गौरीने नमस्कार कर अपने पूर्वभव पूछे सो समस्त पदार्थोंको जाननेवाले भगवान् इस प्रकार उसके पूर्वभव कहने लगे ॥९४॥

इस भरत क्षेत्रके इभ्यपुर नगरमें किसी समय धनदेव नामका एक सेठ रहता था। उसकी यशस्विनी नामकी स्त्री थी। एक दिन यशस्विनी अपने महलकी छतपर खड़ी थी वहाँ उसने आकाशमें जाते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनि देखे ॥९५॥ उन्हें देखते उसे अपने समस्त पूर्वभवोंका स्मरण हो गया। उसे मालूम हो गया कि मैं धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मेरुकी पश्चिम दिशामें विद्यमान विदेह क्षेत्रके अन्तर्गत नन्दशोक नामक नगरमें आनन्द नामक सेठकी पत्नी थी। वहाँ मैंने अपने पतिके साथ, मितसागर नामक मुनिराजके लिए आहार दान दिया। जिसके फलस्वरूप मैंने हर्षपूर्वक देवोंके द्वारा किये हुए पंचाश्चर्य प्राप्त किये थे। कदाचित् हम दोनोंने आकाशसे पड़ता हुआ वर्षाका पानी पिया। वह पानी विष-सहित था इसलिए पतिके साथ मेरा मरण हो गया ॥९६-९८॥

मरकर मैं देवकुरुमें आर्या हुई। उसके बाद ऐशानेन्द्रकी प्रिया हुई और उसके बाद यहाँ यशस्विनी हुई हूँ। इस प्रकार जानकर संसारसे भयभीत होती हुई यशस्विनीने सुभद्र नामक मुनिराजको नमस्कार कर उनसे प्रोषधव्रत ग्रहण किया। तदनन्तर मरकर पाँच पल्यकी आयुकी धारक प्रथम स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणी हुई ॥९९-१००॥

वहांसे च्युत हो कौशाम्बी नगरीमें सुभद्र सेठकी सुमित्रा नामकी स्त्रीसे सदा धर्ममें बुद्धि लगानेवाली धर्ममति नामकी कन्या हुई ॥१०१॥ धर्ममतिने जिनमति आर्यिकाके पास जिनगुण नामका तप लेकर उपवास किये और उनके फलस्वरूप वह महाशुक्र स्वर्गके इन्द्रकी वल्लभा हुई ॥१०२॥ वहां उसकी इक्कीस पल्यकी आयु थी। वहांसे च्युत होकर अब तू वीतशोका नगरीमें राजा मेरुचन्द्रकी चन्द्रमति स्त्रीसे गौरी नामकी पुत्री हुई है ॥१०३॥ तीन भवमें तुझे मुक्तिकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार कहे जानेपर गौरीने नम्रीभूत होकर भगवान्‌को प्रणाम किया। तदनन्तर कृष्णकी आठवीं पट्टरानी पद्मावतीने भी अपने पूर्वभव पूछे जिसके उत्तरमें भगवान् उसके पूर्वभव इस प्रकार कहने लगे ॥१०४॥

इसी भरत क्षेत्रकी उज्जयिनी नगरीमें किसी समय अपराजित नामका राजा रहता था। उसकी स्त्री विजया थी और उन दोनोंके विनयश्री नामकी पुत्री थी ॥१०५॥ विनयश्री हस्तिना-पुरके राजा हरिषेण पतिको प्राप्त हुई थी अर्थात् उसका विवाह हस्तिनापुरके राजा हरिषेणके साथ हुआ था। एक दिन उसने पतिके साथ, वरदत्त मुनिराजके लिए आहार दान दिया ॥१०६॥ कदाचित् वह अपने पतिके साथ गर्भगृहमें शयन कर रही थी कि कालागुरुकी धूपसे उसका प्राणान्त हो गया। मरकर वह हैमवत क्षेत्रमें एक पल्यकी आयुवाली आर्या हुई। वहांके सुख भोगकर वह चन्द्रदेवकी चन्द्रप्रभा नामकी देवी हुई। वहाँ पल्यके आठवें भाग उसकी आयु थी। वहाँसे च्युत हो भरतक्षेत्रके मगध देश सम्बन्धी शालमलो खण्ड नामक ग्राममें देविला और जयदेव नामक दम्पतीके पद्मदेवी नामकी पुत्री हुई ॥१०७–१०९॥ एक समय उसने वरधर्म नामक आचार्यसे यह व्रत लिया कि मैं जीवन पर्यन्त अज्ञात फलका भक्षण नहीं करूंगी ॥११०॥ किसी एक दिन असमयमें चण्डबाण नामक शक्तिशाली भील शालमलीखण्ड ग्रामपर आक्रमण कर वहाँकी समस्त प्रजाको हर ले गया ॥१११॥ साथ ही पद्मदेवीको भी पकड़कर अपने कारागारमें ले गया। वह उसे अपनी स्त्री बनाना चाहता था परन्तु शीलवती पद्मदेवीने किसी नीतिसे उसका निराकरण कर दिया ॥११२॥ उसी समय राजगृहके राजा सिंहरथने हठपूर्वक उस भीलको मार डाला जिससे उसके बन्धनमें स्थित शालमलीखण्ड ग्रामकी समस्त जनता छूटकर शरणरहित वनमें इधर-उधर भ्रमण करने लगी ॥११३॥ मूढ़बुद्धि लोग दिशाभ्रान्ति होनेसे उस वनमें मृगोंकी भाँति भटक गये और भूखसे पीड़ित हो किंपाक फल खाकर दुःखसे मर गये ॥११४॥ पद्मदेवी अपने व्रतमें दृढ़ थी इसलिए उसने अज्ञात फल होनेसे उन फलोंको नहीं खाया और संन्यास मरण कर वह अन्तमें हैमवत क्षेत्रमें एक पल्यकी आयुवाली आर्या हुई ॥११५॥ तदनन्तर स्वयंभूरमण द्वीपके स्वयम्प्रभ नामक पर्वतपर स्वयम्प्रभ नामक व्यन्तर देवकी स्वयम्प्रभा नामकी देवी हुई ॥११६॥ वहांसे आकर भरत क्षेत्रसम्बन्धी जयन्त नगरके स्वामी राजा श्रीधरकी श्रीमती नामक रानीसे विमलश्री नामकी पुत्री हुई ॥११७॥ विमलश्री, भद्रिलपुरके राजा मेघनादके लिए दी गयी। उसके संयोगसे उसने पृथिवीपर मेघघोष नामसे प्रसिद्ध पुत्र प्राप्त किया ॥११८॥ कदाचित् पतिका स्वर्गवास हो जानेपर उसने पद्मावती आर्यिकाके समीप दीक्षा लेकर आचाम्लवर्धन नामका तप तपा और उसके प्रभावसे वह स्वर्ग गयी ॥११९॥ स्वर्गमें वह सहस्रार स्वर्गके इन्द्रकी प्रधान देवी हुई और पैंतालीस पल्य प्रमाण वहांका काल व्यतीत करती रही ॥१२०॥ अब वहाँसे च्युत होकर तू अरिष्टपुरके राजा स्वर्ण-नाभकी श्रीमती रानीसे पद्मावती नामकी पुत्री हुई है ॥१२१॥ तपकर तू स्वर्गमें देव होगी और वहांसे च्युत हो तपके सामर्थ्यसे मोक्ष प्राप्त करेगी। इस प्रकार कहे जानेपर अपने भवान्तर सुन पद्मावतीने नेमि जिनेन्द्रको नमस्कार किया ॥१२२॥

रोहिणी, देवकी आदि देवियों और अन्य यादवोंने भी अपने-अपने भव पूछे तथा श्रवण

कर वे संसारसे भयभीत हुए ॥१२३॥ इस प्रकार सुर, असुर तथा यादव लोग जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति कर तथा उन्हें नमस्कार कर अपने-अपने स्थानपर चले जाते थे और पूजाके लिए बार-बार आ जाते थे ॥ १२४ ॥ तदनन्तर नेमि जिनेन्द्रने भव्य जीवोंके हितके लिए पुन: अनेक देशोंमें विहार किया सो ठीक ही है क्योंकि उनकी चर्या सूर्यके समान जगत्‌के हितके लिए ही थी ॥१२५॥

इधर देवकीने कृष्णके पश्चात् गजकुमार नामका एक दूसरा पुत्र उत्पन्न किया जो वसुदेवके समान कान्तिका धारक था, श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय था एवं अन्यन्त शुभ था ॥१२६॥ जब गजकुमार कन्याओंके मनको हरण करनेवाले यौवनको प्राप्त हुआ तब कृष्णने उत्तमोत्तम राजकुमारियोंके साथ उसका विवाह कराया ॥१२७॥ सोमशर्मा ब्राह्मणकी एक सोमा नामकी अत्यन्त सुन्दर कन्या थी जो उसकी क्षत्रिया स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी। श्रीकृष्णने गजकुमारके लिए उसका भी वरण किया ॥१२८॥

जब उसके विवाहके प्रारम्भका समय आया तब समस्त यादव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी समय विहार करते हुए भगवान् नेमिनाथ द्वारिकापुरी आये ॥१२९॥ जब भगवान् आकर गिरनार पर्वतपर विराजमान हो गये तब समस्त यादव अनेक मंगल द्रव्य लिये हुए उनकी वन्दना करनेके लिए नगरसे बाहर निकले ॥१३०॥ द्वारिकामें होनेवाले इस आटोप (हलचल) को देखकर गजकुमारने किसी कंचुकीसे पूछा और प्रारम्भसे ही जिनेन्द्र भगवान्‌की समस्त हितकारी चेष्टाको जान लिया ॥१३१॥ तदनन्तर गजकुमार भी हर्षसे रोमांच धारण करता हुआ सूर्यके समान वर्णवाले रथपर सवार हो जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना करनेके लिए गया ॥१३२॥ वहाँ आर्हन्त्य लक्ष्मीसे युक्त तथा बारह सभाओंसे घिरे हुए जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर गजकुमार श्रीकृष्णके साथ मनुष्योंकी सभामें बैठ गया ॥१३३॥ भगवान् नेमि जिनेन्द्रने, मनुष्य, सुर तथा असुरोंकी उस सभामें उस धर्मका निरूपण किया जो संसार-सागरसे पार होनेका एकमात्र उपाय था एवं जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्ररूपी रत्नत्रयसे उज्ज्वल था ॥१३४॥ अवसर आनेपर अत्यन्त आदरसे पूर्ण इच्छाके धारक श्रीकृष्णने जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर श्रोताओंके हितकी इच्छासे तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, अर्ध चक्रवर्तियों, बलभद्रों और प्रतिनारायणोंकी उत्पत्ति तथा तीर्थंकरोंके अन्तरालको पूछा ॥१३५–१३६॥

तदनन्तर भगवान् प्रश्नके अनुसार श्रीकृष्णके लिए त्रेशठ शलाकापुरुषोंमें प्रमुख चौबीस तीर्थंकरोंकी उत्पत्ति इस प्रकार कहने लगे ॥ १३७ ॥ उन्होंने कहा कि इस युगमें सबसे पहले तीर्थंकर वृषभनाथ हुए। उनके पश्चात् क्रमसे अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयोनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तजित्, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, शल्यरूपी कुशको निकालनेवाले मल्लिनाथ, मुनियोंके स्वामी मुनि सुव्रतनाथ और नमिनाथ तीर्थंकर हुए हैं। ये सभी निर्वाणको प्राप्त हो चुके हैं। बाईसवाँ तीर्थंकर मैं नेमिनाथ अभी वर्तमान हूँ और पार्श्वनाथ तथा महावीर ये दो तीर्थंकर आगे होंगे ॥१३८–१४१॥ इन तीर्थंकरोंमें-से आठ तीर्थंकर पूर्वभवमें जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्रमें, पाँच भरतक्षेत्रमें, सात धातकी-खण्डमें और चार पुष्करार्धमें उत्पन्न हुए थे ॥१४२॥ जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न हुए आठ तीर्थंकरोंका विवरण इस प्रकार है— वृषभनाथ और शान्तिनाथ पूर्वभवमें जम्बूद्वीपसम्बन्धी विदेहक्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीमें, अजितनाथ सुसीमा नगरीमें, अरनाथ क्षेमपुरीमें, कुन्थुनाथ, सम्भवनाथ और अभिनन्दननाथ रत्नसंचय नगरमें और मल्लिनाथ वीतशोका नगरीमें उत्पन्न हुए थे ॥१४३–१४४॥ भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए पाँच तीर्थंकर इस प्रकार हैं—मुनि सुव्रतनाथ चम्पापुरीमें, नमिनाथ कौशाम्बी नगरीमें,

नेमिनाथ हस्तिनापुरमें, पार्श्वनाथ अयोध्यामें और महावीर छत्राकारपुरमें पूर्वभवमें उत्पन्न हुए थे ॥१४५–१४६॥

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वार्धमें जन्म लेनेवाले सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ इन चार तीर्थंकरोंकी पूर्वभवकी नगरियाँ क्रमसे अखण्ड लक्ष्मीकी धारक पुण्डरीकिणीपुरी, सुसीमापुरी, क्षेमपुरी और रत्नसंचयपुरी थीं। सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयोनाथ और वासुपूज्य इन चार तीर्थंकरोंकी पूर्व जन्मकी नगरियाँ क्रमसे पूर्व पुष्करार्धसम्बन्धी पुण्डरीकिणी, सुसीमा, क्षेमपुरी और रत्नसंचयपुरी थीं ॥१४७–१४८॥ अनन्तजित् (अनन्तनाथ) भगवान् पूर्वभवमें धातकीखण्ड द्वीपके पश्चिम ऐरावत क्षेत्र-सम्बन्धी अरिष्टपुर नगरमें उत्पन्न हुए थे ॥१४९॥ विमलनाथ पूर्वार्धसम्बन्धी भरत-क्षेत्रके महापुर नगरमें और धर्मनाथ भद्रिलपुर नगरमें उत्पन्न हुए थे। इन तीर्थंकरोंके पूर्वभवके नाम इस प्रकार हैं—१. वज्रनाभि, २. विमल, ३. विपुलवाहन, ४. महाबल, ५. अतिबल, ६. अपराजित, ७. नन्दिषेण, ८. पद्म, ९. महापद्म, १०. पद्मगुल्म, ११. नलिनगुल्म, १२. पद्मोत्तर, १३. पद्मासन, १४. पद्म, १५. दशरथ, १६. मेघरथ, १७. सिंहरथ, १८. धनपति, १९. वैश्रवण, २०. श्रीधर्म, २१ सिद्धार्थ, २२. सुप्रतिष्ठ, २३. आनन्द और २४. नन्दन ॥१५०–१५५॥ इनमें भगवान् वृषभनाथ पूर्वभवमें चक्रवर्ती तथा चौदह पूर्वोंके धारक थे और शेष तीर्थंकर महामण्डलेश्वर और ग्यारह अंगके वेत्ता थे। उक्त सभी तीर्थंकर पूर्वभवमें अपने शरीरोंकी अपेक्षा सुवर्णके समान कान्तिवाले थे ॥१५६॥ सभी तीर्थंकरोंने पूर्वभवमें सिंहनिष्क्रीडित तपकर एक महीनेके उपवासके साथ प्रायोपगमन संन्यास धारण किया था और सभी यथायोग्य स्वर्गगामी थे—अपनी-अपनी साधनाके अनुसार स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए थे ॥१५७॥ तीर्थंकरोंके पूर्व जन्मके गुरु क्रमसे १. वज्रसेन, २. अरिन्दम, ३. स्वयम्प्रभ, ४. विमलवाहन, ५. सीमन्धर, ६. पिहितास्रव, ७. अरिन्दम, ८. युगन्धर, ९. सबका हित करनेवाले सर्वजनानन्द, १०. उभयानन्द, ११. वज्रदत्त, १२. वज्रनाभि, १३. सर्वगुप्त, १४. त्रिगुप्त, १५. चित्तरक्ष, १६. निर्मल आचारसे सहित माननीय विमलवाहन, १७. घनरथ, १८. संवरसे सहित संवर, १९. तीन लोकके द्वारा स्तुति करनेके योग्य वरधर्म, २०. सुनन्द, २१. नन्द, २२. व्यतीतशोक, २३. दामर और २४. प्रोष्ठिल थे ॥१५८–१६३॥ वृषभनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ और कुन्थुनाथ ये चार तीर्थंकर सर्वार्थसिद्धिसे, अभिनन्दन विजय विमानसे, चन्द्रप्रभ और सुमतिनाथ वैजयन्त विमानसे, नेमि और अरनाथ जयन्त विमानसे, नमि और मल्लिनाथ अपराजित विमानसे, पुष्पदन्त आरण स्वर्गसे, शीतलनाथ अच्युत स्वर्गसे, श्रेयोनाथ, अनन्तनाथ और महावीर पुष्पोत्तर विमानसे, विमलनाथ, पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथ सहस्रार स्वर्गसे, सम्भवनाथ, सुपार्श्वनाथ और पद्मप्रभ क्रमशः अधोग्रैवेयक, मध्यग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकसे तथा वासुपूज्य महाशुक्र स्वर्गसे चयकर भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार ऋषभादि तीर्थंकरोंके पूर्वभवके स्वर्ग कहे जाते हैं ॥१६४–१६८॥

भगवान् वृषभनाथ चैत्र कृष्ण नवमीके दिन उत्पन्न हुए थे। अजितनाथ माघ शुक्ल नवमीके दिन, सम्भवनाथ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमाके दिन, अभिनन्दननाथ माघ शुक्ल द्वादशीके दिन, सुमतिनाथ श्रावण शुक्ल एकादशीके दिन, पद्मप्रभ कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीके दिन, सुपार्श्वनाथ ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीके दिन, चन्द्रप्रभ पौष कृष्ण एकादशीके दिन, सुविधिनाथ मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदाके दिन, शीतलनाथ माघ कृष्ण द्वादशीके दिन, श्रेयोनाथ फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन, वासुपूज्य फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके दिन, निर्मल आत्माके धारक विमलनाथ माघ शुक्ल चतुर्दशीके दिन, अनन्तनाथ ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशीके दिन, धर्मनाथ माघ शुक्ल त्रयोदशीके दिन,

शान्तिके करनेवाले शान्तिनाथ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन, कुन्थुनाथ वैशाख शुक्ल प्रतिपदाके दिन, अरनाथ मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशीके दिन, मल्लिनाथ मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीके दिन, सुव्रत-नाथ आसौज शुक्ल द्वादशीके दिन, नमिनाथ आषाढ़ कृष्ण दशमीके दिन और नेमिनाथ वैशाख शुक्ल त्रयोदशीके दिन उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार पार्श्वनाथ पौष कृष्ण एकादशीको और महा-वीर चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको अपने जन्मसे अलंकृत करते हुए उत्पन्न होंगे ॥१६९-१८०॥ अब चौबीस तीर्थंकरोंके माता-पिता, जन्मनक्षत्र, जन्मभूमि, चैत्यवृक्ष और निर्वाणभूमिको कहते हैं सो ज्ञात करो ॥१८१॥

जिनकी जन्मनगरी विनीता—अयोध्या, माता मरुदेवी, पिता नाभि, चैत्यवृक्ष वट, निर्वाण-भूमि कैलास और जन्मनक्षत्र उत्तराषाढ़ था। वे वृषभनाथ भगवान् मनुष्योंमें अत्यन्त श्रेष्ठ थे ॥१८२॥ जिनकी जन्मनगरी अयोध्या, माता विजया, पिता राजा जितशत्रु, निर्वाणक्षेत्र सम्मे-दाचल, जन्म नक्षत्र रोहिणी और चैत्यवृक्ष सप्तपर्ण था, वे अजितनाथ भगवान् सबके हर्षके लिए हों ॥१८३॥ श्रावस्ती नगरी, सेना माता, जितारि पिता, शाल चैत्यवृक्ष, ज्येष्ठा जन्मनक्षत्र, सम्मेदाचल निर्वाणक्षेत्र और सम्भवनाथ जिनेन्द्र ये सब तुम्हारे पापोंको पवित्र करें ॥ १८४ ॥ चैत्यवृक्ष सरल, पिता संवर, माता सिद्धार्था, अयोध्या नगरी, पुनर्वसु नक्षत्र, अभिनन्दन जिनेन्द्र और सम्मेदगिरि निर्वाणक्षेत्र ये सज्जनोंके आनन्दके लिए हों ॥१८५॥ मेघप्रभ पिता, मघा नक्षत्र, अयोध्या नगरी, प्रियंगु वृक्ष, सुमंगला माता, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र और सुमति जिनेन्द्र ये सब तुम्हें सुमति—सद्बुद्धि प्रदान करें ॥१८६॥ कौशाम्बी नगरी, धरण पिता, चित्रा नक्षत्र, सुसीमा माता, पद्मप्रभ जिनेन्द्र, प्रियंगु वृक्ष और सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हारे लिए मंगलरूप हों ॥१८७॥ पृथिवी माता, सुप्रतिष्ठ पिता, काशी नगरी, सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र, विशाखा नक्षत्र, शिरीष वृक्ष और सुपार्श्व जिनेन्द्र ये सब तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों ॥१८८॥ चन्द्रपुरी नगरी, चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र, नागवृक्ष, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र, अनुराधा नक्षत्र, महा-सेन पिता और लक्ष्मणा माता ये सब सज्जनोंके लिए वन्दना करने योग्य हैं ॥१८९॥ काकन्दी नगरी, पुष्पदन्त भगवान्, रामा माता, सुग्रीव पिता, मूल नक्षत्र, शालि वृक्ष और सम्मेदशिखर पर्वत ये सब तुम्हारे वैभवके लिए हों ॥१९०॥ भद्रिला पुरी, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, प्लक्ष वृक्ष, दृढरथ राजा पिता, सुनन्दा माता, शीतलनाथ जिनेन्द्र और सम्मेदगिरि निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हारा हित चाहनेवाले हों ॥१९१॥ विष्णुश्री माता, विष्णुराज पिता, सिंहनाद पुर, श्रवण नक्षत्र, श्रेयांस जिनेन्द्र, तेंदूका वृक्ष और सम्मेदशिखर पर्वत ये सब तुम्हें सुख प्रदान करें ॥१९२॥ जन्मभूमि तथा निर्वाणभूमि चम्पानगरी, वासुपूज्य जिनेन्द्र, जया माता, चैत्यवृक्ष पाटला, वसुपूज्य पिता और शतभिषा नक्षत्र ये सब पूजनीय हैं ॥१९३॥ शर्मा माता, कृतवर्मा पिता, जामुन चैत्यवृक्ष, उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र, काम्पिल्य नगरी, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र और श्री विमलनाथ भगवान् ये सब तुम्हारे शल्यको दूर करें ॥ १९४ ॥ अयोध्या नगरी, सिंहसेन पिता, रेवती नक्षत्र, पीपल चैत्यवृक्ष, सर्वयशा माता, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र और अनन्तनाथ जिनेन्द्र ये सदा तुम्हें सद्-बुद्धि प्रदान करें ॥ १९५ ॥ धर्मनाथ जिनेन्द्र, दधिपर्ण चैत्य वृक्ष, भानुराज पिता, सुव्रता माता, पुष्य नक्षत्र, रत्नपुर नगर और सम्मेदशिखर सिद्धिक्षेत्र ये सब तुम्हें धर्मबुद्धि देवें ॥ १९६ ॥ ऐरा माता, विश्वसेन पिता, भरणी नक्षत्र, हस्तिनापुर नगर, नन्दी चैत्यवृक्ष, शान्तिनाथ जिनेन्द्र और सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हें शान्ति प्रदान करें ॥ १९७ ॥ सम्मेद-शिखर निर्वाणक्षेत्र, हस्तिनापुर नगर, सूर्य पिता, श्रीमती माता, कृत्तिका नक्षत्र, तिलक वृक्ष और कुन्थुनाथ भगवान् ये तुम्हारे पापोंको नष्ट करें ॥१९८॥ आम्र वृक्ष, हस्तिनापुर नगर, मित्रा माता, सुदर्शन राजा पिता, सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र, रोहिणी नक्षत्र और अरनाथ जिनेन्द्र ये

सब तुम्हारे पापको खण्डित करें ॥१९९॥ मिथिला नगरी, रक्षिता माता, कुम्भ पिता, मल्लिनाथ जिनेन्द्र, अश्विनी नक्षत्र, अशोक वृक्ष और सम्मेद शिखर निर्वाण क्षेत्र ये सब तुम्हारे अशोक—शोक दूर करनेके लिए हों ॥२००॥ पद्मावती माता, सुमित्र पिता, कुशाग्र नगर, चम्पक वृक्ष, श्रवण नक्षत्र और सम्मेद शिखर पर्वत ये सब तुम्हारे हर्षके लिए हों ॥२०१॥ मिथिला नगरी, विजय पिता, वप्रा माता, वकुल वृक्ष, नमिनाथ जिनेन्द्र, अश्विनी नक्षत्र और सम्मेद शिखर पर्वत महामानी मनुष्यको आपके समक्ष नम्रीभूत करें ॥२०२॥ नेमिनाथ भगवान्, सूर्यपुर नगर, चित्रा नक्षत्र, समुद्रविजय पिता, शिवा माता, ऊर्जयन्त पर्वत और मेषशृंग (मेढ़ासिंगी) वृक्ष ये सब तुम्हारे लिए जय प्रदान करें ॥२०३॥ वाराणसी नगरी, वर्मा माता, विशाखा नक्षत्र, धव चैत्यवृक्ष, अश्वसेन राजा पिता, पार्श्वनाथ जिनेन्द्र और सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हारे आनन्दके लिए हों ॥२०४॥ शाल वृक्ष, कुण्डपुर नगर, वीर जिनेन्द्र, सिद्धार्थ पिता, प्रियकारिणी माता, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, और पावापुरी निर्वाणक्षेत्र ये सब सदा तुम्हारे पापोंको नष्ट करें ॥२०५॥

भगवान् महावीरका चैत्यवृक्ष बत्तीस धनुष ऊँचा होगा और शेष तीर्थंकरोंके चैत्यवृक्षोंकी ऊँचाई उनके शरीरकी ऊँचाईसे बारहगुनी मानी गयी है ॥२०६॥ सुपार्श्वनाथ भगवान् अनुराधा नक्षत्रमें, चन्द्रप्रभ ज्येष्ठा नक्षत्रमें, श्रेयोनाथ धनिष्ठा नक्षत्रमें, वासुपूज्य अश्विनी नक्षत्रमें, मल्लि जिनेन्द्र भरणी नक्षत्रमें, महावीर स्वाति नक्षत्रमें निर्वाणको प्राप्त हुए हैं और शेष तीर्थंकरोंका निर्वाण अपने-अपने जन्म नक्षत्रोंमें हो हुआ है ॥२०७-२०८॥ शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ये तीन तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती हुए तथा शेष सब तीर्थंकर सामान्य राजा हुए ॥२०९॥ चन्द्रप्रभ भगवान् चन्द्रमाके समान आभावाले, सुविधिनाथ शंखके समान कान्तिके धारक, सुपार्श्वनाथ प्रियंगुवृक्षकी मंजरीके समूहके समान हरितवर्ण, धरणेन्द्रके द्वारा स्तुत श्रीमान् पार्श्वजिनेन्द्र मेघके समान श्यामल शरीर, पद्मप्रभ जिनराज पद्मगर्भके समान लालवर्ण, वासुपूज्य जिनेन्द्र रक्त पलाश पुष्पके समान लालवर्ण, मुनियोंके स्वामी मुनिसुव्रतनाथ नीलगिरि अथवा अंजनगिरिके समान नीलवर्ण, नेमिनाथ नीलकण्ठ मयूरके सुन्दर कण्ठके समान नीलवर्ण और शेष जिनेन्द्र तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिवाले कहे गये हैं ॥२१०–२१३॥ वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान इन पाँच तीर्थंकरोंने कुमारकालमें ही दीक्षा धारण की थी और शेष तीर्थंकरोंने राजा होनेके बाद दीक्षा धारण की थो ॥२१४॥

भगवान् वृषभदेवका दीक्षाकल्याणक विनीतामें, नेमिनाथका द्वारवतीमें और शेष तीर्थंकरोंका अपनी-अपनी जन्मभूमिमें हुआ था ॥२१५॥ सुमतिनाथ और मल्लिनाथने भोजन करनेके बाद दीक्षा धारण की थी तथा दीक्षाके बाद तीन दिनका उपवास लिया था। पार्श्वनाथ तथा वासुपूज्य भगवान्ने दीक्षाके बाद एक दिनका उपवास धारण किया था और शेष तीर्थंकरोंने दो दिनका उपवास लिया था*। श्रेयोनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरोंने दिनके पूर्वाह्णकालमें और अन्य तीर्थंकरोंने अपराह्ण कालमें दीक्षा धारण की थी। भगवान् महावीरने ज्ञातृवनमें, वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यानमें, वृषभदेवने सिद्धार्थ वनमें, धर्मनाथने वप्रका स्थानमें, मुनि सुव्रतनाथने नीलगुहाके समीप, पार्श्वनाथने तापसोंके तपोवनके समीप मनोरम नामक उद्यानमें और शेष तीर्थंकरोंने सहस्राम्रवनको आदि लेकर नगरके उद्यानोंमें दीक्षा धारण की थी ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥२१६–२२०॥ १ सुदर्शना, २ सुप्रभा, ३ सिद्धार्थ, ४ अर्थसिद्धा, ५ अभयंकरी, ६ निवृत्तिकरी, ७ सुमनोरमा, ८ मनोहरा, ९ सूर्यप्रभा, १० शुक्रप्रभा, ११ विमलप्रभा, १२ पुष्पाभा, १३ देवदत्ता, १४ सागरपत्रिका, १५ नागदत्ता, १६ सिद्धार्थसिद्धिका, १७ विजया, १८ वैजयन्तो, १९ जयन्ता, २० अपराजिता, २१ उत्तर-

कुरु, २२ देवकुरु, २३ विमला और २४ चन्द्राभा ये क्रमसे ऋषभादि तीर्थंकरोंकी शिविका—पालकियोंके नाम हैं ॥२२१–२२५॥

चैत्र कृष्ण नवमीको भगवान् वृषभदेवकी, वैशाख कृष्ण नवमीको मुनिसुव्रतनाथकी, वैशाख सुदी प्रतिपदाके दिन कुन्थुनाथकी, वैशाख सुदी नवमीके दिन सुमतिनाथकी, ज्येष्ठ-कृष्ण द्वादशीके दिन अनन्तनाथ जिनेन्द्रकी, ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीके दिन शान्तिनाथकी, ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशीके दिन सुपार्श्व जिनेन्द्रकी, आषाढ़ कृष्ण दशमीके दिन नमिनाथकी, सावन सुदी चतुर्थीको नेमिनाथकी, कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको पद्मप्रभकी, मार्गशीर्ष कृष्ण दशमीको सुमति-नाथकी, मार्गशीर्ष सुदी प्रतिपदाके दिन पुष्पदन्त जिनेन्द्रकी, मार्गशीर्ष सुदी दशमीको अरनाथ-की, मार्गशीर्ष सुदी पूर्णिमाको सम्भवनाथकी, मार्गशीर्ष सुदी एकादशीको मल्लिनाथकी, पौष-कृष्ण एकादशीको चन्दप्रभ और पार्श्वनाथकी, माघ कृष्ण द्वादशीको शीतलनाथकी, माघ शुक्ल चतुर्थीको विमलनाथकी, माघ शुक्ल नवमीको अजितनाथकी, माघ शुक्ल द्वादशीको अभिनन्दननाथकी, माघ शुक्ल त्रयोदशीको धर्मनाथकी, फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीके दिन श्रेयांस-नाथकी और फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके दिन वासुपूज्य भगवान्‌की दीक्षा हुई थी ॥२२६-२३६॥ श्री आदि जिनेन्द्रकी प्रथम पारणा एक वर्षमें [मल्लिनाथ और पार्श्वनाथकी चौथे दिन] तथा शेष तीर्थंकरोंकी तीसरे दिन हुई थी। भावार्थ—आदि जिनेन्द्रने छह माहका योग लिया था और छह माह विधि न मिलनेसे भ्रमण करते रहे इसलिए एक वर्ष बाद उन्हें आहार मिला। मल्लिनाथ और पार्श्वनाथने दीक्षाके समय तीन दिनके उपवासका नियम लिया था इसलिए उन्हें चौथे दिन आहार मिला और शेष तीर्थंकरोंने दो दिनका उपवास किया था ॥ २३७ ॥ श्री आदिनाथ भगवान्ने पारणाके दिन उत्तम इक्षुरसको पवित्र किया था और शेष तीर्थंकरोंने लालसासे रहित हो गो-दुग्धके द्वारा निर्मित खीरके द्वारा आहार किया था ॥ २३८ ॥ १ श्री-सुन्दर हस्तिनापुर, २ शुभ अयोध्या, ३ श्रावस्ती, ४ विनीता, ५ विजयपुर, ६ मंगलपुर, ७ पाटली-खण्ड, ८ पद्मखण्डपुर, ९ श्वेतपुर, १० अरिष्टपुर, ११ सिद्धार्थपुर, १२ महापुर, १३ धान्यवटपुर, १४ वर्धमानपुर, १५ सोमनसपुर, १६ मन्दरपुर, १७ हस्तिनापुर, १८ चक्रपुर, १९ मिथिला, २० राजगृह, २१ वीरपुर, २२ द्वारवती, २३ काम्यकृति और २४ कुण्डपुर ये यथाक्रमसे वृषभ आदि चौबीस तीर्थंकरोंके प्रथम पारणाके दिन प्रसिद्ध हैं ॥२३९–२४४॥ १ राजा श्रेयांस, २ ब्रह्म-दत्त, ३ सम्पत्तिके द्वारा सुरेन्द्रकी समानता करनेवाला राजा सुरेन्द्रदत्त, ४ इन्द्रदत्त, ५ पद्मक, ६ सोमदत्त, ७ महादत्त, ८ सोमदेव, ९ पुष्पक, १० पुनर्वसु, ११ सुनन्द, १२ जय, १३ विशाख, १४ धर्मसिंह, १५ सुमित्र, १६ धर्ममित्र, १७ अपराजित, १८ नन्दिषेण, १९ वृषभदत्त, २० उत्तम नीतिका धारक दत्त, २१ वरदत्त, २२ नृपति, २३ धन्य और २४ बकुल ये वृषभादि तीर्थंकरोंको प्रथम पारणाओंके समय दान देनेवाले स्मरण किये गये हैं ॥२४५–२४८॥ समस्त तीर्थंकरोंकी आदि पारणाओं और वर्धमान स्वामीकी सभी पारणाओंमें नियमसे रत्नवृष्टि हुआ करती थी। वह रत्नवृष्टि उत्कृष्टतासे साढ़े बारह करोड़ और जघन्य रूपसे साढ़े बारह लाख प्रमाण होती थी ॥२४९–२५०॥ इन दाताओंमें आदिके दो दाता और अन्तके दो दाता श्यामवर्णके थे और शेष सभी दाता तपाये हुए सुवर्णके समान वर्णवाले थे ॥२५१॥ इनमें कितने ही दाता तो तप-श्चरण कर उसी जन्मसे मोक्ष चले गये और कितने ही जिनेन्द्र भगवान्के मोक्ष जानेके बाद तीसरे भवमें मोक्ष गये ॥२५२॥

वृषभनाथ, मल्लिनाथ, और पार्श्वनाथको तेलाके बाद, वासुपूज्यको एक उपवासके बाद और शेष तीर्थंकरोंको वेलाके बाद केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी ॥ २५३ ॥ वृषभनाथ

भगवान्‌को पूर्वताल नगरके शकटामुख वनमें, नेमिनाथको गिरिनार पर्वतपर, पार्श्वनाथ भगवान्‌को आश्रमके समीप, महावीर भगवान्‌को ऋजुकूला नदीके तटपर और शेष तीर्थंकरोंको अपने-अपने नगरके उद्यानमें ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥२५४-२५५॥ वृषभनाथ, श्रेयांसनाथ, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ भगवान्‌को पूर्वाह्ण कालमें तथा शेष तीर्थंकरोंको अपराह्ण कालमें केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी ॥२५६॥

फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन वृषभनाथ, फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन मल्लिनाथ, फाल्गुन कृष्ण षष्ठीके दिन मुनिसुव्रतनाथ, फाल्गुन कृष्ण सप्तमीके दिन सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ, चैत्र कृष्ण चतुर्थीके दिन पार्श्वनाथ, चैत्र कृष्ण अमावास्याके दिन अनन्त जिनेन्द्र, चैत्र शुक्ल तृतीया-के दिन नमिनाथ और कुन्थुनाथ, चैत्रशुक्ल दशमीके दिन सुमतिनाथ और पद्मप्रभ भगवान्, वैशाख शुक्ल दशमीके दिन महावीर, आश्विन शुक्ल प्रतिपदाको नेमिनाथ, कार्तिक कृष्ण पंचमी-को सम्भवनाथ, कार्तिक शुक्ल तृतीयाको सुविधिनाथ, कार्तिक शुक्ल द्वादशीको अरनाथ, पौष कृष्ण चतुर्दशीको शीतलनाथ, पौष कृष्ण दशमीको विमलनाथ, पौष शुक्ल एकादशीको शान्ति-नाथ, पौष शुक्ल चतुर्दशीको अजितनाथ, पौष शुक्ल पूर्णिमाको अभिनन्दन और धर्मनाथ, माघ-कृष्ण अमावसको श्रेयांसनाथ और माघ शुक्ल द्वितीयाको वासुपूज्य भगवान् केवलज्ञानको प्राप्त हुए थे ॥२५७-२६५॥

माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन वृषभनाथका, फाल्गुन कृष्ण चतुर्थीके दिन पद्मप्रभका, फाल्गुन कृष्ण षष्ठीके दिन सुपार्श्वनाथका, फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन मुनिसुव्रतनाथका, फाल्गुन शुक्ल पंचमीके दिन मल्लिनाथ और श्री वासुपूज्यका निर्वाण हुआ है। चैत्रकी अमावास्या निर्वाणको प्राप्त हुए अनन्तनाथ और अरनाथ जिनेन्द्रके द्वारा पवित्र की गयी है। चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन अजितनाथ, चैत्र शुक्ल षष्ठीके दिन सम्भवनाथ और चैत्र शुक्ल दशमीके दिन इन्द्रोंके समूहसे स्तुत सुमतिनाथ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं ॥२६६-२६९॥ वैशाख कृष्ण चतुर्दशीको नमिनाथ भगवान्, वैशाख शुक्ल प्रतिपदाको कुन्थुनाथने और वैशाख शुक्ल सप्तमीको अभिनन्दननाथने अपने निर्वाणसे पवित्र किया है ॥२७०॥ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी शान्तिनाथ भगवान्‌की, ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी धर्म-नाथकी, आषाढ़ कृष्ण अष्टमी विमलनाथकी और आषाढ़ शुक्ल अष्टमी नेमिनाथ भगवान्‌की निर्वाणतिथि मानी जाती है ॥२७१-२७२॥ श्रावण शुक्ल सप्तमीको पार्श्वनाथका और श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको धनिष्ठा नक्षत्रमें श्रेयांसनाथका निर्वाण हुआ है ॥२७३॥

भाद्रपद शुक्ल सप्तमीको चन्द्रप्रभ, भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको पुष्पदन्त और आश्विन शुक्ल पंचमीको शीतलनाथ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं एवं कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको श्री भगवान् महावीरका निर्वाण निश्चित है ॥२७४-२७५॥

वृषभनाथ, अजितनाथ, श्रेयांसनाथ, शीतलनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ ये पूर्वाह्णकालमें, सम्भवनाथ, पद्मप्रभ, संसार-भ्रमणका अन्त करनेवाले पुष्पदन्त और वासुपूज्य ये अपराह्णकालमें सिद्ध हुए हैं ॥२७६-२७७॥ विमलनाथ, अनन्तनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथकी सायंकालमें मुक्ति जानना चाहिए ॥२७८॥

और अष्ट प्रकारके कर्मोको नष्ट करनेवाले धर्मनाथ, अरनाथ, नमिनाथ और महावीर जिनेन्द्रकी प्रातःकालमें सिद्धि कही गयी है ॥२७९॥

भगवान् वृषभनाथ, वासुपूज्य और नेमिनाथ पर्यंक आसनसे तथा शेष तीर्थंकर कायोत्सर्ग आसनसे स्थित हो मोक्ष गये हैं ॥२८०॥

आदि जिनेन्द्र भगवान् वृषभदेव, मुक्तिके पूर्व चौदह दिन तक विहारको संकोचकर मोक्ष हो गये हैं। भगवान् महावीर दो दिन और शेष तीर्थंकर एक मास पूर्व विहार बन्द कर मोक्षगामी हुए हैं ॥२८१॥

महावीर भगवान्का एकाकी—अकेलेका, पार्श्वनाथका छब्बीस मुनियोंके साथ, नेमिनाथका पांच सौ छत्तीस मुनियोंके साथ निर्वाण हुआ है ॥२८२॥

मल्लिनाथ पांच सौ, शान्तिनाथ नौ सौ, धर्मनाथ आठ सौ एक, वासुपूज्य छह सौ एक, विमलनाथ छह हजार, अनन्तनाथ सात हजार, सुपार्श्वनाथ पांच सौ, पद्मप्रभ तीन हजार आठ सौ, वृषभनाथ दश हजार और शेष तीर्थंकर एक-एक हजार मुनियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥२८३–२८५॥

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती छह खण्डोंके स्वामी हुए ॥२८६–२८७॥ त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष पुण्डरीक, (पुण्डरीक) दत्त, नारायण (लक्ष्मण) और कृष्ण ये नौ वासुदेव कहे गये हैं। ये तीन खण्ड भरतके स्वामी होते हैं तथा इनका पराक्रम दूसरोंके द्वारा खण्डित नहीं होता ॥२८८–२८९॥

विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नान्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नौ बलभद्र हैं ॥२९०॥ अश्वग्रीव, पृथिवीमें प्रसिद्ध तारक, मेरुक, निशुम्भ, सुशोभित कमलके समान मुखवाला मधुकैटभ, बलि, प्रहरण, विद्याधर वंशज रावण और भूमिगोचरी जरासन्ध ये नौ प्रतिनारायण हैं ॥२९१–२९२॥ बलभद्र ऊर्ध्वगामी—स्वर्ग अथवा मोक्षगामी होते हैं तथा भवान्तरमें कोई निदान नहीं बाँधते और नारायण अधोगामी होते हैं एवं भवान्तरमें निदान बांधते हैं ॥२९३॥

चक्रवर्ती भरत वृषभनाथके समयमें हुआ, सगर चक्रवर्ती अजितनाथके कालमें हुआ, मघवा और सनत्कुमार धर्मनाथ तथा शान्तिनाथके अन्तरालमें हुए। शान्ति, कुन्थु और अरनाथ चक्रवर्तीका काल अपना-अपना अन्तराल काल है। सुभूम चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथके अन्तरालमें हुआ। महापद्म मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथके अन्तरालमें हुआ। हरिषेण, मुनिसुव्रत और नमिनाथके अन्तरालमें हुआ। जयसेन चक्रवर्ती नमिनाथ पार्श्वनाथके अन्तरमें हुआ और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ जिनेन्द्रके अन्तरालमें हुआ है ॥२९४–२९६॥ इन बारह चक्रवर्तियोंमें आठको मुक्ति प्राप्त हुई है, ब्रह्मदत्त और सुभूम सातवीं पृथिवी गये हैं तथा मघवा और सनत्कुमार तीसरे स्वर्गको प्राप्त हुए हैं ॥२९७॥

त्रिपृष्ठसे लेकर पुरुषसिंह तकके पाँच नारायणोंने श्रेयांसनाथसे लेकर धर्मनाथ तकके पांच तीर्थंकरोंके अन्तराल कालको बलभद्रोंके साथ देखा है अर्थात् त्रिपृष्ठादि पांच नारायण और विजय आदि पांच बलभद्र श्रेयांसनाथसे लेकर धर्मनाथ तकके अन्तरालमें हुए हैं। पुण्डरीक, अरनाथ और मल्लिनाथके अन्तरालमें, दत्त, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथके अन्तरालमें, नारायण (लक्ष्मण), मुनि सुव्रतनाथ और नमिनाथके अन्तरालमें हुआ है और कृष्ण पद्मके साथ नेमिनाथकी वन्दना करनेवाला प्रत्यक्ष विद्यमान है ही ॥२९८–३०१॥ इन नारायणोंमें प्रथम नारायण त्रिपृष्ठ सातवीं पृथिवी गया। दूसरेसे लेकर छठे तक पाँच नारायण छठी पृथिवी गये। सातवां पाँचवीं पृथिवी गया और आठवां तीसरी पृथिवी गया और नौवां भी तीसरी पृथिवी जायेगा ॥३०२॥

प्रारम्भके आठ बलभद्रोंने तपके माहात्म्यसे मुक्ति प्राप्त की है और अन्तिम बलभद्र

पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग जायेगा। यह वहाँसे आकर जब कृष्ण तीर्थंकर होगा तब उसके तीर्थमें सिद्ध होगा—मोक्ष प्राप्त करेगा ॥३०३॥

वृषभ जिनेन्द्रके शरीरकी ऊँचाई पांच सौ धनुष थी, फिर आठ तीर्थंकरोंकी ऊँचाई पचास-पचास धनुष कम होती गयी। उसके बाद तीर्थंकरोंकी दस-दस धनुष कम हुई। तदनन्तर आठ तीर्थंकरोंकी पांच-पांच धनुष कम हुई ॥३०४॥

पार्श्वनाथकी नौ हाथ और महावीरकी सात हाथ ऊँचाई होगी। इस प्रकार क्रमसे तीर्थंकरोंकी ऊँचाई जानना चाहिए ॥३०५॥

प्रथम चक्रवर्तीकी ऊँचाई, पांच सौ धनुष, दूसरे सगर चक्रवर्तीकी साढ़े चार सौ धनुष, तीसरेकी साढ़े बयालीस धनुष, चौथेकी साढ़े इकतालीस धनुष, पाँचवेंकी चालीस धनुष, छठेकी पैंतीस धनुष, सातवेंकी तीस धनुष, आठवेंकी अट्ठाईस धनुष, नौवें महापद्मकी बाईस धनुष, दशवें-की बीस धनुष, ग्यारहवेंकी चौदह धनुष, और बारहवेंकी सात धनुष थी। इस प्रकार चक्रवर्तियों-की ऊँचाईका वर्णन किया ॥३०६–३०९॥

अस्सी, सत्तर, साठ, पचपन, चालीस, छब्बीस, बाईस, सोलह और दश धनुष यह क्रमसे नारायण, बलभद्र और प्रतिनारायणोंकी ऊँचाई है ॥३१०–३११॥

प्रारम्भसे लेकर दशवें तीर्थंकर तककी आयु क्रमसे चौरासी लाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीस लाख पूर्व, बीस लाख पूर्व, दश लाख पूर्व, दो लाख पूर्व और एक लाख पूर्व आयु कही गयी है ॥३१२–३१३॥

तदनन्तर श्रेयांसनाथसे लेकर महावीर पर्यन्तकी आयु क्रमसे चौरासी लाख वर्ष, बहत्तर लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दश लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानबे हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, पचपन हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दश हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, सौ वर्ष और बहत्तर वर्षकी है। इस प्रकार क्रमसे तीर्थंकरोंकी आयु कही। यह तुम्हारी आयु वृद्धि करे ॥३१४–३१६॥

चौरासी लाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, पांच लाख, तीन लाख, एक लाख, पंचानबे हजार, चौरासी हजार, अड़सठ हजार, तीस हजार, छब्बीस हजार, तीन हजार और सात सौ वर्ष यह क्रमसे चक्रवर्तियोंकी आयुका प्रमाण कहा गया है ॥३१७–३१९॥

चौरासी लाख, बहत्तर लाख, साठ लाख, तीस लाख, दश लाख, पैंसठ हजार, बत्तीस हजार, बारह हजार और एक हजार वर्ष यह क्रमसे नौ नारायणोंकी आयुका प्रमाण विद्वानोंके द्वारा माना गया है ॥३२०–३२१॥

सतासी लाख, सत्तर लाख, सड़सठ लाख, पैंतीस लाख, दश लाख, साठ हजार, तीस हजार, सत्रह हजार और बारह सौ वर्ष यह क्रमसे बलभद्रोंकी आयु है ॥३२२–३२३॥ तीर्थंकरों-के कालमें चक्रवर्ती तथा नारायणोंका क्रम जाननेके लिए चौंतीस कोठाका एक यन्त्र बनाना चाहिए। उसके नीचे चौंतीस-चौंतीस कोठाके दो यन्त्र और बनाना चाहिए। ऊपरके यन्त्रमें तीर्थंकरोंका, बीचके यन्त्रमें चक्रवर्तियोंका और नीचेके यन्त्रमें नारायणोंका विन्यास करे। यन्त्रमें तीर्थंकरोंके लिए एकका अंक, चक्रवर्तियोंके लिए दोका अंक और नारायणोंके लिए तीनका अंक प्रयुक्त किया जाता है। ऊपरके यन्त्रमें ऋषभनाथसे लेकर धर्मनाथ तक पन्द्रह तीर्थंकरोंका क्रम-से विन्यास करना चाहिए अर्थात् प्रारम्भसे लेकर पन्द्रह खानोंमें एक-एक लिखना चाहिए। उसके बाद दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर एक शून्य और फिर लगातार दो तीर्थंकर इस

प्रकार तीर्थंकरोंका विन्यास करना चाहिए। तदनन्तर नीचेके यन्त्रमें भरत आदि दो चक्रवर्ती, फिर तेरह शून्य, फिर छह चक्रवर्ती, फिर तीन शून्य, फिर एक चक्रवर्ती, फिर एक शून्य, फिर एक चक्रवर्ती, फिर दो शून्य, फिर एक चक्रवर्ती, फिर तीन शून्य, फिर एक चक्रवर्ती और फिर दो शून्य इस प्रकार चक्रवर्तियोंका क्रमसे विन्यास करे। तदनन्तर नीचेके यन्त्रमें प्रारम्भमें दश शून्य, फिर त्रिपृष्ठ आदि पाँच नारायण, फिर छह शून्य, फिर एक नारायण, फिर एक शून्य, फिर एक नारायण, फिर तीन शून्य, फिर एक नारायण, फिर दो शून्य, फिर एक नारायण और फिर तीन शून्य इस प्रकार क्रमसे नारायणोंका विन्यास करे। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है*—

भावार्थ—भरत चक्रवर्ती वृषभनाथके समक्ष, सगर चक्रवर्ती अजितेश्वरके समक्ष तथा मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती, धर्मनाथ और शान्तिनाथके अन्तरालमें हुए हैं। शान्ति,

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	१	१	१	०	०	१	०	०	१	०	०	१	०	१	०	१	१
२	२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	२	२	२	२	२	२	०	०	०	२	२	२	०	०	२	०	२	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	३	३	३	३	३	०	०	०	०	०	०	३	०	३	०	०	०	३	०	०	३	०	०	०

कुन्थु और अर ये तीन स्वयं तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती हुए हैं। सुभौम चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लि-नाथके अन्तरालमें, पद्म चक्रवर्ती, मल्लि और मुनिसुव्रतके अन्तरालमें, हरिषेण चक्रवर्ती सुव्रत और नमिनाथके अन्तरालमें, जयसेन चक्रवर्ती नमिनाथ और नेमिनाथके अन्तरालमें तथा ब्रह्म-दत्त चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथके अन्तरालमें हुए हैं। यहाँ जो चक्रवर्ती तीर्थंकरोंके समक्ष न होकर अन्तरालमें हुए हैं उनके ऊपर तीर्थंकरोंके कोष्ठकमें शून्य रखे गये हैं और जो तीर्थंकरों-के समक्ष हुए हैं उनके ऊपर तीर्थंकरोंके कोष्ठकमें एक लिखा गया है। जिन तीर्थंकरोंके समक्ष चक्रवर्ती हुए हैं उनके नीचे चक्रवर्तीके कोष्ठकमें दोका अंक लिखा गया है और जिनके समक्ष अभाव रहा है उनके नीचे शून्य रखा गया है। इसी प्रकार नारायणोंके विषयमें जानना चाहिए अर्थात् पहलेसे लेकर दशम तीर्थंकर तक तो कोई भी नारायण नहीं हुआ पश्चात् ग्यारहवेंसे पन्द्रहवें तक पाँच नारायण हुए। तदनन्तर अर और मल्लिनाथके अन्तरालमें, मल्लि और मुनि-सुव्रतके अन्तरालमें, सुव्रत और नमिके अन्तरालमें और नेमिनाथके समयमें नारायण हुए। जहाँ नारायणोंका अभाव है वहाँ कोष्ठकोंमें शून्य और जहाँ सद्भाव है, वहाँ तीनका अंक लिखा गया है ॥३१९–३२९॥

भगवान् वृषभदेवकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी। उसका एक चतुर्थ भाग अर्थात् बीस लाख पूर्वका कुमारकाल था। शेष संयमके कालको घटाकर जो बचता है वह राज्यकाल था। भावार्थ—भगवान् वृषभदेवने बीस लाख पूर्व कुमारकाल बिताया, त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया, एक हजार वर्ष तप किया और एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व केवलीकाल व्यतीत किया ॥३३०॥

अजितनाथसे लेकर अठारहवें अरनाथ तक तीर्थंकरोंकी जो पूर्ण आयु थी उसका एक चतुर्थ भाग कुमारकाल था, और पूर्ण आयुमें-से कुमारकाल छोड़ देनेपर जो शेष रहता है वह उनके राज्य तथा संयमका काल था। [अन्तिम छह तीर्थंकरोंका कुमारकाल क्रमसे सौ वर्ष, साढ़े सात हजार वर्ष, अढ़ाई हजार वर्ष, तीन सौ वर्ष, तीस वर्ष और तीस वर्ष था]※ ॥३३१॥

वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच तीर्थंकर बाल-ब्रह्मचारी तीर्थं-कर थे, इसलिए इनकी आयुका जो काल था उसमें संयमका काल कम देनेपर उनका कुमार-काल कहा जाता है ॥३३२॥

श्री वृषभनाथ भगवान्‌का संयमकाल एक लाख पूर्व था। अजितनाथका एक पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, सुमतिनाथका बारह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, अभिनन्दननाथका आठ पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, सुमतिनाथका बारह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, पद्मप्रभका सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, सुपार्श्वनाथका बीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, चन्द्रप्रभका चौबीस पूर्वांग कम, पुष्पदन्तका अट्ठाईस पूर्वांग कम, वासुपूज्यका पूर्ण आयुका तीन चौथाई भाग, (चौवन लाख वर्ष) मल्लिनाथका सौ वर्ष कम पूर्ण आयु (सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष), नेमिनाथका तीन सौ वर्ष कम पूर्ण आयु (सात सौ वर्ष), पार्श्वनाथका तीस वर्ष कम पूर्ण आयु (सत्तर वर्ष), महावीरका तीस वर्ष कम बहत्तर वर्ष (बयालीस वर्ष) और शेष दस तीर्थंकरोंका अपनी आयुका एक चौथाई भाग संयमकाल था। समस्त तीर्थंकरोंका यह संयमकाल छद्मस्थ काल और केवलिकालकी अपेक्षा दो प्रकारका है ॥३३३–३३६॥ वृषभनाथका छद्मस्थ काल एक हजार वर्ष, अजितनाथका बारह वर्ष, सम्भवनाथका चौदह वर्ष, अभिनन्दननाथका अठारह वर्ष, सुमतिनाथका बीस वर्ष, पद्मप्रभका छह मास, सुपार्श्वनाथका नौ वर्ष, चन्द्रप्रभका तीन मास, †पुष्पदन्तका चार मास, शीतलनाथका तीन मास, श्रेयांसनाथका दो मास, वासुपूज्यका एक मास, विमलनाथका तीन मास, अनन्तनाथका दो मास, धर्मनाथका एक मास, शान्ति, कुन्थु और अरनाथका सोलह-सोलह वर्ष, मल्लिनाथका छह दिन, मुनिसुव्रतनाथका ग्यारह मास, नमिनाथ-का नौ वर्ष, नेमिनाथका छप्पन दिन, पार्श्वनाथका चार मास और महावीरका बारह वर्ष है। इस छद्मस्थ कालके बाद सभी तीर्थंकर केवली हुए हैं ॥३३७–३४०॥

भगवान् ऋषभदेवके चौरासी गणधर थे, अजितनाथके नब्बे, सम्भवनाथके एक सौ पाँच, अभिनन्दननाथके एक सौ तीन, सुमतिनाथके एक सौ सोलह, पद्मप्रभके एक सौ ग्यारह, सुपार्श्व-नाथके पंचानबे, चन्द्रप्रभके तेरानबे, पुष्पदन्तके अठासी, शीतलनाथके इक्यासी, श्रेयांसनाथके सतहत्तर, वासुपूज्यके छयासठ, विमलनाथके पचपन, अनन्तनाथके पचास, धर्मनाथके तैंतालीस, शान्तिनाथके छत्तीस, कुन्थुनाथके पैंतीस, अरनाथके तीस, मल्लिनाथके अट्ठाईस, मुनिसुव्रतनाथ-के अठारह, नमिनाथके सत्तरह, नेमिनाथके ग्यारह, पार्श्वनाथके दस और महावीरके ग्यारह गणधर॰थे* ॥३४१–३४५॥

†आदि तीर्थंकर ऋषभदेवके प्रथम गणधर वृषभसेन, अजितनाथके सिंहसेन, सम्भवनाथके चारुदत्त, अभिनन्दनके वज्र, सुमतिनाथके चमर, पद्मप्रभके वज्रचमर, सुपार्श्वनाथके बलि, चन्द्र-प्रभके दत्तक, पुष्पदन्तके वैदर्भ, शीतलनाथके अनगार, श्रेयांसनाथके कुन्थु, वासुपूज्यके सुधर्म, विमलनाथके मन्दरार्य, अनन्तनाथके जय, धर्मनाथके अरिष्टसेन, शान्तिनाथके चक्रायुध, कुन्थुनाथ-के स्वयम्भू, अरनाथके कुन्थु, मल्लिनाथके विशाख, मुनिसुव्रतके मल्लि, नमिनाथके सोमक, नेमि-नाथके वरदत्त, पार्श्वनाथके स्वयम्भू और महावीरके इन्द्रभूति थे। ये सभी गणधर सात ऋद्धियोंसे युक्त तथा समस्त शास्त्रोंके पारगामी थे ॥३४६–३४९॥

भगवान् महावीरने अकेले ही दीक्षा ली थी अर्थात् उनके साथ किसीने दीक्षा नहीं ली थी। मल्लिनाथ और पार्श्वनाथने तीन-तीन सौ राजाओंके साथ, *वासुपूज्यने छह सौ छह राजाओंके साथ, वृषभनाथने चार हजार राजाओंके साथ और शेष तीर्थंकरोंने एक-एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ली थी ॥३५०–३५१॥

भगवान् ऋषभदेवके समस्त गणों—मुनियोंकी संख्या चौरासी हजार थी। अजितनाथकी एक लाख, सम्भवनाथकी दो लाख, अभिनन्दननाथकी तीन लाख, सुमतिनाथकी तीन लाख बीस हजार, पद्मप्रभकी तीन लाख तीस हजार, सुपार्श्वनाथकी तीन लाख, चन्द्रप्रभकी अढ़ाई लाख,

पुष्पदन्तकी दो लाख, शीतलनाथकी एक लाख, श्रेयांसनाथकी चौरासी हजार, वासुपूज्यकी बहत्तर हजार, विमलनाथकी अड़सठ हजार, अनन्तनाथकी छयासठ हजार, धर्मनाथकी चौंसठ हजार, कुन्थुनाथकी साठ हजार, अरनाथकी पचास हजार, मल्लिनाथकी चालीस हजार, मुनि-सुव्रतनाथकी तीस हजार, नमिनाथकी बीस हजार, नेमिनाथकी अठारह हजार, पार्श्वनाथकी सोलह हजार और महावीरकी चौदह हजार संख्या थी ॥३५२–३५६॥

तीर्थंकर भगवान्‌का यह संघ १ पूर्वधर, २ शिक्षक, ३ अवधिज्ञानी, ४ केवलज्ञानी, ५ वादी, ६ विक्रियाऋद्धिके धारक और ७ विपुलमतिमनःपर्यय ज्ञानके धारकके भेदसे सात प्रकारका होता है ॥३५७॥ भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें चार हजार सात सौ पचास पूर्वधारी, चार हजार एक सौ पचास शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार सत्पुरुषोंके द्वारा पूजनीय केवली, बीस हजार छह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह हजार सात सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और इतने ही वादी थे ॥३५८–३६१॥

अजितनाथके समवसरणमें समीचीन सभ्य पुरुषोंके द्वारा सेवनीय तीन हजार सात सौ पचास पूर्वधारी, इक्कीस हजार छह सौ शिक्षक, नौ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, बीस हजार केवली, बीस हजार चार सौ पचास विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह हजार चार सौ विपुलमति ज्ञानके धारक और इतने ही वादी थे ॥३६२–३६५॥

सम्भवनाथके समवसरणमें दो हजार एक सौ पचास पूर्वोंके सद्भावका निरूपण करनेवाले पूजनीय पूर्वधारी जानने योग्य हैं ॥३३६॥ एक लाख उनतीस हजार तीन सौ शिक्षक साधुओंकी संख्या स्मरण की गयी है ॥ ३६७ ॥ नौ हजार छह सौ अवधिज्ञानी माने गये हैं, पन्द्रह हजार केवलज्ञानी स्मृत किये गये हैं ॥३६८॥ उन्नीस हजार आठ सौ पचास विक्रिया शक्तिको धारण करनेवाले वैक्रिय साधु थे। बारह हजार विपुलमति ज्ञानके धारक थे और बारह हजार एक सौ वादी मुनि थे ॥३६९॥

अभिनन्दननाथके समवसरणमें दो हजार पाँच सौ पूर्वके धारक, दो लाख तीस हजार पचास शिक्षक, नौ हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, सोलह हजार केवलज्ञानी, उन्नीस हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, ग्यारह हजार छह सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और भव्य जीवोंको हितका उपदेश देनेवाले उतने ही वादी थे ॥३७०—३७४॥

सुमतिनाथके समवसरणमें दो हजार चार सौ पूर्वधारी, दो लाख चौवन हजार तीन सौ पचास शिक्षक, ग्यारह हजार निर्मल अवधिज्ञानी, तेरह हजार केवलज्ञानी, अठारह हजार चार सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, उतने ही विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके धारक और उनसे पचास अधिक अर्थात् दश हजार चार सौ पचास वादी थे ॥३७५–३७८॥

पद्मप्रभके समवसरणमें दो हजार तीन सौ पूर्वधारी, दो लाख उनहत्तर हजार शिक्षक, दस हजार अवधिज्ञानी, बारह हजार आठ सौ केवलज्ञानी, सोलह हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार वादी और दस हजार छह सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी थे ॥३७९–३८१॥

सुपार्श्वनाथके समवसरणमें दो हजार तीस पूर्वधारी, दो लाख चवालिस हजार नौ सौ बीस शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, ग्यारह हजार तीन सौ केवली, पन्द्रह हजार एक सौ पचास विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार छह सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और आठ हजार वादी थे।

चन्द्रप्रभके समवसरणमें दो हजार पूर्वधारी, दो लाख चार सौ शिक्षक, आठ हजार विपुल-

मतिमन:पर्ययज्ञानी, आठ हजार अवधिज्ञानी, दस हजार केवलज्ञानी, दस हजार चार सौ विक्रिया-ऋद्धिके धारक और सात हजार छह सौ वादी थे।

सुविधिनाथके समवसरणमें पांच हजार पूर्वधारी, एक लाख पचपन हजार पांच सौ शिक्षक, आठ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, सात हजार पांच सौ केवलज्ञानी, तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छह हजार पांच सौ विपुलमतिमन:पर्ययज्ञानी और सात हजार छह सौ वादी थे ॥३८२–३९०॥

शीतलनाथके समवसरणमें एक हजार चार सौ पूर्ववेदी, उनसठ हजार दो सौ शिक्षक, सात हजार दो सौ अवधिज्ञानी, सात हजार केवलज्ञानी, बारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, सात हजार पांच सौ विपुलमतिज्ञानके स्वामी और पांच हजार सात सौ उत्तम वादी थे ॥३९१–३९३॥

श्रेयांसनाथके समवसरणमें तेरह सौ पूर्वधारी, अड़तालीस हजार दो सौ शिक्षक, छह हजार अवधिज्ञानी, छह हजार पांच सौ केवलज्ञानी, ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छह हजार विपुलमतिमन:पर्ययज्ञानी और पांच हजार वादी थे।

वासुपूज्यके समवसरणमें बारह सौ पूर्वधारी, उनतालीस हजार दो सौ शिक्षक, पांच हजार चार सौ अवधिज्ञानी, छह हजार केवलज्ञानी, दस हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छह हजार विपुलमतिमन:पर्ययज्ञानी और चार हजार दो सौ वादी थे ॥३९४–३९८॥

विमलनाथके ग्यारह सौ पूर्वधारी, अड़तीस हजार पाँच सौ शिक्षक, चार हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, पाँच हजार पांच सौ केवली, नौ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार विपुलमति-मन:पर्ययज्ञानी और तीन हजार छह सौ वादी निश्चित थे ॥३९९–४०१॥

अनन्तनाथके समवसरणमें एक हजार पूर्वधारी, उनतालीस हजार पाँच सौ शिक्षक, चार हजार तीन सौ अवधिज्ञानी, पाँच हजार केवलज्ञानी, आठ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक और तीन हजार दो सौ वादी थे ॥४०२–४०३॥

धर्मनाथके समवसरणमें नौ सौ पूर्वधारी, चालीस हजार सात सौ शिक्षक, तीन हजार छह सौ अवधिज्ञानी, चार हजार पांच सौ केवलज्ञानी, सात हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, चार हजार पाँच सौ विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी और दो हजार आठ सौ वादी थे ॥४०४-४०६॥

शान्तिनाथके समवसरणमें आठ सौ पूर्वधारी, इकतालीस हजार आठ सौ शिक्षक, तीन हजार अवधिज्ञानी, चार हजार केवलज्ञानी, छह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, चार हजार विपुलमतिमन:पर्ययज्ञानी और दो हजार चार सौ वादी थे।

कुन्थुनाथके समवसरणमें सात सौ पूर्वधारी, तैंतालीस हजार एक सौ पचास शिक्षक, दो हजार पांच सौ अवधिज्ञानी, तीन हजार दो सौ केवली, पांच हजार एक सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, तीन हजार तीन सौ पचास विपुलमतिमन:पर्ययज्ञानी और दो हजार वादोंको जीतनेवाले वादी थे ॥४०७–४११॥

अरनाथके समवसरणमें छह सौ दस पूर्वधारी, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस शिक्षक, दो हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, इतने ही केवलज्ञानी, चार हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, दो हजार पचपन विपुलमतिमन:पर्ययज्ञानी और सोलह सौ उत्तम वाद करनेवाले वादी थे।

मल्लिनाथके समवसरणमें सात सौ पचास पूर्वधारी, उनतीस हजार शिक्षक, बाईस सौ अवधिज्ञानी, दो हजार छह सौ पचास केवलज्ञानी, एक हजार चार सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक,

दो हजार दो सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और उतने ही प्रतिवादियोंको जीतनेवाले वादी थे ॥४१२-४१८॥

मुनि सुव्रतनाथके समवसरणमें पाँच सौ पूर्वधारी, इक्कीस हजार शिक्षासे युक्त शिक्षक, अठारह सौ अवधिज्ञानी, अठारह सौ केवलज्ञानी, बाईस सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, पन्द्रह सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और बारह सौ वादी थे ॥४१९-४२०॥

नमिनाथके समवसरणमें चार सौ पचास पूर्वधारी, बारह हजार छह सौ शिक्षक, सोलह सौ अवधिज्ञानी, सोलह सौ केवलज्ञानी, पन्द्रह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और एक हजार प्रतिवादियोंसे रहित वादी थे ॥४२१-४२३॥

नेमिनाथके समवसरणमें चार सौ पूर्वधारी, ग्यारह हजार आठ सौ शिक्षक, एक हजार पांच सौ अवधिज्ञानी, एक हजार पांच सौ केवली, एक हजार एक सौ शुभविक्रिया करनेवाले विक्रियाऋद्धिके धारक, नौ सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके धारक और आठ सौ अनुपम प्रतिभासे युक्त वादी थे ॥४२४-४२६॥

पार्श्वनाथके समवसरणमें तीन सौ पचास पूर्वधारी, दस हजार नौ सौ शिक्षक, एक हजार चार सौ निर्मल अवधिज्ञानके धारक, एक हजार केवलज्ञानी, एक हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, सात सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी, और छह सौ वाद-विवादमें निपुण वादी थे ॥४२७-४२९॥

और वर्धमान जिनेन्द्रके समवसरणमें तीन सौ पूर्वधारी, नौ हजार नौ सौ शिक्षक, तेरह सौ अवधिज्ञानी, सात सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, पांच सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और चार सौ वादी कहे गये हैं ॥४३०-४३१॥

भगवान् वृषभदेवके समवसरणमें आर्यिकाएँ तीन लाख पचास हजार, अजितनाथके समवसरणमें तीन लाख बीस हजार, सम्भवनाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, अभिनन्दननाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, सुमतिनाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, पद्मप्रभके समवसरणमें हजारों किरणोंके समान चार लाख बीस हजार, सुपार्श्वनाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, चन्द्रप्रभके समवसरणमें तीन लाख अस्सी हजार, पुष्पदन्तके समवसरणमें तीन लाख अस्सी हजार, शीतलनाथके समवसरणमें तीन लाख अस्सी हजार, श्रेयांसनाथके समवसरणमें एक लाख बीस हजार, वासुपूज्यके समवसरणमें एक लाख छह हजार, विमलनाथके समवसरणमें एक लाख तीन हजार, अनन्तनाथके समवसरणमें एक लाख आठ हजार, धर्मनाथके समवसरणमें बासठ हजार चार सौ, शान्तिनाथके समवसरणमें साठ हजार तीन सौ, कुन्थुनाथके समवसरणमें साठ हजार तीन सौ पचास, अरनाथके समवरणमें साठ हजार, मल्लिनाथके समवसरणमें पचपन हजार, मुनिसुव्रतनाथके समवसरणमें पचास हजार, नमिनाथके समवसरणमें पैंतालीस हजार, नेमिनाथके समवसरणमें चालीस हजार, पार्श्वनाथके समवसरणमें अड़तीस हजार और चौबीसवें महावीर भगवान्‌के समवसरणमें पैंतीस हजार आर्यिकाएँ मानी गयी हैं ॥४३२-४४०॥

प्रारम्भसे लेकर आठ तीर्थंकरोंके समवसरणमें प्रत्येकके तीन-तीन लाख, फिर आठ तीर्थंकरोंके प्रत्येकके दो-दो लाख और तदनन्तर शेष आठ तीर्थंकरोंके प्रत्येकके एक-एक लाख श्रावक थे ॥ ४४१ ॥

इसी प्रकार प्रारम्भके आठ तीर्थंकरोंके समवसरणमें प्रत्येककी पांच-पांच लाख, फिर आठ

तीर्थंकरोंकी प्रत्येककी चार-चार लाख और तदनन्तर शेष आठ तीर्थंकरोंकी प्रत्येककी तीन-तीन लाख श्राविकाएँ थीं ॥४४२॥

भगवान् वृषभनाथके मोक्ष जानेवाले शिष्योंकी संख्या साठ हजार नौ सौ, अजितनाथके सत्तर हजार एक सौ, सम्भवनाथके एक लाख सत्तर हजार एक सौ, अभिनन्दननाथके दो लाख अस्सी हजार एक सौ, सुमतिनाथके तीन लाख एक हजार छह सौ, पद्मप्रभके तीन लाख तेरह हजार*छह सौ, चन्द्रप्रभके दो लाख चौंतीस हजार, सुविधिनाथके एक लाख उन्यासी हजार छह सौ, शीतलनाथके अस्सी हजार छह सौ, श्रेयांसनाथके पैंसठ हजार छह सौ, वासुपूज्यके चौवन हजार छह सौ, विमलनाथके इक्यावन हजार तीन सौ, अनन्तनाथके इक्यावन हजार, धर्मनाथके उनचास हजार सात सौ, शान्तिनाथके अड़तालीस हजार चार सौ, कुन्थुनाथके छयालीस हजार आठ सौ, अरनाथके सैंतीस हजार दो सौ, मल्लिनाथके अट्ठाईस हजार आठ सौ, मुनिसुव्रतनाथके उन्नीस हजार दो सौ, नमिनाथके नौ हजार छह सौ, नेमिनाथके आठ हजार, पार्श्वनाथके छह हजार दो सौ और भगवान् महावीरके सात हजार †दो सौ हैं ॥४४३–४५३॥

किन्हीं आचार्योंका मत है कि—प्रारम्भसे लेकर सोलह तीर्थंकरोंके शिष्य, जिस समय उन्हें केवलज्ञान हुआ था उसी समय सिद्धिको प्राप्त हो गये थे। तदनन्तर चार तीर्थंकरोंके शिष्य क्रमसे एक, दो, तीन और छह मासमें सिद्धिको प्राप्त हुए और उनके बाद चार तीर्थंकरोंके शिष्य एक, दो, तीन और चार वर्षमें सिद्धिको प्राप्त हुए★ ॥४५४–४५५॥

प्रारम्भसे लेकर तीन तीर्थंकरोंके बीस-बीस हजार, फिर पाँच तीर्थंकरोंके बारह-बारह हजार, फिर पांच तीर्थंकरोंके ग्यारह-ग्यारह हजार, फिर पांच तीर्थंकरोंके दश-दश हजार, फिर पाँच तीर्थंकरोंके अठासी-अठासी सौ और महावीरके छह हजार शिष्य अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले हैं ॥४५६॥

सौधर्म स्वर्गसे लेकर ऊर्ध्व ग्रैवेयक तकके विमानोंमें भगवान् वृषभदेवके तीन हजार एक सौ, अजितनाथके उनतीस सौ, सम्भवनाथके नौ हजार नौ सौ, अभिनन्दननाथके सात हजार नौ सौ, सुमतिनाथके छह हजार चार सौ, पद्मप्रभके चार हजार चार सौ, सुपार्श्वनाथके दो हजार चार सौ, चन्द्रप्रभके चार हजार, पुष्पदन्तके नौ हजार चार सौ, शीतलनाथके आठ हजार चार सौ, श्रेयांसनाथके सात हजार चार सौ, वासुपूज्यके छह हजार चार सौ, विमलनाथके पांच हजार सात सौ, अनन्तनाथके पांच हजार, धर्मनाथके चार हजार तीन सौ, शान्तिनाथके तीन हजार छह सौ, कुन्थुनाथके तीन हजार दो सौ, अरनाथके दो हजार आठ सौ, मल्लिनाथके दो हजार चार सौ, मुनि सुव्रतनाथके दो हजार, नमिनाथके एक हजार छह सौ, नेमिनाथके एक हजार दो सौ, पार्श्वनाथके एक हजार, और महावीरके आठ सौ शिष्य उत्पन्न हुए हैं ॥४५७–४६६॥

पचास लाख करोड़, तीस लाख करोड़, दश लाख करोड़, नौ लाख करोड़, नब्बे हजार करोड़, नौ हजार करोड़, नौ सौ करोड़, नब्बे करोड़ और नौ करोड़ सागर यह क्रमसे वृषभादि नौ तीर्थंकरोंके मुक्त होनेका अन्तरकाल है ॥४६७–४६८॥ छयासठ लाख छब्बीस हजार एक सौ कम एक करोड़ सागर प्रमाण दशवां अन्तर है अर्थात् शीतलनाथ भगवान्के मुक्ति जानेके बाद इतना समय बीत जानेपर श्रेयांसनाथ भगवान् मुक्ति गये ॥४६९॥ तदनन्तर चौवन, तीस, नौ, चार और पौन पल्य कम तीन हजार सागर यह वासुपूज्यसे लेकर शान्ति जिनेन्द्र तकका अन्तरकाल है। तत्पश्चात् अर्धपल्य, एक हजार करोड़ वर्ष कम पाव पल्य, एक हजार करोड़, चौवन लाख, छह लाख, पांच लाख, तेरासी हजार सात सौ पचास और अढ़ाई सौ वर्ष प्रमाण क्रमसे

कुन्थुनाथसे लेकर महावीर पर्यन्तका अन्तर है ॥४७०–४७२॥

महावीर भगवान्‌का तीर्थकाल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण पाँचवाँ काल और इतना ही छठा काल इस प्रकार बयालीस हजार वर्ष प्रमाण है ॥४७३॥ आदिके आठ और अन्तके आठ इस प्रकार सोलह तीर्थं तो इस भरतक्षेत्रमें अविच्छिन्न रूपसे प्रवृत्त हुए परन्तु बीचके सात तीर्थं व्युच्छिन्न होकर पुनः-पुनः प्रवृत्त हुए ॥४७४॥ पाव पल्य, अर्ध पल्य, पौन पल्य, एक पल्य, पौन पल्य, अर्धपल्य और पाव पल्य, यह क्रमसे व्युच्छिन्न तीर्थोंके विच्छेदकालका प्रमाण है। भावार्थ— वृषभदेवसे लेकर पुष्पदन्त तक तो तीर्थ अविच्छिन्न रूपसे चलते रहे उसके बाद पुष्पदन्तके तीर्थमें जब पाव पल्य प्रमाण काल बाकी रह गया तब तीर्थ—धर्मका विच्छेद हो गया। तदनन्तर शीतलनाथके केवली होनेपर पुनः तीर्थ प्रारम्भ हुआ, इसी प्रकार धर्मनाथ पर्यन्त ऊपर लिखे अनुसार तीर्थ विच्छेद समझना चाहिए। शान्तिनाथसे लेकर महावीर पर्यन्त बीचमें तीर्थका विच्छेद नहीं है। महावीरका तीर्थ बयालीस हजार वर्ष तक चलेगा, उसके बाद विच्छिन्न हो जायेगा। तदनन्तर आगामी उत्सर्पिणी युगमें जब प्रथम तीर्थंकरको केवलज्ञान होगा तब पुनः तीर्थका प्रारम्भ होगा ॥४७५॥

प्रारम्भसे लेकर सात तीर्थंकरोंके तीर्थमें केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी निरन्तर विद्यमान रही। उसके पश्चात् चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्तके तीर्थमें नब्बे-नब्बे, शीतलनाथके तीर्थमें चौरासी, श्रेयांसनाथके तीर्थमें बहत्तर, वासुपूज्यके तीर्थमें चौवालीस, फिर विमलनाथसे लेकर नेमिनाथ तक दश तीर्थंकरोंके तीर्थमें चार-चार कम और अन्तिम दो तीर्थंकरोंके तीर्थमें तीन-तीन केवली अनुबद्ध हुए हैं अर्थात् एकके मोक्ष जानेके बाद दूसरेको केवलज्ञान हो गया है★ ॥४७६–४७८॥

महावीर स्वामीके केवलियोंका काल बासठ वर्ष कहा गया है उसके बाद सौ वर्ष चौदह पूर्वधारियोंका काल है, तदनन्तर एक सौ तेरासी वर्ष दश पूर्वधारियोंका समय है, फिर दो सौ बीस वर्ष ग्यारह अंगके पाठियोंका काल है, और इसके बाद एक सौ अठारह वर्ष आचारांगके धारियोंका काल कहा गया है। महावीर स्वामीके केवलियोंकी संख्या तीन[1], चौदह पूर्वके धारियों-की संख्या पाँच[2], दश पूर्वधारियोंकी संख्या ग्यारह[3], ग्यारह अंगके धारियोंकी संख्या पाँच[4] और आचारांगके पाठियोंकी संख्या[5] चार[6] है ॥ ४७९–४८१ ॥ महावीर भगवान्‌के गणधरोंकी आयु क्रमसे बानबे वर्ष, चौबीस वर्ष, सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष, सौ वर्ष, तेरासी वर्ष, पंचानवे वर्ष, अठहत्तर वर्ष, बहत्तर वर्ष, साठ वर्ष और चालीस वर्ष है ॥४८२–४८३॥ छह कालोंमें-से जब तृतीय कालमें पल्यका आठवाँ भाग बाकी रहा था तब क्रमसे चौदह कुलकरों और उनके बाद वृषभदेवका जन्म हुआ था। शेष तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलभद्रों और नारायणोंका जन्म चौथे कालमें निश्चित है ॥४८४–४८५॥ जब तीसरे कालमें तीन वर्ष साढ़े आठ माह बाकी रहे थे तब भगवान् ऋषभदेवका मोक्ष हुआ था और जब चौथे कालमें तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष रहे थे तब महावीरका मोक्ष होगा ॥४८६॥

जिस समय भगवान् महावीरका निर्वाण होगा उस समय यहाँ अवन्तिपुत्र पालक नामके राजाका राज्याभिषेक होगा। वह राजा प्रजाका अच्छी तरह पालन करेगा और उसका राज्य साठ वर्ष तक रहेगा। उसके बाद तद्-तद् देशोंके राजाओंका एक सौ पचपन वर्ष तक राज्य होगा ॥४८७–४८८॥ फिर चालीस वर्ष तक पुरूढ राजाओंका अखण्ड भूमण्डल होगा। तदनन्तर तीस वर्ष तक पुष्पमित्रका, साठ वर्ष तक वसु और अग्निमित्रका, सौ वर्ष

तक रासभ राजाओंका, फिर चालीस वर्ष तक नरवाहनका, फिर दो सौ बयालीस वर्ष तक कल्कि राजाका राज्य होगा। उसके बाद अजितंजय नामका राजा होगा जिसकी राजधानी इन्द्रपुर नगर होगी ॥४८९–४९२॥ अब इनके आगे चक्रवर्ती आदिकी, कुमार अवस्था, मण्डलेश्वर दशा, दिग्विजय, राज्य और संयममें जो काल व्यतीत हुआ है उसका यथायोग्य निरूपण किया जाता है ॥४९३॥

पहले भरत चक्रवर्तीका आयुकाल चौरासी लाख पूर्वका था, उसमें सतहत्तर लाख पूर्व तो कुमार कालमें बीते, एक हजार वर्ष मण्डलेश्वर अवस्थामें व्यतीत हुए, साठ हजार वर्ष तक दिग्विजय किया, एक पूर्व कम छह लाख पूर्व चक्रवर्ती होकर राज्य किया तथा एक लाख पूर्व तेरासी लाख निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे पूर्वांग और तेरासी लाख नौ हजार तीस वर्ष पर्यन्त संयमी तथा केवली रहे* ॥४९४–४९७॥

दूसरे सगर चक्रवर्तीकी आयु बहत्तर लाख पूर्व थी उसमें पचास हजार लाख पूर्व तो कुमारकालमें बीते, इतने ही मण्डलेश्वर अवस्थामें व्यतीत हुए, तीस हजार वर्ष दिग्विजयमें गये, उनहत्तर† लाख सत्तर हजार पूर्व, निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे पूर्वांग और तेरासी लाख वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य किया और एक लाख पूर्व तक संयमी रहे ॥४९८–५००॥

तीसरे मघवा चक्रवर्तीकी कुल आयु पांच लाख वर्षकी थी। उसमें पचीस हजार वर्ष कुमारकालमें, पचीस हजार वर्ष माण्डलीक अवस्थामें, दस हजार वर्ष दिग्विजयमें, तीन लाख नब्बे हजार वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्यकार्यमें और पचास हजार वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५०१—५०२॥

चौथे सनत्कुमार चक्रवर्तीकी कुल आयु तीन लाख वर्षकी थी। उसमें पचास हजार वर्ष कुमारकालमें, पचास हजार वर्ष माण्डलीक अवस्थामें, दस हजार वर्ष दिग्विजयमें, नब्बे हजार वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्यके उपभोगमें और एक लाख वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५०३—५०४॥

पांचवें शान्तिनाथ चक्रवर्तीकी कुल आयु एक लाख वर्षकी थी, उसमें पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, पच्चीस हजार वर्ष माण्डलीक अवस्थामें, आठ सौ वर्ष दिग्विजयमें बीते और शेष‡ विवरण तीर्थंकरोंके वर्णनके समयमें कहा जा चुका है ॥५०५॥

छठे कुन्थुनाथ चकवर्तीकी कुल आयु पंचानबे हजार वर्षकी थी, उसमें तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष कुमारकालमें, इतने ही माण्डलिक अवस्थामें और छह सौ वर्ष दिग्विजय कालमें व्यतीत हुए तथा शेष वर्णन पहले कर चुके† हैं ॥५०६॥

सातवें अरनाथ चक्रवर्तीकी कुल आयु पचासी हजार वर्षकी थी। उसमें इक्कीस हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, इतने ही माण्डलिक अवस्थामें और चार सौ वर्ष दिग्विजयमें व्यतीत हुए। शेष वर्णन पहले किया जा चुका§ है ॥५०७॥

आठवें सुभौम चक्रवर्तीकी कुल आयु पचासी हजार वर्षकी थी, उसमें पांच हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, पांच सौ वर्ष दिग्विजयमें और साढ़े बासठ हजार वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें बीते। ये परशुरामके भयसे आश्रममें पले थे इसीलिए मण्डलीक पद प्राप्त नहीं कर सके। ये पृथिवी मण्डलपर अतिशय तीक्ष्ण प्रकृतिके थे तथा अज्ञानी दशामें रहनेके कारण संयम धारण नहीं कर सके और मरकर सातवें नरक §गये ॥५०८–५०९॥

नौवें महापद्म चक्रवर्तीकी आयु तीस हजार वर्षकी थी। उसमें पांच सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, पांच सौ वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, तीन सौ वर्ष दिग्विजयमें, अठारह हजार सात

सौ वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें और दस हजार वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुए हैं ॥५१०–५११॥

दसवें हरिषेण चक्रवर्तीकी आयु छब्बीस हजार वर्षकी थी। उसमें तीन सौ पचीस वर्ष कुमार अवस्थामें, एक सौ पचास वर्ष दिग्विजयमें, पचीस हजार एक सौ पचहत्तर वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें और तीन सौ पचास वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुए* ॥५१२–५१३॥

ग्यारहवें जयसेन चक्रवर्तीकी कुल आयु तीन हजार वर्षकी थी। उसमें तीन सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, तीन सौ वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, सौ वर्ष दिग्विजयमें, एक हजार नौ सौ वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें और चार सौ वर्ष संयम अवस्थामें व्यतीत हुए।

और बारहवें ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीकी आयु सात सौ वर्षकी थी। उसमें अट्ठाईस वर्ष कुमार अवस्थामें, छप्पन वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, सोलह वर्ष दिग्विजयमें और छह सौ वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए। ये संयम धारण नहीं कर सके और मरकर सातवें नरक गये। इस प्रकार चक्रवर्तियोंकी आयुका विवरण कहा और नारायणोंकी आयुका विवरण कहा जाता है ॥५१४–५१६॥

स्नेहको धारण करनेवाले त्रिपृष्ठ नारायणकी कुल आयु चौरासी लाख वर्षकी थी। उसमें पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, एक हजार वर्ष दिग्विजयमें और तेरासी लाख चौहत्तर हजार वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए† ॥५१७–५१८॥

द्विपृष्ठ नारायणकी कुल आयु बहत्तर लाख वर्षकी थी। उसमें पचीस-पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्था तथा मण्डलीक अवस्थामें, सौ वर्ष दिग्विजयमें और इकहत्तर लाख उनचास हजार नौ सौ वर्ष पर्यन्त राज्य किया ॥५१९–५२०॥

स्वयम्भू नारायणकी कुल आयु साठ लाख वर्षकी थी। उसमें बारह हजार पांच सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, इतने ही मण्डलीक अवस्थामें, नब्बे वर्ष दिग्विजयमें और उनसठ लाख चौहत्तर हजार नौ सौ दस वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५२१–५२२॥

पुरुषोत्तम नारायणकी कुल आयु तीस लाख वर्षकी थी। उसमें सात सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, एक हजार तीन सौ वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, अस्सी वर्ष दिग्विजयमें और उनतीस लाख सन्तानबे हजार नौ सौ बीस वर्ष पृथिवीतलपर नारायणपद धारण करते हुए राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५२३–५२५॥

पुरुषसिंह नारायणकी कुल आयु दस लाख वर्षकी थी। उसमें तीन सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, एक सौ पचीस वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, सत्तर वर्ष दिग्विजयमें और नौ लाख निन्यानबे हजार पांच सौ पांच वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए* ॥५२६–५२७॥

पुण्डरीक नारायणकी कुल आयु पैंसठ हजार वर्षकी थी। उनमें दो सौ पचास वर्ष कुमार अवस्थामें, इतने ही मण्डलीक अवस्थामें, साथ वर्ष दिग्विजयमें, और चौंसठ हजार चार सौ चालीस वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५२८–५२९॥

दत्त नारायणकी कुल आयु बत्तीस हजार वर्षकी थी। उसमें सौ वर्ष कुमार अवस्थामें पचास वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, पचास वर्ष दिग्विजयमें और इकतीस हजार सात सौ वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५३०॥

लक्ष्मण नारायणकी कुल आयु बारह हजार वर्षकी थी। उसमें सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, चालीस वर्ष दिग्विजयमें और ग्यारह हजार आठ सौ साठ वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत† हुए ॥५३१॥

कृष्ण नारायणकी कुल आयु एक हजार वर्षकी है। उसमें सोलह वर्ष कुमार अवस्थामें, छप्पन वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, आठ वर्ष दिग्विजयमें और नौ सौ बीस वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत होंगे। इस प्रकार नारायणोंके कालका वर्णन किया। अब ग्यारह रुद्रोंके काल और संख्याका वर्णन करते हैं ।।५३२–५३३।।

रुद्र ग्यारह होते हैं। उसमें भगवान् वृषभदेवके तीर्थमें भीमावलि, अजितनाथके तीर्थमें जितशत्रु, पुष्पदन्तके तीर्थमें रुद्र, शीतलनाथके तीर्थमें §विश्वानल, श्रेयांसनाथके तीर्थमें सुप्रतिष्ठक, वासुपूज्यके तीर्थमें अचल, विमलनाथके तीर्थमें पुण्डरीक, अनन्तनाथके तीर्थमें अजितन्धर, धर्मनाथके तीर्थमें अजितनाभि, शान्तिनाथके तीर्थमें पीठ नामका रुद्र हुआ है तथा महावीरके तीर्थमें सत्यकिपुत्र रुद्र होगा ।।५३४–५३६।।

भीमावलीके शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष, जितशत्रुको साढ़े चार सौ धनुष, रुद्रकी सौ धनुष, विश्वानलकी नब्बे धनुष, सुप्रतिष्ठककी अस्सी धनुष, अचलकी सत्तर धनुष, पुण्डरीककी साठ धनुष, अजितन्धरकी पचास धनुष, अजितनाभिकी अट्ठाईस धनुष, पीठकी चौबीस धनुष, और सत्यकिपुत्रकी सात धनुष मानी जाती है ।।५३७–५३८।।

इन रुद्रोंकी आयु क्रमसे तेरासी लाख पूर्व, इकत्तर लाख पूर्व, दो लाख पूर्व, एक लाख पूर्व; चौरासी लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, पचास लाख वर्ष, चालीस लाख वर्ष, बीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष और उनहत्तर वर्ष है। ये सभी रुद्र दश पूर्वके पाठी होते हैं और रौद्र कार्यके करनेवाले हैं ।।५३९–५४१।।

इन सभी रुद्रोंके क्रमसे तीन काल होते हैं—१ कुमारकाल, २ संयमकाल और ३ गृहीत संयमको छोड़कर असंयमी होनेका काल ।।५४२।। इनमें चारका संयमकाल त्रिभाग शेषसे कुछ अधिक था अर्थात् कुमारकाल और असंयमकालसे कुछ अधिक था, दोके तीनों काल बराबर थे, सातवेंका कुमारकाल, आठवेंका असंयमकाल, नौवेंका कुमारकाल, और दसवेंका संयमकाल अधिक था। ग्यारहवें रुद्रका कुमारकाल सात वर्षका, संयमकाल अट्ठाईस वर्षका और असंयमकाल चौंतीस वर्षका होगा† ।।५४३–५४५।।

इनमें प्रारम्भके दो रुद्र सातवीं पृथिवी, पाँच रुद्र छठी पृथिवी, एक पांचवीं पृथिवी और दो चौथी पृथिवी गये हैं तथा अन्तिम रुद्र तीसरी भूमिमें जावेगा। उन रुद्रोंके जीवनमें असंयमका भार अधिक होता है। इसलिए उन्हें नरकगामी होना पड़ता है ।।५४६–५४७।।

भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, चतुर्मुख, नरवक्त्र और उन्मुख, ये नौ नारद माने गये हैं। उनकी आयु नारायणोंकी आयुके बराबर होती है तथा वे नारायणोंके समय ही होते हैं। वे कलहमें प्रीतिसे युक्त होते हैं, कदाचित् धर्मसे भी स्नेह रखते हैं, हिंसामें आनन्द मानते हैं तथा महाभव्य और जिनेन्द्र भगवान्के अनुगामी होते हैं ।।५४८–५५०।।

भगवान् महावीरके मोक्ष जानेके पश्चात् छह सौ पांच वर्ष पांच मास बीत जानेपर राजा शक‡ होगा और हजार-हजार वर्ष बाद एक-एक कल्की राजा होता रहेगा जो जैनधर्मका विरोधी होगा ।।५५१–५५२।। जिस प्रकार इस अवसर्पिणीमें तीर्थंकर आदि हुए हैं उसी प्रकार आगे आनेवाली उत्सर्पिणीमें भी दूसरे-दूसरे तीर्थंकर आदि होंगे ।।५५३।। जब आनेवाले दु:षमा नामक कालमें एक हजार शेष रह जावेंगे तब पहले क्रमसे ये चौदह कुलकर होंगे—१ देदीप्यमान स्वर्णके समान कान्तिवाला कनक, २ कनकप्रभ, ३ कनकराज, ४ कनकध्वज, ५ कनकपुंगव, ६ कमलिनीके पत्र के समान वर्णवाला नलिन, ७ नलिनप्रभ, ८ नलिनराज, ९ नलिनध्वज, १० नलिनपुंगव, ११ पद्मप्रभ, १२ पद्मराज, १३ पद्मध्वज और १४ पद्मपुंगव ।।५५४–५५७।।

कुलकरोंके बाद क्रमसे निम्नलिखित चौबीस तीर्थंकर होंगे—१ महापद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयम्प्रभ, ५ सर्वात्मभूत, ६ देवदेव, ७ प्रभोदय, ८ उदंक, ९ प्रश्नकीर्ति, १० जयकीर्ति, ११ सुव्रत, १२ अर, १३ पुण्यमूर्ति, १४ निष्कषाय, १५ विपुल, १६ निर्मल, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ स्वयम्भू, २० अनिवर्तक, २१ जय, २२ विमल, २३ दिव्यपाद और २४ अनन्तवीर्य। ये सभी वीर्य धैर्य आदि सद्‌गुणोंसे सहित होते हैं ।।५५८–५६२।।

१ भरत, २ दीर्घदन्त, ३ जन्मदत्त, ४ गूढ़दत्त, ५ श्रीषेण, ६ श्रीभूति, ७ श्रीकान्त, ८ पद्मनामक, ९ महापद्म, १० चित्रवाहन, ११ मलके सम्पर्कसे रहित विमलवाहन और १२ अरिष्टसेन ये होनेवाले बारह चक्रवर्ती कहे गये हैं ।।५६३–५६५।।

१ नन्दी, २ नन्दिमित्र, ३ नन्दिन, ४ नन्दिभूतिक, ५ महाबल, ६ अतिबल, ७ बलभद्र, ८ द्विपृष्ठ और ९ त्रिपृष्ठ ये नौ भविष्यत्कालमें होनेवाले नारायण हैं। ये अंजनके समान कान्तिके धारक होते हैं तथा अपनी कान्तिसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करते हैं ।।५६६–५६७।।

१ चन्द्र, २ महाचन्द्र, ३ चन्द्रधर, ४ सिंहचन्द्र, ५ हरिश्चन्द्र, ६ श्रीचन्द्र, ७ पूर्णचन्द्र, ८ सुचन्द्र और ९ बालचन्द्र ये नौ आगामीकालमें होनेवाले बलभद्र हैं। ये सभी चन्द्रमाके समान कान्तिके धारक होते हैं।

१ श्रीकण्ठ, २ हरिकण्ठ, ३ नीलकण्ठ, ४ अश्वकण्ठ, ५ सुकण्ठ, ६ शिखिकण्ठ, ७ अश्वग्रीव, ८ हयग्रीव और ९ मयूरग्रीव ये नौ प्रतिनारायण होंगे ।।५६८-५७०।।

१ प्रमद, २ सम्मद, ३ हर्ष, ४ प्रकाम, ५ कामद, ६ भव, ७ हर, ८ मनोभव, ९ मार, १० काम और ११ अंगज ये ग्यारह रुद्र होंगे। ये सब भव्य होंगे तथा कुछ ही भवोंमें मोक्ष प्राप्त करेंगे। इनके शरीर भी रत्नत्रयसे पवित्र होंगे तथा उत्तम महापुरुष होंगे ।।५७१–५७२।।

एक सम्यग्दर्शनरूपी रत्न अन्तर्मुहूर्तके लिए भी प्राप्त होकर छूट जाता है तो वह भी शीघ्र ही मोक्षप्राप्तिका कारण होता है, फिर संसारमें अतिशय पवित्र एवं साक्षात् भवभ्रमणको नष्ट करनेवाले रत्नत्रयकी तो बात ही क्या है? ।।५७३।।

इस प्रकार भगवान् नेमिनाथकी कर्णोंको सुख उपजानेवाली एवं त्रिकालविषयक पदार्थोंका वर्णन करनेवाली दिव्यध्वनि सुनकर कृष्ण आदि राजा तथा इन्द्र और सूर्य आदि देव, धर्मके यथार्थ तत्त्वको ग्रहण कर एवं नेमि जिनेन्द्रको नमस्कार कर अपने-अपने स्थानपर चले गये ।। ५७४ ।।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें त्रेशठ शलाकापुरुषोंका चरित्र तथा तीर्थंकरोंके अन्तरालका वर्णन करनेवाला साठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।६०।।

□

सर्ग- ६१

अथानन्तर श्रेणिकका अभिप्राय जानकर गणधरोंके अधिपति श्री गौतम स्वामीने जगत्के द्वारा स्तुत गजकुमारका वृत्तान्त इस प्रकार कहना शुरू किया ॥ १ ॥ वे कहने लगे कि इस प्रकार गजकुमार, तीर्थंकर आदिका चरित्र सुनकर संसारसे भयभीत हो गया और पिता, पुत्र, आदि समस्त बन्धुजनोंको छोड़कर बड़ी विनयसे जिनेन्द्र भगवान्के समीप पहुँचा और उनसे अनुमति ले दीक्षा ग्रहण कर तप करनेके लिए उद्यत हो गया ॥ २-३ ॥ गजकुमारके लिए जो प्रभावती आदि कन्याएँ निश्चित की गयी थीं उन सभीने संसारसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली ॥ ४ ॥

तदनन्तर किसी दिन गजकुमार मुनि रात्रिके समय एकान्तमें प्रतिमायोगसे विराजमान हो सब प्रकारकी बाधाएँ सहन कर रहे थे कि सोमशर्मा अपनी पुत्रीके त्यागसे उत्पन्न क्रोधरूपी अग्निके कणोंसे प्रदीप्त हो उनके पास आया और स्थिर चित्तके धारक उन मुनिराजके शिरपर तीव्र अग्नि प्रज्वलित करने लगा ॥ ५-६ ॥ उस अग्निसे उनका शरीर जलने लगा। उसी अवस्थामें वे शुक्लध्यानके द्वारा कर्मोंका क्षय कर अन्तकृत्केवली हो मोक्ष चले गये ॥ ७ ॥ यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और महोरग आदि सुर और असुरोंने आकर उनके शरीरकी पूजा की ॥ ८ ॥ गजकुमार मुनिका मरण जानकर दुःखी होते हुए बहुत-से यादव तथा वसुदेवको छोड़कर शेष समुद्रविजय आदि दशार्हं मोक्षकी इच्छासे दीक्षित हो गये ॥ ९ ॥ शिवा आदि देवियों, देवकी और रोहिणीको छोड़कर वसुदेवकी अन्य स्त्रियों तथा कृष्णकी पुत्रियोंने भी दीक्षा धारण कर ली ॥१०॥

तदनन्तर देव और मनुष्योंसे पूजित भगवान् नेमिजिनेन्द्रने, भव्य जीवोंके समूहको प्रबोधित करते हुए, नाना देशोंमें बड़े वैभवके साथ विहार किया ॥ ११ ॥ उन्होंने उत्तर दिशाके, मध्यदेशके तथा पूर्व दिशाके प्रजासे युक्त अनेक बड़े-बड़े राजाओंको धर्ममें स्थिर करते हुए विहार किया था ॥ १२ ॥ चिरकाल तक विहार कर भगवान् पुनः आये और रैवतक (गिरनार) पर्वत-पर समवसरणको सुशोभित करते हुए विराजमान हो गये ॥ १३ ॥ प्रबल तेजको धारण करनेवाले इन्द्र वहाँ विराजमान जिनेन्द्र भगवान्के पास आये और नमस्कार तथा स्तुति कर अपने-अपने स्थानोंपर बैठ गये ॥१४॥

अन्तःपुरकी रानियों, मित्रजन, द्वारिकाकी प्रजा तथा प्रद्युम्न आदि पुत्रोंसे सहित वसुदेव, बलदेव तथा कृष्ण भी बड़ी विभूतिके साथ आये और भगवान् नेमिनाथको नमस्कार कर समवसरणमें यथास्थान बैठ भगवान्से धर्म श्रवण करने लगे ॥१५-१६॥ तदनन्तर धर्मकथाके बाद जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर बलदेवने हाथ जोड़ ललाटसे लगा, अपने हृदयमें स्थित बात पूछी ॥ १७ ॥ उन्होंने पूछा कि हे भगवन् ! यह द्वारिकापुरी कुबेरके द्वारा रची गयी है सो इसका अन्त कितने समयमें होगा। क्योंकि कृत्रिम वस्तुएँ अवश्य ही नश्वर होती हैं ॥१८॥ यह द्वारिकापुरी कालान्तरमें क्या अपने-आप ही समुद्रमें डूब जावेगी ? अथवा निमित्तान्तरके सन्नि-

धानमें किसी अन्य निमित्तसे विनाशको प्राप्त होगी ? कृष्णके अपने अन्तकालमें निमित्तपनेको कौन प्राप्त होगा ? क्योंकि उत्पन्न हुए समस्त जीवोंका मरण निश्चित है। हे प्रभो ! मेरा चित्त कृष्णके स्नेहरूपी महापाशसे बँधा हुआ है अतः मुझे संयमकी प्राप्ति कितने समय बाद होगी ? ॥१९-२१॥ इस प्रकार बलदेवके पूछनेपर समस्त परापर पदार्थोंको देखनेवाले नेमि जिनेन्द्र, प्रश्नके अनुसार यथार्थ बात कहने लगे, सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् प्रश्नोंका उत्तर निरूपण करनेवाले ही थे ॥२२॥

उन्होंने कहा कि हे राम ! यह पुरी बारहवें वर्षमें मदिराके निमित्तसे द्वैपायन मुनिके द्वारा क्रोधवश भस्म होगी ॥२३॥ अन्तिम समयमें श्रीकृष्ण कौशाम्बीके वनमें शयन करेंगे और जरत्कुमार उनके विनाशमें कारणपनेको प्राप्त होगा ॥२४॥ अन्तरंग कारणके रहते हुए परिणतिवश बाह्य हेतु जगत्के अभ्युदय तथा क्षयमें कारण होते हैं इसलिए वस्तुके स्वभावको जाननेवाले उत्तम मनुष्य अभ्युदय तथा क्षयके समय पृथिवीपर कभी हर्ष और विषादको प्राप्त नहीं होते ॥२५-२६॥

संसारके मार्गसे भयभीत रहनेवाले आपको भी उसी समय कृष्णकी मृत्युका निमित्त पाकर तपकी प्राप्ति होगी तथा तपकर आप ब्रह्मस्वर्गमें उत्पन्न होंगे ॥२७॥ द्वैपायनकुमार रोहिणीका भाई—बलदेवका मामा था सो उस समय भगवान्के वचन सुनकर वह संसारसे विरक्त हो मुनि होकर तप करने लगा ॥२८॥ वह बारह वर्षकी अवधिको पूर्ण करनेके लिए यहाँसे पूर्व देशकी ओर चला गया और वहाँ कषाय तथा शरीरको सुखानेवाला तप करने लगा ॥२९॥ 'मेरे निमित्त-से कृष्णकी मृत्यु होगी' यह जानकर जरत्कुमार भी बहुत दुःखी हुआ और दुःखसे युक्त भाई-बन्धुओंको छोड़कर वह कहीं ऐसी जगह चला गया जहाँ कृष्ण दिखाई भी न दें ॥३०॥ जब जरत्कुमार वनमें जाकर अकेला रहने लगा तब स्नेहसे आकुल श्रीकृष्णने अपने-आपमें अपने-आपको सूना अनुभव किया ॥३१॥ जो कृष्णको प्राणोंके समान प्यारा था ऐसा जरत्कुमार कहीं प्रिय प्राणोंको छोड़नेकी इच्छासे अकेला ही मृगोंके समान निर्जन वनमें भ्रमण करने लगा ॥३२॥ इधर आगामी दुःखके भारकी चिन्तासे जिनके मन सन्तप्त हो रहे थे ऐसे यादव लोग भगवान्-को नमस्कार कर नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥३३॥ बलदेवके साथ कृष्णने नगरमें यह घोषणा करा दी कि मद्य बनानेके साधन और मद्य शीघ्र ही अलग कर दिये जायें ॥३४॥ घोषणा सुनते ही मद्यपायी लोगोंने पिष्ट, किण्व आदि मदिरा बनानेके साधनोंके साथ-साथ समस्त मदिराको शिलाओंके बीच बने हुए कुण्डसे युक्त कादम्ब गिरिकी गुहामें फेंक दिया ॥ ३५ ॥ कदम्ब वनके कुण्डोंमें जो मदिरा छोड़ी गयी थी वह अश्मपाक विशेषके कारण उन कुण्डोंमें भरी रही। भावार्थ—पत्थरकी कुण्डियोंमें जिस प्रकार कोई तरल पदार्थ स्थिर रहा आता है उसी प्रकार कदम्ब वनके शिलाकुण्डोंमें वह मदिरा स्थिर रही आयी ॥ ३६ ॥ हितकी इच्छा रखनेवाले कृष्णने समस्त स्त्री-पुरुषोंके सुनते समय द्वारिकापुरीमें दूसरी घोषणा यह दी कि यदि मेरे पिता, माता, पुत्री अथवा अन्तःपुरकी स्त्री आदि कोई भी जिनेन्द्र भगवान्के मतमें दीक्षित हो तप करना चाहें तो मैं उन्हें मना नहीं करता हूँ—उन्हें तप करनेकी मेरी ओरसे पूर्ण छूट है ॥३७-३८॥ घोषणा सुनते ही प्रद्युम्नकुमार तथा भानुकुमारको आदि लेकर चरम-शरीरी कुमार और अन्य बहुत-से लोग परिग्रहका त्याग कर तपोवनको चले गये ॥३९॥ रुक्मिणी और सत्यभामा आदि आठ पट्टरानियोंने भी आज्ञा प्राप्त कर पुत्रवधुओं तथा अन्य सौतोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥४०॥ सिद्धार्थ नामका सारथि जो बलदेवका भाई था जब दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हुआ तब बलदेवने उससे याचना की कि कदाचित् मैं मोहजन्य व्यसनको प्राप्त होऊँ तो मुझे सम्बोधित करना। बलदेवकी इस प्रार्थनाको स्वीकृत कर उसने तप ग्रहण

कर लिया ॥४१॥

तदनन्तर जो भव्यरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान थे ऐसे भगवान् नेमिजिनेन्द्र, भव्य जीवोंको सम्बोधनेके लिए बड़े भारी संघके साथ पल्लव देशको प्राप्त हुए ॥४२॥ उस समय जो राजा-रानियों और मनुष्योंका समूह दीक्षित हुआ था वह जिनेन्द्र भगवान्के साथ ही साथ उत्तरापथकी ओर चलनेके लिए उद्यमी हुआ ॥४३॥ द्वारिकाके लोग द्वारिकासे बाहर जाकर बारह वर्ष तक कहीं वनमें रहते आये परन्तु भाग्यकी प्रबलतासे वे वहां निवास कर फिर वहीं वापस आ गये ॥४४॥ इधर द्वारिकामें जो लोग रहते थे वे परलोकके भयसे युक्त हो व्रत, उपवास तथा पूजा आदि सत्कार्योंमें निरन्तर संलग्न रहते थे ॥४५॥

तदनन्तर बहुत भारी तपसे युक्त जो द्वैपायन मुनि थे वे भी भ्रान्तिवश बारहवें वर्षको व्यतीत हुआ मानते हुए बारहवें वर्षमें वहां आ पहुँचे। 'जिनेन्द्र भगवान्का आदेश पूरा हो चुका है' यह विचारकर जिनकी बुद्धि विमूढ़ हो रही थी तथा जो सम्यग्दर्शनसे दुर्बल थे ऐसे द्वैपायन मुनि बारहवें वर्षमें वहीं आ पहुँचे ॥४६–४७॥ वे किसी समय द्वारिकाके बाहर पर्वतके निकट, मार्गमें आतापन योग धारण कर प्रतिमायोगसे विराजमान थे ॥४८॥ उसी समय वनक्रीड़ासे थके एवं प्याससे पीड़ित शम्ब आदि कुमारोंने कादम्ब वनके कुण्डोंमें स्थित उस शराबको पी लिया ॥४९॥ कदम्ब वनमें छोड़ी एवं कदम्ब रूपसे डबरोंके रूपमें स्थित उस मधुर मदिराको पीकर वे सब कुमार विकार भावको प्राप्त हो गये ॥५०॥ यद्यपि वह मदिरा पुरानी थी तथापि परिपाकके वशसे उसने तरुण स्त्रीके समान, लाल-लाल नेत्रोंको धारण करनेवाले उन तरुण कुमारोंको अत्यधिक वशीभूत कर लिया ॥५१॥ फलस्वरूप वे सब कुमार असम्बद्ध गाने लगे, लड़खड़ाते पैरोंसे नाचने लगे, उनके केश बिखर गये, आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये और उन्होंने अपने कण्ठोंमें जंगली फूलोंकी मालाएँ पहन लीं ॥५२॥ जब वे सब नगरको ओर आ रहे थे तब उन्होंने सूर्यके सम्मुख खड़े हुए द्वैपायन मुनिको पहचान लिया। पहचानते ही उनके नेत्र घूमने लगे। उन्होंने आपसमें कहा कि यह वही द्वैपायन योगी है जो द्वारिकाका नाश करनेवाला होगा। आज यह बेचारा हम लोगोंके आगे कहां जायेगा? ॥५३–५४॥ इतना कहकर उन निर्दय कुमारोंने लुड्डों और पत्थरोंसे उन्हें तबतक मारा जबतक कि वे घायल होकर पृथिवीपर नहीं गिर पड़े ॥५५॥ तदनन्तर क्रोधकी अधिकतासे मुनि अपना ओठ डँसने लगे तथा यादवों और अपने तपको नष्ट करनेके लिए उन्होंने भ्रुकुटी चढ़ा ली ॥५६॥ मदमाते हाथियोंके समान अत्यन्त चञ्चल कुमार जब द्वारिकापुरीमें प्रविष्ट हुए तब उनमें-से किन्हींने यह दुर्घटना शीघ्र ही कृष्णके लिए जा सुनायी ॥५७॥ बलदेव तथा नारायणने द्वैपायनसे सम्बन्ध रखनेवाली इस घटनाको सुनकर समझ लिया कि जिनेन्द्र भगवान्ने जो द्वारिकाका क्षय बतलाया था वह आ पहुँचा है—अब शीघ्र ही द्वारिकाका क्षय होनेवाला है ॥५८॥ बलदेव और नारायण घबड़ाहटवश सब प्रकारका परिकर छोड़, क्रोधसे अग्निके समान जलते हुए मुनिको शान्त करनेके लिए, उनसे क्षमा मांगनेके लिए उनके पास दौड़े गये ॥५९॥ जिनकी बुद्धि अत्यन्त संक्लेशमय थी, भ्रुकुटीके भंगसे जिनका मुख विषम हो रहा था, जिनके नेत्र दुःखसे देखने योग्य थे, जिनके प्राण कण्ठगत हो रहे थे और जो अत्यन्त भयंकर थे ऐसे द्वैपायन मुनिको बलदेव और कृष्णने देखा। उन्होंने हाथ जोड़कर बड़े आदरसे मुनिको प्रणाम किया और 'हमारी याचना व्यर्थ होगी' यह जानते हुए भी मोहवश याचना की ॥६०–६१॥ उन्होंने

कहा कि, 'हे साधो ! आपने चिरकालसे जिसकी अत्यधिक रक्षा की है तथा क्षमा ही जिसकी जड़ है ऐसा यह तपका भार क्रोधरूपी अग्निसे जल रहा है सो इसकी रक्षा की जाये, रक्षा की जाये ॥६२॥ यह क्रोध मोक्षके साधनभूत तपको क्षण-भरमें दूषित कर देता है, यह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों वर्गोंका शत्रु है तथा निज और परको नष्ट करनेवाला है ॥६३॥ हे मुनिराज ! प्रमादसे भरे हुए मूर्ख कुमारोंने जो दुष्ट चेष्टा की है उसे क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए, हम लोगोंके लिए प्रसन्न होइए' ॥६४॥ इत्यादि प्रियवचन बोलनेवाले बलदेव और कृष्णने द्वैपायनसे बहुत प्रार्थना की पर वे अपने निश्चयसे पीछे नहीं हटे। उनकी बुद्धि अत्यन्त पापपूर्ण हो गयी थी और वे प्राणियों-सहित द्वारिकापुरीके जलानेका निश्चय कर चुके थे ॥६५॥ उन्होंने बलदेव और कृष्णके लिए दो अंगुलियाँ दिखायीं तथा इशारेसे स्पष्ट सूचित किया कि तुम दोनोंका ही छुटकारा हो सकता है, अन्यका नहीं ॥६६॥

जब बलदेव और कृष्णको यह विदित हो गया कि इनका क्रोध पीछे हटनेवाला नहीं है तब वे द्वारिकाका क्षय जान बहुत दुःखी हुए और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो नगरीकी ओर लौट आये ॥६७॥ उस समय शम्बकुमार आदि अनेक चरमशरीरी यादव, नगरीसे निकलकर दीक्षित हो गये तथा पर्वतकी गुफा आदिमें विराजमान हो गये ॥६८॥ क्रोधरूपी अग्निके द्वारा जिनका तपरूपी श्रेष्ठ धन भस्म हो चुका था ऐसे द्वैपायन मुनि मरकर अग्निकुमार नामक मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव हुए ॥६९॥ वहाँ अन्तर्मुहूर्तमें ही पर्याप्तक होकर उन्होंने यादव कुमारोंके द्वारा किये हुए अपने अपकारको विभंगावधिज्ञानके द्वारा जान लिया ॥७०॥ उन्होंने इस रौद्रध्यानका चिन्तवन किया कि, 'देखो, मैं निरपराधी तपमें लीन था फिर भी इन लोगोंने मेरी हिंसा की अतः मैं इन हिंसकोंकी समस्त नगरीको सब जीवोंके साथ अभी हाल भस्म करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान कर क्रूर परिणामोंका धारक वह दुर्वार देव ज्यों ही आता है त्यों ही द्वारिकामें क्षयको उत्पन्न करनेवाले बड़े-बड़े उत्पात होने लगे ॥७१-७२॥ घर-घरमें जब प्रजाके लोग रात्रिके समय निश्चिन्ततासे सो रहे थे तब उन्हें रोमांच खड़े कर देनेवाले भयसूचक स्वप्न आने लगे ॥७३॥ अन्तमें उस पापबुद्धि क्रोधी देवने जाकर बाहरसे लेकर तिर्यंच और मनुष्योंसे भरी हुई नगरीको जलाना शुरू कर दिया ॥७४॥ वह धूम और अग्निकी ज्वालाओंसे आकुल हो नष्ट होते हुए वृद्ध, स्त्री, बालक, पशु तथा पक्षियोंको पकड़-पकड़कर अग्निमें फेंकने लगा सो ठीक ही है क्योंकि पापी मनुष्यको दया कहाँ होती है ? ॥७५॥ उस समय अग्निमें जलते हुए समस्त प्राणियोंकी चिल्लाहटसे जो शब्द हुए थे वैसे शब्द इस पृथिवीपर कभी नहीं हुए थे ॥७६॥ दिव्य अग्निके द्वारा जब नगरी जल रही थी तब जान पड़ता था कि देव लोग कहीं चले गये थे सो ठीक ही है क्योंकि भवितव्यता दुर्निवार है ॥७७॥ अन्यथा इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने जिस नगरीकी रचना की थी तथा कुबेर ही जिसकी रक्षा करता था वह नगरी अग्निके द्वारा कैसे जल जाती ? ॥७८॥ 'हे बलदेव और कृष्ण ! हम लोग चिरकालसे अग्निके भयसे पीड़ित हो रहे हैं, हमारी रक्षा करो' इस प्रकार स्त्री, बालक और वृद्धजनोंके घबराहटसे भरे शब्द सर्वत्र व्याप्त हो रहे थे ॥७९॥ घबड़ाये हुए बलदेव और कृष्ण कोट फोड़कर समुद्रके प्रवाहोंसे उस अग्निको बुझाने लगे ॥८०॥ बलशाली बलदेवने अपने हलसे समुद्रका जल खींचा परन्तु वह तेलरूपमें परिणत हो गया और उससे अग्नि अत्यधिक प्रज्वलित हो उठी ॥८१॥ जब बलदेव और कृष्णको इस बातका निश्चय हो गया कि अग्नि असाध्य है—बुझायी नहीं जा सकती तब उन्होंने दोनों माताओंको, पिताको तथा अन्य बहुत-से लोगोंको रथपर बैठाकर तथा रथमें हाथी और घोड़े जोतकर रथको पृथिवीपर चलाया परन्तु रथके पहिये जिस प्रकार कीचड़में फँस जाते हैं

उस प्रकार पृथिवीमें फँस गये सो ठीक ही है क्योंकि विपत्तिके समय कहाँ हाथी और कहाँ घोड़े काम आते हैं ? ॥८२–८३॥ हाथी और घोड़ोंको बेकार देख जब दोनों भाई स्वयं ही भुजाओं-से रथ खींचकर चलने लगे तब उस पापी देवने वज्रमय कीलसे कीलकर रथको रोक दिया ॥८४॥ जबतक बलदेव पैरके आघातसे कीलको उखाड़ते हैं तबतक उस क्रोधी दैत्यने नगरका द्वार बन्द कर दिया ॥८५॥ जब दोनों भाइयोंने पैरके आघातसे द्वारके कपाटको शीघ्र ही गिरा दिया तबतक शत्रुने कहा कि तुम दोनोंके सिवाय किसी अन्यका निकलना नहीं हो सकता ॥८६॥

तदनन्तर अब हम लोगोंका विनाश निश्चित है यह जानकर दोनों माताओं और पिताने दुःखी होकर कहा कि 'हे पुत्रो ! तुम जाओ । कदाचित् तुम दोनोंके जीवित रहते वंश घातको प्राप्त नहीं होगा ।' इस प्रकार गुरुजनोंके वचन मस्तकपर धारण कर दोनों भाई अत्यन्त दुःखी हुए तथा दुःखसे पीड़ित दीन माता-पिताको शान्त कर और उनके चरणोंमें गिरकर उनके वचनोंको मानते हुए नगरसे बाहर निकल आये ॥८७–८९॥

ज्वालाओंके समूहसे जिसके महल जल रहे थे ऐसी नगरीसे निकलकर दोनों भाई पहले तो गतिहीन हो गये—इस बातका निश्चय नहीं कर सके कि कहाँ जाया जाये ? वे बहुत देर तक एक-दूसरेके कण्ठसे लगकर रोते रहे । तदनन्तर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥९०॥ इधर वसुदेव आदि यादव तथा उनकी स्त्रियाँ—अनेक लोग संन्यास धारण कर स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥९१॥ बलदेवके पुत्रोंको आदि लेकर जो कुछ चरमशरीरी थे उन्होंने वहीं संयम धारण कर लिया और उन्हें जृम्भकदेव जिनेन्द्र भगवान्‌के पास ले गये ॥९२॥ जिनकी आत्मा धर्मध्यानके वशीभूत थी—जो सम्यक्दर्शनसे शुद्ध थे, तथा जिन्होंने प्रायोपगमन नामक संन्यास धारण कर रखा था ऐसे बहुत-से यादव और उनकी स्त्रियाँ यद्यपि अग्निमें जल रही थीं तथापि भयंकर अग्नि केवल उनके शरीरको नष्ट करनेवाली हुई, ध्यानको नष्ट करनेवाली नहीं ॥९३–९४॥ मनुष्य, तिर्यंच, देव और जड़के भेदसे चार प्रकारका उपसर्ग प्रायः मिथ्यादृष्टि जीवोंको ही आर्तध्यानका करने-वाला होता है, सम्यग्दृष्टि जीवको कभी नहीं ॥९५॥ जो मनुष्य जिनशासनकी भावनासे युक्त हैं वे सम्भावित और असम्भावित किसी भी प्रकारका मरण उपस्थित होनेपर कभी मोहको प्राप्त नहीं होते ॥९६॥

मिथ्यादृष्टि जीवका मरण शोकके लिए होता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीवका समाधि-मरण शोकके लिए नहीं होता ॥९७॥ संसारका नियम ही ऐसा है कि जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है, अतः सदा यह भावना रखनी चाहिए कि उपसर्ग आनेपर भी समाधिपूर्वक ही मरण हो ॥९८॥ वे मनुष्य धन्य हैं जो अग्निकी शिखाओंके समूहसे ग्रस्तशरीर होनेपर भी उत्तम समाधिसे शरीर छोड़ते हैं ॥९९॥ जो तप और मरण निज तथा परको सुख करनेवाला है वही उत्तम है—प्रशंसनीय है, जो तप द्वैपायनके समान निज और परको दुःखका कारण है वह उत्तम नहीं ॥१००॥

दूसरेका अपकार करनेवाला पापी मनुष्य, दूसरेका वध तो एक जन्ममें कर पाता है पर उसके फलस्वरूप अपना वध जन्म-जन्ममें करता है ॥१०१॥ यह प्राणी दूसरोंका वध कर सके अथवा न कर सके परन्तु कषायके वशीभूत हो अपना वध तो भव-भवमें करता है तथा अपने संसारको बढ़ाता है ॥१०२॥ जिस प्रकार तपाये हुए लोहेके पिण्डको उठानेवाला मनुष्य पहले अपने-आपको जलाता है पश्चात् दूसरेको जला सके अथवा नहीं । उसी प्रकार कषायके वशीभूत हुआ प्राणी 'दूसरेका घात करूँ' इस विचारके उत्पन्न होते ही पहले अपने-आपका घात करता है पश्चात् दूसरेका घात कर सके या नहीं कर सके ॥१०३॥ किन्हीं मनुष्योंके लिए यह परम तप

संसारका अन्त करनेवाला होता है पर द्वैपायन मुनिके लिए दीर्घ संसारका कारण हुआ ॥१०४॥ अथवा इस संसारमें अपने कर्मके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाले प्राणीका क्या अपराध है ? क्योंकि यत्न करनेवाला प्राणी भी मोहरूपी वैरीके द्वारा मोहको प्राप्त हो जाता है ॥१०५॥ असहनशील पुरुष दूसरेका अपकार किसी तरह कर भी सकता है परन्तु उसे अपने-आपका तो इस लोक और परलोकमें उपकार ही करना चाहिए ॥१०६॥ क्योंकि दूसरोंको दुःख पहुँचानेसे अपने-आपको भी दुःखकी परम्परा प्राप्त होती है, इसलिए क्षमा अवश्यम्भावी है—अवश्य ही धारण करने योग्य है ऐसा निश्चय करना चाहिए ॥१०७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, विधिके वशीभूत हुए क्रोधसे अन्धे द्वैपायनने जिनेन्द्र भगवान्के वचन छोड़कर बालक, स्त्री, पशु और वृद्धजनोंसे व्याप्त एवं अनेक द्वारोंसे युक्त शोभायमान द्वारिका नगरीको छह मासमें भस्म कर नष्ट कर दिया सो निज और परके अपकारका कारण तथा संसारको बढ़ानेवाले इस क्रोधको धिक्कार है ॥१०८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें द्वारिकाके नाशका वर्णन करनेवाला इकसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६१॥

□

सर्ग- ६२

जो बलदेव और कृष्ण पहले पुण्योदयसे लोकोत्तर उन्नतिको प्राप्त थे, चक्र आदि रत्नोंसे सहित थे, बलवान् थे, बलभद्र एवं नारायण-पदके धारक थे वे ही अब पुण्य क्षीण हो जानेसे रत्न तथा बन्धुजनोंसे रहित हो गये, प्राणमात्र ही उनके साथी रह गये और शोकके वशीभूत हो गये ।।१–२।।

केवल जीवित रहनेकी आशा रखनेवाले दोनों भाई दक्षिण दिशाकी ओर चले। वहाँ वे भूख-प्याससे व्याकुल हो मार्गमें किसी उत्तम आश्रयकी इच्छा करने लगे ।।३।। पाण्डवोंको लक्ष्य कर वे दक्षिण मथुराकी ओर जा रहे थे कि मार्गमें हस्तवप्र नामक नगरमें पहुँचे। वहाँ कृष्ण तो उद्यानमें ठहर गये और बलदेव संकेत कर तथा वस्त्रसे अपना समस्त शरीर ढँककर अन्न-पानी लेनेके लिए नगरमें प्रविष्ट हुए ।।४–५।। उस नगरमें अच्छदन्त नामका राजा रहता था, धृतराष्ट्रके वंशका था, जो पृथिवीमें प्रसिद्ध धनुर्धारी और यादवोंके छिद्र ढूँढ़नेवाला था ।।६।। वीर बलदेवने ज्यों ही उस नगरमें प्रवेश किया त्यों ही उनके रूप-पाशसे वशीभूत हुए लोगोंके झुण्डके-झुण्ड आश्चर्यसे चकित हो उन्हें देखने लगे ।। ७ ।। बलदेवने बाजारमें किसीके लिए अपना कड़ा और कुण्डल देकर उससे अन्नपान—खाने-पीनेकी सामग्री खरीदी और उसे लेकर जब वे नगरके बाहर निकल रहे थे तब राजाके पहरेदारोंने देखकर तथा 'यह बलदेव है' इस प्रकार पहचान कर राजाके लिए खबर कर दी। फिर क्या था, राजाने उनके वधके लिए अपनी समस्त सेना भेज दी ।।८–९।।

नगरके द्वारपर बलदेवको रोकनेवाली सेनाकी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। बलदेवने संकेतसे कृष्णको बुलाया और वे शीघ्र ही वहाँ आ गये ।।१०।। बलदेवने अन्न-पानको किसी जगह अच्छी तरह रखकर हाथी बांधनेका एक खम्भा लिया तथा कृष्णने कुछ क्रुद्धचित्त हो भयंकर अर्गल उठाया ।।११।।

तदनन्तर इन दोनोंके द्वारा मार पड़नेपर वह चतुरंग सेना अपने सेनापतिके साथ विह्वल-चित्त हो इधर-उधर भाग गयी ।।१२।।

तदनन्तर अन्न-पान लेकर दोनों भाई नगरसे निकल विजय नामक वनमें आये। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर सरोवर देखा ।।१३।। सरोवरमें स्नान कर हृदयमें स्थित जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर नाना प्रकारका भोजन किया, अत्यन्त शीतल पानी पिया और क्षण-भर विश्राम किया। विश्रामके बाद दोनों वीर फिर दक्षिण दिशाकी ओर चले और चलते-चलते दूसरोंके लिए अत्यन्त दुर्गम कौशाम्बी नामके भयंकर वनमें प्रविष्ट हुए ।।१४–१५।। उस वनकी समस्त दिशाएँ पक्षियों तथा शृगालोंके शब्दोंसे शब्दायमान थीं, प्याससे पीड़ित मृगोंके झुण्ड वहाँ इधर-उधर फिर रहे थे, बड़ी ऊँची मृगतृष्णा वहाँ उठ रही थी, ग्रीष्मके उग्र सन्तापसे कठोर बहती हुई वायुसे वह वन अत्यन्त असह्य था, तथा दावानलसे वहाँकी लताओंके समूह, झाड़ियाँ और वृक्षोंके समूह जल गये थे ।।१६–१७।।

जहाँ पानीके मिलनेकी कोई सम्भावना नहीं थी, जहाँ दौड़ते हुए जंगली जानवरोंकी श्वासका शब्द हो रहा था, तथा जहां वनेचरोंके द्वारा विदीर्ण किये हुए हाथियोंके गण्ड-स्थलोंसे बिखरकर मोती इधर-उधर पड़े थे, ऐसे वनमें पहुँचकर जब अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य आकाशके मध्यमें आरूढ़ हो रहा था तब थके हुए कृष्णने गुणोंसे श्रेष्ठ बड़े भाई—बलदेवसे कहा कि 'हे आर्य ! मैं प्याससे बहुत व्याकुल हूँ, मेरे ओठ और तालु सूख गये हैं, अब इसके आगे मैं एक डग भी चलनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥१८–२०॥ इसलिए हे आर्य ! अनादि एवं सारहीन संसारमें सम्यग्दर्शनके समान तृष्णाको दूर करनेवाला शीतल जल मुझे पिलाइए '॥२१॥

इस प्रकार कहनेपर स्नेहके संचारसे जिनका मन आर्द्र हो रहा था ऐसे बलदेवने गरम-गरम श्वास छोड़नेवाले कृष्णसे कहा कि 'हे भाई ! मैं शीतल पानी लाकर अभी तुम्हें पिलाता हूँ तुम तबतक जिनेन्द्र भगवान्के स्मरणरूपी जलसे प्यासको दूर करो ॥ २२–२३ ॥ यह पानी तो थोड़े समय तकके लिए ही प्यासको दूर करता है पर जिनेन्द्र भगवान्का स्मरणरूपी पानी पीते ही के साथ उस तृष्णाको जड़-मूलसे नष्ट कर देता है ॥२४॥ तुम यहाँ इस वृक्षकी शीतल छायामें बैठो, मैं तुम्हारे लिए सरोवरसे शीतल पानी लाता हूँ ॥२५॥

इस प्रकार छोटे भाई कृष्णसे कहकर उसे अपने हृदयमें धारण करते हुए बलदेव अपने श्रमका विचार न कर पानी लेनेके लिए गये ॥२६॥ इधर कृष्ण भी बतायी हुई वृक्षकी सघन छायामें जा पहुँचे और कोमल वस्त्रसे शरीरको ढँककर मृदु मृत्तिकासे युक्त पृथिवीपर पड़ रहे। उसी सघन वनमें वे थकावट दूर करनेके लिए बाँयें घुटनेपर दाहिना पाँव रखकर क्षण-भरके लिए सो गये ॥२७–२८॥

शिकार-व्यसनका प्रेमी जरत्कुमार अकेला उस वनमें घूम रहा था, सो अपनी इच्छासे उसी समय उस स्थानपर आ पहुँचा ॥२९॥ भाग्यकी बात देखो कि कृष्णके स्नेहभरा जो जरत्कुमार उनके प्राणोंकी रक्षाकी इच्छासे द्वारिकासे निकलकर मृगकी तरह वनमें प्रविष्ट हो गया था वही उस समय विधाताके द्वारा लाकर उस स्थानपर उपस्थित कर दिया गया। धनु-र्धारी जरत्कुमारने दूरसे आगे देखा तो उसे कुछ अस्पष्ट-सा दिखायी दिया ॥३०–३१॥ उस समय कृष्णके वस्त्रका छोर वायुसे हिल रहा था इसलिए जरत्कुमारको यह भ्रान्ति हो गयी कि यह पास ही में सोये हुए मृगका कान हिल रहा है। फिर क्या था झाड़ोंसे जिसका शरीर छिपा हुआ था और शिकारीके समान जिसकी क्रूर बुद्धि हो गयी थी ऐसे जरत्कुमारने बड़ी मज-बूतीसे कान तक धनुष खींचकर तीक्ष्ण बाणसे कृष्णका पैर वेध दिया ॥३२–३३॥ पदतलके विद्ध होते ही श्रीकृष्ण सहसा उठ बैठे और सब दिशाओंमें देखनेके बाद भी जब कोई दूसरा मनुष्य नहीं दिखा तब उन्होंने जोरसे इस प्रकार कहा कि किस अकारण वैरीने मेरा पदतल वेधा है। वह यहां मेरे लिए अपना कुल तथा नाम साफ-साफ बतलाये ॥३४–३५॥ जिस मुझने युद्धमें कभी भी अज्ञात-कुल और अज्ञात नामवाले मनुष्यका वध नहीं किया आज उस मेरे लिए यह क्या विपत्ति आ पड़ी ? ॥३६॥ इसलिए कहो कि अज्ञातकुल नामवाले आप कौन हैं ? तथा जिसके वैरका पता नहीं ऐसा कौन इस वनमें मेरा घातक हुआ है ? ॥३७॥

श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर जरत्कुमारने कहा कि हरिवंशमें उत्पन्न हुए एक वसुदेव नामके राजा हैं जो बलदेव और कृष्णके पिता हैं। मैं जरत्कुमार नामका उन्हींका अतिशय प्यारा पुत्र हूँ। जहां कायर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ऐसे इस वनमें मैं अकेला ही वीर घूमता रहता हूँ। नेमिजिनेन्द्रने आज्ञा की थी कि जरत्कुमारके द्वारा कृष्णका मरण होगा सो मैं उनकी इस आज्ञासे डरकर बारह वर्षसे इस वनमें रह रहा हूँ। मुझे अपना छोटा भाई कृष्ण बहुत ही

प्यारा था, इसलिए इतने समयसे यहाँ रह रहा हूँ, इस बीचमें मैंने किसी आर्यका नाम भी नहीं सुना। फिर आप यहाँ कौन हैं ? ॥३८–४१॥

जरत्कुमारके यह वचन सुन कृष्णने जान लिया कि यह हमारा भाई है तब स्नेहसे कातर हो उन्होंने 'हे भाई! यहाँ आओ, यहाँ आओ' इस प्रकार संभ्रमपूर्वक उसे बुलाया ॥४२॥ जरत्कुमारने भी जान लिया कि यह हमारा छोटा भाई है तब 'हाय हाय' शब्दसे मुखको शब्दायमान करता हुआ वह वहाँ आया और धनुष-बाणको पृथिवीपर फेंक श्रीकृष्णके चरणोंमें आ गिरा ॥४३॥

कृष्णने उसे उठाया तो वह कण्ठमें लगकर महाशोक करने लगा। कृष्णने कहा कि हे बड़े भाई! अत्यधिक शोक मत करो, होनहार अलंघनीय होती है ॥४४॥ हे श्रेष्ठ पुरुष! आपने प्रमादका निराकरण करनेके लिए समस्त सुखसम्पदाओंको छोड़ चिरकाल तक वनमें निवास करना स्वीकृत किया। अपयश और पापसे डरनेवाला सज्जन पुरुष बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करता है परन्तु दैवके कुटिल होनेपर उसका वह यत्न क्या कर सकता है ? ॥४५–४६॥

तदनन्तर जरत्कुमारने कृष्णसे वनमें आनेका कारण पूछा तो उन्होंने प्रारम्भसे लेकर द्वारिकादाह तकका सब दारुण समाचार कह सुनाया ॥४७॥ गोत्रका क्षय सुनकर जरत्कुमार प्रलापसे मुखर होता हुआ बोला कि हा भाई! चिरकालके बाद आप दिखे और मैंने आपका यह अतिथि-सत्कार किया! ॥४८॥ मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? चित्तकी शान्ति कहाँ प्राप्त करूँ ? हा कृष्ण! तुझे मारकर मैंने लोकमें दुःख तथा अपयश दोनों प्राप्त किये ॥४९॥ इत्यादि रूपसे विलाप करते हुए जरत्कुमारसे उत्तम हृदयके धारक कृष्णने कहा कि हे राजेन्द्र! प्रलापको छोड़ो, समस्त जगत् अपने किये हुए कर्मको अवश्य भोगता है ॥५०॥ संसारमें कौन किसके लिए सुख देता है ? अथवा कौन किसके लिए दुःख देता है ? और कौन किसका मित्र है अथवा कौन किसका शत्रु है ? यथार्थमें अपना किया हुआ कार्य ही सुख अथवा दुःख देता है* ॥५१॥ बड़े भाई राम मेरे लिए पानी लानेके लिए गये हैं सो जबतक वे नहीं आते हैं तबतक तुम शीघ्र ही यहाँसे चले जाओ। सम्भव है कि वे तुम्हारे ऊपर अशान्त हो जायें ॥५२॥ तुम जाओ और पहलेसे ही पाण्डवोंके लिए सब समाचार कह सुनाओ। वे अपने कुलके हितकारी आप्तजन हैं अतः तुम्हारी अवश्य रक्षा करेंगे ॥५३॥ इतना कहकर उन्होंने पहचानके लिए उसे आदरपूर्वक अपना कौस्तुभमणि दे दिया और कुछ थोड़ा मुड़कर कहा कि जाओ। हाथमें कौस्तुभमणि लेते हुए जरत्कुमारने कहा कि हे देव! मुझे क्षमा कीजिए। इस प्रकार कहकर और धीरेसे वह बाण निकालकर वह उलटे पैरों वहाँसे चला गया ॥५४–५५॥

जरत्कुमारके चले जानेपर कृष्ण व्रणकी तीव्र वेदनासे व्याकुल हो गये। उन्होंने उत्तराभिमुख होकर पंच-परमेष्ठियोंको नमस्कार किया ॥५६॥ वर्तमान तीर्थंकर श्री नेमिजिनेन्द्रको हाथ जोड़कर गुणोंका स्मरण करते हुए बार-बार नमस्कार किया ॥५७॥ क्योंकि जिनेन्द्र भगवान्के विहारमे पृथिवीके समस्त उपद्रव नष्ट हो चुके हैं इसलिए शिर रखकर वे पृथ्वीरूपी शय्यापर लेट गये ॥५८॥

तदनन्तर जिन्होंने वस्त्रसे अपना समस्त शरीर ढँक लिया था, सब परिग्रहसे जिनकी बुद्धि निवृत्त हो गयी थी और जो सबके साथ मित्रभावको प्राप्त थे ऐसे श्रीकृष्ण इस प्रकारके शुभ विचारको प्राप्त हुए ॥५९॥

वे पुत्र, पोते, स्त्रियाँ, भाई, गुरु और बान्धव धन्य हैं जो भविष्यत्का विचार कर अग्निके उपद्रवसे पहले ही तपश्चरण करने लगे ॥६०॥ बड़े कष्टकी बात है कि हजारों स्त्रियाँ

और हजारों मित्रगण तपका कष्ट न कर अग्निके मुखमें मृत्युको प्राप्त हो गये ॥६१॥ कर्मके प्रबल भारसे मैंने भी तप नहीं किया इसलिए मेरा सम्यग्दर्शन ही मुझे संसारपातसे बचानेके लिए हस्तावलम्बनरूप हो ॥६२॥ इत्यादि शुभ विचार जिनकी आत्मामें उत्पन्न हो रहे थे, और जो भविष्यत् कालमें तीर्थंकर होनेवाले थे ऐसे श्रीकृष्ण पहलेसे ही बद्धायुष्क होनेके कारण मरकर तीसरी पृथिवीमें गये ॥६३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो आगे चलकर सम्यग्दर्शनके कारण तीर्थंकर पदसे युक्त होंगे वे नीतिनिपुण, भव्य प्रजाके परम बन्धु, भोगी कृष्ण, दक्षिण भरतार्धकी विभुताको प्रकट कर, प्रतिदिन बन्धुजनरूपी सागरकी वृद्धिको बढ़ाकर एवं एक हजार वर्ष तक जीवित रहकर अपने आचरणके अनुरूप तीसरी पृथिवीमें गये ॥६४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कृष्णके परलोकगमनका वर्णन करनेवाला बासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६२॥

□

सर्ग- ६३

अथानन्तर स्नेहसे भरे बलदेव जल प्राप्त करनेके लिए बहुत व्याकुल हुए। वे हृदयमें कृष्णको धारण किये हुए आगे बढ़े जाते थे। यद्यपि अपशकुन उन्हें पद-पदपर रोकते थे तथापि वे दूसरे वनमें बहुत दूर जा पहुँचे ॥ १ ॥ जिस मार्गसे मृगोंके झुण्ड जाते थे बलदेव उसी मार्गसे दौड़ते जाते थे और वे जगह-जगह मृगतृष्णाको जल समझकर लुभा जाते थे। उस समय उन्हें समस्त दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो लहराते हुए तालाबोंसे युक्त ही हों ॥ २ ॥ तदनन्तर बलदेवको एक तालाब दिखा जो मधुर शब्द करनेवाले चक्रवाक, कलहंस और सारस पक्षियोंसे युक्त था, तरंगोंसे व्याप्त था एवं भ्रमर-गुंजित कमलोंसे सहित था ॥ ३ ॥ तालाबके देखते ही बलदेवके हृदयने एक लम्बी सांस ली और उसकी शीतल सुगन्धित वायु सम्मुख आकर इनके शरीरसे लग गयी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उसने अपनी मित्रता ही प्रकट की हो ॥ ४ ॥

तदनन्तर चारों ओरसे आनेवाले प्यासे जंगली जानवर जिन्हें भयपूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे ऐसे बलदेव जंगली हाथियोंके मदजलसे सुवासित उस सरोवरपर बड़े आदरसे जा पहुँचे ॥५॥ उन्होंने घाटमें अवगाहन कर शीतल पानी पिया, अपनी प्यासकी व्यथा दूर कर और कमलके पत्तोका एक पात्र बनाकर उसे पानीसे भरा तथा कपड़ेसे उसे ढँक लिया ॥ ६ ॥ पानी लेकर वे बड़े वेगसे दौड़े। उस समय पैरोंके आघातसे उड़ी धूलिसे उनके शिरके बाल धूसरित हो गये थे और 'मैं अनेक विघ्नोंसे भरे वनमें कृष्णको अकेला छोड़ आया हूँ' इस आशंकासे उनका हृदय बार-बार कम्पित हो रहा था ॥ ७ ॥

तदनन्तर वस्त्रके द्वारा सब ओरसे जिनका शरीर ढँका था ऐसे कृष्णको बलदेवने दूरसे देखा। देखकर वे सोचने लगे कि मैं शूरवीर कृष्णको जिस भूमिमें सुला गया था यह वहाँ गहरी नींदमें सो रहा है ॥ ८ ॥ पास आनेपर उन्होंने विचार किया कि अभी यह सुखनिद्रासे सो रहा है इसलिए स्वयं ही जगने दिया जाये। इस प्रकार कृष्णको जगानेकी उपेक्षा कर वे स्वयं ही उनके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ९ ॥ जब कृष्ण बहुत देर तक नहीं जगे तब बलदेवने कहा, 'वीर! इतना अधिक क्यों सो रहे हो? बहुत हो गया, निद्रा छोड़ो और इच्छानुसार जल पिओ'। इस प्रकार मधुर स्वरमें एक-दो बार कहकर वे पुनः वचन रोककर चुप बैठ रहे ॥१०॥

तदनन्तर बलभद्रने देखा कि तीक्ष्ण मुखवाली काली एक मक्खी रुधिरकी गन्धसे कृष्णके ओढ़े हुए वस्त्रके भीतर घुस तो गयी पर निकलनेका मार्ग न मिलनेसे व्याकुल हो रही है ॥ ११ ॥ यह देख उन्होंने शीघ्र ही कृष्णका मुख उघाड़ा और उन्हें निष्प्राण देख 'हाय मैं मारा गया' यह कहकर वे एकदम चीख पड़े। 'हाय-हाय! यह कृष्ण प्याससे मर ही गया है' यह सोच वे उनके शरीरपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ कृष्णके मोहसे जिनका मन अत्यन्त मोहित हो रहा था ऐसे बलदेवको तत्काल मूर्च्छा आ गयी। यद्यपि मूर्च्छाका आना अनिष्ट था तथापि उस समय उसने इनका बड़ा उपकार किया। अन्यथा स्नेहरूपी पाशसे दृढ़ बँधे

हुए बलदेव अवश्य ही प्राण त्याग कर देते ॥ १३ ॥ सचेत होनेपर वे अपने हाथसे चारों ओर कृष्णके शरीरका स्पर्श करने लगे। उसी समय उन्होंने तीव्र गन्धसे युक्त रुधिरसे लाल-लाल पैरका घाव देखा ॥ १४ ॥ और देखते ही निश्चय कर लिया कि सोते समय ही किसीने तीक्ष्ण बाणसे इसे पैरमें प्रहार किया है। जिनका जागना कठिन है ऐसे कृष्णको मारनेवाला कौन पुरुष आज यहाँ शिकारके फलको प्राप्त हुआ है ? ॥१५॥ इस प्रकार कहकर बलवान् बलदेवने कुपित हो ऐसा भयंकर सिंहनाद किया जो समस्त वनमें व्याप्त हो गया तथा जिसने वनके दुर्गम स्थानोंमें चलनेवाले व्याघ्र, सिंह और हाथियोंका गर्व नष्ट कर दिया ॥१६॥ उन्होंने कहा कि भाग्यके फेरसे सोते हुए मेरे छोटे भाईको जिस किसी अकारण वैरीने छलसे मारा है वह आज शीघ्र ही मुझे दर्शन दे—मेरे सामने आवे ॥१७॥ यशरूपी धनको धारण करनेवाले शूरवीर ऐसे शत्रुको भी नहीं मारते जो सो रहा हो, शस्त्ररहित हो, नम्रीभूत हो, मानरहित हो, बार-बार पीठ दिखाकर भाग रहा हो, अनेक विघ्नोंसे युक्त हो, स्त्री हो अथवा बालक हो ॥१८॥ इस प्रकार जोर-जोरसे कहते हुए वे इधर-उधर कुछ दूर तक आकर दौड़े भी परन्तु जब उन्हें किसी दूसरेका मार्ग नहीं मिला तब वे कृष्णके पास वापस आकर तथा उन्हें गोदमें लेकर रोने लगे ॥१९॥

हाय जगत्के प्रिय ! हा जगत्के स्वामी ! हा समस्त जनोंको आश्रय देनेवाले ! हा जनार्दन ! तू मुझे छोड़ कहाँ चला गया ? हा भाई ! तू जल्दी आ, जल्दी आ—इस प्रकार कहते हुए वे चिरकाल तक रोते रहे ॥२०॥ वे चेतनाशून्य—निर्जीव कृष्णको सुन्दर एवं सन्तापको दूर करनेवाला पानी बार-बार पिलाते थे परन्तु जिस प्रकार दूरानुदूर भव्यके हृदयमें सम्यग्दर्शन नहीं प्रवेश करता है उसी प्रकार उनके गलेमें वह जल थोड़ा भी प्रवेश नहीं करता था ॥२१॥ मूढ़बुद्धि बलदेव सामने बैठकर कोमल हाथोंसे उनका मुख धोते थे, हर्षपूर्वक उसे देखते थे, चूमते थे, सूँघते थे, और वचन सुननेकी इच्छा करते थे। आचार्य कहते हैं कि ऐसी आत्म-मूढ़ताको धिक्कार है ॥२२॥ 'स्वर्गके समान विशाल वैभवसे युक्त द्वारिकापुरी अग्निसे भस्म हो गयी है इसलिए अब जीनेकी क्या आवश्यकता है' ? यह सोचकर क्या तू तप्त हो रहा है ? अरे नहीं भाई ! नाना प्रकारकी अविनाशी खानोंसे युक्त भरत क्षेत्रकी भूमि पहलेके समान अब भी मौजूद है ! ॥२३॥ 'भोजराजका कुल तथा समस्त यादवोंका क्षय हो जानेसे मैं बन्धुरहित हो गया हूँ' यह सोचकर क्या तू मोहको प्राप्त हो रहा है ? पर ऐसा करना उचित नहीं। हे दृढ़प्रतिज्ञ ! यदि तू और मैं जीवित हूँ तो समझ कि हमारे समस्त बन्धुओंका समूह जीवित है ॥२४॥ अनेकों पूर्व जन्ममें तथा इस जन्ममें भी निरन्तर मेरी ओर तू स्थिर नयन होकर देखता रहा फिर भी तुझे तृप्ति नहीं हुई फिर आज तू तृप्त कैसे हो गया ? ॥२५॥ हाय ! मोहवश तुझे अकेला छोड़ पानीके लिए गये हुए मैंने लोकके सारभूत नररूपी रत्नोंका आभूषण अपहृत करा लिया। अन्यथा मेरे पास रहते इसे हरनेवाला कौन था ? ॥२६॥ अरे भाई ! तू तो कंसके क्रोध और मदरूपी पर्वतको नष्ट करनेके लिए वज्रस्वरूप था। भूमिगोचरी और विद्याधररूपी सर्पोंको नष्ट करनेके लिए गरुड़स्वरूप था और जरासन्धके यशरूपी सागरको पीनेवाला था पर खेद है कि तू इस गोष्पदमें डूब गया ॥२७॥

हे नारायण ! देख, जो सूर्य तेरे समान अपने उग्र तेजसे शत्रुतुल्य रात्रिके अन्धकारको नष्ट कर संसारको सन्तप्त करता है वही अब अस्ताचलकी ओर जा रहा है ॥२८॥ इस सूर्यने तुझे दीर्घ निद्रामें निमग्न देखकर ही मानो अपने किरणरूपी हाथ अन्य स्थानोंसे संकोच कर अस्ताचलरूपी मस्तकपर रख छोड़े हैं और उनसे ऐसा जान पड़ता है मानो तेरे प्रति

शोक ही कर रहा है। सो ठीक ही है क्योंकि तेरा यह सोना तीनों लोकोंमें किसके शोकके लिए नहीं है ? ॥२९॥ जो वारुणी—पश्चिम दिशारूपी मदिराका अधिक सेवन कर लाल-लाल हो रहा है तथा आँसुओंसे युक्त चक्रवाक पक्षियोंका समूह जिसकी दशापर शोक प्रकट कर रहा है ऐसा यह सूर्य नीचे गिरा जा रहा है सो ठीक ही है क्योंकि वारुणी (मदिरा) का प्रेमी कौन व्यक्ति नीचे नहीं गिरता है ? ॥३०॥ अथवा यह सूर्य, इस समय शोकका भार दूर कर समुद्रमें अवगाहन कर रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो स्नान कर तुझे जलांजलि ही देना चाहता है। ठीक ही है क्योंकि कालको जाननेवाला पुरुष यथायोग्य कार्य करता ही है ॥३१॥ हे भाई ! देख, यह समस्त संसार सन्ध्याकी लालीसे सब ओरसे आच्छादित हो रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारे दीर्घ निद्रामें निमग्न होनेपर संसारके सब मनुष्योंके रोदनजन्य नेत्रोंकी लालिमासे ही मानो लाल-लाल हो रहा है ॥३२॥ हे देवभक्त ! यह सन्ध्या भी फीकी पड़ बड़े वेगसे जाते हुए सूर्यके रथके पीछे-पीछे चली जा रही है। उठ सन्ध्या-वन्दन कर। हे देव ! व्यर्थकी निद्रासे क्या कार्य सिद्ध होता है ? ॥३३॥ जो अतिदुःषमा नामक छठे कालके समान समस्त जगत्को एक वर्ण (ब्राह्मणादि वर्णके भेदसे रहित) एक वर्णरूप, पक्षमें एक श्यामवर्ण रूप कर रही है, अतिशय दुष्ट है, एवं अपेतदर्शना—सम्यग्दर्शनसे रहित (पक्षमें देखनेकी शक्तिसे रहित) है ऐसी यह अन्धकारकी सन्तति बड़े वेगसे सब ओर फैल रही है ॥३४॥ देखो, ये घ्राणेन्द्रिय और कर्णेन्द्रियके बलसे युक्त जंगली जानवर अपने पैरोंकी गन्ध और शब्दको ग्रहण कर इस ओर आ रहे हैं इसलिए आओ इस दुर्गमें चलें वहाँ अपनी रात्रि कुशलपूर्वक बीत जायेगी ॥३५॥ हे भाई ! जो तू फूलोंसे चित्र-विचित्र, आश्चर्यकारी मण्डपमें बन्धुजनों तथा राजाओंको दर्शन देता था और लक्ष्मीको पुष्ट करनेवाले, अत्यन्त कोमल एवं तकियोंसे सुशोभित शय्यापर स्त्रीजनोंके साथ शयन करता था हे लक्ष्मीपते ! वही तू आज पर्वत और वनकी गुफाओंमें रहनेवाले गीध, कौवे तथा शृगाल आदि भक्षक जन्तुओंके समूहसे सेवित होता हुआ कंकरीली-पथरीली भूमिपर सो रहा है ॥३६-३७॥ जो तू पहले प्रणय-क्रीड़ासे कुपित स्त्रियोंको प्रसन्न करता था और तेरे कुपित हो जानेपर वे तुझे प्रसन्न करती थीं और इस तरह रति-क्रीड़ासे रात्रि व्यतीत करता था वही तू आज चेतनासे रहित हो रात्रि व्यतीत कर रहा है ॥३८॥ हे वीर ! जो तू पहले प्रातःकालमें सुन्दर वारवनिताओंके सुसंगीतों एवं वन्दीजनोंके उच्च पाठोंके शब्दोंसे प्रबोधको प्राप्त होता था—जागता था, वही तू आज शृगालियोंके विरस शब्दोंसे प्रबोधको प्राप्त हो रहा है ॥३९॥ हे भाई ! अब प्रातःकाल हुआ चाहता है। पूर्व सूर्यरूप पतिके द्वारा प्रेषित अनुरागवती सन्ध्या भी लाल हो रही है सो ऐसी जान पड़ती है मानो तुम्हारा समाचार जाननेके लिए ही सूर्यने उसे पहलेसे भेजा है अतः शय्यासे विरक्त होओ—उठ कर बैठो ॥४०॥ देखो, यह उदयाचलसे सूर्य उदित हो रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो इस समय तुझ प्रधान पुरुषके लिए अपनी किरणोंसे विकसित कमलोंकी लक्ष्मीसे युक्त अर्घ देनेके लिए ही शीघ्रतासे बढ़ा आ रहा है ॥४१॥

बलभद्रको कृष्ण प्राणोंसे अधिक प्यारे थे इसलिए उन्होंने उन्हें जगानेके लिए सैकड़ों प्रिय वचन कहे परन्तु जिस प्रकार पहलेसे प्रगाढ़ नींदमें सोये भोले-भाले बालकके विषयमें कहे प्रिय वचन निष्फल जाते हैं उसी प्रकार उनके वे प्रिय वचन निष्फल गये ॥४२॥ जिस प्रकार जन्मकालमें कंसके भयसे बलभद्रने कृष्णको अपने भुजरूप पंजरके मध्यमें ले लिया था तथा वसुदेवने उनपर छत्र लगा लिया था उसी प्रकार अब भी उन्होंने स्पर्शनेन्द्रियसम्बन्धी सुखका अनुभव करते हुए उन्हीं भुजरूप पंजरके मध्यमें ले लिया और लेकर वे वनके मध्यमें इधर-उधर घूमने लगे ॥४३॥

इस प्रकार अनेक दिन-रात व्यतीत होनेपर भी उनके मन, वचन और शरीरमें जरा भी आलस्य नहीं आया—वे प्रतिदिन कृष्णके शवको धारण किये हुए वनमें घूमते रहें तथा रंच मात्र भी प्रीतिको प्राप्त नहीं हुए ॥४४॥

जब ग्रीष्म ऋतु चली गयी और आतपके वैभवको नष्ट करनेवाली वर्षा ऋतुने गरजते बादलोंकी घटा तथा जलवर्षासे जगत्में जहाँ-तहाँ हर्ष प्राप्त करा दिया तब कृष्णके कहे अनुसार भीलके विषम वेषको धारण करता हुआ जरत्कुमार अखण्डित रूपसे सुन्दर लोगोंसे व्याप्त पाण्डवोंकी पुरी दक्षिण मथुरामें पहुँचा ॥ ४५–४६ ॥

कृष्णके दूतका कार्य करनेवाले जरत्कुमारने पाण्डवोंकी सभामें प्रवेश कर विनयपूर्वक दूतकी सब मर्यादाओंका पालन किया। तदनन्तर जब वह सभामें बैठ गया तब युधिष्ठिर आदिने उससे स्वामीकी कुशल-वार्ता पूछी ॥४७॥ शोकसे जिसका कण्ठ रुँध गया था तथा स्वर गद्‌गद हो गया था ऐसे जरत्कुमारने द्वारिका तथा कुटुम्बीजनोंके जल जाने और अपने प्रमादसे कृष्णके मारे जानेका सब समाचार कह दिया और विश्वास दिलानेके लिए देदीप्यमान किरणोंसे युक्त, कृष्णका दिया कौस्तुभमणि उनके सामने दिखा दिया। तदनन्तर बहुत भारी दुःखसे भरा जरत्कुमार गला फाड़-फाड़कर जोरसे रोने लगा ॥४८–४९॥ उसी समय माता कुन्ती तथा पाण्डवोंकी स्त्रियोंके कण्ठसे उत्पन्न रोनेका विशाल शब्द उठ खड़ा हुआ। यही नहीं, उस समय जो वहाँ विद्यमान थे वे सभी रोने लगे जिससे पाण्डवोंके भवनमें समुद्र-जैसी ध्वनि गूँज उठी ॥५०॥ वे सब रोते-रोते कह रहे थे कि 'हा प्रधानपुरुष! हा अद्वितीय धीर! हा जगत्का कष्ट दूर करनेमें सदा उद्यत रहनेवाले! विधिने तुम्हारे ऊपर यह क्या चेष्टा की। हाय-हाय, बड़े दुःखकी बात है' इस प्रकार चिरकाल तक रुदन चलता रहा ॥५१॥

तदनन्तर जब रोना-चीखना बन्द हुआ तब जगत्का वृत्तान्त जाननेवाले पाण्डव आदि बान्धवोंने सब ओर घेरकर बैठे आत्मीयजनोंके सन्तोषके अर्थ कृष्णके लिए जल दिया* ॥५२॥ पहलेका निन्द्यवेष दूर कर जिसने मानसिक व्यथाको कुछ-कुछ कम कर दिया था ऐसे जरत्कुमारको आगे कर पाण्डव लोग दुःखसे पीड़ित बलदेवको देखनेकी इच्छासे चले ॥५३॥ द्रौपदी आदि रानियों, माता-पुत्रों एवं सेनाके साथ बड़ी शीघ्रतासे चलकर कुछ दिनों बाद उन्होंने वन-में बलदेवको प्राप्त कर देखा। उस समय बलदेव कृष्णके मृत शरीरको उबटन लगाना, स्नान कराना तथा आभूषण पहनाना आदि व्यर्थ क्रियाएँ कर रहे थे। उन्हें देख सब बन्धुजन आदरके साथ उनसे लिपट गये और उच्च शब्द कर चिरकाल तक रोते रहे ॥५४–५५॥ कुन्ती और उनके पुत्रोंने नमस्कार कर बलदेवसे कृष्णके दाह-संस्कारकी प्रार्थना की परन्तु जिस प्रकार बालक विषफलको नहीं देता है उलटा कुपित होता है उसी प्रकार बलदेवने भी माँगनेपर कृष्णका मृतक शरीर नहीं दिया, उलटा क्रोध प्रकट किया ॥५६॥ बलदेवने कहा कि हे पाण्डवो! स्नानकी शीघ्र तैयारी करो और फिर उत्तम भोजन-पानकी व्यवस्था करो, हमारा प्रभु (कृष्ण) प्यासा है तथा शीघ्र ही भोजन करना चाहता है। बलदेवके इस प्रकार कहनेपर पाण्डवोंने स्नान तथा भोजन-पानकी तैयारी की ॥५७॥

बलदेवने कृष्णको आसनपर बैठाकर नहलाया, भोजन कराया और पानी पिलाया परन्तु उनका वह सब प्रयत्न व्यर्थ गया। यद्यपि पाण्डव भी बलदेवके इस कार्यको व्यर्थ मानते थे तथापि वे उनके कहे अनुसार आचरण कर अपने आपको कृतकृत्य मानते थे ॥५८॥ इस प्रकार बलदेवके पीछे-पीछे चलनेवाले पाण्डवोंने उनके कहे अनुसार कार्य कर उस वनमें वर्षाकाल पूर्ण किया। तदनन्तर उनके मोहरूपी मेघपटलको भेदनेके लिए शरद्‌काल प्रकट

हुआ ॥५९॥ पहले कृष्णके शरीरसे सदा सप्तपर्णके समान सुगन्धि आती थी परन्तु उस समय दुर्गन्ध आने लगी और वह दुर्गन्ध दूर देश तक फैल गयी सो ठीक ही है क्योंकि दोनों गन्धोंकी एक साथ स्थिति नहीं होती ॥६०॥

अथानन्तर—कृष्णका भाई सिद्धार्थ, जो सारथि था, मरकर स्वर्गमें देव हुआ था और जिसने दीक्षा लेते समय सम्बोधनेकी व्यवस्था स्वीकृत की थी, काललब्धिकी निकटतासे सम्बोधनेके लिए बलदेवके निकट आया ॥६१॥ उसने एक मायामयी ऐसा रथ बलदेवके लिए दिखाया जो पर्वतके अत्यन्त विषम तटको पार कर तो टूटा नहीं और सम—चौरस मार्गपर आते ही टूट गया। वह देव उस रथकी सन्धिको फिरसे ठीक कर रहा था परन्तु वह ठीक होता नहीं था ॥६२॥ बलदेवने यह देख उससे कहा कि हे भाई! बड़ा आश्चर्य है जो तेरा रथ पर्वतके विषम तटपर तो टूटा नहीं और वह समान मार्गमें टूट गया। अब इसका इस जन्ममें फिरसे खड़ा होना कैसे सम्भव है? इसे ठीक करनेका तेरा प्रयत्न व्यर्थ है ॥६३॥ इसके उत्तरमें उस देवने कहा कि जो कृष्ण महाभारत-जैसे रणका पारदर्शी है अर्थात् उतने विकट युद्धमें जिसका बाल बांका नहीं हुआ, वह जरत्कुमारके हाथमें स्थित धनुषसे छूटे बाणके लगने मात्रसे नीचे गिर गया। अव इस जन्ममें उसका फिरसें उठना कैसे सम्भव हो सकता है? ॥६४॥ इतना कह वह देव, जहाँ पानीका अंश भी नहीं था ऐसे शिलातलपर कोमल कमलिनी लगाने लगा। यह देख बलदेवने पूछा कि शिलातलपर कमलिनीकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है? ॥६५॥ इसका उत्तर देवने दिया कि निर्जीव शरीरमें कृष्णकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है? उत्तर देनेके बाद वह एक सूखे वृक्षको सींचने लगा। बलदेवने फिर पूछा—भाई! सूखे वृक्षको सींचनेसे क्या लाभ है? इसका देवने उत्तर दिया कि मृत कृष्णको स्नानादि करानेसे क्या लाभ है? तदनन्तर वह देव एक मरे बैलके शरीरको घास-पानी देने लगा। यह देख बलदेवने फिर पूछा कि अरे मूर्ख! इस मृतक शरीरको घास-पानी देनेसे क्या लाभ है? इसके उत्तरमें देवने कहा कि मृतक कृष्णको आहार-पानी देनेसे क्या लाभ है? इस प्रकार उस देवने बड़ी कठिनाईसे बलदेवको समझाया ॥६६॥ प्रतिबोधको प्राप्त हुए बलदेव कहने लगे कि कृष्ण सचमुच ही प्राणरहित हो गया है। हे भद्र मानुष! तू जो कह रहा है वह ऐसा ही है, यही सत्य है, इसमें रंचमात्र भी अन्यथा बात नहीं है; हे सत्पुरुष! हे भव्य! तूने ठीक ही कहा है ॥६७॥ इसके उत्तरमें देवने कहा कि यहाँ जो कुछ हुआ है वह सब नेमिजिनेन्द्र पहले ही कह चुके थे। संसारकी स्थितिको जानते हुए भी आपने कृष्णका मृतशरीर धारण कर छह माह व्यर्थ ही बिता दिये ॥६८॥ इस संसारमें कौन किसका बहिरंग हिंसक है? अपना अन्तरंग शुभ कर्म ही रक्षक है। यथार्थमें आयु ही अपनी रक्षाका कारण है, उसका क्षय होनेपर सब प्रकारसे क्षय हो जाता है ॥६९॥ सम्पत्ति हाथीके कानके समान चंचल है। संयोग, प्रियजनोंके वियोगसे दुःख देनेवाले हैं और जीवन मरणके दुःखसे नीरस है। एक मोक्ष ही अविनाशी है अतः विद्वज्जनोंको उसे ही प्राप्त करना चाहिए ॥७०॥ इस प्रकार पूर्वरूपको धारण करनेवाले अपने वंशके देवसे जिन्हें रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी और जिनका मोह दूर हो गया था ऐसे बलदेव, मेघपटलसे रहित चन्द्रमाके समान उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७१॥

तदनन्तर जरत्कुमार और पाण्डवोंके साथ उन्होंने तुंगीगिरिके शिखरपर कृष्णका दाह-संस्कार कर जरत्कुमारको राज्य दिया और जीवनको क्षणभंगुर समझ परिग्रहके त्यागका निश्चय कर साथियोंके साथ उसी पर्वतके शिखरका आश्रय लिया। उन्होंने, 'मैं यहाँ रहता हुआ भी पल्लव देशमें स्थित श्री नेमिजिनेन्द्रकी शिष्यताको प्राप्त हुआ हूँ' यह कहकर पंच-

मुष्टियोंसे शिरके बाल उखाड़कर मुनि-दीक्षा धारण कर ली ॥७२–७४॥ बलदेव शरीरसे अत्यन्त सुन्दर थे। इसलिए पारणाओंके लिए नगरमें प्रवेश करते समय स्त्रियोंकी विपरीत चेष्टा होने लगी। यह जान त्रियोगको धारण करनेवाले रणव्रती बलदेव 'यदि वनमें भिक्षा मिले तो लेंगे अन्यथा नहीं' ऐसी प्रतिज्ञा कर सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७५॥ पाण्डवोंने हरिवंशके राजा जरत्कुमारके लिए बहुत-सी राज-कन्याएँ दीं, अपने पुत्रोंके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपी और उसके बाद जिनेन्द्र भगवान्‌को लक्ष्य कर सबके-सब पल्लव देशकी ओर चले गये ॥ ७६ ॥ संयमकी ओर जिनकी बुद्धि लग रही थी ऐसी द्रौपदी आदि स्त्रियाँ तथा संसारसे जिसकी बुद्धि विमुख हो गयी थी ऐसी माता कुन्ती भी पाण्डवोंके पीछे-पीछे जा रही थीं ॥७७॥

इधर अखण्ड चारित्रके धारक एवं मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिरूप तीन दण्डोंका दृढ़ताके साथ खण्डन करनेमें तत्पर मुनिराज बलदेव, सज्जनोंको इष्ट अनित्यत्व आदि बारह अनुप्रेक्षाओंके चिन्तवनमें व्याप्त हो गये ॥७८॥ वे विचार करने लगे कि जिन महल, शरीर, धन, सांसारिक सुख और बन्धुजनोंमें 'ये नित्य हैं', यह समझकर ममताभाव उत्पन्न होता है, उनमें आत्माके सिवाय किसीमें भी नित्यता नहीं है, सभी क्षणभंगुर हैं ॥७९॥ जिस प्रकार व्याघ्रके मुखमें पड़े मृगके बच्चेको कोई शरण नहीं है, उसी प्रकार मृत्युके दुःखसे पीड़ित मेरे लिए धर्मके सिवाय न भाई-बन्धु शरण हैं और न धन ही शरण है। इस प्रकार वे अशरण अनुप्रेक्षाका चिन्तवन करते थे ॥८०॥ नाना योनियों और कुलकोटियोंके समूहसे मुक्त इस संसाररूपी चक्रके ऊपर चढ़े प्राणी, महाविषम कर्मरूपी मन्त्रसे प्रेरित हो स्वामीसे भृत्य और पितासे पुत्र आदि अवस्थाओंको प्राप्त होते हैं ॥८१॥

यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मृत्युको प्राप्त होता है। एक धर्मको छोड़कर दूसरा इसका सहायक नहीं है। इस प्रकार वे एकत्व अनुप्रेक्षाका चिन्तवन करते थे ॥८२॥ मैं नित्य हूँ और शरीर अनित्य है। मैं चेतन हूँ और शरीर अचेतन है। जब शरीरसे भी मुझमें भिन्नता है तब दूसरी वस्तुओंसे भिन्नता क्यों नहीं होगी? ॥८३॥ यह अपना अथवा पराया शरीर रज, वीर्यरूप निन्द्य निमित्तोंसे उत्पन्न है, सप्तधातुओंसे भरा है एवं वात पित्त, कफ इन तीन दोषोंसे युक्त है इसलिए ऐसा कौन पवित्र आत्मा होगा जो इस अपवित्र शरीरमें वियोगके समय शोकको प्राप्त होगा और संयोगके समय राग करेगा? ॥८४॥ काययोग, वचनयोग और मनोयोग यह तीन प्रकारका योग ही आस्रव है। इसीके निमित्तसे आत्मामें पुण्य और पापकर्मका आगमन होता है। आस्रवके बाद यह जीव कर्मबन्धनरूप दृढ़ सांकलसे बद्ध होकर भयंकर संसारमें चिरकाल तक भ्रमण करता रहता है ॥८५॥ द्रव्यास्रव और भावास्रवरूप दोनों प्रकारके आस्रवका रुक जाना संवर है। यह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्रसे होता है। निर्जराके साथ-साथ संवरके हो जानेपर यह जीव स्वकृत कर्मोंका क्षय-कर सिद्ध हो जाता है ॥८६॥ अनुबन्धिनी और निरनुबन्धिनीके भेदसे निर्जराके मूलमें दो भेद हैं। फिर अनुबन्धिनी निर्जराके अकुशला और कुशलाके भेदसे दो भेद हैं। नरकादि गतियोंमें जो प्रतिसमय कर्मोंकी निर्जरा होती है वह अकुशलानुबन्धिनी निर्जरा है और संयमके प्रभावसे देव आदि गतियोंमें जो निर्जरा होती है वह कुशलानुबन्धिनी निर्जरा है। जिस निर्जराके बाद पुनः कर्मोंका बन्ध होता रहता है वह अनुबन्धिनी निर्जरा है और जिस निर्जराके बाद पूर्वकृत कर्म खिरते तो हैं पर नवीन कर्मोंका बन्ध नहीं होता उसे निरनुबन्धिनी निर्जरा कहते हैं।

परम योगी बलदेव मुनिराजने इसी निरनुबन्धिनी अनुप्रेक्षाका चिन्तवन किया था ॥८७॥ लोककी स्थिति अनादि, अनन्त है, यह लोक अलोकाकाशके ठीक मध्यमें स्थित है। इस लोकके भीतर छह कायके जीव निरन्तर दुःख भोगते रहते हैं, ऐसा चिन्तवन करना लोकानुप्रेक्षा है ॥८८॥

प्रथम तो निगोदसे निकलकर अन्य स्थावरोंमें उत्पन्न होना ही दुर्लभ है फिर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है, त्रसोंमें भी इन्द्रियोंकी पूर्णता होना दुर्लभ है और इन्द्रियोंकी पूर्णता होनेपर भी समीचीन धर्म जिसका लक्षण है एवं उत्तम समाधिका प्राप्त होना जिसका फल है ऐसी बोधि अर्थात् रत्नत्रयकी प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥८९॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ यह अहिंसादि लक्षण धर्म ही मोक्षप्राप्तिका कारण है। इसका त्याग करनेसे संसारका दुःख प्राप्त होता है—इस प्रकार चिन्तवन करना सो अन्तिम धर्मानुप्रेक्षा है ॥९०॥ इस प्रकार परम्परासे प्रसिद्ध बारह अनुप्रेक्षाओंका बार-बार चिन्तवन करनेवाले उत्कृष्ट बुद्धिके धारक बलदेव मुनिराजने बाईस परीषहरूपी शत्रुओंको जीतकर भाईके मोहको जीत लिया ॥९१॥

नाना प्रकारके नियम—आखड़ी आदिके लेनेसे उनकी जठराग्नि अत्यधिक प्रज्वलित रहती थी। उतनेपर भी वे मोक्षकी सिद्धिके लिए भूखसे आधा ही भोजन करते थे। इस प्रकार वे महामुनि क्षुधापरीषहको जीतते थे ॥९२॥ प्रतिकाररहित धैर्यके धारक बलदेव मुनिराज, शान्तिरूपी घनघटासे अभिषिक्त होनेके कारण शरीररूपी पर्वतके अवयवभूत अटवीको जलानेवाली दावानलके समान तीव्र प्याससे पीड़ित नहीं होते थे....इस प्रकार वे तृषापरीषहपर विजय प्राप्त करते थे ॥९३॥ तीव्र वायु और हिमवर्षाके समय रात-दिन खुले चबूतरेपर बैठकर तथा वायु और वर्षासे विषम वर्षा ऋतुमें वृक्षके नीचे बैठकर वे कठोर शीत परीषहके साथ युद्ध करते थे ॥९४॥ ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतके ऊँचे शिखरपर स्थित होकर वे चारों ओरसे उष्ण परीषह सहन करते थे। उस समय उनके ऊपर दावानलका धुआं छा जाता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे छतरीकी छायासे गरमीकी बाधाको ही दूर कर रहे हों ॥९५॥ चुपके-चुपके आनेवाले हड्डीरहित जन्तुओं—डाँस, मच्छरोंसे उनका रुधिर खूब पिया गया फिर भी वे निश्चल रहते थे। इस प्रकार उन्होंने दंश, मशक नामक कठिन परीषहको बड़ी दृढ़तासे सहन किया था ॥९६॥ जो शरीरमें संलग्न था, अपायरहित होनेपर भी विश्वासके योग्य नहीं था, जिसका एक दिन भी पालन करना कठिन था एवं जो उत्तम स्त्रीके समान लज्जासे सहित था, ऐसे नाग्न्यपरीषहको वे अपनी इच्छानुसार सहन करते थे ॥९७॥ वे ध्यानके योग्य पहाड़ी मार्ग एवं वनकी दुर्गम भूमियोंमें अकेले ही विहार कर सदा धर्मसाधनमें प्रीति रखते थे और शत्रुकी तरह रतिपरीषहके निग्रह करनेमें संलग्न रहते थे ॥९८॥ भ्रकुटि लतारूपी कुटिल धनुषपर चढ़ाये हुए स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणोंकी वर्षा करनेवाले कामदेवरूपी योधाको व्यर्थ करनेवाले उन मुनिराजने अतिशय बलवान् स्त्री-परीषहको जीता था ॥९९॥

वे संयमी मनुष्योंके आवश्यक कार्योंमें हानि न कर सवारी आदिका विचार किये बिना ही तीर्थक्षेत्रोंके लिए विहार करते थे और चर्या-परीषहसे कभी खेदखिन्न नहीं होते थे ॥१००॥ प्रासुक और एकान्त भूमियोंमें ध्यान करनेसे जिनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो गयी थी तथा जो उत्कृष्ट बुद्धिके धारक थे ऐसे बलदेव मुनिराज, क्षेत्र अथवा कालमें निश्चित आसनोंके बीच निषद्या-परीषहसे कभी दुःखी नहीं होते थे ॥१०१॥ वे मुनि ध्यान और अध्ययनमें सदा निमग्न रहते थे, इसलिए रात्रिके समय क्रम-क्रमसे बहुत थोड़ी निद्रा लेते थे वह भी पृथिवीरूपी शय्यापर एक करवटसे और बिना कुछ ओढ़े हुए....। इस प्रकार वे शय्या-परीषहसे कभी पीड़ित नहीं होते थे ॥१०२॥

धीर-वीर बुद्धिको धारण करनेवाले बलदेव मुनिराज दुर्जनोंके द्वारा तीक्ष्ण कुवचनरूपी शस्त्रोंसे हृदयमें घायल होनेपर भी कुवचनोंकी बाधा सहते हुए सदा इस बातका स्मरण रखते थे कि मुझे क्षमासे युक्त होना चाहिए ॥१०३॥ वे मुनि सदा ऐसी बुद्धि धारण करते थे कि यदि अस्त्र

और शस्त्रके समूहसे मेरा शरीर वधको प्राप्त होता है तो भी मुझे अच्छी तरह वध-परीषह सहन करना चाहिए ॥१०४॥ बाह्य और आभ्यन्तर तपको करनेवाले वे मुनि, हड्डीमात्र अवशिष्ट शरीर-की स्थिरताके लिए यद्यपि चरणानुयोगकी पद्धतिसे उद्यम करते थे—चर्याके लिए जाते थे पर कभी किसीसे आहार आदिकी याचना नहीं करते थे, इस प्रकार वे याचना-परीषहको जीतते थे ॥१०५॥ वे मौनसे आहारके लिए विहार करते थे, अपना शरीरमात्र दिखाते थे, चान्द्री-चर्यासे युक्त रहते थे अर्थात् चन्द्रमाके समान अमीर-गरीब सभीके घर प्रवेश करते थे और लाभ-अलाभमें प्रसन्न रहते थे, इस प्रकार उन्होंने अलाभ-परीषहको जीत लिया था ॥१०६॥ वे रूखे, शीतल एवं प्रकृतिके विरुद्ध आहार तथा वात, पित्त और कफके प्रकोपसे उत्पन्न रोगका प्रतिकार नहीं करते थे। सदा उसकी उपेक्षा ही करते थे। इस प्रकार रोग-परीषहको उन्होंने अच्छी तरह जीत लिया था ॥१०७॥ शयन, आसन आदिके समय कठोर लाखके कण, तृण तथा कंकड़ आदिके द्वारा पीड़ित होनेपर भी उनके अन्तरंगमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं होता था और भी तृणस्पर्श-परीषहको अच्छी तरह सहन करते थे ॥१०८॥ जो हाथके नाखूनोंसे शरीरका कभी स्पर्श नहीं करते थे—नखोंसे शरीरका मल नहीं छुटाते थे ऐसे मैलसे आवृत शुभ्रकाय मुनिराज, पहाड़की ऊँची चोटी-पर स्थित काले-काले मेघोंके पटलसे ढँके चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१०९॥ यदि दूसरे लोग उनका आदर करते थे, तो उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी और अनादर करते थे तो मनमें विकार भाव नहीं लाते थे। आदर और अनादर दोनोंमें ही अपनी बुद्धिको सदा विशुद्ध रखते थे, इस तरह वे सत्कार पुरस्कार-परीषहको अच्छी तरह सहन करते थे ॥११०॥ इस समय पृथिवीपर मुझसे बढ़कर न कोई वादी है, न वाग्मी है, न गमक है और न महाकवि है। इस प्रकारके अहंकारको उन्होंने प्रज्ञा-परीषहके द्वारा किंचित् भी दूषित नहीं होने दिया था ॥१११॥ यह अज्ञानी न पशु है, न मनुष्य है, न देखता है, न बोलता है, व्यर्थ ही इसने मौन ले रखा है। इस प्रकारके अज्ञानी जनोंके वचनोंकी परवाह न कर वे अज्ञान-परीषहको सहन करते थे ॥११२॥ उग्र तपके प्रभावसे पहले बड़ी-बड़ी ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती थीं यह कहना व्यर्थ है क्योंकि आज तक हमें एक भी ऋद्धिकी प्राप्ति नहीं हुई। इस प्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले बलदेव मुनिराज कभी नहीं कहते थे। इस तरह उन्होंने अदर्शन परीषहको अच्छी तरह सहन किया था ॥११३॥ इस प्रकार जिन्होंने परीषहरूपी शत्रुओंको समाप्त कर दिया था। जो पंचेन्द्रियोंके विषयरूपी दोषको हरनेवाले थे, शरीरसे अत्यन्त सुन्दर थे, और जिनेन्द्रप्रणीत सम्यक् चारित्रकी भूमिकामें विहार करनेवाले थे ऐसे मुनिराज बलदेवने चिरकाल तक तप किया ॥११४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें बलदेवके तपका वर्णन करनेवाला त्रेसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६३॥

□

सर्ग- ६४

अथानन्तर संसारके तीव्र भयसे भयभीत पाण्डव, पल्लव देशमें विहार करते हुए श्री नेमिजिनेन्द्रके समीप पहुँचे। उस समय भगवान् चार प्रकारके देवोंसे व्याप्त समवसरणको सुशोभित कर रहे थे एवं अष्ट प्रातिहार्यरूप परम ऐश्वर्यसे युक्त थे। पाण्डवोंने प्रदक्षिणा देकर भगवान्‌को नमस्कार किया ॥ १-२ ॥ तदनन्तर प्राप्त हुए जिनेन्द्ररूपी वर्षा कालसे धर्मामृतका पान कर उन्होंने अपने पूर्वभव पूछे और श्रीजिनेन्द्र इस प्रकार उनके पूर्वभव कहने लगे ॥ ३ ॥ इसी भरतक्षेत्रकी चम्पानगरीमें जब कुरुवंशका आभूषणस्वरूप राजा मेघवाहन पृथिवीकी रक्षा करता था, तब वहाँ सोमदेव नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी सोमिला नामकी स्त्री थी और उससे उनके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥४-५॥ इन पुत्रोंके मामाका नाम अग्निभूति था, उसकी स्त्री अग्निला थी और उन दोनोंके क्रमसे धनश्री, सोमश्री और नागश्री नामकी तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं जो कि उक्त तीन पुत्रोंकी क्रमसे स्त्रियाँ हुई थीं ॥ ६ ॥ समस्त वेदोंका जाननेवाला ब्राह्मण सोमदेव कदाचित् शरीरभोग और संसारसे विरक्त हो जिनधर्ममें दीक्षित हो गया ॥ ७ ॥ सोमदत्त आदि तीनों भाई भी जिनशासनकी भावनासे युक्त थे इसलिए धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थका सेवन करते हुए गृहस्थ धर्ममें रत हो गये ॥ ८ ॥

किसी समय धर्मरुचि नामक मुनिराज जो धर्मके अखण्ड पिण्डके समान जान पड़ते थे, भिक्षाके समय चान्द्री-चर्यासे उनके घर प्रविष्ट हुए ॥ ९ ॥ सोमदत्तने उठकर बड़ी विनयसे उन मुनिराजको पडिगाहा। पडिगाहनेके बाद किसी अन्य कार्यमें व्यग्र होनेसे वह तो चला गया और दान देनेके कार्यमें नागश्रीको नियुक्त कर गया ॥ १० ॥ अपने पूर्वकृत पापोदयसे मुनिराजके विषयमें कोपके वशीभूत हो नागश्रीने उन्हें विषमिश्रित अन्नका आहार दिया जिससे वे मुनिराज संन्यास मरण कर सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ नागश्रीके इस दुष्कार्यको जानकर वे तीनों भाई बहुत दुःखी हुए और संसारसे विरक्त हो उन्होंने वरुण गुरुके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ १२ ॥ धनश्री और मित्रश्रीने भी समस्त संसारवाससे-विरक्त हो गुणवती आर्यिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१३॥ इस प्रकार वे सब, पांच ज्ञान, तीन सम्यग्दर्शन, चारित्र एवं तपकी शुद्धिके लिए प्रवृत्त हो चारित्रपालन करनेके लिए उद्यत हो गये ॥१४॥ चारित्रके सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात ये पाँच भेद हैं। सब पदार्थोंमें समताभाव रखना तथा सर्वप्रकारके सावद्ययोगका पूर्ण त्याग करना सामायिक चारित्र है ॥१५॥ अपने प्रमादके द्वारा किये हुए अनर्थका सम्बन्ध दूर करने लिए जो समीचीन प्रतिक्रिया होती है वह छेदोपस्थापना चारित्र है ॥१६॥ जिसमें जीव हिंसाके परिहारसे विशिष्ट शुद्धि होती है वह परिहारविशुद्धि नामका चारित्र कहलाता है ॥१७॥ साम्पराय कषायको कहते हैं, ये कषाय जिसमें अत्यन्त सूक्ष्म रह जाती है वह पापको दूर करनेवाला सूक्ष्म साम्पराय नामका चारित्र है ॥१८॥ जहाँ समस्त मोहकर्मका उपशम अथवा क्षय हो चुकता है उसे यथाख्यात अथवा अथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह चारित्र मोक्षका साक्षात् साधन है ॥१९॥ तपके ब्राह्य

और आभ्यन्तरके भेदसे दो भेद हैं। इनमें बाह्य तप अनशन आदिके भेदसे छह प्रकारका है और आभ्यन्तर तप भी प्रायश्चित्त आदिके भेदसे छह प्रकारका माना गया है ॥२०॥

संयमको आदि लेकर समीचीन ध्यानकी सिद्धिरूप प्रत्यक्ष फलकी प्राप्तिके लिए तथा रागको दूर करनेके लिए आहारका त्याग करना अनशन तप है। यह वेला, तेला आदिके भेदसे नाना प्रकारका स्मरण किया गया है ॥२१॥ वात, पित्त आदि दोनोंका उपशम, सन्तोष, स्वाध्याय और ध्यानकी सिद्धिके लिए तथा संयमकी प्राप्तिके लिए भूखसे कम भोजन करना अवमौदर्य तप है। यह जागरणका कारण है—इस तपके प्रभावसे निद्राको अधिकता दूर हो जाती है ॥२२॥ भोजनविषयक तृष्णाको दूर करनेके लिए भिक्षाके अभिलाषी मुनि जो घर तथा अन्न आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले नाना प्रकारके नियम लेते हैं वह वृत्तिपरिसंख्यान नामका तप है ॥२३॥ निद्रा और इन्द्रियोंको जीतनेके लिए जो घी, दूध आदि गरिष्ट रसोंको त्याग किया जाता है वह रसपरित्याग नामका तप है ॥२४॥ व्रतकी शुद्धिके लिए पशु तथा स्त्री आदिसे रहित एकान्त प्रासुक स्थानमें उठना, बैठना विविक्तशयनासन तप है ॥२५॥ आतापन, वर्षा और शीत ये तीन योग धारण करना तथा प्रतिमायोगसे स्थित होना इन्हें आदि लेकर बुद्धिपूर्वक जो सुखका त्याग किया जाता है वह मोक्षमार्गकी प्रभावना करनेवाला कायक्लेश नामका तप है ॥२६॥ यह अनशनादि छह प्रकारका तप बाह्यद्रव्यकी अपेक्षा रखता तथा पर-कारणोंसे होता है, इसलिए इसे बाह्यतप कहा जाता है ॥२७॥

मनका नियमन करनेके लिए आभ्यन्तर तप कहा गया है; इसमें किये हुए दोषोंकी शुद्धि करना प्रायश्चित्त तप है। यह प्रायश्चित्त आलोचना आदिके भेदसे नौ प्रकारका कहा गया है ॥२८॥

पूज्य पदार्थोंमें आदर प्रकट करना विनय है। विनयके चार भेद हैं। अपने शरीरसे तथा अन्य द्रव्योंकी सेवा करना वैयावृत्य है, इसके दश भेद हैं ॥२९॥ ज्ञानकी भावनामें आलस्य छोड़ना स्वाध्याय है, इसके पांच भेद हैं। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंमें 'ये मेरे हैं' इस प्रकारके संकल्पका त्याग करना व्युत्सर्ग है, इसके दो भेद हैं ॥३०॥ और चित्तकी चंचलताका त्याग करना ध्यान है, यह चार प्रकारका होता है। इनमें आर्त और रौद्र ये दो ध्यान खोटे ध्यान हैं और धर्म्य तथा शुक्ल ये दो उत्तम ध्यान हैं ॥३१॥ आलोचनाके नौ भेद इस प्रकार हैं—१ आलोचना, २ प्रतिक्रमण, ३ तदुभय, ४ विवेक, ५ व्युत्सर्ग, ६ तप, ७ छेद, ८ परिहार और ९ उपस्थापन। इनमें प्रमादसे किये हुए दोषोंका सम्पूर्ण रूपसे दश प्रकारके दोष छोड़कर गुरुके लिए निवेदन करना आलोचना नामका प्रायश्चित्त है ॥३२॥ 'मिथ्या मे दुष्कृतमस्तु' इत्यादि शब्दोंके द्वारा अपने-आप दोषोंको प्रकट कर उनका दूर करना प्रतिक्रमण नामक प्रायश्चित्त माना गया है ॥३३॥ आलोचना तथा प्रतिक्रमण दोनोंसे जो शुद्धि होती है वह विशुद्धिको करनेवाला तदुभय नामका प्रायश्चित्त कहा गया है ॥३४॥ संसक्त अन्न-पानका विभाग करना विवेक कहलाता है। भावार्थ—कुछ समयके लिए अपराधी मुनिको इस प्रकारका दण्ड देना कि अन्य निर्दोष मुनियोंके साथ चर्याके लिए न जाओ, अन्य मुनियोंके भोजनके बाद किसी अन्य चौकामें भोजन करो तथा अपने पीछी-कमण्डलु जुदे रखो दूसरोंके पीछी कमण्डलु अपने उपयोगमें न लाओ। इस प्रकारके दण्डको विवेक नामक प्रायश्चित्त कहते हैं। कायोत्सर्ग आदिका करना व्युत्सर्ग कहलाता है ॥३५॥ उपवास आदि तप करना तप नामका प्रायश्चित्त कहा गया है। दिन, महीना आदिसे मुनिकी दीक्षा कम कर देना छेद नामका प्रायश्चित है। भावार्थ—मुनियोंमें नवीन दीक्षित मुनि पूर्वदीक्षित मुनिको नमस्कार करते हैं। यदि किसी पूर्वदीक्षित मुनिकी दीक्षा कम कर दी जाती है तो वह नवीन दीक्षित मुनिसे पीछेका दीक्षित हो जाता है; इस तरह उसे,

जिससे वह पहले पूजता था उसे पूजना पड़ता है, नमस्कार करना पड़ता है, यह छेद नामका प्रायश्चित्त है ॥३६॥

पक्ष, महीना आदि निश्चित समय तक अपराधी मुनिको संघसे दूर कर देना परिहार नामका प्रायश्चित्त है और फिरसे नवीन दीक्षा देना उपस्थापना नामका प्रायश्चित्त है। जिसे उपस्थापना दण्ड दिया गया है उसे संघके सब मुनियोंको नमस्कार करना पड़ता है, क्योंकि वे अब इससे पूर्वदीक्षित हो जाते हैं और यह नवीन दीक्षित कहलाने लगता है ॥३७॥

ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनयके भेदसे विनयतपके चार भेद हैं। इनमें कालानतिक्रमण आदि जो आठ प्रकारका ज्ञानाचार बताया है उसे आगमोक्त विधिसे ग्रहण करना वह ज्ञानविनय है। भावार्थ—१ शब्दाचार, २ अर्थाचार, ३ उभयाचार, ४ कालाचार, ५ विनयाचार, ६ उपधानाचार, ७ बहुमानाचार, ८ अनिह्नवाचार ये ज्ञानाचारके आठ भेद हैं। शब्दका शुद्ध उच्चारण करना शब्दाचार है। शुद्ध अर्थका निश्चय करना अर्थाचार है। शब्द और अर्थ दोनोंका शुद्ध होना उभयाचार है। अकालमें स्वाध्याय न कर विहित समयमें ही स्वाध्याय करना कालाचार है। विनयपूर्वक स्वाध्याय करना—स्वाध्यायके समय शरीर तथा वस्त्र शुद्ध रखना एवं आसन वगैरहका ठीक रखना विनयाचार है। चित्तकी स्थिरतापूर्वक स्वाध्याय करना उपधानाचार है। शास्त्र तथा गुरु आदिका पूर्ण आदर करना बहुमानाचार है और जिस गुरु अथवा जिस शास्त्रसे ज्ञान हुआ है उसका नाम नहीं छिपाना, उसके प्रति सदैव कृतज्ञ रहना अनिह्नवाचार है। इन आठ ज्ञानाचारोंका विधिपूर्वक पालन करना वह ज्ञान-विनय है ॥३८॥

निःशंकित आठ अंगोंके भेदसे दर्शनाचार आठ प्रकारका है, उसमें गुणदोषका विवेक रखना वह दर्शनविनय है ॥ ३९ ॥ पाँच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्तिके भेदसे जो तेरह प्रकारका चारित्राचार है उसमें निरतिचार प्रवृत्ति करना चारित्रविनय है ॥ ४० ॥ प्रत्यक्ष या परोक्ष दोनों ही अवस्थाओंमें गुरु आदिके उठनेपर उठकर अगवानी करना, नमस्कार करना आदि जो यथायोग्य प्रवृत्ति की जाती है उसे औपचारिकविनय कहते हैं ॥४१॥

१ दीक्षा देनेवाले आचार्य, २ पठन-पाठनकी व्यवस्था रखनेवाले उपाध्याय, ३ महान् तप तपनेवाले तपस्वी, ४ शिक्षा ग्रहण करनेवाले शैक्ष्य, ५ रोग आदिसे ग्रस्त ग्लान, ६ वृद्ध मुनियों के समुदाय रूप गण, ७ दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्यसमूहरूप कुल, ८ गृहस्थ, क्षुल्लक, ऐलक तथा मुनियोंके समुदायरूप संघ, ९ चिरकालके दीक्षित गुणी मुनिरूप साधु और १० लोकप्रिय मनोज्ञ—इन दश प्रकारके मुनियोंको कदाचित् बीमारी आदिकी अवस्था प्राप्त हो, मोहके तीव्र उदयसे मिथ्यात्वकी ओर इनकी प्रवृत्ति होने लगे (अथवा मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा कोई उपद्रव-उपसर्ग खड़ा कर दिया जाये) अथवा परीषहरूपी शत्रुओंका उदय हो तो ग्लानि दूर कर उनकी यथायोग सेवा करना वह दश प्रकारका वैयावृत्त्य तप है ॥४२–४५॥

वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और उपदेशके भेदसे स्वाध्यायके पांच भेद हैं। निर्दोष ग्रन्थ तथा उसका अर्थ दूसरेके लिए प्रदान करना—पढ़कर सुनाना सो वाचना नामका स्वाध्याय है। अनिश्चित तत्त्वका निश्चय करनेके लिए अथवा निश्चित तत्त्वको सुदृढ़ करनेके लिए दूसरेसे पूछना वह पृच्छना नामका स्वाध्याय है। ज्ञानका मनसे अभ्यास—चिन्तन करना वह अनुप्रेक्षा नामका स्वाध्याय है। पाठको बार-बार पढ़ना आम्नाय है और दूसरोंको धर्मका उपदेश देना उपदेश नामका स्वाध्याय है। यह पांच प्रकारका स्वाध्याय प्रशस्त अभिप्रायके लिए, प्रज्ञा—भेदविज्ञानके अतिशयकी प्राप्तिके लिए, संवेगके लिए और तपकी वृद्धिके लिए किया

जाता है ॥४६–४८॥

आभ्यन्तरोपाधित्याग और बाह्योपाधित्यागकी अपेक्षा व्युत्सर्गके दो भेद हैं। क्रोधादि अन्तरंग उपाधिका त्याग करना तथा शरीरके विषयमें भी 'यह मेरा नहीं है' इस प्रकारका विचार रखना आभ्यन्तरोपाधित्याग है और आभूषणादि बाह्यउपाधिका त्याग करना बाह्योपाधित्याग है। यह दोनों प्रकारकी उपाधियोंका त्याग निष्परिग्रहता, निर्भयता और 'मैं अधिक दिन तक जीवित रहूँ' इस प्रकारकी आशाको दूर करनेके लिए धारण किया जाता है ॥४९–५०॥

संवरके धारक जीवके तपसे जो निर्जरा होती है वह मोक्षका कारण है। यह निर्जरा परिणामोंमें भेद होनेसे प्रत्येक स्थानोंमें भेदको प्राप्त होती है ॥५१॥ यहाँ निर्जराके कुछ स्थान बताये जाते हैं—सर्वप्रथम संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तकभव्य जीव जब करणादि लब्धियोंसे युक्त हो, अन्तरंगकी शुद्धिको वृद्धिगत करता है तब उसके बहुत कर्मोंकी निर्जरा होती है। उसके बाद जब यह जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिके योग्य कारणोंके मिलनेपर सम्यग्दृष्टि होता है तब उसके पूर्वस्थानकी अपेक्षा असंख्यातगुणा निर्जरा होती है ॥५२–५३॥ उससे असंख्यातगुणी निर्जरा श्रावकके होती है, उससे असंख्यातगुणी विरतके, विरतसे असंख्यातगुणी अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवालेके, उससे असंख्यातगुणी दर्शनमोहका क्षय कर क्षायिकसम्यक्त्व प्राप्त करनेवालेके, उससे असंख्यातगुणी चारित्रमोहका उपशम करनेवाले उपशमश्रेणीमें स्थित मुनिके, उससे असंख्यातगुणी उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानवर्तीके, उससे असंख्यातगुणी चारित्रमोहका क्षय करनेवाले क्षपकश्रेणीमें स्थित मुनिके, उससे असंख्यातगुणी क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानवर्तीके और उससे असंख्यातगुणी अनन्तज्ञानदर्शनके धारक केवली जिनेन्द्रके होती है ॥५४–५७॥

पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातकके भेदसे निर्ग्रन्थ मुनियोंके पाँच भेद हैं ॥५८॥ जो उत्तर गुणोंकी भावनासे रहित हों तथा मूल व्रतमें भी जो कहीं भी पूर्णताको प्राप्त न हों वे धान्यके छिलकेके समान पुलाक मुनि कहलाते हैं ॥५९॥ जो मूल व्रतोंका तो अखण्ड रूपसे पालन करते हैं परन्तु शरीर और उपकरणोंकी साफ-सुथरा रखनेमें लीन रहते हों, जिनका परिवार नियत न हो—जो अनेक मुनियोंके परिवारसे युक्त हों और मलिन—सातिचार चारित्रके धारक हों उन्हें बकुश कहते हैं ॥६०॥

प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशीलकी अपेक्षा कुशील मुनियोंके दो भेद हैं। जो मूलगुण और उत्तरगुण दोनोंकी पूर्णतासे युक्त है, परन्तु कदाचित् उत्तरगुणोंकी विराधना कर बैठते हैं एवं संघ आदि परिग्रहसे युक्त होते हैं वे प्रतिसेवनाकुशील हैं, जिनके अन्य कषाय शान्त हो गये हैं सिर्फ संज्वलनका उदय रह गया है वे कषायकुशील कहलाते हैं ॥६१–६२॥ जिनके जलमें खींचो गयी दण्डकी रेखाके समान कर्मोंका उदय अव्यक्त—अप्रकट रहता है तथा जिन्हें एक मुहूर्तके बाद केवलज्ञान उत्पन्न होनेवाला है वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ॥६३॥ और जिनके घातियाकर्म नष्ट हो गये हैं, ऐसे केवली भगवान् स्नातक कहलाते हैं। ये पाँचों ही मुनि नैगमादि नयोंकी अपेक्षा निर्ग्रन्थ माने जाते हैं ॥६४॥ साध्यसाधनके भेदसे युक्त वे पुलाक आदि मुनि संयम आदि आठ अनुयोगोंके द्वारा साध्य हैं ॥६५॥ पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना कुशील मुनि प्रारम्भके सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमोंमें, कषायकुशील यथाख्यातको छोड़कर शेष चार संयमोंमें और निर्ग्रन्थ तथा स्नातक यथाख्यात संयममें स्थित हैं। अब पाँचों मुनियोंके श्रुत आदिका भी यथाक्रमसे कथन किया जाता है ॥६६–६७॥ प्रतिसेवना कुशील,

पुलाक और वकुश ये उत्कृष्ट रूपसे अभिन्न दशपूर्व श्रुतको धारण करते हैं ॥६८॥ जो कषाय-कुशील और निर्ग्रन्थ नामक मुनि हैं वे सब चौदह पूर्वको धारण करते हैं ॥६९॥ जघन्यकी अपेक्षा पुलाकमुनिके आचारवस्तुरूप श्रुत होता है और निर्ग्रन्थपर्यन्त समस्त मुनियोंके पांच समिति, तीन गुप्तिरूप अष्टप्रवचन मातृका प्रमाणश्रुत होता है ॥७०॥ प्रतिसेवनाको अपेक्षा पुलाक मुनि पाँच महाव्रत तथा रात्रिभोजन त्याग इनमें-से किसी एकका कभी दूसरोंका बलपूर्वक जबर्दस्तीसे सेवन करनेवाला होता है ॥७१॥ वकुशके सोपकरणवकुश और शरीरवकुशकी अपेक्षा दो भेद होते हैं। इनमें सोपकरणवकुश अनेक उपकरणोंके प्रेमी होते हैं और शरीरवकुश शरीरसंस्कारकी अपेक्षा रखते हैं—शरीरकी शोभा बढ़ाना चाहते हैं ॥७२॥

प्रतिसेवनाकुशील मूल गुणोंमें विराधना नहीं करते किन्तु उत्तर गुणोंमें कभी कोई विराधना कर बैठते हैं ॥७३॥ कषायकुशील निर्ग्रन्थ और स्नातकप्रतिसेवनासे रहित होते हैं। तीर्थकी अपेक्षा पुलाक आदि पाँचों मुनि सभी तीर्थंकरोंके तीर्थमें होते हैं ॥७४॥ लिंगके भाव और द्रव्यकी अपेक्षा दो भेद होते हैं। भावलिंगकी अपेक्षा पुलाक आदि पाँचों मुनि निर्ग्रन्थ लिंगके धारक हैं और द्रव्यलिंगकी अपेक्षा विद्वानोंके द्वारा भजनीय हैं ॥७५॥ लेश्याकी अपेक्षा पुलाकमुनिके आगेकी तीन अर्थात् पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन, वकुश और प्रतिसेवना-कुशीलके छहों, कषायकुशीलके आगेकी चार अर्थात् कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल ये चार एवं सूक्ष्मसाम्पराय, निर्ग्रन्थ और स्नातकके एक शुक्ललेश्या ही होती है। अयोगकेवली स्नातक लेश्यासे रहित होते हैं ॥७६–७७॥

उपपादकी अपेक्षा पुलाकका उपपाद सहस्रार स्वर्गमें होता है और वह वहाँ उत्कृष्ट आयुका धारक होता है। प्रतिसेवनाकुशील और वकुशका उपपाद आरण और अच्युत स्वर्गमें होता है। निर्ग्रन्थ (ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती) और कषायकुशीलका उपपाद सर्वार्थ-सिद्धिमें होता है और जघन्यकी अपेक्षा पुलाक आदि पाँचों मुनियोंका उपपाद सौधर्मस्वर्गमें होता है और वहाँ वे दो सागरकी आयुके धारक होते हैं ॥७८–७९॥ प्रारम्भमें, संयममें जो स्थानभेद होते हैं वे कषायके निमित्तसे होते हैं तथा उनमें असंख्येय और अनन्तगुणी-संयमकी प्राप्ति होती है ॥८०॥ इनमें सर्वजघन्य लब्धिस्थान कषायकुशील और पुलाक मुनिके होते हैं। ये दोनों मुनि असंख्येय स्थानों तक साथ-साथ जाते हैं, उसके बाद पुलाकमुनि नीचे विच्छिन्न हो जाता है—नीचे रह जाता है और कषायकुशील असंख्येय स्थान तक आगे चला जाता है ॥८१–८२॥

तदनन्तर वकुश और दोनों प्रकारके कुशील साथ-साथ असंख्यात स्थानों तक जाते हैं, उसके बाद वकुश नीचे रह जाता है और दोनों कुशील आगे बढ़ जाते हैं। तदनन्तर असंख्येय स्थान तक साथ-साथ जाकर प्रतिसेवनाकुशील नीचे छूट जाता है और कषायकुशील असंख्येय स्थान आगे चला जाता है। इसके आगे कषायकुशील भी निवृत्त हो जाता है। तदनन्तर कषायरहित संयमके स्थान प्रकट होते हैं और उन्हें निर्ग्रन्थ मुनि प्राप्त करता है। वह असंख्येय स्थानों तक जाकर पीछे छूट जाता है ॥८३–८५॥ इसके आगे संयमका एक स्थान रहता है जिसे अनन्तगुण रूप ऋद्धियोंको धारण करनेवाला स्नातक प्राप्त करता है और वह वहाँ कर्मोंका अन्त कर निर्वाणको प्राप्त होता है ॥८६॥

क्षेत्र, काल आदि बारह अनुयोगोंके द्वारा सिद्धोंमें भूतपूर्व प्रज्ञापन और प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा भेद सिद्ध करने योग्य हैं ॥८७॥ क्षेत्रअनुयोगसे जब विचार करते हैं तब प्रत्युत्पन्न-

ग्राही नयकी अपेक्षा मुक्त जीवोंकी सिद्धि, सिद्धिक्षेत्रमें अथवा आत्मप्रदेशमें अथवा आकाशके प्रदेशोंमें होती है ॥८८॥ और भूतग्राही नयकी अपेक्षा जन्मसे पन्द्रह कर्मभूमियोंमें तथा संहरणसे मनुष्यलोक अर्थात् अढ़ाई द्वीपमें होती है ॥८९॥ कालअनुयोगसे विचार करनेपर यह जीव प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षा एक समयमें सिद्ध होता है और भूतग्राही नयकी अपेक्षा जन्मसे सामान्यतया उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमें उत्पन्न हुआ जीव सिद्ध होता है और विशेष रूपसे अवसर्पिणीको तृतीय कालके अन्तमें तथा चतुर्थ कालमें सिद्ध होता है। चतुर्थ कालका उत्पन्न हुआ जीव दुःषमा नामक पंचम कालमें सिद्ध हो सकता है परन्तु दुःषमाका उत्पन्न हुआ दुःषमामें सिद्ध नहीं होता। संहरणकी अपेक्षा उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके सभी कालोंमें सिद्ध होता है। भावार्थ—जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रमें प्रथम आदिकाल विद्यमान रहते हैं उस समय यदि कोई व्यन्तरादि देव किसी विदेहक्षेत्रके मुनिको संहरण कर भरत अथवा ऐरावतक्षेत्रमें छोड़ दे तो उनकी वहाँसे सिद्धि हो सकती है ॥९०–९२॥ गतिअनुयोगसे विचार करनेपर सिद्धिगतिमें अथवा मनुष्यगतिमें सिद्धि होती है। लिंगअनुयोगसे विचार करनेपर प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा अवेदसे सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा भाववेदसे तीनों वेदोंमें सिद्धि होती है। द्रव्यवेदकी अपेक्षा तीनों वेदोंसे सिद्धि नहीं होती सिर्फ पुरुषवेदसे ही होती है। अथवा लिंगका अर्थ वेष भी हो सकता है इसलिए प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षा निर्ग्रन्थ लिंगसे ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा सग्रन्थ लिंगसे होती भी है और नहीं भी होती है ॥९३-९४॥

तीर्थअनुयोगसे विचार करनेपर सिद्धि दो प्रकारकी होती है, कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध होता है और कोई सामान्य केवली होकर सिद्ध होता है। अथवा कोई तीर्थंकरके विद्यमान रहते सिद्ध होता है और कोई तीर्थंकरके मोक्ष चले जानेपर उनके तीर्थमें सिद्ध होता है ॥९५॥ चारित्रअनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा एक यथाख्यात चारित्रसे ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा चार अथवा पांच चारित्रोंसे होती है। भावार्थ—यथाख्यातके पहले सामायिक, छेदोपस्थापना और सूक्ष्मसाम्परायचारित्र अनिवार्य रूपसे सभीके होते हैं और परिहारविशुद्धि किन्हीं-किन्हींके होता है इसलिए जिनके परिहारविशुद्धि नहीं होगा उनके चार चारित्रोंसे और जिनके परिहारविशुद्धि होगा उनके पांच चारित्रोंसे सिद्धि होती है, यह भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा है। प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा चौदहवें गुणस्थानमें एक परमयथाख्यात चारित्र ही होता है इसलिए एक चारित्रसे ही सिद्धि प्राप्त होनेका कथन है ॥९६॥ प्रत्येक बुद्ध और बोधितबुद्ध—अनुयोगसे विचार करनेपर प्रत्येक बुद्ध जो कि अपने-आप रत्नत्रयको प्राप्त होते हैं और बोधित बुद्ध जो कि दूसरोंके उपदेशसे रत्नत्रय प्राप्त करते हैं—दोनोंको सिद्धि प्राप्त होती है—दोनों ही मोक्ष जाते हैं ॥९७॥ ज्ञान अनुयोगसे विचार करनेपर प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा एक केवलज्ञानसे ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा दो, तीन और चार ज्ञानोंसे सिद्धि होती है। भावार्थ—किन्हीं जीवोंको केवलज्ञानके पूर्व मति और श्रुतमें दो ज्ञान होते हैं। किन्हींको मति, श्रुत, अवधि अथवा मति, श्रुत, मनःपर्यय ये तीन ज्ञान होते हैं। और किन्हींको मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ये चार ज्ञान होते हैं। अवगाहना अनुयोगसे विचार करनेपर अवगाहनाके उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यमके भेदसे तीन भेद होते हैं। इनमें युक्त जीवोंकी उत्कृष्ट अवगाहना कुछ कम पांच-सौ पच्चीस धनुष है और जघन्य अवगाहना कुछ कम साढ़े तीन हाथ है। मध्यम अवगाहनाके यथासम्भव अनेक विकल्प कहे गये हैं। इन अवगाहनाओंमें-से जीव किसी एक अवगाहनासे सिद्ध होता है ॥९८–१००॥ अन्तर अनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर अन्तरका अर्थ शून्यकाल—

विरहकाल होता है सो सिद्ध होनेवाले जीवोंमें जघन्य अन्तर एक समयका और उत्कृष्ट अन्तर छह माहका होता है ॥१०१॥ संख्या अनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर जघन्यरूपसे एक समयमें एक ही जीव सिद्ध होता है और उत्कृष्टतासे एक सौ आठ जीव तक सिद्ध होते हैं ॥१०२॥ अल्पबहुत्व अनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर क्षेत्रादि भेदोंसे भिन्न जीवोंमें जो परस्पर संख्याका भेद है वह अल्पबहुत्व कहलाता है। यह अल्पबहुत्व प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा सिद्धिक्षेत्रमें नहीं है किन्तु भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा उसका कुछ विचार किया जाता है। क्षेत्रसिद्ध जीव जन्म और संहरणकी अपेक्षा दो प्रकारके माने गये हैं। इनमें संहरणसिद्ध थोड़े हैं और जन्मसिद्ध, सर्वहितकारी सर्वज्ञ जिनेन्द्रके शासनमें संहरण सिद्धोंकी अपेक्षा संख्यातगुणे बतलाये गये हैं ॥१०३-१०५॥ ऊर्ध्वलोकसे सिद्ध होनेवाले थोड़े हैं, उनसे संख्यातगुणे अधोलोकसे सिद्ध होनेवाले हैं और उनसे संख्यातगुणे तिर्यग्लोकसे सिद्ध होनेवाले हैं ॥१०६॥

समुद्रसे सिद्ध होनेवाले थोड़े हैं, इनसे संख्यातगुणे द्वीपसे सिद्ध होनेवाले हैं, यह सामान्यकी अपेक्षा कथन है, विशेषकी अपेक्षा लवणसमुद्रमें जो सिद्ध होते हैं, वे सबसे थोड़े हैं, उनसे संख्यातगुणे कालोदधिसे सिद्ध होनेवाले हैं ॥१०७-१०८॥ जो जम्बूद्वीपसे सिद्ध होते हैं वे संख्येयगुणे हैं, उनसे संख्यातगुणे धातकीखण्डसे होनेवाले सिद्ध हैं और उनसे संख्यातगुणे पुष्करद्वीपसे होनेवाले सिद्ध हैं ॥१०९॥ जिस प्रकार क्षेत्रविभागकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका कथन किया है उसी प्रकार आगमके अनुसार काल आदि विभागकी अपेक्षा भी जानना चाहिए ॥११०॥

इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी अत्यन्त उपासना करनेवाले सोमदत्त आदि पाँचों जीव अन्त समय मरकर आरण अच्युत स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। वहाँ बाईस सागरकी उनकी आयु थी। अत्यन्त शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले वे देव उत्तम भोग भोगते हुए वहाँ बाईस सागर तक स्थित रहे ॥१११-११२॥ विषमिश्रित भोजन देनेवाली नागश्री भी मरकर धूमप्रभानामक पाँचवें नरकके फलको प्राप्त हुई। वह सत्तरह सागर तक वहाँके महादुःख भोगकर निकली और स्वयंप्रभद्वीपमें दृष्टिविष नामका दुष्ट सर्प हुई। तदनन्तर मरकर तीन सागरकी आयुवाली बालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वीमें पहुँची ॥११३-११४॥ वहाँ पापके फलस्वरूप चिरकाल तक दुःखोंका समूह भोगकर निकली और त्रसस्थावर पर्यायमें दो सागर तक भटकती रही ॥११५॥ तदनन्तर चम्पापुरीमें एक चण्डालकी कन्या हुई। वहाँ उसने एक दिन समाधिगुप्त नामक मुनिराजके पास मधु-मांसादिका त्याग किया ॥११६॥ जिससे अन्त समय उसी चम्पापुरीमें सुबन्धु वैश्यकी धनवती स्त्रीसे सुकुमारिका नामकी पुत्री हुई ॥११७॥ पापके पूर्व संस्कारसे उसके शरीरसे तीव्र दुर्गन्ध आती थी इसलिए रूपवती होनेपर भी वह युवाजनोंके द्वेषका पात्र हुई ॥११८॥ उसी नगरीमें धनदेव वैश्यकी अशोकदत्ता नामक स्त्रीसे उत्पन्न जिनदेव और जिनदत्त नामक दो पुत्र रहते थे ॥११९॥ जिनदेवके कुटुम्बी जनोंने उस दुर्गन्धा कन्याके साथ उसका विवाह करना चाहा पर उसे वह स्वीकृत नहीं था इसलिए वह उस कन्याको छोड़ सुव्रत मुनिके समीप दीक्षित हो गया ॥१२०॥ बन्धुजनोंके उपरोधसे छोटे भाई जिनदत्तने यद्यपि उसके साथ विवाह कर लिया परन्तु दुर्गन्धके कारण उसे दूरसे ही छोड़ दिया ॥१२१॥ इस घटनासे सुकुमारिकाने अपनी बहुत निन्दा की। एक दिन उसने उपवास किया तथा अनेक आर्यिकाओंसे युक्त क्षान्ता नामकी आर्यिकाको बड़ी भक्तिसे भोजन कराया ॥१२२॥ क्षान्ता आर्यिकाके साथ दो आर्यिकाएँ परम रूपवती तथा कठिन तपन तपनेवाली थीं उन्हें देख उसने क्षान्ता आर्याको नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे आर्ये! ये दो रूपवती आर्यिकाएँ कठिन तपमें किस कारण स्थित हैं? ॥१२३॥ इस प्रकार पूछे जानेपर ५५.३ प्रेरित क्षान्ता आर्याने सुकुमारिकाको सम्बोधन करनेके लिए उन

दो आर्यिकाओंके तपका कारण कहा ॥१२४॥ उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—कि हे सुकुमारि ! सुन, ये सुकुमार कुमारिकाएँ जिस कारण तपस्विनी बनकर तप करनेमें लगी हुई हैं ॥१२५॥

ये दोनों पूर्व भवमें सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी विमला और सुप्रभा नामकी देवियाँ थीं ॥१२६॥ एक दिन ये नन्दीश्वर पर्वकी यात्रामें जिनपूजाके लिए आयी थीं कि किसी कारण संसारसे विरक्त हो चित्तमें इस प्रकारका विचार करने लगीं कि यदि हम मनुष्यभवको प्राप्त हों तो महातप करेंगी। ऐसा महातप कि जिससे फिर यह स्त्री-पर्यायसम्बन्धी दुख दिखाई नहीं देगा ॥१२७–१२८॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वे देवियाँ स्वर्गसे च्युत हुईं और यहाँ अयोध्या नगरीके राजा श्रीषेणकी श्री-कान्ता नामक स्त्रीसे हरिषेणा नामकी बड़ी और श्रीषेणा नामकी छोटी पुत्री हुईं। समय पाकर ये दोनों ही रूपवती और यौवनरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित हो गयीं ॥१२९–१३०॥ इन दोनों कुमा-रियोंका स्वयंवर हो रहा था कि उसी समय इन्हें अपने पूर्व जन्म तथा की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया जिससे ये बन्धुजनोंको छोड़ तत्काल तप करने लगीं ॥१३१॥

क्षान्ता आर्यिकाके उक्त वचन सुन सुकुमारिका भी विरक्त हो गयी और संसारसे भयभीत हो उन्हींके समीप दीक्षित हो गयी ॥१३२॥ अन्य तपस्विनियोंके साथ तप करती हुई वह समय व्यतीत करने लगी। नीतिपूर्वक—आगमानुकूल तप करनेसे उसका शरीर सूख गया ॥१३३॥

एक दिन उसी गाँवकी गणिका वसन्तसेना कामीजनोंसे वेष्टित हो वन-विहारके लिए आयी। क्रीड़ा करनेमें उद्यत उस गणिकाको देखकर आर्यिका सुकुमारिकाने क्लिष्ट परिणामोंसे युक्त हो बड़े आदरसे अपयशकी प्राप्तिमें कारणभूत यह निदान किया कि अन्य जन्ममें मुझे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो ॥१३४–१३५॥ आयुके अन्तमें मरकर वह आरणाच्युत युगलमें अपने पूर्व भवके पति सोमभूति देवकी पचपन पल्यकी आयुवाली देवी हुई ॥१३६॥ सोमदत्त आदि तीनों भाइयोंके जीव स्वर्गसे च्युत हो पाण्डु राजाकी कुन्ती नामक स्त्रीमें युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक पुत्र हुए ॥१३७॥ और धनश्री तथा मित्रश्रीके जीव देव भी उन्हीं पाण्डु राजाकी माद्री नामक दूसरी स्त्रीसे नकुल और सहदेव नामक पुत्र हुए ॥१३८॥ सुकुमारिकाका जीव भी स्वर्गसे च्युत हो राजा द्रुपदकी दृढरथा नामक स्त्रीसे द्रौपदी नामकी पुत्री हुई ॥१३९॥ पूर्व भवके स्नेहके कारण इस भव-में भी राधावेध पूर्वक द्रौपदी और अर्जुनका संयोग हुआ है ॥१४०॥ तीन ज्येष्ठ पाण्डव—युधि-ष्ठिर, भीम और अर्जुन इसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त होंगे और अन्तिम दो पाण्डव—नकुल और सहदेवको सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होगी ॥१४१॥ सम्यग्दर्शनसे शुद्ध द्रौपदी तपके फलस्वरूप आरणा-च्युत युगलमें देव होगी और उसके बाद मनुष्यपर्याय रख मोक्ष जायेगी ॥१४२॥

इस प्रकार वे पाण्डव धर्म तथा पूर्व भव श्रवण कर संसारसे विरक्त हो श्री नेमि जिने-न्द्रके समीप संयमको प्राप्त हो गये ॥१४३॥ कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि जो स्त्रियाँ थीं वे सब राजीमती आर्यिकाके समीप तपमें लीन हो गयीं ॥१४४॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्य-क्चारित्र, महाव्रत, समिति तथा गुप्तियोंसे अपनी आत्माके स्वरूपका चिन्तवन करते हुए वे पाण्डव आदि तप करने लगे ॥ १४५ ॥ उन सब मुनियोंमें भीमसेन मुनि बहुत ही शक्तिशाली

थे। उन्होंने भालेके अग्रभागसे दिये हुए आहारको ग्रहण करनेका नियम लिया था, क्षुधासे उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था और छह महीनेमें उन्होंने इस वृत्ति परिसंख्यात तपको पूरा कर हृदयका श्रम दूर किया था। युधिष्ठिर आदि मुनियोंने भी बड़ी श्रद्धाके साथ वेला तेला आदि

उपवास किये थे। इस प्रकार मुनिराज भीमसेनने जैनागमके सागर युधिष्ठिर आदि मुनियोंके साथ पृथिवीपर विहार किया ॥१४६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डवोंकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला चौंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

□

सर्ग- ६५

अथानन्तर समस्त देवोंसे युक्त भगवान् नेमिनाथ उपदेश करते हुए उत्तरापथसे सुराष्ट्र देशकी ओर आये ॥ १ ॥ जिनेन्द्ररूपी सूर्य यद्यपि उत्तरायणको उल्लंघन कर दक्षिणायनको प्राप्त हुए थे तथापि उनके तेजकी वृत्ति पहले ही-के समान सर्वत्र व्याप्त थी ॥ भावार्थ—जब सूर्य उत्तरायणसे दक्षिणायनकी ओर आता है तब उसका तेज कुछ कम हो जाता है परन्तु नेमिजिनेन्द्ररूपी सूर्यका तेज उत्तरायण—उत्तर दिशासे दक्षिणायन—दक्षिण दिशामें आनेपर भी कम नहीं हुआ था, पहले ही के समान सर्वत्र व्याप्त था ॥ २ ॥ समवसरणकी विभूतिसे युक्त नेमिजिनेन्द्र जब दक्षिण दिशामें विहार करते थे तब वहाँके देश स्वर्गके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३ ॥ तदनन्तर जब अन्तिम समय आया तब निर्वाणकल्याणककी विभूतिको प्राप्त होनेवाले नेमिजिनेन्द्र मनुष्य, सुर और असुरोंसे सेवित होते हुए अपने-आप गिरनार पर्वतपर आरूढ़ हो गये ॥ ४ ॥ वहाँ पहले ही के समान फिरसे कलुषतारहित तिर्यंच मनुष्य और देवोंके समूहसे युक्त समवसरणकी रचना हो गयी ॥ ५ ॥ समवसरणके बीच विराजमान होकर जिनेन्द्र भगवान्ने स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिका एक साधन, रत्नत्रयसे पवित्र एवं साधुसंमत धर्मका उपदेश दिया ॥ ६ ॥ जिस प्रकार सर्वहितकारी जिनेन्द्र भगवान्ने केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद पहली बैठकमें विस्तारके साथ धर्मका उपदेश दिया था उसी प्रकार अन्तिम बैठकमें भी उन्होंने विस्तारके साथ धर्मका उपदेश दिया ॥ ७ ॥

जिस प्रकार अग्निमें ऊर्ध्वज्वलन और उष्णता, पानीमें शीतलता, वायुमें वेग, सूर्य चन्द्र आदि तेजस्वी पदार्थोंमें सब ओरसे प्रकाशमानता, आकाशमें अमूर्तिकपना और पृथिवीमें किसी पदार्थको धारण करनेकी क्षमता स्वभावसे ही होती है, उसी प्रकार कृतकृत्य जिनेन्द्र भगवान्का धर्मोपदेश भी स्वभावसे होता था किसीकी प्रेरणासे नहीं ॥८–९॥ तदनन्तर योगनिरोध करनेवाले भगवान् नेमिजिनेन्द्र अघातिया कर्मोंका अन्त कर अनेक सौ मुनियोंके साथ निर्वाण धामको प्राप्त हो गये ॥१०॥ जिनके आगे-आगे इन्द्र चल रहे थे ऐसे चारों निकायके देवोंने भगवान्के अन्तिम शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली निर्वाणकल्याणकी पूजा की ॥११॥ दिव्य गन्ध तथा पुष्प आदिसे पूजित, तीर्थंकर आदि मोक्षगामी जीवोंके शरीर, क्षण-भरमें बिजलीकी नाईं आकाशको देदीप्यमान करते हुए विलीन हो गये ॥१२॥ क्योंकि यह स्वभाव है कि तीर्थंकर आदिके शरीरके परमाणु अन्तिम समय बिजलीके समान क्षण-भरमें स्कन्धपर्यायको छोड़ देते हैं ॥१३॥

गिरनार पर्वतपर इन्द्रने वज्रसे उकेरकर इस लोकमें पवित्र सिद्धशिलाका निर्माण किया तथा उसे जिनेन्द्र भगवान्के लक्षणोंके समूहसे युक्त किया ॥१४॥ तदनन्तर वरदत्त आदि मुनियोंके संघकी वन्दना कर इन्द्रादि देव और राजा लोग सब यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१५॥

समुद्रविजय आदि नौ भाई, देवकीके युगलिया छह पुत्र तथा शंब और प्रद्युम्नकुमार आदि अन्य मुनि भी गिरनार पर्वतसे मोक्षको प्राप्त हुए। इसलिए उस समयसे गिरनार आदि

निर्वाण स्थान ससारमें विख्यात हुए और तीर्थयात्राके लिए आनेवाले अनेक भव्य जीवोंके द्वारा सेवित होते हुए सुशोभित होने लगे ॥१६–१७॥

धीर-वीर पांचों पाण्डव मुनि, भगवान्‌को मोक्ष हुआ जान शत्रुंजय पर्वतपर प्रतिमायोगसे विराजमान हो गये ॥१८॥ उस समय वहां दुर्योधनके वंशका क्षुयवरोधन नामका कोई पुरुष रहता था। ज्यों ही उसने वहां पाण्डवोंका आना सुना त्यों ही आकर उसने वैर वश उनपर घोर उपसर्ग करना शुरू कर दिया ॥१९॥ उसने तपाये हुए लोहेके मुकुट, कड़े तथा कटिसूत्र आदि बनवाये और उन्हें अग्निमें अत्यन्त प्रज्वलित कर उनके मस्तक आदि स्थानोंमें पहनाये ॥२०॥ पाण्डव मुनिराज अत्यन्त धीर-वीर थे, कर्मके उदयको जाननेवाले थे एवं कर्मोंका क्षय करनेमें समर्थ थे, इसलिए उन्होंने दाहके उस भयंकर उपसर्गको हिमके समान शीतल समझा था ॥२१॥ भीम, अर्जुन और युधिष्ठिर ये तीन मुनिराज तो शुक्लध्यानसे युक्त हो आठों कर्मोंका क्षय कर मोक्ष गये परन्तु नकुल और सहदेव बड़े भाईकी दाहको देख कुछ-कुछ आकुलितचित्त हो गये इसलिए सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए ॥२२–२३॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ नारद भी दीक्षा ले तपके बलसे संसारका क्षयकर अविनाशी मोक्षको प्राप्त हुए ॥२४॥ समीचीन रत्नत्रयको धारण करनेवाले अन्य अनेक भव्य जीव भी मोक्षको प्राप्त हुए तथा निकट कालमें जिनके संसारका क्षय होनेवाला था ऐसे कितने ही जीव स्वर्ग गये ॥२५॥

तुंगीगिरिके शिखरपर स्थित बलदेवने भी संसार-चक्रका क्षय करनेमें उद्यत हो नाना प्रकारका तप किया ॥२६॥ वे एक दिन, दो दिन, तीन दिनको आदि लेकर छह माह तकके उपवासोंसे कषाय और शरीरका शोषण तथा धैर्यका पोषण करते थे ॥२७॥ वनमें मिलनेवाली भिक्षासे प्राण धारण करनेके लिए उद्यत बलदेव मुनिराज, वनमें विहार करने लगे और चन्द्रमाका भ्रम उत्पन्न करनेवाले उन मुनिराजको लोगोंने देखा ॥२८॥ 'बलदेव वनमें विहार कर रहे हैं' यह बात नगरों तथा गांवोंमें फैल गयी उसे सुन समीपवर्ती राजा क्षुभितचित्त हो वहां आ पहुँचे ॥२९॥

शंकारूपी विषसे युक्त तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे सुसज्जित उन राजाओंको जब देव सिद्धार्थने देखा तो उस वनमें उसने सिंहोंके समूह रच दिये ॥३०॥ जब उन आगत राजाओंने मुनिराजके चरणोंके समीप सिंहोंको देखा तब वे उनकी सामर्थ्य जान नमस्कार कर शान्त भावको प्राप्त हो गये ॥३१॥ उसी समयसे बलदेव मुनिराज लोकमें नरसिंह इस प्रसिद्धिको प्राप्त हो गये। वे सिंहके समान चौड़े वक्षःस्थलसे सुशोभित थे तथा सिंहरूपी सेवकोंसे युक्त थे ॥३२॥ इस प्रकार एक-सौ वर्ष तक तप कर बलदेव मुनिराजने अन्तमें समाधि धारण की और उसके फलस्वरूप ब्रह्मलोकमें इन्द्रके पदको प्राप्त हुए ॥३३॥ वहां देव-देवियोंके समूहसे युक्त, महल और उद्यानोंसे सुशोभित तथा रत्नोंके समान देदीप्य-मान पद्म नामक विमानमें कोमल उपपाद शय्यापर उस प्रकार देव उत्पन्न हुए जिस प्रकार कि विशाल रत्नाकरकी महाभूमिमें महामणि उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥ वह उत्तम देव वहां शीघ्र ही आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंसे पूर्ण हो गया ॥३६॥ नवयौवनसे युक्त एवं वस्त्राभरणसे विभूषित वह देव, सर्वतोभद्र नामक शय्यापर ऐसा उठकर बैठ गया जैसा मानो सुखनिद्रा पूर्ण होनेपर ही उठा हो ॥ ३७ ॥ जब इस देवने चारों ओर देखा तब अनुरागसे युक्त देवांगनाओं और देवोंके शब्दोंने इसका अभिनन्दन किया ॥ ३८ ॥ चन्द्रमा और सूर्यसे भी अधिक उत्कृष्ट प्रभावलयसे युक्त शरीरको धारण करनेवाला वह देव, हर्षसे पूर्ण हृदय

होता हुआ इस प्रकारका ध्यान करने लगा कि यह अत्यन्त सुन्दर देश कौन है ? ये हर्षसे भरे जन कौन हैं ? मैं कौन हूँ ? मेरा यहाँ कहाँ जन्म हुआ है ? और मैंने किस धर्मका संचय किया है ? ॥३९–४०॥

तदनन्तर मुख्य-मुख्य देवोंने उसे समझाया—सब वस्तुओंका परिचय दिया जिससे तथा भवप्रत्यय अवधिज्ञानसे युक्त हो उसने शीघ्र ही आगे-पीछेका सब वृत्तान्त जान लिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जिसने पूर्वभवके सब बन्धुओंको जान लिया था, जो भाईका हित करनेमें उद्यत था, जिसे अभिषेकरूप कल्याण प्राप्त हुआ था, जिसने वस्त्राभूषणादि सब सामग्री प्राप्त की थी, और अवधिज्ञानसे जिसने कृष्णका समाचार जान लिया था ऐसा वह बालुकाप्रभा पृथिवीमें गया और अपने छोटे भाई कृष्णको दुःखी देख स्वयं बहुत दुःखी हुआ ॥४२–४३॥ महाप्रभावसे सम्पन्न वह देव जब वहाँ जाकर खड़ा हो गया तब वहाँके अशुभ शब्द गन्ध रस और शब्द शुभरूपताको प्राप्त हो गये ॥४४॥

वह कहने लगा कि हे कृष्ण ! आओ, आओ, जो मैं तुम्हारा बड़ा भाई बलदेव था वही ब्रह्मलोकका अधिपति होकर यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ ॥४५॥ यह कहकर वह देव ज्योंही कृष्णके जीवको उठाकर स्वर्गलोकमें ले जानेके लिए उद्यत हुआ त्योंही उसका शरीर मक्खनके समान गलकर विलीन हो गया ॥४६॥

तदनन्तर कृष्णने कहा कि हे देव ! हे भाई ! व्यर्थकी चेष्टाओंसे क्या लाभ है ? क्या आप यह नहीं जानते कि सब जीव अपने कियेका फल भोगते हैं ॥४७॥ संसारमें जिसने जैसा कर्म उपार्जन किया है, हे भाई ! नियमसे उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है ॥४८॥ देव, यदि दूसरे प्राणियोंके लिए सुख देने और दुःख हरनेमें समर्थ हैं तो फिर अपना ही मृत्युरूपी दुःख क्यों नहीं नष्ट कर लेते हैं ॥४९॥

इसलिए भाई ! स्वर्गको जाओ और अपने पुण्यका फल भोगो। मैं भी आयुके अन्तमें मोक्षका कारण जो मनुष्यपर्याय है उसे प्राप्त करूँगा ॥५०॥ हम दोनों उस मनुष्य-पर्यायमें तप करेंगे और जिनशासनकी सेवासे कर्मोंका क्षय कर मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥५१॥ हाँ, एक काम आप अवश्य करें कि 'भरत क्षेत्रमें हम दोनोंको लोग पुत्र आदिसे सहित तथा महावैभवसे युक्त देखें और हम लोगोंको देखकर दूसरोंके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त हो जावें ॥५२॥ मेरी कीर्तिकी वृद्धिके लिए आप शंख, चक्र तथा गदा हाथमें लिये मेरी प्रतिमाओंके मन्दिरोंसे समस्त भरत क्षेत्रको व्याप्त कर दें'। बलदेवका जीव देवेन्द्र कृष्णके पूर्वोक्त वचन स्वीकार कर तथा उसे सम्यग्दर्शनमें शुद्धता रखनेका उपदेश दे भरत क्षेत्र आया ॥५३–५४॥ भाईके स्नेहके वशीभूत हुए उस देवने कृष्णका कहा सब काम किया। उसने दिव्य विमानमें स्थित कृष्ण और बलदेवका सबको दर्शन कराया ॥५५॥ तथा नगर-ग्राम आदिमें बनवाये हुए कृष्णके मन्दिरोंसे संसारको कृष्णविषयक मोहसे तन्मय कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहसे क्या-क्या चेष्टा नहीं होती है ? ॥५६॥

तदनन्तर देवने ब्रह्मस्वर्ग जाकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की और वहाँ वह स्त्रियोंके समूहसे आवृत हो देवोंके सुखका उपभोग करता हुआ रहने लगा ॥५७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो स्नेहकी अधिकतासे यह जीव उच्च स्थानमें स्थित होता हुआ भी भयपूर्ण पातालके मूलमें जाता है, श्रेष्ठ संसारके सारभूत प्राप्त हुए विषयसुखका उपभोग नहीं करता है, पहले अध्ययन किये हुए शास्त्रका स्मरण नहीं रखता है और विपरीत काम करने लगता है इसलिए स्वर्ग और मोक्ष-

सुखके बाधक प्राणियोंके अत्यधिक स्नेहसम्बन्धी मोहको धिक्कार हो ।। ५८ ।। तदनन्तर मोहको नष्ट करनेवाले नेमिजिनेन्द्रके उस प्रचलित तीर्थमें वरदत्त नामक मुनिको केवलज्ञान हुआ और हरिवंशकी सन्ततिको धारण करनेवाला धीर-वीर जरत्कुमार धुरन्धर राजलक्ष्मीकी रक्षा करता हुआ राज्यका भार सँभालने लगा ।।५९।।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें भगवान् नेमिनाथके निर्वाणका वर्णन करनेवाला पैंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।६५।।

□

सर्ग- ६६

तदनन्तर प्रतापके द्वारा समस्त राजाओंको वश करनेवाला, उग्रशासनका धारक राजा जरत्कुमार जब पृथिवीका शासन करने लगा तब उसके प्रति प्रजाने बहुत आदर किया और पृथिवीतलपर अधिक हर्ष प्राप्त किया ॥ १ ॥ कलिंग राजाकी पुत्री जरत्कुमारकी उत्तम पट्टरानी थी, उससे उसने जगत्को सुख देनेवाला एवं राजकुलकी ध्वजास्वरूप वसुध्वज नामका पुत्र प्राप्त किया ॥ २ ॥ व्यवसायी तथा हरिवंशके शिरोमणि उस युवापर पृथिवीका भार रख जरत्कुमार तपके लिए वनको चला गया सो ठीक ही है क्योंकि तीव्र तपका सेवन करना सत्पुरुषोंका कुलव्रत है ॥ ३ ॥ वसुध्वजके चन्द्रमाके समान प्रजाको आनन्द देनेवाला कुबेरतुल्य सुवसु नामका पुत्र हुआ। सुवसुके कलिंग देशकी रक्षा करनेवाला भीमवर्मा नामका पुत्र हुआ और उसके वंशमें अनेक राजा हुए ॥४॥ तदनन्तर उसी वंशका आभूषण कपिष्ट नामका राजा हुआ, उसके अजातशत्रु, अजातशत्रुके शत्रुसेन, शत्रुसेनके जितारि और जितारिके यह जितशत्रु नामका पुत्र हुआ है ॥ ५ ॥ हे राजन् श्रेणिक ! क्या तुम इस जितशत्रुको नहीं जानते ? जिसके साथ भगवान् महावीरके पिता राजा सिद्धार्थकी छोटी बहनका विवाह हुआ है, जो अत्यन्त प्रतापी और शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला है ॥ ६ ॥ जब भगवान् महावीरका जन्मोत्सव हो रहा था तब यह कुण्डपुर आया था और कुण्डपुरके राजा सिद्धार्थने इन्द्रके तुल्य पराक्रमको धारण करनेवाले इस परम मित्रका अच्छा सत्कार किया था ॥ ७ ॥ इसकी यशोदया रानीसे उत्पन्न यशोदा नामकी पवित्र पुत्री थी। अनेक कन्याओंसे सहित उस यशोदाका भगवान् महावीरके साथ विवाह-मंगल देखनेकी यह उत्कट अभिलाषा रखता था। परन्तु स्वयम्भू भगवान् महावीर तपके लिए चले गये और केवलज्ञानरूपी विशाल नेत्र प्राप्त कर जगत्का कल्याण करनेके लिए पृथिवीपर विहार करने लगे, तब यह स्वयं भी पृथिवीको छोड़ तपमें लीन हो गया ॥८–९॥ आज मुनि जितशत्रुको तपके फलस्वरूप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और उससे उनका मनुष्यपर्याय सार्थक हुआ है सो ठीक ही है, क्योंकि संसारमें मनुष्य-पर्याय महाफलस्वरूप तभी होता है जब वह तपके फलस्वरूप इस केवलज्ञानरूपी फलको प्राप्त कर लेता है ॥१०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैंने यह लोकप्रसिद्ध तथा त्रेसठशलाका पुरुषोंके पुराणपद्धतिसे सम्बन्ध रखनेवाली हरिवंशकी कथा संक्षेपसे कही है सो तुझे लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए हो ॥११॥ सम्यग्दर्शनसे सुशोभित राजा श्रेणिक अनेक राजाओंके साथ गौतम-गणधरसे इस पवित्र पुराणका वर्णन सुन अपने कानोंको सफल मानने लगा तथा नमस्कारकर प्रसन्न होता हुआ अपने नगरको चला गया ॥१२॥ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले एवं प्रसिद्ध समीचीन धर्मकथाके अनुरागी चारों निकायके देव और विद्याधर जिनेन्द्र भगवान्को प्रदक्षिणा देकर तथा प्रणाम कर अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥१३॥ बड़े-बड़े पुरुषोंके द्वारा पूज्य महामुनि जितशत्रु केवली भी पृथिवीपर विहार कर अन्तमें कर्मबन्धसे रहित हो अनन्त सुखसे युक्त अविनाशी

मोक्षपदको प्राप्त हुए ॥१४॥ भगवान् महावीर भी निरन्तर सब ओरके भव्यसमूहको संबोधकर पावानगरी पहुँचे और वहाँके 'मनोहरोद्यान' नामक वनमें विराजमान हो गये ॥१५॥ जब चतुर्थकालमें तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे तब स्वाति नक्षत्रमें कार्तिक अमावास्याके दिन प्रातःकालके समय स्वभावसे ही योग निरोधकर घातियाकर्मरूप ईंधनके समान अघातियाकर्मोंको भी नष्ट कर बन्धनरहित हो संसारके प्राणियोंको सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुखसे सहित निर्बन्ध—मोक्ष स्थानको प्राप्त हुए ॥१६–१७॥ गर्भादि पांचों कल्याणकोंके महान् अधिपति, सिद्धशासन भगवान् महावीरके निर्वाण महोत्सवके समय चारों निकायके देवोंने विधिपूर्वक उनके शरीरकी पूजा की ॥१८॥ उस समय सुर और असुरोंके द्वारा जलायी हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकोंकी पंक्तिसे पावानगरीका आकाश सब ओरसे जगमगा उठा ॥१९॥ श्रेणिक आदि राजाओंने भी प्रजाके साथ मिलकर भगवान्के निर्वाण कल्याणककी पूजा की। तदनन्तर बड़ी उत्सुकताके साथ जिनेन्द्र भगवान्के रत्नत्रयकी याचना करते हुए इन्द्र देवोंके साथ-साथ यथास्थान चले गये ॥२०॥ उस समयसे लेकर भगवान्के निर्वाणकल्याणकी भक्तिसे युक्त संसारके प्राणी इस भरतक्षेत्रमें प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिकाके द्वारा भगवान् महावीरकी पूजा करनेके लिए उद्यत रहने लगे। भावार्थ—उन्हींकी स्मृतिमें दीपावलीका उत्सव मनाने लगे ॥२१॥

भगवान् महावीरके निर्वाणके बाद बासठ वर्षमें क्रमसे गौतम, सुधर्म और जम्बूस्वामी ये तीन केवली हुए। उनके बाद सौ वर्षमें समस्त पूर्वोंको जाननेवाले पाँच* श्रुतकेवली हुए ॥२२॥ तदनन्तर एक सौ तेरासी वर्षमें† ग्यारह मुनि दश पूर्वके धारक हुए। उनके बाद दो सौ बीस वर्षमें पांच§ मुनि ग्यारह अंगके धारी हुए। तदनन्तर एक सौ अठारह वर्षमें सुभद्रगुरु, जयभद्र, यशोबाहु और महापूज्य लोहार्यगुरु ये चार मुनि प्रसिद्ध आचारांगके धारी हुए ॥२३–२४॥

उनके बाद महातपस्वी विनयंधर, गुप्तश्रुति, गुप्तऋषि, मुनीश्वर शिवगुप्त, अर्हद्बलि, मन्दरार्य, मित्रवीरवि, बलदेव, मित्रक, बढ़ते हुए पुण्यसे सहित रत्नत्रयके धारक एवं ज्ञानलक्ष्मीसे युक्त सिंहबल, वीरवित्, गुणरूपी कमलोंके समूहको धारण करनेवाले पद्मसेन, गुणोंसे श्रेष्ठ व्याघ्रहस्त, नागहस्ती, जितदण्ड, नन्दिषेण, स्वामी दीपसेन, तपोधन श्रीधरसेन, सुधर्मसेन, सिंहसेन, सुनन्दिषेण, ईश्वरसेन, सुनन्दिषेण, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन और शान्तिसेन आचार्य हुए। तदनन्तर जो अखण्ड मर्यादाके धारक होकर परिपूर्ण षट्खण्डों (१ जीवस्थान, २ क्षुद्रबन्ध, ३ बन्धस्वामी, ४ वेदनाखण्ड, ५ वर्गणाखण्ड और ६ महाबन्ध) से युक्त समस्त सिद्धान्तको अर्थरूपसे धारण करते थे अर्थात् षट्खण्डागमके ज्ञाता थे, कर्मप्रकृतिरूप श्रुतिके धारक थे और इन्द्रियोंकी वृत्तिको जीतनेवाले थे ऐसे जयसेन नामक गुरु हुए। उनके शिष्य अमितसेन गुरु हुए जो प्रसिद्ध वैयाकरण, प्रभावशाली और समस्त सिद्धान्तरूपी सागरके पारगामी थे। ये पवित्र पुन्नाट गणके अग्रणी—अग्रेसर आचार्य थे। जिनेन्द्र शासनके स्नेही, परमतपस्वी, सौ वर्षकी आयुके धारक एवं दाताओंमें मुख्य इन अमितसेन आचार्यने शास्त्रदानके द्वारा पृथिवीमें अपनी वदान्यता—दानशीलता प्रकट की थी। इन्हीं अमितसेनके अग्रज धर्मबन्धु कीर्तिषेण नामक मुनि थे जो बहुत ही शान्त थे, पूर्ण बुद्धिमान् थे, शरीरधारी धर्मके समान जान पड़ते थे, और जो अपनी तपोमयी कीर्तिको समस्त दिशाओंमें प्रसरित कर रहे थे। उनका प्रथम शिष्य मैं जिनसेन हुआ। मोक्षके उत्कृष्ट सुखका उपभोग करनेवाले अरिष्टनेमि जिनेन्द्रकी भक्तिसे युक्त मुझ जिनसेन सूरिने अपने सामर्थ्यके अनुसार अल्पबुद्धिसे इस हरिवंशपुराणकी रचना की

है ॥२५-३३॥ इस ग्रन्थमें मेरे द्वारा यदि कहीं प्रमादवश पूर्वापर विरोधसे युक्त रचना की गयी हो तो जीवोंकी स्थिति और सामर्थ्यके जाननेवाले पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् प्रमादरहित हो उसे ठीक कर लें ॥३४॥ कहाँ तो यह उत्तम वंशों-कुलों (पक्षमें बाँसों) से युक्त यह हरिवंशरूपी पर्वत और कहाँ मेरी अत्यन्त अल्पशक्तिकी धारक क्षुद्रबुद्धि ? मैंने तो सिर्फ जिनेन्द्र भगवान्के वंशकी इस स्तुतिसे पुण्योत्पत्तिकी इच्छा की है ॥३५॥ मैंने इस ग्रन्थकी रचना न तो काव्यरचनाके व्यसनजन्य संस्कारसे की है, न कीर्तिसमूहकी बलवती इच्छासे की है, न काव्यके अभिमानसे की है, और न दूसरेकी देखा-देखीसे की है। किन्तु यह रचना मैंने मात्र जिनेन्द्र भगवान्की भक्तिसे की है ॥३६॥ इस ग्रन्थमें चौबीस तीर्थंकर, उत्तम कीर्तिके धारक बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण इन पुराणगामी त्रेशठ शलाका पुरुषोंका वर्णन किया गया है ॥३७॥ इनके सिवाय इस श्रेष्ठ पुराणमें बीच-बीचमें पृथिवीपर चतुर्वर्गके फलको भोगनेवाले सैकड़ों भूमिगोचरी और अनेकों यशस्वी विद्याधरराजाओंका वर्णन किया गया है ॥३८॥

हरिवंशका कथन करनेसे जो असंख्य पुण्यका संचय हुआ है उसके फलस्वरूप मैं यही चाहता हूँ कि मनुष्यलोकमें उत्पन्न हुए भव्यजीव जिनशासनमें स्थित हों ॥ ३९ ॥ तथा त्रसस्थावरके भेदसे प्रसिद्ध जीव आदि पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले नेमिजिनेन्द्रके इस चरितको बाँचनेवाले मुख्य सज्जन बाँचे और सभामें आये हुए श्रोताजन अपने कर्णरूप पात्रोंसे इसका पान करें ॥४०॥ क्योंकि जिनेन्द्र भगवान्का मात्र नाम ग्रहण ही ग्रह-पिशाच आदिकी पीड़ाको दूर करनेका कारण है फिर सत्पुरुषोंके पापको दूर करनेवाला पूरा चरित यदि बाँचा जायेगा तो उसके फलका तो कहना ही क्या है ? ॥४१॥ विद्वज्जन एकाग्रचित्त होकर दूसरोंके उपकारके लिए और अपने-आपकी मुक्तिके लिए इस ग्रन्थका व्याख्यान करें। यह ग्रन्थ मंगल करनेवालोंके लिए उत्तम मंगलरूप है तथा मंगलकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंके लिए मंगलका उत्तम निमित्त भी है ॥४२॥ जिनेन्द्र भगवान्का वर्णन करनेवाला यह शास्त्र महान् उपसर्गके आनेपर रक्षा करनेवाला है, उत्तम शान्तिका दाता है और उत्तम शकुन रूप है, अप्रतिचक्रदेवतासे सहित, सज्जनोंके हितैषी जो शासनदेव और शासनदेवियाँ सदा चौबीस तीर्थंकरोंकी सेवा करती हैं उनसे भी मैं याचना करता हूँ कि वे सदा जिनशासनके निकट रहें। चक्ररत्नको धारण करनेवाली अप्रतिचक्रदेवता तथा गिरिनार पर्वतपर निवास करनेवाली सिंहवाहिनी—अम्बिकादेवी, जिस जिनशासनमें सदा कल्याणके लिए सन्निहित—निकट रहती हैं उस जिनशासनपर विघ्न अपना प्रभाव कहाँ जमा सकते हैं ? ॥४३-४४॥ हितके कार्यमें मनुष्योंको विघ्न उत्पन्न करनेवाले जो ग्रह, नाग, भूत, पिशाच और राक्षस आदि हैं वे जिनशासनके भक्त देवोंकी प्रभाव शक्तिसे शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं। भावार्थ—जिनशासनके भक्त देव स्वयं कल्याण करते हैं तथा अन्य उपद्रवी देवोंको भी शान्त बना देते हैं ॥४५॥ जो भव्य जीव यहाँ भक्तिपूर्वक हरिवंशपुराणको पढ़ते हैं उन्हें थोड़े ही प्रयत्नसे मनोवांछित सिद्धियां तथा प्रसिद्ध धर्म, अर्थ और मोक्षकी लब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥४६॥ जिनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ आर्य नहीं तथा जो मान-प्रतिष्ठासे रहित हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्के भक्त आर्यपुरुष, मात्सर्यको दूर कर अवार्य वीर्यसे युक्त एवं उत्तम धैर्यसे बलिष्ठ बुद्धिके द्वारा इस पुराणको संसारमें प्रसिद्ध करें—इसके अर्थका विस्तार करें ॥४७॥

अथवा मुझे प्रार्थना करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि संसारका भार धारण करनेमें समर्थ पर्वत, जिस प्रकार स्वभावसे ही मेघोंके द्वारा छोड़े हुए जलको अपने मस्तकपर

धारण कर पृथिवीपर फैला देते हैं उसी प्रकार संसारका भार धारण करनेमें समर्थ विज्ञपुरुष स्वभावसे ही इस पुराणको पृथिवीतलपर फैला देंगे ।।४८।। जो उत्तम शब्दोंसे युक्त (पक्षमें उत्तम गर्जना करनेवाले) महाविद्वान्‌रूपी मेघोंसे रचित है, जिसके विषयमें खूब प्रश्नोत्तर हुए हैं तथा जो नूतन होकर भी पुराणरूप है ऐसा यह पुराणरूपी जल जनसमूहरूपी नदियोंके समूहसे चारों समुद्रों पर्यन्त विस्तृत किया जाता है । भावार्थ—जिस प्रकार मेघोंसे बरसाये हुए पानीको नदियाँ समुद्र तक फैला देती हैं उसी प्रकार विद्वानों द्वारा रचित पुराणको जनता परस्परकी चर्चा-वार्तासे दूर-दूर तक फैला देती है ।।४९।।

जो देवोंके समूहसे सेवित हैं, जिनका शान्त शासन प्रजाके लिए अत्यन्त शान्ति प्रदान करनेवाला है, जिनकी केवलज्ञानरूपी दृष्टि सदा विकसित रहती है और जिन्होंने समस्त तत्त्वों-को अच्छी तरह देख लिया है ऐसे जिनेन्द्र भगवान् सदा जयवन्त रहें ।।५०।। वादियोंसे सर्वथा अजेय जिनधर्मकी परम्परा सदा जयवन्त रहे, प्रजाओंमें क्षेम और सुभिक्षकी वृद्धि हो तथा प्रतिवर्ष अनुकूल वर्षाके कारण उत्तम धान्यसे सुशोभित यह पृथिवी प्राणियोंके सुखके लिए हो ।। ५१ ।।

सात-सौ पांच शक संवत्‌में, जब कि उत्तर दिशाका इन्द्रायुध, दक्षिणका कृष्णराजका पुत्र श्रीवल्लभ, पूर्व दिशाका श्रीमान् अवन्तिराज और पश्चिमका सौर्योंके अधिमण्डल-सौराष्ट्रका वीर जयवराह पालन करता था तब कल्याणोंसे निरन्तर बढ़नेवाली लक्ष्मीसे युक्त श्री 'वर्धमान-पुर' में नन्नराजा द्वारा निर्मापित श्रीपार्श्वनाथके मन्दिरमें पहले इस हरिवंशपुराणकी रचना प्रारम्भ की गयी थी परन्तु वहाँ इसकी रचना पूर्ण नहीं हो सकी । पर्याप्त भाग शेष बच रहा तब पीछे 'दोस्तटिका' नगरीकी प्रजाके द्वारा रचित उत्कृष्ट अर्चना और पूजा-स्तुतिसे युक्त वहाँ-के शान्तिनाथ भगवान्‌के शान्तिपूर्ण मन्दिरमें इसकी रचना पूर्ण हुई ।।५२–५३।। अन्य संघोंकी सन्ततिको पीछे छोड़ देनेवाले अत्यन्त विशाल पुन्नाट संघके वंशमें उत्पन्न हुए श्रीजिनसेन कविने रत्नत्रयके लोभके लिए जिस हरिवंशपुराणरूपी श्रीपर्वतको प्राप्त कर उसका अच्छी तरह अवलोकन किया था, सब ओरसे दिशाओंके मुखमण्डलको व्याप्त करनेवाला वह सुदृढ़ श्रीपर्वत पृथिवीमें चिरकाल तक स्थिर रहे ।।५४।।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्यरचित हरिवंशपुराणमें गुरुओंके चरण-कमलोंका वर्णन करनेवाला छयासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ।।६६।।

□